



# बुद्ध-चर्या

( मगधान् दुय्यकी जीधनी और उपदेश )

लेखक

राहुल सांकृत्यायन

महापोषि सभा

सारनाथ बनारस

प्रकाशक  
ब्रह्मचारी देवप्रिय बी० ए०  
प्रकाश-मन्त्री  
महाबोधि समा सारवाच भारत

### लेखक के इस विषय के अन्य ग्रन्थ

- |                            |                            |
|----------------------------|----------------------------|
| १. बौद्ध संस्कृति          | २. बौद्ध दर्शन             |
| ३. बौद्ध शिक्षण ( हिन्दी ) | ४. मध्यम शिक्षण ( हिन्दी ) |
| ५. विजय पिटक ( हिन्दी )    | ६. चम्मपद ( हिन्दी )       |
| ७. अमिचर्म कोष ( संस्कृत ) |                            |

मुद्रक  
ओम् प्रकाश कर्तु  
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी २७५२-०७

मेरे गृह-त्यागसे जिनके अ-वार्धक्य जीवनके अंतिम क्षण सुखमय  
बन गये, उन्हीं माँहृत्य-सगोत्र मर्दों-पांडेय, स्वर्गीय-पिता  
श्री गोवर्धनकी स्मृतियें ।



## प्राक्-कथन ।

मगवान् बुद्धकी जीवनी और उपदेश दोनों ही इस ग्रन्थमें सङ्ग्रहित हैं। बुद्धकी जीवन-व्यवहारों पाकि त्रिपिटकमें बहो-तहो बिखरी हुई हैं, मीने उन्हें बहो संग्रह किया है, साबही रिक्त स्थानको त्रिपिटककी जड़-कथाओंसे पूरा कर दिया है। पाकिन्ध अनुवाद पार्श्व प्रायः सम्बद्ध हुआ है। बीच बीचमें कुछ अंश छोड़ दिये हैं जिसमें पुनरुक्तके किपु ( ) चिह्न, और सर्वथा अभावस्थानके स्थानपर ( ) चिह्न कर दिये हैं। उद्देशः अनुवाद करनेके कारण माया कहीं-कहीं करकतीसी है। कुछ विद्वानोंने कहा भी कि शम्भुः का क्याछ छोड़ कर स्वतन्त्र-अनुवाद होना चाहिये, किन्तु मीने बहो त्रिपिटकमें जाई भौगोकि पृथिहासिक सामाजिक राजनीतिक सामग्रियोंके भी पकठित कर दिया है; स्वतन्त्र अनुवाद होयेपर ऐतिहासिकोंके किपु उनका मूल्य कम हो जाता इसकिपु मीने बीसा बहीं किया। मेरी इस शकस आचार्य मरेन्द्रदेव मी सहमत रहे। इस तरह भाषा कुछ करकतीसी बकर मात्तुम होगी किन्तु १ -५ पूछ पड़ जानेपर बह सापारणसी बव जायेगी और पाकिने मुहाबिरे बरकी हिन्दी एवं स्वाभीय भाषाओंसे—जिसीपकर पूर्वी अरबी तथा बिहारकी भाषाओंसे—बिष्कुक मिफले-जुफले हैं, इसकिपु कोई दिक्कत ब मात्तुम होगी। बौद्धोंके कुछ अपने दार्शनिक सम्पु हैं मीने कोष्टक तथा टिप्पणियोंमें बहो तहो कबको समझानेकी कोसिस की है किन्तु संक्षेपके कारण हो सकता है कहीं कहीं स्पष्ट न हो पाया हो इसके किपु सम्पु-सूचीमें देखा जाहिये, भासा है बहोसे कम एक जायेगा। बौद्ध दार्शनिक मार्गोंके किपु पाठकको दर्शनका सामान्य ज्ञान होना तो आवश्यक ही है। बुद्धके जन्म निर्वाण आदि समयके बारेमें मीध सिंहक-परम्परामें ९ वर्ष कम कर दिये हैं जिसको विष्कमसिंह भादिये भाषा है; और जिसके करने से पबनराजाओंके कबसे भी टीक मेक हो जाता है।

त्रिपिटक काफले क्रमसे वकठित बहीं किया गया है। त्रिपिटकका आरम्भ सुत्त-पिटक से होता है और सुत्त-पिटकका आरम्भ "जट्टमाक-सुत्त" से; केकिब बह सुत्त मयवाप्ने बुद्धत्व-प्राप्तिके बाद ही बहो उपदेश किया। उसके बादका 'सामज्जफक-सुत्त' तो आधुके बहतरवें वर्षके बादका है, जब कि छोटा मयवराज अजात-शत्रु राजगरीपर बँध चुका था। इस प्रकार समी बटमाओं और उपदेशोंका काकामुसार क्रमात्त बहूत ही कठिन काम था, इस काममें मुझे कोई बीसा अथवा पूर्वगामी मी बहीं मिका। यद्यपि बहो बिष्कुक ही समी बातोंका क्रम टीक काकामुसार है—बह मी बहीं कहता तो मी यज्ञावतीका संन्यास—दियों को मिश्रुणी बननेका अधिकार-महाण मीने बुद्धत्व-प्राप्तिसे पूर्ववें वर्ष दिया है—बहुर टीक होया; इसी प्रकार बुद्धरम्क तीसरे वर्ष अनाप विष्कका अंतवक प्रयाण करना एवं बहो बुद्धक पराकास करना मी सूत्र और विभवकी सहायतासे विभव कर दिया गया है। यद्यपि बहो अट्टकनाक विरोध पड़ता है किन्तु मूक त्रिपिटकक सामने अट्टकनाक विरोध कोई चीज बहीं है। इस पुनरुक्ते कुछ अगर्ह एक ही धरनाको 'अट्टकना "विभव" और "सूत्र"

कीर्तियों के शब्दों में दिवा गया है, इसके देखते-साक्षात् माहसूस होया कि सुन्नोकी जनेछा जिनके भी अधिक प्रतिशतोंके पूर्व अर्थोक्तिकासे काम किया गया है; और बहुतकथा तो इस बातमें विचलते बहुत जाये नहीं हुई है और इसीप्रकारे इसके ही अनुसार इनकी प्रमाधिकताका कारणत्व भाव लेनेमें कोई हाथि नहीं है । काक-कथमें कहीं-कहीं मुझे भी संदेह है तथापि ध्याया है कि दूसरे संस्करण तक कुछ बातें और साफ हो जायेंगी । समीचे किने तो इसी वचन आता सुद गार्ह, जब कि विद्वानो कंडस्व करनेवाकं कथकपरम्पराको विविचद व करही इय कोकसे चके गये ।

कितने ही अविश्रित भीगीकिक ल्वाकोंक निश्चय करनेका भी मैंने प्रयास किया है जैसे सहजातिको मैंने भीटा ( कि इकाहावाद ) से मिथ्या है । वैशाखी विभासी मिथु वाचपर सहजाति गये ये ( १८ ५२३ ) इससे सहजातिको किसी बड़ी नदीके किनारे होना चाहिये । बरी द्वारा व्यापारमें इस समय आसाभी होयसे वह एक अच्छा बाजार होया वह भी अनुमान होता है । इसके बाद हम भीटाकी ज्वालामें सिखी एक मुहरपर 'सहजा तिय-वेगमे ( ? ) ( सहजातिक पंगम ) पाते हैं; इन तीनों बातोंके इकाहा करनेसे भीटाका सहजाति होना निश्चित होता है । सहजाति चेदी देशमें थी, यह भीटाकं वसुनाके दक्षिण तटपर स्थित होयसे, ठीक साहस होता है; बस और चेदी पसुनाके पार-पार थे ही । इसी प्रकार भीर भी कितने ही स्थान दिने पये हैं विचार मयसे उनके बारेमें यहाँ कुछ किन्तवा धर्साभव है । इस प्रत्यक्ष देखने तथा विविचकसे भी बता कथता है कि आशान् सुद कोसी कुम्भेक विध्य-दिमाकनसे विरे मध्य-देशके बाहर नहीं गये । समवाभाषके कारण अनेक बकसे नहीं दिये गये । इस एक नकसेमें मध्यदेशके किये कितना ल्याय है उतवमें समी व्यापकनक स्वाकीक काम देता असमय समस्र इसे भी द्वितीय संस्करणके किने छोड़ दिया । मुझे अकसौच है कि किताबसे भी अधिक अकन्य गकतिर्पा बकसेमें हो गार्ह हैं । अन्वीके कारण इकाहावासे मैंगाकन बकसेका एक व देख सख ।

सुन्नके धार्मिक विचारोंका सारांश यहाँ देना कठिन है । किन्तु पाठक इस दृष्टिसे पुस्तक पढ़नेके पूर्व यदि एक बार "केसुपुत्तिय-सुत्त" ( १८ ३२५ ) और 'सामगाम सुत्त' ( १८ ४४ ) समस्र लेंगे तो उन्हें सुन्नके वाक्यिक संतत्वके समझनेमें आसाभी होगी ।

१९२०-२८ में जिस समय मैं अंधारमें विविचक पढ़ रहा था कधी समय बहुत सी बातें बोर भी करता आता था । उस समय मेरा विचार था कि विविचक भीर उसकी बहुतकथाओं ( अभाषों )में प्रायः ऐतिहासिक और भीगीकिक सामग्रीपर एक प्रथ किर्ह । इसी कथाके अंधारमें रहते ही कथ, मैंने आशखी-जैतवनपर एक परिच्छेद किन्त भी आक्य, तब मुझे ध्याया व भी कि तन्काक मैं इका प्रत्यक्ष किन्तनेमें हाय कगाईगा । अंधारसे मैं सिध्पत जानेके किने भारत आया । उस समय बात-चीत करनेमें एक ऐसी पुस्तककी अवकनकता प्रतीत हुई । वैपाक और क्वासाके वेपायी बौद्धोंसे बात-चीत करवैपर रद कर कथा पढ़ा कि मीका मिळत ही इस प्रत्यक्ष हाय कगाईगा । किन्तु उस समय मुझे बह विश्वास व क कि मैं हतनी अन्वी ( १४ भासमें ) अन्वी काजा समास कर पाईगा ।

१९३ में मैं तिष्ठतसे संका खीट गया। वहाँ अपने स्पेड समझावाही आधुम्मान् कार्बन्दी प्रेरणासे और मद्द ही फलता १ ३ की आश्विन पूर्वमा या महामकारणासे इस प्रयको किन्नाता कारंम कर पौष कृष्ण अष्टमी तक कुछ ६८ दिनमें समाप्त कर दिया। इसके तीसरे दिन पाप कृष्ण १ को मुझे भारतके किये प्रस्थान करना था इसलिये इच्छा रहते भी 'महाकाळ-मुक्त' और 'सिगाकोबाद्-मुक्त'को वहीं सामिककर सका किन्में उपते वक्त "सिगाकोबाद्"को तो छे किया लेकिन समयाभावसे इस संस्करणमें "महाकाळ के देवके कोमको संवरण करना पडा।

भारतमें जूँकि मुख्यतः मैं देसके जाहोकरनमें भाग लेन आया था, इसकिये पुनककी ओर प्याव देवैका विचार न था। किन्तु अण्डिबोंकी भरभारके दरस अपनै "अमिचर्मकोषा" ( जो हाक हीमें काशी-विद्यापीठकी ओरसे संस्कृतमें छपा है ) के प्रक-संशोधनका भार बना पडा। उसी समय मैं इस पुस्तकके नामकरणके किये सबाह कर रहा था और एकएक 'बुद्धकर्पा' नाम सामने आया। तबतक मैंने प्रयको दुबारा देखा भी न था मैंने वह काम मद्दन्त जानन्दको सीया और उन्हींके कुछ दिनोंमें समाप्त भी कर दिया। जनवरीके अंतमें मैं अपने कार्ब-कोषमें चला गया। फिर वर्षावासके किये मुझे कहीं एक बगह बहरना या मिन इसके किये बनारसको चुन। मेरे मित्रोंमें बिरोधकर श्रीधूपनाथसिंहने 'बुद्धकर्पा'के उपबानेक बहुत आग्रह किया और पाँचसौ रुपये देने भी तै कर किये दोसी रुपये और भी जमा थे। बनारस आयेपर मैंने निश्चय किया कि इन सातसौ रुपयोंसे पुस्तकका खितना हिस्सा छप जाये उतना पहिके छपा लेना चाहिये बाकी पीछे देना जायेगा। उपाई छुक हागाई। इसी बीच बाबू शिवप्रसादगुप्त कात हुई और उन्हींने इसे अपनी ओरसे छपावा स्वीकार किया। श्रीधूपनाथने इस निश्चयके पूर्वही कहका भेजा था कि पुस्तक सभी छप जावी चाहिये और भी जो काम करीगा मैं हूँगा। इस तरह पुस्तकके इतनी अस्ती प्रकथित होवैमें सबसे बड़े कारण श्रीधूपनाथ ही हैं। बाबू शिवप्रसादकी उदारताके बारेमें कुछ कहना तो व्यर्थ ही होगा। मेरे मित्र आचार्य नरन्धरेचजी तो मुझसे भी अधिक इस पुनकके छपवैके किये उत्सुक थे; और उन्हींने इसके किये बहुत कोशिश की जिसका फल वह अपके सामने है।

अस्ती असावधानी या न जानकेके कारण पुस्तकमें बहुतसी अण्डिबों रह गई हैं। मैंने छुटाछुट पत्रको बेकार और समवापेछ समाप्त, छेप दिया।

काशी-विद्यापीठ काशी।  
आश्विन कृष्ण १७ १९८८

} राहुळ साहस्र्यायन ।

द्वितीय संस्करण—“बुद्धकर्पा” कई वर्षोंसे दुर्लभ हो गई थी किन्तु कागजकी मँहगा के कारणे मैं देर से विक्रय बाकी इतनी बड़ी पुस्तक को छपाये क्यों ? यदि पहिक संस्करणक किये श्री धूपनाथ तथा जनेक वा मधुर शररवीथ बाबू शिव प्रसाद गुप्त जैसे जलजंब निके थे तो जल के महाबोधि समा क सेखेदरी श्री देवमिप आग आये।

राहुळ साहस्र्यायन  
मंसूरी १२-१-५९



## प्रकाशकीय निवेदन

हिन्दी पाठकोंके सम्मुख आज 'युद्धज्योति' के दूसरे संस्करणको महाशोधि समाप्ती औरसे उपस्थित करते हुए हमें बड़ा हर्ष हो रहा है। आज तक किसी भी भाषामें इतना पूर्ण और प्रामाणिक भगवान् युद्धका जीवन-चरित नहीं प्रकाशित हुआ है। अब इसकी षष्ठी मॉग रही है। 'युद्धज्योति' की पड़तो कुछ मॉगने ही हमें इसके दूसरे संस्करणको प्रकाशित करनेके लिए पाध्य किया है। आशा है इसके प्रकाशनसे हिन्दीप्रेमियोंको प्रसन्नता होगी।

महाशोधि समाने अमीतक त्रिपिटकके कुछ मुख्य ग्रन्थोंका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया है और स्त्रीय ही समुच्च निकाय, अगुत्तर निकाय और त्रिसुद्धिमगा भी प्रकाशित होनेवाले हैं। इस प्रकार हिन्दीमें बौद्ध साहित्यका श्रद्धा हुआ अभाव पूर्ण हो जायेगा। आशा है हिन्दी-पाठकोंका सहयोग पूर्ववत् बना रहेगा।

इस पुस्तकके प्रकाशनमें व्यय अधिक हुआ है, मिसका मार मैं आप विद्यालयांगी महानुभावोंकी सहायताके मरोसे पर ही वहन कर रहा हूँ। अमीतक जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसका ज्योय निम्न प्रकार है :—

1 Mr Richard Salgado Panadura Ceylon	Rs 250/-/-
2 Mr T A Gunasekera Colombo Ceylon.	" 250/-/-
3 Ven ble Dikwella Seelaratana Maha Thera Godauda Ceylon	200/-/-
4 Mr P Tikiri Henaya Hangananketa Ceylon	" 50/-/-
5 Mr T S Weerasingha, Uduwara Ceylon	" 40/-/-
6 Mr M T Robosingho Kurunegala Ceylon	30/-/-
7 Ayurvedic Physician A. H Gunasekera, Kurunegala Ceylon.	" 20/-/-
8 Mr M D D Perera Horana Ceylon	5/-/-
9 Mr K M Perera, Horana Ceylon	5/-/-
10. Mr Mr A Edirisingha Timbirisasyaya Ceylon.	" 5/-/-

निवेदक

प्रकाशकारी देवप्रिय बलिसिंह, बी० ए०  
प्रधान-मन्त्री,  
महाशोधि समा, सारनाथ

# भूमिका ।

## भारतमें बौद्ध धर्मका उत्थान और पतन

बौद्ध धर्म भारतमें उत्पन्न हुआ । इसके संस्थापक गौतम बुद्धन कोसी-जुम्हरेज और हिमालय-विंध्याचक्रके भीतर ही बिचरते हुए ४५ वर्ष तक प्रचार किया । इस धर्मके अनुयायी पिरकाक तक महात्सु सभारोंसे ऊँकर सभारण जब तक बहुत अधिकतासे सारे भारतमें फैले हुये थे । इसके सिद्धुओंके मंत्रों और बिहारोंसे देशका धारण ही कोई भाग रिक्त रहा हो । इसके बिचारक और दादाबिक इजाराँ बयोंतक अपने बिचारोंस भारतके बिचारको प्रभावित करते रहे । इनके कक-बिहारोंने भारतीय ककपर अमिद छाप सपायी । इसके वास्तु-शास्त्री और प्रन्धर-शिपी इजाराँ बयोंतक सभी पर्वतबड़ोंको मोमकी तरह काटकर, भजता, पकारा कलें नासिक बस गुहा-बिहारोंको बनात रहे । इसके गर्भीर मंतर्प्योंको अपनाके किये पचन भार चीन जसी समुच्चत जातियों काककित रहती रहीं । इसके दासगिक और सदाचारके नियमोंको अरम्भसे आमतक सभी बिहान् बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते रहे । इसके अनुयायियोंको संस्थाके बराबर ध्याय भी किसी दूसरे धर्मकी संस्था नहीं है ।

ऐसा प्रतापी बौद्ध धर्म अपनी मातृभूमि भारतसे कैसे लुप्त हो गया ? यह क्या ही महत्वपूर्ण तथा व्याजर्पकर प्रश्न है । इसी प्रश्नपर मैं यहाँ संक्षिप्त रूपसे बिचार करूँगा । भारतसे बौद्ध धर्मका कोप तेरहवीं शताब्दीमें सप्तगिद्धोंमें हुआ । उस समयकी स्थिति अलगके किये कुछ प्राचीन इतिहास जानना जरूरी है ।

गौतम बुद्धका निर्वाण ई पू ४८३में हुआ था । उन्होंने अपने सारे उपदेश मौखिक किये थे, तो भी सिष्य उनके जोबन-काकमें ही कंडल्प कर किया करते थे । यह उपदेश हो प्रचारके से एक साधारण-धर्म आर दर्शनके बिषयमें और दूसरे सिद्धु-सिद्धुगियोंके बिषय । पहलेको पाकीमें "धम्म" ( धर्म ) कहा गया है और दूसरेको "विषय" । बुद्धके निर्वाण ( बसाक पुर्णिमा ) के बाद उनके प्रधान सिष्याने ( अगे मतभेद व हो जाय, इस किये ) जसी बयोंत राजपूह ( बिक पडवा ) की ससपरी गुहामें एकत्रित हो 'धर्म' और 'विषय' का संस्थापन किया । इसीको प्रथम-संस्थापित कहा जाता है । इसमें महाकाश्यप सिद्धु धर्मके प्रधान ( सब-अगिर ) की हेसिबतसे धर्मके बिषयमें बुद्धके बिर-अनुचर 'आनन्द' से और विषयके बिषयमें बुद्ध प्रसिद्ध 'उपाकि'से प्रश्न पूछते थे । जहिँसा सार्य बचौर्य, महाचर्य आदि सुकमोंको पाकिमें श्रीक करते हैं और स्वर्ण ( रूप आदि ) कावतन ( रूप बसु-पुष्पबिज्ञान आदि ) पाठ ( शुबिनी जड आदि ) आदिके सूत्रन दास निक बिचारको प्रज्ञा दृष्टि या दर्शन करते हैं । बुद्धके उपदेशोंमें श्रीक और प्रज्ञा दोबोंपर पूरा जोर दिया गया है । 'धर्म'क किये पाकिमें दूसरा सपद 'मुच' ( सूच सूच ) वा 'मुचत्त' भी जाया है । प्रथम संदीतिके स्थबिर सिद्धुओंने 'धर्म' आर विषय'अर इस प्रकार संग्रह किया । पोछे मिच-मिच सिद्धुओंने उबको एक एक कंडल्प कर अध्ययन-अस्थापकका मार अपन ऊपर किया । उनमें जिन्होंने "धम्म" या "मुच" की रक्षाका मार किया वह "धम्म-अर" 'मुच-अर' या 'मुचत्तिक' ( सीधीतिक ) कहकाव । जिन्होंने "विषय"की रक्षाका मार किया वह "विषय-अर" कहकावे । इनके अतिरिक्त

सूत्रोंमें दर्शन-संबंधी अंध कर्मी-कर्मी बड़ ही संश्लेष रूपमें थे, किन्तु "मातिकार्य (=मात्रिकार्य) कहते थे। इन मातिकार्योंके रक्षक "मातिकार्य" कहलाये। पीछे मातिकार्योंकी समझावके किये अथ उपेक्षा विस्तार किया गया तब इसीका नाम "अधिचर्म" (=अधिचर्म=चर्म मेंसे) हुआ और इसके रक्षक "आधिचर्मिक" (=आधिचर्मिक) हुये।

प्रथम-संघीतिके सौ वर्ष बाद (ई. पू. २८३) वैद्याकीके मिश्रुओंके विलयके कुछ निचमोंकी अन्वेषणा शुरू की। इसपर विवाद आरम्भ हुआ और अंतमें फिर मिश्रु-संघके एकत्र हो उन विवाद-ग्रस्त विषयोंपर अपनी राय दी एवं "चर्म" और "विचय"का संगायक किया। इसीका नाम द्वितीय संघीति हुआ। कितने ही मिश्रु इस संघीतिके सहमत न हुए और उन्होंने अपने महासंघका कौद्याकीमें प्रथम सम्मेलन किया तथा अपने मतानुसार "चर्म" और "विचय"का संग्रह किया। संघके रक्षितों (बुद्ध-मिश्रुओं) का अनुगमन करनेवाला होनेसे पहले समुदाय (=विक्रय) आर्षस्वविर या स्वविरवाइके नामसे प्रसिद्ध हुआ और दूसरा महासंघिक। इन्हीं दो समुदायोंसे अगले सवा सौ वर्षोंमें रक्षितवाइके—विक्रयग्रह महीकासक चर्मगुहिक सौत्रांतिक सर्वास्तिवाद काश्चपीय सर्वांतिक समितीय कान्यागरिक मद्राधिक धर्मोचरीय और महासंघिकसे—गोकुलिक एकम्पवहारिक मद्राधिकवाद (=कोकोचरवाद), बाहुलिक वीरवाद; बह १८ विक्रय हुये। इनका मतमेव विचय और अधिचर्मकी बातोंको लेकर था। कोई-कोई विक्रय आर्षस्वविरोंकी तरह बुद्धको मनुष्य व मानव्य उन्हें कोकोचर मानने लये। बह बुद्धमें बद्धमुत्त और दिव्य-सत्त्विकोंका होना मानते थे। कोई-कोई बुद्धके जन्म और निर्वाणको विज्ञान मान समझते थे। इन्हीं मिश्र-मिश्र मान्यताओंके अनुसार उनके सूत्र और विचयमें भी कई पक्षोंके अन्तर्गत अन्तर्गत कीकाओंके समर्थनमें लये-लये सूत्रोंकी रचना हुई। बुद्धके निर्वाणके प्रायः सवा दो सौ वर्ष बाद अज्ञात-अज्ञानके बौद्ध-धर्म प्रवृत्त किया। उनके गुण मोक्षाधिपुत्र तिरस (मौद्र्यकि-पुत्र तिरस) उस समय आर्षस्वविरोंके सब स्वविर थे। उन्होंने मतमेव बुर करके किये परवामें अज्ञानके वनवाये "अज्ञानकारण" विहारमें मिश्रु-संघके द्वारा जुने लये इन्द्र मिश्रुओंका सम्मेलन किया, किन्तुवे मिश्रुकर सभी विवाद-ग्रस्त विषयोंका विचय तथा चर्म और विचयका संगायक किया। यही सम्मेलन तृतीय संघीतिके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी समय आर्षस्वविरोंके मिश्रुके सर्वास्तिवाद विचारोंके वाक्यांशमें अपनो बुद्ध संघीति की। वाक्यांश जो समय-समयपर बुद्धका विवास-स्वाय होनेसे पुनीत स्वविरोंमें गिनी जाती थी इन्हीं समयसे सर्वास्तिवादिकोंका मुख्य-स्वाय बन गई।

तृतीय संघीतिके समाप्त कर मोक्षाधिपुत्र तिरसके सत्ता अज्ञानकी अज्ञानतासे मिश्र मिश्र देशोंमें धर्म-प्रचारक लये। बह पहला अज्ञान था जब एक भारतीय धर्म संश्लेष-रूपमें भारतकी धीमासे बाहर प्रचारित होने लगा। बह प्रचारक वहाँ पञ्चममें बहन-राज्याओंके राज्यों (धीस मिश्र सिरिवा अथि देशों)में लये वहाँ उत्तरमें मध्य-एशिया तथा दक्षिणमें ताजिकी [ कंध ] और सुबर्ज-सूमी [ बर्म ] में भी पहुँचे। कंधमें अज्ञानके पुत्र तथा मोक्षाधिपुत्र तिरसके दिव्य 'मिश्रु मद्रैय' और उनकी सहोदरा 'अधिचर्म' लयी। कंधके राजा 'विचयविच तिरस' बौद्ध-धर्ममें दीक्षित हुये। कुछ ही दिनोंमें वहाँ की सारी अज्ञानता बौद्ध ही

गयी । आर्य-स्वबिरबाद्वय तभीसे ही बहो प्रचार रहा । बीचमें बारहवीं-तेरहवीं सताब्दियोंमें जब बर्मा और स्वाममें महापाम बौद्ध धर्म विकृत तथा अर्द्धरिक्त हो हास प्राप्त होने लगा तथा आर्य-स्वबिरबाद् बहो भी पहुँच गया । कर्कामें ही ईसाकी प्रथम सताब्दीमें सूत्र विनय और अभिषेक—तीनों पिटक ( त्रिपिटक ) को अवतक कंठस्थ पके भाते थे—लेखबद्द किये गये और यही आजकलका पाकि त्रिपिटक है ।

मौर्य-सम्राट् बौद्ध-धर्मपर अधिक अनुरक्त थे, इसलिये उनके समयमें अनेक पवित्र स्थानोंमें राजानों और धनिकोंने बड़े-बड़े स्तूप और संभाराम ( मठ ) बनवाये जिनमें मिथु मुक्त-पूर्वक रहकर धर्म-प्रचार किया करते थे । ईसा पूर्व दूसरी सताब्दीमें मायीके सेनापति पुष्यमित्रने अग्निम मौर्य-सम्राट्को मारकर अपने कुटुम्बशाक्य राज्य स्थापित किया । यह बना राजवंश राजनीतिक उपयोगिताके विचारसे ब्राह्मण-धर्मका पक्का अनुयायी और अग्राह्य धर्ममें हूँपी ना । सताब्दियोंसे परित्यक्त बहु-विक्रमव जन्मेव जाति पञ्च महाभाष्यकार पठन्यक्तिके पौरोहित्यमें फिरसे होने लगे । प्राणियोंके साहाय्यसे मर मनुस्मृति जैसे ग्रन्थोंकी रचनाका सूत्रपात हुआ । इसी समय महाभारतका प्रथम संस्करण हुआ तथा युत संस्कृत भाषाके पुनरुद्धारकी चेष्टा भी गयी । परिस्थितिके अनुसार न होनेसे घरे घरे बौद्ध लोग बौद्ध धर्मके केन्द्रोंको मगध और कोसलसे दूसरे देशोंमें हटाने पर मजबूर होने लगे । आर्य-स्वबिर बाद् मगधसे हटकर बिस्किाके समीप चैत्य-यर्बत ( वर्तमान 'साँची' ) पर चका गया, सर्वां स्थितबाद् मथुराके उरुमुक्त-यर्बत (= गोवर्धन ) चका गया । इसी तरह और निकषाँने भी अपने-अपने केन्द्रोंको जन्मत्र हटा दिया ।

स्वबिरबाद् सबसे पुराना निकषाव है और इसने पुरानी बातोंकी बड़ी कड़ाईसे सुरक्षित रखा । दूसरे निकषाँने देस काक और स्वकि आविके अनुसार अनेक परिवर्तन किये । अवतक त्रिपिटक मगधकी भाषामें ही ना, जो कि पूर्वी उचरप्रदेस तथा बिहारकी साधारण भाषा थी । सर्वांस्थितबादिबाँने मथुरा पहुँचकर अपने त्रिपिटकको प्राण्योंकी प्रसंसित संस्कृत-भाषामें कर दिया । इसी तरह महासंनिक कोकोचरबाद् जादि कितने ही और निकषाँने भी अपने पिटकोंको संस्कृतमें कर दिया । यह संस्कृत पाणिनीय संस्कृत न थी; बल्कि इसे गाबासंस्कृत कहते हैं ।

मौर्य-सम्राज्यके विघट हो जानेपर पश्चिमी भारतपर बचक राजा 'मिनाम्बर' ने कब्जा कर लिया । मिनाम्बरने अपनी राजधानी साकल्य ( वर्तमान 'साकलकोट' ) बनायी । उसके तथा उसके रसकोंके छत्रप मथुरा और उज्जैनमें रहकर शासन करने लगे । परम-राज्य अधिकांस बौद्ध थे; इसलिये उनके उज्जैनके छत्रप साँचीके स्वबिरबादिबाँपर तथा मथुराके छत्रप सर्वांस्थितबादिबाँपर बहुत स्नेह और अह्रा रकते थे । मथुरा उस समय एक छत्रप की राजधानी ही न थी बल्कि पूर और दक्षिणसे तक्षशिलाके बल्कि -पक्षपर व्यापारका एक सुसम्पन्न प्रभाव कम्प थी; इसलिये सर्वांस्थितबाद्के प्रचारमें बड़ी सहायक हुई । मगधके सर्वांस्थितबाद्से इसमें कुछ अन्तर हो चुका था, इसलिये यहाँका सर्वांस्थितबाद् आर्य-सर्वांस्थित-बाद्के नामसे प्रसिद्द हुआ ।

यबर्षोंको परास्तकर पृथिवी (शाही) ने पश्चिमी भारतपर कब्जा किया । इन्हींकी आज्ञा कुपाज की जिसमें प्रतापी सम्राट कबिष्क हुए । कबिष्ककी राजधानी पुरुषपुर (अपेक्षा नर) थी । उस समय सर्वास्तिवाद धम्मारमें पहुँच चुक्य था । कबिष्क स्वयं सर्वास्तिवाधियोंका अनुयायी था । इसीके समयमें महाकवि अश्वघोष और आचार्य बसुमित्र आदि पैदा हुए । उस समय धम्मारके सर्वास्तिवादमें—ओ मूक सर्वास्तिवाद कहा जाता था—कश्मीर और गान्धारके आचार्योंका मतभेद हो गया था । देवपुत्र कबिष्ककी सहायतासे बसुमित्र, अश्वघोष आदि अश्वघोषोंके सर्वास्तिवादी बौद्ध मिश्रणोंकी एक बड़ी सभा बुलायी । इस सभामें आपसके मतभेदोंको दूर करनेके किये उन्होंने अपने विपिरकपर 'विभाषा' नामकी टीकाके किये । विभाषा के अनुयायी होनेसे मूक-सर्वास्तिवादियोंका दूसरा नाम 'विभाषिक'-पड़ा । बौद्ध धर्ममें बुद्धों से मुक्ति वाली विधानके तीन शास्त्र माने गये हैं (१) जो सिद्ध स्वयं बुद्धविमुक्त होना चाहता है वह अपने अर्थाधिक मार्गपर आरुह हो शीघ्रमुक्त हो जाईएँ कहा जाता । (२) जो उससे कुछ अधिक परिश्रमके किये तैयार होता है वह शीघ्रमुक्त हो प्रत्येक-बुद्ध कहा जाता है । (३) जो धर्मका शीघ्रोंका मार्गदर्शक बननेके किये अपनी मुक्तिकी फिक्र न कर बहुत परिश्रम और बहुत समय बाद उस मार्गसे स्वयंप्राप्त विधानको प्राप्त होता उसे 'पुत्र' कहा जाता है । ये तीनों ही शास्त्र क्रमशः जाईएँ (अभावक) पाल प्रत्येक-पुत्र-नाम और पुत्र-नाम कहे जाते हैं । कुछ आचार्योंने पाकी वृ पाकोंकी अपेक्षा पुत्र-नामपर बड़ा जोर दिया और इसे महावाक्य कहा । इस तरह पीछे कुछ लोग दूसरे पाकोंको स्थापत्यम कइ केवक पुत्रपाल वा महावाक्यकी प्रशंसा करने लगे । वह समय रहे कि अद्वैतों निरूप्य तीनों पाकोंको मानते थे । उनका कहना था किसी बातका पुनरा मुमुक्षुकी अपनी स्थापतिक दृष्टिपर निर्भर है ।

इसकी प्रथम अताप्रीमें जिस समय विभाषिक-संप्रदाय उत्तरमें पढ़ता जा रहा था, उसी समय दक्षिणके विदर्भ [ वरार ] धर्ममें आचार्य नागासु न पैदा हुए । उन्होंने माध्यमिक या मध्यवाद दर्शनपर प्रवृत्त किये । काकास्तरमें महापाल आर माध्यमिक दर्शनके पौरसे मध्यवादो महापालसंप्रदाय कथ्य जिसके विपिरककी अपादकता समय-समयपर बने हुए अद्वैतादितिक संप्रदायमिता आदि ग्रन्थोंने पूरी की । चौथी अताप्रीमें पेशावरके आचार्य बसुबन्धुने बर्माधिकोंस कुछ मतभेद करके "अभिधर्मकोश" ग्रन्थ लिखा और उनके बने जाई 'असंग' विज्ञानवाद या योगाचार-संप्रदायके प्रवर्तक हुए । इस प्रकार चौथी अताप्री तक पौद्गोंके बर्माधिक सीधाम्भिक योगाचार और माध्यमिक, चार दार्शनिक संप्रदाय बन चुके थे । इनमें पहले दोषोंको माननेवाले तीनों पाकोंको मानते थे इसलिये उन्हें महावा विधोंक हीनवाक्य अनुयायी कहा; और बाकी दो सिद्ध पुत्र-नामकी को मानते थे; इसलिये उन्होंने अपनेको महावाक्य अनुयायी कइ ।

महावाकी पुत्रवाकके पृथक्-पृथक् ये दृष्टवा ही नहीं बरिन्क अपने अताप्रीमें थे बाकी वृ वाकोंको श्रुत-अवका कदमेंसे बाह्य न आते थे । पुत्रके अलौकिक चरित्र उन्हें बहुत उच्चपुत्र मान्य हुए, इसलिये उन्होंने महासाधिकी आर लोकोत्तापादिकोंकी बहुत-सी पाठों ले की । रमहर आर अनुप्य नामवाले बहुत-से पृथोंकी भी उन्होंने रचना की । पुत्रवाकपर अर्द्धी प्रकार

धास्य बुद्धत्वके अधिकारी प्राणीको बोधिसत्त्व कहा जाता है । महायानके सूत्रोंमें हर एकको बोधिसत्त्वके मार्गपरही चढ़नेके लिए बौर दिया गया है—हरएक को अपनी मुक्तिकी पर्वाह छोड़कर संसारके सभी प्राणियोंकी मुक्तिके लिए प्रयत्न करना चाहिये । बोधिसत्त्वोंकी महत्ता हरसानेके लिए जहाँ भवलोहितेश्वर मंत्रुषी आकाशगर्भ आदि सैकड़ों बोधिसत्त्वोंकी कल्पना की गयी वहीं सारिपुत्र मोग्गल्लन आदि अर्हत् (=मुक्त) सिद्धोंको न-मुक्त और बोधिसत्त्व बना दिया गया । सारांश यह कि जिस प्राचीन सूत्र आदि परम्पराको अठारहों निक्षय मानते आ रहे थे महायानियोंने उक्त समीको बोधिसत्त्व और बुद्ध बननेकी पुनर्में एकदम उच्चगममें कोई कसर न रखी ।

कमिष्कके समय अर्थात् बुद्धसे चार सदी बाद पहले-पहल बुद्धकी प्रतिमा ( मूर्ति ) बनायी गयी । महायानके प्रचारके साथ जहाँ बुद्ध-प्रतिमाओंकी पूजा-अर्चा बड़े ठाढ़-ठाढ़से होने लगी वहाँ सकड़ों बोधिसत्त्वोंकी भी प्रतिमाएँ बनने लगीं । इन बोधिसत्त्वोंको उन्हींने माध्यमोंके देवी-देवताओंका काम सीपा । उन्हींने ताता प्रज्ञापारमिता आदि अनेक देवियोंकी भी कल्पना की । जगह-जगह इन देवियों और बोधिसत्त्वोंके लिए बड़े-बड़े विज्ञाक मंदिर बन गये । उनके बहुतसे शोध आदि भी बनने लगे । इस बाइमें इन लोगोंने यह क्याक व किया कि हमारे इस काममें किसी प्राचीन परम्परा या भिक्षु-विषमग्र्य उद्भवक हाता है । जब किसीने पृथीक पेश की तो वह दिया—बिना-निबन्ध तुष्क स्वापके पीछे मरनेवाके हीनयानियोंके लिए है; सारी बुद्धिपाकी मुक्तिके लिए मरने-जीवनेके बोधिसत्त्वको इसकी बसी पाबन्दी नहीं हो सकती । उन्हींने हीनयानके सूत्रोंसे अधिक महात्म्यवाक अपने सूत्र बनाये । सैकड़ों बुद्धोंके सूत्रोंका पाठ उन्हीं नहीं हो सकता या इसलिये उन्हींने हरएक सूत्रकी प्रे-सीग पंक्तिमें छोटी-छोटी धारणी बसे ही बनायी जैसे मागधतका अतुःसोकी मागधत; पीठाकी सप्तसोकी गीता । इन्हीं धारणियोंके और संक्षिप्त करके मन्त्रोंकी सृष्टि हुई । इस प्रकार धारणियों बोधिसत्त्वों उनकी अनेक दिग्ग-वृत्तियों तथा प्राचीन-परम्परा और विदकोंकी निरसकोच की जाती उच्छ-पच्छसे उत्साहित हो गुप्तसाध्याम्के धारणिक काष्ठसं हर्षवर्षनके समपत्तक मंत्रुषी मूककल्प गुप्तसमाज और अचंचर आदि कितनेही तन्त्रोंकी सृष्टि की गई । पुराने निक्षयोंमें अपेक्षा-कृत सरकतासे अपनी मुक्तिके लिए अर्हंवाच और प्रत्येक-बुद्धयानका राज्य लुका रखा वा । महायानमें सबसे किए सुदुग्धर बुद्ध-नामको ही एक-मात्र राखा रखा । जागे चककर इस कविनाईको तुर करनेके लिए ही उन्हींने धारणियों बोधिसत्त्वोंकी पूजाओंका आविष्कार किया । इस प्रकार जब सहज विशाओंका मार्ग लुकने लगा, तब उसके आविष्कारकोंकी भी संख्या बढ़ने लगी । मंत्रुषी मूककल्पने तन्त्रोंके लिए राज्य लौक दिया । गुप्त-समाजने अपने भैरवीचक्रके जराब कीसंभोग तथा मन्त्रोधारणसं उभे और भी आसन कर दिया । यह मठ महायानके पीठरहीसे उत्पन्न हुआ किन्तु पहल इसका प्रचार सीतर-ही-सीतर होता रहा । भरवी-चक्रकी सभी कार्यवाहियाँ गुप्त रखी जाती थीं । मनेसाकीकीको कितनेही समपत्तक उम्मेदवारी करवी पदवी थी । फिर अनेक अभियेकों और परीक्षाओंके पाद वह समाजमें मिश्रणा जाता था । वह मंत्रयान (मूर्तयान 'वज्रयान) संस्थाप इस प्रकार सातवीं शताब्दी तक गुप्त रीतिसे चकता रहा । इसके अनुयायी बाहरसं

अपनेको महावानी ही कहते थे । महावानी भी अपना पूरक विभव-पिटक नहीं बना सके थे, इसीलिए उनके भिन्न लोग सर्वाधिकार आवृत्ति विद्यार्थियोंमें दीक्षा लेते थे । आठवीं शताब्दीमें भी जब कि वाक्या महावापक गढ़ भी वहाँके भिन्न सर्वाधिकार-विभवके अनुयायी थे और वहाँके भिन्न-भिन्न विभवमें सर्वाधिकारकी बोधिसत्त्वधर्ममें महावापकी और धैरवीधर्ममें ब्रह्मवापकी दीक्षा लेनी पड़ती थी ।

आठवीं शताब्दीमें एक प्रकारसे भारतके सभी बौद्ध-संप्रदाय ब्रह्मवाप गमित महावापके अनुयायी हो गये थे । बुद्धकी सीधी-सिधी शिक्षाओंसे उनका विश्वास बड़ बुद्ध या और वे मगधमन्त्र द्वारा लोकीतर कथाओंपर विश्वास करते थे । बाहरसे भिन्नके कपड़े पहननेपर भी भीतरसे वे गुह्यसमाजी थे । बड़े-बड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली कवि बाने वाग्य हो औरसी सिद्धोंमें शक्ति हो संध्या-माध्यमे निर्गुण गाव करते थे । आठवीं शताब्दीमें उड़ीसाके राजा इन्द्रभूति और उसके गुह्य सिद्ध अर्थात् ब्रह्म तथा दूसरे पंडित-सिद्ध विद्यार्थी ही मुक्तिदात्री 'प्रज्ञा' पुस्तकोंको ही मुक्तिदा उपाय और सरावको ही 'अमृत सिद्ध करनेमें अपनी परिश्रमाई और सिद्धाई खर्च कर रहे थे । आठवींसे बारहवीं शताब्दी तक ब्रह्मधर्म अस्तुतः ब्रह्मवाप या धैरवीधर्म का धर्म था । महावापने ही चारविंशों और पूजाओंसे विद्याओंको सुधम कर दिया था ब्रह्मवापने तो उसे एकधम सहज कर दिया, इसीलिए आगे चलकर ब्रह्मवाप सहजवाप भी कहा जाने लगा ।

ब्रह्मवापके विद्वान् प्रतिभाशाली कवि औरसी सिद्ध विद्वान् प्रकारसे रहा करते थे । कोई पनहीं बताना करता था, इसीलिए उसे पनहीपा कहते थे । कोई कर्मक छोड़े रहता था इसीलिए उसे कमरीपा कहते थे । कोई उमरू रखनेसे उमरूपा कहा जाता था । कोई ओखक रखनेसे ओखरीपा । वे लोग सरावमें मद्य कोपदीक्षा प्याका किं इन्द्रधाम या विक्रम अर्थात्में रहा करते थे । जब साधारणको जितना ही वे लोग चरकारते थे ब्रह्मवाप कोय इसके पीछे दीपते थे । लोग बोधिसत्त्व प्रतिमाओं तथा दूसरे देवताओंकी भक्ति इन सिद्धोंको अनुसृत चमत्कारों और दिव्य छत्रियोंके घनी समझते थे । वे लोग सुखमस्तुखक विद्यार्थी और धारावक उपभोग करते थे । राज्य अपनी कम्पाओंतकको इन्हें प्रदान करते थे । वह लोग श्रावक वा हेमादिग्मकी कुछ प्रक्रियाओंसे वाकिक थे । इसीके चलकर अपने मोके-भाके अनुयायियोंको कमी-कमी कोई चमत्कार दिखा देते थे, कधी-कधी हाथकी धकाई तथा इन्धेच-सुख अस्वष्ट वाक्योंसे ब्रह्मवाप अपनी भाक जमाते थे । इन पाँच शताब्दियोंमें धीरे-धीरे एक तरहसे सारी भारतीय जनता इनके चलनेमें पचकर काम-ध्वंसकी मध्य और मूढ़-विश्वासी बन गयी । राजा लोग जहाँ राज-रक्षाके लिए पकरने रहते थे वहाँ उसके लिए किसी सिद्धाचार्य तथा उनके सैकड़ों ताम्रिक अनुयायियोंकी भी एक बहु-म्यत्र साध्य पकरन राजा करते थे । देवमन्त्रियोंमें सरावर ही बलिपूजा चढ़ती रहती थी । काम सत्कार द्वारा बन्धुगर्ह दोषसे आद्यन्ते और दूसरे धर्मानुयायिवापे भी बहुत अंधमें इनका अनुकरण किया ।

भारतीय जनता जब इस प्रकार बुराचार और मूढ़-विश्वासरक पंक्रमें अंधकार हुनी हुई थी । आद्यन्त ही अतिमरुके विप-वीरको शतादिशोंतक जो अतिके दुकड़े-दुकड़े बरिधर,

१. देपो बही १२५-३ ४ । २. अचरन्त गहबवारक गुह्य सिद्धाचार्य अतिमवान्ध  
३. देपो बही ५ १५८ ।

और गृह-कण्ड पीड़ा कर चुके थे। सताधिपोंसे भ्रष्टासु राज्यों और पत्रिकोंसे चढ़ावा चढ़ाकर मठों और मंदिरोंमें अपार चप-नाशिक जमा कर ही थी। इसी समय पश्चिमसे मुसल-मानोंसे हमका किना। उन्होंने मंदिरोंकी अपार-सम्पत्तिको ही नहीं लुटा बल्कि नाशित दिव्य-शक्तिपोंके माफिक देव मूर्तियोंको भी चकमाचूर कर दिया। तांत्रिक क्रोध मत्र बकि और पुरस्कारका प्रबोध करते ही रह गये किन्तु उससे मुसलमानोंका कुछ नहीं बिगाड़ा। तेरहवीं शताब्दीके आरम्भ होते होते तुर्कोंने समस्त उत्तरी भारतको अपने हाथमें कर लिया। बिहारके पाण्ड्यसी राजाने राज्य-त्याग किये उदन्तपुरीमें एक तांत्रिक बिहार बनाया वा उसे मुहम्मद बिन्-बकितपारने सिर्फ़ दो सौ भूखसवारोंसे जीत लिया। नालन्दाकी बहुमुत शक्तिवाली तारा टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दी गयी। शार्ङ्गा और विजयसिन्हाके सैकड़ों तांत्रिक मिथु लकवारके काठ उतार दिये गये। यद्यपि इस युद्धमें अपार जन जनकी हानि हुई अपार ग्रन्थ-नाशिक भ्रमभ्रातृ हुई सैकड़ों कला कौशलके उत्कृष्ट नमूने बरकर दिये गये, तो भी इससे एक चापदा हुआ— लोगोंका आदरका न्यम हट गया।

बहुत दिनोंस बात बची भ्यती है कि 'शंकराचार्यके ही प्रत्ययसे बौद्ध भारतसे विकसक गये। शंकरने बौद्धोंको आकाशसे ही नहीं परास्त किया बल्कि उनकी आश्रामे राजा सुयम्बा आदिने हजारों बौद्धोंको समुद्रमें डुबो और लकवारके काठ उतारकर उबका संहार किया। वह कथायें सिर्फ़ कल्पनायें ही नहीं हैं बल्कि इनका सम्बन्ध आनन्दगिरि और माधवाचार्यकी "शंकर-विश्वरूप" पुस्तकोंसे है; इसीकिये संस्कृतज बिहान् तथा दूसरे सिद्धित जन भी इनपर विश्वास करते हैं, इन्हें पतिहासिक तथ्य समझते हैं। कुछ लोग इससे शंकरपर धार्मिक-असहिष्णुताका कर्कक जगता देखकर इसे माननेसे आनाकानी करते हैं; किन्तु, यदि वह सत्य है तो उसका अयक्यप न करना ही उचित है।

शंकरके काकके विषयमें विवाद है। कुछ लोग उन्हें विक्रमका समकालीन मानते हैं। Age of Shankar के कर्ता तथा पुराने उद्यके पत्रिकोंका बही मत है। कर्किक इतिहासज इसे नहीं मानते। वह कहते हैं— 'किक शंकरके सारीरक-भाष्यपर बाचस्पति मिश्रने "धामती टीका लिखी है और बाचस्पति मिश्रका समय ईसाकी नहीं शताब्दी उबके अपने ग्रन्थसे ही निमित्त है; इसकिये शंकरका समय नहीं शताब्दीसे पूर्व तो हो सकता है किन्तु शंकर कुमारिक-महसे पूर्वक नहीं हो सकते हैं। कुमारिक बौद्ध वैषाधिक धर्मधर्मिके समकालीन थे जो सातवीं शताब्दीमें हुए थे, इसकिये शंकर सातवीं शताब्दीक पहलके भी नहीं हो सकते। शंकर कुमारिकके समकालीन थे और दोनोंने एक दूसरेका साक्षात्कार किया वा वह बात हमें "दिव्यरूप"से माहसुस होती है। इनमें अन्तिम बातमें जहाँ तक उनके प्रयोगका सम्बन्ध है कोई पुष्टि नहीं मिलती। स्वेष चक (सातवीं शताब्दी)के पूर्व किसी ऐसे प्रबक बौद्ध विरोधी शाकाधी और शाकाधीय पता नहीं मिलता। यदि इत्या तो

१. "आसेतीराजुपाराज्जेबौद्धावाहृत्तककम् ।

न इति वा स इत्यनयो मृत्युविकल्पसाम्भूयः ॥ माधवीय शं दि १:१३ ॥

"(कुमारिक) महृपाचातुसारि-राजैव सुबन्धना

धर्महिणो बौद्ध विनाशिताः । शं दि विंदिमटीका १:१५ ॥



ऐसेन् चाह अवश्य उतका वर्णन करता । यदि यह कहा जाय कि संकराचार्य भारतके दक्षिणी छोरपर हुए थे और उनका कार्यक्षेत्र भी दक्षिण-भारत ही रहा होगा; इसकिय संभव है दक्षिण-भारतके बाह्योपर उपरोक्त धरणाचार हुए हों । क्योंकि यह भी बात ठीक नहीं बँचती; क्योंकि, छठी शताब्दीके बाद भी कर्नाटी और कावेरीपट्टणके रहस्येवाले आचार्य धर्मपाल आदि बौद्ध पाणि-ग्रन्थकार हुए हैं जिनकी कृतियाँ अब भी सिंहल आदि देशोंमें सुरक्षित हैं । सिंहलका इतिहास ग्रन्थ "महार्थस राजनीतिक इतिहासकी अपेक्षा धार्मिक इतिहासको अधिक महत्व देता है । केरक देस ( जहाँ संकराचार्य पैदा हुए ) आर श्रविष देश सिंहलक विद्वत्स समीप हैं । यदि पुनी कोई बात हुई होती, तो यह कभी संभव नहीं था कि 'महार्थस उतका कोई लिख न करता । बौद्ध ऐतिहासिकोंका लंकारक कल्पपर मौन रहना ही इस बातका काफी प्रमाण है कि य बदनायें बस्तुत हुई ही नहीं । कबिक रामानुज आदिक चरितोंमें भी मिश्रमतावकमिथकोंके साथ ऐसा ही बर्ताव देखकर तो भीर भी मन्नेह होने क्यथा है ।

बात अमक यह है । संकराचार्य दक्षिणमें एक प्रतिभासाकी पण्डित हुए । उन्होंने "सारीरक-भाष्य" ग्रन्थ लिखा । यद्यपि यह भाष्य एक नये बंगका था और उसमें कितने ही दार्शनिक सिद्धान्तोंपर बहस की गई थी तो भी विद्वानाग उचोचकर कुमारिक धर्मकीर्तिके पुगक सिधे यह कोई उतना ऊँचा ग्रन्थ न था । उत्तर भारतीयोंका चरक और श्रविष देशोंके साथ पक्षपात भी बहुत था । इस पक्षपातका हम क्यथा अनुमान कर सकते हैं यदि सातवीं शताब्दीके महाकवि बाणभट्टकी कादम्बरीक उस अंतको पढ़ें, जहाँ वह सचरोंके साथ किमी बंगतमें बस एक श्रविष काज्ञनका बर्णन करता है । बस्तुतः उत्तरी भारतकी पण्डित मण्डली जो उस समयकी दर क्यथ पंडित मंडली थी — संकरको आचार्य माननेके सिधे तबतक तैयार न हुईं कबतक उत्तरीय भारतमें दार्शनिकोंकी भूमि मिथिकाक अपन समयके अटितीय दार्शनिक सर्व शाध निष्पात बाचस्पति-मिथने सारीरक-भाष्यकी टीका "मामती" लिखकर शत्रुतर्भ भी न मूखनबाक तरह उनमेंसे निकक डक । बचार्थमें बाचस्पतिके कंधपर चढ़कर ही संकरका यह कीर्ति आर बचपन मिथ्य जो आज देगा जाता है । यदि मामती न लिखी गई होती तो शकर भाष्य कमीका उपेक्षित और बिलुप्त हो गया होता; और संकरक भारतमें आजक गौरव आर प्रभाषकी तो बात ही क्या ? बाचस्पतिने उत्तरी भारतकी पंडित मण्डलीक सामने संकरकी पक्षकत की । बाचस्पति मिथसे एक शताब्दी पूर्व बाल्याश्रममें आचार्य शान्तरक्षित हुए थे । इनका महान् दार्शनिक ग्रन्थ "तरक-संग्रह" संस्कृतमें उपलब्ध हाकर बचाराय प्रकाशित हा चुक है । इस ग्रन्थरकमें शान्तरक्षितने अपनसे पूर्वके पचासो दार्शनिकों आर द्वांस ग्रन्थोंक मिद्धान्त उद्घृत कर लखित किय है । यदि बाचस्पति मिथम पूर्व ही संकर अवनी बिहृता आर द्विगिबचम प्रसिद्ध हा चुके हाते ता कहीं क्यरल नहीं कि शान्तरक्षित उनका भरण न करत ।

कउ आर कहा जाता है, संकरन बौद्धोंका भारतम मार भगाया और दूमरी ओर हम उनके बाय गाव-देश (बिहार-बंगाल) में पामर्यदीय बौद्ध मतोंका प्रकण्ट प्रताप किया देगलें है; तथा उनी समय बज्जपुरी (बिहार शारीक)आर बिक्रमतिथ्य जने बाद्ध विधविद्यालयोंको

स्थापित होते देखते हैं । इसी समय भारतीय बौद्धोंको हम तिब्बतपर धर्मविषय करते भी देखते हैं । ११वीं सताब्दीमें जब कि उक्त पुस्तककाके अनुसार भारतमें कोई भी बौद्ध न रहना चाहिए, तब तिब्बतसे कितने ही बौद्ध भारतमें आते हैं; और वह सभी जगह बौद्ध और सिद्धुओंको पाते हैं । पाण्ड्य-काकके बुद्ध, बोधिसत्त्व और ताम्रिक देवी देवताओंकी गृहस्थों द्वारा कथित मूर्तियाँ उत्तरी-भारतके गाँवोंतकमें पाई जाती हैं । मगध, विशेषकर गण्डकिर्णमें तो साबद ही कोई गाँव होगा, जिसमें इस काककी मूर्तियाँ न मिलती हों ( गण्डकिर्णके ब्रह्मपाशाद् सब विबीजबदे कुछ गाँवोंमें इन मूर्तियोंकी भरमार है, जेसा जैजम आदि गाँवोंमें तो अनेक बुद्ध, तारा अथकोकितेश्वर आदिकी मूर्तियाँ उस समयके कुटिब्याछरोंमें "ये धर्मा हेतुपमवा" " इत्यादिसे अहित मिलती हैं ) । वह बतला रही है कि उस समय बौद्धोंको किसी ईश्वरनै मेतनाबूत्त न कर पाया था । वही बात सारे उत्तर भारतमें प्राप्त ताक-केकों और शिख-केकोंसे भी साख्य होती है । गौडनृपति तो मुसकमानोंके विहार-ब्रह्म विषय तक बौद्ध धर्म और काकके महाम् सरस्वक थे अन्तिस काक तक उबक ताक-यत्र बुद्ध भय बाकके प्रथम धर्मोपदेश-स्थान सुगदाव ( सारनाथ ) के अंत्य हो मूर्तोंके बीच रले काकसे अर्द्धकृत होते थे । वीज-देवके पश्चिममें कान्धकुम्भका राज्म था, जो कि यमुनासे गण्डक तक फैला हुआ था । वहाँके प्रजा-जम और नृपति-यजमें भी बौद्ध धर्म खूब संभावित था ।

इ बात कथ्यन्त्रके दादा गोविन्दचन्द्रके अंत्यन विहारके विषे पाँच गाँवोंके दाव-यत्र तथा कधी राती कुमारदेवीके बलवावे सारनाथके महाम् बौद्ध-मन्दिरमें साख्य होती है । गोविन्दचन्द्रके पोते कथ्यन्त्रकी एक प्रमुख राती बौद्धधर्माधिकारिणी थी जिसके किये किसी गई आपारमिताकी पुस्तक अब भी नेपाळ पर्वार पुस्तकालयमें मौजूद है । कबीजमें गह्वरारोंके आमकी कितनीही बौद्धमूर्तियाँ मिलती हैं जो आज किसी देवी-देवताके रूपमें पूजी जाती हैं ।

काकिशरके राजाओंके समयकी कभी महोबा आदिसे प्राप्त सिंहाण्ड अथकोकितेश्वर यद्विबी सुन्दर मूर्तियाँ बतला रही हैं कि तुकोंके आनेके समय तक तुम्हेंकथ्यन्त्रमें बौद्धोंकी प्रची संख्या थी । दक्षिण-भारतमें देवगिरि ( शीकटाबाद, बिजाम )के पासके एकोराके भय्य इरा-मासादोंमें भी कितनी ही बौद्ध गुहारों और मूर्तियाँ मन्कि-काफूरस कुछ ही पहले एककी कभी हुई हैं । वही बात नासिकके पाण्डवकेवीकी कुछ गुहारोंके विषयमें भी है । क्या इससे नहीं सिद्ध होता कि ईश्वर-द्वारा बौद्ध धर्मका पस-विर्वासन कल्पना माध है । सुद ईश्वरकी कल्पामूमि केरकसे बौद्धोंका प्रसिद्ध तंत्र-ग्रन्थ "मंजुष्री-मूळकल्प" संस्कृतमें सिका है, जिसे वही कियेन्त्रमते स्व महामहोपाध्याय गणपतिसारस्वतीने प्रकाशित कराया है । क्या इस ग्रन्थकी प्राप्ति इस बातको नहीं बतलाती कि सारे भारतस बौद्धोंका मिच्छाकथ्य तो अकग पुत्र केरकसे भी वह बहुत पीछे लुप्त हुए । ऐसी ही जार भी बहुत सी बरनाएँ और प्रमाण सब किये जा सकते हैं जिससे इतिहासकी उक्त श्रुती धारणा कथित हो जाती है ।

लेकिन प्रश्न होता है तुकोंमें तो बौद्धों और ब्राह्मणों दोनोंके ही मन्दिरोंको तोषा प्रोहितोंको मारा, फिर क्या बख्क है जो ब्राह्मण भारतमें अब भी हैं, जार बौद्ध न रहे ? यह यह है : प्रासमधर्ममें सुदरन भी धर्मक अगुध हो सकते थे बौद्धोंमें भिक्षुओंपर ही धर्मपचार और धार्मिक प्रणियोंकी रक्षाका भार था । भिक्षुकी अथन कथनों और मठोंके

निवाससे आसानीसे पहचाने जा सकते थे। बड़ी बगइ ई जो बौद्धमिथुनोंको तुर्कोंके अरमियस शासनके दिनोंमें रहना मुश्किल हो गया। प्राइमोंमें भी कदापि बाममार्गी थे; किन्तु सदा नहीं। बौद्धोंमें जो सबसे सय बलवाली थे। इनके मिथुनोंकी प्रतिष्ठा उनके सहाचार और विद्यापर नहीं बल्कि उनके तथा उनके मंत्रों और देवताओंकी अद्भुत शक्तियोंपर निर्भर थी। तुर्कोंकी लक्ष्मणोंने इन अद्भुत शक्तियोंका विनाश निवास दिया। जनता समझने लगी, हम धोखेमें थे। इसका एक यह हुआ कि जब बाद मिथुनोंने अपने दृष्ट मंत्रों और मन्त्रियोंको फिरस मरम्मत कराना चाहा तब उसके लिये उन्हें खपना नहीं मिला। बसुता, इन आचारहीन शरही मिथुनोंको उस समय—जब कि तुर्कोंके अत्याचारके अरम सोंयोंको एक एक पैसा बहूमूल्य माछम होता था—कान खपनोंकी पैसी सौपता? फल यह हुआ कि बौद्ध अपन दृष्ट धर्मस्थानोंकी मरम्मत करानेमें सफल न हो सके और इस प्रकार इनके मिथु अन्त हो गये। प्राइमोंमें यह बात न थी। उनमें सबसे-सब बाममार्गी न थे किन्तु ही सब ही अपनी विद्या और आचरणक कारण पूजे जाते थे। इसलिये उन्हें फिर अपने मन्त्रियोंको बनानेके लिये खपन मिला गये। बनारसके पास ही बाइकोंके अत्यन्त पवित्र तीर्थ-स्थान मन्त्रिपतन सुगदाब (बर्तमान सारबाय) है। वहाँकी सुगदाईसे माछम होता है कि कान्बकुअनेर गोविन्दचन्द्रकी रानी कुमारदेवीका बनबाया बिहार वहाँका सबसे विप्लवा बिहार था। तुर्कोंने जब इन मठ कर दिया तो फिर इसके पुनर्निर्माणकी कोशिश नहीं की गयी। इसके विपल बनारसमें विपलानक मन्त्रि, एकके बाद एक बार बार लगे सिरसे बना। सबसे पुण्य मन्त्रि विप्लेवरगणके पास था जहाँ जब मस्जिद है और शिखराधिको लोग जब भी उसमें एक नदाम जाते हैं। उसके दूरनेके बाद वहाँ बना जिसे आजकल आदिविप्लेवर कहते हैं। उसके भी तोष देवेपर शावबापीसे बना जिसका दूर हुआ भाव जब भी औरंगजेबकी मस्जिदके एक कोषमें मौजूद है। इन मन्त्रिके जब औरंगजेबने तुषबा दिया तब बर्तमान मन्त्रि बना। बाईहा उदन्तपुरी अतबब आदि बौद्ध पुनीठ स्थानोंमें भी इन बारहरी सताय्कीके बादकी इमारतें नहीं पाते। कामा तारानाथके इतिहाससे भी इन आन्ते हैं कि, बिहारोंके तोष लिये जानेपर उनके निवासी मिथु माय भागकर तिब्बत भेपाक तथा दूसरे देकोंकी ओर चले गये। मुसलमानोंकी भांति हिन्दुओंसे पूजक बौद्धोंकी अति ब थी। एक ही अति क्या एक ही करम ब्राह्मण और बौद्ध दोनों मंत्रोंके अनुपायी रहा करते थे। इसलिये अपने मिथुनोंके अभावमें उन्हें अपनी आर शौचकक लिये जहाँ उनके ब्राह्मण-धर्मों एक सम्बन्धी आकर्षण पैदा कर रहे थे वहाँ उनमें से कुछका पुनिबा आदि कियनी ही छोटी समझ आनेवाली आदिधर्मोंको मुसलमानोंकी ओरसे सब और प्रछोमब पेस किया जाता था जिसके कारण एक दो सताय्कीमें ही बौद्ध या तो ब्राह्मण धर्म बन गये या मुसलमान।

# विषय सूची

परिच्छेद	पृष्ठ	परिच्छेद	पृष्ठ
प्राक्-कवच		१२ कपिलवस्तु गमन	५१
भूमिका	--	नन्द भार राजकुली प्रमथ्या	५४
विषय-सूची		१३. अशुक्ल आदिनी प्रमथ्या	५५
प्रथम-खण्ड		१४ मलक-पान-सुत्त	५९
१ जन्म	१	१५ राजकुलोपाद्-सुत्त	६
बाह्य	४	१६ अनापदिहककी शीक्षा ---	६३
२ यौवन	६	अप्रपिह-याग्य ---	६६
गृह-त्याग	९	तिष्ठिर आतक	६८
प्रमथ्या प्राप्ति	११	जेठवन दान	७
३ तप	१२	भगवान् कुइके वपावास	७
कुइत्व प्राप्ति	१५	१७ वृष्णिज्यायिमग-सुत्त	७१
४ शोचिवृक्षके नीच	१६	( पञ्जापतीपञ्चञ्जा- ) सुत्त	७२
बारणसीको	१	( पञ्जापति ) सुत्त	७५
५. प्रथम धर्मोपदेश	२१	विष्णु धक्ति-प्रवर्तन	७६
धम्म-बह्म-पयत्तन-सुत्त /	२२	पमक-प्रतिहार्य	८१
बहाकी प्रमथ्या	२४	अकाम्यम अवरतण	८४
६ वारिका-सुत्त	२०	१९. ( अटिल-सुत्त )	८५
उपसम्पदा प्रकार --	२८	कुड मिश्र-विषय	८६
मज्झर्गीबोकी प्रमथ्या --		द्वितीय-खण्ड	
कास्यप-बसुभोकी --	२९	१ मिश्र-उपमे कइइ	९१
७. आविस्त-परियाय सुत्त	३९	( कोर्मवक ) सुत्त	९२
विज्जवारकी दीक्षा	३४	२. पारिलेयक-सुत्त ---	९७
८ सारिपुत्र मातृकपानकी प्रमथ्या	३६	२ पारिज्यकसे आबर्ती	१
९. महाकाम्यप-प्रमथ्या	३८	३ असिचंघक-सुत्त	१३
कस्तप-सुत्त	४३	( मिर्गट ) सुत्त	१५
१ महाकाम्यपानकी प्रमथ्या	४५	पिंड-सुत्त	१७
११ उपाध्याय आचार्य, शिष्यके कर्तव्य		४ मार्गद्विप-संबाह	१८
उपसम्पदा	४७	५. महासतिपट्टन-सुत्त --	११
		६ महानिदान-सुत्त	१९

परिच्छेद	पृष्ठ	परिच्छेद	पृष्ठ
७. ( छय )-सुत्त (पति पत्नी गुण)	१२८	महानाम-सुत्त	२३५
८ घेरंजक-सुत्त	१२८	कीटागिरि-सुत्त	२३८
घेरजामे बगवत्त	१३१	८ इत्यक-सुत्त	२४२
९ चरिका	१३१	सम्बक-सुत्त	२४३
( गायोग पिठकस ) सुत्त	१३५	महासुकुलुदायि-सुत्त	२४८
विद्याधीमे सुष्टिच-प्रश्नम्भा	१३५	सिगाळोपाद-सुत्त	२५०
१० सीह-सुत्त	१३८	९ चूम-सुकुळादायि-सुत्त	२६२
११ भद्रिबाने मंडक-बीया	१४१	१० विट्ठिबल-सुत्त	२६०
विद्यासा-जम्म	१४२	चूल-भस्सपुर-सुत्त	२६९
आरुणम पंच गारस-विधान ..	१४४	कळगळा-सुत्त	२७१
१२ पातलिय-सुत्त	१४५	११ इन्द्रिय-भाषना-सुत्त	२७२
बम्बुहीप	१४५	संचहुळ-सुत्त	२७४
१३ सेळ-सुत्त	१५	उदायि-सुत्त	२७५
१४ क्विप-अरिळका पाल	१०५	मेधिय-सुत्त	२७६
रोजमसक उपासक ..	"	१२ जीवक-चरित	२७८
कुशीनारसे बल्लमा	१५६	१३ पाराकिम (१) ..	२८८
बल्लमासे भावसी	१५७	त्रिचीवा-विषाच	२९२
१५ चूनहरियपद्दापम-सुत्त	१५८	पाराकिम (१) ..	२९३
१६ महाहरियपद्दापम-सुत्त	१६३	१४ पाराकिम (२)	२९६
१७ भस्सजायव-सुत्त	१६७	पाराकिम (४)	२९८
१८ महाराहुलायाद-सुत्त	१७२	चतुर्थ-सुण्ड	
अफनव-सुत्त	१७४	१ श्रीवर-विचर	३५
१९ पाहुपाद-सुत्त	१७५	विद्याया चरित	"
तृतीय-सुण्ड		विद्यायाको भाठ वर	३१३
१ तयिस-सुत्त	१८९	२ अयम्द-चरित	३१४
२ भम्पट-सुत्त	१९५	विचा-कोठ	३१६
३ बंकि सुत्त	२१	रोयि-मुभूयक बुद्ध ..	३१७
४ चूल-सुफगफर्णव-सुत्त ..	२१२	सुवाराण-विमान	
५ कुट्टवत्त-सुत्त	२१९	मालयक-सुत्त	३२८
६ साणर्दंड-सुत्त	२२४	३ इयदह-सुत्त	३१९
महासि-सुत्त	२२८	४ कमपुत्तिय-सुत्त	३२५
तयिस-वषटगात्त-सुत्त	२३१	सुवाराणम प्रथम बर्वावास	३२७
७ भरंड-सुत्त	२३३	रहुपाळ-सुत्त	३२९
दाक्य-क्रामिय विषाद	२३४	५ सुम्परी-सुत्त	३३८
		हसा गातमी चरित	३४

परिच्छेद	पृष्ठ	परिच्छेद	पृष्ठ
प्राज्ञान-धम्मिय-सुत्त ..	१७	पञ्चम-सुत्त	
७. भगुलिमाळ-सुत्त	१४१	१. मंगाम-सुत्त	४९
८. भद्रकवगा	१४१	कोसल-सुत्त	४१
९. सुमक-सुत्त	१९	याहीतिक-सुत्त	४११
दोण-सुत्त	१९१	बकम-सुत्त	४१३
सहस्समिक्कमुनी-सुत्त ..	१९२	२. उपाळि-सुत्त	४१४
सुन्दरिक माय्याज-सुत्त	१९४	३. भमयराजकुमार-सुत्त	४२४
मत्तशीप-सुत्त	१९९	४. सामञ्जफळ-सुत्त	४२९
ठवान-सुत्त	,	५. पतद्गगवगा	४३९
मल्लिका-सुत्त	१९८	६. धम्मवेतिय-सुत्त	४४
१०. सोण-सुत्त		७. सामगाम-सुत्त	४४०
सोण भगवान्के पत्त	१०	८. संगीतिपरियाय-सुत्त	४५२
अटिल-सुत्त	१०२	९. सुम्भ-सुत्त	४७७
पियजातिक-सुत्त	१०३	सारिपुत्र-परिनिर्वाण	"
पुण्ण-सुत्त	१०६	मोत्रस्वान-परिनिर्वाण	४८२
११. मन्नादव-सुत्त	१०७	उद्धाषेळ-सुत्त ..	४८३
सारिपुत्त-सुत्त	१०९	१०. महापरिनिर्वाण-सुत्त	४८४
धपति-सुत्त		११. प्रथम-संगीति	५११
(विसाखा)-सुत्त	१८९	१२. द्वितीय-संगीति	५१८
पञ्चमीय-सुत्त ..	,	१३. अशोक-राजा	,
मत्त-सुत्त ..	१८४	तृतीय-संगीति	५२८
१२. वाधि-राजकुमार-सुत्त	"	१४. स्वधिर बाद-पट्टवरा	५३६
१३. कण्वत्यलक-सुत्त	१९४	विदेसमें धर्म-प्रचार	"
स धमेदक-अंधक	१९८	छात्रपर्मी शीपमें महेन्द्र	५३७
( वषट्ठ )-सुत्त ---	१९९	त्रिपिटका लेख-बद्ध करना	५४
सच्चलिक-सुत्त	४९	परिक्षिप्त	
रेवदत्त-विश्राह	"	१. प्रथम-सूची	५४१
विसाखा सुत्त	४५	२. नामानुक्रमणी	५४२
अटिल-सुत्त	४६	३. धम्मदानुक्रमणी	५४३



प्रथम-खण्ड ।

आयु-चर्य १ ४३ ।

( ई पू ५६३-४८३ ) ।





## बुद्धचर्या

### प्रथम-खण्ड

( १ )

जन्म, बाल्य ( ई० पू० ५६३ )

१ जन्म—महापुराण में जन्म करनेके समयके विचार। फिर “(किम्) हीपमें यह विचारते हुए “बुद्ध जम्बूद्वीपमें ही जन्म लेते हैं” अतः (जम्बू) द्वीपका निजय किया। ‘जम्बूद्वीप’ ता इस प्रकार बोलन बड़ा है कौनसे प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते इस तरह प्रवेत्त वेलाते हुए मध्यदेशपर उनका दृष्टि पड़ी। “मध्यदेशकी पूर्वदिशामें कञ्जराज नामक कस्बा है उसके बाद बड़े बाक (के बज) हैं आर फिर आगे सीमान्त देश। मध्यमें सत्सलवती नामक नदी है उसके आगे सीमान्त (अप्रत्यन्त) देश है। दक्षिण दिशामें सेतकण्णिक नामक कस्बा है उसके बाद सीमान्त देश है। पश्चिम दिशामें धूम नामक आर्याणाका ग्राम है उसके बाद सीमान्तदेश है। उत्तर दिशामें उशीरवज्ज नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश है। यह (मध्यदेश) सम्बाईमें १ बाजन आर्द्ध में आई सा पोजन और घेरे में आ सा पोजन है। इसी प्रदेशमें बुद्ध, मन्वेक-बुद्ध, अग्र-आवक (अवान-विश्व) महाभावक अर्थात् महाभावक अकर्मती राजा तथा कृपरे महामतापी पृथ्वर्यशास्त्री अत्रिच आर्यण वैश्य पैदा होते हैं। इसीमें यह कपिलवस्तु नामक नगर है यहाँ ही मुझे जन्म ग्रहण करना है”—येना निजय किया। तब कुम्भका विचार करत हुये—“बुद्ध वैश्य वा ब्राह्म कुम्भमें उत्पन्न नहीं हुनै; लोकमान्य अत्रिच या आर्यण इसी सा कुम्भमें पैदा हावे है। जात्रक अत्रिचकुम्भ ही लोकमान्य है (इमल्पे) इसीमें जन्म खँगा। शुद्धोद्भूत नामक राजा मेरा पिता होगा।” फिर माताका विचार करत हुए—“बुद्धकी माता ब्राह्म और धराधी तो होती नहीं काका कल्पमें (दाय आदि) पारमितायें पूरा करने वाली आर जन्मसे ही अखण्ड पञ्चसीक (अपवाचार) रखने वाली होती है। यह महाभावा नामक देवी ऐसी (ही) है यही मेरी माता होगी। और इसकी जातु इस मास सात दिनकी होगी।

जब समय कपिलवस्तु नगरमें आप्तक उल्लस उन्नोपित हुआ था। लोग उत्सव मना रहे थे। पृथिवीके सात दिन पूर्वस ही महामाया देवीने मध्यरात-विरत मास राघस सुसोमित हो उत्पन्न मजली मातरें दिन प्रातः ही उठ मुगणित अकम् रत्नान कर

१ आतक (विदाय) अट्ट कथा। २ वर्तमान कंकडोक त्रिक मन्वाकपगना (विहार)। ३ वर्तमान सिलई नदी (हजारीबाग आर मेरणापुर त्रिक)। ४ हजारीबाग त्रिकमें काह रथान। ५ धानेतर, कर्नाक त्रिक। ६ हिमाकवका कोई पर्वत-भाग। ७ तिर्थराकोर, तालिहवा (नपवाक-तराई) से दो मील उत्तर।

प्यर त्यापक्य दाब दे सब कर्लकारोंसे विमूर्छित हो सुन्दर भाजन ग्रहण कर, उपोसव ( ब्रत ) क विषमोक्ते ग्रहण कर, सु कर्लकृत सक्तागारमें सुन्दर पकगपर छेद मित्रित अपरधा में यह स्वप्न देना —

बोधिसत्त्व श्वेत सुन्दर हाथी बन रूपरूपी मातृके समान सूँडमें श्वेत कमक सिन्धे मधुर नाह कर माताकी सप्पाको तीन बार प्रदक्षिणा कर दाहिनी बगस पीर कुक्षिमें प्रविष्ट हुये जान पड़े। इस प्रकार ( बोधिसत्त्वने ) उत्तरापाड नक्षत्रमें गर्भमें प्रवेश किया।

दुमरे दिन कागकर देवीसे इस स्वप्नको राजामे कहा। राजाने ६४ प्रधान ब्राह्मणोंको बुलाकर गोबर (=हरित) से छिपी धानकी बीकों आदिसे मङ्गलाचार की हुई भूमिपर महार्च आसन विहारा; वहाँ बैठे ब्राह्मणोंको पी मधु-सककरकी बनी सुन्दर खीरसे भरी धीर सोने चाँदीकी बाकिमोंसे ढँकी बाकिर्या परोसी ( तथा ) नये कपड़ों आर कपिक्य वी धादिस ठण्ठे सन्तर्पित किया। याद में—“स्वप्न ( क्य फल ) क्या होना”— पूछा। ब्राह्मणोंने कहा—“महाराज चिन्ता घ करे। आपकी देवीकी कुक्षिमें गर्भ धारण हुआ है; यह गर्भ बालक है कन्या नहीं। आपको पुत्र होगा। यह यदि घरमें रहा तो कच्छवर्ती राजा होगा; खीर यदि घर छोड़ परित्राजक (=साधु) हुआ तो कपाड बुका (=महाशानी) बुद्ध होगा।

बाधिसत्त्वके गर्भमें आनेके समयस ही बोधिसत्त्व और उनकी माताके उपद्रवके निवारण करबक सिन्धे चारों देवपुत्र (महाराज) हाथमें जह्ग किये पहरा बेश थे। (उसके बाद) बोधिसत्त्वकी माताको ( फिर ) पुरुषमें राग नहीं हुआ। यह बने काम आर बसको प्राप्त हो सुयी कच्छान्त-सरीर ( बनी रही )। बोधिसत्त्व जिस कुक्षिमें वास करत है यह कैल्पके गर्भके समान ( फिर ) दुमरे प्राणीके रहने वा उपभोग करनेके योग्य नहीं रहती। इसी क्षिप ( बोधिसत्त्वकी माता ) बोधिसत्त्वके जन्मके ( एक ) मण्डाद बादही मरकर तुष्टि कर्ममें जन्म ग्रहण करती है। जिस प्रकार दुमरी स्त्रिर्वाँ वस मामसे कम ( या ) अधिक में भी बटी या लर्छा भी प्रभव करती है; वैसा बोधिसत्त्व-माता नहीं ( करती )। यह इस मास बोधिसत्त्वको कोटमें धारण कर लगी ही मसव करती है। यह बाधिसत्त्वकी माता की बर्मता ( अविशेषता ) है।

महामाया वृषी भी पात्रमें तेलकी मूर्ति बोधिसत्त्वको इस मास कोटमें धारण कर गमके परिष्ण होने पर नैहर ( पीहर ) आगेकी इच्छासे दुखीदम महाराजसे बोसी—“देव ( अपने पिताके ) कुक्क देवदुह-नगरको जाका चाहती हूँ। राजा ने “जच्छक कह कपिजघरतुस देवदुह-नगरतकके मार्गका बराबर आर केस्य पूज पर पञ्च पताक्य धादि ये कर्लकृत करा देवीको सामैकी पाककीमें बैठ एक हजार अन्नपर तथा बहुत भारी परिज्य के साथ भेज दिया।

दाना नगरोंके बीचमें दानों ही नगरपालोंक्य तुष्टिदानी वन नामक एक मंगल

१ रमिन् देई मातववा स्थाव ( O T R. ) से प्रायः ८ मील पश्चिम नैपालकी तराईमें

शाक-वग था। उम समय ( बह बह ) मूक्य भकर शिवरक्षी सात्वाओं तक पाँतीये पूम्य हुआ था। पृष्ठों और दाम्पियोंपर पाँच रङ्गोंक झर-गम्य बार माना प्रकारक पछि-मंघ मजुर-म्यरम कृत्रन करते बिचर रहे ये। मारा लुगिदनी-यन चित्र (=बिचित्र)-अना वन अमा मतापी राजके मुमजित वाजार धैया ( जान पदता ) था। उम देव देवीक मनमें धाम-वममें सैर करेकी इच्छा हुई। अफसर मोग वर्षाका ल साम्-वममें प्रविष्ट हुए। बह एक मुन्दर सासके लीचे जा उम शाम ( अनाम् ) की दाम पकड़ना चाहती थी। साम्-मात्वा अथी तरह मिद्ध किये थे तकी इधीक मोरकी धौति मुक्कर देवीक हाथक पास भा गइ। उमने हाथ कल्प सात्वा पकड़ र्थ। उम समय उसे प्रसव-वेदना आरम्भ हुई। मोग ( इव-गिर ) कनात घेर ( म्बध ) अफा हो गये। साम्-मात्वा पकड़े लड़ेही लड़े उमे गर्भ उग्यात हा गवा। उम समय चारों गुह्यचित्त महाप्रह्ला मानका अम् ( हाथमें ) किये हुये पहुँचे बार प्राङ्गमें बाधिमत्त्वको भेकर माताक मगमुग्य रगकर बाले—“वृषी! मनुष्य होओ तुम्हें महाप्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ है।

त्रिम प्रकार कृपरे प्राणी माताकी कोरमे गन्ध मन्-विहित निरुन्मे ६ वम बोधिमत्त्व नहीं निरुन्मे। बोधिमत्त्व ता धर्मात्मन (=धाम-गरी) म उतरते धर्मकथिक (=धर्मोपदेशक) के समाव सीडीमे उतरते पुन्यके समान दानों हाथ बार दोनों पर पपारे मरे हुए ( मनुष्य ) के समान माताकी कोलक मरुमे बिलकुल अहित्य कर्षी-शुभक मुव निर्मल वस्त्रमें रक्ले मजि-रत्नक समाव बमकने हुये माताकी कोलमे निरुन्मे है।

तब चारो महाराजाओंने उन्हें मुषण आकमें मिय लड़े प्रह्लाओंके हाथम भकर कोमल सुगन्ध में ग्रहण किया। उमक हाथमे मनुष्याने कृष्णके करणमें ग्रहण किया। मनुष्योंके हाथम कृत्कर ( बोधिमत्त्वने ) पृथिवी पर लड़े हा पूव दिशा की ओर देव्य। उमके किण भनेक सह्य लड़बाक एक आँगव ( म ) हां गय। वहाँ इबना बार मनुष्य गंध-माम्य बाधिम पूत्र करत हुए बाले—“महापुन्य” वहाँ भाप अमा कोई मही इ बधा ता कहाँसे होगा। बाधिमत्त्वने चारों दिसायें चारा धनु (=अनल)-दिशायें नीच-रुपर क्सां ही दिशाओंक अकम्पेकन कर अपने र्जमा ( किर्माक ) न द्य; उत्तर दिशा ( की ओर ) मान पग गमत किया। ( उम समय ) महाप्रह्लाने इतच्छक्य पारण किया सुयामोंने ता-म्यत्रन ( पत्ना ) और अम्ब देवताभान राजाओंक मन्व ककुप-माण्ड हाथमें मिये। मातबें पगपर पहुच—“मैं ममारमें सर्वध हूँ” ( पुकय- ) पुंगवोंकी ह्म प्रथम बाणीक उच्चारण करते हुये मिहनाह किया।

त्रिम समय बोधिमत्त्व लुगिदनी वममें उत्पन्न हुये उमी समय राहुल माता, छत्र (=अम्क)-अमात्वा (=अफसर) काइ उदायी अमात्वा आजार्बीव गवरात्र कम्पक अयरात्र ‘महायोधि-शुक्ष, आर कजाने-भर चार धड़ उत्पन्न हुए। उममें ( कसम ) पदित्य गण्युति (= बोजम) पर, कृपरा जाये पात्रनपर सीमरा तीन गण्युतिपर आर बाबा एक

१ गह्य छत्र पगनी पाहुक भार पत्रम (=गना)। २ उत्तम जगिडा। ३. बोध-गवा त्रि गवा ( विदार ) का पीचक वृक्ष।

बोझवपर पैदा हुआ। वह सब एकही समय पैदा हुए। दोनों नगरोंके निवासी बोधिसत्वको लेकर कपिलवस्तुके सीरे।

१ वाक्य—उस समय शुद्धोदन महाराजके कुम्भामय आठ समाधिबोंवाके काष्ठ-वेतल नामक तापस्त्री भांजन करके देवताओंको देव उन्नी बाण मुन सीम ही देवकोरसे उतर राजमहलमें प्रवेश कर आसनपर असीत हो बोले—“महाराज, आपको पुत्र हुआ मैं उसे देखना चाहता हूँ।” राजा मुनकंकुट कुमारके मंगा तापसकी बन्ना कराने को ल गया। बोधिसत्वके चरण उठकर तापसकी जटमें जा छने। बोधिसत्वके किये: बन्नीप कोई नहीं है यदि जनजाकेमें बोधिसत्वका शिर तापसके चरणपर छन जाता तो तापसका शिर साठ टुकड़े हो जाता। तापसने—‘मुझे अपने को बिनष्ट करना नहीं चाहिये सोच आसबसे ठठ बोधिसत्वको हाथ छोड़ कर (प्रणम किया)। राजाने इस आश्चर्यको देख अपने पुत्रकी बन्ना की। तापसने बोधिसत्वके कण्ठ-मण्डपको देख “वह बुद्ध होगा या नहीं इस बातका विचार कर माच्छुम किया कि वह “अवश्य बुद्ध होगा।” “वह पुरुष अद्भुत है वह जान वह मुस्कुराया फिर (सोचने लगा) “इसके बुद्ध होने पर (मैं) इसे देख पाऊँगा या नहीं। सोचने ल (माच्छुम हुआ) ‘नहीं देख पाऊँगा’। ‘ऐसे अद्भुत पुरुषको बुद्ध होनेपर न देख पाऊँगा मेरा बड़ा दुर्भाग्य है—सोच रो उठा। कोगोंने जब देखा कि ‘हमारे जाण (अव्ययवावा) अमी हैंसे और फिर रोने लगा गये” तो उन्होंने पुछ—“क्यों मन्ते, हमारे आर्यपुत्रको कोई संकर तो नहीं होनेवाला है ?”

“इतको संकर नहीं है वह वितर्साय बुद्ध होंगे”।

‘तो (आप) क्यों रोते हैं ?’

“इस प्रकारके पुरुषको बुद्ध हुए नहीं एक सङ्गा मेरा बड़ा दुर्भाग्य है’ नहीं साथ अपने किये रो रहा हूँ”।

फिर “मेरे संबन्धिपरिसे कोई इस बुद्ध-हुआ देखेगा या नहीं”—विचार, अपने भांके मासकको इस बोध्य जान अपनी बहिकके कर जाकर (पुछ)—“तेरा पुत्र नाकक कहाँ है ?”

“वर मैं ही जानूँ !”।

“उसे बुझा”

(भांके) नाम जानेपर बोध्य—“तात महाराज शुद्धोदनके कुम्भमें पुत्र उत्पन्न हुआ है वह बुद्ध-भन्पुर है। पैंतीस वय वाद वह बुद्ध होगा, और ९ उसे देण पावेगा। आजही परिभाषक होय।”

वह—“मत्तासी करोड़ घनवाले कुम्भमें उत्पन्न बाकक हूँ (ककिन) मुझ माया अन्धमें नहीं लगा रहा है—साथ उनी समय बाजारमें बापाव (वरप्र) तथा मरुटीका पात्र मंगा फिर-राही मुँका कापाव बम्ब पहिन “जो कोकमें उत्तम पुरुष है उनीक पापपर

मेरी यह प्रव्रज्या है' यह (कहते) बोधिसत्त्वकी ओर अंजली जोड़ पाँचों अंगोंस बन्दना कर, पात्रको शोकधर्म रख और उसे बंधेपर क्लृप्त हिमालय में प्रवेश कर समन-धर्म (का पाठन) करके आया। फिर तपगतके परम-बोधि प्राप्त कर देनेपर पाम धा उनम 'माक-मान को मुन कर फिर हिमालयमें प्रविष्ट हो वहाँ अर्हत् पदको प्राप्त हुआ।

बोधिसत्त्वको पाँचवे दिन सिरसे गह्वर नामकरण करनेके किये राजाने राजमन्त्रको चारों प्रकारके गंधोंमें क्लिषवा कर खीरों सहित चार प्रकारके पुष्पोंको बिलेर, निर्जक नीर पकवा तीनों बेरके पारंगत एक-सी आठ आठनोंको निर्मजित कर राजमन्त्रमें बैठा सु मोचन करा महात् सत्कार कर "बोधिसत्त्व (का) मधिप्य बना है (कहते) क्लृप्त पुष्पवापा। उनमें क्लृप्त-जावनेवाके (= दीवज) आह्वान आठही थे—

राम बना मंत्री क्लृप्त कौटिलि मोज मुचाम।

द्विज सुपुत्र पर भंग-नुत आह्वं मत्र वधान ॥

गर्भधारणके दिन इन्हींमें ही सगुण विचार आ। उनमेंसे सातमे जो अंगुकिर्वा उठा जो प्रकारका मधिप्य कहा—“ऐसे क्लृप्तोंवाका (पुरुष) यदि गृहस्थ रहे तो क्लृप्तर्त्ता राजा होता है, और प्रव्रजित होने पर बुद्ध। उनमें सबसे कम-उमरके कौटिलिन्य (नामक) तरुण आह्वानमें बोधिसत्त्वके सुन्दर क्लृप्तोंको देखकर, एक अंगुली उठा कर कहा—“इसके घरमें रहनेका कोई कारण नहीं है जवहपही वह विद्वत-कपार बुद्ध होगा।

यह सातों आह्वान आबु पूर्ण होने पर, अपने कर्मानुसार (परबोध) सिधारे; क्लृप्तोंके कौटिलिन्य ही जीवित रहा। यह महासत्त्व (बोधिसत्त्व) की ओर प्यास रख गृह त्याग सम्मत्ता उदकेक वा “यह धूमि-भाग बना रमणीय है बोगार्थी कुल-पुत्रको बोगकेसिये यह उपयुक्त स्थान है (विचार) बही रहने क्या। (फिर) “अहापुरुष प्रव्रजित हो गय”—सुन उन (सात) आह्वानोंके क्लृप्तोंके पास आकर कहा—“सिद्धार्थ-कुमार प्रव्रजित हो गये यह विमंसाक बुद्ध होंगे। यदि तुम्हार पिता जीवित होते तो यह व्यय भर कोष प्रव्रजित हुये होते। यदि तुम चाहते हो तो आओ हम उस पुरुषक पीछे प्रव्रजित होंगे”। सब (क्लृप्तों) एकत्राय न हा सक। तीनमे प्रव्रज्या न प्रहन की। कौटिलिन्य आह्वानको सुनिवा बना कोष चार बनाने प्रव्रज्या प्रहय की। यह पाँचो जने (क्यों क्लृप्त) पंचवर्गीय स्थितियोंके नामसे प्रसिद्ध हुये।

राजाने बोधिसत्त्वके किये उत्तम कपवाकी सब दोपोंसे रहित बाह्रों नियुक्त की। बोधिसत्त्व धर्मत परिवार, तथा महती शोभा धार श्रीक साथ बहने लगे। एक दिन राजाके वहाँ (कल) बोलैक उत्तरक वा। उस (उत्तरक) दिन लोग सारे अगारक देवताओंके विभावकी भाँति अककृत करते थे। समी दास (अंगुलाम) कर्म-कर आदि नये बरत पहिब गंध-माका आदिसे विभूषित हो राजमहर्म्म इकरते होते थे। राजाकी केटीमें एक हजार एक बहते थे। उस दिन बँकोंकी कपहकी रस्सीकी ओरके साथ एक-कम-भाइसी एक थे। राजाका एक एक-सुवच-अटित वा। बँकोंकी सींगे और कोड़े भी सुवच-अचित थे। राजा बने इककके साथ पुत्रको भी ले वहाँ पहुँचा। अंतोंके पामही बहुत पत्तों तथा

प्रतीक्षायावात्म्य एक जामुन्का बृद्ध था। उसके नीचे ऊपर सुबल-तार-गर्भित विमान बँधवा कनातकी हीनारस पिरवा पहरा म्मावा कुमार का विद्याना विद्यवा मत्र अलकारोंस अन्वृत्त हो अमात्य-गण-सहित राजा हृष्ट जोतबक स्थानपर गया। बहा उसने सुबहक हम्का पकड़ा भार भगार्थोंने (अन्ध) एक-कम-आइमौ हसोंको (क्षेप) जातनवासोंने नूमरे हत्थोंको। हम् प्रकार हसोंको पकड़ कर, ये ह्पर-उपर जोतने श्यो। राजा हम् पारमे उम पार उस पार से हम् पार आता था। बहा बड़ी मीढ़ की तमाशा था। बोधिसत्त्वका मं कर बटी घादुर्वा म तमात्मा ऐक्येभिमिने कनातक मीतरस बाहर चली गइ। बोधिसत्त्व ह्पर ऊपर किम् को म वेक जस्तीमे उर आसन मार श्वास प्रश्वास को शोक प्रथम-ध्यानमें स्थित हो गये। घादुर्वा ने श्वाद्य-भोगमें कुछ वेर कर ही। समी बृद्धोंकी छाया धूम गई, किन्तु (बोधिसत्त्व-पाके) बृद्धकी छाया गोक ही लड़ी रही। "भार्यगुण जकेरु है" श्पाक कर जस्तीमे कनात उठकर नुमकर (बाहोंने) बोधिसत्त्वको विद्यानेपर आसन मारे बँट देला। उम पमकार (अतिहार्य) को वेग उन्होंने बाकर राजासे कहा—“वेक कुमार हम् तरह बय है समी पूर्णोंकी छाया कम्भी हो गई है। लेकिन जम्-बृद्धकी छाया गोमाकर ही लड़ी है। राजाने वेगने जा उम पमकारको इत नूमरी पार पुत्रकी वम्ता की।

×                      ×                      ×                      ×                      ×

( २ )

### यौवन, गृहत्याग ( ई० पृ०-५३१ )

१ यौवन—ज्मममः बोधिसत्त्व सोहह-वय के हुए। राजाने बोधिसत्त्वके बाधु तीनों बलुओंके किये तीव्र महस बनवा किये। उभरमें एक वा तक नूमरा भात तक तीसरा पौष मकका था। (बहाँ) ४४ हजार माज्ज-करने-वाकी मित्रपाक्य निकुत्त किया। बोधिसत्त्व जप्पराभोंके समुदायसे धिरे देवतामोंकी भौति अन्वृत्त बरिषोंसे परिबृत्त सिद्धों-द्वारा बजाये गये पाचोंस संबित महा-सम्पत्ति उपभोग करते हुए बलुओंके अनुकूल प्रासादा में विहार करते थे। राहुल-माता वेची ह्मकी जप्रमहिणी (अपहरानी) की।

हम् प्रकार महा-सम्पत्ति उपभोग करते हुए (बोधिसत्त्वके चारमें) जाति-भिराद्री में बचा डिधी—“सिद्धार्थ भोगोंमें ही किण्ट हा रही है किन्ती ककाको बही सीख रहे हैं बुद्ध जाने पर क्या करेंगे ?” राजाने बोधिसत्त्वको बुझकर कहा—“तात तेरी जातिवाके कहते हैं कि सिद्धार्थ किन्ती शिष्य-ककाको न सीखकर सिध भोगोंमें ही किण्ट हो रह है। तुम हम् विषय में क्या उचित समझते हो ?”

“बुद्ध ! मुज्ज शिष्य सीखनेको बही है। चारमें मेरा शिष्य इधनेककिये बँडोरा पिठया दे धजसे सातमें दिव जातिवाओंका (मैं अपना) शिष्य (करतब) शिष्यमडंगा।”

राजान वमाही किया। बोधिसत्वने भ-इण वैष वास-वेप जागने-वासे धनुषारियों का एकद्वित कर स्त्रियोंके सम्पत्तमें अन्य धनुषारियोंमें (भी) विधाप वारह प्रकारके पाप (अठस) जाति-विराद्री बालोंको दित्तकाये। तब उनके जातिवाल सन्मुख हुए।

एक दिन बोधिसत्वने बगीचा देखनेकी इच्छासे सारथीको रथ छोतनेका कहा। उसने 'अय्य कइ महार्थ उत्तम रथका सब अलङ्कारोंग अलङ्कृत कर इवेत कमलपत्रके रंगक चार मङ्गक सिन्धु-देशीय (घोड़ों) को जोत बोधिसत्वको सूचना ही। वापिसत्व देव विमान-सादस रथ पर चढकर बगीचेकी ओर चले। देवताजाने (साचा) सिद्धार्थबुमारके बुद्धत्व प्राप्तिका समय समीप है इसे पूर्व-दाकुन दित्तकामन चाहिये; भार एक देव-युत्रको जरासे जर्जरित दृष्टे-दृष्ट पके-केस उभे-मुके-हुण-शरीर हायमें लम्बी किये काँपते हुए दित्तकाया—'उम सारथी और बोधिसत्व ही बन्ने थ। तब बोधिसत्वने सारथीय पूछ—'साम्य यह कथन पुष्ट है इसके केस भी भारोंक समान नहीं हैं?' सारथीका उत्तर था—'भइो! धिन्मर है कम्मको जहाँ कम्म-सन्ने-वाकको (पेमा) बुद्धाया हो इत्यादि कह बहाँम काह महकमें चले गये। राजाने जन्दी लौट आनेका कारण पूछ। बड़े आश्चर्य देखता सुन (राजाने) मेरा सर्वनाश मत करो जन्दी ही पुष्ट किये घाटक तैबार करा विममें भोग भोगते हुए उभे गृह-न्याय याद् न आयाग' यह कह (धर) बहाकर चारों दिशाओंमें अथे बाजलतक पहरा रत्न दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्व उसी प्रकार बगीचे जाते हुये देवताओं द्वारा रचित रांगी पुष्पको दत्त पहिलेकी मूर्ति पूछ शोकाकुल इन्द्रपम महकमें आय। राजाने सुन पहल की मूर्ति चारों ओर पीन योजनतक पहरा रत्न दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्व उसी प्रकार उद्यान जाते हुये देवताओं-द्वारा रचित मूलककी देव पहिलेकी मूर्ति पूछ उद्विग्न-इन्द्रप महकमें लौट आये। राजाने सुन पहिलेकी मूर्ति चारों ओर एक योजनतक पहरा रत्न दिया।

फिर एक दिन बोधिसत्वने उद्यान जाते हुये देवताओं-द्वारा रचित मूर्ती प्रकार पहिले मूर्ती प्रकार (बीचरम) ईक एक प्रमजित (=संन्यासी) को दूरकर सारथीय पूछ—'सौम्य! यह काल है? सारथीने देवताओंकी प्रणाम—'देव! यह प्रमजित है कइ संन्यासियाक गुण बन न किये। बोधिसत्वक प्रमज्यामें रुचि हुई। वह उस दिन उद्यानको गये। (बहाँ पर) 'दीर्घ मालक कहत हैं—'चारों शकुमाका एकही दिन देव कर गये।'

बहाँ दिव भर एककर सुन्दर पुष्करिणीमें स्नानकर सूत्रालके समय सुन्दर सिल-पद पर जपनेका आशुपित करानेकेलिये बँडे। जिन समय उनक परिचारक नामा रत्न कुशल नामा मूर्तिके आशुपज माका सुगन्धि उबरत लेकर चारों ओरसे घर कर गये हुए थ उमा समय इन्द्रका अत्यन्त गर्म हा गया। उसने 'कथन सुने हम सिद्धासन उतारना चाहता है नाचते हुए बोधिसत्वक अलङ्कृत हाक काक दत्त त्रिवक्त्रमाको बुलाकर कहा—

१ दीर्घ-निजायके वचन करने वाले पुरान आचार्योंको हीय पापक कहा जाता था।



‘साम्प्र विरवर्द्धमा ! सिद्धार्थकुमार आज आधी रातके समय महाभिनिष्कमन (=गृह-त्याग) करेंगे। यह उन्का अन्तिम स्वर है। उचानमें जाकर महागुरुपको दिव्य अर्घ्यकारोंस अर्घ्यकृत करो।’

उसने अचक्षु कह, वेद-कक्षसे उसी क्षण जाकर, बोधिसत्वके जामा-भाऊ क हाथसे बैठवाया हुआ छेकेलिया। बोधिसत्व उसके हाथके स्पर्शसे ही जान गये कि वह मनुष्य नहीं है कोई देव-गुण है। पगड़ीसे शिरको ढेकित करते ही शिरमें मुकुटके रत्नोंकी भाँति एक सहस्र बुझाके उत्पन्न हो गये फिर बाँधनेपर वस सहस्र इस प्रकार वस धार बैठने पर वस सहस्र बुझाके उत्पन्न हुये। शिर छोड़्य और बुझाके बहुत इसकी संख्या न होनी चाहिये ( क्योंकि ) उन्में सबसे बड़ा बुझाका स्थाना-रुताके फूलके बराबर था; (आर) दूसरे तो कुमुम्बुक पुष्पके बराबर ही थ। बोधिसत्वका शिर किन्तु-बुल्ल कुम्पक फूलके समान था। सब जामूपजासे आधुषित हो ब्राह्मणोंके ‘जव हो’ आदि बचनों सूतमागधोंके नामा प्रकारक मंगल-बचनों तथा स्तुति-शोषोंस सत्कृत हो ( बोधिसत्व ) सर्वाङ्गार-विभूषित उत्तम रथपर आरुढ़ हुये।

उसी समय राहुद्ध-माताने पुत्र प्रसव किया यह सुब सुन्दोदनने उनको शुभ-समाचार सुवानेको हुकुम दिया। बोधिसत्वने उसे सुनकर कहा “राहु वैदा हुआ कम्बल पैदा हुआ”। राजाने पुत्रने क्या कहा पूछ कहा—“अबसे मेरे पीतेका नाम राहुद्ध-कुमार हो।

बोधिसत्व अ उरधपर आरुढ़ हो बड़े भारी बस अतिमनोरस सोमा तथा सीमान्के साथ बगरमें प्रविष्ट हुये। उस समय अडेपर बैठी कुरागौतमी नामक क्षत्रिय-कन्याने बगरी परिक्रमा करते हुये बोधि-सत्वकी रूप-शोभाको देखकर बहुत ही प्रसन्नता आर हृष सं कहा—

परम शीत माता सोई, परम शीत पितु सोथ ।

परम शीत नारी सोई जामु पती अस होथ ॥

बोधिसत्वने यह सुना तो सोचा—“यह कह रही है कि इस प्रकारके स्वरूपको बलते माताका हृष परम शीत होता है पिताका हृष परम-शीत होता है पत्नीका हृष परम शीत होता है।” किन्तुके शीत होनेपर हृष परम-शीत होता है ? तब ( रागादि ) मन्मसे विरक्त-हृष बोधिसत्वको क्याक जाया। राग-क्षी अम्बिके शीत होनेपर हृष-अम्बि शीत हो जाती है। हृष-अम्बिके शीत होनेपर मोह-अम्बि शीत होती है। मोह-अम्बिके शीत होनेपर अस्मिमात्र अक्षि उपशीत होते हैं। अस्मिमात्र अक्षि समी मर्षके उपशान्त होनेपर ( मनुष्य ) परम शीत होता है। यह मुझे मित-बचन सुना रही है। मैं निर्वानको हूँ बताना फिर रहा हूँ। आज ही मुझे गृह-वास छोड़ निष्कलक प्रव्रजित हो निवृत्तकी आरम्भ क्यात चाहिये। “यह इसकी गुरु-वृत्तिना होगी”—यह कह एक काकाका मोठीका हार अपने गलेसे उतार कुरागौतमीके पास भेज दिया। यह बड़ी प्रसन्न हुई—सिद्धार्थ-कुमारने मेरे मनमें अँसकर भेंट भेजी है।

२. गृहत्याग—बोधिसत्त्व बड़े ही श्री-सौभाग्यके साथ अपने महम्ममें का सुन्दर पर्छेगपर खड़े रहे। उसी समय सभी अर्थकारोंमें विभूषित मूल्य गीत अत्रिमें दृष्ट देवकन्या समान कर्तीव सुन्दर स्त्रियोंने अनेक प्रकारके बाघोंको डेकर (कुमारको) चुस करनेके किये मूल्य गीत और बाघ आरम्भ किया। बोधिसत्त्व (रागादि) मर्कोंसे विरक्त चित्त होनेके कारण मूल्य अत्रिमें न रत हो घोड़ी ही शेरमें सो गये। उन स्त्रियोंने भी सोचा—“किम्के किये हम नाच अत्रि करती हैं वह ही सो गया अब (हम) क्यों तककीक करें” (हमकिये वह भी) बाघोंको (साब) किये ही सो गई। उस समय सुगन्धित-लेक-पूय प्रदीप बल रहा था। बोधिसत्त्वने आगकर पर्छेगपर आसन मार बाघोंको किये सोई उन स्त्रियोंको देखा। (उनमें) किन्ही के मुँहने कक निकक रहा था किन्ही का शरीर कारसे मी ग गया था कोई दूँत करकक रही थी कोई बरती रही थी किन्ही के मुँह सुके हुये थे किन्ही के वस्त्र हरे होनेसे अति वृषोत्पादक गुण-अपन दिखाई दे रहे थे। उन (स्त्रियों) के इव विकारोंको देकर (वे) और भी रव हो कामनाओंसे विरक्त हुये। उन्हें वह सु-अककूत इन्द्र-अवम-सरस महामभव मइठी हुईं आना प्रकरकी कासोंसे पूज कच्चे समधानकी मीति साक्ष्य होता था। तीनों ही संसार उकते हुये धरकी तरह दिखाई पड़ रहे थे। ‘हा !! कइ !! हा !! शोक !!!’ यह आह निकक रही थी। (उस समय) प्रज्ज्याककिये उनका चित्त अत्यन्त आतुर हा उर। ‘आज ही मुझे महाभिमिच्छमम (=पृह-त्याग) करना है’ यह सोच पर्छेगसे उतर द्वारके पास जाके पुत्र—‘वहाँ कीव है ?’

उम्मार (=अयोधी) में शिर रकाकर सोये हुये छजने कहा—‘आर्यपुत्र ! मैं झुन्क हूँ ।

‘मैं आज महाभिमिच्छमम करना चाहता हूँ मेरे किये एक घोषा तम्मार करो’ ।

‘अच्छा बंध ! कइ, उसने बोदेका सामान के बोधसारमें सुगन्धित लेकके बरुते वदीपी (के प्रकष) में बेकनुदे वाले रोधमी चँदुके नीचे सुन्दर स्थानपर कड़े अच-राज कन्वकको देखा। वह सोच कि आज मुझे इसे ही सज्जना है उसने कंषकको सजित किया। सात्र सज्जये बाते समय (कन्वक) ने सोचा—(आजका) वह सात्र बहुत कहा है अन्य दिनोंके वसीचा अत्रि जाने की मीति बही है। आज आर्यपुत्र महाभिमिच्छममके इच्छुक होंगे। इमकिये प्रसन्न मन हो जोरसे दिनदिनाया। वह सम्य सारे नगरमें घेक जाता किन्तु देवताओंने उस शब्दको रोकर किसीको न सुनने दिया।

बोधिसत्त्वने झुन्कको (तो) उबर मेजा (और न्यथ) पुत्रको देवता जाहा। फिर अपने आसकको छोड़ राहुक-भाठाके पास-स्थान की जोर का शपनाधारका द्वार खोला। उस समय धरके भीतर सुगन्धित-लेकके प्रदीप बल रहे थे। राहुक-भाठा कैक चमैवी अत्रि पूर्यकी अम्मन (=मर्गों) भर बिलारी धरवा पर पुत्रके मन्क पर हाव रखे सो रही थी। बोधिसत्त्वने देहकीमें रैर रक कड़े कड़े देकर सोचा—‘यदि मैं देवीके हावको इटाकर अपने पुत्रको प्रहण कर्दँगा तो देवी जग आपगी धीर भरे गमनमें विज्र होगा। पुत्र (हानैक पचात्) आकर ही पुत्रको देवँगा’ इमकिये महम्मने उतर आये। आठकटुकपामें

को 'उस समय राहुल कुमार एक सप्ताह के कड़ा है वह नृसरी बहुत धार्मिक नहीं है। इतकिये यहाँ वही समझना चाहिये।

इस प्रकार बाधिसत्त्वने महम्म उतरकर धाड़के पास जाकर कहा—'तान ! कम्बक ! आज तु मुझे एक रात तार दे मैं तारी महापताम बुद्ध होकर देवताओं सहित मारे कोकको लाऊँगा। फिर कूरकर कम्बककी पीठपर सवार हुब। कम्बक गद्गले मऊर (पूठ तक) 14 हाथ लम्बा था बसरी वह महाकाम्य बुद्ध-वेग-मग्न आर पुकी शंकाकी भावि सर्वज्ञेय (भी) था। वह बहि द्विद्विधाता यो पर परलयाता ता (पाप्) सारे नगरमें फैल जाता। इसकिये देवताओंने अपने प्रतापसे (पमा किया) जियमें कि कोई उसे न सुने, (आर) द्विद्विधातक शत्रुका रोक भी दिया। देवताओंने उसकी टापोंका अपने हाथोंपर ही रोक लिया। बाधिसत्त्व अरुण-पीठपर आकरहा उम्बकका उसकी पूँठ पकड़ा थाही रातके समय महाशरक समीप पहुँचे। उस समय राज्यमें वह साध कि कहीं बाधिसत्त्व किस किमी समय नगर-शरके प्राकर (बाहर) न निकल जायें, वहाँके दोनों कपाटोंमें से प्रककके एक एक हजार मनुष्यों द्वारा लुक्ने सपक बनबाया था। बाधिसत्त्व महाकम-सम्पन्न हाथीकी गिबतीमें हजार-करोड़ हाथीके बछको चारम करते थे। आर पुकरके हिसाबसे दम-हजार-करोड़ पुरुषोंका बल। उम्बोंने साध—'यदि द्वार न लुक्ता तो आज मैं कम्बककी पीठपर बैठे उसकी पूँठ पकड़कर कदके लुन्दक साधरी उसको बनेने देवाकर अरुण हाथ डँके प्राकरको कूरकर पार करूँगा।

लुन्दकने भी सोचा—'यदि द्वार न लुक्ता तो मैं आर्यपुत्रको कँचे पर बटा कम्बकको सहिते हाथसे बगळमें देवा प्राकर कोई लाऊँगा। कम्बकने भी सोचा—'यदि द्वार नहीं लुक्ता तो मैं अपने स्वामीका पीठपर बैसैही बैठे पूँठ पकड़कर करके लुन्दकने साधरी प्राकरको सौधकर पार करूँगा। यदि द्वार न लुक्ता तो तीनोंमेंसे कोई एक ऊपर-साधे अनुमार करता केकिन द्वारमें रहसैबाके देवताने द्वार खोल दिया।

उसी समय बाधिसत्त्वका (बापस) काटनेके विचारसे आकाशमें लई मारने कहा—'मार्थ ! मत निकको। आजसे सातवें दिन तुम्हारे किये 'बद्ध-रथ' प्रादुर्भूत होगा। जो हजार छोटे द्वीपों सहित चारों महाद्वीपोंपर राज्य करोगे। बीठे माप ।'

"तुम कीव हो ?"

"मैं बराचर्ती हूँ ।"

मार ! मैं भी अपने बद्ध-रथके प्रादुर्भावको जानता हूँ, केकिन मुझे राज्यसे कोई काम नहीं। मैं तो साहसिक कोक प्रादुर्भावको उद्यत कर बुद्ध बनूँगा ।'

"आजसे सब कमी कामगारसंख्या वितर्क प्रोहसंख्या वितर्क वा हिसासंख्या

१ देवता अपने समानबाकोंको माप (= मारिस) कदकर पुकारते हैं। २. बद्धवर्तीके विभिन्नका अनुभव। ३. देवताभाष्य एक मनुष्य। ४. एक महापुत्रको कोक प्रादु कहते हैं।

चित्तमें तुम्हारे चित्तमें पैदा होगा उस समय मैं तुम्हें समझूँगा' यह कहकर मारने मीका ठाकने, छापाकी भाँति करा मी बलग न होते हुने पीठा करना शुरू किया।

बोधिसत्त्व मी हाथमें आये अरुणवर्ती-राज्यको पृथ्वी भाँति फेंककर कामनारहित (हो) बड़े सम्मान-पूर्वक नगरमें निकले (केवल उम) आयाकी पुर्णिमाको उत्तरायाह महान्नमें फिर नगर देखनेकी इच्छा हुई। चित्तमें ऐसा विचार उत्पन्न होते ही महापृथ्वी कुम्हारके, चक्रेकी भाँति कल्पित हुई (मात्रो यह कहते)—“महापुत्र! तने कारकर देखनेका काम कमी नहीं किया है।” बोधिसत्त्व नगरकी ओर मुँहकर नगरको देखते हुए 'उस भूमिमें "कन्यक-नियतन-वैद्य न्याय शिक्षा गंतव्य मार्गकी ओर कथकअ मुँह केर चल दिये। उस समय देवताओंने उनके सम्मुख साठ हजार पीछे साठहजार दाहिनी तरफ साठहजार और बाई तरफ मी साठहजार मसाक चारण किये। दूसरे देवता नाग सुपर्ण (न्याय) आदि दिव्य गण साका भूर्ण भूपसे पूजा करते चल रहे थे। धने मेघोंकी वृष्टिके समय (बरसती) धाराओंकी भाँति पारिजात-पुष्प मन्थार-पुष्प (की वृष्टिने) धाकधा आच्छादित हो गया। उस समय दिव्य संगीत हो रहे थे। चारों ओर जाठ प्रकारके साठ प्रकारके अश्वत्थ-काष्ठ बाज बज रहे थे। समुद्रके उत्तरमें मेघ-गर्जन-अकधी भाँति युगान्वरके कुम्भमें भागर-निर्घोषककी भाँति (सम्) हो रहा था। हम भी भार सीमा के साथ जाती हुए बोधिसत्त्व पृथ्वी रत्तमें तीन राज्यों को पार कर, तीस योजन पार अनोमा नामक नदीके तटपर आ पहुँचे।

बोधिसत्त्वने नदीके किनारे जाड़े हो उम्कने पूछ—

‘यह कौसमी नदी है ?’

“दय ! अचाना है।

“हमारी मी प्रव्रज्या अनोमा होगी यह कह पृथ्वीस रणकर घोड़ेको इतारा किया। घोड़ा छल्लांग मारकर जाठ अयम<sup>१</sup> चाही नदीके त्वरं तर पर आ गया हुआ। बोधिसत्त्वने घोड़ेकी पीठने उत्तर कपहके रेशम कसे (बर्म) बासुअ-तटपर जाड़ेहो उम्कको कहा—‘साम्ब ! उम्क ! तू मेरे आभूषण तथा कन्यकका लेकर आ मैं प्रव्रजित होऊँगा।

“देव ! मैं भी प्रव्रजित होऊँगा।”

बोधिसत्त्वने तीन बार 'तुसे प्रव्रज्या नहीं मिल सकती (कौंद) आ' कहकर उम आसन भार कन्यकको दे दिया। फिर “यह मरे केश अमण (= संन्यासी) लोगोंके बोध्य नहीं है। बोधिसत्त्वके केशको काटने काकक दूसरा कोई नहीं है इमकिये अपनेही केशगम इन्हें काटूँ”—सोच दाहिने हाथमें ठकवार ले बायें हाथमें मौर-महित शूरेकी कट शक्य। केश सिक्क दो अंगुलके होकर, दाहिनी ओरने भूम (प्रक्षिप्ता क्रममें) सिरमें लिपट गये। किन्तुगी भर उमका बही परिमाण रहा। मूँछ (दाही) मी उसके अनुमार ही रही। फिर सिर-दाही मुकानेका काम बही पड़ा। बोधिसत्त्वने मौर-महित शूराको

१ शास्त्र केवल भार राम-ग्राम (?)। २ आमी नदी (?) जि गोरक्षपुर।

केकर—‘परि मैं बुद्ध होऊँ, तो यह आकाशमें उठे, भूमिपर न गिरे’ सोच (उसे) आकाशमें चँक दिया। वह अश्वमेध-वेहन बोजनभर (ऊपर) जाकर आकाशमें उठता। शक देवराजने दिव्य-दृष्टिसे देखा (उसे) उपबुद्ध रत्नमन करण्डमें ग्रहण कर (उस पर) त्रायकिंश (स्वर्ग) लोकमें बुद्धामङ्गि-चैत्यकी स्थापना की—

छेदि मडर बर-गन्ध-मुठ गर-बर फेंकु अकासु ।  
सहस्र-नवन वासन सिराहिं, कनक पेटारी साहु ॥

फिर बोधिसत्वने सोचा—‘यह कारीके बने बस्य मिश्रके योग्य नहीं हैं। तब कारमप बुद्धके समबके हुनके पुराने मित्र घटिकार महाब्रह्मने मित्र-भावसे सोचा—‘आज मेरे मित्रने महाभित्तिज्जमन किया है। उसके लिये अमान (=मिश्र) के समान छे करूँ।’

पात्र तीन-बीचर सुई, धूरा बन्ध (जान) ।  
कक-आका आदहु इहे मिश्रुन केर समान ॥

(उसने) यह आठ अमर्षोंके परिष्कार (=समान) (बाधितत्वको) प्रदान किये। बोधिसत्वने उक्त परिष्कारके रूपको चारम कर अन्वृत्तको प्रेरित किया—

‘अन्वृत्त ! मेरी बातसे माता पिताको आरोग्य करना। अन्वृत्त बोधिसत्वकी बन्धा तथा मन्त्रिण्य कर चलय गया। अन्वृत्त अज्ञा अज्ञा अन्वृत्तके साथ बाधितत्वकी बातको सुन—“अब फिर मुझे स्वामीका दर्शन न होगा” (सोच) आँसुसे भोजक होनेके शोकको सहन न कर सका आर कलेवा फटनेसे मर कर आर्वाँस (दिव) लोकमें या अन्वृत्त नामक देव-पुत्र हुआ। अन्वृत्तको पहिले एकही साँक था अन्वृत्तकी धृत्तुसे (जब) दूसरे लोकसे पीडित हो वह रौत-कौंदा नगरका अन्वृत्त।

x

x

x

( ३ )

तप, बुद्धत्व-प्राप्ति ( ई पू.-५२८ )

१-तप बोधिसत्व भी प्रव्रजित हो उसी प्रदेशमें अनूपिषा नामक (नगरके) आसोंके बागमें एक मत्स्याह मत्स्या-मुलमें बिता एक ही दिनमें तीस योजन मार्ग वैदक चककर राजगृह पहुँचे। नगरमें प्रविष्ट हो मिश्राके किच विक्रमे। सारा नगर बोधिसत्वके रूपको देख असुपाहने प्रविष्ट राजगृहकी मूर्ति असुरेन्द्रसे प्रविष्ट देवनायकी मूर्ति संक्षुब्ध हो गया। राजपुर्षोंने आकर राजसे कहा—“देव ! इस रूपका एक पुत्र नगरमें मन्त्रिणी मौरा रहा है; वह देव है वा मनुष्य नाग है वा राक्षस कर्म है हम नहीं जानते।” राजाने महलके ऊपर लड़े ही महापुत्रको देख आश्चर्यचिन्त हो (अपने) बुद्धोंको आशा की—‘आओ ! देखो तो यदि अ-मनुष्य होगा तो नगरसे निकलकर

अन्तर्धान हो जायगा यदि देवता होगा तो आकाशसे चर्य जायगा यदि वायु होगा तो पृथिवीमें डूबकी क्या सुख हो जायगा यदि मनुष्य होगा तो मिथी हुई मिश्रण भोजन करेगा महापुरुषने मिके हुये मोक्षको संग्रहकर, 'इतना मेरे लिये पर्याप्त होगा' यह ज्ञान प्रवेशवाक्ये नगरद्वारसे ही (बाहर) निकल पापद्वय-वर्तकी ध्रुवामें दूर-मुँह बैठ भोजन करना आरम्भ किया। उस समय उनके बाँत उफरकर मुँहने निकलने लगे मात्स्य हुये। तब इस जीवन में ऐसा भोजन जिकने मेरी ब देखा होनेसे उस प्रतिकूल भोजनसे दुहित हुये अपने आपको स्वर्ग पों समझाया—

“सिद्धार्थ ! ए अन्न-पान-मुक्तन कुसुमें—माना प्रकारके अत्युत्तम रसोंके साथ तीन बप के (पुराने) सुगन्धित आचर्य भोजन किये जानेवाले स्थान में पैदा होकर भी एक गुनरीधारी (मिथु) की देखकर (सोचता था) कि मैं भी क्या इन्हीं तरह (मिथु) बनकर मिथ्या मार्ग के भोजन करूँगा क्या वह भी समय होगा ? तब यही सोच पारसे निकल पया। अब वह क्या कर रहा है।” इस प्रकार अपनेको समझ बिकार रहित हो भोजन किया। राजपुरुषोंने उस समाचारको आकर राजासे कहा। राजा ने इतकी बात सुन तुरन्त नगरसे निकल बोधिसत्वके पास जा उनकी सरलपद्यासे प्रसन्न हो बोधिसत्वको (अपने) समी पेशर्ष अर्पण किये। बोधिसत्वने कहा—‘महाराज ! मुझे न बलु कामना है न भोग-कामना। मैं महान् बुद्ध ज्ञान (अभिसंबोधि) के लिये निकल हूँ। राजाने, बहुत तरहसे प्रार्थना करनेपर भी उनकी कृपि न देखा कहा—“अच्छा अब तुम बुद्ध होना तो पहिले हमारे राज्यमें जाना।” यह यहाँ संक्षेप में है। विस्तार के साथ प्रमथ्या-सूत्रकी अह-कथामें देखना चाहिये।

बोधिसत्वने राजाको बचन दे कमसा विचारण करते हुये आच्छार कालाम तथा बहक रामपुत्रके पाम पहुँच समाधि (असमापत्ति) सीकी। (फिर) यह ज्ञान (अबोध) का रास्ता नहीं है (पूना) सोच उस समाधिभावनाको अपर्बाप्त समझ देवताओं सहित समी कोकिलको अपना बक वीर्य दिखानेके लिये परमतत्वकी प्राप्तिके लिये लट्टेखामें पहुँच—“यह प्रवेश रमणीय है सोच बही उर महान् तप आरम्भ किया।

कोण्डिल्य आदि पाँच परिव्राजक भी गाँव सहर राजधानीमें निष्ठाचरण करते बोधिसत्वके पास बही पहुँचे। “अब बुद्ध होंगे अब बुद्ध होंगे इस आशासे छ बप तक यह आश्रमकी झाड़ू-बर्दारी आदि सेवाधर्मोंको करते बोधिसत्वके पास रहे। बोधिसत्व बुद्धरूपस्था करते हुये (असक्त) लिखतहुकरी करक शेष करके क्या, पीले आहार ग्रहण करना भी छोड़ दिये। देवताने रोमकूपी द्वारा (उनके शरीरमें) भोजन डाल दिया। (केकिन फिर भी) गिराहारस से बहुत बुद्धक हो गये। उनका कनक वर्ण शरीर काय होगया। (उनक शरीरमें विद्यमान) महापुरुषोंके (बत्तीस) कक्षण छिप गये। एक बार पास-रहित प्यान करते समय बहुत ही छ अस पीवित (पूर्व) बेहोश हो उरलनेके अक्षरपर गिर पड़े। तब बुद्ध देवताओंने कहा—“अमय गीतम मर गये। हसपर

उन्होंने सोचा—“यह बुद्धर तपस्या बुद्धत्व प्राप्ति का मार्ग नहीं है” और स्पृह काहार ग्रहण करनेके लिये प्रामों का बाजारोंमें मिष्टान्नकर भोजन ग्रहण करना शुरू कर दिया। उनका शरीर फिर सुवर्ण-वर्ण हो गया। पंच-वर्गीयोंने सोचा—“५ वर्ष तक बुद्धर तपस्या करनेपर भी यह बुद्ध नहीं हो सका अब प्रामादिमें मिष्टान्न भोजन स्पृह काहार ग्रहण करनेपर क्या होगा ?। यह फलभी है तपके मार्गसे भ्रष्ट है। फिरसे महानेत्री हृष्यबाह्यके जोस-वृद्धी और ताकनेक समान इसकी ओर हमारी वह प्रतीक्षा है। इससे हमारा क्या मतलब (सर्पगा) ?” ऐसा सोच महापुद्गलको छोड़ अपने अपने पात्रधीबराको क वह अत्यंत पोन्नर दूर अग्रियपत्तनको चले गये।

उस समय उठखेछा (प्रदेश) के सेनानी नामक कस्बेमें सेनानी कुटुम्बीके घरमें आपका सुजाता नामकी कन्याने तल्ली होकर, एक बरगदस वह प्रार्थना की थी—“यदि समानजाति के कुछ-घरमें जा पहिले ही गर्भमें (पुत्र) प्राप्त कर्हूंगी तो प्रतिवप एक लखके लक्षस बलिदत्त (=रुद्र) करूंगी”। उसकी वह प्रार्थना पूरी हुई। महासत्त्व (=महापुद्गल) की बुद्धर तपस्याका छत्र वर्ष पूरा होकर बैसाख-पूजिमाको बलिदत्त करनेका हृष्यसे उसने पहिले हजार गाँवों को पहिले-मनु (=बरीमनु) के बर्षमें चरबाकर, उनका दूध दूधरी पाँचमा गाँवोंको पिलवाया (छिर) उनका दूध दार्हसी गाँवोंको इस तरह (एकका दूध दूधरेको पिलवाते) १६ गाँवोंका दूध आठ गाँवोंको पिलवाया। इस प्रकार दूधके गाढापन मधुरता और जोश के लिये उसने क्षीर-परिवर्तन किया। उसने बैसाख-पूजिमाके प्रातः ही बलिदत्त करनेकी हृष्यसे मिश्रारको उठकर उभ आठ गाँवोंको बुद्धवाया। दूध लेकर नये बतनमें हाक अपने हाथसे ही आग जस्यकर (क्षीर) पकाना शुरू किया।

सुजाताने (अपनी) पूर्वा (नामकी) दासीको कहा—“जम्म ! जर्नीसे आकर देवरधानको माफ़कर”। “आपें ! अघ्य कह उसके बचनको ग्रहण कर वह जर्नी जर्नी बुद्धक नीचेको गईं। बोधिसत्त्व भी उस रातको पाँच महासत्त्वोंको देव “नि-वसप जात्र में बुद्ध हूँगा” निश्चय कर उस रातके बीच आधेपर बीच आधेसे मिष्टान्न हा मिष्टान्न-कस्तकी प्रतीक्षा करते हुये आकर उसी बुद्धके नीचे अपनी प्रभासे सारे बुद्धका प्रभासित करते हुये बैठे। पूर्वासे आकर बुद्धके नीचे पूर्वकी ओर ताकत हुये बोधिसत्त्वको देखा। देखकर उसने सोचा—“जात्र हमारे देवता बुद्धसे उतर कर अपने हाकम ही बलि ग्रहण करनको बैठे हैं” और जर्नीसे आकर यह बात सुजातासे कही। सुजाताने उसकी बातको सुनकर प्रसन्न हा “जात्रने अब तू मेरी श्रेष्ठ पुत्री होकर रह —कह कपका क पोन्नर आभरण आदि उसका दिये। वह शरीरको बालमें रत्न दूधरे सोनके धाकम ठाँक कपड़में बाँध सब अर्ध-आरामे अपनेको अर्ध-हूण कर आकको अपने शिरपर रख बुद्धके नीचे आ बोधिसत्त्वको देव बहुतही मन्तुष्ट हूँ, (आर उन्हे) बुद्धका देवता समझ (प्रथम) देवतकी उगह ही मैं (शरीरबाँध) शुरूकर आ फिरसे आकको उतार लान मानेको शारीमें मुग्गिण पुत्तोंम मुधापित अन्के बाधिसत्त्वके पास आ लकी हुई। प्रतिकार महाप्रमदा द्वारा

१ मारमाप (O T Ry) क्रिमा बनारस । २ गृहस्थ बड़ा क्रिमा ।

३ वर्तमान महाभाषा में ‘मैर्वा’ ।

प्रथम महावीर्य पात्र (अभिज्ञापात्र) इतने समय तक बराबर बोधिसत्त्वके पास रहा लेकिन इससमय वह बहस्य हो गया। बोधिसत्त्वने पात्रको न देखकर चाहिये हाथको फैला कर प्रहस्य किया। सुजाठाने पात्र-महित स्त्रीको महापुरुषके हाथोंमें अर्पण किया। महापुरुषने सुजाताकी ओर देखा। उसने इन्द्रितसे जानकर—“आर्य ! मैंने तुम्हें बह प्रत्यान किया हूँ प्रहस्य कर पचासदि पधारिये कह बन्धुता की (और फिर)—“जैसे मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ ऐसे ही तुम्हारा भी पूर्ण हो कह, फल (मुझको) मृत्युकी उम सुवर्ण पाण्डको पुराने पत्तलकी मौलि (छोड़) चक दिया।

बोधिसत्त्व घड़े हुए स्थानसे उठ हुआकी प्रशिक्षण कर पाण्डको छे 'नेरजुराके तीरपर जा पाण्डीको रख (बर्धन) उतरकर, स्नानकर पूर्वकी ओर मुँहकरके बैठे और उन्मास प्राप्त करके उम समी निर्विकल मधुर पावसको (उन्मासे) भोजन किया। वही उमक बुद्ध होनेके बादबाके 'बोधि मण्डलमें वास करते सात सप्ताहक उन्मास दिनोंके किये आहार हुआ। इतने थक तक न दूसरा आहार किया न स्नान न मुख धोया। प्यास-मुख, मार्ग-(अभय उत्पन्न)-मुख फल-(अनुत्पन्न-अभय)-मुखस ही (इस सात सप्ताहका) बिताया। उस स्त्रीको जा सानेकी पाण्डको (बन्धुमें) पौक दिया।

२. बुद्धत्वप्राप्ति—बोधिसत्त्व नदीतीरके सुषुप्तित शाकवममें दिवकों विहार कर सावहाक 'बोधिबूझके पास गये। उस समय पास छेड़र सामनेसी भाते हुने शोषिय नामक पास कटनेबाकेने महापुरुषको जाठ मुड़ी तृण दिया। बोधिसत्त्व तृण क बोधि मण्ड पर चढ़ प्रशिक्षण कर पूर्वदिशामें जा पश्चिमकी ओर मुँहकर बड़े हुए। (उन्मासे) "यह समी उदरसे अपरिप्लव स्थान है (वही) बुद्धत्वपन्धरके विष्वसतका स्थान है"—अत उम तृणोंके अग्रभागको पकड़कर दिश्या अिसने आमन बन गया। वह तृण ऐसे जाकारमें पड़े कि पैसा (जाकार) सुष्पुनर विहकार था पुष्प-अर भी किञ्चनेमें समर्थ नहीं हो सकता। बोधिसत्त्व शक्तिबुद्धको पीठकी ओर करके दृढ-चित्त हो—“आह मरा चमका नसें हड़ी ही क्यों न काकी रह जाँप, चाहे शरीर मौम रख क्यों न सुख जाये; लेकिन तो भी सम्यक सग्वोधि को प्राप्त किये बिना हम आसक्तको नहीं छोड़ूँगा”—निश्चय कर पूर्वाभिमुख, हो सी विज-कियोकी कदकमे भी न कूटनेबाका म पराजित आसक्त कगा चँद गये।

उस समय मारवैल पुत्र-सिद्धार्थकुमार मेरे बलिभारस बाहर विहसणा चाहता है हमे वही निकलने दूँगा”—यह सोच अपनी सत्ताके पास चढ़ वह बात कह मार-पोषण करवाकर अपनी सेना के निकल पड़ा। मारवैलाके बोधि-मंड तक पहुँचते पहुँचते (सेना) में (से) एक भी लड़ा न रह सका (सभी) मामने जातही भाग निकले। महा पुरुष अकबेही बैठे रहे। मारने अपने अनुचरोंसे कहा—“तात ! शुद्धोत्तम-बुद्ध सिद्धार्थके समाप्त कूनरा पुरुष नहीं है। हम लोग सामनेमे बुद्ध नहीं कर सकते, (धत्ता) पीछेसे करें।”

१ विहकारन नर्द (त्रि गवा)। २ बोध-नयाके बुद्ध-अभिरुक्ता दत्ता।

३ बाधगवाका मसिद्ध पीपल-बुद्ध। ४ आर मन्थे का एक नाम हाता है। प्रथम-नाम शोधिका प्रथम मृतीबाल। ५ 'परिच-समुत्पाद सुत्त' में विव्यार देखो।



महापुरुष मार-सेनाको देख—“यह इतने क्रोध मरे अनेकेके किये बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं। इस स्थान पर मेरी माता पिता भाई या दूसरा कोई सम्बन्धी नहीं है। यह मेरी इस पारमिताएँ ही मेरे चिरकालसे पोसे हुए परिजनके समान हैं। इसलिये हम पारमिताओंको ही बाँध बनाकर (हम) पारमिता-बाँधको ही बँडाकर मुझे इस संवा-समूहका विघ्नसं करना हागा” (यह सोच), इस पारमिताओंका स्मरण करते हुए बैठे रहे।

मार बाबु वर्षा पापाग इतिवार, बचकती राख बाबु श्रीचरु और कम्बकर बुझिसे बोधिसत्वको न भगा सक्य। (चिर) बोधिसत्वके पास जाकर बोध—“सिद्धार्थ! इस आसनसे उठ यह (आसन) तेरे किये नहीं मेरेकिये है। महासत्त्वने उसके बचनको धुनकर कहा—‘मार! तूने न इस पारमिताएँ पूरी की, न उप-पारमिताएँ न परमार्थकी पारमिताएँ न पाँच महान् त्वागही तूने किये न वासि-हितका काम न लोक-हितका काम न ज्ञानका आचरण किया। यह आसन तेरे किये नहीं मेरेही किये है।’”

मारने महापुरुषसे पूछा—“सिद्धार्थ तूने दान दिया है इसका कीन साधी है?” महापुरुषने “यह अचेतन दोस महापुत्रिणी है—कह श्रीचरुके भीतरसे दाहिपै हाथको निकाल मेरे दान देनेकी तू साक्षिणी है कहा; (और) पृथिवीकी ओर हाथ कटका दिया। मार-सेना विशाओंकी ओर भाग चली। इस प्रकार पूर्वके रहते रहते महापुरुषने मारसेनाको पराज्य कर श्रीचरुके कपर बरसते बोधिसत्वके हस्तोंसे मार्ग काट मूर्खोंसे प्रकृत होते हुए प्रथम-वाममें पूर्वकाम्मोका ज्ञान मध्यम-वाममें विघ्न-बहु पा अन्तिम-वाममें प्रतीत्य-समुत्पाद् ज्ञानको उपकम्ब किया। उस समय (उन्हींने) यह उदाहण कहा—

“बहु जन्म जगमें दीपता फिरता बराबर मैं रहा।  
 कित हूँ बला गृहकारको कुछ जन्मके सहता रहा।  
 गृह-कर जब देखा गया है फिर न कर करना तुसे।  
 कटिर्वा समी हूँ तैरी गृह-शिक्षर मी किन्ना पदा।  
 संस्कार-विरहित चित्त जब लुण्ठ समीके नाह से।

×

×

×

( ४ )

बोधिसत्वके नीचे, वाराणसीको ( ई. पू. ५२८ )

१ बोधिसत्वके नीचे—उस समय बुद्ध भगवान् उदयेष्टामें मेरुद्वारा नदीक तीर बोधिसत्वके नीचे प्रथम अमितबोधिको प्राप्त हुये थे। मगधान् बोधिसत्वके नीचे सत्ताहभर एक आसनसे विमुक्ति (अमोस) का आर्जव करते हुए बैठे रहे। रातको प्रथम वाममें प्रतीत्य-समुत्पाद्का अनुकाम (आदिमे अन्तकी ओर) और प्रतिकाम (अन्तमे आदिकी ओर) मनव किया।—“अविद्याके कारण संस्कार जाता है संस्कारके कारण विज्ञान होता है विज्ञानके कारण वाम रूप वाम-रूपके कारण छ आवतन छ आपतनोंके कारण स्वर्ग स्वर्गके कारण

वेदना वेदनाके कारण मृष्या मृष्याके कारण उपादान उपादानके कारण भव भवके कारण  
 ज्ञाति ज्ञाति (=जन्म) क कारण जरा (=पुत्रपत्नी) मरण शोक रोना-पीरना दुःख  
 चित्त-विकार और चित्त-शेद उत्पन्न होते हैं। इस तरह यह (संसार) जो केवल दुःखों  
 का पुंज है उसमें उत्पत्ति होती है। अविद्याके अन्वेष (=निष्कृष्ट) विरागम  
 (=अविद्याका) नाश होनेपर संस्कारका विनाश जाता है। संस्कार विनाशमें विज्ञानका  
 नाश होता है। विज्ञान-नाशसे नाम-रूपका नाश होता है। नाम-रूप नाशसे छः  
 आप्ततर्कोंका नाश होता है। छः आप्ततर्कोंके नाशसे स्पर्श नाश होता है। स्पर्श-नाशसे  
 वेदनाका नाश होता है। वेदना-नाशसे मृष्या नष्ट होती है। मृष्या-नाशसे उपादानका  
 नाश होता है। उपादान-नाशमें भव नाश होता है। भव-नाशसे ज्ञाति नाश होती है।  
 जन्म नाशमें जरा मरण शोक रोना-पीरना दुःख चित्त-विकार और चित्त-शेद नाश  
 होते हैं। इस प्रकार इन केवल-दुःख-पुंजका नाश होता है।" भगवान् इन अर्थको  
 जानकर उसी समय यह उदान कहा—

“अब धर्म होते जग प्रकट, सोसाह प्यानी विप्र ( =जर्हत् ) को।

तब शांत हों क्रीडा समी देखै स-शेदु धर्मको ॥”

फिर भगवान् ने रातके मध्य-धाममें प्रतीत्य-समुत्पादको अनुकूल प्रतिबोधमें मनन  
 किया।—“अविद्याके कारण संस्कार होता है दुःखपुंजका नाश होता है”। भगवान् ने इस  
 अर्थको जानकर उसी समय यह उदान कहा—

“अब धर्म होते जग प्रकट, सोसाह प्यानी विप्रको।

तब शांत हो क्रीडा समी ही जानकर क्षय कर्मको ॥”

फिर भगवान् ने रातके अन्तिम धाममें प्रतीत्य-समुत्पादको अनुकूल प्रतिबोध करके  
 मनन किया।—“अविद्या केवल-दुःख-पुंजका नाश होता है”। भगवान् ने इस अर्थको  
 जानकर उसी समय यह उदान कहा—

अब धर्म होते जग प्रकट, सोसाह प्यानी विप्रको।

उहर कौपाता मार-सेवा रवि प्रकटी गगन ज्यों ॥

ससाह बीतनेपर भगवान् उस समाधिमें उठकर, योधिबृहत्के नीचेमें बहों गये जहाँ  
 अज्ञपाठ नामक बर्गद्वय बृहत् वा। बहों पहुँचकर अज्ञपाठ बगइके बृहत्के नीचे ससाह भर  
 विमुक्ति-का भावद ध्ये हुये एक आसलसे बैठे रहे। उस समय एक लमिमानी ब्राह्मण जहाँ  
 भगवान् ने बहों आया। पास आकर भगवान् के साथ (कुसुमसुधेम पूछ कर) एक और  
 पढ़ा हो गया। एक और लड़े हुये उस ब्राह्मणने भगवान् से बो कहा—“हे गुरुम ! ब्राह्मण  
 कैमे होता है ? ब्राह्मण बनानेवासे जानस धर्म (=पुन) है ?” भगवान् ने इस अर्थको जानकर  
 उसी समय यह उदान कहा—

‘जो विप्र बाहित-याप मक-अभियान-विनु संवत रह ।

वेदांत-पारग ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी धर्मने ।

सम नहि कोई विमसा जगत्में ।

फिर ससाह बीतनेपर भगवान् उस समाधिमें उठकर अज्ञपाठपदको नीचेसे बहों

गये जहाँ मुचलिन्द ( वृक्ष ) था । वहाँ पहुँचकर मुचलिन्दके नीचे सप्ताह भर विमुक्तिका आत्मन् देखते हुए एक आसनसे बैठे रहे । उस समय सप्ताह भर अ-समय महामेघ ( और ) इन्दी इषा-बाकी बरसो पड़ी । तब मुचलिन्द नाग-नाम अपने घरसे निकलकर भगवान्‌के शरीरको सात बार अपने देहसे सरोवरकर, शिरके ऊपर अपना बड़ा फण ताक कर लपटा हो गया, जिसमें कि भगवान्‌को शीत उष्ण इन मच्छर बात रूप तथा शरीरूप ( =रंगनै बाके ) न हूँ । सप्ताह बाद मुचलिन्द नागराज आकाशको मेघ-रहित देख भगवान्‌के शरीरसे ( अपने ) देहको हटाकर ( नार उसे ) छिपाकर बाककक रूप धारणकर भगवान्‌के सामने लपटा हुआ । भगवान्‌ने इसी अर्थको भाषकर उसी समय यह उद्दान कहा—

“सन्नुद ऐलनहार भूतचमो सुखी एकाम्तमें ।  
निहंनू सुख है ओकमें संपम जो प्राणी मात्रमें ॥  
सब कामनामें छेवना वैराग्य है सुख ओकमें ।  
है परम सुख निराप बही जो साधना अभिमान का ॥

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, मुचलिन्दके नीचेसे वहाँ गये जहाँ राजायतन ( वृक्ष ) था । वहाँ पहुँचकर राजायतनके नीचे सप्ताहभर विमुक्तिका आत्मन् देखते हुए एक आसनसे बैठे रहे । उस समय तपस्सु और भस्मिक ( दो ) व्यापारी ( बहनजारे ) उत्कलसदृशसे उस स्थानपर पहुँचे । उनकी बात-बिरादरीके देखताये तपस्सु भस्मिक बहनजारोंसे कहा—“मार्य ! बुद्धपदको प्राप्त हो वह भगवान् राजायतनके नीचे विहार कर रहे हैं । जाओ उन भगवान्‌को मद्द और लड्डू ( =मनुष्य ) से सम्भावित करो यह ( पान ) तुम्हारे लिये चिरकालक हित और सुखका देनेवाला होगा ।” तब तपस्सु और भस्मिक बहनजारे मद्दा और लड्डू के जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । पास जाकर भगवान्‌के अभिवादनकर एक तरफ लड़े हुए तपस्सु और भस्मिक बहनजारोंने यह कहा—“भन्ने ! भगवान् ! हमारे मद्दे ( =मन्त्र ) और लड्डूजोंको स्वीकार कीजिये जिससे कि चिरकालक हमारा हित और सुख हो ।” उस समय भगवान्‌ने घोषा— ‘तबामत हाथमें वहाँ ग्रहण किया करते मैं मद्दा और लड्डू किस ( पात्र ) में ग्रहण करूँ’ । तब चारों मद्दावाजा भगवान्‌के मनकी बात जान चारों दिशाओंसे चार पात्रके ( मिस्रा ) पात्र भगवान्‌के पास ले गये—“भन्ने ! भगवान् ! इसमें मद्दा और लड्डू ग्रहण कीजिये । भगवान्‌ने उस अभिवादन सिस्पमत्र पात्रमें मद्दा और लड्डू ग्रहणकर भोजन किया । उस समय तपस्सु भस्मिक बहनजारोंने भगवान्‌से कहा—‘भन्ने ! हम दोनों भगवान् तथा धर्मकी शरण्य जान हैं । आजये भगवान् हम दोनोंको साम्प्रति शरणागत उपासक जानें । संसारम बही शानो हो बचनसे प्रथम उपासक हुए ।

सप्ताहबीतनेपर भगवान् फिर इस समाधिसे उठ राजायतनके नीचेसे वहाँ अन्नपात्र बर्गद आ वहाँ गये । वहाँ अन्नपात्र बर्गदके नीचे भगवान् विहार करने लगे । तब पद्मभक्तमें प्यातागमिण भगवान्‌के चित्तमें चित्तर्ष पैदा हुआ—“मिने गंभीर दुर्बर्ण बुद्ध येव

१ तब सर्वत्र न हानैव बह बुद्ध आर धर्म दो ही क शरण्य आ सकतै मे ।

साथ उत्तम तर्कसे अभाव निपुण पण्डितोंद्वारा जानने योग्य हूँ धर्मको पा लिया । वह जनता काम-गुण्यमें रमण करनेवाकी काम-रत काममें प्रमद है । काममें रमण करने वाकी हूँ जनताके किये वह जो कार्य-कारण रूपी प्रतीत्य-समुत्पाद् (निश्चय) है वह बुद्धार्थनीय है । और वह भी बुद्धार्थनीय है आ कि यह सभी संस्कारोंका समूह सभी मन्त्रोंका परिव्याग वृष्ण-क्षय विराग निरोध ( बुद्ध-निरोध ) और निर्वाण है । मैं यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उनको न समझ पायें तो मेरे किये यह तर्कबुद्ध भार पीड़ा ( मात्र ) होगी । उसी समय भगवान्‌को पहिले कभी न सुनी यह अद्भुत गायार्थे सूत्र पढ़ी—

“यह धर्म पाया कष्टसे इसका प पुण्य प्रकृताना ।  
महि राग-द्वेष-प्रक्षिप्तको है सुकर इसका जानता व  
गभीर उच्छि चारपुण्य बुद्धस्य सूत्रम प्रवीणक्य ।  
तम-पुत्र-छादित रागरतद्वारा न संभव देखना ॥”

भगवान्‌के देसा समझनेके कारण ( उनका ) चित्त धर्मप्रचारकी ओर न झुककर अल्प-उत्पुण्यकी ओर झुक गया । तब सहापति ब्रह्माने भगवान्‌के चित्तकी बातको जानकर प्यास किया—“कोक-भाषा हो जायगा रे ! श्लोक-विभाषा हो जायगा रे ! जब तभागठ जईत् सत्त्वक संसृष्टका चित्त धर्म प्रचारकी ओर न झुककर, अल्प-उत्पुण्य ( = उदासीनता ) की ओर झुक जाये’ ( देसा ब्यास कर ) सहापति ब्रह्मा ब्रह्मकोकसे अन्तर्धान हो भगवान्‌के सामने प्रकट हुआ । फिर सहापति ब्रह्माने उपरमा ( = चर ) एक कंधेपर करके हाहिले जातुको शुशिरापर रख बिबर भगवान्‌ से उपर हाथ जोड़ भगवान्‌के कहा—‘मन्ते ! भगवान्‌ धर्मोपदेश करें सुगत ! धर्मोपदेश करें । ( बुद्धिधर्म ) अल्प-मलकाके प्राणी मी है धर्मके न सुननेसे वह नष्ट हो जावेगे । ( उपदेश करें ) धर्मको सुननेवाके ( भी होवेगे )’ । सहापति ब्रह्माने यह कहा और यह कहकर यह भी कहा—“भगधर्म मक्तिन चित्तवासोत्त चिन्तित पहिकं अमुद्ध धर्मं पद्म बुद्धा । अमृतके द्वारको जोकनेवाके विमल ( पुरुष ) से आनगारे हूँ धर्मको ( धन शोक ) मुर्म ॥ पपीके पर्वतक सिन्धरपर लड़ा ( पुरुष ) जैसे चारों ओर जनताको देख । उसी तरह हे सुमंभ ! हे सर्वत्र नेत्रवाले ! धर्मरूपी महकपर यह सय जनताको देख ॥ इ शोक-रहित ! श्लोक-विभाग अल्प-जरासे पीडित जनताकी ओर देखो —

उठ बीर ! हे संप्रामञ्जि ! हे सार्वबाह ! उच्छ्रय-जना ।  
जग विबर धर्मप्रचार कर, भगवान् ! इना जायना ॥

तब भगवान्‌ने ब्रह्माके अमिप्रापको जाकर और प्राणियोंपर द्वा करके बुद्ध-बन्धसे शोकको देखा । बुद्ध-बन्धुमे शोकको द्वाते हुये भगवान्‌न जीवोंको देखा जिनमें कितने ही अल्प-मल तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-व्यभाव समझानेमें सुगत प्राणियोंको भी देखा । तबमें कोई-कोई परकोक बीर शोष ( बुद्धाई ) से मय करते विहर रह थे । उय उत्पन्निनी पण्डिनी ( = अग्रममुखाय ) या पुंडरीकिनीसे कितने ही उत्पक पद्म या पुंडरीक उच्छ्रमे पद्म हुये उच्छ्रमे वीच उच्छ्रमे बाहर न निकल ( उच्छ्रके ) भीतर ही बूचकर पापित होत है । कोई-कोई उत्पक ( नीलकमल ) पद्म ( रक्तकमल ) या पुंडरीक ( श्वेतकमल ) उच्छ्रमें उत्पक उच्छ्रमें वीधे ( भी ) उच्छ्रके परावर ही क् होते हैं । कोई-कोई उत्पक पद्म या पुंडरीक

उपक्रमें उत्पन्न उपक्रमें हैं ( भी ) उपक्रमें बहुत ऊपर निकलकर उपक्रमें जकिस ( हीं ) लगे होते हैं । इसी तरह भगवान् ने इस समुहसे लोकको देखते हुये—अल्पमय तीक्ष्णबुद्धि, सुम्बलाय सुवोष्य प्राणियोंको देखा; जो परलोक तथा पुराईसे भय खाते बिहार रहे थे । देखाकर सहापति ब्रह्माको गाथाद्वारा कहा—

“उनके दिव्ये अप्सृतक्य द्वार यद् हो गया है जो कामबाधे होनेपर भी ब्रह्माको छेप देते हैं । हे भगवा ! ( बुधा ) पीडाका व्यापककर मैं मनुष्योंको इस विपुल उत्तम धर्मको नहीं कहता था ।

तब ब्रह्मा सहापति— भगवान् ने धर्मोपदेशके दिव्ये मेरी बात मात्र ही यह ध्यान, भगवान् को अभिवाचनकर प्रदक्षिणाकर वहीं अल्पघान हो गया ।

उस समय भगवान् के ( मन्में ) हुआ—“मैं पहिले किस इस धर्मकी देवता ( उपदेश ) करूँ ? इस धर्मको सीमा कीम मानेगा ?” फिर भगवान् के ( मनमें ) हुआ—“यह ब्राह्मण-काण्डाम परिष्ठत चतुर मेधावी चिरकाकसे अल्प-मकिन-चित्त है; मैं पहिले क्यों य जाकार-काण्डामको ही धर्मोपदेश दूँ ? यह धर्मको सीमा ही जान केगा ।” तब गुप्त देवताने भगवान् को कहा—‘मन्ते ! जाकार-काण्डामको मरे ससाह हो गया’ । भगवान् को भी ज्ञान-दर्शन हुआ—“जाकार-काण्डामको मरे ससाह हो गया ।” तब भगवान् के ( मन्में ) हुआ—“जाकार काण्डाम महा जाकारांश या यदि यह इस धर्मको सुमता सीमा ही जान केता । फिर भगवान् के ( मनमें ) हुआ—‘यह उद्दक-रामपुत्र परिष्ठत चतुर मेधावी चिरकाकने अल्प-मकिन चित्त है क्यों य मैं पहिले उद्दक-रामपुत्रको ही धर्मोपदेश करूँ ? यह इस धर्मको सीमाही जान केगा । तब गुप्त ( अन्तर्धान ) देवताने कहा—‘मन्ते ! रात ही उद्दक-रामपुत्र मर गया । भगवान् को भी ज्ञान-दर्शन हुआ । फिर भगवान् के ( मनमें ) हुआ—‘पञ्च-वर्गीय सिन्धु मरे बहुत काम करनेबाधे थे उन्होंने माधनार्थे क्यो मेरी सेवाकी थी । क्यों य मैं पहिले पञ्चवर्गीय सिन्धुको ही धर्मोपदेश दूँ ।’ भगवान् ने सौंका—‘इस समय पञ्चवर्गीय सिन्धु क्यों बिहार रहे हैं ?’ भगवान् ने अ-माधुर दिव्य सिन्धु के त्रैसे देखा—‘पञ्चवर्गीय सिन्धु धारणसीके अविपतन मृग-शायमें बिहारकर रहे हैं ।’

तब भगवान् उद्येद्वार्थे इष्टानुसार बिहारकर जिन धाराणसी है उधर चारित्र्य ( ब्राम्हण ) के लिये निष्कण पड़े । उपरक आजीवक ने देखा—भगवान् बोधि ( बुद्ध तथा ) धार गवाक बीच में जा रहे हैं । देखकर भगवान् ने बोका— आनुष्मान् ( आयुम ) ! तैरी इतिवर्तन प्रसन्न है तैरा अवि-वर्ध ( अज्ञान ) परिस्फुट तथा उग्रगड है । किसको ( गुण ) मानकर इ आनुस ! प्रयत्नित हुआ है तैरा धान्ता ( अगुण ) कीम ? तू किमक धर्मको मानता है ?” यह करनेपर भगवान् ने उपरक आजीवकको कहा—“मैं सबको परात्रिण करतैराय्य मयका आनन्दराज्य हूँ ; सभी धर्मोंमें निर्वेप हूँ । सर्व-जगती ( हूँ ) मृत्युके अल्पम हों विमुक्त हूँ । मैं अथनही जानकर उपरक करूँगा ।

१ पतमान मारजाय बनारस । २ उस समयके मन्त्र शास्त्रियोंका एक सम्प्रदाय था मन् एनी-नामाक त्रिगुण एक मन्त्र आचार्य था ।

मेरा भाचार्य नहीं है मेरे सख्त (कोई) विद्यमान नहीं ।  
 श्रेयताओं सहित (मारे) साधर्म मेरे समान पुण्य नहीं ।  
 मैं संसारमें आई हूँ अपूर्व शास्त्रा (गुरु) हूँ ।  
 मैं एक सम्पन्न संजुद्ध, सीतल तथा निर्वाणप्राप्त हूँ ।  
 धर्मका बड़ा भुमानेके किने काशियोंके नगरको बरहा हूँ ।  
 (बहो) धर्मके हुये कोकमें अमृत-सुन्मुनी बसाई गा ॥

“आहुप्सन् ! तू जसा दावा करता है उससे तो अत्यन्त जिन हो सकता है ।

“मेरे ऐसेही सख्त जिन होते हैं जिनके कि भासव (अच्छेसाधक) नष्ट हो गये हैं ।

मैंने पाप (पुण्य) धर्मोंको जीत किया है इसलिने हे उपक ! मैं जिन हूँ ।

ऐसा कबनेपर उपक जागीबक—‘होबोगे आहुस !’ कह, शिर हिस्र बेरास्ते बका गया ।

x

x

x

x

( ५ )

प्रथम घर्मोपदेश । यक्षकी प्रव्रज्या । ( ३ पू ५२८ )

यह भगवान् अमरा भाषा (अचारिक) करते हुए, बहो धाराजसी अपिपतन मृग  
 शव का बहो पञ्चवर्गीय मिथु ने बहो पहुँचे । तूसे आते हुये भगवान्को पञ्चवर्गीय  
 मिथुओंने देखा देखातही आपसमें पका किया—

“आहुसो ! यह बाहुकिक (अमृत बना करनेवाला) साबना-अष्ट बाहुकिक-पराधन  
 (अमरा करनेकी ओर काटा हुआ) अमज गौतम जा रहा है । इसे अभिवादन नहीं करना  
 चाहिये न प्रत्युत्थान (असलप्रार्थन कदा होना) करना चाहिये । न इसका पात्र-बीचर  
 (आगे यक्ष) केना चाहिये केकळ आसन रख देना चाहिये यदि इच्छा होगी तो बटेगा ।”

जैसे-जैसे भगवान् पञ्चवर्गीय मिथुओंके समीप आते गये वैसेही जैसे वह अपनी  
 प्रतिज्ञापर स्थिर रह सके ; (अन्तमें) भयभान्के पास जा पकने भगवान्का पात्र  
 बीचर किया पकने आसव विद्यवा ; पकने पादोवक (अपर घोनेका अन्न) पादपीठ  
 (अपरका पीठा) पादककिकिक (पर रगदनेकी छकरी) का पास रखी । भगवान्  
 विद्यये आसनपर बडे । बैठकर भगवान्ने पर बोये । वह भगवान्के लिये आहुस  
 सम्पन्न प्रयोग करते थे । ऐसा कबनेपर भगवान्ने कहा—“मिथुओ ! तबामतको  
 धाम लेकर या आहुस कहकर मत पुकारो । मिथुओ ! तबामत आई सम्पन्न-सम्पन्न हैं ।  
 इतर जान हो मैंने जिस अमृतका पाषा है उसका तुम्हें उपदेश करता हूँ । उपदेशानुसार  
 आचारण करनेपर जिसके किने कुकपुत्र धर्म वैद्यहो मन्वासी होते हैं उभ अनुत्तम  
 महावर्षकको इमी अन्तमें सीधही स्वयं जानकर अन्वाद्यात्परअरअपमानकर विचाराग ।”

ऐसा कबनेपर पञ्चवर्गीय मिथुओंने भगवान्को कहा—“आहुस ! गौतम उभ साधन  
 मैं उस धारणमें उस बुद्धर तपस्वामि भी तुम जाबोंके शानदर्शनको पराकाष्ठाकी विसेपता  
 अर-अहुक धर्म (अदिव्य शक्ति)को नहीं पा सके ; फिर अष्ट बाहुकिक साबना-अष्ट

बाहुस्वपरायण (अज्ञानकार्यकी ओर पसर गये) तुम धार्मिक-ज्ञान-दर्शनकी पराक्राह्य उत्तर मनुष्य-धर्मकी क्या पाओगे ?

वह कहनेपर भगवान् ने पञ्चवर्गीय मिथुओंसे कहा—“मिथुओ ! तबगत बाहुकिक नहीं है और न साधना से ग्रह है न बाहुस्वपरायण है । मिथुओ ! तबगत अर्थात् सम्पूर्ण मनुष्य हैं । उपकामकर विहार करोगे ।

दूसरी बार भी पञ्चवर्गीय मिथुओंसे भगवान् ने कहा—‘मातुस ! शीतल । दूसरी बार भी भगवान् ने फिर (बही) कहा । तौसरी बार भी पञ्चवर्गीय मिथुओंसे भगवान् ने (बही) कहा । ऐसा कहनेपर भगवान् ने पञ्चवर्गीय मिथुओंको कहा—“मिथुओ ! हमने पहिले भी क्या मैंने (तुमसे) कभी इस प्रकार कहा है ?”

“मन्ते ! नहीं

“मिथुओ ! तबगत अर्थात् विहार करोगे ।”

(तब) भगवान् पञ्चवर्गीय मिथुओंको समझानेमें समर्थ हुए । तब पञ्चवर्गीय मिथुओंने भगवान् से (उपदेश) सुननेकी इच्छासे कान विद्या चित्त उपर किया ।

### धर्मचक्र-प्रवर्तन-सूत्र ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् चाराणसीके कृपियतन मृगश्रुपमें विहार करते थे । वहाँ भगवान् ने पञ्चवर्गीय मिथुओंको संबोधित किया—

“मिथुओ ! इन दो जन्तों (जन्तियों) का प्रवर्तितो नहीं संचय करना चाहिये । कर्मसे हो ? (१) जो वह हीन प्राण्य पृथग्जन्तों (=मूछे मनुष्यों) के (बोध्य) जन्तार्य(-संबिध) जन्तियोंसे बुद्ध, कामवासवाद्योंमें काम-सुख-किस होता है ; और (२) जो बुद्ध (-सब) जन्तार्य(-संबिध) जन्तियोंसे पुष्ट कावचक घ (=अज्ञान-वीणा) में लगता है । मिथुओ ! इन दोनों ही जन्तों (=जन्तियों) में न जाकर तबगतने मध्यम मार्ग छोड़ विद्याका है (बोधि) ज्ञान-देनेवाका ज्ञान-करनेवाका उपधाम (=आति) के किये अमित्र होनेके किये सम्बोध (=परिपूर्ण-ज्ञान) के किये विद्याय क किये है । वह कौतसा मध्यम-मार्ग (=मध्यम-प्रतिपत्) तबगतने काय विद्याका है ; (बोधि) ? वह वही धार्मिक-वैदिक मार्ग है ; जैसे कि—सम्बद्ध (=धीर) इति सम्बद्ध-संज्ञक सम्बद्ध-वचन सम्बद्ध-कर्म सम्बद्ध-जीविका सम्बद्ध-स्वाधाम (=धन्य परितम) सम्बद्ध-रम्यति सम्बद्ध-समाधि । वह है मिथुओ ! मध्यम-मार्ग (जिसको) ।

“यह मिथुओ ! तुम धर्म (=उत्तम)-साय (=साधार्) है—जन्म भी दुःख है अरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है मरण भी दुःख है अमिषोंका संबोध बुद्ध है मिषोंका संबोध भी दुःख है इच्छा करनेपर किसी (धीर) का नहीं मिथुना भी दुःख है । संक्षेपमें पाँच उपदेशवत्कर्म ही दुःख है । मिथुओ ! दुःख-समुद्ध्य (=दुःख-कारण) धर्म-सत्य है । यह जो तुम्हा है—किर जन्मनेकी छुस होनेकी राग-सहित जहाँ तहाँ प्रलभ

१ महाभाग । २ संबुद्ध कि ५५ : १ : १ विनय (महाभाग) । ३ विस्तार के किये आगे “सतिपट्टाव-सुत्त” को देखा । ४ रूप वेदना संज्ञा संस्कार, विद्यान ।

होनेवासी; जैसे कि—काम-गुण्य भव (=जन्म)-गुणा विभव-गुणा । मिथुनो ! यह है दुःख-निरोध आर्ष-सत्य । जोकि उसी गुण्यका सर्वथा विराग होना निरोध=त्याग अतिमिस्वर्गा=मुक्ति=न हीन होना । मिथुनो ! यह है दुःख-निरोधकी मोर जानेवाला मार्ग ( दुःख निरोध-गामिनी-प्रतिपद् ) आर्ष सत्य । वही आर्ष जलद्विज मार्ग है ।

“यह दुःख आर्ष-सत्य है मिथुनो ! यह मुझे न-सुख-पूर्व धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई=ज्ञान उत्पन्न हुआ=प्रज्ञा उत्पन्न हुई=विद्या उत्पन्न हुई=आलाक उत्पन्न हुआ । ‘यह दुःख आर्ष-सत्य परिशेष है मिथुनो ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें । (सो यह दुःख-सत्य) परि-व्रात है मिथुनो ! यह पहिले न सुने गये धर्मोंमें ।

‘यह दुःख-समुद्रप आर्ष सत्य है मिथुनो ! यह मुझे पहिले न सुन गये धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान उत्पन्न हुआ=प्रज्ञा उत्पन्न हुई=विद्या उत्पन्न हुई=आलाक उत्पन्न हुआ । ‘यह दुःख-समुद्रप आर्ष-सत्य प्रहातप्य (=व्याप्य) है” मिथुनो ! यह मुझे । “पहीज (हूट गया)” यह मिथुनो ! मुझे ।

‘यह दुःख-निरोध आर्ष-सत्य है मिथुनो ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई । ‘सो यह दुःख निरोध आर्ष-सत्य साक्षात् (=व्यत्यक्त) करना चाहिये’ मिथुनो ! यह मुझे । ‘यह दुःख-निरोध-सत्य साक्षात् किया’ मिथुनो ! यह मुझे ।

“यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्षसत्य है मिथुनो ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोंमें आँख उत्पन्न हुई । यह दुःख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्षसत्य भावना करना चाहिये’ मिथुनो ! यह मुझे । ‘यह दुःख-निरोधगामिनी-प्रतिपद् भावनाकी मिथुनो ! यह मुझे ।

‘मिथुनो ! जबतक कि इन चार आर्षसत्त्वोंका (उपरोक्त) प्रकथन तेहरा (हो) बारह आक्षरका यथार्थ विस्तृत ज्ञान-दर्शन न हुआ तबतक मैंने मिथुनो ! यह दावा नहीं किया कि—‘वेचो सहित मार-सहित ज्ञान-सहित (सभी) लोकमें देव-भगुण्य-सहित अमथ-ब्राह्मण-सहित (सभी) प्रजा (व्यापी) में अनुत्तर (किससे उत्तम दूसरा नहीं) मन्थक-संज्ञप (=परमज्ञान) को मैंने ज्ञान लिया’ । मिथुनो ! (अब) इन चार आर्ष सत्त्वों का (उपरोक्त) प्रकथनमे तेहरा (हो) बारह आक्षरका यथार्थ विस्तृत ज्ञान-दर्शन हुआ तब मैंने मिथुनो ! यह दावा किया कि “वेचो सहित मैंने ज्ञान लिया । मैंने ज्ञानको देया । मेरी विमुक्ति (मुक्ति) जलक है । यह अंतिम जन्म है । फिर अब जायागमन नहीं ।

‘महाबान्धव यह कहा । संसृष्ट हा पंचधर्मीय मिथुनोने भगवान्के बचनका अति-मन्त्र किया । इस व्याख्यान (=व्याख्यान) के कर जानेके समय आबुध्यान् काचिद्वचनका “ओ कुछ समुद्रप धर्म (=आराम स्वभाव-वाक्य) है यह सब निरोध-धर्म (=आप-स्वभाव वाक्य) है” यह विरक्त-विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ । एक भगवान्क उद्दान कहा— “अहा ! कौचिद्वचने ज्ञान लिया अहा ! काचिद्वचने ज्ञान लिया । इर्मसिने आबुध्यान् कौचिद्वचनका आज्ञात (=ज्ञानलिया) काचिद्वच ही नाम होगा । x x x



'तत्र दृष्टवर्म=वासवर्म=विहितवर्म=पर्यवगाहयम संशयरहित विबाधरहित आस्ता (=गुरु=बुद्ध) के नामक (=वर्म) में विचारद स्वतंत्र हो आयुष्मात् आजात कौण्डिन्यने भगवान्से कहा—“अग्ने! भगवान्के पास मुझ प्रव्रज्या मिळे 'उपसम्पदा' मिळे।” भगवान्ने कहा—“मिथु! आओ धर्म 'सु-आख्यात' है अर्घ्यी तरह बुद्धके क्षयक क्रिये ब्रह्मचर्य (का पावन) करा”। वही उक्त आयुष्मात् की उपसंपदा हुई।

भगवान्ने उसके पीछे मिथुओंको फिर धर्म-संबंधी कथाओंका उपदेश दिया। अनुशासन किया। भगवान्के धार्मिक कथाओंका उपदेश करते=अनुशासन करते समय आयुष्मात् वप्य और आयुष्मात् महियको भी—“जो कुछ समुद्रवर्म है वह सब निराव-वर्म है” वह विरज=विमल=धर्मवस्तु उत्पन्न हुआ। तब दृष्टवर्म=वास-वर्म स्वतंत्र उन्हीं भगवान्से कहा—“अग्ने! भगवान्के पास हमें प्रव्रज्या मिळे उपसम्पदा मिळे”। भगवान्ने कहा—“मिथु! आओ धर्म सु-आख्यात है अर्घ्यी तरह बुद्धके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (=पावन) करो। वही उक्त आयुष्मात्की उपसंपदा हुई।

उसके पीछे भगवान् (मिथुओंद्वारा) कामे भोजनको ग्रहण करते मिथुओंको धार्मिक कथाओंद्वारा उपदेश करते=अनुशासन करते (रह)। तब मिथु जो मिथु मर्गाकर लाते उसीसे कामे जाने निबाह करते। भगवान्के धार्मिक कथा उपदेश करते=अनुशासन करते आयुष्मात् महानाम और आयुष्मात् अश्वशित्तको भी—“जो कुछ समुद्रवर्म है।” वही उक्त आयुष्मात्की उपसंपदा हुई।।

उक्त समय यश नामक कुकपुत्र चाण्डालीके अष्टीका सुकुमार लक्षका था। उसके तीन मासाद थे—एक हैमन्तका एक म्रीमन्तका एक वर्षाका। वह वर्षाके चार महीने वर्षा-कालिक-मासाहमें अनुत्थण (=क्षिण) क वाघोंसे संविष्ट हो मासावके बीच न उतरता था। (एक दिन) पक्ष कुकपुत्रकी मित्रा लक्ष्मी।—सारी रात वहाँ ठेक-नीप जस्ता था। तब पक्ष कुकपुत्रने अपने परिव्रजको देखा—किस्तीका बगळमें भीष्मा है किस्तीके गलेमें सूदह है। किस्तीको फेंके-केस किस्तीको लार-निराते किस्तीको बरति साक्षात् स्मसानसा देवदर (उसे) वृष्य उत्पन्न हुई, बराग्य विषमें जाया। पक्ष कुक-पुत्रने उदाह कहा—“हा! संतप्त !! हा! पीकित !!”

पक्ष कुकपुत्र सुनकरका गुला पहिल घरके प्यरकको खोर गया। फिर नगर-द्वार की खोर। तब यश कुक-पुत्र वहाँ गया वहाँ ऋषिपतन सुराहाय था। उक्त समय भगवान् रातके मित्सारकी उच्छर लुके (स्नान) में टहल रहे थे। भगवान्से दूरसे पक्ष कुक-पुत्रकी आते देखा। देखकर टहलनेमें बगहस उतरकर, बिळे आसनपर बैठ गये। तब पक्ष कुकपुत्रने भगवान्के समीप (पहुँच) उदाह कहा—“हा! संतप्त !! हा! पीकित !!। भगवान्ने पक्ष कुकपुत्रको कहा—“वस! वह है अ-संतप्त पक्ष! वह है अ-पीकित। वस! जा बैठ, तुझे धर्म बताता हूँ।” तब पक्ष कुक-पुत्रने “यह अ-संतप्त है

१ महाव्रजा १। २ आमघोर-संन्यास। ३ मिथु-संन्यास। ४ स्वाम्यास=

सुन्दर प्रकारसे बर्णित। ५ महाव्रजा १ ६ “क ही” यह नगरका एक अर्धतमिक पश्चाधिकारी होता था जो कि बधिक न्यायपरिषदमेंसे बचाया जाता था।

वह अ-वीर्य है यह (सुन) आह्लादित प्रसन्न हो सुनहले रूतको उठार जहाँ भगवान् से बहाँ गया। पास जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बठ गया। एक ओर बैठे यश कुलपुत्रको भगवान्ने आमुपूर्वी कथा कही जैसे—ज्ञान-कथा शीघ्रकथा स्वर्ग-कथा कामवासनाओंका बुप्परिणाम-अपकार-श्रीप विष्कामताका साहाय्य प्रकाशित किया। जब भगवान्ने बसको मन्व-चित्त मृदु-चित्त अनापप्रद्वित-चित्त आह्लादित-चित्त प्रसन्न-चित्त देखा; तब जो सुखोकी उठानेवाकी ( =ममुत्कपक ) देशाना ( =उपदेश ) है—कुल समुदप (=कुलका कारण) विरोध (=कुलका माया) आर मार्ग (=कुल-वासका उपाय) —इसे प्रकाशित किया। जैसे अकिमा-रहित सुख-बन्ध अथी तरह रंग पकड़ता है वैसेही पसकुल-पुत्रको उसी आसनपर 'जो कुछ समुदप धर्म है वह विरोध धर्म है' वह वि-रज=निर्मल धर्मचमु उत्पन्न हुआ।

यश कुलपुत्रकी माता प्रासादपर चढ़, पसकुल-पुत्रको न देख, बहाँ झेप्टी गृह-पति का बहाँ गई, ( और ) कहा—'गृहपति ! तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नहीं देता है ?' तब झेप्टी गृह-पति चारों ओर सवार छोड़ स्वर्ध बिबर कपि-पतल युग-बाध या उधर गया। झेप्टी गृहपति सुनहले रूतका शिख देख उसीके पीछे पीछे चला। भगवान्ने झेप्टी गृहपतिको दूरस आते देला। तब भगवान्को ( ऐसा विचार ) हुआ—'क्यों न मैं ऐसा योग-बन्ध कहूँ जिससे झेप्टी गृहपति यहीं बैठे यशकुल-पुत्रको न देख सके।' तब भगवान्ने वैसेही योग-बन्ध किया। झेप्टी गृहपतिने जहाँ भगवान् से बहाँ जाकर भगवान्से कहा—'मन्ते ! क्या भगवान्ने बस कुल-पुत्रको देखा है ?'

'गृहपति ! बैठ। वहीं बन्ध यहाँ बैठे यश कुलपुत्रको दू देखेगा।'

झेप्टी गृहपति—'यहीं बैठा यहाँ बडे यश कुल-पुत्रको देखूँगा यह ( सुन ) आह्लादित प्रसन्न हो भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। भगवान्ने आमुपूर्वी कथा जैसे—'ज्ञानकथा प्रकाशित की। झेप्टी गृहपतिको उसी आसनपर धर्मचमु उत्पन्न हुआ। भगवान्को धर्ममें स्वतन्त्र हा वह भगवान्ने बोला—'आधर्य ! मन्ते ! आधर्य ! मन्ते !' जैसे औपेकी सीधा कर ये वैसेको उपाय ये मूलेको रान्ध बतला है अंधकारमें तेरुका प्रदीप रख व जिसमें कि आँखवाले रूप देखें; वैसेही भगवान्ने अनेक पर्वापस धर्मको प्रकाशित किया। यह मैं भगवान्की धरम जाता हूँ धर्म और विष्णु-संघकी भी। आजमे मुझे भगवान् सार्त्रकि शरभगत उपासक प्रहल करें। वह ( गृहपति ) ही संसारमें तीप-बन्धवाका प्रथम उपासक हुआ।

जिस समय पिताको धर्मोपदेश किया जा रहा था उस समय उसे और जानेके अनुसार मन्ववेद्य ( =अंधीर चिन्तन ) करते बस कुल-पुत्रका चित्त अकित हो आलसों (=व्यापों =मर्को) से मुक्त हो गया। तब भगवान्के ( मनमें ) हुआ—'पिताको धर्म-उपदेश पस कुल-पुत्रका चित्त अकित हो आलसोंसे मुक्त होगया। ( जब ) पस कुलपुत्र पट्टिककी गृहक-बन्धवाकी मूर्ति हीन (-निवृत्ति) में रह कामोपमोग करके योग नहीं है क्यों न

‘तत्र दृष्टव्यम्=प्राप्तव्यम्=विहितधर्म=पर्यवगाहधर्म संक्षपरहित विवाहरहित शास्ता (=गुरु=बुद्ध) के सामन (=धर्म) में विचारवत्, स्वतंत्र हो आयुष्मान् आशात कौण्डिन्यम मगधान्मे कथा—“भन्ते ! भगवान्के पास सुभ्रं प्रथम्या मिळे उपसम्पदा मिळ । भगवान्मे कथा— मिथु ! आओ धर्म ‘सु-आकवात है अच्छी तरह बुद्धके कथक किये महाचर्य ( का पाठन ) करो । वही उन आयुष्मान् की उपसंपदा हुई ।

भगवान्ने उसके पीछे मिथुओंको फिर धर्म-सर्वधी कथाओंका उपदेश किया; अनुसाम्य किया । भगवान्के धार्मिक कथाओंका उपदेश करते=अनुतासन करते समय आयुष्मान् घटव्य धार आयुष्मान् भद्रियको भी—‘जो कुछ समुद्भव-धर्म है वह सब निराव-धर्म है” यह विरत्र=विमक=धर्मबन्धु उत्पन्न हुआ । तत्र दृष्टव्यम्=प्राप्त-धर्म स्वतंत्र उद्घोष मयवान्मे कथा—“भन्ते ! भगवान्के पास हमें प्रथम्या मिळे उपसम्पदा मिळे” । भगवान्मे कथा—“मिथु ! आओ धर्म सु-आकवात है, अच्छी तरह बुद्धके कथके लिये महाचर्य (=पाठन) करो ।” वही उन आयुष्मान्को उपसंपदा हुई ।

उसके पीछे मगधान् ( मिथुओंद्वारा ) स्वयं भोजनको ग्रहण करते मिथुओंका धार्मिक कथाओंद्वारा उपदेश करते=अनुतासन करते ( रह ) । तीस मिथु जा मिथ्या माँगकर लाते उर्मसे उभो जने निर्वाह करते । भगवान्के धार्मिक कथा उपदेश करते=अनुसाम्य करते आयुष्मान् महाजाम और आयुष्मान् अश्वजित्को भी—‘जो कुछ समुद्भव धर्म है । वही उन आयुष्मान्को उपसंपदा हुई । ।

उसके समय यश नामक कुक्कुपुत्र पाराणसीके अर्थात् सुकुमार लक्ष्य था । उसके तीन मासात् थे—एक हेमन्तऋत एक ग्रीष्मऋत एक वर्षाका । वह वर्षाके चारो महीने वर्षा-कालिक-प्रामादमें अ-गुरुणों ( अक्षियों ) क वर्षास सवित हो मासात्के नीचे न उतरत था । ( पृष्ठ विन ) वहा कुक्कुपुत्रकी मित्रा लुब्धी ।—मारी रात वहाँ ठेक-नीप बहता था । तब वहा कुक्कुपुत्रने अपने परिव्रजको देखा—किम्पिका बगळमें बीणा है किसीके गळमें झुड़क है । किम्पिका अले-कहा किम्पिका स्मरं-गिरात किम्पिका परोत साक्षात् इमशान्तया देवदर ( उमे ) पूज्य उत्पन्न हुई, बैराग्य चित्तमें जाया । वहा कुक्कुपुत्रने उद्वाह कथा—“हा ! मत्तस !! हा ! पीदित !!”

पस कुक्कुपुत्र सुगहम् ज्ञात पहिल परक कष्टकर्षी जाँर गया । फिर नगर-द्वार की जाँर । तब यदा कुक्कुपुत्र वहाँ गया वहाँ क्षत्रियपतन सुगदाय था । उस समय भगवान् शतक विजमारकी उदकर लुळ ( स्नान ) में दख रहे थे । भगवान्ने दूरसे वहा कुक्कुपुत्रका जाँर देखा । देवदर दखलकी जगहमें उतरकर, विठे आमनपर बैठ गया । तब पस कुक्कुपुत्र भगवान्के समीप ( पहुँच ) उद्वाह कथा—‘हा ! मत्तस !! हा ! पीदित !! । भगवान्ने वहा कुक्कुपुत्रका कथा—“वस ! यह है अ-मत्तस वस ! यह है अ-पीदित । वस ! आ बैठ सुभ्र धर्म कनाता हूँ । तब वहा कुक्कुपुत्रने “वह अ-मत्तस है

१ महावग्ग १ । २ धामज्जेर-संघात । ३ मिथु-संघात । ४ स्वाब्जात=

सुन्दर प्रचारमें बर्तित । ५ महावग्ग १ ६ “अ ही” यह नगरका एक अवतलिक पदाधिकारी जाता था जो कि धार्मिक उपाचारियोंसे बचावा आता था ।

बह न-पीठिह इ बह (सुन) आह्लादित प्रसन्न हो मुबहले जूतेको उतार, जहाँ भगवान् से बहाँ गया। पास जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे वरा कुलपुत्रको भगवान्ने अनुपूर्वी कथा कही जमे—दान-कथा शिल्पकथा स्वर्ग-कथा कामवास नाशोका बुध्परिणाम-अपकार-दोष, निष्प्रमताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भगवान्ने पक्षको मन्त्र-चित्त गृह्ण-चित्त अनाच्छादित-चित्त आह्लादित-चित्त प्रसन्न-चित्त इत्या; तब जो शुद्धीकी उठानेवाली ( =ममुक्तपक्ष ) देशना ( =उपदेश ) है—दुःख समुत्प ( =दुःखका कारण), निरोध ( =दुःखका नाश ) और मार्ग ( =दुःख-नाशका उपाय )—उसे प्रकाशित किया। जैसे काकिमा-रहित कुल-बल जल्दी तरह रंग पकड़ता है वैसेही पसकुल-पुत्रको उसी आसनपर 'जो कुछ समुत्प-धर्म है वह निरोध धर्म है' यह वि-रज-निर्मल धर्मबहु उत्पन्न हुआ।

वरा कुल-पुत्रकी माता प्रासादपर चढ़ पसकुल-पुत्रको न देख, बहाँ भोष्टी गृह-पति का बहाँ गई, ( बार ) कहा—'गृहपति ! तुम्हारा पुत्र वरा दिखाई नहीं देता है ?' तब भोष्टी गृह-पति चारों ओर सवार खोज स्वर्ण बिजरा कपि-पतन भृग-दाह या उभर गया। अ धी गृहपति सुनहक जूतोंका चिह्न देख उसीके पीछे पीछे चला। भगवान्ने भोष्टी गृहपतिको बुरसे धाते देखा। तब भगवान्को ( ऐसा विचार ) हुआ—'क्यों न ही पसा वाय-बल कर्क' किन्तु भोष्टी गृहपति वहाँ बैठे वराकुल-पुत्रको न देख सके। तब भगवान्ने बीसाही योग-बल किया। भोष्टी गृहपतिने बहाँ भगवान् से बहाँ जाकर भगवान्से कहा—'मन्ते ! क्या भगवान्ने वस कुल-पुत्रको देना है ?'

'गृहपति ! बैठ। वहीं बैठ बहाँ बैठ पस कुलपुत्रको तू देखेगा।

भोष्टी गृहपति—'वहाँ बैठ बहाँ बैठे पस कुल-पुत्रको देखूँगा' वह ( सुन ) आह्लादित प्रसन्न हो भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। भगवान्ने अनुपूर्वी कथा जस—'दानकथा प्रकाशित की। अ धी गृहपतिको उसी आसनपर धर्मबहु उत्पन्न हुआ। भगवान्ने धर्ममें ध्वस्तं हा वह भगवानस बोका—'आश्चर्य ! मन्ते ! आश्चर्य ! मन्ते ॥ जैम धीकेको सीधा कर व, हीकेको उपाय दे भूकेको रान्ता बतका दे अंधकारमें तेलका प्रदीप रख व जिसमें कि शीकावाके रूप देखें; वसही भगवान्ने जनेक पर्वाजसे धर्मको प्रकाशित किया। वह मैं भगवान्की धरन जाता हूँ, धर्म और विभु-संघकी भी। आजस मुझे भगवान् सांजकि सरस्वागत उपासक प्रहल करें। वह ( गृहपति ) ही संसारमें तीन-बचनोंवाकर प्रथम उपासक हुआ।

जिस समय पिताको धर्मोपदेश किया आ रहा था उस समय देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण ( आंसीर चिन्तन ) करते वस कुल-पुत्रका चित्त अक्षिप्त हो जानवाँ ( =वापों =मन्ते ) स मुक्त हो गया। तब भगवान्के ( मनमें ) हुआ—'पिताको धर्म-उपदेश पस कुल-पुत्रका चित्त अक्षिप्त हो आजबोंसे मुक्त होगया। ( जब ) वरा कुलपुत्र पहिलकी गृहन्व जवत्याकी मूर्ति हीन ( स्थिति ) में रह कामोपमोय करनेके योग्य नहीं है क्यों न

१ कुल धर्म और संघ तीनाकी धारणायत होनेका बचन।

मैं पागपलके प्रभावको हटा हूँ।" तब भगवान्ने ऋद्धिके प्रभावको हटा लिया। अर्थात् गृहपतिन यथा कुलपुत्रको घटे देना। देवद्वार बना कुलपुत्रसे बोला—

'साह ! यथा ! तेरी माँ रोठी-पीटती तथा सांझमें पढ़ी है माताको बीबन-दाप दे ।

यथा कुलपुत्रने भगवान्की ओर आँसु फेरी। भगवान्ने अर्थात् गृहपतिको कहा—

"सो गृहपति ! क्या समझते हो जमे तुमने शेष-सहित (=अपूर्व) ज्ञानसे शेष-सहित-दर्शन (=माहात्म्य) से धर्मको देखा हैसही यजने भी ( देना ) ? ऐसे बार जानेके अनुसार प्रत्यक्षण करके उसका चित्त अस्मित हो आसर्वासे मुक्त हो गया। अब क्या वह पहिलकी गृहस्थ भवत्याकी मूर्ति हीन (स्थिति) में रह कर कामोपभोग करनेके योग्य है ?

"नहीं भन्त !

"हे गृहपति ! ( पहिल ) शेष-सहित ज्ञानसे शेष-सहित दर्शनसे यजने भी धर्मको देना जैसे तुम। ( फिर ) तेरे भार जानेके अनुसार प्रत्यक्षण करके ( उसका ) चित्त अस्मित हो आसर्वासे मुक्त हो गया। गृहपति ! अब यथा कुल-पुत्र पहिलेकी गृहस्थ-भवत्याकी मूर्ति हीन ( स्थिति ) में रह कामोपभोग करने योग्य नहीं है।"

"हाम ई मन्ते ! यथा कुल-पुत्रको सुप्यम क्रिया मन्ते ! यथा कुल-पुत्रने ; कि यथा कुल-पुत्रका चित्त अस्मित हो आसर्वासे मुक्त हो गया। मन्ते ! भगवान् पसंज अनुगामी मिथु (=प्राधात्-अमय) करके मरा आत्मन मोक्षन म्वात्मर कीजिये।"

भगवान्ने मानस स्वीकृति प्रकट की।

अर्थात् गृहपति भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ भगवान्का अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। फिर यथा कुल-पुत्र अर्थात् गृहपतिके चले जातेके भाईही दर बार भगवान्ने कहा—"भन्त ! भगवान्के पाससे मुझे प्रवृत्ता मिल उपसम्पदा मिल।" भगवान्ने कहा— मिथु ! आभी धर्म सु भग्यात ई अर्थात् तरह दुःखके क्षयके लिये प्रवृत्तयका पालन करा " यथा हम आयुष्मान्का उपसम्पदा हुई। उस समय लोकमें सात अर्थात् ध।

भगवान्ने प्राद्व समय यथा पहिल (मिहा-प्राप्त) और बीबनसे आयुष्मान् यथाका अनुगामी मिथु बना जहाँ अर्थात् गृहपतिके घर था वहाँ गये। यहाँ बिट आसनपर बैठ। तब आयुष्मान् यथाका माता भार गुरामी पर्या भगवान्के पास आई। आकर भगवान्का अभिवादनकर एक भार बैठ गई। उनका भगवान्ने अनुपविष्ट कहा फर्या। अब भगवान्ने उन्हें अर्थात् देना ; तब जा सुकौंकी उद्यम बाली देसका है—दुःख समुद्र विरोध भार मार्ग—उमे प्रशासन क्रिया। उमे कालिमा-रहित सुद-यत्र अर्थात् तरह रंग वक्रता है किमी उन ( दाना ) को उमी आसन पर—"जा कुल समुद्र धर्म है वह निराध धर्म है — वह विरजर्जनमल धर्म यथा उपक दुभा। दृष्ट-धर्म-साह-धर्म-विहित धर्म-उपसम्पदा धर्म मन्ते-रहित कथापकधन-रहित भगवान्के धर्ममें विना-रता प्रवृत्तय हो उन्होंने भगवान्का कहा—"आधर्म ! मन्त ! आधर्म ! धर्म ! आजग हमें भगवान् स्वीकृति शरणगत उपसम्पदाके जने। एक में वहाँ तीन यजना बाली प्रथम उपागिरावे हुई।

आयुष्मान् प्राद्व माता पिता भार गुरामी पर्या भगवान् और आयुष्मान् बराको उक्त ग्राह आत्मन गम्या कर अर्थात् प्रवृत्तिय क्रिया। अब आत्मन भगवान्ने प्राद्व हाथ

सौं ब किया तब मगवान्के एक जोर बैठ गये । तब मगवान् आयुष्मान् पशके माता-पिता और पुरानी पत्नीको धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शन=समाज्ञापन=समुत्तेजन=प्रवचन कर आत्मब से उठकर चक दिये ।

आयुष्मान् पशके चारों गृही मित्रों चाराणसीके अष्टी-अनुग्रह दिवोंके कुत्तके कहकों— विमल सुबाहु पूर्णचित्त और शर्वापतिने सुना कि पश कुम्भ-पुत्र शिर-दाबी मुवा कथा पशक पहिन घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो गया । सुनकर उनके (चित्तमें) हुआ—“बह बर्म-बिनप छोटा न होगा बह प्रजया ( उत्सव्यास ) छोटी ग होगी जिसमें पश कुम्भपुत्र शिर-दाबी मुदा कथाप-बह पहिन घरसे बेघर हो प्रव्रजित हो गया । बह वहाँसे आयुष्मान् यशके पास भाये । आकर आयुष्मान पशको अभिवादनकर एक जोर लड़े हो गये । तब आयुष्मान् पश उन चारों गृही मित्रों सहित वहाँ मगवान् थे वहाँ भाये । आकर मगवान्को अभिवादन कर एक जोर बैठ गये । एक जोर बैठ हुए आयुष्मान् पशके मगवान्को कहा—“भन्ते ! यह मेरे चार गृही मित्र चाराणसीके अष्टी-अनुग्रह दिवोंके कुत्तके कहकों— विमल, सुबाहु, पूर्णचित्त और शर्वापति—दे । इन्हें मगवान् उपदेश करें=अनुसासन करें” । उनको मगवान्ने आयुष्मिक कथा कही । बह मगवान्के धर्ममें विशारद=स्व तन्त्र हो मगवान्से बोले—“भन्ते ! मगवान्के पाससे हमें प्रजया मिळे उपसम्पदा मिळे ।” मगवान्ने कहा—

‘सिन्धुजो ! आधो धम सु-आख्यात ई । अच्छी तरह दुःखके छयके किये महात्तर्पका पाकर करो । यही उन आयुष्मान्को उपसम्पदा हुई । तब मगवान्ने तब सिन्धुजोको धार्मिक कथाओं द्वारा उपदेश दिया=अनुशासना की । ( जिससे ) अकिस हो उनके चित्त चाम्बोंसे मुक्त हो गये । उस समय कोकमें ग्यारह बर्हत् थे ।

आयुष्मान् पशके प्रामवासी (=आनपद=व्रीहती ) पुराने साम्दानोंके पुत्र पशाम गृही मित्रोंने सुना कि पश कुम्भपुत्र प्रव्रजित हो गया । सुनकर उनके चित्तमें हुआ—“बह बर्म-बिनप छोटा न होगा जिसमें पश कुम्भ-पुत्र प्रव्रजित होगया । बह आयुष्मान् पशके पास भाये । आयुष्मान् पश उब पचास गृही मित्रों सहित मगवान्के पास भाये । मगवान्ने सिन्धुमताक महात्म बर्णन किया । बह विशारद हो मगवान्से बोले— हमें उपसम्पदा मिळे । उन आयुष्मान्को उपसम्पदा हुई । तब मगवान्ने उपदेश दिया । ( जिससे ) अकिस हों उनके चित्त चाम्बोंसे मुक्त होगये । उस समय कोकमें एकसठ बर्हत् थे ।

x x x x

चारिका-सुच । उपसपदा-प्रकार । भद्रवर्गीयोंकी प्रव्रज्या । काश्यप-पधुओं की प्रव्रज्या ।

‘मगवान्ने सिन्धुजोको संबोधित किया—“सिन्धुजो ! जितने ( भी ) दिव्य और आयुष पास (व्यवहन) दे ई (उन सबों) से मुक्त हूँ तुम भी दिव्य आर आयुष पाओसे

१ धार्मिक समग्रदाय । २ देखा पृष्ठ २५ । ३ संसुच-नि ४११४; महावमा १ ।

मैं वागवचक प्रभावकी इटा हूँ । तब भगवान्ने आदिके प्रभावको इटा लिया । अ ही गुरुपतिने पक्ष कुलपुत्रको बँडे देया । देखकर पक्ष कुलपुत्रसे बाबा—

“ताठ ! बस ! तेरी माँ रोखी-पीछी तथा शोर्म्म पक्षी है माताको बीबन-दान दे ।

बस कुलपुत्रने भगवान्की ओर भाँल देरी । भगवान्ने अ ही गुरुपतिके कहा—

“मो गुरुपति ! क्या समझते हो जैसे तुमने शेष-सहित (=अपूर्ण) ज्ञानसे शेष-सहित-दर्शाब (=माझात्कार) से धर्मको देख बैसैही बसने भी ( देला ) ? जैसे और अपनेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके उत्तक चित्त अक्सि हो आसर्वासे मुक्त हो गया । अब क्या वह पहिलेकी गुरुत्व-अवस्थाकी भाँति हीन (स्थिति-) में रहकर कामोपभोग करनेक योग्य है ?”

“नहीं मन्ते !”

“हे गुरुपति ! ( पहिल ) शेष-सहित ज्ञानसे शेष-सहित दर्शाबने पक्षने भी धर्मको देखा जते दने । ( फिर ) ऐसे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके ( उत्तक ) चित्त अक्सि हो आसर्वासे मुक्त हो गया । गुरुपति ! अब पक्ष कुल-पुत्र पहिलेकी गुरुत्व अवस्थाकी भाँति हीन (स्थिति) में रह, कामोपभोग करने योग्य नहीं है ।

“काम है मन्ते ! यदा कुल-पुत्रको मुकाम किया मन्ते ! पक्ष कुल-पुत्रन ; कि बस कुल-पुत्रक चित्त अक्सि हो आसर्वासे मुक्त हो गया । मन्ते ! भगवान् बसको अनुगामी मिश्रु (=पाषाण् धमम) करके मेरा आजका भोजन स्वीकार कीजिये ।

भगवान्ने मीलग स्वीकृति प्रकट की ।

अ ही गुरुपति भगवानकी स्वीकृति जान आसन्न ठठ भगवान्को अभिवादन प्रदर्शनाकर चला गया । फिर पक्ष कुल-पुत्रने अ ही गुरुपतिके चले जानेके बाईही देर बाय भगवान्ने कहा—“मन्ते ! भगवान्के पाससे मुझे प्रकृपा मिसे उपसंपदा मिसे ।” भगवान्ने कहा—“मिश्रु ! आजी धर्म सु-अप्यात है अच्छी तरह दुतरक छपके किय प्रकृपके पाकर करो ” यही ह्य आपुष्मानकी उपसम्पदा हुई । उस समय साकमें सात बहिनू थ ।

भगवान् पूषाङ्क समय बस पहिल ( निष्ठा-) पात्र बार चत्वरके आपुष्मान् यदाकी अनुगामी मिश्रु बसा जहाँ अ ही गुरुपतिके घर था वहाँ गये । वहाँ चिठे आममपर बँडे । तब आपुष्मान् पक्षका माता आर पुरानी पक्षी भगवान्के पास आई । आकर भगवान्को अभिवादनकर पत्र ओर बैठ गई । उतका भगवानने आनुपबिक कया करी । बस भगवान्ने उन्हे सम्पत्ति देगा ; तब जो पुत्रोंकी बडाने बाकी दसमा है—दु ग समुद्र निरोध और मार्ग—उमे प्रकृषित किया । जम कर्मिमा-रहित गुरु-बस अच्छी तरह रंग पकड़ता है बैसही उन ( दानों ) को उमी आमम पर—“जा कुछ समुद्र धर्म है वह गिराव धर्म है”—पद विरज्ज्विलक धर्मकभु उत्पन्न हुआ । ह्य-धर्म-प्राप्त-धर्म-विविध धर्म-व्यपयोग-धर्म समुद्र-रहित कथापटयन-रहित भगवान्के धर्ममें विस्तारदा प्राप्त-म्वतन्त्र हा उन्हे भगवान्ने कहा—“आधर्ष ! मन्ते ! आधर्ष !! मन्ते ! आजम हमें भगवान् सांभालि धारणागत उपासिकाके जाले । साक में वही तीन पक्षों बानी प्रथम उपासिकाके हुई ।

आपुष्मान् बसाङ्क माता पिता आर पुरानी पक्षने भगवान् आर आपुष्मान् बसका उत्तम ग्राह-आजमम समुद्र कर-व्यवहारित किया । जय आजमर भगवान्ने पात्रसे हाथ

की व क्षिया तब भगवान् के एक ओर बैठ गये । तब भगवान् आयुष्मान् पराके माता-पिता और पुरानी पत्नीके धार्मिक-कथा द्वारा संवर्द्धन=प्रमाणापन=समुत्थेवन=समहृदय कर भयम से उठकर चक दिये ।

आयुष्मान् पराके चारों गृही मित्रों वाराणसीके बौद्धी-भनुमोष्ठियोंके कुकके कदकों—  
विमल, सुवाहू पूर्णक्षित् और गवांपतिने मुवा कि पस कुक-पुत्र शिर-वाही मुवा कापा यवक पहिन, धरसे वेपर हो प्रकथित हो गया । सुनकर उनके (चित्तमें) हुआ—“बह धर्म-विनय छोटा न होगा बह प्रज्या (असंभ्यास) छोटी न होगी जिसमें पस कुक-पुत्र शिर-वाही मुवा कापाय-बक पहिन धरसे वेपर हो प्रकथित हो गया । बह वहाँसे आयुष्मान् यशके पास आवे । आकर आयुष्मान् पसको अभिवादनकर एक ओर लड़े हो गये । तब आयुष्मान् परा उन चारों गृही मित्रों सहित वहाँ भगवान् से वहाँ भये । आकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् पराने भगवान् को कहा—“मन्ते ! यह मेरे चार गृही मित्र वाराणसीके बौद्धी-भनुमोष्ठियोंके कुकके कदके—  
विमल, सुवाहू पूर्णक्षित् वार गवांपति—हे । इन्हें भगवान् उपदेश करें=भनुसासक करें” । उनको भगवान् ने ‘आनुपूर्विक कथा कही । बह भगवान् के धर्ममें विचारद=स्व तन्त्र हो भगवान् के बोले—“मन्ते ! भगवान् के पाससे हमें प्रमज्या मिळे उपसम्पदा मिळे । भगवान् ने कहा—

‘मिथुभो ! आभो धम सु-भाष्पाठ है । अच्छी तरह दुःखके छपके किये महाचर्यका पावन करो ।’ यही उन आयुष्मावाकी उपसम्पदा हुई । तब भगवान् ने उन मिथुभोंको धार्मिक कथाओं द्वारा उपदेश दिया=भनुसासना की । (जिससे) अक्षिप्त हो उनके चित्त भावार्थसे मुक्त हो गये । उस समय लोकमें ग्वारह बर्हन् थे ।

आयुष्मान् पसके प्रामवासी (अज्ञानपद=दीहाती) पुराके काम्दामोंके पुत्र पचास गृही मित्रोंने मुना कि पस कुक-पुत्र प्रकथित हो गया । सुनकर उनके चित्तमें हुआ—“बह धर्म-विनय छोटा न होगा जिसमें पस कुक-पुत्र प्रकथित होगा । बह आयुष्मान् पसके पास आवे । आयुष्मान् परा उन पचास गृही मित्रों सहित भगवान् के पास आये । भगवान् ने निन्दामताका महात्म बर्जन किया । बह विचारद हो भगवान् से बोले— हमें उपसम्पदा मिळे । उन आयुष्माओंकी उपसम्पदा हुई । तब भगवान् ने उपदेश दिया । (जिसमें) अक्षिप्त हों उनके चित्त भावार्थसे मुक्त हो गये । उस समय लोकमें एकसठ बर्हन् थे ।

x

x

x

x

चारिका-सुक्त । उपसंपदा-प्रकार । मद्रवर्गीयोंकी प्रयज्या । काश्यप-वंधुओं की प्रयज्या ।

भगवान् ने मिथुभोंको सम्बोधित किया—“मिथुभो ! जितन (भी) दिव्य और मानुष पाप (=बन्धन) हैं मैं (उन सबों) से मुक्त हूँ तुम भी दिव्य वार मानुष पापोंसे



ई मांगल्यके प्रमाणको हटा खूँ । तब भगवान्ने खुदिके प्रभावको हटा लिया । अरु श्री गृहपतिन बस कुम्भपुत्रको बैठे देखा । इत्यन्तर बस कुम्भपुत्रसे बोस—

‘सात ! बस ! तेरी माँ रोती-पीटती तथा सोझमें पड़ी है माताको जीवन-दाय दे’ ।

यथा कुम्भपुत्रने भगवान्का ओर जाँल फेरी । भगवान्ने अरु श्री गृहपतिको कहा—

“सो गृहपति ! क्या समझते हो जैसे तुमने शेष-सहित (=अपूर्व) ज्ञानस शेष-सहित-दर्शांक (=साक्षात्कार) से धर्मको देखा जैसेही यद्यने मी ( देखा ) ? जैसे और ज्ञानके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके उसका चित्त अकिस हो जाऊबोंसे मुक्त हो गया । अब क्या यह पहिलेकी गृहत्व-अवस्थाकी भाँति हीन (स्थिति) में रह कर कामोपभोग करनेके योग्य है ?”

‘नहीं मन्ते !

‘हे गृहपति ! ( पहिले ) शेष-सहित ज्ञानसे शेष-सहित दर्शाने बसाने मी धर्मको देखा जैसे तुने । ( फिर ) देले और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके ( उसका ) चित्त अकिस हो जाऊबोंसे मुक्त हो गया । गृहपति ! अब यथा कुम्भ-पुत्र पहिलेकी गृहत्व-अवस्थाकी भाँति हीन (स्थिति) में रह कामोपभोग करने योग्य नहीं है ।”

‘काम है मन्ते ! यथा कुम्भ-पुत्रको मुझम किना मन्ते ! यथा कुम्भ-पुत्रन ; कि यथा कुम्भ-पुत्रका चित्त अकिस हो जाऊबोंसे मुक्त हो गया । मन्ते ! भगवान् यथाकी अनुगामी मिथु (=याज्ञान् प्रमत्त) करके मेरा जाऊका भोजन स्वीकार करिजिय ।

भगवान्ने मीकम स्वीकृति प्रकृत थी ।

अरु श्री गृहपति भगवान्की स्वीकृति ज्ञान आसनस उठ भगवान्को अभिवादनप्र प्रवर्द्धिवाकर, बस गया । फिर पद्य कुम्भ-पुत्रने अरु श्री गृहपतिके कले आनेक घाँसीही देर बाद भगवान्ने कहा—“मन्ते ! भगवान्के पाससे मुझे प्रकृता मिले उपसंपदा मिले ।” भगवान्ने कहा—“मिथु ! आजो धर्म सु-अव्याप्त है अथ्यी तरह दुःखके छुटके किये प्रकृतिको पाकन करा ” यही इस आयुष्मान्की उपसम्पदा हुई । उस समय कीकर्म सप्त भईत् थे ।

भगवान् पूजाके समय बस पहिल (मिथु-प्रात) आर आरके आयुष्मान् यशका अनुगामी मिथु बना बहौ अरु श्री गृहपतिको धर वा बहा गये । वहाँ बिठे आसनपर बैठे । तब आयुष्मान् बसकी माता आर पुरानी पड़ी भगवान्के पास आई । आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई । उसके भगवान्ने आयुषिके कथा कही । अब भगवान्ने उन्हे अर्धचित्त देया ; तब जो कुञ्जीकी उद्यमे बाधी देसना है—दुःख समुदय विरोध आर मार्ग—उसे प्रकृतित किवा । जैसे कश्मिना रहित सुख-बक अथ्यी तरह रंग पकवता है जैसेही उन ( दोनो ) को उसी आसन पर—“ओ कुष्ठ समुदय-धर्म है वह विरोध धर्म है”—वह विरज-निर्मल धर्मबहु उत्पन्न हुआ । दृष्ट-धर्म-आप्त-धर्म-विहित धर्म-अर्धवगाह-धर्म सम्प्रेद-रहित कथोपकथन-रहित भगवान्के धर्ममें विशारदता प्राप्त-अत्यन्त हो उन्हींने भगवान्का कहा—“आधर्ष ! मन्ते ! आधर्ष ! मन्ते ! आधर्ष ! मन्ते ! भगवान् सीधकि पारलागत उपामिथ्ये ज्ञाने । लोक में वही तीव्र पकनो बाधी प्रथम उपामिथ्ये हुई ।

आयुष्मान् बसके माता पिता आर पुरानी पड़ीने भगवान् आर आयुष्मान् पसंडा उत्तम पाठ-भोजनस सम्पूत कर-अर्धवधारित किवा । अब भोजनकर भगवान्ने पात्रस दाय

वह बेव्हा हम लोगोंके लगामें हो चुमते बरत जाभूपन धावि लकर भाग गई। सो मन्ते ! हम लोगों मित्रकी मर्दमें उस कीको जोखते हुये इस बर-बाँडको हीँट रहे हैं।”

‘तो कुमारो ! क्या समझते हो तुम्हारे किये कीन उचम हागा, यदि तुम कीको हीँटो अपना तुम अपने को हीँटो।

‘मन्ते ! हमारे किये पही उचम है यदि हम अपनेको हीँटें।

‘तो कुमारो ! बड़ो मैं तुम्हें धर्म-उपदेश करता हूँ।

‘अच्छा मन्ते !’ कह मद्रघर्गीय मित्र भगवान्को बम्नाकर एक ओर बैठ गये। उन्को भगवान्ने धानुपूर्वी कवा ‘करी। भगवान्के धर्ममें विशारद हो भगवान्ने बोले— भगवान्के हापसे हमें प्रव्रज्या मिले। वही उग जायुष्यानोंकी उपसम्पदा हुई।

वहाँसे भगवान् क्रमसा विचरते हुये उरधेछा पहुँचे। उस समय उरधेछामें तीन जटिक (=जटाधारी)—इरधेछ-काश्यप नदी-काश्यप और गया-काश्यप—बास करते थे। उनमें उरधेछ-काश्यप जटिक पाँच सो जटिकोंका नायक=विधापक=जम=प्रमुख=प्रामुख बा। नदी-काश्यप जटिक तीन सी जटिकोंका नायक। गया-काश्यप जटिक दो सो जटिकोंका नायक। तब भगवान् उरधेछ-काश्यप जटिकके आग्रमपर पहुँच उरधेछा-काश्यप जटिकसे बोले—‘काश्यप ! यदि तुसे मारी न हो तो मैं एक रात (तेरी) अग्निशाकामें बास करूँ।’

‘महाभ्रमण ! मुझे मारी नहीं है (केकिन) यहाँ एक बड़ा ही चंड विष्णु-सक्तिधारी व्याधी-विष्णु=ओर-विष्णु नागराज है। कहीं वह तुम्हें हानि न पहुँचावे।

दूसरी बार भी भगवान्ने उरधेछ-काश्यप जटिकको कहा—“।”

तीसरी बार भी भगवान्ने उरधेछ-काश्यप जटिकको कहा—“।”

‘काश्यप ! जना मुझे हानि न पहुँचावेगा व मुझे अग्निशाकाकी स्वीकृति दे दे।’

‘महाभ्रमण ! मुझसे विहार करो।’

तब भगवान् अग्निशाकामें प्रविष्ट हो एन विद्य बासन बाँध सरीरको सीधा एक स्थिति को बिरकर बैठ गये। भगवान्को भीतर बाया देक नाग ऊँट हो धूमो देने लगा। भगवान्के (मनमें) हुआ—‘यों व मैं इस नागके छारक धर्म मोस बस हूँ मन्नाको बिना हानि पहुँचावे (अपने) तेजसे (इसके) तेजको कीच लूँ। फिर भगवान्मी बीसेही पागबकसे धूमो देने लगे। तब वह नाग कोपको सहन न कर प्रव्रजित हो उठा। भगवान्मी तेज-महामूठ (=बाहु) में समाविष्ट हो प्रव्रजित हो उठे। उरधेछा-काश्यपको ज्योति रूप होनेसे वह अग्निशाक जकठी हुई=प्रव्रजितसी जान पड़ने लगी। तब वह जटिक अग्निशाकको चारों ओरसे घेरे पाँ कहने लगे—‘हाप ! परम-मुन्दर महाभ्रमण नागाद्वारा

१ देखो पृष्ठ २५

२ उस समयके जटिकोंका एक सम्प्रदाय जो महाचारी बटाचारी अग्निहोत्री होते थे।

सुख होओ। मिश्रजो! बहु जन-हिताय (=बहुत जनोके हितके किये) बहु-जन-सुखाय (=बहुत जनोके सुखके किये) कोकपर तथा करनेके किये बेबताओं और मनुष्योंके प्रयोजनके किये हितके किये सुखके किये चारिका चरण (=विचारण) करो। एकसाथ ही मत जाओ। मिश्रजो! आविमें कम्पाण-(-कारक) मध्यमें कम्पाण (-कारक) जन्तमें कम्पाण (-कारक) (इस) धर्मका उपदेश करो। अर्ध-सहित=ध्वंजन-सहित केवक (=अधिमित्र) परिपूर्ण परिशुद्ध महाचर्यका प्रकाश करो। अल्प दोषवाक प्राणी (मी) हैं धर्मके न ज्ञान करनेसे उनकी हानि होगी। (सुनसेसे वह) धर्मके जाननेवाले हैं। मिश्रजो! मैं भी वहाँ उदयेका है वहाँ सेनानी ग्राम है वहाँ धर्म-देशनाके किये जाठंगा ।”

‘उस समय भगवान्-विश्राब्धोसे नाग-जनपदोसे मिश्र प्रजन्त्याकी इच्छावाके उपसम्पदाकी अपेक्षावाके (आश्चर्योका) करते थे कि भगवान् उन्हें प्रवृत्त बचाने उपसम्पदा करें। इससे मिश्र भी ईराय होते थे प्रजन्त्या-उपसम्पदा चाहनेवाके भी। एकान्तस्थित प्यावावस्थित भगवान्के विषयमें (विचार) हुआ “क्यों न मिश्रजोको ही अनुज्ञा दे दें कि मिश्रजो! तुम्हीं उच-उच विश्राब्धोमें उच-उच जनपदोंमें प्रवृत्त बचाने उपसम्पदा करो। इसकिये भगवान्ने संव्या समय मिश्र-संधको एकत्रित कर धर्मकका कह संबोधित किया—“मिश्रजो! एकान्तमें स्थित प्यावावस्थित। इसकिये है मिश्रजो। मैं स्वीकृति देता हूँ —अब तुम्हें ही उच-उच विश्राब्धोमें उच उच देशोंमें प्रजन्त्या देनी चाहिये उपसम्पदा देनी चाहिये। और उपसम्पदा देवका प्रकार यह है—पहिले फिर-हाथी मुदवाकर काप्यन बंध पहनाकर, उपरना एक कंधेपर कराकर, मिश्रजोकी पाद-बंधना कराकर, उकडू देनाकर हाथ जोड़कर “ऐस बोको” कहना चाहिये—“बुद्धकी शरण लेता हूँ धर्मकी शरण लेता हूँ संघकी शरण लेता हूँ। दूसरी बार भी बुद्धकी धर्मकी संघकी शरण लेता हूँ। तीसरी बार भी बुद्धकी धर्मकी संघकी शरण लेता हूँ। इस तीन शरणागमनोंसे प्रजन्त्या और उपसम्पदा (देवकी) अनुज्ञा देता हूँ।

भगवान् चारणसीमें इच्छानुसार विहार कर (साठ मिश्रजोको मित्र-मित्र विद्या-धर्मों में भेजकर) फिर उदयेका है ठहर चारिका (=विचारण) के किये एक किये। भगवान् मार्गसे रहकर एक बौद्ध-जंघमें पहुँच जन-जंघमें भीतर एक बुद्धके नीचे जाकर बैठे। उस समय मद्रुवर्गीय (नामक) तीस मित्र अपनी कियों सहित उसी जन-जंघमें विनोद करते थे। (उधमें) एककी पत्नी न थी। उसके किये बेव्या काई गई थी। वह बेव्या उनके मस्तामें हो बूस्ते बंध, अध्यात्म आदि लेकर भाग गई। तब (सब) मित्रोंमें (अपने) मित्रकी मददमें उस धीको खोजते उस जनजंघके हीरते बुद्धके नीचे बैठे भगवान्के देला। ( फिर ) वहाँ भगवान् ने वहाँ गये। जाकर भगवान्से बोके—“मन्ते! भगवान्ने (किमी) कीको तो नहीं देला ?”

“कुमारो! तुम्हें कीसे क्या है ?”

“मन्ते! इस मद्रुवर्गीय (नामक) तीस मित्र (अपनी-अपनी) पत्नियों सहित इस जन जंघमें शर-विनोद कर रहे थे। एककी पत्नी न थी उसके किये बेव्या काई गई थी। मन्ते!

वह बेसुया हम लोगोंके लशामें हो चुमते बरक आमुष्म आदि केकर भाग गई । सो मन्ते । हम लोग मित्रकी मद्रुमें उस लीको खोजते हुये इस बन-सँदको हींठ रहे हैं ।”

“तो कुमारो ! क्या समझते हो तुम्हारे लिये कौन उत्तम होगा; यदि तुम लीको हींठो अथवा तुम अपने को हींठो ।

“मन्ते ! हमारे लिये पही उत्तम है यदि हम अपनेको हींठें ।

“तो कुमारो ! बैठो मैं तुम्हें धर्म-अपवेश करता हूँ ।

“अच्छा मन्ते !” कह मद्रघर्गीय मित्र मगवान्को बन्दबाकर एक ओर बैठ गये । उनको मगवान्ने आधुपूर्वी कथा कही । मगवान्के धर्ममें विश्वास हो मगवान्स बोले— मगवान्के हाथसे हमें प्रवर्धना मिले । वही बन आमुष्मालोंकी उपमम्पवा हुई ।

वहाँसे मगवान् क्रमशः विचरते हुये उदबेला पहुँचे । उस समय उदबेलामें तीन अटिक (=उद्यापारी)—उदबेस-काश्यप नदी-काश्यप और गया-काश्यप—वास करते थे । उनमें उदबेस-काश्यप अटिक पौत्र सौ अटिकोंका नायक=विनायक=अग्र=प्रमुख=आमुख वा । वही-काश्यप अटिक तीन सौ अटिकोंका नायक । गया-काश्यप अटिक दो सौ अटिकोंका नायक । तब मगवान् उदबेस-काश्यप अटिकके आज्ञापर पहुँच उदबेस-काश्यप अटिकने बोले—‘काश्यप ! यदि तुम मारी न हो तो मैं एक रात (तेरी) अग्निशाकमें बास करूँ ।”

“महाधर्म ! तुम मारी नहीं है (लेकिन) यहाँ एक बड़ा ही बँड विष्य-सन्निधारी धासी-विष्य=ओर-विष्य नागराज है । वहाँ वह तुम्हें हानि न पहुँचावे ।

दूसरी बार भी मगवान्ने उदबेस-काश्यप अटिकको कहा—“ ।”

तीसरी बार भी मगवान्ने उदबेस-काश्यप अटिकको कहा—“ ।

“काश्यप ! बाग तुमसे हानि न पहुँचावेया तू मुझे अग्निशाककी स्वीकृति दे दे ।

“महाधर्म ! सुनसे विहार करो ।”

तब मगवान् अग्निशाकमें प्रविष्ट हो एक विद्या आसन बाँध सरीरको सीधा रख स्मृति को धिक्कर बैठ गये । मगवान्को मीतर जाया देस नाग मृद हो पूर्वा देन कया । मगवान्के (मनमें) हुआ—‘यहाँ व मैं इस नागके छाक धर्म माँख बस हूँ मजाको बिना हानि पहुँचाये (अपने) तेजसे (इसके) तेजको लीच लूँ ।” फिर मगवान्मी बीसेही योगबलसे पूर्वा देने लगे । तब वह बाग कोपको सहन न कर प्रवर्धित हो उठा । मगवान्भी तेज-महामूह (=पाण्डु) में समाविष्ट हो प्रवर्धित हो उठे । उन दोनोंके ज्योति रूप होनेस वह अग्निशाक जकठी हुई=प्रवर्धित्यसी जान पड़ने लगी । तब वह अटिक अग्निशाकको चारों ओरसे धिरे धीं कहने लगे—“हाव ! परम-मुम्द्र महाधर्मम नागद्वारा

१ देखो पृष्ठ २५

२ उग्र समयके मद्रालोंका एक सम्प्रदाय जो मद्रघारी उद्यापारी अग्निहोत्री होते थे ।

मारा जा रहा है। भगवान्ने उस रातके बीच खानपर, इस नागके छाक परमँ मॉस पास हूँ मजाको बिना हाथि पहुँचाये (अपने) तेजसे (उसका) तेज खीँकर पापम रथ (उसे) उठयेछ-काइपप बटिक को दिखाना—'काइप ! यह तेरा नाग है (अपने) तेजसे (मैंने) इसका तेज खीँच लिया है। तब उदयेक-काइपप बटिकके (मनमें) हुआ—महादिग्गजकिशकाका—महाभ्रमज-बाका' महाभ्रमज है जिनमे कि दिग्गजकि संपथ आसी-विप-धोर-विप चण्ड नागराजका तेज (अपने) तेजसे खीँच लिया। । भगवान्के इस चमत्कार (अद्विदि प्रतिहार्य) से (चकेत हो) उदयेक-काइपप बटिकने भगवानको कहा— "महाभ्रमज ! यहीं बिहार करो मैं गिल्ब भोजनसे तुम्हारी (सेवा करूँगा) ।

भगवान् उदयेक-काइपप बटिकके आभ्रमके समीप-वर्ती एक बन-खण्डमें उदयेक काइपपका दिवा भोजन ग्रहण करते हुए बिहार करने लगे ।

उस समय उदयेक-काइपप बटिकको एक महापद्म आन उपस्थित हुआ। जिनमें सारेके सारे अंग प्रगद्य-निवाली बहुतसा काय-भोज्य लेकर जानेवाडे थे। तब उदयेक काइपपके चित्तमें (विचार) हुआ— "इस समय भरा महापद्म आन उपस्थित हुआ है सार अंग-भगवान्के बहुतसा काय भोज्य लेकर आवेंगे। यदि महाभ्रमजने जब-अमुदापमें चमत्कार दिखकाया तो महाभ्रमजका लाभ धीर सत्कार बड़ेगा मेरा काम सत्कार घटेगा। जयका होता यदि महाभ्रमज कक (से) न आता।" भगवान्ने उदयेक-काइपप बटिकके चित्तका चित्तके (अपने) चित्तसे आन 'उत्तर-कुठ का बहोसे सिद्धाज से भनबतस 'सरोवर (अद्व) पर भोजनकर यहीं दिनको बिहार किया। उदयेक-काइपप बटिक उस रातके बीच जागेपर, भगवान्के पास जा बोला— "महाभ्रमज ! (भोजनका) समय है भात लम्बर हो गया। महाभ्रमज ! कक कहीं नहीं आवे ? इसभोग आपको पाव करते थे—'यों यहीं आवे ? आपके काय भोज्यका भाग रक्का है।

"काइप ! क्यों ? क्या तेरे मनमें (कक) यह न हुआ या कि इस समय मेरा महापद्म आन उपस्थित हुआ है महाभ्रमजका कामसत्कार बड़ेगा ? इसप्रतिभे काइप ! तेरे चित्तके चित्तके (अपने) चित्तसे जाग मैंने उत्तरकुठका भनबतस सरोवर पर यहीं दिनको बिहार किया। तब उदयेक-काइपप बटिकको हुआ—महाभ्रमज महापुमाव दिग्गज शक्तिधारी है जोकि (अपने) चित्तसे (दूसरेका) चित्त जान लेता है। तो धी यह (सेवा) नईयू नहीं है क्या कि मैं।

तब भगवान्ने उदयेक-काइपपका भोजन ग्रहण कर उमी बन-खण्डमें (जा) बिहार किया।

एक समय भगवान्को पौमु-नृत् (पुत्राने खींचने) प्राप्त हुए। भगवान्के दिग्गज हुआ— "मैं पौमु-नृत्के कहीं चोर्डे। तब देखाके इन्द्र शक्ये भगवान्के चित्तको जान जाव हापसे पुत्ररिषी ग्राहकर भगवान्को कहा— 'भय ! भगवान् ! (वहाँ)

पांसुकूल धोचें । तब भगवान्को हुआ—“मैं पांसुकूलोंको कहाँ उपहूँ ( =पीहूँ )” इन्द्रने ( बहाँ ) बड़ी भारी शिखा डाल दी । तब भगवान्को हुआ—“मैं किसका आरम्भ ले ( बीचे ) उठऊँ” । इन्द्रने साक्षात्करा ही । मैं पांसुकूलों को कहाँ फल्यऊँ ? इन्द्रने एक बड़ी भारी शिखा डाल दी । उस रातके बीत जानेपर उल्लेख काश्यप उठिकने कहाँ भगवान् से बहाँ पहुँच भगवान्से कहा—‘महाभ्रमण ! ( भोजनका ) समय है मात तप्यार हो गया है । महाभ्रमण ! यह क्या ? यह पुण्डरिणी पहिले यहाँ न थी ! । पहिले यह शिखायें ( भी ) यहाँ न थीं, यहाँपर शिखायें डालीं किसने ? इस ककुप ( वृष ) की शाखा ( भी ) पहिले कटकी न थी सो यह कटकी है ।

“तुझे काश्यप ! पांसुकूल प्राप्त हुआ ” उल्लेख-काश्यप उठिकल ( मतमें ) हुआ—“महाभ्रमण दिव्य-शक्ति-वारी है ! महा-अनुमान-वाक्य है । तो भी यह बैसा बर्हत् नहीं है जसा कि मैं” । भगवान्ने उल्लेख-काश्यपका भाजन ग्रहणकर उठी वन लंडमें बिहार किया ।

एक समय बड़ा भारी जलकलमेध बरसा । जलभी बड़ी बाढ़ जा गई । जिस प्रदक्षमें भगवान् बिहार करते थे वह पानीसे डूब गया । तब भगवान्को हुआ—“क्यों न मैं चारों ओरसे पानी हटाकर बीचमें धूलियुक्त भूमिपर अन्नमय करूँ ( दखूँ ) ? भगवान् पानी हटाकर धूलि-युक्त भूमिपर उठिकने लगे । उल्लेख-काश्यप उठिक—“अरे ! महाभ्रमण अकर्म डूब न गया हो ! ( यह मोच ) नाथ क बहुतने बहिलोंके साथ जिन प्रदक्षमें भगवान् बिहार करते थे बहाँ गया । ( उनमें ) भगवान्को धूलि-युक्त भूमिपर उठिकने देखा । देपकर भगवान्स बोला—‘महाभ्रमण यह तुम हो ?’ “यह मैं हूँ” कह भगवान् जाकरधमें उब जाधमें आकर खड़े हो गये । तब उल्लेख काश्यप उठिकको हुआ—“महा भ्रमण दिव्य-शक्ति-वारी है किन्तु यह बसा बर्हत् नहीं है जसा कि मैं” । तब भगवान्को ( बिचार ) हुआ ‘बिरकाक तक इस मूर्ख ( मोघपुरुष ) का यह ( बिचार ) होता रहेगा कि—महाभ्रमण दिव्य-शक्ति-वारी है, किन्तु यह बसा बर्हत् नहीं है जसा कि मैं । क्यों न मैं इस उठिकको संबोधन करूँ ? । तब भगवान्ने उल्लेख काश्यप उठिकका कहा—‘काश्यप ! न तांत् बर्हत् है न बर्हत्के मार्गपर आरूढ । वह सूत भी तुझे नहीं है जिसमें बर्हत् होवे या बर्हत्के मार्गपर आरूढ होवे ।’ उल्लेख काश्यप उठिक भगवान्के पैरोंपर शिर रख भगवान्स बोला—“अग्ने ! भगवान्के पामसं मुझ प्रवस्था मिसे उपसम्पदा मिसे”

‘काश्यप ! तू पांच सी बहिलोंका नाथक है । उनको भी देख । तब उल्लेख काश्यप उठिकने जाकर उन बहिलों से कहा—“मैं महाभ्रमणके पास महाभ्रमण-ग्रहण करता चाहता हूँ तुम लोगों की जो इच्छा हो सो करो ।”

“द्वैतं इम महाभ्रमणम प्रमन्न इं बहि भाप महाभ्रमणके पाम महाभ्रमण-व्रमण करेगे ( वा ) इम सभी महाभ्रमणके पास महाभ्रमण व्रमण करेंगे” ।

बह सभी जटिल केस-सामग्री बस-सामग्री 'गारीकी धीकी सामग्री भूमिहोत्र-सामग्री (आदि जपने सामानका) अस्म प्रवाहित कर, भगवान्के पास गये । आकर भगवान्के शरणमें शिर मुकाब बोले— 'भन्ते ! हम भगवान्के पास प्रयत्ना पावें उपसम्पदा पावें ।"

"मित्रुभो ! आधो धर्म सु-आख्यात है, मसी प्रकार दुःखके अस्त करनेके लिये महाधर्म पालन करो ।

वही उक्त आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

सही काश्यप जटिलके केस-सामग्री बस-सामग्री गारीकी धीकी सामग्री भूमिहोत्र सामग्री वहींमें बहती हुई देगी । हेतकर उमका हुआ— "जरे ! मेरे भाईको कुछ अपिष्ट तो नही हुआ है (भार) जटिलको— "जाभा मरे भाईको बैरगे तो ; (कह) स्वयंभी तीनमा जटिलोंके साथक जहाँ आयुष्मान् उपले-काश्यप से बहो गया ; और जाकर बोस— "काश्यप ! क्या यह अष्ट है ?"

'हाँ आयुम ! यह अष्ट है ।"

तब यह जटिलभी बस-सामग्री जपने प्रवाहितकर जहाँ भगवान्के पास बहो गये । आकर बोस— "पावें हम भन्ते ! उपसम्पदा । वही उक्त आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

शया काश्यप जटिलके बस-सामग्री वहींमें बहती देगी । "काश्यप ! क्या यह अष्ट है ?" "हाँ ! आयुम ! यह अष्ट है । वही उक्त आयुष्मानोंकी उपसम्पदा हुई ।

"तब भगवान्के शरणमें इष्टानुमार विहार कर सभी एकमहरा पुराने जटिल मित्रुभा के महामित्र-संबन्ध साथ शया में गये ।

x x x  
( \* )

### आदिष परिचाय-सुत । राजगृहमें चिन्विसारकी दीक्षा । ( ३ पृ ५२७ )

ज्या मीच गुना—एक समय भगवान् एक हजार मित्रुभाके साथ शयामें 'शया स्त्रीसुवर विहार करन थे । वहाँ भगवान्के मित्रुभाके आमन्त्रित किया— "मित्रुभा ! मभी जन् रहा है । क्या जन् रहा है ? शयु जन् रहा है ; रूप जन् रहा है 'शयुका विज्ञान' जन् रहा है शयुका संस्कार जन् रहा है भार शयुका संस्कारके कारण ओ वेदनायें—सुग दुःग म-सुग-म-सुग—उपक हाती है बह भी जन् रही है ?—राग क्रमिम हृष-क्रमिम माह क्रमिमो जन् रही है । जन्म जग भार जगक पागम शाने-वीरजग दुःखने पुर्मवतामे वीरजगने जन् रही है—बह मी करना है ।

धन्य । शर । आश-विज्ञान । धारक-संस्कार । आशके संस्कारके कारण ( उपक ) वेदनायें । शय ( = नायिका इन्द्रिय ) संघ शय-विज्ञान जन् रही है । शयका संस्कार जन् रहा है बह मी करना है । शिवा । रग । शिवा-विज्ञान ।

१ शरिका शर । २ संसुन वि. ३:३:१ । महाविद्या ३:३ गवामीमज्जावा वा इत्यपि वर्तते । ४ इन्द्रिय भार विपक मन्वय मे आ जग हाता है ।

विद्वान्-संस्पर्श । विद्वान्-संस्पर्शके कारण ( उत्पन्न ) वेदनायें एक रही हैं । यह मैं कहता हूँ । काया - स्पर्श कथ-विज्ञान काय-संस्पर्श काय-संस्पर्शके कारण ( उत्पन्न ) वेदनायें एक रही हैं । मन चर्मा मनो-विज्ञान मन-संस्पर्श मन-संस्पर्शके कारण ( उत्पन्न ) वेदनायें एक रही हैं । किम्ब एक रही हैं । राग भक्तिम्य रूप-भक्तिम्य मोह भक्तिम्ये एक रही हैं । जन्म जरा मार मरणके योग्ये एक रही हैं । राने-पीडनेय सुखम्य दुर्मनताय एक रही हैं — यह मैं कहता हूँ ।

मिथुना । यथा वृत्त ( धर्मका ) मुक्तेशाका 'आयं आचक चमुय 'निर्वेद-प्राप्त होता है रूपमे निर्वेद-प्राप्त होता है चक्षु-विज्ञानमे निर्वेद प्राप्त होता है चक्षु-संस्पर्शमे निर्वेद प्राप्त होता है चक्षु-संस्पर्शके कारण ( उत्पन्न ) वेदना-सुख सुख मसुख-जदुःख—उत्तम भी निर्वेद प्राप्त होता है ।

आत्र । क्षय । आत्र-विज्ञान । आत्र-संस्पर्श । आत्र-संस्पर्शके कारण ( उत्पन्न ) वेदना । प्राण । गय । प्राण-विज्ञान । प्राण-संस्पर्श । प्राण-संस्पर्शके कारण ( उत्पन्न ) वेदना । विद्वान् । रम । विद्वान्-विज्ञान । विद्वान्-संस्पर्श । विद्वान्-संस्पर्शके कारण ( उत्पन्न ) वेदना । काय । 'स्पर्शमे । काय-विज्ञान । काय-संस्पर्श । काय-संस्पर्शके कारण ( उत्पन्न ) वेदना ।

मनमे निर्वेद प्राप्त होता है । धर्मसं विवेद प्राप्त होता है । मनो-विज्ञानमे निर्वेद प्राप्त होता है । मन-संस्पर्शके कारण ( उत्पन्न ) वेदना—सुख सुख मसुख-जदुःख उत्पन्न होती है उत्तम भी निर्वेद प्राप्त होता है ।

निर्वेद प्राप्त हो विरक्त होता है । विरक्त होयमे विमुक्त होता है । विमुक्त होयमे 'मैं विमुक्त हूँ' यह ज्ञान होता है । यह जानता है—'जन्म क्षीण हो गया मरणपर्यं पूरा हो गया कर्मण्य कर बुद्धि मार यही कुछ ( बाकी ) बची है । इयं व्याकरण ( व्याख्यान ) के कहे जाते बन्ध जन हजार मिथुनाके चित्त अक्षिप्त हो आत्मर्षोय वृत्त गय ।

'भगवान् गयासीसमें इच्छानुसार विहारकर ( राजा त्रियसारको ही प्रतिज्ञा कारण कर ) समी एकद्वार पुराने बरिष्ठ मिथुनाके महान् मिथु-संघके साथ चारिकके द्विपु चक्षु दिने । भगवान् क्रमसः चारिक करते, राजा गृह पहुँचे । वहाँ भगवान् राजपूहमें 'छट्टि ( यष्टि ) वनक सुप्रतिष्ठित कल्पमें उर ।

मगध-राज श्रेष्ठिक विद्यमानमे ( यथा माताके सुँहमे ) मुना कि शाक्यकुलसे मरुक्ति शाक्यपुत्र समग्र गातम राजपूहमें पहुँच गये हैं । राजपूहमें छट्टि ( यष्टि ) वनक सुप्रतिष्ठित कल्पमें विहार कर रहे हैं । उच भगवान् गौतमकी ऐसी संघ-कीर्ति केली हुई है—'यह भगवान् जहन् हैं मन्व-स-सुद हैं विद्या मार व्याकरणमे सुद्व है मुगत है लोकोके जाननवाके हैं; उत्तम उत्तम कोई नहीं है ऐय ( यह ) पुत्रकोके चातु-सवार हैं

१ आत्मजापक महारागामी अनागामी अर्हन् । २ वैराग्यकी पूजावस्था । ३ र्शम जन्म आदि । ४ महावग्ग १ ५ आत्तक ( मि ११ ) ६ राजपूह मगरक समीपवर्ती अरिषोव ( बहिष्पल ) उद्याय आत्तक. वि.



श्रुताओं और मनुष्याक साम्रा (अपदेसक) हैं—(उमें वह) कुछ भगवान् हैं । यह माझलोक मारुताक वैबकोक सहित इम सोच्छका वैब-मनुष्य-सहित भयम-माझप-मुठ (सर्मी) प्रजाको स्वर्भ समझ-माझाकार कर जावत हैं । वह आदिमें कल्याण-कारक), मध्यमें कल्याण-कारक) अन्तमें कल्याण-कारक) धर्मका धर्म-सहित-अन्वय-सहित उपदेश करते हैं । वह कबक परिपुष्ट परिमुष्ट मञ्जवर्तका मञ्जम करत हैं । इम प्रकारके जहाँ-कोगोंका वर्णन करना उत्तम है ।

मगध-राज श्रेष्ठिक विचमार १२ निमुत्त मगध निवासि माझमें थीर गृहपतिपोंक मान जहाँ भगवान् ये वहाँ गये । बादर भगवान्को जमिवादनकर एक ओर बट गये । वह १२ निमुत्त मगधवासी माझम गृहपति भी-कोई भगवान्को जमिवादन कर, कोई भगवान्को कुसल मल पूठ कर कोई भगवान्की आर हाथ धोड़ कर, कोई भगवान्को नाम-गोत्र मुगा कर कोई कोई चुप चापही एक ओर बैठ गये । तब उन १२ निमुत्त मगधके माझमें गृह पतिपोंके (चित्तमें) होने लगा—

“क्योंकी ! महाभयम (गातम) उद्वेग-काश्यपक पास माझचर्च-चरत करता है भयका उद्वेग-काश्यप महाभयमके पास माझचर्च चरत करता है ?”

तब भगवान्ने उस १२ निमुत्त मगध-वासी माझमें गृहपतिपोंके चित्तके चित्तकेके चित्तसे जान आनुष्मात् उद्वेग-काश्यपको गानामे कहा—

“क्या देवकर है उद्वेग-वासी ! तपःकृतिक उपदेसक ! (गुने) माग छोपी ! काश्यप ! तुमस वह बात पूछता हूँ, तुम्हारा भक्तिहात्र कैस हूय ?”

(काश्यपने कहा)—“रूप शब्द और रसमें काममागोंमें क्रियामें रूपसम्प और रसमें काम मोगोंमें रूपसम्प और रस कामेहि पत्र करते हैं ।

यह रागादि उपाधिपों मल हैं (मिने) वह आन किवा हसकिपे में इष्ट और दुःखसे विरक्त हुआ ।

भगवान्ने (कहा)—“हे काश्यप ! रूप शब्द और रसमें तेरा मन नहीं रमा । तो देव-मनुष्य-कोकमें कहीं मन रमा काश्यप ! इसे मुझे कह ?”

काम-मदमें जविषमाव, निर्दोष शोध

उपधि-अगाधि-रहित (निर्वाण-) पदको देखकर ।

निर्बिकार दूसरेके सहायतासे न पार होने वाले (निर्वाण-) पदको देखकर

(मैं) इष्ट और दुःखसे विरक्त हुआ ।

तब आनुष्मात् उद्वेग-काश्यप आपनमे उठ उपरने (उत्तरासंग) का एक कंबेपर कर, भगवान्के पैरोंपर सिर रख भगवान्से बोळ—“अन्ते ! भगवान् मेरे ज्ञान्य (व्युक्त) हैं मैं आचक (वसिष्ठ) हूँ । अन्ते ! भगवान् मेरे शाक्य हैं मैं आचक हूँ ।

तब उन १२ निमुत्त मगध-वासी माझना आर गृहपतिपोंके (मध्यमें) हुआ—“उद्वेग-काश्यप महाभयमके पास माझचर्च चरता है । तब भगवान्ने उन १२ निमुत्त मगध-वासी माझमें थीर गृहपतिपोंके चित्तकी बात चित्तसे जान आनुष्मात् कहा कही । तब विचमार

आदि ११ नियुक्त मगध-बासी ब्राह्मणों और गृहपतियों को इसी आसनपर "जो कुछ समुत्पन्न धर्म है वह निरोध-धर्म है यह विरज-निर्गमक धर्म-बन्धु उत्पन्न हुआ; और (उनमें) एक नियुक्त उपाम्कन्धको प्राप्त हुये।

तब दृष्ट-धर्म=पात-धर्म=विद्रिष्ट-धर्म=पञ्चगणाध-धर्म सम्बुद्ध-रहित विद्या-रहित मगधान्के धर्ममें विद्यारह स्वतंत्र हो विम्बसारने मगधान्के कहा—“मन्ते ! पहिले कुमार बचस्वार्म मेरी पाँच अधिष्ठापायें थीं वह अब पूरी होगई। मन्ते ! पहिले कुमार-भक्षस्वार्म (चित्तमें) यह होता था— (क्याही अच्छा होता) यदि मैं (राजा) अधिष्ठापित होता।” यह मेरी पहिली अधिष्ठापा थी जो अब पूरी होगई है। “मेरे राज्यमें धर्मों सम्बन्ध-संबुद्ध आते” यह मेरी दूसरी अधिष्ठापा थी वह भी अब पूरी होगई। “उन मगधान्की मैं पशु पासना (=नेका) करता”; यह मेरी तीसरी अधिष्ठापा थी वह भी अब पूरी होगई। “वह मगधान् मुझे धर्म उपदेश करते यह मेरी चामी अधिष्ठापा थी वह भी अब पूरी होगई। “उस मगधान्को मैं जानता यह पाँचवीं अधिष्ठापा थी वह भी अब पूरी होगई। ध्यार्थ है ! मन्ते ! आद्यर्थ है ! मन्ते ! धर्मों कीकेन सीधकर वे हैंकेको उपाय वे मूलेको राखा बतका वे बंधकारमें लेकधी रोछानी रख वे विममें आंशुबाधे रूप बेलें; पृथेही मगधान्के अनेक पर्याय (=स्वर) सं धर्मोंके प्रकाशित किया। इसकिये मैं मगधान्की शरत्प नेता हू धर्म और मिश्र-संघकी भी। आजमे मगधान् मुझे सांखिकि शरत्प-भाषा उपामक धर्म। मिश्र-संघ-रहित कलके किये मेरा विमन्त्रण स्वीकार करें।

मगधान्की मीन रह उसे स्वीकार किया। तब मगध-राज जैमिक विम्बसार मगधान् की श्रीकृतिको जान आसानमे उठ मगधान्को अधिष्ठापन कर प्रशिक्षण कर बध्न गया। मगध-राज जैमिक विम्बसारने उस रातके भीतबैपर उत्तम खाद्य-मांस्य तज्वार करा मगधान्को काकधी सूचना ही—मन्ते ! काक होगवा भोजन तज्वार है। तब मगधान् पूर्वाह्न समय सु-आच्छादित (हो) (मिस्ता)पात्र और भीकर के समी एक महक पुराने अटिक-मिश्रुओंके महात् मिश्रुसंघके साथ राजगृहमें प्रविष्ट हुये।

तब मगधान् जहाँ मगध-राज जैमिक विम्बसारका घर था वहाँ गये। जैमिक मिश्रुसंघ-सहित बिठे आसनपर बँडे। तब मगधराज बुद्ध-प्रमुख मिश्रु-संघको उत्तम खाद्य भोग्य के अन्वये हाथसे पसुन कर पूर्ण कर मगधान्के पात्रसे हाथ सींच अन्वैपर एक क्षोर बँड गया। एक क्षोर बँडे मगध-राज के (चित्तमें) हुआ—“मगधान् कमसी जगह विहार करें जो कि गाँवमें न बहुत दूर हो न बहुत समीप हो इच्छुकोंको पहुँचने, जाने-जाने कपक हो; (जहाँ) दिनमें बहुत भीड़ न हो (आर) रातमें सम्प-शोप कम हो; कोपोंके इच्छे-गुच्छसे रहित हो; मनुष्योंके किये रहस्य (अपकान्त) व्याप्त हो पृथक्कवासके भोग्य हो।” तब मगध-राज को हुआ—“वह हमारा बेलु(बैयु)उद्यान बस्तीय न बहुत दूर है न बहुत समीप। पृथक्कवासके भोग्य है कहीं न मैं बेलुवन उद्यान बुद्ध प्रमुख मिश्रु संघको प्रदान करूँ।”

तब मगध-राज ने मगधान्के निवेदन किया—“मन्ते ! मैं बलुवन उद्यान बुद्ध प्रमुख मिश्रु-संघको दता हूँ।”

भगवान् आराम ( =आधमको) स्वीकार किये ; भार फिर भगवन्-राजको धर्म-संबंधी कथाओं द्वारा समुत्तेजितकर आमनय उदकर चलेगाय ।

भगवान्ने इसीके सम्बन्धमें धर्म-संबंधी कथा कह मिश्रुओंको सम्बोधित किया—  
मिश्रुओ ! आराम ग्रहण करनेकी अनुशा दंगा हू ।”

×

×

×

×

## सारिपुत्र और मौद्रल्यपानकी प्रमज्या । ( ६ पू ५२७ ) ।

‘उस समय संभव ( नामक ) परिमात्रक राजग्रहमें शाह या परिमात्रकोंकी बनी कमातके साथ विनाम करता था । सारिपुत्र भार मातृद्वयपान संभव परिमात्रकके पास प्रसन्न-वर्ण-वर्ण करता थे ; उन्होंने ( आपसमें ) प्रतिज्ञाकी थी—जो पहिल अयुक्तको प्राप्त करे वह दूसरेको कहे । उस समय आपुष्मान् अथर्वित् पूवाह समय मु अथर्वित्त ( हा ) पात्र और शीवरक जति सुन्दर-मतिधरत भाओकम-विकोकरक माय संकोचत और प्रसारकके साथ भीषी नजर रखने संयमी वर्णस राजग्रहमें मिश्राक किये प्रविष्ट हुए । सारिपुत्र परिमात्रकके जाबुष्मान् अथर्वित्को जतिमुन्दर भाओकम-विकोकरक माय भीषी नजर रखने संयमी वर्णस राजग्रहमें मिश्राक भिन्न प्रयत्न रखा । देलकर उनको बुजा—‘सोकर अर्हन् वा अर्हन्क मार्गपर जो आरुह ई कह मिश्रु उनमेंसे एक ई । क्यों न मैं इस मिश्रुके पास जा पूछूँ—आबुस ! तुम किमका ( गुरु ) करके प्रमजित हुए हा ; कोन तुम्हारा सात्ता ( =गुरु ) है ? तुम किमके धर्मको मानते हो ? फिर सारिपुत्र परिमात्रक ( क विचरते ) बुजा—‘बहु समय इस मिश्रुसे ( प्रश्न ) पूछनेका बर्ही ई यह धर धर मिश्राक लिखे भूम रहा है । क्यों न मैं इस मिश्रुके पीछ होऊँ ।”

आपुष्मान् अथर्वित् राज-ग्रहमें मिश्राके किये भूमकर मिश्राको के कह दिये । तब सारिपुत्र परिमात्रक बर्ही जाबुष्मान् अथर्वित् के बर्ही गया ; आकर आपुष्मान् अथर्वित्क साथ पयाकोत्प कुलक प्रश्न पूछ एक बार लड़ा हागाबा । लड़े होकर सारिपुत्र परिमात्रकमें आपुष्मान् अथर्वित्का कहा—‘आबुस ! मेरी इच्छिर्षा प्रमज है मेरे अथर्वित्-वर्ण परिशुह तथा उज्वल ई । आबुस ! तुम किमका ( गुरु ) करके प्रमजित हुये हो तुम्हारा सात्ता ( गुरु ) कान ई ? तुम किमका धर्म मानते हो ?”

“आबुस ! सात्त-कुलसो प्रमजित शाक्य-पुत्र ( वा ) महाकमल ई उन्हीं भगवान्को ( गुरु ) करके मैं प्रमजित हुआ । बर्ही भगवान् मरे सात्त ई । उन्हीं भगवान्का धर्म मैं मानता हू ।

“आबुष्मान्क सात्ता क्या बर्ही ई-किम ( सिद्धांत ) को करने वाले हैं ?”

“आबुस ! मैं लडा हू दस पर्यमें जमी बर्ही प्रमजित हुआ हू ; विन्दरम मैं तुम्हें नहीं कताय प्रकता । किन्तु संक्षेपम तुम्हें धम करता हूँ ।

“तब सारिपुत्र परित्राजकने आयुष्मात् अश्रित्तको कहा— ‘अथ्य आयुस—  
अथ्य वा बहुत कहो अर्षहीको मुझे बतकाओ ।  
अर्षहीमे मुझे प्रयोजन है क्या करमा ‘यहुतसा अर्षदान छेकर’ ।

तब आयुष्मात् अश्रित्तने सारिपुत्र परित्राजकका यह ‘धर्म-पर्याय कहा—

“हेतु ( =कारण ) से उत्पन्न होनेवाले जितने धर्म ( दुःख नाशि ) हैं उनका हेतु  
( =प्रमुदप ) तपागत बतकाते हैं । अथ्य जो निराश है (उसको भी बतलाते हैं) वही दुःख  
महाधमपका वाद ( =प्रतिपद् ) है । तब सारिपुत्र परित्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—  
‘जा कुछ समुदप-धर्म है वह सब विरोध धर्म है यह विरज=विमल धर्म=अधु उत्पन्न हुआ ।

तब सारिपुत्र परित्राजक जहाँ मीत्ररूपायन ( मांगलापने ) परित्राजक जा वहाँ  
गया । मीत्ररूपायन परित्राजकने तृन्तरी सारिपुत्र परित्राजकको आते देख । देखकर सारिपुत्र  
परित्राजकको कहा— ‘आयुस ! तेरी इतिर्षा प्रसन्न हैं तरे छवि-वर्ण परिशुद्ध तथा उज्ज्वल  
हैं । तुने आयुस ! अमृत ता नहीं पा छिया ?’

‘हाँ आयुस ! अमृत पाछिया ।

‘आयुस ! कम तुन अमृत पाया ?

‘आयुस ! मैंने यहाँ राजगृहमें अश्रित्त मिश्रको अतिमुत्तर जालोकन=बिलो  
कमम मिश्राके लिये पूमते देखकर (भाषा) ‘कोकमें जो अर्ष हैं यह मिश्र उनमें  
एक है’ । मैंने अश्रित्तिसु का पूछा तुम्हारा शाला काव है । अश्रित्तने यह धर्म  
पर्याय कहा—हेतुत उत्पन्न सिनने धर्म है उनका हेतु तपागत कहत है । (भीर) उनका जो  
विरोध है (उमका भी) वही महाधमपका वाद है ।

तब मीत्ररूपायन परित्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—‘जो कुछ समुदप धर्म है  
वह सब निरोध धर्म है’—यह विमल=विरज धर्म=अधु उत्पन्न हुआ ।

मोगाकन परित्राजकने सारिपुत्र परित्राजकने कहा—‘असो अर्षे आयुस !! भगवान  
के पास वह हमारे शाला है । और यह ( जो ) आई सी परित्राजक हमारे आश्रयमें=इनें  
एककर यहाँ बिहार करते हैं; उन्हें भी देखके ( भीर कहते )—‘सिमी तुम स्वेगोंकी राव हो  
बैसा करो—’” तब सारिपुत्र मीत्ररूपायन जहाँ वह परित्राजक से वहाँ गये, और एककर उन  
परित्राजकमें बोले— आयुसो ! हम भगवान्के पास आते हैं, वह हमारे शाला है” ।

इस आयुष्मात्के आश्रयमें=अधु आयुष्मात्को ग्लकर, यहाँ बिहार करते हैं । परि  
आयुष्मात् महाधमपके पास अश्रित्त चरण करेंगे, तां इस सभी महाधमपके पास  
अश्रित्त चरण करेंगे ।”

तब सारिपुत्र अर मीत्ररूपायन जहाँ संज्ञप परित्राजक जा, वहाँ गये । जाकर संज्ञप  
परित्राजकने बोले—

१ चिन्तार, स्वप्नोत्तरण । २ उद्वेग । ३ ये धर्मा हेतुत्पन्नता हेतु तैर्त तपागता आह । तेर्त  
च यो विरोधो एव वाही महाधमपका ०

‘आमुस ! हम भगवान्‌के पास आते हैं, पर हमारा श्राव्य है।

“बस आमुसो ! मत जाओ। हम तीनों ( मिश्रकर ) हम ( परिमात्रक ) गन्धी महम्ताई करेंगे।

“दूसरी बारभी सारिपुत्र जीर मौद्रुष्यावनन सजय परिमात्रकको कहा—  
हम भगवान्‌के पास आते हैं।

‘ मत जाओ ! हम तीनों ( मिश्रकर ) हम गन्धी महम्ताई करते।

तीसरी बार भी ।

तब सारिपुत्र बार मौद्रुष्यावनन उच हाई सी परिमात्रकको ल, जहाँ संशुवन था,  
वहाँ चले गये। संभव परिमात्रकको वहाँ मुँहमे गर्ग लून निकल जाया।

भगवान्‌ने व्रमे ही सारिपुत्र भीर मौद्रुष्यावननको आते हुए वृष मिश्रुओंको संबोधित  
किया—

“मिश्रुओ ! यह वो मिश्र कोकित ( मूर्धाशुष्यावन ) भीर उपतित्य ( असारिपुत्र )  
आ रहे हैं। यह मेरे जगज्जावक-सुगम होंगे भद्र-सुगम होंगे।

तब सारिपुत्र भीर मौद्रुष्यावनन जहाँ भगवान्‌ थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌के  
चरणोंमें सिर छुकाकर बोले—

‘ भन्ते ! हम भगवान्‌के पास प्रमज्जा पावें, उपसम्पदा पावें।

भगवान्‌ने कहा—‘मिश्रुओ आजो परा सु भावना है। अच्छी प्रकार बुल्फने  
आपके सिधे ब्रह्मचर्य-चरण करो।

वही उच आमुसमात्रकी उपसम्पदा हुई।

× × ×

( )

महाकाश्यप-प्रश्न्या ( ई. पू. ५२७ )

‘यह पिच्छी नामक माणवक मगध देशके महातित्य (महावीर्य) नामक  
ब्राह्मणोंके गाँवमें कपिल ब्राह्मणकी प्रथा भाषाके गर्भसे उत्पन्न हुआ। भद्रा कपिल  
यात्री ‘भद्रवेशक’ सागडनगरमें कौशिक-गाँव ब्राह्मणकी प्रमुक्त-भाषाके गर्भसे उत्पन्न  
हुई। प्रमसे बन्ते बन्ते पिच्छी माणवक बीस (वर्ष) और भद्रा कपिलवती मोरुह (वर्ष)  
की हुई। माता-पिताने पुत्रको पेश—“तात ! तू बन्दास (अनुवा) है कुल-वसको आबम  
रचना चाहिये” —कह बहुत जोर दिया। माणवकने कहा—“मेरे कबमें ऐसी बात मत  
कहिये। बात तक आप कामा है तब तक (आप जोगीकी) सेवा करूँगा। आप जोगीके बात  
निकलकर प्रमक्ति हाँकूँगा। यह कुछ दिव उदर कर फिर बोले पर उसने ‘वही’ किया।

१ वेरगावा-भद्रकथा ३ । संशु नि. अ. १११ । संशु वि. अ. क. ११४ ।  
२ ब्राह्मण-विचार्यी । ३. रात्री जीर चभावके बीचका प्रश्न महादेव है । ४ साककोह (पंचाव) ।

द्विर कहा द्विर नहीं (=द्वन्द्व) किया। उमक बाद माता बटाबर कहती ही रहती। माग वकने 'माताको मण्ण कर नूँ' बिचार हज्जार कण-सोनेक निष्क (=धनार्थी) इ सांगारम एक की-मूर्ति बनवाकर उमकी सखाई-बुवाई आदि समाप्त हो जानेपर उम लाल बन्ध पहना, रंग बिरंग वृक्षों आर नामा प्रकाशके अलंकारोंमे भरलून करा माताका बुझाकर— 'मौं! हुम उमरका रूप वा मैं गृहस्थ रहूँगा कहा। माझसी पंडिता थी। उमन सोचा— "मेरा पुत्र पुत्रबाब है (पूर्वजन्ममें) गान दिखे है। पुत्र्य अकेल ही नहीं किच हागे। अबश्य इसक नाम पुत्र्य करमेबाकी (कोई) मुबर्ज-बर्जा (की) भी रही हारी।" (और) जाठ माझगोंका बुझावा (उमकी) सब मुराद पूरी कर, मुबर्ज-मतिमाको रथपर रखवा— "तातो! जाभा जहाँ करी आदि-गोत्र और भागमें हमारे समान पसी (मुबर्ज-बर्जा) कम्पा इखमा इमी मुबर्ज मतिमाको (बिबाहक) पकड़पमकी बमानत रखकर, छार माना" कह मेज दिवा।

बह "बह हमारा काम है कह निकककर करौं जायें गोच (द्विर) 'मद्र-द्रा सिमोंका आगार (=उजवाला खान) है मद्र-देशका चक्रे (बिचार) मद्रदेशके सारासल नगरमें गय। वहाँ उम मुबज प्रतिमाको महाजके घांउपर रख एक भार बैठ गन। तब मद्राकी दाई मद्राकी महिमाकर अलंकरणकर रखमहक (बर्गामे) के भीतर बैठकर स्वर्न नहायेक छिमे पानीके घाउपर आई। वहाँ उम मुबर्ज प्रतिमाको देख— "बह कैसी बिलक एल है (बा) वहाँ जाकर गयी है" (सोच) पीठपर (बप्पक) मारा। तब उस पवा भ्या कि बह मुबर्ज-मतिमा है। 'मैम समझा (बा) मरी अरर भीना (=स्वामि-मुर्जी) है बह ता मरी अरर-बीताकी बम्प ले चलनवासी (कींथी) कमी भी नहीं है" बह वाली। तब उत मनुष्योंमे उम चारों आरमे भरकर पूछ "क्या तेरी स्वामि-मुर्जी प्य रूपका है।

"पुत्र रूपकी ? मरी कम्पा (=बापा) हुम मुबज-मतिमाम सी-गुनी हज्जार-गुन कप-गुनी (अधिक) मुन्दरी है। बारह हापक धरमें उसक बटे जानेपर प्रीपकका काम नह शरीर की मसाम ही अन्धकार नूर हो जाता है।

"तो भा द्विर" कह उम मुन्जको रु मुबर्ज-मतिमाका रथपर रख, कौशिक-नाभ (माझक) क हारपर आ आगमनकी सूचना दी। माझजने सङ्कार करके पूछ— 'कौन जाये हो ?'

'मराच-वृद्धमें महातिरय मामक कपिल माझजक बरसे— हुस उदोभवस (जाचई) बप्या ताता! बह माझज गात्र जानि बिमबमें हुमार समान है मैं कम्पा प्रदान करुँगा' कह (उमक) जेठ स्वीकार की।

उन्हाने कपिल माझजका भायत (=मकिलपत्र) मजा— कम्पा मिल गई करवा है मा कहा।"

उम पदका मुल उन्हाने पिपरीली माजककम मूचित किया। । माताबकने— "मैम माथा बा किच मिरुमी (आर) यह कह रह है कि मिल गई 'मुझे नहीं चाहिये कहकर पत्र भेजना चाहिये' (माच) पकड़में बैठकन पत्र लिखा— 'मद्रा' (मुज जाच) भयत जाति गोत्र भागके समान गृहचाम पावा। मैं निकककर प्रव्रजित होऊँगा पीठ मुन्दरी न हाया।"

मझाने मी सुद्धे अमुकको देना काहते हैं सुलभ 'बिदूठी मेळणी चाहिय' विचार, पुरुषमठमें  
 बंद पत्र लिखा— आर्ष-पुत्र ! (मुझे छोड़) अपने क्रांति गोत्र भोगक समाज सूहवास पावो  
 मी निकडकर प्रमत्तिन हाईगी; पीछे अकमोस न करना पड़े। दोनों पत्र (—बाइक)  
 हातेमें मिळे।

'बह किसका पत्र है ?'

"पिप्यही मानवकने भ्राते किच भेजा है।"

"मह किसका ?"

"मझाने पिप्यही मानवकने किने भेजा है" यह कबने पर 'इत शर्मोका पड़े।"

"देखो कबकोक कामको (बह पत्रबाइकोने पत्र) कबकर अंगलमें पेंक उसी प्रकारक नूतरे  
 पत्र लिखकर पहुँचा दिजे। कुमार आर कुमारीका अनुकूल-पत्र सारोकी प्रसन्नता को बत  
 टहरी। इस प्रकार अनिच्छम रहते मी दोनोंका समागम हुआ।

उसी दिन पिप्यही मानवकने एक कूल-माका गैबवाई मार मझाने मी (एक)। उन  
 (माकाभा) को पकंगके बीचमें रख दिया। ग्यारु बरके दोनों सोने गये। मानवक पाहिनी  
 ओरस मार भया आई ओरसे कबकाकन हुई। वह एक हूसरेके शरीर-स्पर्शके मससे रातका  
 बिना बिनाकही जितारि थे। दिनको ईसका तऊ मी न होला का। इस प्रकार सांसारिक सुखमें  
 बिना किन हूवे अब तक माता-पिता बाँधित रहे तब तक पुत्रुमकन कबाक व किना, उबके  
 मरनेपर विचार करने लगे। माकाकक पाम कपी मारी सम्पत्ति थी। शरीरको उपरमकर केक  
 वनका पूर्वही मगधकी 'नाडीसे बारह नाडी भर होता का। ताकेके भीतर माड बड़े चहवपने  
 (अरबाक) बारह कोजन तक (कैमे) केत अनुराधपुर जसे १० शर्मोके गौब बौरह  
 हाकिरीक सुण्ड बाइर बाइके सुण्ड भीर बाइर रपोंके सुण्ड थे। कसने एक दिन कसकृत  
 पापेपर चद लागीस बिद केतपर का केतई मँड पर गये (इ) इक शारा बिदारित स्थानसे  
 कींके जादि बिदिपोंके (बाजे केपुप) प्राजिपोंका निकालकर ताते देकर पूज—“ताता !  
 बह क्या ग्याते हैं ?”

“आर्ष ! केंपुभोंका”

“इकका किना पाप किसको करीगा ?”

“आव ! पुत्र”

उमम साबा—“बदि इकका किना पाप मुझ हाता है ता सत्तारी करोड़ वन मेरा  
 क्या करगा ? बारह पाजनकी रेनी क्या (करगी) ? ताकेमें पन्ड चहवपने क्या (करगे) ?  
 बौरह शान-ग्राम क्या (करगे) ? क्यों व मी यह सय मझा कापिसवनीको पुत्रुदेकर निकडकर  
 प्रमत्तिन हा जाई।

मझा कापिसवनी मी उम समव इबरीक भीतर निकड तीन बड़ोंको कैपबाकर  
 पाइकाक साथ ईरी निमक परीकाका तापे जात देर पूज—“अम्म ! यह क्या ग्यात है ?”

“आर्ष ! प्राजिपोंका

“पाप किम्बदा होगा ?”

“तुम्हींको भायें !”

उसने साक्षात्—“तुमने तो निर्धर खार हाथ बन्ध कर नालीमर भात खदिये । यदि हम सबका किया पाप मुझेही होता है तो हजार जन्ममें भी शिर मेंबरसे ऊपर नहीं किया जा सकता । आर्य-युवकके आतेही (पह) ममी उनको सपुर्न कर निकल कर प्रव्रजित होऊँगी ।

मात्यबक आकर नहाकर मासाक्षर चढ़ बहुमूस्थ पकंगपर बैय । तब उसके किये चकमतीके ध्यबक भोजन मजाया गया । त्रुनों भोजन कर परिजनोंके चले जानेपर पृथग्भूमिमें अनुकूल-स्थानमें बैठे । तब मागबकने मजाको कहा—

“मझे ! इस घरमें आते बक कितना जन साथ आई थी ?”

“पचपन हजार गाड़ी भार्य !”

“बहु सब भार जो इस घरमें सत्तासी करोड़ (तथा) लाखों बन्द साठ बहकप्य भारि सम्पत् है यह सब तुम्हारी सपुर्न करता हू ।

“आर तुम कहाँ (जाते हो) भार्य ?”

“प्रव्रजित होऊँगी”

‘आर्य ! मैं भी तुम्हारे ही ज्ञानकी प्रतीक्षामें बनी थी मैं भी प्रव्रजित होऊँगी ।

यह 'हमार तीनों भव (=शोक) जल्दी हुई पूसकी क्षापणीके सटस मासूम पदत है हम प्रव्रजित होईगे बिचार बाजार सं बक आर मिहीन (सिखा) पात्र गंगाया एक वृस-रेके कर्णोंको कादकर—“संसार में जा आई है उन्हींक उद्देशसे हमारी यह प्रवृत्ति है” कद प्रव्रजित हो क्षाकीमें पात्र रखकर कथन करक्य महकसे उतर । घरमें दाम्नी या कम करोंमें स किम्बदे भी न जाना ।

तब यह माहान-ग्रामस निकल दामोंके ग्रामके शरस जान का । आकार प्रकारम क्षम-ग्राम-वासियोंके उन्में पहिचाना । यह रते पैरोंमें गिरकर बोड—

“आर्य ! इसका क्वों अनाय बना रह हो ?”

“मज । हम तीनों भर्षोंको बकती वृत्तकी क्षापणीया समग्र प्रव्रजित हुए हैं । यदि तुममेंसे एक एकको वृत्त वृत्त दासतासे मुक्त करें तो मां वर्षमें भी न हा मक्या । तुम्हीं अपने आप शिरोंको बोकर दासता-मुक्त हो जाओ । यह कह उन्में रते छेद बक गये ।

आगे आते बकते बबिरन पीछे वृत्तकर दला आर साक्षात्—“इस मार अद्भुतीपके मृत्तकी की (इय) मद्रा कापिछायनीको मेर पीठ आते देख, हो सकता है कोह मोके— ‘यह प्रव्रजित होकर भी मरना नहीं हा सकता । अनुचित कर रहे हैं । कई पापस मन बिगाड़ करक-गामी भी हो सकता है । (इसकिये) हम कदकर (ही) मुस जाया योग्य



है।" वह सामने आकर रास्तेको ही तरफ फटता एक उसपर जाड़े हो गये। मन्ना भी आकर बम्बूका कर लड़ी होगई। तब उसको बोले—

“मन्ने ! तुम खीको मेरे पीछ आते देख—‘यह प्रवर्जित होकर भी भ्रम्य नहीं हो सकते’—यह सोच लोग हमारे विषयमें कृपित-विष हो नरक-गामी बन सकते हैं। (अन्तः) इस दो रास्तोंमेंसे एक तू पकन दे (बीर) एक मैं पकन देता हूँ।”

“हो ! अर्ब ! प्रवर्जिताके किय खीजन बापक दात है। (लाग) हमारमें रोप देखेनो आप एक रास्ता पकई (मैं दूसरा बीर) हम दोनों अलग हो गये (कह) तीनवार प्रवृत्तिना कर चार स्थानमें पाँच-भ्रंशोंसे बम्बूका कर इस रास्तोंके बोगस समुग्मक अन्वयिको बाद “लाकों कय-काइसे कय जाना साथ भयन छुटेगा” कह “तुम वृत्ति-जातिके हो इसलिये तुम्हारा मार्ग वृत्तिपक है इस किये नाम-जातिकी हैं इसलिये हमारा मार्ग नामक है” वह कहती बम्बूका कर उसने अपना मार्ग लिया।

सम्पन्न-सुहने वेणुवन महाविहारकी गंजकुटीमें बैठे हुए. (प्राथम्ये देखा)—पिन्पकी मानक बीर मन्ना कापिनायनी अपार संपत्ति काय प्रवर्जित हुए हैं।। मुझे भी इकल संभ्र करना चाहि (सोच) गंजकुटीमें निकल स्वयं पायबीर के अस्सी महास्वविरोंमेंसे किरतीको भी बिना कई तीन गम्पूठि (पौष बीजक) मार्ग अगवाही करके राजगृह भी माछन्नाके पीच ‘वृद्ध-पुत्रक नामक बर्ग’के वृद्धके भीचे आसन मार कर बैठ गय।। महा काइपप ने—यह हमारे शाखा होंगे इन्हींके उदेश कर हम प्रवर्जित हुए—येसा सोच देखनेके स्थानसे (ही) छुके-छुके जाकर तीन स्वाभामें बम्बूका कर “मगवान् मरे काव (अपुत्र) हैं मैं आपका कावक (असिप्य) हूँ” कहा।। तब भगवान्ने उनको तीन उपदेश कर उपसंपत्ता ही (अर उपसंपत्ता) देकर “बहुपुत्रक” बर्ग’के भीचेसे निकल स्वविरके अनुसर-असय मना राखा पकई। शाखाकर शरीर महापुत्रके बन्धिम छछनोंसे विवित या बीर महाकम्बपक शरीर महापुत्रके साथ छछन्नासं। वह किसी महाभावसं वीचे (लोगी) के समान पीउं पीछे पग छारुते कर रह थे। पाछाने बोधा मार्ग करुकर, मार्गसे हट, किसी वेदके भीच बैठने ईसा संकट किया। स्वविरके—शाख पीठना चाहते हैं—आप अपनी पहनी रेशमी संधाटी बंधित कर बिठा ही। आरुत उसपर बैठकर हाकमें बीरको मसकते हुए बासे—

“काइप ! तरी यह रेशमी (अपठ-पिकोतिक) संधाटी मुझबम है ?”

छाना मेरी संधाटीके मुझबमपनके बखान रहे हैं (शाख) पहिनाता चाहते होंगे येसा समझकर बोले—

“अन्ते ! मगवान् संधाटीक्य धारण कर।

“काइप ! तुम क्या पहनाती ?”

“अन्ते ! यदि आपका बच मिरंग्या तो पहनूँगा !”

१ बर्तमान् मिसव (त्रि पठना) मैं यह स्थाव रहत होगा।

“काश्यप ! क्या तुम हम पहिले-पहिले जीर्ण होगये पांसुकुण (अंगुली) को धारणकर रहते हो ? यह बुद्धोंका पहिले-पहिले जीर्ण हुआ चीवर है । थोड़े गुणोवाला (मनुष्य) इसे धारण नहीं कर सकता । समर्थ धर्मके अनुसरणमें परके जन्ममें 'पांसुकुणिक रहनेवाले ही को (इसे) खेना धोय है ।’

यह कह स्वविरके साथ चीवर-परिवर्तन किया । इस प्रकार चीवर-परिवर्तन कर स्वविरके चीवरको मगवाने धारण किया भीर शान्तके चीवरको स्वविरके । । स्वविर—  
‘बुद्धोंका चीवर पाकिया अब इसके बाद मुझे क्या करना है’—इस प्रकारका अभिमान किये बिना ही बुद्धोंके पाससे तेरह जवभूतोंके वस्त्रोंको लेकर, मात ही दिन 'पृथग्जन रहे जाठमें विष प्रतिसंविद्-सहित कई-पक्षके प्राप्त हो गय ।

### कस्तप-सुत्त ।

‘मेमा मीने सुत्ता—एक समय बाबुप्मान् महाकाश्यप राजगृहके वेणुवन कच्छम्बक मिषापमें विहार करते थे । उस समय बाबुप्मान् आर्नद् बने भारी मिष्ठुम्बके साथ दक्षिण गिरिमें चारिका कर रहे थे । बाबुप्मान् आर्नद्के तीस दिण्य मिष्ठु-भाव छोड़कर गृहस्थ होगये उनमें विशेष संख्या ठरुणोंकी थी । तप बाबुप्मान् आर्नद् दक्षिण-गिरिमें इच्छामुसार चारिका करके जहाँ राजगृह वेणुवन कच्छम्बकमिषाप का जहाँपर बाबुप्मान् काश्यप थे वहाँ आये । आकर बाबुप्मान् काश्यपको अभिवादन कर, एक जोर बैठे हुये बाबुप्मान् आत्मन्के भा महाकाश्यपके कहा—

“आबुत्त आत्मन् ! किन कारणोंसे मगवाने बुद्धोंमें तीन भोजन विधान किये ?  
‘मझे काश्यप ! तीन कारणोंसे मगवाने । उच्छु-पन्न जनोंके विग्रहके लिये पेशाक (बच्छे) जनोंके मुकसे विहार करनेके लिये जिनमें पुरी नीपतवाक सहारा केकर कूट न बालें (जोर) बुद्धोंपर अनुग्रह हो । मझे काश्यप ! इन्हीं तीनों बातोंमें मगवाने तीन भोजन विधान किये ।

“आबुत्त आत्मन् ! तू क्यों इन इन्द्रियोंमें जगुत्त-शरबाक भोजनमें परिमाण ब धारणेवाके जागरणमें तत्पर न रहनेवाले नये मिष्ठुम्बोंके साथ चारिका करता है । मानो तू मत्स्योंका घात कर रहा है मानो तू बुद्धोंका घातकर रहा है । तू सरसोंका घात करता चलता है तू बुद्धोंका घात करता चलता है—(पैसा) में ममज्ञता हू । आबुत्त आत्मन् ! तेरी मंडकी संय हो रही है अधिकतर नये (मिष्ठुम्बों) बाकी तेरी (मंडकी) दूर रही है । (अर्थ) यह कुमार(=आत्मन्) मात्रा नहीं जानता ।

“मझे काश्यप ! मेरे सिरके (केस) मजेह हो गये । तो भी बाबुप्मान् महाकाश्यपके कुमार (=बच्चा) कहनेमें नहीं कूट रहा हूँ”

“हाँ आबुत्त आत्मन् ! तू इन इन्द्रियोंमें जगुत्त शरबामे (=अशुभितन्द्रिष) । (अर्थ) यह कुमार मात्रा नहीं जानता ।”

१ निर्द चीवर्णोंको धरकर ही पहनैगाका । २ धुतग । ३ जिसे तप-माझाकार नहीं हुआ । ४ संसुत्त वि. १ २० ५ ।

पुद्गलपत्रा मिश्रणीये सुधा कि आर्ष महाकाश्यपने धैरेहमुनि आर्ष आर्षको कुमार कइकर कइकरा है। तब पुद्गलपत्रा मिश्रणीये भयमत्र (हो) मप्रमजताकी बात कही—

“किये तूमे तीर्थ (अर्धमहा) में रहे आर्ष महाकाश्यप धैरेहमुनि आर्ष आर्षको ‘कुमार’ कइकर कइकरनेकी डिग्मत करते है ?”

आधुमान् महाकाश्यपने पुद्गलपत्रा मिश्रणीये इम बचनको सुना । तब (उन्हारे) आधुमान् आनन्दको बो कहा—

“आधुम आनन्द ! पुद्गलपत्रा मिश्रणीये अन्धीमें बिना बिचारेही बह कहा । क्योंकि आधुस ! अबस मैं सिर-दारी मुँहा कापाव बन्ध पहिन बरसे बेधर प्रमजित हुआ; तबमे उस मगवान् बर्है सन्धक-संपुत्रको छोड़ तूमेको साला कहना वही जानता । पहिमे आधुस ! गृही हम्मे ममय बह (बिचार) हुआ—“बह एकान्त (अविच्छिन्न) परिपूर्ण एकान्त परिष्कृत करार-संख्या (उज्जक) मज्जन्त बरमें रहने हुए नहीं पासन किया जा सकता । क्यों व मैं सिर-दारी मुँहा कापाव बन्ध पहिन बरस बेधर हो प्रमजित हा जाऊँ । सो मैं आधुस ! पीछे पट्टिकोतिकोंकी संपाटी कवा लोकमें जो बर्हैत है पइ मेरी प्रमज्या उन्हाके लिये है (क) सिर-दारी मुँहा कापाव बन्ध पहिन परस बेधर हो प्रमजित हुआ । इस प्रकार प्रमजित हो रातेमें कते हुवे मैंने राजगृह बार नाखन्हाके बीच वनुपुत्रक-बैलमें बैठे मगवान्को देका । देवकर मुझे बह हुआ—“अरे ! मैं सालाको देख रहा हूँ मैं मगवान्को देख रहा हूँ । सो आधुस ! मैं वही मगवान्के परमें सिर रकाकर बोला—भक्त ! मगवान् मेरे आन्ध (अगु) है मैं आचक (असिप्य) हूँ । मन्ते ! मगवान् मेरे साला है मैं आचक हूँ । पइ बोमनेपर आधुस ! मगवान्ने मुझे कहा—

‘काश्यप ! जो इस प्रकारके सारे मनमे पुत्र आचक (असिप्य) को न जानकर मैं जानता हूँ कये न देखकर मैं देखता हूँ’ कहे उसका सिर गिर जाय । किन्तु काश्यप मैं जानता हुआ ही ‘जानता हूँ’ कहता हूँ, देखता हुआ ही ‘देखता हूँ’ कहता हूँ । इसलिये काश्यप ! तुझे सुर्वा (अधेरो) में लक्ष्मणमें प्रीति (मन्वमों) में लजा धार भव रक्तना सीखना चाहिये । काश्यप तुझे बह सीखना चाहिये—जे कुछ कुशल (अपिच-अप्य) बर्न सुर्वागा उन सबको अपवाकर, चारों ओरसे बिलको अच्छी तरह एकत्रित कर काव कयाकर बर्नको सुर्वागा । काश्यप ! तुझे बह सीखना चाहिये कि करीर-संबन्धी अनुकूल स्थिति (अव्यवगत-स्थिति) न हूयेगी । काश्यप ! तुझे बह सीखना चाहिये ।

“आधुस ! मगवान् मुझे बह उपदेश दे आसन्ते उठकर बक दिये । कुछ सहाह भरही आधुस ! मक-बिल-पुत्र (अस-रव) मैंने राजके पित्रको सावा कपूरें दिन कम्पा (अविमक-ज्ञान) उन्धक हुई । तब आधुस ! मगवान् मार्ग छोड़ एक पैदके बीच गये । तब मैंने आधुस ! पट्टिकोतिकोंकी संपाटीको बीपेल कर रव मगवान्से कहा—यहाँ मन्ते ! मगवान्

१ “सिर हाथका भी कवा सारक (असाधी वा बोसी) किनारेके फट्टे ही पिकोतिक कइ बाता है इस प्रकार महर्ष बर्नको कइकर बर्नाई संपाटीके लिये पट्टिकोतिकोंकी संपाटी कहा’ । व क.

बैठे त्रिमूर्ते सेरा बिर-काक तक कम्पाग भार सुख हो । भापुम ! भगवान् बिछे व्यामनपर बैठ गये । बैठकर मुझे भगवान्ने कहा—काश्यप 'बड़ पेरी पर-पिकोतिकोंकी संघाटी मुक्यपम है ।

'मन्ते ! भगवान् पर-पिकोतिकोंकी संघाटीको दूबा करके स्वीकार करें

'काश्यप ! मेरे सनके पांसुकूक (=गुन्नी) बच्चोंको धारण करोगे ?'

'मन्ते ! भगवान्के सनके पांसु कूक बच्चोंको धारण करूँगा ।

"मो मीने पर-पिकोतिकोंकी संघाटी भगवान्को दे दी और भगवान्के सनके पांसु कूक बच्चोंको ले लिया । त्रिमूर्ते कि ठीक बोहने हुये बोहना चाहिये—भगवान्के धारणपुत्र मुलसे उत्पन्न धर्मक (=धर्मसे उत्पन्न) धर्मसे निर्मित धर्मक शपात् (=धारण) है, (कि जगने) सनके पांसुकूकका प्रह्व क्विब । मेरे भिये ठीक बोहने हुये बोहना चाहिये—भगवान्का धारण मुक्यसे उत्पन्न धर्मक धारणसे निर्मित धर्मक शपात् ( ई ओ कि ) सनके पांसुकूक बच्च प्रह्वन किये ।

८

९

८

९

१०

### महाकात्यायनकी प्रव्रज्या ( ई पू ५२७ )

( महाकात्यायन ) उज्जैन नगरमें पुरोहितके घर उत्पन्न हुए । । उन्होंने बड़े हाँ तीनों बेतू पत् पिताके मरनेपर पुरोहितका पद पाया । गोत्रके नामसे कश्यपायन ( प्रसिद्ध ) हुए । राजा जह्न प्रद्योतने ( अपने ) अमात्याको एकट्ठाकर कहा—'छातो ! लोकमें कुछ उत्पन्न हुए हैं उनको जो कोई का सकता है वह जाकर ले जावे ।

'देव ! दूसरे नहीं का सकते जाचार्य कान्यायन ब्राह्मण ही समर्थ हैं उन्हींका भक्षिय ।'

राजाने उनको बुलवाकर—'तात वृथावस्त (=बुद्ध) के पास जाना ।

हाँ महाराज ! यदि प्रव्रजित होने (की आज्ञा) पाऊँ ।

'तात ! जो कुछ भी करके तपागतको ले जाओ ।

उन्होंने (सोचा)—'बुद्धोंके पास जानेके किये बड़ी अमानकी अवस्थाकना नहीं (होती) इसलिये सात बने और अपने आठवाँ हो ( भगवान्के पास ) गब । तब शान्दाने उनको समोपदेश दिया । देशानाके कन्ठमें बह सानो जनों स्थित प्रतिस्वित्के पात्र आईए परको प्राप्त हुए । शान्दाने "मिस्तुजो ! आओ बह हाथ पसारो । ठमी ममन से ममी सिर शरीके बाक सुस हुए, कश्चिमे मिले पात्र पीपर धारण बिचे साँ बर्षके अचिर समान हो गये । अचिर (कात्यायन) ने अपने कर्पके समाप्त होनेपर गुप न हो शान्दाने उज्जैन कान्ठके निचे बाबाकी प्रार्थनाकी । शान्दाने उलकी बात मुन बुद्ध ( वेदक ) एक क्यारणने न जान योग स्वायमें नहीं जाले, इसलिये स्थिति रको कहा— 'मिस्तु ! तुही जा मेरे जानेपर मी राजा

प्रसन्न होगा।" स्वविर (बहु सोच कि) बुझोंकी तो बात नहीं होती। लकागतकी बन्धुवाकर, अपने माब आबे मातो मिश्रुओंको के उजसैमको जाते हुएे रामेमें लेखप्यमासी नामक कस्बेमें निशाचार करने गये। उस नगरमें दो सेठकी लक्ष्मीयाँ थीं एक इन्द्रि होगबे कुळमें पैसा बुई माता पिताक मरबैपर दाईके सहारे थी रही थी किन्तु इसका रूप अति सुन्दर (और) केस वसनेकी अपेक्षा बहुत कम्ये थे। उसी नगरमें एक बड़े पेशवेबाबू सेठक लान्दावडी कइसी कैल-हीना थी। वह इसके पूर्व उसके पास (सम्बेस) मेककर—“सी वा ह्यार हूँगी” कहकर नी केस न मँगा सकी। उस दिन उस सेठकी लक्ष्मीयै सात मिश्रुयैके माब स्वविरको लाकी पात्र सौठे देव (सोचा)—“पह सुबर्न-वर्ण एक ब्रह्म-बन्धु मिश्रु पहिडे बीसे बोबे (ज्वाकी) पात्रमे ही (कय) आ रहा है। मेरे पास और पब नहीं है। लेकिन भमुच सेठ क्यवा इन केसोंके किये (मँगा) भजती है। अब इससे मिले बन हारा स्वविरके लिये दान चर्म किया जा सकता है”—(और) दाईको मेककर स्वविरोंको विर्म-चितकर धरके भीतर बैठाबा। स्वविरोंके बैठबैपर धरमें जा दाईसे अपने कसोंको कइबा—“अम्म ! इन केसोंको भमुच सेठ क्यपाको दे आ; जो वह दे वह छे जा जापोंको मैं निशा (अपिड-यात) हूँगी।

दाई हावसे आँधू पोंड एक हायमे कइबेको दान स्वविरोंके सामने डँककर, उन केसोंको छे उस सेठ क्यवाके पास गई। (पब है) ‘सार-पूर्व उचम (बस्तु) स्वबे पाम आनेपर, बाहर नहीं पाती। हमकिये उस सेठ-क्यवाने साचा मैं पहिड बहुत बनसे भी इन केसोंको न मँगा सकी अब कइ कनेक बाब तो कीमतके मुलाविक ही देना होगा (और) दाईको कइ—

“पहिडे मैं तेरी स्वामिनीको बहुत पन बकर भी हूँ कसोंका न मँगा सकी कइँ की चाडे केजा जिते बाड (अविचितकण) बाड ही क्यर्पापयडे होते हैं” (और) बाड क्यर्पापय ही दिने।

दाईने क्यर्पापय का सेठ-क्यवाको दिने। सेठ-क्यवाने एक-एक क्यर्पापयका एक-एक निशाच तप्पार कर, स्वविरोंको प्रदाव किया। स्वविरने आबसे सेठ-क्यवाके भाबकी आन “सेठ-क्यवा कइँ है ?” पूछ।

“हरमें है ! आबै !”

“उने सुखमो !”

उसने स्वविरके गौरवसे एक बात हीमें आकर स्वविरोंको बन्धुना कर (मनमें) बड़ी प्रजा उत्पन्न की। “सुन्दर रोतमें (अनुपात्रमें) दिवा निशाच इसी क्यममें कइ देता है” हमसिब स्वविरोंकी बन्धुना करते समय ही कैस पूर्ववत् होगये। स्वविर उस निशाचको प्रदण कर, सेठ-क्यवाके देवने-देवते ही उबकर आक्यसमें जा क्यर्पापय-यनमें उठरे। माकीने स्वविरोंको देव राजके पाम जाकर कइ—

“देव ! आबैपुरोहित क्यर्पापयन प्रयत्न हो उच्यबमें आये है।

राजाने आबकित (अज्जुजान) हा उचानमें जा भोजन करबैवेपर पोंच अंतोमे स्वविरों को बन्धुना कर, (आर) एक और बैठकर बइ—“अम्ते ! मगवान् कइँ है ?”

“महाराज ! शास्ता मे स्वर्ण व आकर मुझे भेजा है ?”

“मन्ते ! आज मित्रा कर्होपर पाई ?”

स्वविरने राजाक पुछनेके साथ ही मठ-रुम्बाके सब कुपुत्र कर्मका कद् ठाक्य । राजाके स्वविरने किने बात-क्यामका प्रबंध कर ( भोजन-ग्र ) निमन्त्रण दिया, और घर का सट-कम्बाको बुद्ध अग्रमहिषी ( =रटारनी ) के पत्रपर स्थापित किया । इस रीतिसे इस अग्रममें ही पद्य प्राप्त हुआ । इसके बाद राजा स्वविरका वधा सत्कार करने लगा । उस वेषीके गर्म धारण कर इसनास बाद पुत्र प्रसव किया । उसका नाम (उसक) नामा स्तक नामपर गोपालकुमार रक्का । वह पुत्रके नामसे गोपाल माता वेषीक नामम (प्रसिद्ध) हुई । उसने स्वविरम अग्रमत्त सम्पुष्ट हो राजासे कह कर कांक्षन-धन उद्यानमें स्वविरके किये विहार बनवाया । स्वविर उज्जैन नगरके अपुरक बना फिर भास्ताक पास गये ।

x

x

x

( ११ )

उपाध्याय, आचार्य और शिष्यके कर्तव्य । उपसम्पदा । (ई० पू० ५२७)

उस समय मगधके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध बुद्ध-पुत्र ( =लाभ्यानी ) मगधाके पास प्रसन्नचर्य चरण करत थे । लोग ( देलकर ) ईराज होते निम्न करते और हुत्ती हाते थे—“अपुत्र अग्रमेक अमल गातम (उत्तरा है ) बिबवा बनानेके अमल गीतम (उत्तरा) है बुद्ध-विनाश क किये अमल गीतम (उत्तरा) है । धमी उसमे एक सहस्र बडिठोंका साजु बनाया । इन छाई सा संजयके परिवारकोंको भी साजु बनाया । जब मगधके प्रसिद्ध प्रसिद्ध बुद्ध-पुत्रमी अमल गातमके पास साजु बन रहे हैं । वह मित्रुओंको देख हम गाथाके कद् लाना हेते थ—

“महाअमल मगधोंके गिरिधरमें थापा है ।

संजयके मनी ( परिमाजकों ) को ठो छे किना अथ कियका सेनेबाक्य है ?”

मित्रुओंमे इस बातको मगधाके कथा । मगधाके कथा—

“मित्रुओ ! यह सत्य वेर तक न रहेगा । एक सहाह बीतत छोप होजायगा । जो तुम्हें उस गधासे लाना दते हैं उन्हें तुम इस गाथासे उत्तर देना—

‘महावीर उद्यागत सप्ये धर्म ( के रास्त ) से छे बात है ।

धर्मसे न जाये धातोंके किने दुदिमानोंको असूया ( =असद् ) क्यों ?

भोगोंने कथा—“शाक्य-सुप्रीय ( =शाक्य-पुत्र बुद्धक मातृवाणी ) अमल धर्म ( के रास्ते ) से छे बात है अधर्मसे नहीं ।”

सहाह मर ही वह छाद् रखा । सहाह बीतत-बीतते लुप्त हो गया ।

‘उस समय मित्रु उपाध्यायके बिना रहते थे, ( इसलिये वह ) उपदेस-अनुसासन न किये जायस बिना सीकसे पहन बिना सीकस डॉके बैसहूरीस सिद्धाक किये जात थे । सात

दुप मनुष्याक भाजनक ऊपर, लायक ऊपर पबक ऊपर उठ पायका यहा धूँते थे। स्वर्ग मन्त्री भातमी मँगते थे गाले थे। भाजनपर बैठे इहा मचात रहते थ। काग ईरान इत सिद्धारते जीर बुली हात थ—बपों क्षान्त्य पुरीय प्रमथ बिना डीकसे पहिने भोजनपर बैठ भी इस्त्य मचात रहत ई जैसे कि प्राज्ञान प्राज्ञानभोजनमें। भिक्षुमोंने लोगोंका ईरान होका मुना। जो भिक्षु भिक्षुमी मनुष्य कजासक संश्लेषक शिस्तार्थ थ वह ईरान दुप सिद्धारन का दुर्गा दुप। तब उन भिक्षुमोंने भगवान्स् इम व तका कहा।...। मग बाम्ने बिहारा—भिक्षुओ! उन लाकायकोंका (वह करना) अनुचित है अचार है... अग्रमर्तोका जाचार है अमथ है अकरबीय है। भिक्षुओ! कैसे वह लाकायक बिना ईरान पहिने सिद्धाके लिने वसत है। भिक्षुओ! (उनका) यह (आचार) अग्रसर्तोके प्रमथ करनेके लिने नहीं है और न प्रसर्तो (अग्रसर्तो) को अधिक प्रमथ करनेके लिने; बल्कि अग्रसर्तोको (जार भी) अग्रमथ करनेके लिये तका प्रसर्तोमेंसे भी किसी किसीक उक्त दूँके लिने है। तब भगवान्ने उन भिक्षुमोंके जनेक प्रकरसे बिहार कर भिक्षुमोंका संबोधित किया—

“भिक्षुओ! मैं उपाध्याय (करन) की अनुज्ञा देता हूँ। उपाध्यायका सिष्य (=सखि बिहारी) में पुत्र-पुत्रि रत्नी चाहिये और सिष्यको उपाध्यायमें पिता-पुत्रि। इस प्रकार उपाध्याय ग्रहण करना चाहिये—उपरता (उत्तरा र्शंग) एक कंधे पर करवा पाद-वदन करवा उकई बैठवा हाथ जोड़वा पैसा कइकवाना चाहिये—मन्ते! मेरे उपाध्याय बनिसे मन्ते! मेरे उपाध्याय बनिसे मन्ते! मेरे उपाध्याय बनिसे।

सिष्यको उपाध्यायके साथ अग्रम वताव करना चाहिये। अग्रम वताव यह है—समयस उठकर उठा काइ उत्तरार्मगको एक कंधेपर रख वातुवम दूनी चाहिये मुख (जोने को) एक देना चाहिये। आसन बिछवा चाहिये। यदि रिनबरी (कपेटक लिने) है तो पात्र जोकर (उसे) देना चाहिये। पानी देकर पात्र ले बिना घसे जोकर रख देना चाहिये। उपाध्यायके उठ जाने पर आसन उठाकर रख देना चाहिये। यदि वह स्वान मथ हो ता झण्ड देना चाहिये। यदि उपाध्याय गौषमें जाना चाहते हैं ता बघ घमावा चाहिये कमर-बंध देना चाहिये आपेटकर 'संघाटी देनी चाहिये घोड़ों परीसहित पात्र-दवा चाहिये। यदि उपाध्याय अनुचर-भिक्षु चाहते हैं तो तीन स्वामोंको बँडोठे दुपे घेरादार (बीबर) पहन कमरबन्ध बंध कपेटी संघाटी पहिन, सुड़ी बंध जोकर पात्रके साथ उपाध्याय का अनुचर (अपीके कलन वाक्य) भिक्षु बनवा चाहिये। न बहुत घूर होकर कपवा चाहिये न बहुत समीप होकर कपवा चाहिये। पात्रमें प्राप्त (अन्न) को ग्रहण करना चाहिये। उपाध्यायक बात करते समय, बीच बीचमें बात न करना चाहिये। उपाध्याय (बधि) सरोप (बात) बाक रहे हों ता मना करना चाहिये। लींठे समय पहिक ही आकर आसन बिछ देना चाहिये पादोदक (अर्घ्य घनैका कल) पाद-पीठ पादकठली (घर किलनैका सावन) रख देना चाहिये। आगे बघकर पात्र-बीबर (दापत) देना चाहिये। दूसरा बघ देना चाहिये पहिना बघ ले देना चाहिये। यदि बीबरमें पसीवा लगा हो जोड़ी घेर पुपमें मुद्रा देना

चाहिये। भूपमें खीबरको डालना न चाहिये। (चित्र) खीबर बगल लेना चाहिये। यदि मिट्टा ही और उपाध्याय भोजन करना चाहते हैं तो पानी देकर मिट्टा देना चाहिये। उपाध्यायको पानीके स्थित पुष्टना चाहिये। भोजनकर लेनेपर पानी देकर, पात्र से छुड़कर बिना पिसे अच्छी तरह घो पोंछकर सुहूर्तभर भूपमें सुत्ता देना चाहिये। भूपमें पात्र डालना न चाहिये। यदि उपाध्याय स्नान करना चाहें स्नान कराया चाहिये। यदि संतापर (=स्नानागार) में जाना चाहें (स्नान-) पूर्ण से जाना चाहिये मिट्टी मिगोपी चाहिये। अतापरके पीठेको छेकर उपाध्यायके पीठे पीठे आकर अन्तापरके पीठेको दे खीबर के एक ओर रख देना चाहिये। (स्नान-) पूर्ण देना चाहिये मिट्टी इनी चाहिये। उपाध्याय (शरीर) मसमा चाहिये। (उपाध्यायके) महा सनेसे पूर्व ही अपने वृद्धके पाँउ (मुखा) कपड़ा पहन उपाध्यायके शरीरसे पानी पोंछना चाहिये। बख देना चाहिये। संपाटी देनी चाहिये। अतापरका पीडासे पहिछ ही आकर आसन विद्यना चाहिये।

जिन विहारमें उपाध्याय विहार करते हैं यदि वह विहार मैला हो आर उस्ताह हो तो उसे साफ करना चाहिये। विहार साफ करनेमें पहिले पात्र खीबर निकालकर एक बार रखना चाहिये। गद्दा चर निम्नकर एक ओर रखनी चाहिये। तकिया रखनी चाहिये। चारपाईको खड़ीकर किबाइमें बिना टकराये छकर एक ओर रख देना चाहिये। पीनेको खड़ाकर किबाइमें बिना टकराये। चारपाईके (पायेके) मोट। पीकदानको एक बार। सिरहालैका पट्टा एक ओर। फर्शके बिछबटक अनुसार जानकर से आकर। यदि विहारमें आला हो तो टक्काक पहिले बहारना चाहिये। अन्धरे कोने साफ करना चाहिये। यदि भीठ (=खीबर) गेऊसे गच्छी हुइ हो तो कत्ता मिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये। यदि काली हो गई, मलिन भूमि हो (तो भी) कत्ता मिगोकर रगड़कर साफ करनी चाहिये। जिसमें धूँसे खराब न हो जाय। धूँसेको छ जाकर एक तरफ पेंकना चाहिये। फर्शको भूपमें सुत्ता माफकर फटकरकर के आकर पहिलेकी भाँति बिछ देना चाहिये। चारपाईके मोट भूपमें सुत्ता साफकर के आकर, उनके स्थानपर रख देने चाहिये। चारपाईको भूपमें सुत्ता माफकर फटकरकर नबाकर किबाइको बिना टकराये छ जाकर। पीडा। तकिया। गद्दा चर भूपमें सुत्ता साफकर फटकरकर के आकर बिछ देना चाहिये। पीकदान सुत्ता माफकर छकर बधा-स्थान रख देना चाहिये।।

यदि भूमि किये पुरना हवा बक रही हो पूर्वकी बिड़किपाँ बन्दकर दर्जा चाहिये।। यदि बाइके दिन हों दिवको अगस्त सुख रखकर रातको बन्दकर देना चाहिये। यदि गर्मीका दिन हो दिवको बंगल बन्दकर रातको छोस देना चाहिये। यदि आगम (=परिवेग) मैल्य हो आगम शाब्दा चाहिये। यदि कोदरी मली हो। यदि उपस्थान-नास्य (=बैठक) मैली हो। यदि अग्निनास्य (=पानी गमं करनेका घर) मैल्य। यदि पालाना मला हो। यदि पानी न हो पानी भरकर रखना चाहिये। यदि पीनेका जल न हो। यदि पालानकी मदनीमें बस न हो।

उपाध्यायको शिवपूजा अन्त बतान करना चाहिये। वह बताव वह है—उपाध्यायका शिवपूजा अनुग्रह करना चाहिये (शिवके लिये) उपदेश देना चाहिये। पात्र देना



चाहिये । यदि उपाध्यायको बीबर है शिष्यको नहीं । बीबर वृक्षा चाहिये, या शिष्यको बीबर दिखानेके किये उत्सुक होना चाहिये—'परिष्कार देना चाहिये । । यदि शिष्य रोगी हो तो समयसे उठकर दातबान मुखोदक देना चाहिये । आसन विद्यमान चाहिये । यदि लिचड़ी हो तो पात्र बोकर देना चाहिये । पानी देकर पात्र के विषा घिस बोकर रक्त देना चाहिये । शिष्यके उठ जानेपर आसन उठा लेना चाहिये । यदि वह स्वाम मका है तो झाड़ देना चाहिये । यदि शिष्य गर्भमें जाना चाहता है तो बन्ध धमाना चाहिये । यदि पावानेकी मद्यकीमें बन्ध न हो ।

उस समय शिष्य उपाध्यायके लगे जानेपर विचार-परिचर्चकर समेपर (या) मर जाने पर बिना आचार्यके हो उपदेश=अनुशासन व किये जानेसे बिना डीकसे (बीबर) पहले बिना डीकसे हैंके वेसहृदिस्ति मिच्छाके किये जाते थे । भगवान्ने मिश्रुओंको संबोधित किया—

“मिश्रुओ ! आचार्य (करने) की अनुज्ञा देता हूँ ।

‘उस समय ब्राह्मण राजने मिश्रुओंसे प्रवचना मंगी । मिश्रुओंने (उसे) प्रवृत्त न करना चाहा । वह प्रवृत्त व पानेसे दुर्बल रुना दुर्बल पीछ हाक-हाक निष्कष्य हो गया । । भगवान्ने उस ब्राह्मणको देख. मिश्रुओंको सम्बोधित किया—“मिश्रुओ ! इस ब्राह्मणक क्या उपकार किसीको बाध है ?” ऐसे कहनेपर आनुष्माद् सारियुवने भगवान्की कहा—“भन्ते ! मैं इस ब्राह्मणक उपकार धरण करता हूँ ।

“सारियुव ! इस ब्राह्मणक क्या उपकार व धरण करता है ?

“भन्ते ! मुझे राजगृहमें मिच्छाके किये वृत्ते समय इस ब्राह्मणने करछीमर भात निकवापा या । भन्ते ! मैं इस ब्राह्मणक वह उपकार धरण करता हूँ ।

“साधु ! साधु ! सारियुव ! स पुरुष कृत्तञ्ज=कृतवेदी ( जाते हैं ) । वो है सारियुव ! व ( ही ) इस ब्राह्मणक प्रवृत्त कर उपसम्पादित कर ।

“भन्ते ! कैसे इस ब्राह्मणको प्रवृत्त करूँ ( कैसे ) उपसम्पादित करूँ ?”

तब भगवान्ने हुयी सम्बन्धमें=वृत्ती प्रकरणमें धर्मसम्बन्धी कहा वह मिश्रुओंको सम्बोधित किया—

“मिश्रुओ ! मैंने जो तीन शरण-गमनसे उपसम्पादकी अनुज्ञा की थी भन्तसे उसे मना करता हूँ । (भन्तसे) चौपी इतिवाले कर्मक साथ उपसम्पादकी अनुज्ञा देता हूँ । इस तरह, उपसम्पाद करनी चाहिये—योग्य समयमें मिश्रु स धको जापित करे—

( १ ) “भन्ते ! संघ मुझ सुभ ; अनुक नामक अनुक नामके आनुष्मात्क उपसम्पादकी है । यदि संघ उचित समझे संघ अनुक नामकके अनुक नामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पाद करे । वह उचित है ।

१ मिश्रुओंके सामान । २ शरीर होवपर उपाध्यायको शिष्यकी वह समी सवा करकी जाती है जो स्वत्व शिष्यके कर्त्तव्यमें आ चुकी है ।

१ महाभाग १ । २ वेदो पृष्ठ २९ । ३ अनुकक रत्नानपर उपसम्पादकीका नाम किया जाता है कहीं-कहीं एक काप्यनिक नाम भी किया जाता है । ४ मिश्रु-पत्र-आइनेवालम ।

( १ ) “भग्ने ! संध सुने सुने; अमुक नामक अमुक नामके आपुष्पात्क उपसम्पदापेक्षी है । सब अमुक नामकको अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पदा करता है । जिस आपुष्पात्को अमुक नामककी उपसम्पदा अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें स्वीकार है वह चुप रहे जिसको स्वीकार न हो वह बोके ।

( १ ) दूसरी बार भी इसी बातको बोळटा हूँ—“भग्ने ! सब सुने, यह अमुक नामक अमुक नामक आपुष्पात्क उपसम्पदापेक्षी है । जिसको स्वीकार न हो वह बोके ।

( २ ) तीसरी बार भी इसी बातको बोळटा हूँ—“भग्ने ! संध सुने ।

संधको स्वीकार है इसकिए चुप है—येसा समझता हूँ ।

ॐ

ॐ

ॐ

( १२ )

कपिलवस्तु-गमन । नन्द और राहुलकी प्रमज्या । ( ई. पू. ५२७ )

‘तथागतके वेणुवनमें बिहार करते समय शुद्धोदन महाराजने—मेरा पुत्र क वप बुद्धक तप कर परम-अभिसम्बोधि (=बुद्धत्व) को प्राप्त कर, धर्म-व्यक्त प्रवर्तनकर ( इस समय ) वेणुवनमें बिहार करता है—यह सुन अमात्यको सम्बोधित किया—“आ भग्ने ! मेरे बचनसे हजार आशुमिषोंके साथ राजगृहमें जा—‘तुम्हारे पिता शुद्धोदन महाराज तुम्हें देखना चाहते हैं । यह अह, मेरे पुत्रको ले आ ।

“अप्यथ देव ! ( कइकर अमात्य ) राजाका बचन सिरसं ग्रहण कर, हजार पुरुषों सहित सौत्र ही साठ योजन मार्ग जाकर, ‘दशवक्त्रके ‘चारों परिपक्के बीच धर्मोपदेश करते समय बिहारके भीतर गया । उसने—‘राजाका भेजा शासन (=विही) भगी पक्षा रह’ (सौत्र) पक और खड़ा हो घालाकी बमदिसनाको सुनकर, खड़े ही खड़े हजार पुरुषों समत भईए-पक्के प्राप्त हो प्रमज्या मर्गी । भगवान्ने—“मिधुभो ! तुम आओ” ( कइ ) हाथ पसारा; सभी बसकारसे उसी क्षण उत्पन्न पात्र पीपर धारण किये हुए, १ वर्षके बूड-देर हो गये । अर्हत्व प्राप्त-कइसे—आर्षं लोग मज्ज (=बुद्धि) होते हैं—( सौत्र ) राजाका भेजा शासनक दशवक्त्रको न कहा ।

राजाने “गथा ( अमात्य ) न स्पष्टता है न शासन (=विही) सुनाई देता है; आ भग्ने ! तु आ” ( कइ ) पहिलकी ही मूर्ति हंसरे अमात्यको भेजा । यह भी आकर पहिलेकी मूर्ति अमुकरों सहित अर्हत्व पाकर चुप हो गया । राजाने इसी प्रकार हजार-हजार पुरुषों सहित सब अमात्योंको भेजा । सभी अपना कृत्व समाप्त कर चुप हो वहीं चिहरने कने । राजा शासन (=व्यक्त) मात्र भी कइकर कइनेवालेको न पा मोचने लगा—“इतने जन मेरेमें

१ जातक. नि. २८. महावग्ग अ. क. । महाकण्वक राहुल-वस्तु । २ बुद्धक दम दम होते हैं । ३ मिधु मिधुजी उपासक भीर उपासिक । ४ लीत जापक सकृत्गामी अवागामी भीर अर्हत् ।

चाहिये । यदि उपाध्यायको चीवर है सिप्यको नहीं । चीवर देना चाहिये, वा सिप्यको चीवर दिखानेक किये उरसुक होना चाहिये—परिष्कार देना चाहिये । । यदि सिप्य रोगी हो तो समपसे उच्छर वातवान सुलोदक देना चाहिये । भासन बिछाना चाहिये । यदि सिचपी हो तो पार धोकर देना चाहिये । पानी देकर पात्र क बिना जिसे धोकर रत्न देना चाहिये । सिप्यके उद जानेपर भासक ठटा केना चाहिये । यदि वह न्यान मँसा है तो झाड़ देना चाहिये । यदि सिप्य गर्बिमें जाना चाहता है तो बस बसाना चाहिये । यदि पाजानेकी मन्त्रीमें बक व हा ।

उस समय सिप्य उपाध्यायक पहले जानेपर विचार-परिवर्तनकर केनपर (पा) मर जाव पर बिना आचार्यके हो उपदेश=अनुवासन व किच जानेसे बिना डीकसे ( चीवर ) पहने बिना डीकसे ईके केसहूरीसे मिहाके किये करते से । भगवान्ने मिश्रुओंको संबोधित किया—  
“मिश्रुओ ! आचार्य (करवें) की अनुज्ञा देना है ।

‘उस समय ब्राह्मण राजने मिश्रुओंस प्रजया मोगी । मिश्रुओं (उस) प्रजित व करवा चाहा । वह प्रजया व पानेसे दुबंक कना दुबंज पीसा हाव-हाव विकस्य हो गया । । भगवान्ने उस ब्राह्मणको देख मिश्रुओंको संबोधित किया—“मिश्रुओ ! इस ब्राह्मणक किया उपकार किसीको वाह है ?’ एसे कहनेपर आपुध्याय सारियुव भगवान्को कहु—“मन्ते ! मैं इस ब्राह्मणक उपकार स्मरण करता हूँ ।

‘सारियुव ! इस ब्राह्मणक क्या उपकार त् स्मरण करता है ?

“मन्ते ! मुझे राजगृहमें मिहाके किये वृमते समय इस ब्राह्मणने करछेभर भत दिखवाया था । मन्ते ! मैं इस ब्राह्मणक यह उपकार स्मरण करता हूँ ।

“साह ! साह ! सारियुव ! स-पुदप कुतह=कृतपैरी ( होते हैं ) । तो ह सारियुव ! त् ( ही ) इस ब्राह्मणको प्रजित कर उपसम्पादित कर ।”

“मन्ते ! कैसे इस ब्राह्मणको प्रजित कर ( कैसे ) उपसम्पादित करे ?

तब भगवान्ने इसी सम्बन्धमें—इसी प्रकारमें धर्मसम्बन्धी कवा कह मिश्रुओंको संबोधित किया—

“मिश्रुओ ! मैंने जो तीन ‘करक-भामवसे उपसम्पदाकी अनुज्ञा ली थी आजसे इसे मवा करता हूँ । (आजसे) बीबी श्रुतिबाके कर्मक साव उपसम्पदाकी अनुज्ञा देता हूँ । इस तरह उपसम्पदा करनी चाहिये—दीन्य समर्भ मिश्रु व धको ज्ञापित करे—

( १ ) “मन्ते ! सर्व मुझे सुनै, ‘अमुक नामक अमुक नामके आपुध्यायक ‘उप सम्पदायेकी है । यदि सर्व उचित समसे सर्व अमुक नामकके अमुक नामकके उपाध्यायकमें उपसम्पदा करै । यह वसि है ।

१ मिश्रुओंके नामाव । २ रोगी होनेपर उपाध्यायको सिप्यकी वह सही सेवा करनी होती है वा करव सिप्यक कर्चकमें था चुकी है ।

१ महाभया १ । २ वेको पृष्ठ ३९ । ३ अमुकके स्वानपर उपसम्पदायेकीव नाम किया जाता है कहीं-कहीं एक काक्यनिक नाम भी लिया जाता है । ४ मिश्रु-यव-चाहनेवाक्य ।

( १ ) “मन्ते ! संघ सुने सुने, अमुक नामक अमुक नामके आयुष्मान्क उपसम्पदापेक्षी है । सब अमुक नामकको अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पन्न करता है । जिस आयुष्मान्को अमुक नामककी उपसम्पदा अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें स्वीकार है वह चुप रहे जिसको स्वीकार न हो वह बोले ।

( १ ) वृत्ती बार मी इसी बातको बोळता हूँ—“मन्ते ! संघ सुने, यह अमुक नामक अमुक नामक आयुष्मान्क उपसम्पदापेक्षी है । जिसको स्वीकार न हो वह बोले ।

( ४ ) तीसरी बार मी इसी बातको बोळता हूँ—“मन्ते ! संघ सुन ।

संघको स्वीकार है इतकिय चुप है—येसा समझता हूँ ।”

४

४

४

( १२ )

कपिलवस्तु-गमन । नन्द और राहुलकी प्रव्रज्या । ( ई पू ५२७ )

‘तथागतके श्रेणुवनमें विहार करते समय शुद्धोदन महाराजने—मेरा पुत्र ४ वर्ष दुष्कर तप कर परम-अमिसम्बोधि ( = बुद्धत्व ) को प्राप्त कर, धर्म-ब्रह्म-प्रवर्तनकर ( इस समय ) श्रेणुवनमें विहार करता है—यह सुन अमात्यको सम्बोधित किया—“अह मने ! मेरे बचनसे हजार धार्मिकोंके साथ राजगृहमें जा—‘तुम्हारे पिता शुद्धोदन महाराज तुम्हें देखना चाहते हैं । यह कह, मेरे पुत्रको ले आ ।

“अप्यथा वेच !” ( कहकर अमात्य ) राजाका बचन शिरसे ग्रहण कर; हजार पुरुषों सहित शीघ्र ही साठ योजन मार्ग जाकर, देशावकके चारों परिपक्के बीच धर्मोपदेश करते समय विहारके भीतर गया । उसने—“राजाका भेज सामन ( = मन्त्रीय पत्र ) अभी पढ़ा रहे” ( श्लोक ) एक ओर खड़ा हो शात्याकी धर्मवैसत्याको सुनकर कड़े ही लड़े हजार पुरुषों समत अर्हत्-पदको प्राप्त हो प्रव्रज्या मींगी । भगवान्ने—“सिद्धुओ ! तुम जाओ” ( कह ) हाथ पसारा, सभी अमात्यरसे ठसी क्षण उत्पन्न पात्र भीतर पारज क्रिये हुए, १ वर्षके बूड-डेरे हो गये । अर्हत्त्व प्राप्त-आइसे—“चार्य कोग मध्य ( = बुद्धि ) होते हैं—( श्लोक ) राजाका मजा भासवक दसवकको न कहा ।

राजाने “तथा ( अमात्य ) व कियेता है न प्राप्त ( = बिही ) मुनाई देता है; आ मने ! ए वा” ( कह ) पहिलेकी ही मीधि दूसरे अमात्यको भेजा । वह मी जाकर पहिलेकी मीति अमुचरों सहित अर्हत्त्व पाकर चुप हो गया । राजाने इसी प्रकार हजार-हजार पुरुषों सहित नव अमात्योंको भेजा । सभी अपना कृष्ण समाप्त कर चुप हा बड़ी विहरने लगे । राजा सामन ( = पत्र ) मात्र मी क्यकर करनेवालेको म पा सोचने लगा—“इतने जन मेरेमें

१ जावक नि ४८ महावमा अ. क । महाकल्पक राहुल-अस्तु । २ बुद्धक दस वरु होते हैं । ३ सिद्धु, सिद्धुजी उपासक भीर उपासिक । ४ श्लोक आपण सहस्रगामी अत्रगामी और अर्हत् ।

चाहिये । यदि उपाध्यायको चीवर है सिप्यको नहीं । चीवर देना चाहिये; या सिप्यको चीवर दिलानेके किये उत्सुक होना चाहिये—परिष्कार देना चाहिये । । यदि सिप्य रोटी हो तो समयसे उठकर दातवान मुसोदक देना चाहिये । आसन बिछाना चाहिये । यदि सिप्यही हो तो पात्र ढोकर देना चाहिये । पानी ढोकर पात्र के बिना धिसे ढोकर रख देना चाहिये । सिप्यके उठ जानेपर आसन उठ लेना चाहिये । यदि वह स्वाम मीठा है तो झारू देना चाहिये । यदि सिप्य गार्बमें जाया चाहता है तो बन्न घमाना चाहिये । यदि पात्रानेकी मदकीमें बल न हो ।

उस समय सिप्य उपाध्यायके फल जानेपर, बिचार-परिवर्तनकर सेनेपर (या) भर क्षण पर बिना आचार्यके हो उपदेश=अनुशासन व किये जानेसे, बिना टीकसे (चीवर) पहन बिना टीकसे ईक बैसहूरीसे मिशाके किये जाते थे । भगवान्ने मिश्रुओंको संबोधित किया—  
“मिश्रुओ ! व्याचार्य (करने) की अनुशा देता हूँ ।

‘उस समय, ब्राह्मण राजाने मिश्रुओंसे प्रमत्ता मर्गी । मिश्रुओंमें (उसे) प्रमत्त न करवा चाहा । वह प्रमत्ता न पायेसे दुर्बल कथा दुर्बल पीका हाथ-हाथ निकल्य हो गया । । भगवान्ने उस ब्राह्मणको देख मिश्रुओंको संबोधित किया—“मिश्रुओ ! इस ब्राह्मणका किया उपकार किसीको याद है ?” पूरे कहनेपर आनुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को कहा—“मन्ते ! मैं इस ब्राह्मणका उपकार स्मरण करता हूँ ।

“सारिपुत्र ! इस ब्राह्मणका क्या उपकार तू स्मरण करता है ?

“मन्ते ! मुझे राजगृहमें मिच्छाके किये भूमत समय इस ब्राह्मणने करझीमर भात रिकवाया था । मन्ते ! मैं इस ब्राह्मणका यह उपकार स्मरण करता हूँ ।

“साधु ! साधु ! सारिपुत्र ! स उरुप ह्यतश्चतपेदी ( होते हैं ) । तो हे सारिपुत्र ! तू ( ही ) इस ब्राह्मणको प्रमत्त कर उपसम्पादित कर ।

“मन्ते ! कैसे इस ब्राह्मणको प्रमत्त करूँ ( कैम ) उपसम्पादित करूँ ?

तब भगवान्ने इसी सम्बन्धमें=इसी प्रकारमें धर्मसम्बन्धी कथा कह मिश्रुओंको संबोधित किया—

“मिश्रुओ ! मैंने जो तीन ‘सरल-गामनसे उपसम्पदाकी अनुशा ही थी आजसे उसे मना करता हूँ । (आर्य) चीवी शसिचाले कर्मक साथ उपसम्पदाकी अनुशा देता हूँ । इस तरह उपसम्पदा करनी चाहिये—दान्य समर्प मिश्रु स धको शपित करे—

( १ ) “मन्ते ! संघ गुरो सुन; ‘अमुक नामक अमुक नामके आनुष्मान्का ‘उप-सम्पदापेक्षी है । यदि संघ उचित समयसे संघ अमुक नामकको अमुक नामकके उपाध्यायधर्ममें उपसम्पदा कर । वह शसि है ।

१ मिश्रुओंके सामान । २ रागी होकर उपाध्यायको सिप्यकी यह सभी सेवा करनी दानी है जो स्वन्व सिप्यके कर्त्तव्यमें आ चुकी है ।

१ महाधया १ । २ देवो गृह २९ । ३ अमुकने रघावपर उपसम्पदापेक्षीका नाम लिया जाता है कहीं-कहीं एक व्याप्यतिक नाम भी लिया जाता है । ४ मिश्रु-पत्र-बाहनवाक्य ।

(२) 'मन्ते ! संघ सुभे सुभे, अमुक नामक अमुक नामके आयुष्मान्का उपसम्पत्तयेसी है । मघ अमुक नामकको अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें उपसम्पत्त करता है । जिस आयुष्मान्को अमुक नामककी उपसम्पत्त अमुक नामकके उपाध्यायत्वमें स्वीकार है वह चुप रहे जिसको स्वीकार न हो वह बोले ।

(३) दूसरी बार भी इसी बातको बोधता हूँ—“मन्ते ! संघ सुभे यह अमुक नामक अमुक नामक आयुष्मान्का उपसम्पत्तयेसी है । जिसको स्वीकार न हो वह बोले ।

(४) तीसरी बार भी इसी बातको बोधता हूँ—‘मन्ते ! संघ सुभे ।

सबको स्वीकार है इसविध चुप है—येसा समझता हूँ ।

●

●

●

( १२ )

कपिलवस्तु-गमन । नन्द और राजुलकी प्रव्रज्या । ( ई. पू. ५२७ )

'तथागतके श्रेणुवनमें विहार करते समय 'सुखोद्गम महाराजने—मेरा पुत्र छ वर्ष पुष्कर तप कर परम-अभिमन्त्रोचि (अध्याय) को प्राप्त कर धर्म-व्यक्त प्रवर्तनकर ( इस समय ) श्रेणुवनमें विहार करता है—यह सुन अमात्यको सम्बोधित किया—“आ मन्ते ! मेरे बचनसे इन्कार आदिमियोंके साथ राजसूदमें जा—‘तुम्हारे पिता सुखोद्गम महाराज तुम्हें रोकना चाहते हैं । वह न्द, मेरे पुत्रको ले जा ।

“जच्छा देव !” ( कहकर अमात्य ) राजाका बचन धिरसे प्रहल कर, इन्कार पुरुषों सहित द्वाप ही साठ थोकन मार्ग जाकर, 'दसबकके चारों परिपक्के बीच धर्मोपदेश करते समय विहारके भीतर गया । उसने—“राजाका मेका शासन (अभ्युद्योग पत्र) अभी पड़ा रहे' (सोच) एक जोर खाड़ा हो आन्ध्रकी धर्मोपदेशको सुनकर खड़े ही खड़े इन्कार पुरुषों समत अर्हत्त्व-पत्रको प्राप्त हो प्रव्रज्या मर्गि । अगवान्ने—“मिथुनो ! तुम जाओ” ( कह ) हाथ पसारा, सभी धर्मकारसे उसी क्षण उत्पन्न पात्र भीतर धारण किये हुए, १ वर्षके बूट-टैर हो गये । अर्हत्त्व प्राप्त-ककसे—‘धार्मिक लोग मध्य (चुचि) होते हैं—( सोच ) राजाका मेका शासनक दसबकको न कहा ।

राजाने “गया ( अमात्य ) न कीरता है न शासन (अधिकारी) घुनाई देता है; आ मन्ते ! तु जा” ( कह ) पहिलेकी ही मूर्ति दूसरे अमात्यको मेका । वह भी जाकर पहिलेकी मूर्ति अनुचरों सहित अर्हत्त्व पाकर चुप हो गया । राजाने इसी प्रकार इन्कार-इन्कार पुरुषों सहित नव अमात्योंको मेका । सभी धपना हृत्प समाप्त कर चुप हो वहीं विहरने लगे । राजा शासन (पत्र) मात्र भी कक करेबाकेको न पा सोचने लगा—‘इतने वन मेरेमें

१ वाक्य. नि. ४। महाभारत अ. क. १। महाकाव्यक राजुल-वस्तु । २ बुद्धके दस बक होते हैं । ३ मिथु मिथुनी उपामक और उपामिका । ४ शीत भावक सकृदागामी अनागामी धीर अर्हत्त्व ।

मम-भाव रखते हुए, शासन मात्र भी न ले जाये (भव) कौम मेरी पाठ करेगा। (तब हमने) सब राज (मुद्रण) मन्त्रालयों इन्होंने काफ़-उठावोंको देखा। वह राजाका सर्व-अन्तरंग अतिनिवास्य स्वर्वायसाधक-ममास्य बोधिसत्वके साथ एक ही दिव उत्पन्न साध बूझी लम्बा मित्र था। तब राजाने उसे सम्बाधित किया— 'तात ! काफ़-उठावों ! मैं अपने पुत्रको देखना चाहता हूँ मम हजार पुत्रोंको भेजा एक पुरुष भी थाकर शासन मात्र कहनेवाला नहीं है। सरीरका कोई ठिकाना नहीं। मैं जीते जी पुत्रको देख लेना चाहता हूँ। मेरे पुत्रको मुझे दिखा सकोगी ?'

'देव ! सचूँगा यदि प्रमत्ता छेवेनी काजा मित्र ।

'तात ! तू प्रमथित या अप्रमथित हो मेरे पुत्रको काकर दिखा ।

'देव ! अप्पम' (कह) वह राजाका साक्ष्य छे राजगृह जो सात्ताकी धर्मदेशनाके समय परिपक्वके मन्दमें कहा हो धर्म सुन परिवार-सहित मईल्लक मास हो "मिधु ! आओ" से मिधु हो उठर गया। शात्ता बुद्ध होकर पहिले कतुभर अप्रिपत्तलमें बासकर, बर्षावास समाप्तकर, 'प्राधारणा (अवारणा) कर लक्ष्येछामें जा वहाँ तीन मास उठर सीनों माई जरिकोंको रास्तेपर का एक सहस्र मिधुओंके साथ पौषमासकी पूर्णिमाको राजगृह जा हो माम बसे। इतनेमें धारणसीसे चडे पाँच मास बीत गये। सारा हेमन्त-ऋतु बीत गया। उठावों खबिर, अप्पेके दिनसे सात-आठ दिव बिठा फण्डगुणकी पूर्णिमाकी सोचने का—हेमन्त बीत गया वसन्त आगया। मनुष्योंने साक्ष्य जाति (कच्छकर) राक्ष छोड़ दिया। पूर्णिमी हरित गुजसे आच्छादित है वन चर्च फूले हुए हैं। रास्त जाने कापक होगये हैं। यह द्वावकके किये अपनी जातिको संग्रह करनेका (उचित) समय है। (वह मोच) भगवान्के पास आकर बोले—

'मन्त ! पत्ते छोडकर अप्पकी इच्छासे (इस समय) हुम भंगार बाडे हा गये हैं। महावीर ! वह छी-बाके-स प्रतीत होये है रसोंका यह समय है।

'न बहुत सीत है न बहुत उप्प है न बहुत काककी कदिनाई है। हरिवाकीसे भूमि हरित है। महासुनि ! वह (जानेका) समय है (इत्थादि) साठ गाथाओं द्वारा एक-एकसे कुम-नगर धाकी प्रसंसाकी।

तब भगवान्ने कहा— "उठावों ! क्या छे जो मनु-स्वसे पात्राकी प्रसंसा कर रहा है ?

"मन्ते ! आपके पिता शुद्धोद्भन महाराज (आपको) देखना चाहते हैं अतिवाकोंका संग्रह करें।

"उठावों ! अप्पम मैं जाति काकेंअ संग्रह करूँगा, मिधु-अंभको कहे कि पात्राअ मत (बकिवा) पूरा करै।

"अप्पम मन्ते ! (कह) अचिरने (मिधु-अंभको) फटा।

भगवान् अंग मगधके इस हजार कुम-पुत्रों तथा इस हजार कथिअयरतुके विद्वामी सब बीस हजार क्षीणप्रसव (=भईन्) मिधुओं सहित राजगृहसे निष्कसर

रोज योजन भर पकते थे। राजगृहसे साठ योजन कपिलवस्तु दो मासोंमें पहुँचनेकी इच्छासे धीमी चारिका से चलत थे।

शाक्योंने— भगवान् रहनेके स्थानका विचार करते हुए स्वप्नोद्य (नामक) शाक्यके अपरामको रमणीय जान बहोँ सजाई कर गंध पुष्प हाथमें छं भगवाणीके किये सब भक्तियोंसे भक्तकृत नगरके छोटे लड़के छिड़कियोंको पहिंके भेज। फिर राजकुमारों और राजकुमारियोंकी। उनके बाद स्वर्ण रत्न पुष्प चूर्ण आदिसे भगवान्की पूजा करत स्वप्नोधाराम के गये। बहोँ बीम इबार छीणासबों (=भईतों) के महित भगवान् स्थापित बुदाभनपर केते।

दूसरे दिन मिथुओं महित (भगवान्) कपिलवस्तुमें मिछाके किये प्रवेश किया। १ भगवान्ने 'इन्द्रकीछपर लड़े हो सोचा—'पहिंके बुदाने कुल-नगरमें मिछाचार कैसे किया ? क्या बीच-बीचमें घर छोड़कर वा एक खोरस ?' फिर एक बुद्धको भी बीच बीचमें घर छोड़कर मिछाचार करते नहीं बंध, मरा भी यही (बुद्धोंका) बंध है हमकिये यही कुलधर्म प्रहण करना चाहिये। हमसे जाबेथाने ममयमें मेरे प्राचक (=सिख) मराही अनुकरण करते (हुये) मिछाचारमत पूरा करौंगे' वेना (सोच) छोड़के घरमें ही मिछाचार आरंभ किया। 'आर्ष सिखार्यकुमार मिछाचार कर रहे हैं यह (सुन) लोग हुतफ्ते तितफ्केपर छिड़कियों कोक देखने लग।

राहुल माता देवी भी—'आर्षपुत्र इसी नगरमें राजाओंके छयमे सोनेकी पायकी आदिमें बूमे और भाज इसी नगरमें) सिर-नाही मुदा कपाय बन्ध पहिन कपाक (=परपदा) हाथमें के मिछाचार कर रहे हैं !! क्या ( यह ) सोमा देता है कइती छिड़की कोककर नासा बिरामसे उम्क सरिर-धर्म-शारा नगरकी सड़कको भवभासितकर अनुपम बुद्धभीने बिरौचमात्र भगवान्को देख राजामे बोली 'आपका पुत्र मिछाचार कर रहा है। राजा बपराया हुआ हाथने धोतो संभारते जल्दी कइती निकलकर, बेगमे जा भगवान्के सामने कहा हो बोधक—'मन्ते ! हमें क्या फजबते हो ? किसकिय मिछा चरण करत हो ? क्या इतने मिछुओंके किये भाजन नहीं मिछता ?'

'महाराज ! हमारे बंधक यही व्यवहार है'

'मन्ते ! हम लोगोंका बंध तो महा सम्मत (=मनु ?) का अधिपयस्य दे ? एक अधिप भी तो कभी मिछाचारी नहीं हुआ' ।

( शाक्यने ) भगवान्का पात्रके परिपद-सहित भगवान्की महकपर लहा उचम काय भांज्य परोसे। भोजनके बाद एक राहुल-माताको छोड़ ममी रनिवासने भा थाकर भगवान्की बन्दाकी। वह परिजनद्वारा—'जाओ आर्षपुत्रकी बन्दा करो कइ जानेपर मी—'पहिं मरेमें गुण है तो स्वय आर्ष-पुत्र मरे पास आयेंग। जानेपर ही पंदना करूँगी।' वह कइ, न धार्ई।

भगवान् राजाको पात्रके दो अग्रधाचकमें (वसरिपुत्र मीद्गकपायन) के साथ राजकुमारीके अग्रनागार (अग्नीगर्भ) में जा—'राजकुम्बोंका यथास्थि बन्दा करने देना कुल



न बोक्या' कह बिह्वले भासनपर बैठ गये। उसने कक्षीसे आ गुल्क एकपकर धिरको पैरोंपर रख जपनी इच्छानुसार बन्दनाकी। राजाके भगवान्‌के प्रति राजकन्याके स्नेह-सत्कार आदि गुल्की कहा— 'भन्ते ! मेरी बेटी आपक कायाय-वस्त्र पहिनकेसे सुनकर, तनीसे कायाय-धारिणी हो गई। आपके एकबार मोखबको सुन एकहारिणी हो गई। आपके कँचे एककके छोड़नेकी बात सुन, कटिपाके मंचेपर सोने लगी। आपके माया गन्ध आदिस बिरत होकेकी बात जान गंध माका आदिसे बिरत हो गई। अपने पीहर बाकोंक 'हम तुम्हारी सेवा सुख्य करौंगे' ऐसा पत्र भेजनेपर एक 'को भी नहीं देखती। भगवान् ! मेरी बेटी ऐसी गुनवती है" ( भगवान् उपदेश दे, ) भासनसे उठकर चले गये।

'तीसरे दिन (भगवान्‌ने) मन्व (राजकुमार) के अमिपेक गृहप्रवेश और विवाह—दूग तीव्र मंगलकर्म होनेके दिन मिश्राके किये प्रवेशकर मन्व कुमारके हाथमें पात्रदे मंगल कह, उठ कर कपटे बध, कुमारके हाथसे पात्र न किया। वह भी तबागतके गारबसे 'भन्ते ! पात्र कीजिये' न कह सका। उसने शोचा— "सीपीपर कल पात्र के डेंगे"। धाम्नाने वहाँ भी न किया "सीपीके नीचे प्रह्व करौंगे"। 'राज-वर्मानमें प्रह्व करौंगे"। शाक्याने वहाँ भी न प्रह्व किया। "पात्र कीजिये न कह सका। "यहाँ केडेंगे वहाँ केडेंगे" यही सोचता जा रहा था। उस समय कौगोंके जनपद कस्याजीको कहा— "भगवान् मन्वराजाको किये जा रहे हैं वह तुम्हें उनके बिनाकर देंगे"। वह दूँद पिरते अपने कँगही किये कसोंके साखी कक्षीसे सहकर एक खिदकीपर कक्षीहो बोकी— "आर्षपुत्र ! कक्षी क्याता" वह बचन उसके दरपमें उठते पड़े शम्भकी भाँति कगारहा। साम्नाने भी उसके हाथ से पात्र कके विहारमें जा— "मन्व ! प्रमथित होमो ! ?" पूछ। उससे जुद्धके क्वाकसे नहीं न करके 'हाँ। प्रम थित होऊँगा'—कहा। तब धाम्नाने "कन्वको प्रमथित करो" कहा। इस प्रकार कपिस पुरमें जाकर तीसरे दिन मन्वको प्रमथित किया।

'सातवें दिन राहुक-माताने कुमारका भकंकृत कर, भगवान्‌के पास वह कहकर प्रेक्षा— "तात ! बीस हजार अमनोंके मध्यमें सुख-वर्ष अमनको देख बही तरे विता है। उनके पास बहुत काजाने ये; किन्हे उनके (बरसे) निकलनेके बादसे नहीं देखते।"

'भगवान् पूर्वाह्न समय पहचकर पात्र-बीषरसे कहीं छुडोदक साखक धर था वहाँ गये। जाकर बिह्वले भासनपर बैठे। तब राहुक-माता बेचीने राहुक-कुमारको बो कहा— "राहुक ! यह तरे विता है आ दापत्र ( अन्तरासत) माँग"। तब राहुककुमार जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के सामने कहा हो कहने लगा— "अमथ ! तेरी जबा सुखमथ है"। तब भगवान् आपरसे उठकर एक दिवे। राहुककुमार भी भगवान्‌के पीछे पीछे लगा—

"अमथ ! मुझे दापत्र दे" "अमथ ! मुझे दापत्र दे।

तब भगवान्‌ने आपुमाम् सारिपुत्रको कहा—

"तौ सारिपुत्र ! राहुक-कुमारको प्रमथित करो"

"भन्ते ! किस प्रकार राहुक कुमारको प्रमथित करूँ ?"

इसी मौकेपर इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कहकर भगवान्‌ने मिश्रुओंको संबोधित किया—

“मिश्रुओ ! तीन शरत्, गमनसे 'भ्रामणेर प्रमथ्याकी अमुशा' देता हू । इस प्रकार प्रस्रजित करवा चाहिये । पहिले सिर-धानी मूँदवा काप्यव-बख पहिना एक कंधेपर उपरना करवा मिश्रुओंकी पाद-बन्धना करवा उकई, बैठवा हाथ जोड़वा 'ऐमा कहो' बोसना चाहिये—'बुद्धकी शरण जाता हू, धर्मकी शरण जाता हू, संभजी शरण जाता हू । दूसरी बारमी । तीसरी बारमी बुद्धकी शरण ।

तब आयुष्मान् सारिपुत्रने राहुलकुमारको प्रस्रजित किया । तब सुखोद्दम शाक्य वहाँ भगवान्‌से बहाँ गया, और भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर बठ गया । एक ओर बैठ हुए सुखोद्दम शाक्यने भगवान्‌को कहा—

“मन्ते ! भगवान्‌ से मैं एक बर चाहता हू ।

गातम ! तत्रागत बरसे दूरहो चुके हैं ।”

“मन्ते ! जो ठकित है शरप्-रहित है ।”

‘बोळी गौतम !”

“भगवान्‌के प्रस्रजित होवेपर मुझे बहुत दुःख हुआ था बसही मन्थ (के प्रस्रजित) होने पर भी । राहुलके ( प्रस्रजित ) होवेपर शरपधिक । मन्ते ! पुत्र पेन मेरी छास छेद रहा है । छाक छेदकर । चमईको छेदकर मौसका छेद रहा है । मौसको छेदकर नसको छेद रहा है । नसको छेदकर हड्डीको छेद रहा है । हड्डीको छेदकर बापककर दिया है । बध्था हो मन्ते ! कार्य ( = मिश्रुओग) माता पिताकी अमुशाके बिना (किसीको) प्रस्रजित न करे ।”

भगवान्‌ने सुखोद्दम शाक्यको धार्मिक कथा कही । तब सुखोद्दम शाक्य जासनसे उठ अभिवादनकर प्रस्रक्षिणाकर चलागया । भगवान्‌ने इसी मौकेपर, इसी प्रकरणमें धार्मिक कथा कह मिश्रुओंको संबोधित किया—“मिश्रुओ ! माता पिताकी अमुशाके बिना पुत्रको प्रस्रजित न करना चाहिये । जो प्रस्रजित करे उसे बुद्धरुका होय है ।

महामौद्गल्यायन श्वबिरने कुमारको केस करकर काप्यव-बख दे शरण दिया । महाकाश्यप श्वबिर जबवाद् ( = उपदेश) के आचार्य हुए ।

x

x

x

x

( १३ )

अनुरुद्ध, आनन्द, उपालि आदिकी प्रस्रज्या ( ई पू ५२७ )

-- राहुल-कुमारको प्रस्रजित कर भगवान्‌ कार्य ही धर्म कपिल (बल) से मन्थके देशमें शरिका करत अनूपियाके आजवनमें पहुँचे ।

१ मिश्रु-पत्रके उमेदवारको धामणर कहते हैं । २ अ. नि. अ. क. ११ ११ ५ ।

३ श्वबिरस्तेव ।

'उस समय महाबाहू मस्तीक करके (अभिगम) अनुपिचामें बिहार करते थे। उस समय कुलीन कुलीन शाक्य-कुमार भगवान्क प्रमत्तित होनेपर अनु प्रमत्तित हो रहे थे। उस समय महाताम शाक्य और अनुदह-शाक्य दो भाई थे। अनुदह सुकुमार था उसके तीन महल थे—एक बाबके लिए, एक गर्मीके लिए एक वर्षाके लिए। वह वर्षाक बार मईनेम वर्षा-मसाइके ऊपर अनुदह-बाघोंके साथ सेवित हो प्रसाइके नीचे न उतरता था। तब महाताम शाक्यके (चित्तमें) हुआ—बाबक कुलीन कुलीन शाक्यकुमार भगवान्के प्रमत्तित होनेपर अनुप्रमत्तित हो रहे हैं। हमारे कुस्स कोई भी घर छोड़ के-पर हो प्रमत्तित नहीं हुआ है। क्यों न मैं वा अनुदह प्रमत्तित हूँ। तब महाताम बाहू अनुदह शाक्य का बर्हो गया। बाब अनुदह शाक्यने बोला—“तात ! अनुदह ! इस समय हमार कुस्स कोई भी प्रमत्तित नहीं हुआ। इसलिये तुम प्रमत्तित हो वा मैं प्रमत्तित होऊँ”।

“मैं सुकुमार हूँ पर छोड़ के-पर हो प्रमत्तित नहीं हो सकता तुम्हीं प्रमत्तित जावो।

“तात ! अनुदह ! बाबो तुम्हें बर-गृहस्थी समझा हूँ। —पहिले खेत जोतवाना चाहिये। जोतवाकर बोधाना चाहिये। बोधाकर पानी भरना चाहिये। पानी भरकर निकसना चाहिये निकसकर मुखागा चाहिये मुखाकाकर करवाना चाहिये करवाकर ऊपर काबा चाहिये ऊपर का सीबा करवाना चाहिये सीबा करा मर्दन करवाना (अभिमयावा) चाहिये, भिमवाकर पयाक हटाना चाहिये। पयाकको हटाकर धूसी हटानी चाहिये। सूनी हटाकर कटकावा चाहिये। कटकाकर बसा करना चाहिये। इसी प्रकार अगल बपोंमें भी करना चाहिये। काम (=जाबइयकटाव) बाबा नहीं होते कामोंकर अन्त नहीं जान पड़ता।

‘कब काम कतम होंगे कब कामोंका अन्त जान पड़ेगा ? कब हम के-ठिकर हो पाँच प्रकारके कामोपमोगोंमें बुद्ध हो बिचरज करेंगे ?’

तात ! अनुदह ! काम कतम नहीं होते न कामोंकर अन्त ही जान पड़ता है। कामोंको बिना कतम किये ही पिता और पितामह मर गये।”

“तुम्हीं बर-गृहस्थी सँभाको हम ही प्रमत्तित होंदेंगे।”

तब अनुदह शाक्य बाहू माता को बर्हो गया बाबक मातासे बोला—

“अम्मा ! मैं घरसे के-पर हो प्रमत्तित होना चाहता हूँ मुझे प्रब्रयाके लिए जाजा वे।

तेमा कहनेपर अनुदह शाक्यकी माताम अनुदह शाक्यको कहा—

“तात ! अनुदह ! तुम दोबों मेरे मिथ=मव आप=अपतिभूत पुत्र हो; मरनेपर भी (तुमसे) अनिष्क नही होऊँगी मका जीते की प्रमज्याकी स्वीकृति कैसे हूँगी ?

दूसरी बार भी अनुदह शाक्यने माताको बाँ कहा।

तीसरी बार भी।

उस समय भद्रिब नामक शाक्य-राजा शाक्योंकर राज्य करता था (वह) अनुदह शाक्यका मित्र था। तब अनुदह शाक्यकी माताने (वह सोच)—यह महिय (अभद्रिक)

शाक्यराजा अनुष्ठादिकी मित्र शाक्योंका राज्य करता है वह पर छेद प्रमथित होना नहीं पाहेगा—और अनुष्ठादिकी शाक्यसे कहा—

“तात ! अनुष्ठादिकी यदि मरिच शाक्य-राजा प्रमथित हो तो तुम भी प्रमथित होना ।

तब अनुष्ठादिकी शाक्य जहाँ मरिच शाक्य-राजा का बहो गथा, जाकर मरिच शाक्य राजासे बोला—

‘सौम्य ! मेरी प्रमथ्या तेरे आधीन है ।

“यदि सौम्य ! तेरी प्रमथ्या मेरे आधीन है तो वह अधीनता मुक्त हो । । तुम्हसे प्रमथित होवो ।”

‘जा सौम्य दोनों प्रमथित होवें ।

“सौम्य ! मैं प्रमथित होमैं समर्थ नहीं हूँ । तेरे लिए मार जो मैं कर सकता हूँ वह करूँगा । तू प्रमथित हो जा ।

“सौम्य ! मातामे मुझे पैसा कहा है—यदि तात अनुष्ठादिकी मरिच शाक्य-राजा प्रमथित हो तो तुम भी प्रमथित होना । सौम्य ! तू यह बात कह चुका है—‘यदि सौम्य ! तारी प्रमथ्या मेरे आधीन है तो वह अधीनता मुक्त हो । । तुम्हसे प्रमथित होवो’ । जा सौम्य ! दोनों प्रमथित होवें !”

उस समयके लोग सत्यवादी सत्य प्रतिष्ठ होते थे । तब मरिच शाक्य-राजामे अनुष्ठादिकी शाक्यको बोला—

“सौम्य ! सात वर्ष डहर । सात वर्ष बाद दोनों प्रमथित होवेंगे ।

“सौम्य ! सात वर्ष बहुत थिर है । मैं इतनी देर नहीं डहर सकता ।

“सौम्य ! छः वर्ष डहर ।

“ नहीं डहर सकता ।”

“ पाँच वर्ष । चार वर्ष । “ तीन वर्ष ” । दो वर्ष ” । “ एक वर्ष ।

“ सात मास । “ छः मास ” । “ पाँच मास ” । “ चार मास । “ तीन मास ” ।

“ दो मास ” । “ एक मास ” । “ आध मास बाद दोनों प्रमथित होंगे ।”

“सौम्य ! आध मास बहुत थिर है । मैं इतनी देर नहीं डहर सकता ।

“सौम्य ! सहाइ मर डहर, जिसमें कि मैं तुम्हें मार भाइयोंको राज्य सौंप हूँ ।

“सौम्य ! सहाइ अधिक नहीं है डहरूँगा ।”

तब मरिच शाक्य-राजा अनुष्ठादिकी आनन्द भृगु चित्रिण्ड वृषस्पति और सातवाँ उपालि इजाम केम पहिले वनुरंगिणी-सेना सहित बगीचे क जाये जाये ये बस ही वनुरंगिणी-सेना-सहित से जाये गये । वह वृष तक जा सेनाके फाय वृषरेक राज्यमें पहुँच आमुष्ठादिकी उपरनेमें गौडरी बोध उपालि इजामसे बो बोले—

“मने ! उपालि ! तुम जाओ । तुम्हारी बीबिबन्धके रूपे इतना काफ़ी है । तब उपालि नाईको खीरते बल बो हुआ—

शाक्य बंध ( =कीची ) होते हैं । ‘हमने कुमार मार डाल’ ( समस ) तुम्हें मरवा थावेंगे । वह राजकुमार हो प्रमथित जागे तो फिर तुम्हें क्या ?”

उसने गौडरी लोहकर, आभूषणोंको वृक्षपर रखका 'जो देख उसका दिया स जाय' कह करी शाक्य-कुमार ने बहाँ गया। उस शाक्य-कुमारोंने वृक्ष ही देखा कि उपाधी नार्ह जा रहा है। देखकर उपाधी नार्हको कहा—

"भजे ! उपाधी ! किम किये सीढ जाये ?

"अर्ध-युवो ! ऊँटले बल मुस यो बुधा-शाक्य बंड होत हैं । इसलिये जाये-युवो ! मैं गौडरी लोहकर आभूषणोंको वृक्षपर रखका बर्हसे कीटा हूँ ।

"भजे ! उपाधी ! अघ्य किमा जो ऊँट जाये । शाक्य बंड हाते है । 'हमने कुमार मार बाडे' (कह) तुमने मरका हाकते ।

तब वह शाक्य-कुमार उपाधी हजामको ले बहाँ गये जहाँ भगवान् थे। आकर भगवान्को बन्दगाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन शाक्य-कुमारोंने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! हम शाक्य अभिमानी होते हैं। यह उपाधी नार्ह, बिरकाल तक हमारा सेवक रहा है। इसे भगवान् पहिले मद्रकित करावें। (जिसमें कि) हम इसका अभिवादन प्रत्युप्याम ( सम्मानार्थ लडा होना ) हाथ जोडका कर। इस प्रकार हम शाक्योंका शाक्य होनेका अभिमान मरित होगा।

तब भगवान्ने उपाधी हजामको पहिले मद्रकित करावा पीछे उन शाक्य-कुमारोंको। तब आमुप्याम् मरियमे उसी बर्षके मीठर रीनों बिद्याओंको छाहारा किया। आमुप्याम् बजुप्पान्ने दिव्य-बहुको। धा अजान्ने सोतापति ककको०। देवदत्तम पूज्यजर्णकस्यै ऋदिको सम्पादित किया।

उस समय आमुप्याम् मरिय अरन्धमें रहते हुए भी वेकके यन्त्रे रहते हुए भी शून्य सूत्रमें रहते हुए भी बराबर बदाव कहते थे— 'जहो ! मुक !! जहो ! मुक !! बहुतसे मिष्ठु बर्हो भगवान् ये बहाँ गये। आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ, उन मिष्ठुओंने भगवान्को कहा—

"भन्ते ! आमुप्याम् मरिय अरन्धमें रहते । विःसंशय भन्ते ! आमुप्याम् मरिय ये-भन्ते ब्रह्मचर्य-अरन्ध कर रहे हैं। उसी पुराने राग्य-मुलको याद करते अरन्धमें रहते ।"

तब भगवान्ने एक मिष्ठुको संबोधित किया— 'जा मिष्ठु ! तू आकर मेरे बचकसे मरिय मिष्ठुको कह—आमुस मरिय ! हमको साक्षा मुजाते हैं ।"

"अच्छ" कह वह मिष्ठु बर्हो आमुप्याम् मरिय ये बहाँ गया। आकर आमुप्याम् मरियको बोका— "आमुस मरिय ! तुम्हें साक्षा मुका रहे हैं ।"

"अच्छ आमुस !" कह उस मिष्ठुके साथ ( आमुप्याम् मरिय ) बर्हो भगवान् ये बहाँ गये। आकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आमुप्याम् मरियको भगवान्ने कहा—

"मरिय ! क्या सचमुच तुम अरन्धमें रहते हुए भी बदाव कहते हो ।"

"भन्ते ! हौं ।

“मरिच ! किस बातको देखते हुये भरप्यमें रहने हुये भी ।

“मन्ते ! पहिले राजा होते बन्धु मन्तापुरके भीतर भी जग्गी प्रकार रक्षा होती रहती थी । नगर-भीतर भी । नगर-बाहर भी । देश-भीतर भी । देश-बाहर भी । सो मैं मन्ते ! इस प्रकार रक्षित गोपित होते हुये भी भीत उद्दिग्ध स-कांक श्रास-मुक्त भूमता था । किन्तु आज मन्ते ! अकेला भरप्यमें रहते हुये भी घृण्य-गृहमें रहत हुये भी निरर अनुद्दिग्ध अ संक ज-श्रास-मुक्त, बे-चिक्कर विहार करता हूँ । इस बातको देख मन्ते ! भरप्यमें रहते ।

X

X

X

(१४)

नलकपान-सुच ( ई. पू. ५२७ )

‘ऐसा मैंने सुना एक समय मगधान् कोसल देशमें नलकपानके पत्नीस बलमें विहार करते थे । उस समय बहुतसे कुलीन कुलीन कुल-पुत्र मगधान्के पास परसे बे-बर हो प्रकथित हुये थे (जैसे)—अनुष्मान् अनुकन्द आनुष्मान् नन्दिष, अ किन्दिबल आ मृगु अ कुचकधान आ रेवत आ आनन्द तथा दूसरेभी कुलीन कुलीन कुल-पुत्र । उस समय मिथु-संधके सहित मगधान् लुके आँगनमें बँडे थे । तब मगधान्ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें मिथुओंको संबोधित किया—

“मिथुभो ! जो वह कुल-पुत्र भरे पाम अज्ञा-पूर्वक प्रकथित हुये हैं, वह मनस अज्ञ-चर्ममें प्रसन्न तो हैं ?”

ऐसा कहनेपर मिथु चुप होगये । दूसरी बारभी मगधान्ने उन कुलपुत्रोंके संबंधमें मिथुओंको संबोधित किया—“मिथुभो !”

दूसरी बारभी वह मिथु चुप होगये । तीसरी बार भी “मिथुभो !”

तीसरी बारभी वह मिथु चुप होगये ।

तब मगधान्के (मनमें) हुआ “क्यों न मैं उन्हीं कुलपुत्रोंको पूछूँ ?” तब मगधान्ने अनुष्मान् अनुकन्दको संबोधित किया—

“अनुकन्दो ! तुम (जोग) अज्ञाचर्ममें प्रसन्नता हो ?”

“हाँ मन्ते ! हा (जोग) अज्ञाचर्ममें बहुत प्रसन्न हूँ ।”

“साधु, साधु अनुकन्दो ! तुम जैसे अज्ञासे प्रकथित कुल-पुत्रोंके यह योगवही है कि तुम अज्ञाचर्ममें प्रसन्न हो । जो तुम अनुकन्दो ! उत्तम पीबन-सहित प्रथम बचस बहुतही कम्बेरेस बाके कामोपयोग कर रहे थे, सो तुम अनुकन्दो ! उत्तम पीबन बाके कामे बे-बर हो प्रकथित हुये । सो तुम अनुकन्दो ! राजाकी अचर्चनीसे नहीं प्रकथित हुये । खोरके डरने नहीं । अचर्चसे पीबित होकर नहीं । अचर्चसे पीबित होकर नहीं । अ-राजीके होवेसे नहीं । बकि (वही श्लोक) ‘जन्म जरा मरण शोक रोमा पीरता दुःख दुर्मनता ईराजीमें कैसा

हूँ बुद्धिमें गिरा बुद्धिमें छिपटा (हूँ) जो कहीं हम केवल बुद्धि-संबंध (अनुत्पत्ती वेरी का विनाश प्राप्त होता) । अनुत्पत्ती ! तुम तो इस प्रकार अज्ञानमुक्त प्रयत्नित हुये हो न !”

“हाँ मन्ते !”

“ऐसे प्रयत्नित हुये कुछ-पुष्टको क्या करना चाहिये ? अनुत्पत्ती ! कामगोपसे बुरे (= अकुसल) धर्मोंसे भयना होगा चाहिये । (मनुष्य जबतक) विवेक-व्यतिमुक्त या उससे भी अधिक सात (=मुक्त) को नहीं पाता (अपतकक) अमिध्या (=लोग) उसके चित्तको पकड़े रहती है । व्यापाद (=व्यप) उसके चित्तको पकड़े रहता है । श्रीद्वय-श्रीद्वय (=अर्थ) अमिध्या विचिकित्सा (=सर्वेह) । अरति (=असंतोष) । तन्वी (=अज्ञान) उसके चित्तको पकड़े रहती है । अनुत्पत्ती ! कामनाओं से बुरे धर्मोंसे विवेक-व्यति-मुक्त या उससे भी अधिक सात (=मुक्त) को पाता है; (परि) अमिध्या उसके चित्तको न पकड़े रहे व्यापाद श्रीद्वय-श्रीद्वय विचिकित्सा अरति तन्वी उसके चित्तको न पकड़े रहे ।”

“क्यों अनुत्पत्ती ! मेरे विषयमें तुम्हारा क्या (विचार) होता है कि जो अज्ञान (= चित्त-मत्त) क्लेश (= मत्त)-देनेवाले आवागमन-देनेवाले समय (= सत्त) अविषयमें बुद्धि-रुद्धोत्पत्तीक जन्म धरा-मरण-देनेवाले हैं; वह तत्कालके नहीं हूँ, इसीक्षिपे तत्काल अज्ञानकर एकका सेवन करते हैं एकको स्वीकार करते हैं ज्ञानकर एकका त्याग करते हैं ज्ञानकर एकको हटते हैं ?”

“वहीं मन्ते ! हमको ऐसा नहीं होता कि जो अज्ञान क्लेश देने वाले आवागमन देने वाले हैं वह तत्कालके नहीं हूँ । मन्ते ! भगवान्के विषयमें हम (लोगों) को ऐसा होता है कि जो अज्ञान जन्म-अरा-मरण देने वाले हैं वह तत्कालके हूँ गये हैं । इसक्षिपे तत्काल ज्ञानकर एकको सेवन करते हैं ज्ञानकर एकको करते हैं ज्ञानकर एकका त्याग करते हैं ज्ञानकर एकको हटते हैं ।

“साधु, साधु अनुत्पत्ती ! जो अज्ञान क्लेश देने वाले हैं वह तत्कालके हूँ गये हैं वह-मूक हो गये हैं-साक्षिपे हो गये बध हो गये अविषयमें व तत्काल क्लेश हो गये हैं । जैसे अनुत्पत्ती ! धारसे क्लेश ताक (का हूँ) फिर नहीं पनप सकता ऐसेही अनुत्पत्ती ! जो अज्ञान क्लेश देने वाले हैं वह तत्कालके हूँ गये । इसक्षिपे तत्काल ज्ञानकर एकको सेवन करते हैं ।”

x

x

x

x

(१५)

राहुलोवाद्-सुष्ठ ( ई० पू० ५२७)

‘विताको धीनककमें प्रतिष्ठितकर, निम्नसंभसहित भगवान् फिर राजगृहमें धीनतवनमें विहार करने लगे ।

+

+

+

+

+

### अम्य-छट्टिक-राहुखोवाद-सूत्र ।

पैसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहके वेणुवन कलम्बकनिघापमें विहार करते थे । उस समय आयुष्मान् राहुक अम्यछट्टिकामें विहार करते थे । तब भगवान् छापकम्बको प्यागसे उठ बहो अम्यछट्टिक बगमें आयुष्मान् राहुक ( ये ) बहो गये । आयुष्मान् राहुकने बुरसे ही भगवान्को आते देखा; देखकर आसन विछपा पर घानेके लिये पाणी रक्खा । भगवान्ने विज्ञाने आसनपर बैठ पैर धोये । आयुष्मान् राहुक भी भगवान्को अभिवादनकर एक जोर बैठ गये ।

तब भगवान्ने बोधा सा बधा पाणी सोयेमें छेड़ आयुष्मान् राहुकको सम्बोधित किया—

“राहुक ! लोटके इस बोधेसे बचे पाणीको देखता है ?”

“हो मन्ते !”

“राहुक ! पैसाही बोधा उलका अमय-माय ( सायुष्य ) है जिनको जानकर इठ बोसनेमें कजा बही ।”

तब भगवान्ने उस बोधेसे बचे उलको फेंककर आयुष्मान् राहुकको सम्बोधित किया—

“राहुक ! देखा मैंने उम बोधेसे उलको फेंक दिया ?”

“हो मन्ते !”

“पैसा ही ‘फेंका’ उलका अमय-माय भी है जिनको जानकर इठ बोसनेमें कजा बही ।”

तब भगवान्ने उस बोधेको भीना कर आयुष्मान् राहुकको सम्बोधित किया—

“राहुक ! तू इस बोधेको भीना देखता है ?”

“हो मन्ते !”

“पैसा ही औंठा उलका अमय-माय है—जिनको जान बूझकर इठ बोसनेमें कजा बही ।”

तब भगवान्ने उस बोधेका सीधाकर आयुष्मान् राहुकको सम्बोधित किया—

“राहुक ! इस बोधेको तू सीधा किया देख रहा है ? अपनी देख रहा है ?”

“हो मन्ते !” “पैसा ही चाकी तुच्छ उलका अमय-माय है जिनको जान बूझकर इठ

बोसनेमें कजा बही । जैसे राहुक ! हरिस-समाय अम्ये शतों बाका महाकाम सुन्दर जातिक सम्प्राममें जानेबाध्य राजका हाथी सम्प्राममें आनेपर भागके पैरोंसे भी ( लड़ाईकर ) काम करता है । पिछले पैरोंसे भी काम करता है । शरीरके बागले भागसे भी काम करता है । शरीरके पिछले भागसे भी काम करता है । शिरमें भी काम करता है । काबसे भी काम करता है । हँसने भी काम करता है । पूँडसे भी काम करता है । लेकिन पूँडको ( बेकाम ) रक्ता है । हाथीबाहुको पूसा ( विचार ) होता है—‘यह राजका हाथी हरिस जैसे शतों बाका

१ म नि २।२।१ । ४ “वेणुवनके कियारे एकाम्ब-प्रिषोके किये किया गया बाध-आन । वह आयुष्मान् ( = राहुक ) सात वर्षके आसनपर होनेके समयमें ही एकाम्ब ( पिछता ) बगले बहो विहार करते थे” ( अ. क. ) ।





अम्य-कटिठक-राहुकोबाह-सुत ।

पैसा मीने सुबा—एक समय मगवान् राजगृहके वेणुवन कळम्बुकनिघापमें विहार करते थे । उस समय आयुप्मान् राहुक अम्यलठिकामें विहार करते थे । तब मगवान् सार्वभौमके प्यानमे उठ करीं अम्यकटिठक पनमें आयुप्मान् राहुक ( ये ) बहो गये । आयुप्मान् राहुकने दूरसे ही मगवान्को आते देखा, देखाकर आसन बिछपा पर घोनेके छिये पायी रक्खा । मगवान्ने पिछाये आसनपर बैठ पैर धोये । आयुप्मान् राहुक भी मगवान्को धमिवावतकर एक ओर बैठ गये ।

तब मगवान्ने बोका सा बचा पायी फोटमें छेप आयुप्मान् राहुकको सम्बोधित किया—

‘राहुक ! फोटके इस घोड़ेसे बचे पायीको देखता है ?’

‘हो मग्ने !’

‘राहुक ! पैसाही बोका उतका अम्य-भाष ( साधुपय ) है जिनको जानवृद्धकर छठ बोक्नेमें कजा नहीं ।’

तब मगवान्ने उस घोड़ेसे बचे बकको फेंककर आयुप्मान् राहुकको संबोधित किया—

‘राहुक ! पैसा मीने उस घोड़ेसे बकको फेंक दिया ?’

‘हो मग्ने !’

‘पैसा ही ‘बेका’ उतका अम्य भाष भी है जिनको जानकर छठ बोक्नेमें कजा नहीं ।’

तब मगवान्ने उस घोड़ेको भीबा कर आयुप्मान् राहुकको संबोधित किया—

‘राहुक ! तू इस घोड़ेको भीबा देखता है ?’

‘हो मग्ने !’

‘पैसा ही भीबा उतका अम्य-भाष है—जिनको जान वृद्धकर छठ बोक्नेमें कजा नहीं ।’

तब मगवान्ने उस घोड़ेको सीबाकर आयुप्मान् राहुकको संबोधित किया—

‘राहुक ! इस घोड़ेको तू सीबा किया देख रहा है ? आसी देख रहा है ?’

‘हो मग्ने !’ ‘पैसा ही बाकी दुष्क उतका अम्य-भाष है जिनको जान वृद्धकर छठ

बोक्नेमें कजा नहीं । जैसे राहुक ! हरिस-समाष कग्ने दातो बाक्य महाकाय घुन्वर बाठिका संभाममें आनेबाक्य राजाका हाथी संभाममें जानेपर अगके पैरोंसे मी ( लवाईकर ) काम करता है । पिछके पैरोंसे मी काम करता है । शरीरके अगके भागसे मी काम करता है । शरीरके पिछके भागसे मी काम करता है । शिरसे मी काम करता है । अगसे मी काम करता है । दाँतसे मी काम करता है । पूँछसे मी काम करता है । लेकिन सूँठके ( पैकाम ) रक्खा है । हाथीवान्को पैसा ( विचार ) होता है—‘बह राजाका हाथी हरिस जैसे दाँतो बाक्य

१ म वि १:१:१ । २ “वेणुवनके किनारे पृथ्वी-मिर्चोंके छिये किया गया बास-आना । यह आयुप्मान् (= राहुक ) सात वर्षके अम्यनेर हीयेंके समयसे ही पृथ्वी ( विचिता ) बहने पहो विहार करते थे” ( अ. क. ) ।

पूँछने भी काम लेता है (लेकिव) सूँडको (बेकाम) रखा है। राजाके ऐसे बग़ावत जीवन अभिवासीनीय है।

'लेकिन यदि राहुक ! राजाका हाथी हरिम जैसे खूँतकाला पूँछने भी काम करता है सूँडसे भी काम करता है ता राजाके हाथीका जीवन विधनीय है, भय राजाके हाथीको भार कुछ करना नहीं है। ऐसा ही राहुक ! जिसे जालबूझकर ब्रह्म बोम्नेमें लज्जा नहीं, उसके लिये कोई भी पाप-कर्म अकारणीय नहीं' ऐसा मैं मानता हूँ। इसलिये राहुक ! 'हँसीमें भी नहीं झूठ बोखूँगा यह सीख लेनी चाहिये।

"तो क्या जामते हो राहुक ! दुर्बल किम कामके लिये है ?"

"मन्ते ! देखनेके लिये।"

"ऐसे ही राहुक ! देख देखकर कबासे काम करना चाहिये। देख देखकर बचनसे काम करना चाहिये। देख देखकर भवस काम करना चाहिये।

"जब राहुक ! तु कबासे (कोई) काम करना चाहे तो तुसे कबासे कामपर विचार करना चाहिये—जो मैं यह काम करना चाहता हूँ क्या यह मेरा काय-कर्म अपने लिये पीड़ा-दायक तो नहीं हो सकता ? दूसरेके किये पीड़ा-दायक तो नहीं हो सकता ? (अपने और पराये) दोनोंके किये पीड़ा-दायक तो नहीं हो सकता ? यह अ-कुसल (=दुरा) काय-कर्म है सुखकम हेतु=मुख विपाक (=मोग) सेनेबाक है ? यदि तू राहुक ! प्रत्यवेक्षा (=देखनाक=विचार) कर ऐसा जाने—'जो मैं यह कबासे काम करना चाहता हूँ' । यह दुरा काय-कर्म है ?' ऐसा राहुक ! काय-कर्म सर्बथा न करना चाहिये। यदि तू राहुक ! प्रत्यवेक्षकर ऐसा मसझे—'जो मैं यह कबासे काम करना चाहता हूँ' यह काय-कर्म न अपने लिये पीड़ा-दायक हो सकता है न परके किये । यह कुसल (=अच्छ) काय-कर्म है सुखकम हेतु=मुख विपाक है। इस प्रकारका कर्म राहुक ! तुसे कबासे करना चाहिये।

राहुक ! कबासे काम करते हुए भी तब काय-कर्मका प्रत्यवेक्षण (=परीक्षा) करना चाहिये—'क्या जो मैं यह कबासे काम कर रहा हूँ यह मेरा काय-कर्म अपने किये पीड़ा-दायक है । यदि तू राहुक जाने। यह काय-कर्म अकुसल है । तो राहुक ! इस प्रकारके काय-कर्मको छोड़ देना। यदि जाने। यह काय-कर्म कुसल है तो इस प्रकारके काय-कर्मको राहुक बार-बार करना।

"काय-कर्म करके भी राहुक ! काय-कर्मका फिर तुसे प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—'क्या जो मैंने यह कबासे काम किया है यह मेरा काय-कर्म अपने किये पीड़ा-दायक है । यह काय-कर्म अकुसल है ।' जाने। अकुसल है। तो राहुक इस प्रकारके काय-कर्मको साम्नाके पास या किञ्च गुरु-भाई (=सहायकारी) के पास कइना चाहिये सोचना चाहिये=इतना करना चाहिये। कइकर कोकर=इतना कर भागेको संपन करना चाहिये। यदि राहुक ! तू प्रत्यवेक्षण कर जाने। कुसल है। तो दिनरात कुसल (=उत्तम) बर्मा (=बातों) में सिखा प्रहण करैबाक नव । राहुक ! इससे तू प्रीति=प्रमोहसे विहार करेगा।

"यदि राहुक ! तू बचनसे काम करना चाहे। कुसल बचन-कर्म करना। बार बार करना। इससे तू प्रीति=प्रमोहसे विहार करेगा।

“यदि तू राहुक ! मनसे काम करना चाहे । कुशाक मन्-कर्म करना । वरावर करना । मन्-कर्म करके यह मन्-कर्म अनुसृत है । तो इस प्रकारके ‘मन्-कर्म’ में लिख होना चाहिये सोक करना चाहिये वृत्ता करनी चाहिये । लिख हो सोककर वृत्ताकर भागोको सर्वम करना चाहिये । यह सबकर्म कुशाक है । उससे तू प्रमोदसे विहार करैता ।

‘राहुक ! त्रिब किन्हीं ग्रमणों (स्मिन्धुओं) वा ब्राह्मणों (=सन्तों) ने अतीत कालमें काय कर्म बचनकर्म मन्कर्म परिशोधित किये । उन सबोंने इस प्रकार प्रत्यवेक्षणकर प्रत्यवेक्षणकर काय बचन मन्-कर्म परिशोधित किये । जो कोई राहुक ! ग्रमण वा ब्राह्मण भविष्यकालमें भी काय बचन मन्-कर्म परिशोधित करेगा; वह सब इसी प्रकार । जो कोई राहुक ! धर्मण वा ब्राह्मण आजकल भी काय बचन मन्-कर्म परिशोधित करते हैं; वह सब भी इसी प्रकार ।”

“इसलिये राहुक ! तुझे सीखना चाहिये कि मैं प्रत्यवेक्षणकर काय-कर्म बचन कर्म मन्-कर्म परिशोधन करूँगा ।”

× × × ×

( १६ )

### अनाथपिंडककी दीक्षा । सेतवन-दान । ( ६ ए ५२६ )

‘पैसा देने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें सीतवनमें विहार करते थे । उस समय अनाथपिंडक गृहपति किसी कामसे राजगृहमें गया था । अनाथपिंडकने सुना— ‘लोकमें कुछ बत्तक हो गये’ । उसी वक्त वह भगवान्के दर्शनार्थ जानेके लिये इच्छुक हुआ । तब उस को हुआ

‘उस समय अनाथपिंडक गृहपति ( जो ) राजगृहके भेटीका बहनोई था; किसी कामसे राजगृह गया । उस समय राजगृहके भेटीके संबंध-सहित कुछको दूसरे दिनके लिये निमन्त्रण है रक्खा था । इसलिये उसने दासों और कर्म-करोंको आज्ञा दी—

‘‘तो मन्ने ! समयपर ही उठकर लिच्छवी पकामो भात पकामो । सूप (=तेमन) तैयार करो । तब अनाथपिंडक गृहपतिको पैसा हुआ— ‘पहिले मेरे आनेपर यह गृहपति सब काम छोड़कर मेरे ही आब-सगतमें लगा रहता था । आज बिसिसम्पा दासों कर्म-करोंको आज्ञा दे रहा है—‘‘तो मन्ने ? समयपर ।’’ कहा इस गृहपतिके ( वहाँ ) अन्वेषण होना वा बिबाह होना वा महावज्र उपस्थित है या लोग-बाग-सहित मगध-राज अशिक्षित विन्वस्तर कलके लिये निमन्त्रित किन् गये हैं ?’

तब राज-गृहक ज ही दासों और कर्म-करोंको आज्ञा देकर वहाँ अनाथपिंडक गृहपति का वहाँ आया । आकर अनाथपिंडक गृहपतिके साथ प्रतिसम्मोदक (=जगामापाती) कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए राजगृह के हीको अनाथपिंडक गृहपतिने कहा— ‘‘पहिले मेरे आनेपर तुम गृहपति ।

गृहपति ! मेरे ( यहाँ ) न आषाढ होगा न विवाह होगा । न मगध-राज विमन्त्रित किये गये हैं । कसु बधिक मेरे यहाँ बना बह है । संघ-सहित पुत्र ( = पुत्र-मगध संघ ) ककके किये विमन्त्रित है ।

“गृहपति ! तू 'पुत्र' कह रहा है ?” “गृहपति ! हाँ 'पुत्र' कह रहा हूँ ।” “गृहपति ! 'पुत्र' ?” “गृहपति ! हाँ 'पुत्र' ।” “गृहपति ! 'पुत्र' ?” “गृहपति ! हाँ 'पुत्र' ।”

“गृहपति ! 'पुत्र' वह सत्य ( = योष ) मी कौकमें कुलम है । गृहपति ! क्या इस समय उन मगधान् आईए सम्बन्ध-संपुत्रके दर्शनके किये जाया जा सकता है ?”

“गृहपति ! यह समय उन मगधान् आईए सम्बन्ध-संपुत्रके दर्शनार्थ जानेअ नहीं है ।”

तब अनाथ पित्रक गृहपति—“अब कस समयपर उन मगधान् के दर्शनार्थ जाऊँगा” इस पुत्र-विषयक स्थितिको ( मनमें ) ले सो रहा । रातको सबेरा समय तीनवार उठ । तब अनाथ पित्रक गृहपति यहाँ ( राजगृह मगरक ) शिष्य धिकद्वार था ( यहाँ ) गया । म मनुष्यों ( = येष आदि ) ने द्वार खोक दिया । तब अनाथपित्रक के नगरसे बाहर निकलते ही प्रकश अस्तध्वीत होगया अन्धकार प्राणु त हुआ । ( उसे ) मन अफता और शीमांघ उलपन हुआ । तब अनाथपित्रक गृहपति यहाँ सीत-वन ( है यहाँ ) गया । उस समय अनाथाएँ रातके प्राणुच ( = मिन्सर ) ककमें उठकर चीच में उलप रहे थे । मगधान् अनाथपित्रक गृहपतिको वरस ही जाते हुये देखा । देवाकर बंभजन ( = उरकनेकी बगाह ) से उतरकर, बिठे आसनपुत्र उठ गये । देवाकर अनाथपित्रक गृहपतिको कहा—“अय सुवृत् । अनाथपित्रक गृहपति वह ( सोच ) 'मगधान् मुझे नाम लेकर हुआ रहे है' 'इष्ट = उष्ट्र ( = पूठा न समाता ) हो यहाँ मगधान् ये यहाँ गया । जाकर मगधान्के बरसोंमें सिरसे पदकर बोका—

“मन्ते ! मगधानको बिना सुकसे तो आई ?”

“निर्वाण प्राप्त ब्राह्मण सर्वदा सुकसे सोता है ।

सीतल हुआ होप-रहित हो जोकि काम वासनाओंमें भिन्न नहीं होता ॥

सारी आसक्तियोंको संहितकर हृत्पसे उरको हटाकर ।

चित्तजी शांतिको प्राप्तकर उपसांत हो ( वह ) सुकसे सोता है ॥

तब मगधान्ने अनाथपित्रक गृहपतिको धानुपूर्वा 'कथा कही । जैसे काकिमा-रहित पुत्र-वध अर्पनी तरह रंग पककता है वैसे ही अनाथपित्रक गृहपतिको उसी आसनपर 'जो कुछ संमुद्र-धर्म है वह निरोध-धर्म है वह वि-रथ = वि-मक धर्म-असु उपपन्न हुआ । तब वह धर्म प्राप्त धर्म = विदित-धर्म = पर्वबगाव धर्म संदेह-रहित वाद-विवाद-रहित आसक्तके आसन ( = पुत्र धर्म ) में खलत्र हो अनाथपित्रक गृहपतिने मगधान्से कहा—

'आधर्म ! मन्ते ! आधर्म ! मन्ते ! जैसे बीबेको सीचा करदे हैंकेको उभाएदे मूकेको राजा बतकारे अंभकारमें ठेकका प्रहीप रखदे जिसमें अर्थवाके रूप देखें, ऐसही मगधान्ने अनैठ प्रकारसे धर्मको प्रकसित किया मैं मगधान्की सत्य जाता हू धर्म और मिश्र संकधी

(शरत्त खाता हूँ)। अतःसे मुझे भगवान् सौमिलि शरत्त भावा उपासक प्रहृण करे। भगवान् मिश्र-सधक सहित ककक मेरा भोजन स्वीकार करे।”

भगवान्ने मानसे स्वीकार किया। तब अनाथपिण्डक भगवान्की स्मृतिको मान आसनसे उठ भगवान्को अभिवादन कर प्रक्षिणा कर चलागाया। राजगृहक झेड़ी ने सुना—भगवापिण्डक गृह-पतिने ककको मिश्र-सध-सहित बुद्धको निर्मजित किया है। तब राजगृहक झेड़ीने अनाथपिण्डक गृह-पति से कहा—

“तूने गृह-पति ! ककके किने मिश्र-सध-सहित बुद्धको निर्मजित किया है आर तू अनाथक (= पाहुना = अतिथि) है। इसस्विय गृह-पति ! मैं तुझे लर्च देता हूँ; जिसने तू बुद्ध प्रमुख मिश्र सधकेकिने भोजन (तय्यार) करे ?”

“नहीं गृहपति ! मेरे पास लर्च है जिससे मैं बुद्ध प्रमुख मिश्र-सधका भोजन (तय्यार) करूँगा।”

राजगृहके भैगमने सुना—भगवापिण्डक०। तब राजगृहके भैगमने अनाथपिण्डक को पों कहा— मैं तुस लर्च देता हूँ”

“नहीं अर्थ ! मेरे पास लर्च है।

भगव-राज व सुना—०। तब भगव-राज०अ अनाथपिण्डक को कहा “मैं तुस लर्च देता हूँ।

“नहीं देव ! मेरे पास लर्च है।

तब अनाथपिण्डक गृह-पतिने उस रातक बीत जानेपर राजगृहके अ ईक मकानपर उठम काप मोल्य तय्यार करा भगवान्को काककी सूचना दिल्वाई “काक है मन्ते ! भोजन तय्यार हो गया। तब भगवान् पूर्वाङ्कके समय सु-आच्छादित हो पात्र चीवर हाथमें से उहाँ राजगृहके झेड़ीक मकान या वहाँ गये। जाकर मिश्रसध सहित दिखाने आसनपर बैठे। तब अनाथ-पिण्डक गृह-पति बुद्ध-प्रमुख मिश्र-सधको अपने हाथसे उठम पाप भोजनसे सतपित कर, पूर्णकर, भगवान्को भोजनकर पात्रसे हाथ लीच सनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ अनाथपिण्डक गृह-पतिने भगवान्ने कहा—

“मिश्र-सध के माव भगवान् आहलीमें बर्पा-वास स्वीकार करे।

“सूच्य आगारमें गृहपति ! तपागत अभिरमज (= बिहार) करते हैं।

“समझ गया भगवान् ! समझ गया सुगत !

उस समय अनाथपिण्डक गृह-पति बहु-मित्र = बहु-सहाय और प्रमाजिक था। राज गृहमें (अपने) कामको कलम कर, अनाथ-पिण्डक गृह-पति आहलीको चक पवा। मार्गमें उसने मनुजोंको कहा “जार्थो ! आराम बनवाओ बिहार (= मिश्रसध रहनेका स्थान) प्रतिष्ठित करो। काकमें बुद्ध उपासक हागणे हैं; उन भगवान् का मीने निर्मजित किया है (बहु) इस मार्गस जावेंगे। तब अनाथपिण्डक गृह-पति-द्वारा प्ररिण हो मनुजोंक आराम बनवान बिहार प्रतिष्ठित किच बान (=सदाबत) रखले।

१ ‘अ ही’ वा नगर-सद उय समयक एक अर्धतमिक राजकीय पद था। ह्या तरह भैगम एक पद था आ शापद झेड़ी’ न ऊपर था।

तब अनाथपिंडक गृह-पतिने आधमी जाकर आधकीके चारों ओर नजर डीपाई—

‘मगवान् कहीं निवास करेंगे ? ( ऐसी जगह ) जो कि गाँवसे न बहुत दूर हो न न बहुत समीप, चाहनेवालोंके जाने-जाने योग्य इष्टुक मनुष्योंके पहुँचने स्थलक हो । दिनका कम-भीड़ रातको अल्प-अल्प-अल्प-निर्घोष वि-जन-वात ( =जात्रमिमोंकी हवास रहित ) मनुष्योंसे एकान्त आवाके आवक हो ।’ अनाथपिंडक गृहपतिने ( ऐसी जगह ) जेत राजकुमारका उद्यान देखा, (जो कि) गाँवसे न बहुत दूर था । देखकर वहाँ जेत राजकुमार था वहाँ गया । जाकर जेत राजकुमारसे कहा—

‘भाव-युत्र ! मुझ आराम बनानेके किये उद्यान हीजिने ?’

‘गृहपति ! ‘कोटि संघारसे भी’ (बह) आराम अ-द्वैत है ।’

‘कार्त-युत्र ! मैंने आराम ले लिया ।

‘गृहपति ! तूने आराम नहीं किया ।

‘किया था नहीं किया वह उन्हीं अन्वहार-जमातों (अन्वयापतिपों) को युज्य । महामातोंके कहा—

‘कार्त-युत्र ! क्योंकि तूने मोक किया (इसलिये) आराम ले लिया ।

तब अनाथपिंडक गृहपतिने गाविर्घोषर हिरण्य (अमोहर) कुल्हाकर बतवतक काटिसन्धार (अकिनारेसे किनारा मिटाकर) विज्य दिया । एक बारके काने (हिरण्य) ल (हारक) कोडेके चारों ओरका घोड़ाया (स्वाध) पुरा न हुआ । तब अनाथपिंडक गृहपतिने (अपने) मनुष्योंको आशा दी—

‘जाओ भरो ! हिरण्य से आभो इस लार्की स्थावको डॉक ।’ तब तैज राजकुमारको (ठगाल) हुआ—‘बह (काम) कम महत्त्वक न होगा क्योंकि वह गृहपति बहुत हिरण्य धर्य कर रहा है । और अनाथपिंडक गृहपतिको कहा—

‘बस गृहपति ! तू इस प्याकी जगहको मत रँकना । यह प्याकी जगह (अजबजाम) मुस से बह मरा दान होगा ।

‘तब अनाथपिंडक गृहपतिने ‘बह जेतकुमार गण्वमान्य पमिद मनुष्य है । इस धर्मविषय (अधम) में एम आधमीक प्र म जाभवाक ई । (सोच) बह स्वाम जेत राजकुमार का से दिया । तब जेतकुमार ने कम स्थानपर कोय बनवाना । अनाथपिंडक गृहपतिने जेतवधसे विहार (अभिनु-विज्ञान-स्थाव) बतवाय । परिवैज (भौमान-सहित बर) बतवाते । कोटिर्वा । उचस्थान-आकार्य ( =मना-गृह ) । अगिनसाकार्य ( =पानी गर्म करनेक बर ) । अगिनक-भुरिर्वा ( =मण्डार ) । बान्धवे । पिरावस्थाने । अक्रमज ( =अदकनेके स्थाव ) । अक्रमज-वाकार्य । प्याड । प्याड-बर अन्व-बर (अन्वयागागर) । अन्वयापर-वाकार्य । गुण्दरिर्वा । मण्डप ।

+ + + +

मगवान् राजगृहमें इण्डानुमार विहारकर त्रिबर बीसार्की की उधर चारिक (आमने) का बन्ध पद । अमता चारिका करने हुए जहाँ देहासी की बहो पहुँचे । वहाँ मगवान

वैशाखीमें 'ग्रहायनकी फूटागार शाळामें बिहार करते थे। उस समय लोग सत्कारपूर्वक नव-कर्म (अर्थात् मिथु-निवासका निर्माण) कराते थे। जो मिथु नव-कर्मकी देख-रेख (अधि-ष्टान) करते थे वह भी (१) बीबर (=बध) (२) पिण्डपाठ (=निष्ठा) (३) सपनासन (=धर) (४) म्यान प्रक्षय (=दोगि-पक्ष) भैरव (=भौपय) इन परिष्कारोंसे सत्कृत होने थे। तब एक वरिष्ठ तन्मुवाय (=तुल्यहा) के (मनमें) हुआ— 'वह छोटा काम न होगा जो कि यह लोग सत्कारपूर्वक नव-कर्म कराते हैं; क्यों न मैं भी नव-कर्म बनाऊँ ?' तब उस गरीब तन्मुवायने स्वयं ही बीबध उपाय कर ईं रें भिन्न भीत खाड़ी की। अनजान होनेसे उसकी बनाई भीत गिर पड़ी। दूसरी बार भी उस गरीब । तीसरी बार भी उस वरिष्ठ । तब वह गरीब तन्मुवाय खिन्न होता था— 'इन साक्ष्य-पुत्रीय जमजोंको जो बीबर देते हैं, उन्हीं के नव कर्मकी देख-रेख करने हैं। मैं वरिष्ठ हूँ इसकिपु काई भी मुझे न उपदेश करता है न अनुशासन करता है और न नव-कर्मकी देख-रेख करता है।' मिथुओंने उस गरीब तन्मुवायको 'खिन्न' 'होते सुना। तब उन्हींने हम बातको भगवानुमे कहा। तब भगवानुमे इसी समयमें हमी प्रकरणमें धार्मिक-रुचा कहकर मिथुओंको आमन्त्रित किया—

"मिथुओ ! नव कर्म देखेकी आज्ञा करता हूँ। नव-कर्मिक (अबिहार बनवानेका निरीक्षण) मिथुका बिहारकी अन्ती तैपारीका पत्राक करवा चाहिये। (उस) दूरे-दूरेकी भ्रमस्त करानी होगी। और मिथुओ ! (नव-कर्मिक मिथु) इस प्रकार देना चाहिये। पहिले मिथुसे प्रार्थना करनी चाहिये। फिर एक चतुर समर्थ मिथु द्वारा मंत्र ज्ञापित किया जाना चाहिये—

मन्त्रे ! संघ मुझे सुने। यदि संपदको पसन्द है तो अमुक गृहपतिके बिहारका नव-कर्म अमुक मिथुको दिया जाय। वह इति (अबिदेव) है।

'मन्त्रे ! संघ मुझे सुने। अमुक गृह-पतिके बिहारका नवकर्म अमुक मिथुको दिया जाता है। जिस आयुष्मान्को मान्य है कि अमुक गृह-पतिके बिहारका नव-कर्म अमुक मिथुको दिया जाय वह चुप रहे; जिसको मान्य न हो बोले।'

"दूसरी बार भी" । "तीसरी बार भी ।"

"संघने नव-कर्म अमुक पतिको दिया; न वको मान्य है इसकिपु चुप है ऐसा मैं समझता हूँ।

भगवान् वैशाखीमें इच्छुबुमार बिहार करके वहाँ ध्यावस्ती है वहाँ चारिकके सिधे चले। उस समय छ-वर्गीय मिथुओंके शिष्य बुद्ध-ममुक मिथु संघके भागे आगे जाकर, विद्यारोंके दक्षकर केते थे मरवायें दक्षकर केते थे— 'वह हमारे उपायार्थोंके सिधे होगा वह हमारे आचार्योंके सिधे होगा यह हमारे सिधे होगा। आयुष्मान् सारिपुत्र बुद्ध ममुक संघके पञ्चवनेपर, विद्यारोंके दक्षक हो जानेपर सत्कारार्थोंके पत्राक ही जानेपर धर्या न पा किमी दक्षके भीचे देते रहे। भगवानुमे राजके भिन्नसारको उठकर खीसा। आयुष्मान् सारिपुत्रने भी खीसा।

१. बसाह (जि मुद्राचक्रपुर) न प्रायः २ मील उत्तर पर्वतान् कर्मदुवा वहाँ भाय भी भद्राक-स्तान कहा है।



“कौन यहाँ है ?” भगवान् ! मैं सारिपुत्र ! “सारि-पुत्र ! तू यहाँ यहाँ क्या है ?”

तब जाबुप्मान् सारि-पुत्रसे सारी बात भगवान्से कही । भगवान्ने इसी सवम्भमें-इसी प्रकारमें मिथु-सँवको जमा करवा मिथुओंसे पूछा—

“सबमुच मिथुओ ! छ-बर्गिब जिसभोंके भ्रमोचामी (= विषय ) बुद्ध-प्रमुच संघके भागे भागे जाकर दख कर छेने हैं ?”

“सब-मुच भगवान् !”

भगवान्ने बिहारा—“मिथुओ ! कैसे यह नान्यवक मिथु बुद्ध-प्रमुच संघके भागे ? मिथुओ ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके किये है न प्रसन्नोको अधिक प्रसन्न करनेके किये है। बकि अ-प्रसन्नोको (भीर भी) अप्रसन्न करनेके किये तथा प्रसन्नो (=प्रज्ञानुभूति) में से भी किमीके उच्छा (अप्रसन्न) हो जानेके किये हैं ।”

बिहार कर धार्मिक कथा कह मिथुओंको संबोधित किया—

मिथुओ ! प्रथम अ-सत प्रथम एक भीर प्रथम परासा (=अप्र-विद) के योग कौन है ?”

किन्हीं मिथुओंने कहा—“भगवान् ! जो अज्ञिय कुम्भे, प्रमथित हुआ हो वह योग है ।”

किन्हीं ने कहा—“भगवान् जो आह्वान कुम्भे प्रमथित हुआ है वह ।

किन्हीं ने कहा— भगवान् ! जो गृह-पति (=वैश्य) कुम्भे ।”

किन्हीं ने कहा—“भगवान् ! जो सौमतिक (=सूत्र-पारी) हो ।”

किन्हीं ने कहा—“भगवान् ! जो विनय-वर (=विनय-पारी) हो ।”

किन्हीं मिथुओंने कहा—“भगवान् जो धर्म-अधिक (=अप्राधान्यता) हो ।”

किन्हीं “जो प्रथम ध्यानधर अमी (=प्रायेक्ष्य) हो ।”

किन्हीं —“द्वितीय ध्यानधर अमी ।” “जो तृतीय ध्यानधर ।” “जो चतुर्थ ध्यानधर ।” “जो सन्तापक (सन्तजापक) हो ।” “जो सकिरागामी (=अहङ्कारागी) ।” जो अनागामी । “जो अर्हन् । जो वैभिय हो ।” “जो अ-असिद्ध ।” ।

तिसिर जातक—तब भगवान्ने मिथुओंको संबोधित किया—

“पूछकालमें मिथुओ ! हिमाद्रयके पासमें एक बड़ा बर्गध या उमरको आभयकर, तिसिर बजर और हाथों वीन मिथ बिहार करगे थ । वह सीमां एक नूनरेका गारक न करते, महाचना न करते साथ अदिका न करते हुये बिहार करत थे । मिथुओ ! उत मिथोंको पया ( बिहार ) हुआ—“अहो ! हम जानें ( कि हममें कौन सेय है ) ताकि हम जिसे जगमम यदा जानें उमरक मन्तर करें गारक करें मारी पूजं धार उतकी सीधमें हों ।”

तब मिथुओ ! तिसिर धार अर्हन् (=अधर) ने दलित-जातक पूछा—

‘साध ! गृहें कौनगी पुरानी ( बात ) बाह है ?’

'सौम्यो ! अब मैं क्या का तो इस म्यग्रोच (बर्ग) को जोंपोंके बीचमें करके कोंच जाता था इसकी पुनगी मेरे पेटको छूती थी । 'सौम्यो ! मुझे वह पुरानी बात बरख है ।'

"तब मिश्रुओ ! तितिर नार हन्ति-नागने मर्कटको पूछा—

"सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी ( बात ) याद है ?"

"सौम्यो ! अब मैं क्या था भूमिमें बैठकर हम बर्गके पुनगीके भंडुओंको खाता था ।

सौम्यो ! वह पुरानी ।

"तब मिश्रुओ ! मर्कट और हन्ति-नागने तितिरको पूछा—

"सौम्य ! तुम्हें क्या पुरानी ( बात ) याद है ?"

'सौम्यो ! उस जगहपर महान् बर्ग था उसके एक खाकर इस जगह मेंने बिद्या किया उसीस-वह बर्ग पेश हुआ । उस समय सौम्यो ! मैं जन्मसे बहुत सबाना था ।

"तब मिश्रुओ ! हाथी और मर्कटने तितिरको पों कहा—

सौम्य ! ए जन्ममें हम सबसे बहुत बड़ा है । तेरा हम सम्भर करेंगे गौरव करेंगे मांभेंगे चूर्ते भीर तेरी सीखमें रहेंगे ।

"तब मिश्रुओ ! तितिरने मर्कट और हन्ति-नागको पोंच सीख प्रहण कराये जप भी पोंच सीख प्रहण किये । वह एक दूसरेका गौरव करते महाबता करते साथ जीविका करते हुए बिहारकर, कया छोड़ मरनेके बाद सुगति ( प्राप्त कर ) स्वर्ग लोकमें उन्च हुये । वही मिश्रुओ ! तितिरीय-महाचर्च हुआ—

'धर्मको जानकर जो मनुष्य ब्रह्मका सत्कार करते हैं ।

( उनके किये ) इसी जन्ममें प्रसादा है और परलोकमें सुगति ।

"मिश्रुओ ! वह तिर्बंग बोकिके प्राणी ( ये तो भी ) एक दूसरेका वीरव करते सहायता करते साथ जीवक-यापन करते हुए बिहार करते थे । और मिश्रुओ ! वहाँ क्या वह सोमा रैगा कि तुम ऐसे सु-जगत्वात धर्म-वित्तवमें प्रवृत्त होकर भी एक दूसरेका गौरव न करते सहायता न करते, साथ जीवक-यापन न करते ( हुये ) बिहार करो । मिश्रुओ ! वह न अप्रसन्नों को प्रसन्न करनेके किये है ।"

मगवान्ने बिहारकर धार्मिक कथा कइके उन मिश्रुओंको संबोधित किया—

मिश्रुओ ! ब्रह्म-पनक अनुसार अभिधावन प्रचुरबाध ( बर्षके सामने क्या होना ) हाथ जोड़ना कुसकप्रहण प्रथम-जासन प्रथम-उक्त प्रथम-परोसा श्रेणी अनुसार करता हूँ । सांभिक ब्रह्मपनके अनुसारनको व तोड़ना चाहिये जो तोड़े उसको "बुद्ध" की भावति ( होमी ) । मिश्रुओ ! वह एक ज-वम्नीय है—

'पूर्वके उप-सम्पन्नको पीछेका उपसम्पन्न ज-वम्नीय है । अब उपसम्पन्न कर्तवनीय है । नामा सह-वामी ब्रह्म-तर भ-धर्म-वापी । किर्पो । नपुंसक । "परिवास" दिया गया । "मूकके प्रति-कर्षण" । "मावन्नाई" । "मानस-चारिक" । "आद्यामार्ड" ।

१. भविष्य सन्ध जन्तेव महाचर्च, मध-वर्जित ।

२. भिन्न-विधमके अनुसार छोटा पाप है । ३. मिश्रुकी शीला प्राप्त । ४. किसी अपराधके कारण बंधुद्वारा कुछ दिनोंके किये पृथक करण । ५. वह भी एक बंद ।

मिमुक्षो ! वह तीन बंधनीय है—पीछे उपसम्पन्न द्वारा पहिले उपसम्पन्न हुआ बन्धनीय है  
 नामा सहवासी दृष्टवर वर्णवादी । इष-मार-महा सहित मार छोड़के किये देव-मनुष्य-  
 जन्म-माह्वान महित सारी प्रजाके किये तपागत जहाँ सम्बन्ध-सम्पन्न बन्धनीय है ।

ब्रह्मन् पारिक्य करते हुए भगवान् जहाँ आवस्ती है वहाँ पहुँचे । वहाँ आधनीमें  
 भगवान् अनाद्य पिंडकके आराम जैत-बन में विहार करते थे । तब अनाद्य-पिंडक गृहपति  
 जहाँ भगवान् वे वहाँ आया आकर भगवान्को अमिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक  
 ओर बैठे हुए अनाद्य-पिंडक गृहपतिने भगवान्से कहा—

भन्ते ! भगवान् मिथ-संघ-सहित ककको मेरा भोजन स्वीकार करें

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया । तब अनाद्य-पिंडक भगवान्की स्वीकृति जान  
 आसनसे उठ, भगवान्को अमिवादनकर अक्षिजाकर खड़ा गया । अनाद्य-पिंडकने उभ  
 रानके नील आनेपर उत्तम आद्य भोजन तैयार करवा भगवान्को कक सुचित करावा । तब  
 अनाद्य-पिंडक गृहपति अपने हाथसे कुछ-मनुष्य मिश्र-संघको उन्नम आद्य भोजनसे संतर्पित  
 कर पूर्वकर भगवान्के पात्रसे हाथ हटा करनेपर एक ओर बटहन भगवान्से बोला—

“भन्ते ! भगवान् ! मैं जैतबनक विषयमें कैसे कहूँ ?”

“गृहपति ! जैतबनको अग्रत अनागत आतुर्विस्त संघके किये प्रदाय कर दे ?”

अनाद्य-पिंडकने ऐसा ही भन्ते ! उत्तर दे जैतबनको अनागत अनागत आतुर्विस्त  
 मिश्र-संघको प्रदान कर दिया ।

+ + + +

— तपागत प्रथम-बाधिमें—बीमपत् तक अम्बिर-भाम हो जहाँ जहाँ ठीक रहा वहीं  
 आकर नाम करते रहे । पहिली-वर्षमें क्षत्रियपतनमें धर्म-बन्ध-प्रवर्तन कर धाराणसीके  
 पाम क्षत्रियतनमें वास किया । दूसरी-वर्षमें राजगृह धेणुवनमें । तीसरी बाधी भी वहीं ।  
 चौथी-वर्षमें वैशाखीमें महावन कूटागारघाबामें । छठी-वर्षा मंजुस पर्वतपर ।  
 सातवीं ब्रह्मिन्स-भवनमें । आठवीं अथै-वृक्षमें सुसुमारगिरिके मेसकअवनमें । नवीं  
 कीशाम्बीमें । दसवीं पारिलेयक बबर्जडमें । न्यारहवीं नाछा माह्वान-भाममें । बारहवीं

१ अ ति ध का २।४।५ में कुछके वर्षावाम निम्न प्रकार किये हैं—

१	(५२० ई. पू.) क्षत्रियपतन	१२	(५१६ ई. पू.)	बेरंज
२	४ (५२६ ई. पू.) राजगृह	१३	(५१५,)	आदिब-वर्षत
३	(५२६,०) वैशाखी	१४	(५१४,)	आधनी
४	(५२२,०) मंजुस-पर्वत	१५	(५१३,०)	क्षत्रियपतन
५	(५२१,०) ब्रह्मिन्स	१६	(५१२,०)	आधनी
६	(५१,०) सुसुमारगिरि	१७	(५११,०)	राजगृह
७	(५१९,०) कौशाम्बी	१८ १९	(५१-२,०)	आदिब-वर्षत
८	(५१६,०) पारिलेयक	२०	(५१६,०)	राजगृह
९	(५१०,०) वात्स	२१ २५	(५१-४६३,०)	आधनी
		४६	(४६३,०)	वैशाखी

वेरंजामें। तेरहवीं बालिय-यर्षतमें। चारहवीं जेतवनमें। पंद्रहवीं कपिलवस्तुमें। सोरहवीं माण्डवकको दमनकर भाण्डवीमें। सत्रहवीं राजगृहमें। अठारहवीं भी बालिय-यर्षतपर, अर दहीसर्षा मी। बीसवीं-बर्षमें राजगृह हीमें बसे। इम प्रकार बीसवीं तक ज-निबद्ध-(बर्षी)-वास करते बहाँ बहाँ छीक हुना बहीं बसे। इससे नामो हो ही शयवासन ( =निवास-स्थान ) प्रभु-परिमोग ( =सदा रहनेके ) किये। कानसे हो ?— जेतवन और पृषोत्तम।

(१७)

दक्षिणा-विभङ्ग-सुत्त। प्रजापतीकी प्रमज्ज्या। (६ पू ५२५ २४)

शौतम यह गोत्र ह। नामकरणके दिन इमका नाम महाप्रजापती रखा गया। "गोत्रसंमिष्यकर महाप्रजापती गौतमी कहा गया। गातमीने भगवान्को बुन्ग देनेका मन कब किया ? जमि-संदोधि प्राप्तकर पहिली यात्रामें कपिलपुर आनेके समय ।

+ + + + +

दक्षिणा विभङ्ग-सुत्त।

पूसा मीने सुना—एक समय भगवान् शाक्यों ( के वैद्य ) में कपिल-वस्तुके म्यघोघाचाममें विहार करते थे। तब महाप्रजापती गातमी नबे बुन्ग ( =बुस्ते ) क बोड़ेको लेकर, बहाँ भगवान् पे बहाँ आई। आकर भगवान्को जमिवाचककर एक ओर बठ गई। एक ओर बैठी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्को पों कहा—“मन्ते ! यह अपना ही काठा अपना ही हुना मेरा यह तथा बुस्सा-ओड़ा भगवान्को ( अर्पण है )। मन्ते ! भगवान् अनुकम्पा ( =रूपा ) कर, इसे स्वीकार करे।

पूसा कहनेपर भगवान्ने महाप्रजापती गातमीको कहा—

“गातमी ! ( इमे ) संभको देदे। संभको देनेस मी भी पुजित हुंगा और संभ मी।”

नूमरी बार मी कहा—“मन्ते यह । “ गौतमी ! संभको दे ”। तिसरी बार मी ।

यह कहनेपर आमुष्मान् आतम्भुजं भगवान्को पों कहा—

“मन्ते ! भगवान् महाप्रजापती गौतमीके पुराना-जाड़ेको स्वीकार करे। मन्ते !

आपादिक्का ( =जमिमाधिक्य ) पादिक्क और-वादिक्का ( होनेसे ) भगवान्की माती महा प्रजापती गौतमी बहुत उपकार करलैबाकी है। इसने जमनीके मरुतेपर भगवान्को नृप शिक्षया। भगवान् मी महाप्रजापती गातमीके महापकारक है। मन्ते ! भगवान्के कारण महाप्रजापती बुद्धकी सरल आई, चर्मकी सरल आई, संघकी घाल आई। भगवान्के कारण मन्ते ! महाप्रजापती गौतमी प्राणनिपात ( =हिमा ) से बिरल हुई। अर्त्तादान ( =विना दिये कहा=चोरिस ) बिरल हुई। काम-मिष्याचारम । सुचवान् ( =उठ बोकेना ) मी ।

सुरा-मैरव (=कधी शाराव) मध प्रसादव्याप्त (=प्रसाद करनकी जगह) म । भगवान्के कारण भन्ते । महाप्रजापती गायत्री बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धा (=प्रसाद) पुत्र धर्ममें अत्यन्त प्रसाद-पुत्र, संघमें अत्यन्त प्रसाद-पुत्र (हुई); आर्ष (=उत्तम) कांत (=अमर्त्याद=सुन्दर) शीर्षोत्तै पुत्र (हुई) । भगवान्के ही कारण भन्ते ? बुद्धसे वैदिक हुई, दुःख-समुत्पत्ते दुःख-विरोधसे दुःख-विरोध-गामिनी-प्रतिपत्त्य भगवान् भी भन्ते ! महा प्रजापती गीतमीके महाउपकारके हैं ।”

“आत्मन् ! यह पुमाही है पुत्रक (=व्यक्ति=व्यापी) पुत्रक महारे बुद्धका कारणगत होता है धर्मका संबन्ध । वैदिक आत्मन् ! जो वह अभिवादन प्रत्युपस्थान (=मेवा) अन्वष्टि कोइना=मर्माधी करवा चीवर पिंड-याग वापनासन स्थान (=रोगी) को पत्र चीवर देना है (इस) में इस पुत्रकका उभ पुत्रक प्रति सुप्रतिपत्त (=प्रत्युपकार) नहीं करता । जो (कि वह) पुत्रक (बूसरे) पुत्रक के महारे प्राणातिपत्त अदत्तादान अन्न-मिष्ठाचार सूचवाद् सुरा-मैरव-मध-प्रसाद-स्नानस विरत होता है ! आर्ष ! जो वह अभिवादन । जो वह आत्मन् ! पुत्रक पुत्रकके सहारे दुःखस वैदिक होता है ।

“आत्मन् ! वह आर्ष प्रति-पुत्रकिक (=व्यक्तिगत) इक्षिषाये (=दान) है । कबसी चीवर ? तयागत अर्हत्सम्बन्ध-संपुत्रको दाव देता है; वह पहिली प्रति-पुत्रकिक इक्षिषा है । प्रत्येक बुद्धको इक्षिषा देता है; वह दूसरी । तयागतके भावक (=शिष्य) अर्हत्को तीसरी । अर्हत्-ककके साक्षात् करनेमें क्यो हुयको चार्थ । अनागामीका पाँचवी । अनागामि-कक साक्षात् करनेमें क्योहुनेका छठी । सकृदागामीको सातवी । सकृदागामि कक साक्षात् करनेमें क्यो को अठवी । सोतापन्न को नवी । सोतापत्ति (=अमेत आपत्ति) कक साक्षात्करनेमें क्यो को दसवी । गर्वके बाहरके बीठ-नाग को ग्यारहवी । ब्रह्मचार्य प्रथमव (कोट अपत्ति आदि) को न प्राप्त) को बारहवी । भुवर्षिक प्रथमव को त्तरहवी । तिर्यन्धोनिगत (=पुष्ट पछी अदि) को चारहवी । बर्ही आत्मन् ! तिर्यन्धोनि गत को दाव देनेमें सौगुनी इक्षिषा की जाया रकनी चाहिये । दुःशीक प्रथमवमें इबार गुनी । शीक-वान् प्रथमवमें सां हबार । असा हबार करोइ । कोट अपत्ति कक साक्षात् करनेमें क्योको दाव दे असक्य (=अनगिनत) अप्रमेव (=अमान रहित) इक्षिषाकी जाया रकनी चाहिये । फिर स्पेसअपन्न की बात क्या कहनी है ? फिर सकृदागामी ? फिर अनागामी ? फिर अर्हत् ? फिर प्रत्येक-बुद्ध ? फिर तयागत अर्हत् सम्बन्ध मबुद्ध ?

“आत्मन् ! वह सात संबन्ध-गत (=संबन्धकी) इक्षिषाये है । कब सी सात ? बुद्ध प्रमुक्त होवों सबोंको दाव देता है; यह पहिली संबन्ध-गत इक्षिषा है । तयागतके परिनिर्वाणपर 'दोवों संबन्धको दूसरी । मिथु-संबन्धको तीसरी । मिथुन्धी-संबन्धको चौथी । मुसे संब इतये मिथु मिथुनी उद न करै (=दान देनेके किये दे) ऐसे दाव देता है यह पाँचवी । मुसे संबन्धमें इतने मिथु कहीं । मुसे संबन्धमें इतनी मिथुबिवां सातवी ।

“आत्मन् ! अविष्यककमें मिथु-नाम चारी (=व्योत्रम्) अचान-मात्र-चारी (=अचान-अंड) दुःशीक वाप-वर्मा (=वर्षी) (मिथु) होंग । (कोग) संबन्धके (नामपर)

१ मिथु और मिथुनीके संब ।

उन बुद्धीकोको दाव देंग। उस बच भी जानम्। मैं मंथ-विषयक दक्षिणाको असम्भेप, अपरिमित (कलबाकी) कहता हूँ। जानम्! किसी तरह भी संप-विषयक दक्षिणासे प्रति पुत्रिक (अधिकृत) दक्षिणाको अधिक फल-दावक मैं नहीं मानता।

“जानम् यह चार दक्षिणा (=दाव) की विद्युद्विर्षा (=बुद्धिर्षा) हैं। जानती चार? जानम्! (कोई) दक्षिणा तो दायकसे परि भुज होती है प्रतिप्राहक से नहीं। (कोई) दक्षिणा प्रति-प्राहकसे परिभुज होती है दायकसे नहीं। जानम्! (कोई) दक्षिणा न दायकसे भुज होती है न प्रति-प्राहकसे। (कोई) दक्षिणा दायकसे भी भुज होती है प्रतिप्राहकसे भी। जानम्! दक्षिणा कसे दायकसे भुज हाती है प्रतिप्राहक नहीं? जानम्! जब दायक शील-वान् (=सहाचारी) और कल्याण-धर्मा (=गुण्यामा) हो और प्रति-प्राहक हा बुद्धीक (बुद्ध्याचारी) पाप धर्मा (=पार्षी); तो जानम्! दक्षिणा दायकसे भुज होती है प्रतिप्राहकसे नहीं। जानम्! कैसे दक्षिणा प्रति प्राहकसे भुज होती है दायकसे नहीं? जानम्! जब प्रतिप्राहक शील-वान् और कल्याण-धर्मा हो (और) दायक हो बुद्धीक पाप धर्मा। जानम्! कैसे दक्षिणा न दायकसे भुज होती है न प्रति-प्राहकसे? जानम्! जब दायक बुद्धीक, पाप धर्मा हो और प्रतिप्राहक भी बुद्धीक पाप धर्मा हो। जानम्! कब दक्षिणा दायकसे भी भुज होती है और प्रतिप्राहकसे भी? जानम्! (जब) दायक शील-वान् कल्याण-धर्मा हो (और) प्रतिप्राहक भी शील-वान् कल्याण-धर्मा हो तो। जानम्! वह चार दक्षिणाकी विद्युद्विर्षा हैं।”

× × × ×

( महापती पञ्चखा ) सुत्त ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय महापती हापुण्यो (के देश) में कपिलवस्तुके मगधोपासाममें विहार करते थे। तब महापञ्चापती गौतमी वहाँ भगवान् थे वहाँ आई। और भगवान्को बन्धनकर एक ओर लड़ी हुई। एक ओर लड़ी हुई महापञ्चापती गातमीसे भगवान्से कहा “मन्ते! अच्छ हो (परि) मातृग्राम (दक्षिणा) भी तत्कालके विद्याय धर्म-विषय (धर्म) में बरसे बेबर हो प्रक्या पावें।”

“वहीं गातमी! मत तुम (वह) बर्षे—द्विर्षा तत्कालके दिक्षाये धर्ममें।”

सूसरीचार भी। तीसरीचार भी।

तब महापञ्चापती गौतमी—मगधान् तत्काल प्रवेदित धर्म-विषय (बुद्धक विषयके धर्म) में द्विर्षाको हर छोड़ बेबर हो प्रक्या (धर्म) की अनुज्ञा नहीं करते—जान, बुद्धी= दुर्मय अनुमुखी (हो) रेली भगवान्को अधिकारकर मन्त्रिणकर लड़ी गई।

भगवान् कपिल-वस्तुमें इच्छनुसार विहारकर (विहार) वैशाखी धी (उपर) चारि क्यको एक दिव। अन्तः करिष्य करते हुए, वहाँ वैशाखी धी वहाँ पहुँचे। भगवान् वैशाखीमें महापञ्चापती कूटागारशालामें विहार करते थे। तब महापञ्चापती गौतमी कोसोंको छोड़कर कयाप-बहा पहिन बहुत सी साध-द्विर्षा के साथ विहार बहाली की

(उपरा) बनी । प्रमथा-बन्धक बसाईमें जहाँ महाजनकी कूटागार-साखा थी (वहाँ) पहुँची । महाप्रजापती गीतमी कूसे-पैरों धूल-भरे शरीरमें तुःलीधुर्मबा अन्ध-मुली रोती शर-कोइक (ब्रह्मा हार जिसपर कोडा होता था) के बाहर जा लगी हुई । आयुष्मान् आनन्दन महा-प्रजापती को पड़ा देखकर पूछ—

“गीतमी ! तू क्यों धूल पैरों ?”

“भन्ते ! आनन्द ! तयागत प्रवृत्त धर्म-विलयमें खिचोंकी धर छव व धर प्रज्याकी भगवान् अनुशा नहीं देते ।”

“गीतमी ! तू यहीं रह; दुःख धर्ममें खिचोंकी प्रज्याके लिय मैं भगवान् प्रार्थना करता हूँ ।”

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर पूछ बोले वह भगवान्के बोले—

“भन्ते ! महाप्रजापती गीतमी कूसे-पैरों धूल-भरे शरीरमें तुःली धुर्मबा अन्ध-मुली रोती हुई शर-कोइकके बाहर लगी है (कि) —भगवान् (दुःख धर्ममें) प्रज्या मिले ।”

“नहीं आनन्द ! मत तुझे दण—तयागतके जललाये धर्ममें खिचोंकी धरसे बेपर हा प्रज्या ।”

दूमरी बार भी आयुष्मान् आनन्द । तीसरीबार भी ।

तब आयुष्मान् आनन्दको बुझा —भगवान् तयागत प्रवेदित धर्म-विलयमें खिचोंकी धरसे बेपर प्रज्याकी अनुशा नहीं देते क्यों न मैं दूमरे प्रकारसे प्रज्याकी अनुशा माँगूँ । तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्को कहा—

“भन्ते ! क्या तयागत प्रवेदित धर्ममें धरसे बेपर प्रवृत्त है खिचों सात-जापि-कठ सहस्रगामि-कठ अनागमिकके अर्हत्व-कठके साक्षात् कर सकती है ?”

“साक्षात् कर सकती है आनन्द ! तयागत प्रवृत्त ।”

“यदि भन्ते ! तयागत-प्रवेदित धर्म-विलयमें प्रवृत्त हो खिचों अर्हत्व-कठको साक्षात् करन पाय है । जो भन्ते ! अभिभाषिका पापिका शीरदापिका हा भगवान्की मामी महाप्रजापती गीतमी बहुत उपकार करनवाली है । जननीके मरनेपर (उमने) भगवान्को नृप पिछवा है । भन्ते ! अच्छा हो खिचोंका प्रज्या मिले ।”

“आनन्द ! यदि महाप्रजापती गीतमी आठ गुरु-धर्मों (ब्रह्मकी बरती) का रक्षक करे ता उमकी उपमग्गदा हो ।—

(१) मी धर्मकी उप-मग्गदा (उपमग्गदा पाई) मिथुनीको भी उसी दिक्क उप मग्गदा जिसके लिय अभिवादन प्रयुक्त है अर्हति जाइता सामीकी-धर्म करन चाहिये । वह मी धर्म मन्धर-पूर्वक गौरव पूर्वक मानकर पूजकर जीवनभर न अतिक्रमन करवा चाहिये ।

(२) (मिथुनी) उपमग्गदा (अधर्म-अवधार्य आगमन) करन चाहिये । यह मी धर्म ।

(३) प्रति जाधमय मिथुनीको मिथु-संप्रम पबेपन करवा चाहिये । यह ।

(४) धर्म-धाम कर बुद्धपर मिथुनीका दोनो संघामे देने मुने आज तीनों स्वाधाम प्रचारन करनी चाहिये ।

(७) गुरु-धर्म स्वीकार किये मिश्रुषीको दोनों संपूर्णमें प्रथ-मानना करनी चा० ।

(८) किसी प्रकार नी मिश्रुषी मिश्रुको गाली आदि (= आश्लेष) न दे । यह भी ।

(९) आपत् । आश्लेष मिश्रुषियोंका मिश्रुओंको (कुल) कहनेका रास्ता बन्द हुआ ।

(१०) लेकिन मिश्रुओंका मिश्रुजियोंको कहनेका रास्ता खुल्य है । यह ।

वदि भानम् । महाप्रजापती गातमी इन आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे तो उसकी उपसम्पदा होवे ।

तब आपुष्मान् भानम् मगवान्के पास इन आठ गुरु-धर्मोंको समझ (= इद्-प्रज्ञान-पद) कर जहाँ महाप्रजापती गातमी थी वहाँ गये । आकर महा-प्रजापती गीतमीमे बोले—

“वदि गोतमी ! ए इव आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करे तो तेरी उपसम्पदा होगी—

(१) ता बर्षकी उपसम्पदा (८) ।

“मन्ते ! आपत् । जैसे शीकान शिर से नहाने अल्प-वयस्क अपवातजन की या पुरुष उपकृष्टी माक्य वार्षिक (= इहरी) की माक्य या अतिमुक्त (= मोतिया) की माक्यको या दोनों हाथोंमें छे (उसे) उत्तम रंग सिरपर रखता है । एमही मन्ते ! मैं इव आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार करती हूँ ।”

तब आपुष्मान् भानम् जहाँ मगवान् थे वहाँ गये । आकर अतिवादनकर एक ओर बैठकर, मगवान्म बोले—

“मन्ते ! प्रजापती गातमीमे वाचमीवन अनुकल्पनीय आठ गुरु-धर्मोंको स्वीकार किया।”

भानम् । वदि तद्यगत-मवेदित धम-विनयमें क्षिर्षो प्रजन्त्या न पाती ता ( यह ) मद्यचर्ष चिरस्थापी होता मद्यम सहस्रवर्ष तक टहरता । लेकिन चूँकि भानम् ! क्षिर्षो ममन्त्रित हुई ; जब मद्यचर्ष चिर-स्थापी न होगा मद्यम पाँच ही सौ वर्ष टहरगा । भानम् ! जैसे बहुत खीचाक खीर छोड़े पुरुषोंकाके कुल चोरों द्वारा मँडियाहों (= कुम्भ-चोरों ) द्वारा आमासीमे ध्वंसपीथ (= सु-म-ध्वंस) होते हैं इमी प्रकार भानम् ! जिन धम-विनयमें क्षिया प्रजन्त्या पाती है वह मद्यचर्ष चिर-स्थापी नहीं होता । जैसे भानम् ! सम्पन्न (= उपकार करण्यमे ) धावक खेलमें मेलविक्रम (= सफल) नामक रोग-जाति पक्षी है जिसमे वह शक्ति छेव चिर-स्थापी नहीं होता; ऐसे ही भानम् ! जिन धर्म-विनयमें । जैसे भानम् ! सम्पन्न (= उपकार ) ऊपरके खेलमें मंत्रिविक्रम (= व्याम-रोग ) नामक रोग जाति पक्षी है जिसमे वह ऊपरके खेल चिर-स्थापी नहीं होता; एम ही भानम् । भानम् ! जैसे आहर्मी पाणीको रोद्धमे किये वड़े तात्परवकी रांड-कामके किये मेंड (= भाषी) चोपे उमी प्रकार भानम् ! मैंने रोद्ध-कामके किये मिश्रुषियोंको जीवनभर अनुकल्पनीय आठ गुरु-धर्मोंको स्थापित किया ।

×

×

×

×

( प्रजापति )-सुक्त ।

धिया मैंने सुना—एक समय मगवान् वैशामिनीं मदायनकी घूटागार शाकामें



बिहार करते थे। तब महाप्रजापति गौतमी जहाँ भगवान् थे वहाँ गईं। जाकर भगवान् को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गईं। भगवान्से धौं बोली—

“भन्ते ! अन्धा हो ( यदि ) भगवान् संक्षेपसे धर्मका उपदेश करें जिसे भगवान्में सुनकर एकाकी=अपहृत प्रसाद-रहित हो ( मैं ) भारत-संघमेंकर बिहार करूँ ।

“गौतमी ! जिन धर्मोंको ए जाने कि वह ( धर्म ) स-रागके सिद्ध हैं विरागके सिद्ध नहीं। मयोयक सिद्ध हैं वि-संबाग (=विभोग=भक्त्या होता ) के सिद्ध नहीं। काम करनेके सिद्ध हैं विनाशके सिद्ध नहीं। इच्छाओंको बढ़ानेके सिद्ध हैं इच्छाओंको कम करनेके सिद्ध नहीं। अमन्तोपके सिद्ध हैं मन्तोपके सिद्ध नहीं। मीचके सिद्ध हैं एकाग्रके सिद्ध नहीं। अनुष्ठागिताके सिद्ध हैं उद्योगिता ( बीबाँरंभ ) के सिद्ध नहीं। सुमरता (=अदिनाई) के सिद्ध हैं सुमरताक सिद्ध नहीं। तो ए गौतमी ! सोचहो आये (=एकासेव ) जान कि व वह धर्म हैं व विनव है व सात्वा (=बुद्ध ) क्य (=उपवय ) है।

“और गौतमी ! जिन धर्मोंको ए जाने कि वह विरागके सिद्ध हैं सरागके सिद्ध नहीं। विभोगके सिद्धे । उद्योगके सिद्धे । विनाश । इच्छाओंको अल्प करनेके सिद्धे । अमन्तोपके सिद्धे । एकाग्रके सिद्धे । उद्योगके सिद्धे । सुमरता (=मासागी ) के सिद्धे । तो ए गौतमी ! सोचहो आये जान कि वह धर्म हैं व वह विनव है व सात्वाक शासन है।”

×

×

×

×

( १८ )

दिव्य-शक्ति प्रदर्शन । यमक-प्रातिहार्य । संक्षरुषमें अवतरण । ई पू ५२२

‘लघागत छ्ठी वर्षमें संकुल-पर्यंतपर ( बने ) ।

‘उस समय राजगृहके भेड़ीके एक महार्थ चन्दन-साराकी चन्दन गाँठ मिली थी। तब राजगृहके भेड़ीके मतमें हुआ— ‘यहाँ म मैं इस चन्दनगाँठका पात्र करवबाऊँ; पूरा मेरे कामका हांगा और पात्र दान नूँगा।’ तब राजगृहके भेड़ीने उस चन्दन-गाँठका पात्र परतुआकर भेड़ीमें रख कासके सिरेपर लगा एकके ऊपर एक बाँसोंको रँववाकर कहा— ‘जो कोई धमन प्रदान आईन वा कर्हिमान् हो (वह इस दान) किन्तु हुए पात्रको उतार ले।’

पूर्ण कादपप जहाँ राजगृहका भेड़ी रहता था वहाँ गया। और जाकर राजगृहके भेड़ीने बोले— ‘गृहपति ! मैं आईन हूँ, कर्हिमान् भी हूँ। मुझे पात्र हो।’

“भन्ते ! यदि आनुष्माई आईन और कर्हिमान् हैं दिवा ही हुआ है पात्रको उतार ले।”

तब मन्तरुमी नामाज्ञ (=मन्तरी गोसाक ) अजित-वेदा चौबन्नी०। प्रम घ काव्यायन०। मजय परल्लिपुल । निगठ-माघपुल०। जहाँ राज-गृहमें भेड़ी था वहाँ गया। जाकर राजगृहके भेड़ीने बोले— ‘गृह-पति ! मैं आईन हूँ। भार कर्हिमान् भी मुझे पात्रवा।’

“मन्ते ! यदि आपुष्मान् अर्हत् ।

उस समय आपुष्मान् मौद्गल्यायन और आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाज पूर्वाह्न समय सु-आप्यवहित हो पात्र बीयरके राज-गृहमें पिंडोके (=मिष्टा) के लिये प्रविष्ट हुये । वह आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाजने आपुष्मान् मारुद्स्वायन से कहा—

‘आपुष्मान् महासीद्गुणस्वायन अर्हत् है और कश्चिमान् भी जाहने आपुष्मान् मौद्गल्यायन । इस पात्रको उतार लाइये । आपके लिये ही यह पात्र है ।

“आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाज अर्हत् है और कश्चिमान् भी ।”

तब आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाजने भास्वधर्म उदकर उस पात्र को छे लीनवार राज-गृहमें चकर दिया । उस समय राज-गृहके भेड़ीने पुत्र-दारा-सहित हाथ जोड़ नमस्कार करते हुये अपने घरपर चले हो कहा—

“मन्ते ! आर्य-मारुद्वाज ! यही हमारे घरपर उतरें ।

आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाज राज-गृहके भेड़ी के मध्यपर उतरे (=प्रतिहित हुये) ।

उस राज-गृहके भेड़ीने आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाजके हाथसे पात्र लेकर, महार्थ आणने भरकर उन्हें दिया । आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाज पात्र-महित आराम (=निवास-स्वाय) को गये । मनुष्योंमें सुभा—आर्य-पिंडोक्त मारुद्वाजने राज-गृहके भेड़ीके पात्रको उतार लिया । वह मनुष्य हल्का मथाते आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाजके पीछे पीछे चले । मगवान्ने हल्काके सुभा सुनकर आपुष्मान् भास्वधर्मको संबोधित किया—“आनम् ! वह क्या हल्का-गुल्का है ?”

“आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाजने मन्ते ! राज-गृहके भेड़ीके पात्रको उतार लिया । छोर्गोंने (हसे) सुभा । मन्ते ! हमीसे लोग हल्का करते आपुष्मान् पिंडोक्त-मारुद्वाजके पीछे पीछे चले हैं । मगवान् ! वही वह हल्का है ।”

तब मगवान्ने इसी संबंधमें हमी प्रकरलमें मिश्र-संबंधको जमा करवा आपुष्मान् पिंडोक्त मारुद्वाजसे पूछ—

मारुद्वाज ! क्या यही सचमुच राज-गृहके भेड़ीका पात्र उतारा ?

“सच-मुच मगवान् !

मगवान्ने पिछारते हुये कहा—

“मारुद्वाज ! यह अनुचित है प्रविष्टम-मतिक्रम जमनेके अवोग्य अविशेष=अकरणीय है ! मारुद्वाज ! मुझे लक्ष्मीके बर्तनके लिये कैसे तु गृहस्थोंको ‘उत्तर-मनुष्य-वर्ग’ कश्चि-प्रतिदार्थ दिखानेगा । मारुद्वाज ! यह न अप्रमत्तोंको प्रमत्त करनेके लिये है । (इस प्रकार) पिछारते (हुये) धार्मिक कथ्य कह, मिश्रुओंको संबोधित किया—

“मिश्रुओ ! गृहस्थाको उत्तर-मनुष्य-वर्ग कश्चि-प्रतिदार्थ न दिखाना चाहिये जो दिखाने उसको ‘बुद्धत की आपत्ति । मिश्रुओ ! इस पात्रकी तोड़ टुकड़ा टुकड़ाकर मिश्रुओंको अन्न पीसनेके लिये दे दो । मिश्रुओ ! कर्कषीय वतन न धारण करना चाहिये । ‘बुद्धत’ ।”

मिथुनो ! सुचर्नमय पात्र न भरण करवा चाहिये रीज्यमय मवि-मय वैपुर्न  
मय स्फटिकमय कंसमय काच-मय रंगोका सीसेका ताम्रकाह (=तीका) का -  
'दुष्कृत । मिथुनो ! छोड़के और मिठीके—दो पायोंकी बजुजा देता हू ।”

+ + + +

१ अमय गौतमने उस पात्रको तोड़वा अपने भावकोंको पाटिहारिय (=प्रतिहार  
=बमलकार) न करनेके किये शिक्षा-यत् बना दिया है —तीर्थिक यह सुन —अमय गौतमके  
भावक तो प्रजस (=निर्धारित) शिक्षा-यत्को प्राप्तके किये भी नहीं छोड़ सकते अमय गौतम  
भी उसको मानेहीगा । अब हम लोगोंको मौका मिला—( विचार ) मगरकी सङ्घार  
यह करते विपरने ध्या—“हमने गुण (=करामात) रखते भी पहले कर्मकी पात्रके किये  
अपना गुण लोगोंको नहीं दिखाया । अमय गौतमके शिष्योंने ( उसे ) सिर्फ बर्तव्य किये  
भी लोगोंको दिखाया । अमय गौतमने अपनी पंढिताई (=कतुराई ) से उस पात्रको  
तोड़वाकर शिक्षा-यत् (=निबन्ध) बना दिया । अब हम लोग उसके ही साथ दिग्ग-सक्ति-  
प्रदर्शन (=पाटिहारिय) करेंगे ।

राजा बिन्धुसारासे इस बातको सुन बाल्यके पास जाकर कहा—

“मन्ने ! आपने भावकोंके किये पाटिहारिय न करनेका सिला-यत् बनाया है ?”

“महाराज ! हाँ ।

‘तीर्थिक आपके साथ प्रतिहार्य करनेको कह रहे हैं अब क्या करेंगे ?”

“महाराज ! उनके करनेपर कहूँगा ।”

“अपने ही शिक्षा-यत् बना दिया ?”

‘मैंने अपने किये शिक्षा-यत् नहीं बनाया यह मेरे भावकोंके किये बना है ।

“मन्ने ! अपनेको छोड़ सिर्फ औरोंके किये भी शिक्षा-यत् होता है ?”

‘महाराज ! तुझीको पूछता हूँ । तेरे राज्यमें उद्यान है न ?”

“है मन्ने !

‘परि महाराज ! लोग उद्यानमें ( जाकर ) आम भादि खायें, तो हस्त्य रूप  
करना चाहिये ।

‘एक मन्ने !”

‘और तू क्या सकता है ?”

“हाँ मन्ने ! मेरे किये एक नहीं है मैं अपनी ( चीज ) को क्या सकता हूँ ।”

“महाराज जैसे तीन सा-बोजन (धर्म-मगध) राज्यमें तेरी आज्ञा चल्ती है । अब  
जादि लामेमें (गुप्त) बंद नहीं है, कदिय औरोंको है । इसी प्रकार सो-इमार-कोदि चक्र-वक्र  
धर मरी आज्ञा चल्ती है । मुझ शिक्षा-यत्-निर्धारणके अतिपम ( मैं श्रेय ) नहीं है । अति  
कुमरोंको है । मैं प्रतिहार्य कहूँगा ।”

तीर्थिकोंक इस बातको सुनकर कहा—

“अब हम क्याच हुये । अमय गौतमने भावकोंके किये ही शिक्षा-यत् निर्धारित किया

ई अपने लिये नहीं । मन्त्र प्रातिहार्य करना चाहता है । भय क्या करें । सहाय करने को ।

राजाने शमासासे पूजा— 'मन्त्रे ! मन्त्र प्रातिहार्य करेंगे ?'

"अज्ञाने चार मास बाद, आषाढ पूर्णिमाको महाराज !"

'कहाँ करेंगे मन्त्रे ?'

"आचर्यामि महाराज ।"

शालाने इतने दूरका स्थान क्यों कहा ? इसलिये कि वह सभी बुद्धोंके प्रातिहार्यका स्थान है । आर लोगोंने जमाबंदीके दिन भी दूर स्थान बतलाया । तैदिकोंने हम बातको सुनकर—

अज्ञान चार मास बाद अमल गायत्र आचर्यामि प्रातिहार्य करेगा । हम बन्ध निरन्तर उसका शीघ्र करना चाहिये । लोग हमें 'यह क्या है पूर्णिमा तब उन्हें करेंगे—'इसने अमल गायत्रके साथ प्रातिहार्य करनेको कहा वह भाग रहा है हम मन्त्रने न देखकर उमक पीछे लगे हैं ।

शाला राजगृहमें मिठाखाद्य कर निकल । तैदिक भी पीछे पीछे निकल भोजन क्रिय ग्याबपर बास करने ब (रात्रि) बासके स्थानपर दूसरे दिन कसक करते थ । वह मनुष्यों द्वारा "यह क्या है ?" पूछे जानेपर उक्त श्लोके कुछ बंगपर ही करते थे । आर भी प्रातिहार्य देखनेके लिये पीछे होकिये । शाला क्रमशः आचरणी पहुँचे । तैदिक भी साम ही आकर, अपने मन्त्रोंको केता सी हजार पाकर गैरके मन्त्रोंस मन्त्रप बनवा नील कमकस छया— 'यहां प्रातिहार्य करेंगे' (कहकर) बैठ ।

राजा प्रसेनजित् कोसल शालाके पास जा—

"मन्त्रे ! तैदिकोंने मन्त्र बनवाया है मैं भी तुम्हारा मन्त्र बनवाता हू ।"

"नहीं महाराज ! हमारा मन्त्र बनाने वाला (तुमरा) है ।"

"मन्त्रे ! वहाँ मुझे छोड़ दूसरा काल बनावेगा ?"

"शक द्धराज महाराज !"

"किर मन्त्रे ! प्रातिहार्य कहाँ करेंगे ?"

"गोडम्ब-रुफल (गण्डके आम) के नीचे महाराज ।"

तैदिकोंने 'आमके बुझके नीचे प्रातिहार्य करेंगे' सुन अपन मन्त्रोंको कह, एक भोजन स्थानक भीतर उम दिन अमल अमाके तकको भी उखाड़कर अंगलमें लौकहा दिया ।

शास्तासे आषाढ पूर्णिमाके दिन नगरमें प्रवेश किया । राजाक उद्यान-पाल शकदुम मायें (वर्षियाक-स्त्रियिस्तक) की शालकी आशमें एक बड़े पके आमको दूध, उसक गन्ध-रसक कोमसे आने काओंको उबा, राजाक लिच छेकर करते (समय) शालेमें शास्ताको देल साथा—'राजा हम आमको छेकर मुझे आठ पा मोकह कषपण (अकृष्टापण) दगा वह मरे अकड़ेकी जीवन-वृत्तिक किच कार्य नहीं । यदि मैं इस शास्ताको दू कहकर वह अपरिमित कालक दित-मद् होगा । (आर) उस आमको शास्ताके पास से गया । शालाने आमम् स्वधिरकी और देना । तब स्वधिरने चारों (द्विध्व) महाराजोंक दिव पात्रका सेकर इधमें

रक्ता । शास्त्राने पादको रोप उस पके आमको छेकर बैठने बैसा दुसावा । स्वविरमे बीपर विद्ध दिवा । तब उनके बठने पर स्वविरमे पावी छान उस पक आमको गारकर रस बनकर आरुद्रको दिवा । शास्त्राने आमके रसको पीकर गंधको कहा—'इस आमकी गुच्छी (=अष्टि=अनी) को यही मही हटाकर तोप द । उसमे बैसा ही किया । शास्त्राने उसपर हाथ भोवा । हाथ घोते मात्र ही तमा हकके त्रिके बराबर हा ऊँबाईमें पचास हाथका मात्र दूक हा गया । चारों विज्ञानोंमें चार थीर एक ऊपर को—पंच पचास हाथ कम्बी महासाक्षाई हा गइ । वह उसी समय पुष्प और ककस थाच्छ हो गया, ( तथा ) हर स्वाभमें पक मात्र धारण किये दूक या । पीछेसे आने वाले भिक्षु भी पके आम खात हुये ही गये । राजाने पेसा नाम उगा है सुन—इसको कोई न कर इमके सिने पहरा (=भारक्षा) लगा दिया ।

वह तब द्वारा रोपा गया होनेसे 'गड्गद ठपल (अंगुष्ठा मात्र दूक) के नामसे ही प्रसिद्ध हुआ । भूतोंने भी पक आम ला—'भरे हुए तैपिको ! भ्रमण गौतम गंडम स्वयं के नीचे प्रातिहार्य करेगा इसकिये तुमने घोडव्य भरके भीतर उस दिनके ब्रम्मे ब्रमोत्सव लकको उपद्रवा (=उद्राङ्क=उद्राङ्क) दिवा । 'वह गड्गद है कइ जूरी गुदलिव केंक केंककर (उभई) मारा । शास्त्रने घात-यच्छाहक (=अमल) दंपुत्रको आज्ञा ही—'तैपिकोंके मंडपको हवाम उखाइकर कूरेकी भूमिपर केंक हो । समय बैसा ही किया । सुबं देव-पुत्रका भी आज्ञा ही—'सूब-मंडलको बामकर तथाभा । उसने भी बैसा ही किया । फिर वात-बल्लहक को आज्ञा ही—'वात-बल्लहक जायी । उपाते बाजो' । उसने बैसाकर तैपिकोंके पसीवा पृठ सरीरको धूमसे ( डोंक ) दिवा । वह तबिके कमईवाले जसे हो गये । यर्वा-वच्छाहक को भी आज्ञा ही—'बड़ी बड़ी वृ द गिराओ । उसने बैसा ही किया । तब उनका सरीर कबरी गाव बसा हुआ । वह निगठ (=निगठ) लजाते हुये सामनेसे भाग गये ।

येमे पकावन करते समय पूर्ण काश्यपका एक सेवक (=मल्ल) रूपक—'वह मेरे अधीक प्रातिहार्य करवेकी केक है जाकर प्रातिहार्य देखो—( विचार ) बैकोंके छोड़ सबेरेकी काई त्रिबडीका कूर भार बोला लेकर बलठ ( हुपे ) पूर्णको उस प्रकार भागत देख—'मन्ते ! मैं अधीक प्रातिहार्य देखने जा रहा हूँ आप कहां जा रहे हैं ?'

"तुसे प्रातिहार्यसे क्या ? इम कूर (=कर्ण) भार बोलेको मुझ दे ।"

उनके दिव कूर थीर बोलेको ल ( पूर्ण काश्यप ) नहीं तीर का कूरको बोलेने गलेमें बांध लजासे कुछ न कइ वरमें कूर, पाथोंका पुकपुम उद्यत हुये मरकर, अधीक ( नई ) में उत्यक हुआ ।

शास्त्रने अज्ञानमें नख (=मख) बंक्रमण (=उद्रकलेका चक्षुरा) बनाया । उसका एक छार पूर्वके चक्रवाकके मुखमें या एक छोर पश्चिमके चक्र-वाकके मुखमें । ( शास्त्र ) पश्चिम दूई छर्यास बाजककी परिचरुको (दिल भगवान्) — लख बर मानककी छानामें प्रातिहार्य करवेकी बैसा है (मात्र) गंधुदर्यासे निकल देहनीक चक्षुरे (=असुल) पर प्रद हुण ~ "

शास्त्रा रह-अंक्रमणपर उठे । सामने धारद बाजक कम्बी परिचरु की बैसे, तीरी चीजे उतर भार इतिवकी भार भी साँवमें चार्वात्म बोजक उस परिचरुके बीचमें भगवान्ने अमक-प्रातिहार्य किया । उन वाली (=अपूर्वविपिक) में इम प्रकार जानना चाहिये ।

यमक-प्रातिहार्य—“क्या है तबनागत का यमक-प्रातिहार्य का ज्ञान ? यहाँ तबनागत आबद्धोंके साथ यमक-प्रातिहार्य करते हैं—ऊपरके शरीरमें अग्नि-युग्म निकलता है निचके शरीरमें पानीकी चर निकलती है, धीरे-धीरे शरीरमें अग्नि-युग्म ऊपरके शरीरसे उड़-पारा । अगोष्ठी क्यसे अग्नि-युग्म पीछेकी क्यसे उड़-पारा, पीछे अग्नि आये वह । दाहिनी ओरसे अग्नि बाईं ओरसे उड़-पारा बाईं दाहिनी । दाहिने कानके सोतेसे अग्नि बाईं कानके सोतेसे उड़-पारा ; बाईं दाहिने । दाहिनी नासिकाके सोतेसे अग्नि बाईं नासिकाके सोतेसे उड़-पारा ; बाईं दाहिनी । दाहिने कन्धेमें अग्नि बाईं कन्धेसे ; बाईं दाहिने । दाहिने हाथसे अग्नि बाईं हाथसे उड़-पारा ; बाईं दाहिने । दाहिनी बगलसे अग्नि बाईं बगलसे उड़-पारा ; बाईं दाईं । दाहिने पैरसे अग्नि बाईं पैरसे उड़-पारा ; बाईं दाहिने । अंगुलिओंसे अग्नि अंगुलिपोंके बीचसे उड़-पारा ; अंगुलिपोंके बीच अंगुलिपोंसे । एक-एक रोम-छिद्रसे अग्नि-युग्म एक-एक रोम-छिद्रसे उड़-पारा मील पीठ काहित (अलक) जवदात (असकेह) मोजिह (अमजीठके रङ्ग) प्रभास्वर (असूर्य-प्रकाशके रङ्ग) —उ रङ्गके (हो) भगवान् उड़-पारते हैं निर्मित हुए (अयोग-बद्धसे उत्पन्नित हुए-रूप) उड़ा होता है बँटा है सोता है । निर्मित सोता है भगवान् उड़-पारते हैं उड़ होते हैं व्य बँटते हैं । यह तबनागतके यमक-प्रातिहार्यका ज्ञान है ।

इस प्रातिहार्यको शास्ताने उस बंजमनपर उड़-पारते हुये किया । उनक 'तेजो कसिज (अतेजःकृत्स्न) समाभि-ध्यानक कारण उनके ऊपरके शरीरमें अग्नि-युग्म निकलता वा 'भापो कसिज' (अपाःकृत्स्न) ध्यानके कारण निचके शरीरमें जल-पारा उत्पन्न होती थी; किन्तु, जल पाराके निकलनेके स्थानमें अग्नि युग्म नहीं निकलता वा ।

शास्ताने प्रातिहार्य करते हुए ही (सोचा) कि जतीत काङ्के हुए प्रातिहार्य करके नहीं बर्षावास करते थे—'ध्यावर्मे देवते हुये ज्योतिरिन्द्रां वर्यावासकर माताको अभिघर्षं पिष्टक का उपदेश करते हैं' देख दाहिने चरणको पुगाभर पर्वतक शिखरपर एक नूसरे चरणको उद्य 'सुप्रैठपवतके मस्तकपर रक्ता । इस प्रकार अक्षरद लाक-बोजन स्थानमें तीवही पग (अपाद्-चर) हुये । ऐसा न समझना कि शास्ताने दो पगोंक अन्तरको पैर टिकाके पार किया । उनक पैर उद्यके समय पर्वताने स्वर्ण ही आकर पाद्-मूलको ग्रहण किया । शास्तके भाग जानेपर उद्यकर अपने स्वाम्याधिक स्थानपर जा स्थित हुए ।

शास्ताने शास्ताने देख सोचा—'मातृम हाता है भगवान् वह बपापास पाङ्क-कम्बल शिखा (अकाल सगमर्मर जती देवकमेक्यी एक शिखा) पर करेंगे । जहो ! बहुतसे देवताओंका उपकार हुआ । शास्तके बहो बर्षा-वासमें नूसरे देवता इसपर हाथ भी ब रक सकेंगे । किन्तु वह पाङ्क-कम्बल शिखा कम्बार्मि साठ थोड़ा बिसार (अपाद्-है) में पचास पाङ्क

१ एक प्रकारका योगाभ्यास जिसमें ओंकारक ठेक-ठेकपर लगाकर, धीरे धीरे सारे भूमण्डलको ठेकमय देखनेकी भावना की जाती है । २. मूमण्डलके बीचमें मुमेठ पर्वत है; जिसके शिखरपर इन्द्रका अप्सिस लोक है । मुमेठक चारों ओर समुद्र है; उसके चार चरण पर्वत घेरे हुए है । फिर उ पर्वत आर उ समुद्रके पार कम्बार्मि है ।

मोटाई (=पुष्टता) में पन्द्रह पौत्र है। शास्ताके घडनेपर भी (बह) लाकी (=पुष्ट) की तरह ही होगी। शास्ताने उसके मनकी बातको ज्ञान सिखाको डॉक्टरके किये अपनी सपाटी फेंकी। शास्त्रने सोचा—'बीबरको-डॉक्टरके किये पेंच है; परन्तु स्वर्ध रक्म स्वध में ही बैठेंगे। शास्ताने उसके मनकी बात ज्ञान छोटे पीढ़ेपर बैठे बड़े (शरीरवाले) पौत्र कुष्ठिक (=गुर्दी बारी) की मति पौत्र-कम्बल-शिक्षाको बीचमें कर बैठ गये।

जोगोंने उस क्षम शास्ताको न देखा।

बिभकूटको गये था कौलाश या युगान्धरको? लोक-ज्येष्ठ वर-गुडब संजुद्धको ज्ञान हम नहीं देकर पायेंगे।" बह गाथा कहने हुये जोग रोने-काँवने लगे। किन्हीं किन्हींने (कह)- 'शास्ता तो पंडित-प्रिय है ऐसी परिपक्वके किये पमा प्रातिहार्य किया इस कजास दूसरे मगर राष्ट्र या जनपदको चले गये होंगे। तो अब उनको कहाँ देखेंगे (कह) रौते हुए वे इस गाथाके बोले—

"पूजात-म भी धीर इस जोड़में फिर न जायेंगे।

लोक-ज्येष्ठ मरुप गव संजुद्धको (कह) हम न देख पायेंगे।"

उन्होंने महामौत्रस्यायनने पूछ—"मन्ते शास्ता कहाँ हैं? बह मुद् बाकत हुये भी 'दूसरेकी भी करामात प्रकट हो' इस विचारसे— अनुसुद्धको पूछो—बोले। जोगाने स्वधिरसे बैसेही पूछ— 'मन्ते, शास्ता कहाँ हैं?'

"अथस्त्रिंश मन्त्र (=न्द्रलोक) में पौत्र-कम्बल-शिक्षापर बर्षा-वास कर माताको अमिधर्म पिटक उपदेश करते गये।

'मन्ते! कब जायेंगे?'

'तीन महीन तक अमिधर्मका उपदेश कर महा प्रचारणा (=अशुद्ध-पुष्टिमा)के दिवसे

हम शास्ताका विना देखे न जायेंगे—यह (निश्चय कर) उन्होंने वहीं जयवी (=स्वर्धवाचार) वाली। अज्ञाता उनकी कल हुई। उतने बह जमाबड़े (=पपिच) में शरीरसे बजा भी न माखन हुआ। पूछीने विवर (=छु) कर दिया। (वहाँ) सर्वत्र पूष्ठी-लक्ष परिशुद्ध था। शास्ताने पहिलहीं महा-मातृगण्वाचनस कह दिया था—"महामौत्रस्यायन! ए इस परिपक्वके बर्म-वेसना करवा। सुन्दल (=छाउ) अमाघपिटक अहार देगा। इन किये अब तीन मासों तक सुन्दल जवाघपिटकने ही उस परिपक्वको 'बागु (=विचर्चा) मन्त्र पाच ताम्बूल गन्ध माला और आमूलन दिव। महा मातृगण्वाचनने बर्मोपदेश किया। प्रातिहार्य देवदेके किये आगे हुआं द्वारा पूछ मन्त्रोंका भी उचर दिया। माताको अमिधर्म पिटक उपदेश करनेके किये पौत्र-कम्बल शिक्षापर बर्षा-वास करते हुए, शास्ताको वल हथकर बाकवासोंक देवता धरे हुये थे। हमीलिन कहा है—

'अथस्त्रिंशमें जब पुदपाचम बुद्ध पौत्र-कम्बल-शिक्षापर,

पारि-सुत्रकके मन्त्र विहार कर रहे थे त

हमी लोक धानुओंके देवता जमा हाकर

मन्-मस्तकपर बाम करके संजुद्धकी सभा करते थे त

संबुद्धके वर्ण (व्यारीर-ग्रामसे) अभिभाषित हो कोहूमी देवता न बनकर वा सब देवताओंको अभिभाषितकर (उस समय) संबुद्धही बनक रहे थे ।

इस प्रकार सभी देवताओंको अपनी शरीर-ग्रामसे अभिभाषितकर बड़े हुए (सास्ता) के इच्छित हो, 'तुपित-देवधिमानसे जाकर माता (माया-देवी) बैठी ।'

एवम सास्ताने देव परिपद्के धीर्घमें बैठी माताको— कुम्भक धर्म बहुप्रक धर्म अष्ठाङ्क (अष्ट-कथित) धर्म ( ) अभिधर्म-पिटकको आरम्भ किया । इस प्रकार तीन मास निरन्तर अभिधर्म-पिटकको कहा । कहत हुए मित्राचारके समय— 'अब तक मैं आई तक तक इतना धर्म उपदेश करो' (कह) निर्मित-बुद्ध बना द्विमत्वान्में आ नागछताकी रीतवपसे (दौतवप) कर, अतवतत वह (=मान-सरोवर) में मुँह हो उत्तर-कुटस पिड-पात (अभिष्ठा) ल आ महाशाष्ट मालकमें बैठ मोमन करते । सारिपुत्र स्वविरके जानेपर वहाँ सास्ता मोमन कर स्वविरको कहते— 'सारिपुत्र ! आज मैंने इतना धर्म कहा है उसे तू अपने अधीन पाँचसी मित्रुओंको पढ़ा ।'—यमक प्रातिहार्यके समय प्रसन्न हो पाँच सी मित्रु स्वविरके पास प्रसन्न हुए वे उन्हीं पाँच सीके बारेमें शाल्लान बैसा कहा । फिर देवकोकमें आ निर्मित बुद्ध-द्वारा वहेसे आगे स्वयं धर्म उपदेश करते । स्वविरमी जाकर अब पाँच सी मित्रुओंको धर्म-उपदेश करते । वह (पाँच सी मित्रु) सास्ताके देवकोकमें पास करते समय ही सप्तप्राकरणिक हाँ गये ।

सास्ताने इसी प्रकार तीन मासतक अभिधर्मपिटक उपदेश किया । ऐसनाकी समाधिपर अस्सी-करोड़-द्वार प्राणिमाको धर्माभिसमय (अधर्म-नीक्षा) हुआ । महामाया भी श्रोतव्यार्पाप्त-फलमें प्रतिष्ठित हुई ।

अर्थात् बोधनके धेरेंमें ( इकट्ठी हुई ) परिपद्ने— 'अब सातवें दिन प्रवारण होगी ( आज ), महामौद्गल्यायन स्वविरके पास जाकर कहा—

'मन्ते ! साक्षात् उतरनेअ दिन जानना चाहिये । बिना देखे इस नहीं जायेंगे ।

आयुष्मान् मांद्रप्रपावनने इस बातको सुन— 'अच्छा आयुसो ! कह वहीं पृथिवीमें हूँ— 'परिपद् मुझे सुमंड (पर्वत) पर चले हुए देखे' यह अधिष्ठान (अबोध-सकधी संकल्प) कर मधिर-रूप अधिष्ठित पाण्डुवर्णवल्कके सुनकी मूर्ति रूप दिखाते सुमंडके बोधमें चले । मनुष्योंने भी 'एक योजन चले' 'दो पावन चले' उन्हीं देला । स्वविरने भी शिरके बक ऊपर-रैके-अतेकी मूर्ति आरोहण कर, शाय्याके तरककी बन्धा कर बो कहा—

'मन्ते ! परिपद् आपको बिना देखे नहीं जाना चाहती आप कहाँ उतरेंगे ?'

'महामौद्गल्यायन ! तेरा ज्येष्ठ-प्राता सारि-पुत्र कहाँ है ?'

'संकाश्य-नगरके द्वारपर बर्पा-बासके छिने गये ।

'मौद्गल्यायन ! मैं अबसे सातवें दिन महामवारणको संकाश्य-नगरके द्वारपर

१ इन्द्रकोकमें भी उपरका एक कोक । २ अभिधर्मपिटक धम्म-ग्रन्थकी । ३ शीत मानाने निर्मित बुद्ध रूप । ४ देवकोकका काई बंगला ।

५ अभिधर्म-पिटकके सातों प्रब सप्त-प्रकरण बड़े बाते हैं । ६ सकिमा-वसतपुर स्तूपन मोठा भैरवपुरी उत्तर प्रदेश ।



उतरूँगा। मुझे देखनेकी इच्छावाके वहाँ जायें। भावस्तीसे संकाश्य-नगर तीस पावन है। इतने रास्तेके किये किसीको पावेकका काम नहीं। उपोमपिंड (उपवास रखनेवाले) हा, क्याभी बिहारमें बर्म (उपवेद्य) सुनक किये बात हुये की मौति जयें — यह उनको क्या। स्पष्टिमें 'अच्छ मन्ते ! ( कइ ) जाकर बने ही कइ दिवा।

देवायरोइक—शास्ताने बर्षा-वास समासकर प्रचारणा (अपारण) कर दीइको क्या—“महाराज मनुष्य-यध (अमनुष्य-कोक) को जाईगा”। साक्षमें सुवर्ष-मय मभि-मय रजत-मय तीव न्योपाय बचवावे जिक्के पैर संकाश्य-नगरके द्वारपर प्रतिष्ठित थे थीर मोध सुमेरुके शिखरपर। उनमें इधिन ओरछ मर्ग-सोपान देवताओंके किये था बाईं ओरछ रजत-सोपान महाप्रजाओंके किये बाए बाँचक मभि-सोपान तथागतके भिजे। शास्ताने मी सुमेरु-शिखरपर कहे हो देवायरोइण यमक-प्रातिहार्य कर ऊपर जयकोकन किया; बने मङ्गलके एक-आँगन ( से ) हो गये। नीचे जयकोकन किया; अतीथि ( बर्ष ) तक एक-आँगन हो गया। दिशाओं और मनु-दिशाओंकी ओर जयकोकन किया सौ-इजार बाकवास एक-आँगन हो गये। ( उस समय ) देवताओंने मनुष्योंको देखा मनुष्योंने मी देवताओंको देखा। भगवात् ने क जयें (अंग) की रक्षिमर्षी छोड़ी। उस दिन शुद्धकी श्री (मोमाकी) देक कतीस पीवन छम्बी परिष्कमें एक भी ऐसा न था; जो शुद्धकी चाहता न करता हो न रकता हो। ( तब ) सुवर्ष-सोपावसे देवता उतरी मभि-न्योपावसे सम्पक-संजुड उतरे। पंचशिका गंधर्व-युत्र वेलुषपह-वीणा (वेपुषी बाक-बीच) के दाहिनी ओर क्या शस्तकी गंधर्व-पूजा (संगीतमे पूजा) करते हुए उतर रहा था। मातली संभ्राह्म बाईं ओर कहे हो दिव्य गंध-भाका-पुष्प के बमस्वर पूजा करते हुए उतर रहा था। महाप्रजा कइ जगाने थे और सुयाम ( वैव-युत्र ) बाक-म्वजनी (मोरोकक)। शास्ता ऐसे परिष्क (अनुचर-गज) के साथ उतरकर, संकाश्य नगरके द्वारपर कहे हुये। सारियुत्र स्पष्टिमें मी जाकर शास्ताको बन्नाकरते—क्याकि इससे पूर्व ऐसी शुद्ध-बिन्दि साथ उतरते शास्ताने न देखा था इसकिने—

“इससे पूर्व किसीक न ऐसा देखा न सुना।

ऐस मनु-भापी शास्ता शुष्ति (कोक) से (अपने) गयमें क्यवे ॥

बादिसे जपने संतोपकी प्रकथित करत—‘मन्ते ! याब सभी देव और मनुष्य जापकी सहा आर प्रार्थना करते हैं’ कहा। तब शास्ताने—“सारियुत्र ! ऐसे ही गुणोंसे युक्त शुद्ध, देवों और मनुष्योंके श्रिय होते हैं” कइ बर्म-देवका करते इस गानाको कहा—

“जो ध्यानमें तत्पर, धीर निष्कर्मता और उपशममें रह हैं।

उन स्पृतिबाक संजुडोंको देवता भी चाहने हैं ॥

ऐसनाके जन्तमें तीस करोड प्राणियोंका धर्म-दीक्षा हुई। स्पष्टि ( सारियुत्र ) क दिव्य पाँच-सी मित्रु अहत्-पदको ग्रह हुये।

यमक-प्रातिहार्य कर, देयकोकमें बर्ष-वासकर, संकाश्य नगर-द्वारपर उतरा ( अमी ) संजुडोंसे अत्याय है। वहाँ ( संजुडमें ) दाहिने पैरके रखनेके स्थाकक नाम “अचक-बीच” है ।

+

+

+

+

( १९ )

छ शास्त्राओंकी सर्वज्ञता । कुछ भिन्न-नियम । ( ई० पू० ५२१ )

( अटिख )-सुत्त ।

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय मगधान् आचस्तीसे अनाथ पित्रकक जाराम जेतवनमें बिहार करते थे । तब राजा प्रसेमकित कौंसठ वहाँ मगधान् थे वहाँ गया । जाकर कुम्भक-प्रश्न पूछ एक ओर बैठ मगधान्से बोला—

“हे गौतम ! आप भी ती ‘अनुत्तर ( =सबोत्तर ) सम्मक संबोधि ( =परमज्ञान ) को जान किना’ यह दावा करते हैं ?”

“महाराज ! ‘अनुत्तर सम्मक सम्बोधिको जान किया यह ठीकसे बोधनेपर मेरे ही किने बोझा चाहिये ।

“हे गौतम ! वह जो अमज-महाज संघके अधिपति गणधिपति गणक अण्णार्थ, शाठ ( =प्रसिद्ध ) वसत्थी तीर्थकर ( =जन्म करनेवाले ) बहुत जहाँ द्वारा साधु-समय ( =अप्ये माने जानेवाले ) हैं जैसे—सूर्य काश्यप मन्थकी ( =मस्की ) गण्ठाक विगत नाद-पुत्त ( =विमल ज्ञानपुत्र ) संजव केरुदित्पुत्त प्राक व कात्यायन अकित कंसकम्बकी - वह भी ( क्या आपने ) अनुत्तर सम्मक-संबोधिको जान किया यह दावा करते हैं’ एतनेपर ‘अनुत्तर सम्बोधिको जान किना’ यह दावा नहीं करते । फिर जन्मसे अल्प-वयस्क और प्रत्रग्धमें नये आप गौतमक किने तो क्या कहा है ?

“महाराज ! चारको अल्प-वयस्क ( =दूर ) न जानना चाहिये ‘छोटे ( =दूर ) हैं’ ( समसकर ) परिमव ( =तिरस्कार ) न करना चाहिये । जैनसे चार ! महाराज ! अत्रिपको दूर न जानना चाहिये । सर्पको । जम्बिको । मिथुको ! इन चारको महाराज ! दूर न समझना चाहिये । यह कहकर साष्ठाने फिर यह भी कहा —

“कुम्भीक, उत्तम यमन्धी अत्रिपको दूर करके आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे । दो सफला ही राज-भाण्ड कर, वह मनुवेम्भ अत्रिप कूट हो राज-दण्डसे पराक्रम करे ॥ इसकिने अपने जीवनकी रक्षाके किने उससे अलग रहना चाहिये । गाँव या बरन्धमें वहाँ सापकी देख दूर करके आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे ॥ गधा प्रकारके कर्पसे उरग ( =साप ) तेजसे बिचरता है । वह समय पाकर नर, नारी बाककको हँस लेगा ॥ इसकिने अपने जीवन की रक्षाके किने उससे अलग रहना चाहिये । बधु-मन्त्री ज्वाला पुत्र पाकक=कुम्भकगर्मा ( =कानके मारवाका जाग ) को दूर करके आदमी उसका अपमान और तिरस्कार न करे ॥ उपादान ( =साधना ) या दवा होकर वह आप समय पाकर, नर नारीको बका देगी । इसकिने अपने जीवनकी रक्षाके किने उससे अलग रहना चाहिये ॥ पाकक=कुम्भकगर्मा = अत्रिप बलको उत्प देता है । ( अत्रिप ) अदोराव बितनेपर वहाँ अजुर उत्प हो जाते हैं ॥ केकिन जिसको सदाचारी मिथु ( अपने ) तेजसे अकता है ।

उसके पुत्र पद्म ( लक्ष्मण ) नहीं होते थाबाह भी जन नहीं पाते ॥ सम्ताम-रहित थाबाह-रहित शिरच्छे लक्ष्मण जैसा वह होता है ॥ इसकिये पंडितजन अपने हितको जाकते हुए, भुजंग, नागक वसन्ती छत्रिय, और सौम्य सम्यक (=सहाचारी) मित्र के ( साथ ) भष्मी तरह बर्ताव करें ॥

ऐसा करने पर राजा प्रसेनजित् कौसलके भगवाहसे कहा ।—

भास्वर् ! मन्त ॥ भास्वर् ! मन्ते ॥ जैसे मन्ते ! जैसेको सीमा करे ।

मुझे उपासक पारण करे ।”

× × × ×  
 यह छ शास्ता आचार्योंकी सेवाकर विन्तामणि जात्रि विद्याओंको पकर

‘इम बुद्ध है’ यह दावा करते बहुतसे लोग-बाग छे देश-देशान्तरमें बिचरते अमन्यः आनन्दी पदुंके । उनके भष्मिने राजाके पास जाकर कहा—“महाराज ! पूर्ण कादपव अजित के शक्ररक्षी बुद्ध हैं सर्वज्ञ हैं ।

राजाने कहा—“तुम उन्हें विमजित कर छे जात्रो ।”

उन्होंने जाकर कहा—“राजा आप लोगोंको निर्मजित कर रहे हैं ( जात्र ) राजाने धर मिक्षा प्रश्न करे ।

बह जाकेस्य साहस न करते छे । बार बार करने पर भष्मिंके मनको रक्षनेके किये स्वीकारकर सभी एक साथ ही गये । राजाने आपस विख्याकर ‘ब्रह्मिणे’ कहा । त्रिपुंजीके शरीरमें राज-लोक छ आता है, ( इसकिये ) वह बहु-मूर्ख आपसोंपर बैदनेमें असमर्थ हो, बरतीपर ही बँट गये । राजाने—‘इतने हीस इतके भीतर छुनक-वर्म नहीं है— कइ बिद्य मोहन प्रदाव किये, लक्ष्मि गिरेको सु गरीसे पीछे हुए की मति— तुम बुद्ध हो ( वा ) बुद्ध नहीं हो ?’ पूछ्य । उन्होंने सोचा—‘बदि बुद्ध हैं कइ तो राजा बुद्धके विषयमें प्रश्न पूछ्या न कर सकने पर—तुम लोग ‘इम बुद्ध हैं ( कहकर ) लोगोंको उगते फिरते हो— ( कइ ) जिह्म मी करवा सकता है दूसरा मी अनर्थ कर सकता है । इसकिये दावा करके मी ‘इम बुद्ध नहीं हैं’ उतर दिया । तब राजाने उन्हें परसे निकळवा दिया ।

राज वरम निकळने पर भष्मिंने पूछा—“क्यों आचार्यों ! राजाने तुमसे प्रश्न पूछ्य, सम्ताम किया ?”

“राजाने ‘तुम बुद्ध हो पूछ्य तब हमने—‘बदि राजा बुद्धके विषयमें प्रश्नजाक्य को न जानते हुए हमलोगोंके मति मनको वृथित करेगा तो बहुत पाप करेगा सोन् राजा-पर थाकर हमने ‘इम बुद्ध नहीं हैं’ कहा । इम ती बुद्ध ही हैं हमारा बुद्धत्व तो बाकीले घोबसे भी नहीं जा सकता ।”

× × × ×

‘इम समव बुद्ध भगवाह राजपूहमें विहार करते छे । उम समव छ वर्षीय मित्र बहने दुर्ब बुद्धमें शरीरको मी रावते थे उपाका बाहुको छठीको पंढको मी । लोग विन्व होते, जिहाले वे—ईस बह शाक्य पुर्वाव जमन बहाने हुए बुद्धसे श्रम कि मह (अपहम्यान्) और माकिश

करनेवाले । । मगवान्ने मिथुनोंको संबोधित किया—“मिथुनो ! महाते ह्यप मिथुको वृद्धते शरीर न रागना चाहिये जो रागे उसको 'दुष्कृत' की आपत्ति है ।

“मिथुनो ! बाकी वहाँ धारण करनी चाहिये सौंकरु कंठ-सूत्र करि-सूत्र भौषटिक (अग्नि-सूत्र) केमूर हावका धारण अंगुलीकी अंगुडिर्पा न धारण करनी चाहिये जो धारण करै (उसे) दुष्कृतकी आपत्ति है ।

‘कन्धे कस नहीं रखने चाहिये । ‘दुष्कृत’ की आपत्ति । दो महीनेके (केना) पा दो अंगुल कन्धेकी, अनुज्ञा देता हूँ ।”

“दर्पण वा कक-पात्रमें मुँह न देखना चाहिये । ‘दुष्कृत’ ।

“रोगी (पीडितको) दर्पण वा कक-पात्रमें मुँह रखनेकी अनुज्ञा देता हूँ ।

उस समय राजगृहमें गिरध्र-समज्या' (=गिरमासमजा) होती थी; छवर्गीय मिथु गिरगा समझा देखने गये । लोग खिन्न होते बिहारते । “बाध गीत बाधा देखनेको न जाना चाहिये ।” दुष्कृत ।

उस समय छवर्गीय मिथु कन्धे गीतक स्वरमे धर्म (=सूत्र) को गाते थे । कज खिन्न होते बिहारते—कंस द्वापय पुत्रीय धमज कन्धे गीत-स्वरस धर्मको गाते हैं । । मगवान्ने बिहारकर संबोधित किया—

‘मिथुनो ! कन्धे गीत-स्वरमें धर्मको गावैमें यह पाँच बुराहर्षाँ हैं—(१) लव भी उस स्वरमें स-राग होता है (२) दूसरे मी (३) गृहध्व मी मित्र होते हैं (४) मद्यप केने पाकेकी (अस्तुचिम्पि विकामममालस) समाधिका संग होता है (५) धामेवाकी कनता मी देखेका अनुगमन करती है । मिथुनो ! कन्धे गीतस्वरमें यह । कन्धे गीत स्वरस धर्म न गाता चाहिये । दुष्कृत । स्वरमयकी अनुज्ञा देता हूँ ।

मगवान् क्रमसा पारिका करते जहाँ वैशाखी थी वहाँ पहुँच । वहाँ बरालीमें भग-बाध महाबनकी कूटागारघाटामें बिहार करते थे ।

“मिथुनो ! मलक-कुटी (=मकसकुटी=मसहरा) की अनुज्ञा देता हूँ ।”

उस समय बरालीमें उचम भौषटिक (बिरंतर निर्मण रहता था) मिथु बहुत रोगी हो रहे थे । जीवक कौमारसूर्य किमी क्रमसे बराली आया था । जीवक ने मिथुनोंको बहुत रोगी देख भगवान्को अधिवादन कर कहा—

“भन्त ! इस समय मिथु बहुत रोगी हो रहे हैं । मन्ते ! अच्य हो यदि भगवान् ‘बंक्रम धार ‘बन्तापरकी अनुज्ञा दें, इस प्रकार मिथु जिरोग रहेंगे ।

“मिथुनो ! बंक्रम और बन्तापरकी अनुज्ञा देता हूँ ।

“बंक्रमाज-वैदिका अनुज्ञा देता हूँ ।

बरालीमें इच्छनुसार बिहारकर, भगवान् बिपर ‘धरौ (=मयौका वेस) या उबर पारिकाको चके । । वहाँ भगवान् धर्ममें सुसुमारगिरिके भेसकसावन मृगादायमें बिहार करते थे ।

१ समज्या=ममाड=मेका=तमासा । २ वैदिकोंकी मीति सम्बरपाट । ३ द्युलता और द्युलताका चतुस्र । ४ स्नात-गृह । ५ सुक-वध्या ५. ६. बभारम मिर्जापुर इकाइवाक विकोंके गंगाके दक्षिणबाक मदेसका किन्तवही भाग वहाँ पुनार ( सु सुमारगिरि ) है ।



द्वितीय-खण्ड ।

आयु-वर्ष ४३—४८ ।

( ई पृ. ५२०—१५ )



## द्वितीय-खण्ड ।

( १ )

मिश्र-संघर्षमें कलह । पारिलेयक-गमन । ( ई पू ५२०-१९ )

'उस समय भगवान् कौशाम्बीके शोपितारासमें बिहार करते थे । (तब) किसी मिश्रके 'आपत्ति' (=दोष) हुई थी । वह उस आपत्तिको आपत्ति समझता था; दूसरे मिश्र उस आपत्तिको अनापत्ति समझते थे । ( फिर ) दूसरे समय वह (भी) उस आपत्तिको अनापत्ति समझने लगा; और वृद्धरे मिश्र उस आपत्तिको आपत्ति समझने लगे । तब उन मिश्रोंमें से उस मिश्रसे कहा—“आजुस ! तुम जो आपत्ति किये हो उसे आपत्तिको देख ( मात्र ) रहे हो ?” आजुसी । मुझे 'आपत्ति' ही नहीं; किसको मैं देखूँ ?” तब उन मिश्रोंने जमा हो 'आपत्ति न देखनेके किये उस मिश्रका उच्छेपण' किया । वह मिश्र, बहुत-भूत आगमन धर्म पर विनय पर 'माद्रिच-अर, पंडित-वपक रोषापी कम्भी आशुवात् सीखने-बान्ना बा । उस मिश्रके संभ्रान्त मिश्रोंके पास जाकर कहा—“हे आजुसी ! यह अनापत्ति है आपत्ति नहीं । मैं आपत्ति रहित हूँ इसे मुझे ( वह लोग ) आपत्ति-सहित ( कहते हैं ) । मैं 'उच्छेपण-रहित ( =अनुक्षिप्त ) हूँ मुझे ( उच्छेपण ) उच्छिप्त किया । अकार्मिक-कोप्य स्वान्तमें अनुचित धियंब ( =कर्म ) द्वारा उच्छिप्त किया गया हूँ । अपवृष्यान् (कोम) धर्मके धात्र विनयक सात्र भरा पक्ष प्ररुण करें ।” (तब) सभी जानकर संभ्रान्त मिश्रोंको उसने पक्षमें पाया । जावपद् (=वीहारी) जानकार आर संभ्रान्त मिश्रोंके

१ महावमा १ की अहूकधामें है—

“एक प्रचाराममें दो मिश्र—एकविनयधर ( =विनयितक-पाटी ) दूसरा सौबा मितक ( =सूत्रपिटक-पाटी ) बात करते थे । उनमें सीत्रामितक एक दिन पाठानेमें जा हीचके बने अरुको बर्तवमें ही छोड़ चका व्याप । विनयधर पीछे पाठाने गया । बर्तवमें पानी देखकर, उस मिश्रसे बुझा—“आजुस ! तुमने इस अरुको छोड़ा है ?” “हां आजुस !” “तुम इसमें आपत्ति ( =दोष ) नहीं समझते ?” “हां, नहीं समझता” । “आजुस ! वहां आपत्ति होती है । 'परि होती है तो ( प्रति ) देखना ( =अनापत्त ) करूँगा । 'परि तुमने बिना जाने भूकसे किया तो आपत्ति नहीं है” । वह उस आपत्तिको अनापत्ति समझता था । विनय धरने भी अपने अनुपातियोंको कहा—“वह सांज्ञामितक 'आपत्ति' करके भी नहीं समझता” । वह उस ( सीत्रामितक ) के अनुपातियोंको देखकर कहते—“तुम्हारा उपाध्याय आपत्ति करके भी 'आपत्ति' हुई नहीं जानता ।” वह कहते—“पर विनयधर पहिले अनापत्ति बतका जब आपत्ति कहता है वह मिथ्या-बारी है ।” उच्छेपणें कहा—“तुम्हारा उपाध्याय मिथ्या-बारी है ?” इस प्रकार कलह बनी । १ एक प्रकार का पण्ड । २, सूत्रपिटकके शीव-मिथ्या आदि पाँच विधाय आगम भी कहे जाते हैं । ३ अति-संक्षिप्त अधिपर्यं ।



पास भी दृष्ट भेजा । जाबपुत्र जाबकार आर संभ्रांत मिथुनोंको भी पक्षमें पावा । वह उद्विग्न मिथुनके पक्षवासे मिथुन जहाँ उद्वेपक थे वहाँ गये । जाकर उद्वेपक मिथुनोंसे बोध—  
 “वह अभापति है आनुसो ! भापति नहीं । यह मिथुन भापति-रहित है भापति-रहित (अभापक) नहीं अनुद्विग्न है उद्विग्न नहीं । यह म-धार्मिक कर्म (अभियोग) से उद्विग्न किया गया है ।” ऐसा कहनेपर उद्वेपक मिथुनोंमें उद्विग्न मिथुनके पक्षवासे बोध—  
 “आनुसो ! वह भापति है अभापति नहीं । वह मिथुन भापत्य है अभापक नहीं । यह मिथुन उद्विग्न है अनुद्विग्न नहीं । यह धार्मिक-अधकोप-वशात् कर्म द्वारा उद्विग्न हुआ है । आप लोग ! आप लोग इस उद्विग्न मिथुनका अनुगत-अनुगतमन व करें । उद्विग्नके पक्षवासे मिथुन उद्वेपक मिथुनों द्वारा जमा कहे जानेपर भी उद्विग्न मिथुनका ईश ही अनुवर्तन-अनुगतमन करते रहे ।

+ + + X

ऐसा मैंने सुना— एक समय भगवान् कौशाभ्यामीके धीपितराममें विहार करते थे । उस समय कौशाभ्यामी मिथुन मंडल करते बहक करते विवाद करते एक दूसरेको मुख (स्त्री) शक्ति (अधियार) से बेपत्ते करते थे । तब कोई मिथुन जहाँ भगवान् थे वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर खड़े हुये इस मिथुनमें भगवान् से थोड़ा—  
 “वहाँ कौशाभ्यामी मन्ते ! मिथुन मंडल करते बहक करते विवाद करते एक दूसरेको मुखशक्तिसे बेपत्ते करते हैं । अच्छा हो यदि मन्ते ! भगवान्, जहाँ वह मिथुन हैं वहाँ नहीं ।

भगवान्ने मानसे उसे स्वीकार किया । तब भगवान् जहाँ वह मिथुन थे वहाँ गये । जाकर जब मिथुनोंमें बोधे—

“बस मिथुनो ! मंडल बहक किया विवाद (मत) करो ।”

ऐसा कहनेपर एक मिथुनने भगवान्को कहा—

“मन्ते ! भगवान् ! धर्म-स्वामी ! रहने दें । पनाह मत करें । मन्ते ! मयकाह ! धर्म-स्वामी ! दह-धर्म (हसी धम्म) के मुखके साथ विहार करें । इस इस मंडल बहक विवाद विवादसे (स्वर्ग निपट देंगे) ।

दूसरीबार भी भगवान्पै जब मिथुनोंसे कहा—“बस मिथुनो ! । । तीसरी बार भी भगवान् । ।

तब भगवान् दृष्टांत समय (सब) पहचकर पात्र-बीच के कौशाभ्यामीमें शिक्षाचार कर, मोहन कर विद-पाठसे उठ आसम समय, पात्र बीच के खड़ेही खड़े इस शास्त्रको बोधे—  
 “वही लक्ष्य करने वाले एक समाज (पक्ष) जब कोई भी अपनेको वाक (अधर) नहीं मानते, सबके संग होवे (और) मेरे किये मन्ते नहीं सोचते ॥

मूढ परिवर्तसे शिक्षावासे जौनपर धाई बातको बोधववासे,  
 मन-काहा मुख कौशाभ्यामा चाहते हैं; जिस (कह) से (अनोख मार्गपर)  
 के जाने पये हैं उसे नहीं जानते ॥

'मुझे गिन्ना' 'मुझे मारा' 'मुझे बीटा' 'मुझे त्यागा' ।

( इस तरह ) जो उसको ( मरमें ) बाँधते हैं उनका वर सात नहीं होता ॥

'मुझे गिन्ना' 'मुझे मारा' 'मुझे बीटा' 'मुझे त्यागा' ।

( इस तरह ) जो उसको नहीं बाँधते उनका वर सात ही जाता है ॥

वैरसे वर कमी सात नहीं होता ।

अ-वैरसे ( ही ) सात होता है परी सनातन-धर्म है ॥

तूम्हरे (=अपवित्त) नहीं जानते हम यहाँ मृत्युको प्राप्त होंगे ।

जो वहाँ (मृत्युके पास) जाया जानते हैं, वे (पंडित) बुद्धिमत (कलहोंको) समत करते हैं ।

इन्ही लोकेनेवालों, प्राय हरनेवालों याच-शोका-धम हरनेवालों ।

राइको विनास करवे वालों (तक) का भी मेल होता है ॥

यदि ब्रह्मसाधु-विहारी धीर (पुरुष) सहचर=सहायक (=साथी) मिले ।

तो सब छगड़ोंको छोड़ प्रसन्न हो बुद्धिमान् उसके साथ विचरें ॥

यदि नभ्र साधु-विहारी धीर सहचर सहायक न मिले ।

तो राजाकी भक्ति विजित राइको छोड़ उत्तम मार्तग-राजकी भक्ति अकेला विचरें ॥

अकेला विचरना अच्छा है बाकमे मित्रता नहीं (अच्छी) ।

वे-पचाह हो उत्तम मार्तग(=नाग)-राजकी भक्ति अकेला विचरें धीर पाप न करे ॥”

तब भगवान् खड़े-खड़े हूँ गाथाओंको कहकर वहाँ बाइकलोजकार प्राप्त न  
 वहाँ गये । उस समय आयुष्मान् मृगु बाकक-कोषकर प्राप्तमें पास करते थे । आयुष्मा  
 मृगुने वृसे ही भगवान्को धाते देखा । देखकर आसन विछपा धर धोनेको पाती :  
 (रक्खा) । भगवान् विछाये धामनपर बैठे । बैठकर चरण धोये । आयुष्मान् मृगु भी भ  
 वान्को नमिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् मृगुको भगवान  
 की कथा—“मिथु ! क्या त्मशीप (अदीक) तो है क्या पापशीप (=अच्छी गुजरती) तो है  
 पिंड (=मिथु) के किये तो तुम तकलीफ नहीं पाते ?”

“तमशीप है भगवान् । पापशीप है भगवान् । मैं पिंडके सिव तकलीफ नहीं पाता

तब भगवान् आयुष्मान् मृगुको धार्मिक कथासे समुत्तचित कर धामनसे उठक  
 वहाँ प्राचीनवशा-दाव है वहाँ गये । उस समय आयुष्मान् अनुकन्द, आयुष्मान् नन्दि  
 और आयुष्मान् किन्दिबल प्राचीनवर्ष-दावमें विहार करते थे । दाव-पाइक (=धन-पाक)  
 वृसे ही भगवान्को धाते देखा । देखकर भगवान्को कहा—

“महाधर्म ! इस दावमें प्रवेश मत करो । यहाँपर तीन कुल-पुत्र यथाकथम (=भी  
 स ) विहर रहे हैं उनको तकलीफ मत हो ।

आयुष्मान् अनुकन्दने दाव-पाइकको भगवान्के साथ बात करते सुना । सुनकर दा  
 पाकमे रह कहा —

“आहुस ! शक पाक ! भगवान्को मत मना करो । हमारे सास्ता भगवान् आये है ।  
 तब आयुष्मान् अनुकन्द वहाँ आयुष्मान् नन्दिन और आयु किन्दिबक थे वहाँ गये  
 जा कर बोले —

“आयुष्मान् ! चलो आयुष्मान्को ! हमारे सास्ता भगवान् आ गये ।

एव वा अनुदयो वा नन्दिय वा कम्पित मगवान्की भगवापी कर दूकने पाव-बीचर प्रहण किवा एकने व्यसव विहारा एकन पाशोवक रक्खा । भगवान्पे विहारे व्यसनपर बैठ पैर घोबे । व भी व्यापुष्मान् भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ यथे । एक ओर बैठे हुए भगवान्ने कहा—

“अनुदयो ! धमणीय तो है ? वापनीय तो है ? पिण्डके किये तो तुम लोग तकलीफ नहीं पाते ?”

“धमणीय है भगवान् !

“अनुदयो ! क्या तुम एकत्रित परस्पर मोद-सहित वृष-यात्री हुये परम्पर मित्र-व्यक्ति देखते विहरते हो ?” “हाँ मन्ते ! हम एकत्रित ।

‘तो कैसे अनुदयो ! तुम एकत्रित ?’ ‘मन्ते ! मुझे यह विचार होता है—“मेरे किये काम है मेरे किये सुखाम प्राप्त हुआ है जो ऐसे सज्जहारिणों (अनुदमाहवा) के साथ विहरता हूँ । मन्ते ! इस व्यापुष्मानोंमें मेरा अधिक कर्म अन्तर आर बाहरसे मित्रता पूर्ण होता है; वाचिक-कर्म अन्तर और बाहरसे मित्रतापूर्ण होता है; मानसिक कर्म अन्तर और बाहर । एव मन्ते ! मुझे यह होता है—जहां मैं अपने सब इत्यकर इन्हीं व्यापुष्मानोंके चित्तके अनुसार बह । सी मन्ते ! मैं अपने चित्तका इत्यकर इन्हीं व्यापुष्मानोंके चित्तोंका अनुकर्तव्य करता हूँ । मन्ते ! हमारा शरीर नाश है किन्तु चित्त एक ।

व्यापुष्मान् मन्त्रीये भी कहा— ‘मन्ते ! मुझे यह होता है ।

व्यापुष्मान् किम्बिकने भी कहा— ‘मन्ते ! मुझे यह ।

“साधु साधु, अनुदयो ! अनुदयो ! क्या तुम प्रमाद-रहित वाक्य-रहित संबन्धी हो विहरते हो ?” ‘मन्ते ! हाँ ! हम प्रमाद-रहित ।”

“अनुदयो ! तुम कैसे प्रमाद-रहित ?” “मन्ते ! हमारेमें जो पहिले प्रामसे मित्राचार करके काठका व यह व्यसन लगाता व पीनेका पापी रक्खा है कूड़ेकी खापी रक्खा है । जो पीछे गाँवसे विहार करके भीरता है ( यह ) भोजन ( मँसे जो ) बन्धा रहता है यदि बाह्यता है घाता वे ( बहि ) नहीं चाहता है तो ( ऐसे ) व्याधमें जहाँ हरियाली व हो झीव होता है वा जीव-रहित मानीमें छोड़ देता है । व्यसनोंको समझता है । पीनेके पापीको समझता व । कूड़ेकी खाकीको पी कर समझता है । घानेकी जगहपर छाह देता है । पापीके घरे पीनेके घरे वा पागानेके घरेमें जिसे खाकी देखता है; उसे ( मरकर ) रक्खा देता है । बहि यह जससे होवे व्यसक नहीं होता तो हाथके इशारेसे हाथके संकत ( अहारविक्रमक ) से दूसरोंको दुष्कार, पापीके घट या पीनेक घट को ( भरकर ) रक्खाता है । मन्ते ! हम जसके लिये वाग्-मुद नहीं करते । मन्ते ! हम पूर्वमें दिन सारी रात धर्म-मन्त्रकी कथा करते रहते व । इस प्रकार मन्ते ! हम प्रमाद-रहित ।”

“साधु, साधु अनुदयो ! अनुदयो ! हम प्रकार प्रमाद-रहित निरामय संबन्धी हो विहरते क्या तुम्हें उत्तर-अनुत्तर-धर्म अन्तर्गत ज्ञान-वर्त्म-विशेष अनुदयो-विहार प्राप्त है ?”

“मन्ते ! इम प्रमाद-रहित बिहार करते अबमाम भार रूपोंक दर्शनका दृश्यत ई किन्तु वह अबमास भार रूपोंक दर्शन इम कोगोंके जल्द ही भन्तबान हो जाते हैं । इम इसका कारण नहीं जाब पाते ।’

“अनुदहो ! मुझे वह कारण जान केना चाहिए । मैं मी सम्बोधिते पूर्व म-बुद्ध हुआ बोधि-सत्त्व होते (समब) अबमास भार रूपोंके दर्शनको जानना जा । मरा वह अबमास भार रूपोंका दर्शन कल्प ही भन्तबान हो जाता या । तब मुझ अनुदहो ! यह हुआ—क्या ई हेतु (कारण) क्या इ तत्त्व (कारण) जिसस मेरा अबमाम भार रूपोंका दर्शन भन्तबान हो जाता है । तब मुझे अनुदहो ! यह हुआ—(१) विचिकित्सा (अर्थका सम्येह) मुझे उत्पन्न हुई, विचिकित्साके कारण मेरी समाधि प्युत हो गई । समाधिक प्युत होनेपर अबमास भार रूपोंका दर्शन भन्तबान होता इ । सो मैं ऐसा कहूँ जिसमें फिर विचिकित्सा न उत्पन्न हो । सो मैं अनुदहो ! प्रमाद-रहित बिहार करते अबमास (अवकाश) भार रूपोंका दर्शन दंगने क्या । (किन्तु) वह अबमास भार रूपोंका दर्शन जल्द ही (फिर) भन्तबान हो जाता या । तब मुझे अनुदहो ! यह हुआ—क्या इ हेतु । तब मुझ अनुदहो ! हुआ—(२) अनमसिकार (अमनमें न रह करना) मुझे उत्पन्न हुआ । अनमसिकारके कारण मेरी समाधि प्युत हुई । सो मैं ऐसा कहूँ जिसमें फिर न विचिकित्सा न अनमसिकार उत्पन्न हो । सो मैं । (३) धीन-निष्ठ (अस्वान-निष्ठ) । न विचिकित्सा न अनमसिकार न धीन-निष्ठ उत्पन्न हो । सो मैं । (४) अस्मितत्व (अस्मितत्व) । अस्मितत्व (अज्ञता) के कारण मेरी समाधि प्युत हुई । समाधिके प्युत होनेपर अबमास भार रूपोंका दर्शन भन्तबान हुआ । अनुदहो ! जैसे पुरुष (अपेरी शक्तमें) हाथमें जा रहा हो उसका दोनों बार बरों उड़ जाँय । उसके कारन उसको अस्मितत्व उत्पन्न हो । ऐसे ही अनुदहो ! मुझे अस्मितत्व उत्पन्न हुआ । अस्मितत्वके कारण । सो मैं ऐसा कहूँ जिसमें फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो न अनमसिकार, न स्वान-निष्ठ, न अस्मितत्व । सो मैं अनुदहो । (५) उत्पीड (अतिपिष्ट=उत्पीडा=विह्वलता) । अस अनुदहो ! कोई पुरुष एक विधि (अज्ञाना) को ईदता वह एक ही बार पाँच विधियोंके मुझको पात्राप विपके कारण उसे उत्पीडा उत्पन्न हो । प्यु ही अनुदहो ! उत्पीडा उत्पन्न हुई । उत्पीडाके कारण मेरी समाधि प्युत हुई । सो मैं ऐसा कहूँ जिसमें मुझ फिर न विचिकित्सा उत्पन्न हो न उत्पीडा । सोम अनुदहो ! । (६) दुरकुस्त (अनुत्पीड्य) । सो मैं ऐसा कहूँ जिसमें मुझ न विचिकित्सा उत्पन्न हो न दुरकुस्त । सो मैं । तब मुझ अनुदहो ! यह हुआ—(७) अति मारण-वीर्य (अवहार-वीर्य भावधिक अन्त्याम) मुझे उत्पन्न हुआ । जैसे अनुदहो ! पुरुष बाको हाथस बटेरको जोरमें पकड़े वह वहीं मर जाय । एस ही मुझे अनुदहो ! । सो मैं ऐसा कहूँ जिसमें मुझे अत्यारण्य बाय । ( ) अति-वीर्य-वीर्य (अतिवीर्यवीर्य) । जैसे अनुदहो ! पुरुष बटेरका ठीका पकड़े वह उसके हाथमें उड़ जाय । सो मैं अतिवीर्य वीर्य । (९) अमिजप्य । (अमिजप्य) । सो मैं अमिजप्य । (१०) नामात्त्वप्रज्ञा (अनात्त्वप्रज्ञा) । सो मैं नामात्त्व-प्रज्ञा । (११) अतिनिष्पाचितत्व (अतिनिष्पाचितत्व) रूपोंका मुझे उत्पन्न हुआ । अतिनिष्पाचितत्वके कारण मेरी रूपोंकी समाधि-प्युत हुई ।

समाधि के प्युन होवेस अबभास आर रूपोंका इसन अस्तित्व हुआ। सो में ऐसा करके  
 जिसमें मुझे फिर न (१) विचिकित्सा उत्पन्न हो न (२) अ-मनसिकार न (३) सत्यान-सुद्ध,  
 न (४) अग्निमतत्व न (५) उत्पीड़ा न (६) दुःखीय न (७) अत्यारक्य-वीर्य न (८)  
 अति-कीन-वीर्य, न (९) अविम-अल्प न (१०) मानातत्व प्रज्ञा न (११) रूपोंका अति-नि-  
 प्यापितत्व। सो मेंने अनुसूची। 'विचिकित्सा चित्तका उप-बलेस (=मूल) है जानकर,  
 चित्तके उप-बलेस विचिकित्साको छोड़ दिया; 'अ-मनसिकार चित्तका उप-बलेस है जानकर,  
 चित्तके उप-बलेस अ-मनसिकारको छोड़ दिया; सत्यान-सुद्ध; अग्निमतत्व; उत्पीड़ा।  
 •दुःखीय; अत्यारक्य-वीर्य; अति-कीन-वीर्य; अविम-अल्प; •मानातत्व-प्रज्ञा।  
 रूपोंका अति-निप्यापितत्व चित्तका उप-बलेस है जानकर, चित्तके उप-बलेस रूपोंके अति-  
 निप्यापितत्वको छोड़ दिया। सो में अनुसूची। प्रमाद-रहित निराकस सर्वमी हो बिहारे  
 अबभासको जागता आर रूपोंको नहीं देखता; रूपोंको देखता और अबभासको नहीं पहि  
 चाबता (कि) 'केवल रात ( है या ) केवल दिन वा केवल रात-दिन'।

"तब मुझे अनुसूची! यह हुआ—बना हेतु है बना प्रत्यक्ष है ( कि ) में अबभासको  
 जानता हूँ ? तब मुझे अनुसूची! यह हुआ किम समय में रूपके निमित्त (अविरोधता)  
 को मनमें न कर अबभासके निमित्त हीको मनमें करता हूँ उस समय अबभासको पहिचा-  
 बता हूँ आर रूपोंको नहीं देखता। जिस समय में अबभासके निमित्तको मनमें न कर,  
 रूपोंके निमित्तको मनमें करता हूँ; उस समय रूपोंको देखता हूँ 'केवल रात है केवल  
 दिन है केवल रात-दिन है इस अबभासको नहीं पहिचाबता। सो में अनुसूची! प्रमाद  
 रहित बिहारे, अल्प (अपरिच्छ) अबभासको भी पहिचाबता, अल्प रूपको भी देखता; अ-  
 प्रमाण (अप्रमाण) अबभासको भी पहिचाबता अ-प्रमाण रूपोंको भी देखता—'केवल रात  
 है केवल दिन है केवल रात-दिन है। तब मुझे अनुसूची! ऐसा हुआ—बना हेतु है क्या  
 प्रत्यक्ष है जो में अल्प अबभासको भी पहिचाबता ? तब अनुसूची! मुझे यह हुआ—किम  
 समय समाधि अल्प होती है उस समय मेरा चक्षु अल्प होता है; सो में अल्प चक्षुम  
 परिच्छिन्न (=अल्प) ही अबभासको जानता हूँ परिच्छिन्न ही रूपोंको देखता हूँ। किम  
 समय अप्रमाण समाधि होती है उस समय मेरा चक्षु अप्रमाण होता है; सो में अप्रमाण  
 चक्षुम अ-प्रमाण अबभासको जागता; अप्रमाण रूपों—केवल दिन केवल रात केवल रात  
 दिवका देखता। क्योंकि अनुसूची! मेंने विचिकित्सा चित्तका उप-बलेस है जानकर चित्तके  
 उप-बलेस विचिकित्साको छोड़ दिया वा। 'अमनसिकार; सत्यान-सुद्ध; अग्निमतत्व  
 उत्पीड़ा; दुःखीय; अत्यारक्य-वीर्य; अति-कीन-वीर्य; अविम-अल्प; मानार्थ-  
 प्रज्ञा। 'रूपोंका अति-निप्यापितत्व चित्तका उप-बलेस है जानकर चित्तके उप-बलेस  
 अतिनिप्यापितत्वको छोड़ दिया वा।

"तब मुझे अनुसूची! ऐसा हुआ—जो मर चित्तके उप-बलेस था यह हृदय था। हों  
 तो ! अब में हीन प्रकारम समाधि भावना करके। सो में अनुसूची! चित्तके-रहित भी समाधि  
 की भावना करता। चित्तके-रहित बिहार मात्रावली समाधिही भावना करता। चित्तके-रहित  
 समाधिही भी भावना करता। मीन रहित (अल्प-धीरति) समाधिही भी; प्रीति बिनावाली

(=मिथ्यातिक) समाधि । सात (अमुक्त)-समुक्त समाधि । उपशा-मुक्त समाधि । क्योंकि अनुद्वन्द्वो ! मैंने स-वितक स-विचार समाधिकी भी भावना की थी; अवितक विचारमात्रवादी समाधि । अवितक विचार समाधि । स-श्रीतिक । मिथ्यातिक । सात-सह-गत । भरे लिये शान्त-दर्शन हो गया ; मेरी चित्तकी विमुक्ति (=मुक्ति) भरल होगई । वह अन्तिम कर्म है । अब पुनर्मरण (अन्तःशरीर) नहीं ।

भगवान् ! (इस प्रकार बोले); अप्युत्तमान् अनुद्वन्द्वं समुद्र हो भगवान्के भाषणको अभिलक्षित किया ।

### ( पारिलेपक मुक्त ) ।

ध्याना मैंने सुना—एक समय भगवान् कौशाभीके घापितागममें विहार करते थे । उस समय भगवान् मिथुआंस मिथुनिपांसे उपासकॉस उपासिकाभॉस राजाभॉस राज-महामात्योंसे तैयिकॉस तैयिक-भाषकॉस आकीर्ण हो, दुःखस विहरते थे अनुद्वन्द्वताम (अद्वय) न विहरते थे । तब भगवान्को यह हुआ—'मैं इस समय आकीर्ण हो दुःखसे विहरता हूँ अनुद्वन्द्वतामे नहीं विहरता हूँ' । क्यों न गजसे अकेला अ-समीप हो बिहर्क ?

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहनकर पत्र-बीबर क कौशाभीमें निहाके लिये प्रविष्ट हुये । काशाभीमें पिंड चार करके षड-पात जतम कर, भोजनके पत्रात् स्वयं आसन समेट पात्र बीबर से उपस्थाक (=हृत्पी) को बिना कड़े मिथु-सघको बिना वेष्ट अकंके अ-द्वितीय जिपर पारिलेपक या ठहरको चारिकके लिये बस दिव । क्रमशः चारिका करते बहाँ पारि लेबरक वा बहाँ पहुँच । बहाँ भगवान् पारिलेपकमें रक्षितयनर्चकके भद्रशाळ (बुद्ध) के बीच विहार करते थे । वृसरा इल्लि-नाग (=महागज) भी हाथी हाथीके ककम (अद्वय) और हाथीके छठभा (=छाप-आवक) स आकीर्ण हो विहरता वा धारकटे तृणोंको खाता या हृत्-मोगी पाकाभों को (बह) खाता या मैंले पानीको पीता था । अबगाह (=अन्तःशरीर) उतर जानेपर इल्लिनिपां उसके शरीरको रगफती चरती थी । (ऐस) आकीर्ण (बह) दुःखसे अनुद्वन्द्वतासे विहार करता था तब उस महागजको हुआ इस बख मैं हाथी आकीर्ण हूँ । क्यों न मैं गजसे अकसा ?

तब बह इल्लि-नाग पूयसे हरकर बहाँ पारिलेपक रक्षित बच-प्रेड भद्रशाळ मूलक वा बहाँ भगवान् थे बहाँ आया । यहाँ आकर बह नाग को हरित स्थान होता था उस अहरित-करता वा भगवान्के लिये सूँडसे पानी का पीनेका (पानी) रगठा था । तब एकान्तस्थ स्थान-स्थ भगवान्के मनमें बह कितक उल्लेख हुआ—'मैं पहिले मिथुआं से आकीर्ण विहरता था अनुद्वन्द्वतासे न विहरता था । तो मैं अब मिथुआं से अनुद्वन्द्वता विहार रहा हूँ । अब-आकीर्ण हो मुख्य अनुद्वन्द्वतास विहार कर रहा हूँ । उस इल्लि-नागके भी मनमें बह कितक उल्लेख हुआ—'मैं पहिले हाथियों अब-आकीर्ण मुख्य अनुद्वन्द्वतास विहार रहा हूँ । तब भगवान्ने अपने प्रविषेक (=एकान्त मुक्त) को जान कर शरीर (अपने) चित्तम उस इल्लि नागके चित्तके कितकको जान कर उसी समय यह उवाच कहा—

'हरीस' जस वृत्तवाक हलि-आगसे नाग (=पुत्र) का चित्त समाप्त है जो कि वचनमें अनेका रमज करता है ।

( २ )

पारिलेयकसे भावस्ती । सध-मंत । ( ई पू ५१८ ) ।

'ऐसा' मैंने सुना—एक समय भगवान् कौशाम्बीके घोषिताराममें विहार करते थे ।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र-बीचर के कौशाम्बीमें पिंड-पातके लिये प्रविष्ट हुए । कौशाम्बीमें पिंडधार करके पिंड-पात समाप्त कर भोजनके पश्चात् स्वर्ग जासन समेत पात्र-बीचर के उपस्थाकों (=हस्तिर्षी)को विना कहे मिथु-सयको विना रखे, अथेडे-अ-द्वितीय चारिकाके लिये बह गिरे । तब एक मिथु भगवान्के जानेके बोधी ही देर बाव वहाँ आयुष्मान् जानन्व् थे वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् जानन्व्को बोझ—

"आजुस ! जानन्व ! भगवान् स्वर्ग जासन समेतकर पात्र-बीचर के चारिकाके लिये चले गये ।

भगवान् उस समय जन्मे ही विहार करना चाहते थे इस लिये वह किसीके द्वारा अनुगामनीय न थे ।

क्रमसः चारिका करते भगवान् वहाँ पारिलेयक' जा वहाँ गये । वहाँ पारिलेयकमें भद्रशाकके नीचे विहार करते थे । तब बहुत से मिथु वहाँ आयुष्मान् जानन्व् थे वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् जानन्व्के साथ संसोदक कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे उन मिथुओंके आयुष्मान् आपन्व्को कहा—

"आजुस ! जानन्व ! इमैं भगवान्के मुकसे धर्म-कथा सुने देर हूर् । आजुस ! जानन्व ! इम भगवान्के मुकसे धर्म-कथा सुनना चाहते है ।

तब आयुष्मान् जानन्व् उन मिथुओंके साथ वहाँ पारिलेयक-भद्रशाक-सूत का वहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्को बन्धवाकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए उन मिथुओंको भगवान्के धार्मिक कथा द्वारा वृत्ताया सिखाया हर्पाया । उस समय एक मिथुके चित्तमें ऐसा चित्तक' उत्पन्न हुआ—

'क्या जानने क्या देखनेके अनन्तर आजकों (=होषे) का सब होता है ?'

तब भगवान्ने उस मिथुके चित्तके चित्तक'को अपने चित्तसे जान कर मिथुओंको संबोधित किया—

"मिथुओ मैं धर्मको पूरी तरह उपदेश किया है । पूरी तरह मैंने उपदेश किये है चार स्मृति-प्रमाण । चार सम्बक प्रमाण । चार ऋषि-पाद । पाँच इन्द्रियाँ । छ बह ! सात बोधि-मज्ज । आर्य-मज्ज-आंगिक-मार्ग' इस प्रकार मिथुओ ! मैंने पूरी तरह धर्मको उपदेश किया है । इस प्रकार मेरे पूरी तरह धर्मके उपदेशकर मैंनेपर भी वहाँ एक मिथुक चित्तमें ऐसा चित्तक' उत्पन्न हुआ—'क्या जानने क्या देखनेके अनन्तर आर्योपा

१ ई मि ११: ४: १ । २ पारिलेयक ( धर्म पुस्तकमें ) ।

क्षय होता है। मिथुनो! क्या जानते क्या देखते हुए शीघ्रहीमें आत्मबोध क्षय होता है? मिथुनो! अ-सुतवान् (अ-संयमित) प्रबन्धन अपबोध अ-दर्शक आर्षधर्ममें अ-बोधित्, आर्षधर्ममें अ-मती; सत्युत्पत्त अ-दर्शक सत्युत्पत्त धर्ममें अ-बोधित् सत्युत्पत्त धर्ममें अ-मती रूपको आत्मा करके जानता है। उसही को समनुपश्यता (असृष्ट सिद्धांत) है वह संस्कार (अज्ञान) है। वह संस्कार किमिद्वानवाद्य-किमिद्वानसमुत्पत्त (असृष्ट) वाद्य किमिद्वान अन्ना—किमिद्वान प्रमथ बुद्धि है? अ-बिद्याके स्पर्श (अयोग) से। मिथुनो! वेदनासे सृष्ट (असृष्ट, किमिद्वान) अ-संयमित प्रबन्धनको तृप्ता उत्पन्न होती है उसीसे उत्पन्न है वह संस्कार। इस प्रकार मिथुनो! वह संस्कार अकित्य-संस्कृत (अनिमित्त) प्रतीत्यसमुत्पत्त (अकारणसे उत्पन्न) है। जो तृप्ता है वह भी अ-कित्य संस्कृत प्रतीत्य-समुत्पत्त है। जो वेदना है। जो स्पर्श (अयोग) है। जो अ-बिद्या है। मिथुनो! ऐसा भी जानने देखनेके अनन्तर आत्मबोध क्षय होता है। (वह) वह (प्रमथ) रूपको आत्मा करके नहीं देखता बल्कि रूप-वाचको आत्मा समझता है। मिथुनो! जो वह समनुपश्यता (असृष्ट) है वह संस्कार है। वह संस्कार किमिद्वानवाद्य है? अ-बिद्याके योगसे उत्पन्न वेदनासे किमिद्वान-अ-संयमित प्रबन्धनको तृप्ता उत्पन्न होती है उसीसे उत्पन्न बुद्धि है वह संस्कार। इस प्रकार मिथुनो! वह संस्कार अ-कित्य संस्कृत प्रतीत्य-समुत्पत्त है। जो तृप्ता है वह भी अ-कित्य। जो वेदना जो स्पर्श। जो अ-बिद्या। मिथुनो! ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आत्मबोध क्षय होता है। (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता न रूपवाचको आत्मा करके देखता है।

“मिथुनो! जो वह समनुपश्यता (असृष्ट) है वह संस्कार है। ऐसा जानने देखनेके अनन्तर भी आत्मबोध क्षय होता है। (वह) न रूपको आत्मा करके। न रूपवाच! न आत्मामें रूप देखता है; बल्कि रूपमें आत्मामें देखता है।

“मिथुनो! जो वह समनुपश्यता। (वह) रूपको आत्मा करके नहीं देखता। न रूपवाच। न आत्मामें रूपको। न रूपमें आत्मामें। बल्कि वेदनाको आत्मा करके देखता है; बल्कि वेदनावाचको आत्मा देखता है; बल्कि आत्मामें वेदनाको देखता है; बल्कि वेदनाके किमिद्वान आत्मामें देखता (अज्ञानता) है। संज्ञा।

‘बल्कि संस्कारोंको आत्मा करके देखता है। बल्कि संस्कार-वाचको। आत्मामें संस्कारोंको। संस्कारोंमें आत्मामें।

“विज्ञान। विज्ञानवाचको। आत्मामें विज्ञानको। विज्ञानमें

“मिथुनो! जो वह समनुपश्यता (असृष्ट) है वह संस्कार है। वह संस्कार किमिद्वान-वाद्य है? तृप्ता उत्पन्न होती है उसीसे उत्पन्न है वह संस्कार। इस प्रकार मिथुनो! वह संस्कार भी अ-कित्य। जो तृप्ता वेदना स्पर्श अ-बिद्या। ऐसे भी मिथुनो! जानने देखनेके अनन्तर आत्मबोध क्षय होता है। न रूपको आत्मा करके देखता है न रूपवाचको न संज्ञाको न संस्कारको न विज्ञानको। बल्कि इस प्रकारकी दृष्टि

१ सोतधापन्न सङ्गनागामी अनागामी अर्हत् फलमेंसे किमीको न प्राप्त प्रबन्धन अज्ञानता है भीर किमीको प्राप्त अथवा साधुत्पत्त।



(असिद्धान्त) बाका होता है—'वही आत्मा है वही लोक है, वही पीछे जन्मता है (वह) जित्वा=भूव=अ-विपरिणाम धर्मबाका है। मिथुजो! वह जो शास्त्र-दृष्टि (=विश्रुता-वाद) है वह संस्कार है। वह संस्कार किस-विधान-बाका है? मिथुजो! इस प्रकार भी जानने। व रूपको आत्मा करके देखाता व वेदनाको न संज्ञा व संस्कार व विज्ञान। न इस दृष्टिबाका होता है—'वही आत्मा है वही लोक है वही पीछे जन्मता है। (वह) जित्वा=भूव=अ-विपरिणाम धर्मबाका है'। वरिष्ठ इस दृष्टिबाका होता है—'न मैं वा न मेरे किये वा न होऊँगा न मेरे किये होगा।

"मिथुजो! जो वह उच्छेद-दृष्टि (=उच्छेद-वाद) है वह संस्कार है। वह संस्कार किस-विधानबाका। आत्मकों का छत्र होता है। न रूपको आत्मा करके मानता है। व वेदनाको न विज्ञानमें आत्माको। व इस दृष्टिबाका होता है—'वही आत्मा है वही लोक है, वही पीछे जन्मता है' जित्वा=भूव=अ-विपरिणाम-धर्मबाका (है)। व इस दृष्टिबाका होता है—'न मैं वा न मेरे किये वा न होऊँगा न मेरे किये होगा। वरिष्ठ कांक्षा=विचिक्रिस्ता (असंसर्ग) बाका होता है, सद्धर्ममें न विद्या रसनेबाका (होता) है।

"मिथुजो! जो वह कांक्षा=विचिक्रिस्ता सद्धर्म में विद्या व रचना है वह (भी) संस्कार है। वह संस्कार किस विधानबाका। इस प्रकार वह संस्कार अ-विश्रुत है। जो नृपत्ता। जो वेदना। जो स्पष्ट। जो अविद्या। मिथुजो! इस प्रकार जानने देखनेके अनन्तर (भी) आत्मकोंका छत्र होता है। × × ×

'तब भगवान् पारिलयकमें इच्छानुसार बिहार कर जिनपर आबस्ती भी उबर चारिकरक किये चक किये। क्रमशः चारिकर करते वहाँ आबस्ती भी वहाँ गये। वहाँ भगवान् आबस्तीमें अनाद्यपि एकके चाराम जेतवतमें बिहार करते थे। तब कौशाम्बीके उपामकोंमें (विचारा) —

'वह जन्मा (अमिथु) कौशाम्बीके मिथु हमारे वधे अगम्य करकेबाके हैं। इससे ही पीड़ित हो भगवान् चले गये। हाँ! तो जब हम जन्मा कोदम्यक मिथुओंको व अमिबाद्यक करें न मरुत्वाव करें न हाथ जोड़ना=सामीचीकर्म करें न सकार करें व गौरव करें न मानें व पूजें; आगेपर भी विद्व (अमिथा) म नें। इस प्रकार हम लोगों द्वारा अ-सकृत अ-गुणकृत अ-मायित अ-दुखित अ-सकृत-बल एक बाँधी पा गुहरथ बन जाँगी वा भगवान्को जाकर प्रसन्न करेंगे। तब कौशाम्बी-वासी उपासक कौशाम्बी-बासी मिथुओंका व अमिबाद्यक करने। तब कौशाम्बी-वासी मिथुओंके कौशाम्बीके उपासकोंमें असाकृत हो कहा—

"अच्छ भानुमा! हम लोग आबस्तीमें भगवान्के पास हम अगने (=अपिकरव) को सात करेंगे। तब कौशाम्बी-वासी मिथु आगम समेत्कर पात्र-धीवर से वहाँ आबस्ती भी वहाँ गये।

भानुप्पान् सारिपुत्रने सुना—'वह भंडन-वारक=ककद-कारक=विचार-कारक धम्म (=अप) =कारक संबंधमें अविच्छन्न (=अमादा) =कारक कौशाम्बी-वासी मिथु

आवृत्ती जा रहे हैं।" तब आपुष्मान मारिपुत्र जहाँ भगवान् धे बढ़ा गये। आकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आपुष्मान् मारिपुत्रने भगवान् म कहा—“मन्थ ! यह भँडन-कारक कौशाग्नी-वामी मिथ आपग्नी आ रहे हैं उन भिक्षुओंके साथ मैं क्या बर्तूँ ?”

‘मारिपुत्र ! तो तू बमके अनुमार बर्त ।’

“मन्थ ! मैं बम या ज्वम कैय जानूँ ?”

‘मारिपुत्र ! अटारह बातों ( =वस्तु ) स म-धमवादी जानना चाहिये। मारिपुत्र ! मिथ (१) म-धर्मको धम (=सूत्र) कहता है। (२) धर्मको ज धम कहता है। (३) म-विनय को विनय (विनयनियम) कहता है। (४) विनयको म-विनय कहता है। (५) तथागत-द्वारा म-मापित=म-मपितको तथागत-द्वारा मापित=मपित कहता है। (६) मापित=मपितको म मापित=म-मपित कहता है। (७) तथागत द्वारा मन्-आचरितका आचरित कहता है। (८) तथागत-द्वारा आचरितका मन्-आचरित कहता है। ( ) तथागत-द्वारा ज प्रजस (=म-विहित) को प्रजस कहता है। (१) प्रजसक म-प्रजस । (११) मन्-आपत्तिका आपत्ति (=दोष) कहता है। (१२) आपत्तिको मन्-आपत्ति कहता है। (१३) क्यु (=मयी) आपत्तिको गुह (=वही)-आपत्ति कहता है। (१४) गुह-आपत्तिका क्यु-आपत्ति कहता है। (१५) म-अवसेप (=म-दुर्ध) आपत्तिके मन्-अवसेप (=दुर्ध) आपत्ति कहता है। (१६) मन्-अवसेप आपत्तिका म-अवसेप आपत्ति कहता है। (१७) दुःस्वप्न (=दुराचार) आपत्तिको म-दुःस्वप्न आपत्ति कहता (=म-पिति)=प्रकाशित करता है। (१८) दुःस्वप्न आपत्तिका म-दुःस्वप्न आपत्ति कहता है।

“अटारह वस्तुओंमें मारिपुत्र धम-वादी जानना चाहिये।—

‘मारिपुत्र ! भिक्षु (१) मधर्मको धर्म कहता है। (२) धमको धम । (३) म-विनय को म-विनय । (४) विनयका विनय । (५) म मापित=म-मपित । (६) मापित =मपितको मापित=मपित । (७) मन्-आचरितको मन्-आचरित । (८) आचरित को म-आचरित । (९) म प्रजसको म-प्रजस । (१) प्रजसको प्रजस । (११) मन्-आपत्तिका मन्-आपत्ति । (१२) आपत्तिको आपत्ति । (१३) क्यु-आपत्तिको क्यु आपत्ति । (१४) गुह-आपत्तिका गुह-आपत्ति । (१५) म-अवसेप आपत्तिको म-अवसेप आपत्ति । (१६) मन्-अवसेप आपत्तिका मन्-अवसेप आपत्ति । (१७) दुःस्वप्न आपत्तिको दुःस्वप्न आपत्ति । (१८) म-दुःस्वप्न आपत्तिको म-दुःस्वप्न आपत्ति ।

आपुष्मान महासाहसवाक्यने मुना—‘यह भँडन-कारक ।।

आपुष्मान् महाकाश्यपने । महाकारयायमने मुना—०। महाकोट्टित्त ( = क-दिक् ) ने मुना—०। महाकल्पितने मुना— । महाशुन् । अनुदय । रथज । उपासी । यातम् । राहू ।

महाप्रजापती गातमीने मुना—‘यह भँडन-कारक । “मन्थे ! मैं उन भिक्षुओंके साथ कैय बर्तूँ ?”

“गातमी ! तू शकों भारका धर्म (=वात) मुब । शोंको भारका धर्म मुबकर, जो भिक्षु

धर्म-वादी हों उनकी दृष्टि क्षान्ति दक्षि, परमम् कर । मिथुनी-संघको मिथु-संघम जो कुछ अपेक्षा करनी है वह सब धर्म-वादीसे ही अपेक्षा करनी चाहिये ।

अमात्यपिंडक गुरु-पतिने मुना—“वह भंडनकारक । मन्ते ! मैं उन मिथुनोंके साथ कैसे बणू ?”

“गुरुपति ! तू दोनों ओर दाब दे । दोनों ओर दान देकर दोनों ओर धर्म मुन । दोनों ओर धर्म सुककर जो मिथु धर्म-वादी हों उनकी दृष्टि (अभिज्ञान) क्षान्ति (=अपित्त) दक्षिणो के परमम् कर ।”

विशाखा गृहार माताने मुना—“ओ वह । “मन्ते ! मैं उन मिथुनोंके साथ कैसे बणू ?”

“विशाखा ! दोनों ओर दान दे । दक्षिणो के परमम् कर ।”

तब कौशात्मबीबासी मिथु अमराज कहीं आयरती थी वहाँ पहुँचे । तब अयुष्मान् सारिपुत्रने कहीं मगधान् ध वहाँ था “मन्ते ! वह भंडनकारक कौशात्मबी-बासी मिथु आबपत्नी था गये । मन्ते ! अब मिथुनोंको आसन आदि कैसे देना चाहिये ?

“सारिपुत्र ! अन्न आसन देना चाहिये ।

“मन्ते ! परि (असन) अन्न न हो तो कैसे करना चाहिये ?

“सारिपुत्र ! ता अन्न बतकर देना चाहिये । परन्तु सारि-पुत्र ! बुद्धतर मिथुका आसन दयाने (के किये) मैं किसी प्रकार भी नहीं करता । जो हयय उसका ‘दुष्कृति’ की आपत्ति ।

“मन्ते ! धामिप (अमोक्ष अग्नि) ङ (विषय) कैसे करना चाहिये ।”

“सारिपुत्र ! धामिप सबको समान बँटना चाहिये ।”

तब धर्म और मिथुकी मन्त्रवेद्या (अभिज्ञान छात्र) करते उस उच्छिस्त मिथुको (विचार) दृश्य—“वह आपत्ति (अप्य) है अन्-आपत्ति नहीं है । मैं आपत्त (अप्यपत्ति) पुत्र) हू अन्-आपत्त नहीं हू । मैं उच्छिस्त (अच्छिस्त) वृद्धसे उच्छिस्त) हू अन्-उच्छिस्त नहीं हू । अ-कोप्य=स्वाभाव=धार्मिक कर्म (अप्य) से मैं उच्छिस्त हू ; तब वह उच्छिस्त मिथु (अपने) अनुवाचिकोंके पास गया वक्ता—“वह आपत्ति है आपत्तो ! धर्मो अयुष्मानो ! मुझे मिका हो । तब वह उच्छिस्त-अनुवाची मिथु उच्छिस्त मिथुको लेकर कहीं मगधान् के वहाँ गये, आकर मगधान्को अविवाहन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठकर अब मिथुनोंके मगधान्से यह कहा—

“मन्ते ! यह उच्छिस्त मिथु कइता है—‘आपत्तो ! यह आपत्ति है अन्-आपत्ति नहीं आको अयुष्मानों मुझे (संघर्ष) मिका हो । मन्ते ! तो कैसे करना चाहिये ?”

“मिथुओ ! वह आपत्ति है अन्-आपत्ति नहीं । यह मिथु आपत्त है अन्-आपत्त नहीं है । उच्छिस्त है अन्-उच्छिस्त नहीं है । अ-कोप्य=स्वाभाव=धार्मिक कर्मसे उच्छिस्त है । मिथुओ ! यदि वह मिथु आपत्त है उच्छिस्त है और (आपत्ति=अप्य) वेकता है अन् इस मिथुको मिका हो ।”

तब उत्तिसक अनुवायी मिथुनोंवे उस उत्तिसक मिथुका मिठाकर (=भोसारण कर) उहाँ उत्तरेक मिथु वे बहाँ गये । जाकर उत्तरेक मिथुओंस कहा—

“बाबुसो ! जिस बस्तु (=बात)में सबका मंडन=ककड़ विग्रह, विबाद् हुआ था संघ-भेद (पूट)=संधरात्री=संध-व्यवस्थान=संध नामाकरण हुआ था सो (उस विषयमें) वह मिथु आपछ है उत्तिसक है अब-सारित (=मिल्य किया गया) है । हौं तो ! बाबुसो ! इस इस बस्तु (=सामका बात)के उपशमन (=शमल्य मिटाया)के किये संघकी सामग्री (=मेक) करै ।”

तब वह उत्तरेक (=भक्त्य करमेवाके) मिथु बहाँ भगवान् वे जाकर भगवान्का बलिबान कर एक ओर बैठे भगवान्से बोले—

मन्ते ! वह उत्तिसक-अनुवायी मिथु ऐसा कहत ई— बाबुसो ! जिस बस्तुमें संघकी सामग्री कर ! मन्ते ! कर्म करना चाहिये ?”

‘मिथुओ ! कूँकि वह मिथु आपछ उत्तिसक पत्नी (=दुर्षी=आपत्ति देखने माननेवाक्य) बार अब-सारित है । इसकिये मिथुओ ! उस बस्तुके उप-शमनके किये संघकी सामग्री करो । और वह इस प्रकार करनी चाहिये—रोगी गिरोग सर्मीको एक बगह जमा होना चाहिये किसीके (बढ़का) मंडकर, छन्द (=बोद) ब देना चाहिये । जमा होकर योग्य समर्थ मिथु-द्वारा सब शापित (=सूक्ति=संबोधित) होना चाहिये— ‘मन्ते ! सब मुझे सुने । जिस बस्तुमें संघमें मंडन ककड़ विग्रह विबाद् हुआ था; सो (उस विषयमें) वह मिथु आपछ है उत्तिसक (ई) पत्नी अब-सारित है । यदि संघ उचित (=पक्षकक्षक) समझे तो संघ उस बस्तुके उपशमनके किये सब-सामग्री करै । यह शक्ति (=सूचना) है ।

मन्ते ! संघ मुझे सुने—जिस बस्तुमें अब-सारित ई । सब उस बस्तुके उपशमनके किये संघ-सामग्री कर रहा ई । जिस बाबुभान्को उम बस्तुके उपशमनके किये सब-सामग्री करना पसन्द ई वह चुप रहै; जिसको नहीं पसन्द ई वह बोके । दूमरी बार भी । तीसरी बार भी । सबसे उम बस्तुके उपशमनके किये संघ-सामग्री (=पूरे सघके एक करवा) की; सघ-रात्री= संघ-भेद निहत (=नष्ट) हो गया । सबको पसन्द ई इसकिये चुप ई—वह मैं समझता हू ।

× × × ×  
 जैन असिबधकक प्रश्न । कुल-नाशके कारण । पिंड-सुप्त ।

( ई० पू० ५१८ ) ।

‘पारदर्शी ( बपा ) बाल्य ( बाल्य ) ब्राह्मण-साममें ।

असिबधक पुत्त सुत्त ।

× × ×  
 ( जमा ईके सुत्ता )—एक समय कामरुमें चारिका चलते हुये बने मारी मिथु

संघर्ष मात्र भगवान् बहो नालम्बा है यहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् नाकम्बामें प्रायारिक (सेठ) के आम्बके बागमें विहार करते थे। उस समय नाकम्बा बुद्धि (अभिधा पाता कटिब बहो हो) हो इतिषों (२-अक्षक और महामारी)से पुच्छ और इवेत-इतिषोंकसी 'सकम्बुत्ता (अक्षक रवित लूटी हो गई खेती बहो हो) थी। उस समय बही मारी निगठों (अक्षक-साबुम्बों)की परिषद् (अजमात)के साथ निगठ 'नाटपुत्त (महाधीर) नाकम्बामें (ही) बाम करते थे। तब निगठोंक सिष्य (अर्जन) अक्षि-बन्धक-पुत्र प्रामणी बहो निगठ नाट पुत्त (अज्ञात् पुत्र) से बहो गया। आकर निगठ नाट-पुत्तको अमिबादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अक्षि-बन्धक-पुत्र प्रामणीसे निगठ नाट-पुत्तक यह कहा—

“आ प्रामणी ! भमज गौतमसे बाद (अज्ञाकार्य) कर इस प्रकार तेरा सुन्दर कीर्ति-सकद पैक जायगा। (सोम फरेगे)—‘अक्षिबन्धकपुत्त प्रामणीने इतने बड़े परिष्यक इतने महाप्रतापवाले भमज गौतमसे बाद किया।”

“मन्ते ! मैं इतने बड़े कटिबाले इतने महाप्रतापी भमज गौतमसे कैसे बाद रोपूँगा ?”

“प्रामणी ! आ बहो भमज गौतम है बहो आ। आकर भमज गौतमसे ऐसे कर— मन्ते ! भगवान् तो अनेक प्रकारसे कुम्बोंकी उक्ति बखामते हैं अनुरक्षा पखामते हैं, बहुम्ब्या (अक्षक) बखामते हैं ? परि प्रामणी ! भमज गौतम पूसा पूछे बानपर, इस प्रकार उत्तर है—‘पेसा ही है प्रामणी ! तबागत अनेक प्रकारसे कुम्बोंकी । तो हू इस प्रकार कइता— ‘तो क्यों मन्ते ! भगवान् महान् मिद्धु-सभके साथ बुद्धि हो इतिषोंसे पुच्छ, इवेत इतिषों पूर्ण बामते सूक खेतोंवाले (प्रवेश) में पारिका करते हैं ? (रवा) भगवान् कुम्बोंको सतानेक किये हुये हैं ? (रवा) भगवान् कुम्बोंक उप-भातके किये हुये हैं। प्रामणी ! इस प्रकार शोकों ओरसे प्रश्न पूछपेपर भमज गौतम न उगकना जाहेगा, न बिगलना जाहेगा।

निगठ नाट पुत्तका ‘अप्या मन्ते ! कर अक्षिबन्धक-पुत्र प्रामणी अक्षकके बड निगठ नाट-पुत्तको अमिबादन कर प्रक्षिप्यकर बहो भगवान् से बहो गया। आकर भगवान्को अमिबादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये अक्षिबन्धक-पुत्र प्रामणीसे भगवान्से कहा—

‘रवा मन्ते ! भगवान् तो अनेक ?’

‘पूसा ही है प्रामणी ! तबागत ।’

‘तो क्यों मन्ते ! भगवान् ?’

“प्रामणी ! आक्षय एकामने कश्य (पूर्व तक) अिते मैं रसरस करता हूँ रक

१ नाटपुत्त-अज्ञात्पुत्र। वान् किष्किषिषोंकी एक शाखा थी, जो विसाखीके अस्तपात रहता था। अज्ञात्से ही वर्तमान अक्षरिया सभ्य बना है। महाधीर और अक्षरिया होकर अज्ञात् प्रोप अक्षरप है। आज भी अक्षरिया भूमिहार आक्षय इस प्रदेशमें बहुत संख्यामें है। उक्त निवाण रक्षी पगवा भी शान्-अक्षी-अक्षी-रक्षीस बना है।

कुछको भी नहीं खाता जो पकी मिछाको देने मात्रमे उप-व्रत (=अष्ट) हो गया हो। बरिष्क जो वह कुछ भाव्य महाभय-सम्पन्न महाभोग सम्पन्न बहुत-सोबा-वर्षी-मुक्त, बहुत-बलु-उपकरण-मुक्त, बहुत धन-आभ्य-मुक्त हैं वह सभी दाससे हुये सत्वमे हुये आमन्त्र (=अमत्र होने) से हुये हैं। ग्रामणी ! कुओंके उपघातके आठ होत आठ प्रत्यप (=अर्ष) होते हैं। (१) राखा द्वारा उप-घातको प्राप्त होते हैं। (२) या चोरसे। (३) या आगसे। (४) या उदक (=पानी) से। (५) या पद्मा रत्ना (धन अपने) रत्नासे अन्न खाता है। (६) या अच्छी तीर न की हुई खेती गद हो जाती है। (७) या कुलमें कुल-अंगार पड़ा होता है वह उन भोगोंको उड़ाता चापट करता विध्वंस करता है। (८) जाठवां (समी बलुओंकी) अहित्यता है। ग्रामणी ! वह आठ हेतु, आठ प्रत्यप कुओंके उपघातके किये हैं। इन आठ हेतुओं आठ प्रत्यपोंके होते हुए भी जो मुझे यह कई— 'मगवान् कुओंके उच्छेदके किये हुये हैं। ग्रामणी ! (वह) इस बातको बिना छोड़े इस विचारको बिना छोड़े इस इच्छि (=धारणा) को बिना परिष्कार किये छे जाते (=मरत) ही नहीं जायगा। ऐसा कश्चेपर असिबन्धक-पुत्र ग्रामणीने भववान्मे कहा—

“आमर्ष ! मन्ते !! आमर्ष ! मन्त !! बीसे । आअसे मगवान् मुझे सांखिकि सरणा गत उपासक चारण करै ।

(निर्गठ)-सुत्त ।

ऐसा मीने सुना—एक समय भगवान् तासम्पदामें प्रयारिकके आस्रवनमें बिहार करते थे ।

तब निर्गठका शिष्य असिबन्धक-पुत्र ग्रामणी अर्ह मगवान् मे वहाँ गया । आकर एक घोर बैठ गया । एक बार बैठे असिबन्धक-पुत्र ग्रामणीसे भगवान्मे यह कहा—

“ग्रामणी ! निर्गठ नाट-पुत्त भावकों (=शिष्यों) को क्या धर्म उपदेश करते हैं ?”

“मन्ते ! निर्गठ नाट-पुत्त आचर्योंको वह धर्म उपदेश करते हैं कि—जो कोई प्राणीको मारता (=अतिपात) है वह सभी दुर्गति कर्कों खाता है। जो कोई बिना दिवेको (चोरी) खेया है वह सभी काममें मिषवाचार (=विपिद क्षी-असंग) करता है। जो कोई ब्रह्म बनेका है। जो बीने बहुत करके विहरता है वह उसीसे छे खाया जाता है। मन्ते ! निर्गठ नाट-पुत्त आचर्योंको इस प्रकारसे धर्म उपदेश करते हैं।”

“ग्रामणी ! जो (बीसे) बहुत करके विहरता है वह उसीसे छे खाया जाता है ? ऐसा होनेपर (निर्गठ नाट-पुत्तके बचवानुसार) कोई भी दुर्गति-गामी = नरक-गामी न होगा। तो क्या मानते हो ग्रामणी ! जो वह पुत्र्य रात वा दिवमें समय अ-समयमें प्राप्ति-हिसा करता है उच्छेद कबला समय अधिकतर होता है जब वह पानीको मारता है वा जब वह प्राणीको नहीं मारता ?”

“मन्ते ! पुत्र्य रात वा दिव समय अ-समय प्राप्ति-हिसा करता है। (उपमें) वही समय अल्प-तर है। जब कि वह प्राप्ति-हिसा करता है तब वही समय अधिकतर है जब कि वह प्राप्ति-हिसा नहीं करता।”

“ग्रामणी! जो कैसे बहुत करके विहार करता है उसीम वह ( मरक ) क जाया जाय है—ऐसा होमेपर, मिगठ नाट-पुस्तके बयानानुसार कोई भी दुर्गति-नामी मरक-नामी न होगा। तो क्या मानते हो ग्रामणी! या पुरुष रात या दिन समय अ-समय चोरी करता है, उसका कौमत्ता समय अधिकतर होता है जब कि वह चोरी करता है या जब कि वह चोरी नहीं करता ?”

“मन्ते! जब वह पुरुष रात या दिन समय अ-समय चोरी करता है ( उसमें ) वही समय अत्यन्त है जब कि वह चोरी करता है ( धार ) वही समय अधिकतर है जब कि वह चोरी नहीं करता ।

‘ग्रामणी! जो बहुत । ऐसा होमेपर तो विगठ नाट-पुस्तके बयानानुसार कोई भी दुर्गति-नामी मरक-नामी न होगा। तो क्या मानते हो ग्रामणी! अम-मिष्याचार । सूपाबाद् । ग्रामणी! कोई-कोई प्राणी ऐसी चारण्य-दृष्टि (=बाद्) बासा होता है—‘जो कोई प्राण मारता है वह सभी अपाव-नामी मरक-नामी होता है; चोरी; अम मिष्याचार; सूपा-बाद् । ऐसे सास्ता (=गुह) में ग्रामणी! आचक (=विष्य) अज्ञाबाद् होता है। उसको ऐसा होता है—मेरे सास्ताका यह बाद्=यह दृष्टि है—‘जो कोई प्राण मारता है; वह अपाव-नामी निरप-नामी होता है। ‘मिने प्राणोंको मारा है (अन) मैं अपावनामी निरप-नामी हूँ’ इस दृष्टि (=भारजा) को पाता है। ग्रामणी! इस बचनको बिना छोड़े इस विचारको बिना छोड़े इस दृष्टिको बिना परित्याग किये के जाते (मरते) व विरपमें (पड़ेया)। मेरा सास्ता चोरी । अम-मिष्याचार । सूपा-बाद् ।

“वहाँ ग्रामणी! ‘अहंत् सम्पक-संयुक्त, विद्या-आचरन-संयुक्त सुगत लोक-विदु, अनुत्तर पुरुष-वर्ग-सारकी शेष-अनुष्योंके सास्ता (=उपदेशक) बुद्ध भगवान्’ तथागत लोकमें उत्पन्न होते हैं। वह अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी विन्दा = विगर्हणा करते हैं। ‘प्राण-हिंसा विरत होजो’—कहते हैं। वह अनेक प्रकारसे चोरी । अम-मिष्याचार । सूपाचार । ऐसे सास्तामें ग्रामणी! (जब) आचक अज्ञातु होता है। वह ह्य प्रकार विचारता है—भगवत् अनेक प्रकारसे प्राण-हिंसाकी विन्दा=विगर्हणा करते हैं ‘प्राण-हिंसा विरत होजो’ कहते हैं। मिने भी जितनी तितनी प्राण-हिंसाकी है सा अचक नहीं डीक नहीं। मैं भी उसके करन संतप्य करता हूँ—‘अस! यदि मिने उस पाप-कर्मको न किया होता। वह ह्य प्रकार विचार कर, उस प्राण-हिंसाको छोड़ता है आगेके किये प्राण हिंसासे विरत होता है। इस प्रकार इस पापकर्मका परित्याग करता है इस प्रकार इस पापकर्मसे हटता है। भगवान् अनेक प्रकारसे चोरी । अम-मिष्याचार । सूपाबाद् ।

“( फिर ) वह प्राण-व्यतिपात (=प्राण-हिंसा) छोड़ प्राण-व्यतिपातसे विरत होय है। अहत्त ज्ञादान (=चोरी) छोड़ । अम-मिष्याचार । सूपा-बाद् । विदु-बचन (=बुगडी) । पुरुष-बचन (=कटोर-बचन) । सं-प्रकाप (=अ-अप्यक-क-क-बाद्) अमिष्या (=अमेय) को छोड़ अ-अमिष्यातु (=अकीमी) । आचर (=वैद) छोड़ अ-अपाव-विष्य (=अ-वैद-विष्य) । मिष्या-दृष्टि (=दृष्टी चारण) छोड़ सम्बग्-दृष्टि (=सर्वा चारणाबाध) होता है। तो ग्रामणी! वह आर्य-आचक (=सर्वा

धारणावाक्य सिद्ध) इस प्रकार अनिष्टा-रहित व्यापाह-रहित समीह-रहित ज्ञानकार सुमने-  
वाक्य हो मित्र-भाव-युक्त-चित्तसे एक दिशाको पूर्ण कर बिहार करता है । •दूसरी दिशा० ।  
तीसरी दिशा । चौथी दिशा । इस प्रकार ऊपर नीचे आदे-वेदे सबका विचार करने  
वाक्य सबके अर्थ; विपुल महान् प्रमाण-रहित बैर-रहित व्यापाह-रहित मित्रता-भाव-युक्त  
चित्तसे सभी ओरको पूर्ण कर बिहार करता है । जैसे ग्रामणी ! बक्यान् संस बजानेवाक्य  
धोकी ही मेहनतसे चारों दिशाओंको ( शास्त्र ) सूचित कर देता है; इसी प्रकार ग्रामणी ! इस  
प्रकार धावनाकी गई—मैत्रीभावना =इस प्रकार बड़ा चित्त-विमुक्ति, जिस प्रमाणमें भी आवे  
वहीं अच-सिद्ध (=अवतम) वहीं होती; वह वहीं अच-सिद्ध नहीं होती ।

“ग्रामणी ! वह आर्य-आचर्य इस प्रकार सोम-रहित द्रोह-रहित मोह-रहित ज्ञानकार  
सुमनेवाक्य एक दिशाको कल्पना-युक्त चित्तसे पूर्ण कर बिहार करता है । •दूसरी दिशा ।  
तीसरी दिशा । चौथी दिशा । । मुदित-युक्त चित्तसे । “ उपेक्षा-सहित चित्तसे । ”

( मगवान् ) ऐसा कहेपर अस्तिबन्धक-युक्त ग्रामणीने मगवान्से कहा—  
“आश्चर्य !! मन्ते ! आश्चर्य !! मन्ते !! उपासक भारत करे ।

### पिंड-सुत ।

( ऐसा मैंने सुना ) एक समय मगवान् मगधमें पंचशाखा ब्राह्मण-ग्राममें बिहार  
करते थे ।

उस समय पंचशाखा ब्राह्मण-ग्राममें कुमारियोंका त्योहार था । तब मगवान्ने पूर्वाह्न  
समय पहिन कर पाप-बीचर से पंचशाखा ब्राह्मण-ग्राममें प्रवेश किया । उस समय पंचशाखाके  
ब्राह्मण गुरुज्य मारुदे आशेधमें थे—(जिसमें) अग्रमण्य शीतम पिंड व पापे । मगवान् जैसे  
पात्र किये पंचशाखा ब्राह्मण-ग्राममें प्रविष्ट हुए थे वैसे ही उनके पात्रके साथ निकल आये ।  
तब मार पापी कहाँ मगवान् वे कहाँ गया था कर मगवान्से बोला—

“अमण ! क्या तुम्हें पिंड नहीं सिद्ध ?”

“पापी ! वसा ही तो तुने किया जिसमें पिंड व पात्र ।”

“मन्ते ! मगवान् दूसरी बार पंचशाखा ब्राह्मण-ग्राममें प्रवेश करें मैं बैसा करूँगा  
जिसमें मगवान् पिंड पावें ।”

“मारने तबागतसे काग रुगा अ-युक्त (=पाप) कमावा ।

पापी ! क्या तू समझता है कि तुझे पाप व क्षीणता ॥”

अहो ! इस सुकृतम जिते हैं जिन हमारे ( ओगोंके ) पास (कुछ) नहीं है ।

‘आमास्वर वैकलायोंकी मों ति हम प्रीति-क्या मोदकके आनेवाके हैं ।’

तब मार पापी—“मगवान् मुझे पहिचानते हैं सुगत तुझे पहिचानते हैं—( कह )  
वहीं अन्तर्धान होयया ।

x

x

x

x



( ४ )

मार्गद्वय-संवाद ( ई० पू० ५१७ ) ।

‘एक समय भगवान्ने ‘कुठ देसके कम्मापद्वय (=कम्मासद्वय)-विषय (=करबा)-विवासी मार्गद्वय ब्राह्मणका की-सहित जईए-पद-प्राप्तिकर भविष्य देस “ वहाँ जा कर कम्मापद्वयके पास किसी बन-बगडमें बैठ (अपना) सुवर्ण-मालास प्रकर किया। मार्गद्वय भी उस समय वहाँ मुह घोड़ेके छिन्ने जा, सुवर्ण-तेज देस—‘बह न्वा है’ इषर उषर देखते भगवान्को देस समुप्य हुआ। उसकी कम्पा सुवर्ण-बर्बा थी। उस (कम्पा) को बहुतसे क्षत्रिय-कुमार आदि चाहते हुवे भी न पा सके थे। ब्राह्मणका क्पाक था— (किसी) सुवर्ण-बर्ण भ्रमणको ही वृ गा। उसने भगवान्को देखकर—‘बह मेरी कम्पाके समान बर्णका है इसीको उसे हूँगा’ विषय किया; इसकिये देखते ही समुप्य हो गया।

उसने बेगसे पर जाकर ब्राह्मणीसे कहा—

“भवती (=माय) ! भवती ! मैंने बेटीके समान बर्णका पुत्र्य देस किया। बेटीको भर्कहत करो इसे उसको दिखाऊँगा।”

ब्राह्मणीके कर्ककीको सुगंधित ककसे गहका बख पुष्य भर्ककरसे भर्कहत करते करते ही भगवान्की मिझाचारकी बेझा जागई। तब भगवान् कम्मासद्वयमें पिडके छिन्ने प्रविष्ट हुये। बह दोनों भी कम्पाको डे भगवान्के बैठकेकी बगहर पहुँचे। भगवान्के वहाँ न देस ब्राह्मणीने इषर उषर टाकते भगवान्के बैठकेके त्पामपर तुन-विषय देस। ब्राह्मणीने कहा—

‘ब्राह्मण ! बह उसका तुन-संस्तर (=तुन-भ्यसन) है ?’ ‘हाँ भवती !’

“तो ब्राह्मण ! हमारे ध्यनेका काम पूरा न होया।”

“भवती ! क्यों ?”

“ब्राह्मण ! देखो तुन-संस्तर कामके जीतनेवाके पुठपका होनेसे अस्तप्यस्त नहीं हुना है।”

“मत भवती ! मंगक जीअते समय अर्मागक (की बात) कहो।”

फिर ब्राह्मणीने इषर उषर विषर कर भगवान्के पद-चिन्हको देख कर कहा—‘देखो ब्राह्मण ! पद चिन्ह; बह सत्त्व (=जीव) काममें किस नहीं है।

“भवती ! तुम कैसे जावती हो ?”

ऐसा कहनेपर अपने ज्ञान-यन्त्रको दिखपती हुई बोली—‘राग सुच्छन्न पद उकर होता है इ प-मुच्छन्न पद निद्रम्य हुआ होता है। मोह-सुच्छन्न महसा र्वा होता है मकरहितक पद ऐमा होता है।

उसकी बह कथा हो (ही) रही थी कि भगवान् मिझा समास कर उस वृत्त-मंडलमें जागये। ब्राह्मणीने सुन्दर कथनोंसे पुनः भगवान्के क्पाको देखकर ब्राह्मणीने कहा—

“आज्ञाया । इन्हींको तुमने देखा था ?”

“हाँ भबती ।

“आनेका काम पूरा न होगा । ऐसे काम कामोपयोग (अव्यय-सोम) करें वह संभव नहीं ।”

उनके इस प्रकार बात करते समय भगवान् गुण्यसनपर बैठ गये । आद्यज बावें हाथसे कन्या धीरे हाथिने हाकसे कर्मठक पकड़े भगवान्के पास जा (बोला) —

“हे प्रमदित ! थाप भी सुवर्ण-वर्ण हो और यह कन्या भी; यह तुम्हारे योग्य है । इसको मैं तुम्हें भार्या करनेके किये देता हूँ, बक-सहित इस कन्याको प्रहण करो ।”

और वेमेकी इच्छासे लड़ा रहा । भगवान्ने आद्यजसे न बोळ तूसरेसे बोळनेकी भाँति पाधा कही—

“(भार-कन्यासे) गुण्य अ-रति और रागाको देख कर भी मीजुनमें मेरा विचार नहीं हुआ । यह मक-मूत्र-वर्ण क्या है जिसे (मनुष्य) पैरसे भी छुमा न चाहे ।

(मागन्धिव) — “बहुतसे मरेम्रोंसे प्रापित इस नारी-रत्नको यदि नहीं चाहते ।

तो अपनी दृष्टि स्त्रीक-मल जीवक-भावमें उत्पत्तिको कैसा करते हो ?”

भगवान्— ‘मागन्धिव !—समोका अन्वेष्य करके मुझे मैं वह कहता हूँ यह धारणा नहीं हुई ।

मैंने दृष्टियों (० बाहों) को देख (उन्हें) न प्रहण कर चुनते हुए अत्यन्त-नातिको ही देखा” ॥ (१)

मागन्धिव— ‘जितने सिद्धांत कल्पित किये गये हैं वे मुझि ! (तुम) उनको न प्रहण करनेको करते हो ।

तो अत्यात्म-नातिक (पामक) इस परार्थको (थाप) धीरने कैसे जाना ?’ (२)

भगवान्— ‘मागन्धिव ! व दृष्टिये, व श्रुति (अवचन वेद) से न जानने न स्त्रीकसे, व वतसे मुक्ति कहता हूँ ।

अ-दृष्टि, अ-श्रुति अ-ज्ञान अ-शीक अ-वतसे भी नहीं ।

(जा) इनको छोड़ते इनको न प्रहण करते हुबे एक (भी) मय (अव्यय)को न चाहे” (३)

मागन्धिव— ‘यदि न दृष्टिये व श्रुतिसे व ज्ञाकसे न स्त्रीकसे व वतसे मुक्ति करते हो ।

और अ-दृष्टि अ-श्रुति अ-ज्ञान अ-शीक और अ-वतसे भी नहीं ।

तो मैं समझता हूँ, कि कोई कोई (कोण) दृष्टिये अत्यन्त मोह-वर्ण धर्महीको मुक्ति जानते हैं ॥ (४)

भगवान्— ‘मागन्धिव ! दृष्टिके विषयमें बार बार पूजते हुबे व धारणाही हुई (दृष्टियोंमें) मोह-बुद्ध है ।

यहाँ (अत्यात्म-नातिकमें) बोधा भी नहीं आते अतएव व इसको मोह-वर्ण कहता है । (५)

“जो सम अधिक वा ल्पून समझता है वह विबाध करता है ।

शीर्षो मेहोर्म (जो) अकक है (उसके किये) सम विद्येव (धीरे ल्पून) नहीं होता ॥ (६)

“हे आद्यज ! ‘सत्य है यह किसे करे’ ‘अहं है यह (अहं) किसस विबाध करे ।

जिसमें सम विषम नहीं है वह जिसके साथ वाद करै ॥ (७)

“बाबास छोड़ जो बिना निकेत (बन्ध) का विचरता है, ग्राममें जो संसर्ग नहीं करता ।

( जो ) कमसे धूम ( जपने किये ) मरिचको व बनानेवाला है । ( वह मुनि ) अंगसे विमहकी कथा नहीं करता ॥ ( )

किन् ( दृष्टियों ) से कथना हो लोकमें विचरण करै बाग ( = मुनि ) उन्हें सीमा कर विधाद् न करै ।

अंसे जकसे उत्पन्न करके और कमज बक और पकसे किस नहीं होते ।

इसी प्रकार सांति-वादी कोम-रहित मुनि कम और लोकमें न-किस (होता है) ॥ (९)

दृष्टि आर मतिर बेव-पर)म नहीं होता तुष्पादि-परायण (जम) ( सांति-वादीके ) समाज नहीं होता ।

कर्म और सुतिसे भी नहीं ( मुक्ति-पदके ) के बाबा न सक्ता वह ( तो ) ( तुष्पादि ) निवेशनोंमें जगस है ॥ ( १ )

सन्नासे विरक्तके प्रधि नहीं होती प्रथा द्वारा विमुक्त हुएको मोह नहीं ।

संज्ञा और दृष्टिके जिन्होंने प्रथम किया है वह लोकमें बस पाते रहते हैं ॥ ( ११ )

x x x x

( ५ )

## महासतिपट्टान-सुच ( ई पू ५१७ ) ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् बुद्ध ( देस ) में कुम्भोंके विनाम ( = अन्धा ) कर्मप्राप्त्यन्तमें विहार करते थे ।

‘वहाँ भगवान्ने मिष्टुओंको संबोधित किया—“मिष्टुओ !”

“मन्त !” ( कह ) मिष्टुओंने भगवान्को उत्तर दिया ।

स्मृतिप्रत्याम—“मिष्टुओ ! वह जो चार स्युति-प्रदान ( = सति-पट्टान ) है वह सन्तोके—लोक कन्दकी विष्टुदिके किये; बुद्ध-दीर्घवस्के अतिक्रमके किये ज्वाव ( = अन्ध ) की प्रातिके किये विबौलकी प्राप्ति और साक्षात् करनेके किये एकपण ( = एकान्तता-प्रापक ) मार्ग है । कीवसे चार ? मिष्टुओ ! वहाँ ( इस वर्ममें ) मिष्टु कथामें ‘कक-अनुपत्ती हो उद्योग-कीक अनुभव ( = संप्रत्य ) आक-तुष्ट स्युति-मार्ग हो लोक ( = संसार का धारी ) में अमिषा ( = कोम ) और दीर्घवस् ( = तुष्ट ) को हटा कर विहरता है । वेदवायो ( = सुखार्थि ) में श्रेयानुपत्ती हो विहरता है । चित्तमें विषामुपत्ती । वर्मोंमें धर्मानुपत्ती ।

मिष्टुओ ! कैसे मिष्टु कथामें कथानुपत्ती हो विहरता है ?—मिष्टुओ ! मिष्टु अरन्धमें पृच्छ कीये, या धूम्रगारमें आसब मार कर, धारीरको सीधा कर स्युतिके नामसे

रक्तकर बडता है। वह स्मरण रक्ते साँस छोड़ता है स्मरण रक्ते ही साँस रुकता है। सम्भी साँस छोड़ते बच 'कम्भी साँस छोड़ता हूँ' जानता है सम्भी साँस छेते बच 'कम्भी साँस छेता हूँ' जानता है। छोटी साँस छोड़ते 'छोटी साँस छोड़ता हूँ' जानता है। छोटी साँस छेते 'छोटी साँस छेता हूँ' जानता है। सारी क्वाको जानते (=अनुभव करते) हुये साँस छोड़ना सीखता है। सारी क्वाको जानते हुये साँस लेना सीखता है। क्वाके संस्कारको साँत करते साँस छोड़ना सीखता है। क्वाके संस्कारको साँत करते साँस लेना सीखता है। जैसे कि—मिश्रुओ ! एक चतुर करादकार (=अन्नकर) या करादकारका अन्तेबासी कम्बे (काह) को रंगते समय 'कम्बा रंगता हूँ' जानता है। छोटेको रंगते समय 'छोट रंगता हूँ' जानता है। ऐसे ही मिश्रुओ ! मिश्रु कम्भी साँस छोड़त कम्भी साँस छेते छोटी साँस छोड़ते छोटी साँस छेते जानता है। सारी क्वाको जानते (=अनुभव करते) हुये साँस छोड़ना सीखता है साँस रुकता। क्वा-संस्कारको साँत करते साँस छोड़ना सीखता है; साँस लेना। इन प्रकार क्वाके भीतरी भागमें क्वापानुपस्वी विहरता है। क्वाके बाहरी भागमें। क्वाके भीतरी और बाहरी भागमें क्वापानुपस्वी विहरता है। क्वामें समुच्च (=उत्पत्ति) धर्मको देखता विहरता है। क्वामें प्यव (=उत्पत्ति-विनाश) धर्मको देखता विहरता है। क्वामें समुच्च-प्यव (=उत्पत्ति-विनाश)

होनेसे बेराके अनुकूल ननु आदि पुक्त होनेसे हमेशा स्वरक-शरीर स्वरक-चित्त होते हैं। चित्त और शरीरके स्वल्प होनेसे प्रज्ञावक-मुक्त हो गंभीर क्वा (=उपदेश) ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं। इसीलिये उनको भगवान् 'इस गंभीर-अर्थ-मुक्त महा-स्युति-प्रस्थानक उपदेश किया।

जैसे कि पुरुष सोनेकी टाकी या उसमें जाना प्रकरके पूछोंके रखे; सोनेकी मञ्जूपा (=पिटारी) या सात प्रकरके रखोंके रखे। इसी प्रकार भगवान्ने कुल-देस-बासी परिपक्व को या गंभीर देखनाका उपदेश किया। इसीलिये यहाँ पर आर मी गंभीरार्थ (=सूच उपदेश किमें)। इस शीर्ष-निष्ठापमें (इसको और) महानिदानको मक्षिम-निष्ठापमें सति-पट्टाव सारोपम इच्छापम इह-पाक मागन्मिय आबैन्ज-सप्याव बार बार यी सूत्रोंको उपदेश किया। इस (कुल) देशमें चारों (मिश्रु मिश्रुमी उपासक उपासिक) परिपक्व स्वभावस ही स्युति प्रस्थावकी भावना सं पुक्त हो विहार करती है। बास और कर्मकर नाकर-बाकर भी स्युति प्रस्थाव सर्वापी क्वा ही करते हैं। पवघर आर सूत काठनेक भाव आदिमें यी प्यव का बात नहीं होती। यदि कोई थी—अम्म ! तू किस स्युति प्रस्थावकी भावना करती है ?—पूछनेपर "कोई नहीं" बोळती है; तो उसको बिहारते हैं—"पिहार है तेरी जिन्गीको तू बीती मी मुझे समान है। फिर उसे "अब फिर ऐसा मत कर" उपदेश (दे) कोई एक स्युति-प्रस्थावको सिखवते हैं ! (बह-क्वा)

१ शरीरको उसके असक स्वल्प कैम-बल-मल-मूत्र आदि रूपमें देखने वाला 'क्वाके क्वापानुपस्वी' कहा जाता है। २ सुख दुःख न सुख न सुख इन तीन चित्तकी अवस्था क्वी बेदनाओंको बीसा हो बीसा देखने काकर 'बेदनामें बेदनानुपस्वी'। ३ यही आनापान (=माजापान) कहवता है।

धर्मको देखता विहरता है। 'कामा है' यह स्मृति ज्ञान और स्मृतिके प्रमाणके लिये उपस्थित रहती है। (तुम्हा आदिमें) क-कम्ब हो विहरता है। छोड़के कुछ भी (मैं और मेरा करके) नहीं ग्रहण करता। इस प्रकार भी मिथुनो! मिथु कर्षामें कर्ष-मुक्ति रखते विहरता है।

'फिर मिथुनो! मिथु जन्ते हुये 'कामा हूँ' जायता है। जैसे हुये 'सोपा हूँ' जायता है। जैसे जैसे उसकी काया ब्यवस्थित होती है जैसे ही उसे जायता है। इसी प्रकार कर्षाके भीतरी भागमें कर्षानुपस्थी हो विहरता है। कर्षाके बाहरी भागमें कर्षानुपस्थी विहरता है। कर्षाके भीतरी और बाहरी भागमें कर्षानुपस्थी विहरता है। कर्षामें समुत्प- (उत्पत्ति) -धर्म देखता विहरता है। कर्ष- (= विनाश) धर्म समुत्प-धर्म-धर्म ।।

'और मिथुनो! मिथु गमन-आगमन जायते (= अनुभव करते) हुये करता है। आसोकक = बिसोकक जानते हुये करता है। सिकोवना फेकना 'संवाही पात्र चीवरका चारण जानते हुये करता है। आसन पात्र, काद्व ब्यस्वादन जायते हुये करता है। पात्र का (= उधार) पेसाब (= परसाब) जानते हुये करता है। चखते चखे होते, बैठते, सोते जायते बोकते चुप रहते जानकर करनेवाला होता है। इस प्रकार कर्षाके भीतरी भागमें कर्षानुपस्थी हो विहरता है।।

'और मिथुनो! मिथु पैरके तकवेसे ऊपर केक-मस्तकसे नीचे इस कर्षाके नाक प्रक्षरके मकौसे पूर्ण देखता (= अनुभव करता) है—इस कर्षामें हैं—केस रोम बल इति लक् (= चमड़ा) मॉस ल्पातु, अस्थि अस्थि (के भीतरकी)-मज्जा कुछ इष्ट (कसेजा) बङ्गल, झोमक प्कीहा (= तिस्की) फुस्तुस जॉठ पतकी जॉठ (= जंत-मुच) उदरस्थ (बलुमें) पाखला पिठ कक, पीब छोड, पसीना मेव (= बर) बॉसु बसा (= बर्षी) धार नामा-मक 'कसिक-रिक्त ध्येर मूब। जैसे मिथुनो! नाता अनाम धाखी, भीही (= जान) मूँग उद्व ठिक तङ्गुस्ते दोनों मुचमरी देही ( मुठेसी पुठेकी) हो उसको जॉपवाका पुद्व जोक कर देखे—बह धाकी है बह भीही है बह मूँब है बह उद्व है यह ठिक है यह तङ्गु है। इसी प्रकार मिथुनो! मिथु पैरके तकवेके कपरसे केक-मस्तकसे नीचे इस कर्षाको नाका प्रक्षरके मकौसे पूर्ण देखता है—इस कर्षामें है। इस प्रकार कर्षाके भीतरी भागमें कर्षानुपस्थी हो विहरता है।।

'आर फिर मिथुनो! मिथु इस कर्षाको (इसकी) रिपतिके अनुसार (इसकी) रचनाके अनुसार देखता है—इस कर्षामें है—शुबिबी-आतु (= शुबिबी महामृत) कर्ष (= उक) -आतु, तेज (= धमि) -आतु, वातु-आतु। जैसे कि मिथुनो! बध (= कतुर) गोवातक वा गो-वातकम् अन्तेवासी ग पकी मार कर बोटी-बोटी काद कर धारसे पर ईद ह। ऐम ही मिथुनो! मिथु इस कर्षाको रिपतिके अनुसार, रचनाके अनुसार देखता है। इस प्रकार कर्षाके भीतरी भागमें ।

१ वही ईर्वापव है। २ वही संमकम्ब है। ३ मिथुनोकी दोहरी चार। ४ प्रतिफल-मनसिम्बर। ५ जोहोंका तरल पदार्थ।

“भार मिथुभो ! मिथु एक दिनक मरे दो दिनक मरे तीन दिनके मरे पूर्ये नीले पक्ष गये पीछे मरे (सूत) शरीरको स्मरणमें केंकी देखे । (भौर उसे) वह हूमी (अपनी) काबापर पड़ावै—वह भी काया हूमी बर्म (=स्वभाव) वाली देसा ही होतैवाकी हूमास न बच सकतैवाकी है । हूम प्रकार कायाके भीतरी भाग । ।

“भौर भी मिथुभो ! मिथु कौनोंसे खाये जाते चीखोंस खाये जाते गिखोंस खाये जाते कुचोंमे खाये जाते पाया प्रकारके चीखोंस खाये जाते, स्मरणमें केंके (सूत) शरीरकी देखे । वह हूमी (अपनी) काबापर पड़ाव—यह भी काया । ।

“भौर मिथुभा ! मिथु मँस-सोहू-बसोंमे बँचे हूमी-कंकालवाले शरीरका स्मरणमें केंका देखे । ।

मँस-रहित सोहू-सो गयोंमे बँचे । । मँस-सोहू-रहित बसोंमे बँचे । । बपन-रहित हड्डियोंको दिशा-बिदिशामें केंकी देख—कहीं हाथकी हूमी है पैरकी हूमी बँधाकी हूमी उटकी हूमी कमरका हूमी पीठके कटि, खोपड़ी ; भार हूमी (अपनी) काबापर पड़ावै । ।

“भार मिथुभो ! मिथु शंकरके समान बर्णवाकी सकेद हूमीवाल शरीरको स्मरणमें केंका देख । । बर्णो-पुरानी जमाकी हड्डियोंवाके । । सर्षी शूर्नी-हो गई हड्डियावाके । ।

“कैम मिथुभो ! किस बेदनाओंमें बेदनानुपस्थी (हो) बिहरता है ? मिथुभो ! मिथु सुख-बेदनाको अनुभव करते ‘सुखबेदना अनुभव कर रहा हूँ’ जानता है । दुःख-बेदनाको अनुभव करते ‘दुःखबेदना अनुभव कर रहा हूँ’ जानता है । अनुत्प-असुख बेदनाको अनुभव करते ‘अनुत्प-असुख-बदना अनुभव कर रहा हूँ’ जानता है । स-आमिप (अभोग-यदार्थ-रहित) सुख-बेदनाको अनुभव करत निर-आमिप सुख-बेदना । स-आमिप दुःख-बदना । निर-आमिप दुःख-बेदना । स-आमिप अनुत्प-असुख-बेदना । निर-आमिप अनुत्प-असुख-बेदना । इस प्रकार कायाके भीतरी भाग । ।

“कैमे मिथुभो ! मिथु चित्तमें चित्तानुपस्थी हा बिहरता है ? यहाँ मिथुभो ! मिथु स-राग चित्तको स-राग चित्त है जानता है । विराग (विराग-रहित) चित्तका ‘विराग चित्त है जानता है । स-द्वेष चित्तको ‘सद्वेष चित्त है जानता है । भीत-द्वेष (=द्वेष-रहित) चित्तका ‘भीत-द्वेष चित्त है जानता है । स-मोह चित्तको । भीत-मोह चित्तको । संक्षिप्त चित्तको । विक्षिप्त चित्तको । महद्-गत (=महापरिमाण) चित्तको । ज-महद्गत चित्तको । स-उत्तर । अद्-उत्तर (=उत्तम) । समाहित (=एकम) । ज-समाहित । चिमुक्त । ज-चिमुक्त । हूम प्रकार कायाके भीतरी भाग । ।

“कैम मिथुभो ! मिथु बर्णोंमें बर्णानुपस्थी हा बिहरता है ? मिथुभा ! मिथु पौच भीषरण बर्णोंमें धमानुपस्थी (हो) बिहरता है । कैमे मिथुभा ! मिथु पौच भीषरण बर्णोंमें

कडुनी आदि जोड़ोंमें स्थित ठरल पदार्थ । चानु-मनमिकार । १ चँद

( १ ) कायानुपस्थता समाप्त । २ ( २ ) बेदनानुपस्थता ।

३ ( ३ ) चित्तानुपस्थता । ४ ( ४ ) धमानुपस्थता । ५ पौच भीषरण-कामच्छन्द, स्वापाद् स्थानसूत्र आदित्य-काहृत्य विचिकित्सा ।

धर्मानुपस्थी हो विहरता है ? यहाँ मिथुनो ! मिथु विद्यमान भीतरी काम-उत्पत् (अनुप-  
कृता)को 'मेरेमें भीतरी काम उत्पत् विद्यमान है जानता है । अ-विद्यमान भीतरी काम  
उत्पत्को 'मेरेमें भीतरी काम उत्पत् नहीं विद्यमान है — जानता है । अन्-उत्पत् काम उत्पत्की  
वैसे उत्पत्ति होती है—उसे जानता है । अस उत्पत्त रूपे काम उत्पत्तक प्रहाण (=विद्यता)  
होता है उस जानता है । जैसे विन्यत् काम उत्पत्तकी जागे फिर उत्पत्ति नहीं होती उसे  
जानता है । विद्यमान भीतरी ध्यापात् (=ज्ञोह)को—'मेरेमें भीतरा ध्यापात् विद्यमान है—  
जानता है । अ-विद्यमान भीतरी ध्यापात्को—'मेरेमें भीतरी ध्यापात् नहीं विद्यमान है—  
जानता है । जैसे अन् उत्पत्त ध्यापात् उत्पत्त होता है उसे जानता है ; जैसे उत्पत्त ध्यापात्  
मत्त होता है उसे जानता है । जैसे विन्यत् ध्यापात् जागे फिर नहीं जापत्त होता उसे जानता  
है । विद्यमान भीतरी स्त्रयाम-मृत्त (=बीच-मृत्त=मनकी मरुसता) । ।

भीतरी आश्रय-कौटिल्य (=उत्पत्त-कृतक-उत्पत्त-उत्पत्त-उत्पत्त) । ।

० भीतरी विहरता (=संभव) । ।

“इस प्रकार भीतर धर्मोंमें धर्मानुपस्थी हो विहरता है । बाहर धर्मोंमें ( भी ) धर्मानु-  
पस्थी हो विहरता है । भीतर-बाहर । धर्मोंमें समुदय (=उत्पत्ति) धर्मक अनुपस्थी  
(अनुभव करके) हो विहरता है । प्यब (=विनाश)—धर्म । उत्पत्ति-विनाश-  
धर्म । स्मृतिके प्रमाणके लिये ही 'धर्म है यह स्मृति उसकी बराबर विद्यमान रहती है ।  
यह (तुम्हा जादिमें) अ-कृत हो विहरता है । लोकमें कुछ भी ( मं भार मेरा ) करके प्रह  
नहीं करता । इस प्रकार मिथुनो ! मिथु धर्मोंमें धर्म अनुपस्थी हो विहरता है ।

“अब फिर मिथुनो ! मिथु पाँच उपादान १ स्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपस्थी हो विहरता  
है । जैसे मिथुनो ! मिथु पाँच उपादान स्कंध धर्मोंमें धर्म-अनुपस्थी हो विहरता है ? मिथुनो !  
मिथु (अनुभव करता है)—'यह रूप है 'यह रूपकी उत्पत्ति (=उत्पत्त) 'यह रूपक  
धरत-गमक (=विनाश) है । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । इस प्रकार अज्ञान  
(=धरतीक भीतरी) धर्मोंमें धर्म-अनुपस्थी हो विहरता है । बहिर्वा (=धरतीक बाहरी) धर्मों  
में धर्म-अनुपस्थी । धरतीके भीतर बाहरी । धर्मों (=धरतीको) में समुदय (=उत्पत्ति)-  
धर्मको अनुभव करता विहरता है । धरतीमें विद्यता (=प्यब)—धर्मको अनुभव करता  
विहरता है । धरतीमें उत्पत्ति-विनाश धर्मकी अनुभव करता विहरता है । सिर्फ ज्ञान भार  
स्मृतिके प्रमाणके लिये ही 'धर्म है यह स्मृति उसकी बराबर विद्यमान रहती है । यह अ-कृत  
हो विहरता है । लोकमें कुछ भी नहीं प्रहण करता । इस प्रकार मिथुनो ! मिथु पाँच उपादान  
स्कंधोंमें धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता (= धर्म अनुपस्थी) विहरता है ।

“अब फिर मिथुनो ! मिथु छ आध्यात्मिक (= धरतीके भीतरी) पाठ ( धरतीके  
बाहरी) आपनन धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है । जैसे मिथुनो ! मिथु छ भीतरी  
बाहरी आपनन (=स्वी) धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है ? मिथुनो ! मिथु धरतीको

१ स्कंध—१) वेदका संज्ञा संस्कार विज्ञान । २ आपनन—अनु भाव ज्ञान  
(आध्यात्मिक) विद्या (अध्यात्म) कथ (अध्यात्म) मन । इन्में पहिले पाँच पाठ आपनन है मन  
आध्यात्मिक (=धरतीके भीतरी) आपनन है ।

अनुभव करता है क्योंकि अनुभव करता है औराओ उन दोषों (=बहु जार रूप) करके संयोजन उत्पन्न होता है उस में अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्न उत्पन्न संयोजनकी उत्पत्ति होती है उसे भी जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न संयोजनका प्रदान (=विनाश) होता है उसे भी जानता है। जिस प्रकार प्रहीम (=विमर्श) संयोजनकी भागे फिर उत्पत्ति नहीं होती उस में जानता है। श्रोत्रको अनुभव करता है; स्पर्शको अनुभव करता है। प्राण (सू शनैकी शक्ति प्राण-इन्द्रिय) को अनुभव करता है। गंधको अनुभव करता है। विज्ञान रस ।। कष्या (=त्वक्-इन्द्रिय ठंडा गर्म भाति जाननेकी शक्ति) स्पर्श (=ठंडा गर्म भाति) ।। मनको अनुभव करता है। धर्म (=समका विषय) को अनुभव करता है। दोषों (=मन और धर्म) करके जो संयोजन उत्पन्न होता है उसको भी अनुभव करता है।। इस प्रकार अप्याय (=शरीरके भीतर) धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता बिहरता है यहिर्षा (=शरीरके बाहर) अप्याय-बहिर्षा । धर्मोंमें उत्पत्ति धर्मको विनाश धर्मको उत्पत्ति-विनाश धर्मको । सिद्ध ज्ञान और स्युतिके प्रमाणके लिये । इस प्रकार मिश्रणों! मिश्रण शरीरके भीतर और बाहर वाले छ जायतन धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता बिहरता है।

‘और मिश्रणों! मिश्रण साथ बोधि अन्न धर्मों (=पदार्थों) में धर्म (=स्वभाव) अनुभव करता बिहरता है। कैसे मिश्रण! ? मिश्रण! मिश्रण विद्यमान भीतरी (=अप्याय) स्युति संबोधि अन्नको ‘मरे भीतर स्युति संबोधि अन्न है अनुभव करता है। अ विद्यमान भीतरी स्युति संबोधि-अन्नको ‘मरे भीतर स्युति संबोधि-अन्न नहीं है अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्न-उत्पन्न स्युति संबोधि-अन्नकी उत्पत्ति होती है उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न स्युति संबोधि अन्नकी भावना परिपूर्ण होती है उसे भी जानता है। भीतरी धर्म-विषय (=परम-अन्वेषण) संबोधि अन्न । वीर्य । प्रीति । प्रभक्षि । समाधि । विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि अन्नको ‘मरे भीतर उपेक्षा संबोधि-अन्न है अनुभव करता है। अ-विद्यमान भीतरी उपेक्षा संबोधि-अन्नको ‘मरे भीतर उपेक्षा संबोधि अन्न नहीं है अनुभव करता है। जिस प्रकार अन्न-उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अन्नकी उत्पत्ति होती है उसे जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न उपेक्षा संबोधि-अन्नकी भावना परिपूर्ण होती है उसे जानता है। इस प्रकार शरीरके भीतरके धर्मोंमें धर्म अनुभव करता बिहरता है; शरीरके बाहर शरीरके भीतर बाहर ।। इस प्रकार मिश्रणों! मिश्रण शरीरके भीतर और बाहर वाले साथ संबोधि-अन्न धर्मोंमें धर्म अनुभव करता बिहरता है।

“और फिर मिश्रणों! मिश्रण चार ‘आर्य-सत्य धर्मोंमें धर्म अनुभव करते बिहरता है।

१ संबोधि वस वह है-प्रतिबन्ध (=प्रतिबन्धिता) भाव (=अभिमान) दधि (=आर्यापुराण) विधिक्रिया (=संशय) दण्ड-मत्-परामर्श (=दीक जार अतका बकाक) भव-राग (=आशा गमन-य म) ईया मात्मर्ष और अ विद्या। संबोधि-अन्न-उत्पन्न । २ साथ बोध्यन्-स्युति धर्म विषय (= परम अन्वेषण) वीर्य [= उद्योग] प्रीति (=हर्ष) प्रभक्षि (=प्राप्ति) समाधि उपेक्षा । संबोधि=बोधि (=परम ज्ञान) प्राप्त करने में वह परम साहायक है द्मक्षिणे इन्द्र बोधि-अन्न कहा जाता है । ३ आर्य-सत्य चार है-दुःख मगुद्व, निरोध निरोध-गामिनी-मतिपद् (निरोध मार्ग)



कैसे ? मिथुनो ! 'बह दुःख है' ठीक-ठीक (= बध्नामृत=जैसा है वैसा) अनुभव करता है। 'बह दुःखका समुद्रव (=कारण) है' ठीक ठीक अनुभव करता है। 'बह दुःखका विरोध (=विवास) है' ठीक ठीक अनुभव करता है। 'बह दुःखके विरोधकी ओर छ' ज्ञान वाक्य मार्ग (= दुःख-विरोध-प्राप्ति-प्रतिपद) है' ठीक ठीक अनुभव करता है।

"मिथुनो ! दुःख अपर्य-सत्य क्या है ? जन्म भी दुःख है जरा (=सुखापा) भी दुःख है व्याधिभी दुःख है मरणा भी दुःख है। शोक करना रोना-पीटना दुःख = शीर्षकत्व उपावास (=परीक्षा) भी दुःख है। जिम (वस्तु) को इच्छा करके नहीं पाता वह (न पाया) भी दुःख है। संक्षेपमें पाँच उपादाक-रूप (=रूप वेदना संज्ञा सत्कार, विज्ञान) (समी) दुःख है। जन्म (=जाति) क्या है ? मिथुनो जो उन उन सत्ता (=चित्त-वाराजों) का उद उद प्राप्ति-समुदायों (=भोगियों) में जन्म=संज्ञाचक्र=अवस्थाति=अभि-निवृत्ति=रूपों (=रूप आदि पाँच) का प्रादुर्भाव=भावतयों (=जन्म आदि छ) का काम है। बह मिथुनो ! जन्म है।

मिथुनो ! जरा (=सुखापा) क्या है ? जो उद उद सत्त्वोंका उद उद प्राप्ति-समुदायों में जरा = जीर्णता = शीत-दूधवा (=आश्रित) = बाध-यत्ना = जमकोंमें धूर्ति पचना = आधुनी समाप्ति = इच्छितों का पक पाना बह मिथुनो ! जरा कही जाती है।

"क्या है मिथुनो ! मरण ? जो उद सत्त्वोंका उद प्राप्ति-निष्पन्न (=भोगि) से प्लुत होना = अवन होना = भेष = अन्तर्धान = द्युत्यु = मरण = कण्ठकरता = स्त्रंकों (=रूप आदि) की सुवाई = कठोर (= शरीर) का केंकवा (= निक्षेप)। बह है मिथुनो ! मरण।

'क्या है मिथुनो ! शोक ? 'मिथुनो ! जो वह तिम तिम व्यवसायों से मुक्त तिम-तिव दुःख-धर्मोंसे किस (पुरुष) का शोक करना = शोचना = शोषित होना = भीतरी शोक = भीतरी बरिशोक। बह है मिथुनो ! शोक।

"क्या है मिथुनो ! परिदेव ? मिथुनो ! जो वह तिम-तिव व्यवसायसे मुक्त, तिम तिम दुःख धर्मों से किस (पुरुष) का आवेध (=रोना-पीटना)=परिदेव=आवेध=परिदेव=अवेधित होना = परिदेवित होना। बह है मिथुनो ! परिदेव।

"क्या है मिथुनो ! दुःख ? मिथुनो ! जो वह (=कार-सामग्र्यी) दुःख = कायिक अ-सात = कारके संयोगसे उत्पन्न दुःख = प्रतिदूक वेदना (= अ-सात वेदित)। बही है मिथुनो ! दुःख।

'क्या है मिथुनो ! शीर्षकत्व ? जो वह मिथुनो ! मानसिक (=चेतनिक) दुःख = मानसिक प्रतिदूकता (अ-सात) = मरक संयोगसे उत्पन्न दुःख = प्रतिदूक वेदना। बही है मिथुनो ! शीर्षकत्व।

"क्या है मिथुनो ! उपावास ? मिथुनो ! जो वह तिम-तिव व्यवसायोंसे मुक्त, तिम तिम दुःख-धर्मोंसे किस (पुरुष) का अवास = उपावास = अवासित होना = उपावासित होना (= बरेखाव होना)। बही है मिथुनो ! उपावास।

"क्या है मिथुनो ! जिसका इच्छा करके भी नहीं पाता वह भी दुःख है ? 'जन्म धर्मवाक्ये सत्त्वों (=प्राप्ति) की बह इच्छा होती है—'हा ! हम जन्म-धर्म-वाक्य व होते

जाने हमारा (दूसरा) धम्म न होता । किंतु वह इच्छामे पाव काचक नहीं है । यह 'त्रिमको इच्छ करके भी नहीं पाता—यह भी बुद्ध है ।

मिमुभो ! जरा धर्म-बाके स्वाधि धर्म-नामे मरण-धर्म-बाके शोक-परिवेव-बुद्ध धर्म-नस-उपापास धम-बाके सत्तो ( = प्राप्ति ) को यह इच्छा होती है—'अदा ! कि हम शोक-परिवेव-बुद्ध-धर्म-नस उपापास-धम-बाके न होते धीर शोक परिवेव बुद्ध धर्म-नस उपापास हमारे पास न आते ।—किंतु यह ( केवल ) इच्छामे मिक्तनेको नहीं है । यह 'त्रिमको इच्छ करके भी नहीं पाता—यह भी बुद्ध है' ।

"कौतसे मिमुभो ! 'संक्षेपमें पाँच उपादान-स्कंध बुद्ध हैं ? जने—रूप उपादान स्कंध बढ़ना उपादान-स्कंध संज्ञा उपादान-स्कंध संस्कार उपादान-स्कंध विज्ञान उपादान-स्कंध । मिमुभो ! संक्षेपमें वह पाँच उपादान-स्कंध बुद्ध कहे जाते हैं । इमे ही मिमुभो ! बुद्ध आर्ष सत्य कहते हैं ।

"क्या है मिमुभो ! बुद्धसमुत्पन्न आर्ष सत्य ! जो वह आवागमन नामी ( = आवागमिक ) नृणा मन्दि-राग ( = मुख सम्बन्धी इच्छा )-समुत्पन्न, तहाँ तहाँ अभिचलन करववाकी-जसे कि—काम उपभोगकी नृणा मव ( = आवागमन ) की नृणा विभवकी नृणा उत्पन्न होती है—वहाँ वहाँ पुनकर फैलती है । आ कोकमें त्रिपरूप=सात-रूप है, उत्पन्न होनेवाकी होनेपर वह नृणा वहाँ उत्पन्न होती है । सुसनेवाकी होनेपर वहाँ पुनती है । कोकमें त्रिपरूप=सात-रूप क्या है ? चक्षु ( = आँख ) कोकमें त्रिपरूप = सात रूप है । नृणा उत्पन्न होनेवाकी होनेपर वहाँ उत्पन्न होती सुसनेवाकी होनेपर यह पुनती है । आर क्या कोकमें त्रिपरूप=सात-रूप है ? श्रोत्र । प्राण । विज्ञा । काया ( = स्पर्श-द्रव्य ) । मन । रूप । सत्त्व । गन्ध । रस । स्पर्श ( = स्पर्श आदि ) । धर्म ( = मन का विषय ) । चक्षुका विज्ञान ( = चक्षु धीर रूपके मिक्तन जो रूप सम्बन्धी ज्ञान होता है वह । श्रोत्रका विज्ञान । प्राणका विज्ञान । विज्ञाका विज्ञान । कायाका विज्ञान । मनका विज्ञान । चक्षुका संस्पर्श ( = रूप आर चक्षुका उकराना ज्ञान ) । श्रोत्र-संस्पर्श । प्राण संस्पर्श । विज्ञा-संस्पर्श । काय-संस्पर्श । मन-संस्पर्श । चक्षु-संस्पर्शम पैदा हुई बढ़ना ( = रूप आर चक्षुके एक-साथ मिक्तनेके बाद चित्तमें जो बुद्ध मुख आदि विकार उत्पन्न होता है ) । श्रोत्र-संस्पर्शस उत्पन्न बेवना । प्राण-संस्पर्शसे उत्पन्न बेवना । विज्ञा-संस्पर्शस उत्पन्न बेवना । काय संस्पर्शस उत्पन्न बेवना । मन-संस्पर्शसे उत्पन्न बेवना । रूप-संज्ञा ( = चक्षु आर रूपके एक साथ मिक्तनेपर चक्षुके बढ़नाके बावही 'वह चक्षुके रूप है' ज्ञानको रूप-संज्ञा कहते हैं ) । सत्त्व-संज्ञा । गन्ध-संज्ञा । रस-संज्ञा । स्पर्श-संज्ञा । धर्म-संज्ञा । रूप-संज्ञेयान् रूप-ज्ञानके बाद रूप-विद्यन कराना जो होता है ) । सत्त्व-संज्ञेयान् । गन्ध-संज्ञेयान् । रस-संज्ञेयान् । धर्म-संज्ञेयान् । रूप-नृणा ( रूपके चित्तनके बाद उभके त्रिपरूप ) । सत्त्व-नृणा । गन्ध-नृणा । रस-नृणा । स्पर्श-नृणा । धर्म-नृणा । रूप-वितर्क ( = रूप नृणाके बाद उभके त्रिपरूपमें आ तर्क-वितर्क ज्ञाना है ) ।

सम्प-वितर्क । अगण-वितर्क । रस-वितर्क स्पष्टव्य-वितर्क । धर्म-वितर्क ।  
 कृपा विचार । सम्प-विचार । शंभ-विचार । रस-विचार । अस्पष्टव्य विचार ।  
 धर्म-विचार । लोकमें यह ( सब ) प्रिय-रूप=सात-रूप है । तुम्हा उत्पन्न होनेवाली  
 होवेपर यही उत्पन्न होती है मुसने-बाकी होनेपर यही मुसती है । मिश्रुओ ! यह दुःख  
 समुद्रव आर्ष-सत्य कहा जाता है ।

“क्या है मिश्रुओ ! दुःख-निरोध आर्ष-सत्य ? उसी तुम्हासे सर्वथा बैरान्त ( उसी  
 तुम्हाका सर्वथा ) निरोध = त्वाग प्रतिनिस्मग=मुक्ति = अन्-आकष ( =न घर पकड़ना ) ।  
 मिश्रुओ ! यह तुम्हा कहाँ छोड़ी जानेसे छूटती है—झर्राँ निरोध की जानेसे निरुद्ध होती है ?  
 लोकमें जो प्रिय-रूप=सात-रूप है यही छोड़ी जानेपर यह तुम्हा छूटती है—वहीं निरोधकी  
 जानेसे निरुद्ध होती है । क्या है फिर लोकमें प्रिय रूप=सात रूप ? बहुत लोकमें प्रिय-रूप=  
 सात-रूप है । । धर्म-विचार लोकमें प्रिय-रूप=सात-रूप, यहाँ यह तुम्हा छोड़ी जानेपर  
 छूटती है = वहीं निरोधकी जानेपर निरुद्ध होती है । मिश्रुओ ! यह दुःख-निरोध आर्ष-सत्य  
 कहा जाता है ।

‘क्या है मिश्रुओ ! दुःख-निरोध-नामिनी प्रतिपद् ( =दुःख-विनाशकी ओर जानेवाला  
 मार्ग ) ? वही ( जो ) आर्ष ( = अर्थ ) अर्थांगिक-मार्ग ( आठ अंगोंवाला मार्ग ) । सम्पक  
 ( =टीक ) -रुधि सम्पक संकल्प सम्पक-बचन सम्पक कर्मान्त सम्पक आजीव सम्पक  
 प्रायाम सम्पक-स्युति सम्पक-समाधि ।

“क्या है मिश्रुओ ! सम्पक-रुधि ? जो यह दुःख-विपन्नक ज्ञान दुःख-समुद्रव-विपन्नक  
 ज्ञान दुःख-निरोध-विपन्नक ज्ञान दुःख-निरोधकी-ओर-जानेवाली प्रतिपद् विपन्नक ज्ञान । वही  
 कही जाती है मिश्रुओ ! सम्पक-रुधि ।

क्या है मिश्रुओ ! सम्पक-संकल्प ? निष्कर्मता संबन्धी संकल्प अ-म्यापाद् ( =अज्ञान )  
 संबन्धी संकल्प अ-विहिता ( =अ-हिता ) -संकल्प मिश्रुओ ! यह कहा जाता है सम्पक  
 ( =टीक अण्डा ) -संकल्प ।

“क्या है मिश्रुओ ! सम्पक-बचन ? मृपावाद् ( =अज्ञ बोधना ) से विरत होना ( =अज्ञान )  
 विद्युत(बुगड़ीके)-बचन छोड़ना पठप ( =करी )-बचन छोड़ना सम्पकप ( = बकवाद् )  
 छोड़ना । यह है मिश्रुओ ! सम्पक-बचन है ।

“क्या है मिश्रुओ ! सम्पक-कर्मान्त ? प्राकृतिपात ( =प्राय-हिता ) से विरत होना  
 बिना दिवा-कनेसे विरत होना काम ( = उपभोग ) के मिष्ठाचार ( बुराचार ) से विरत होना ।  
 मिश्रुओ ! यह सम्पक कर्मान्त कहल्यता है ।

“क्या है मिश्रुओ ! सम्पक-आजीव ? मिश्रुओ ! आर्ष भावक मिष्ठा-आजीव  
 ( = रोगवार ) छोड़ सम्पक-आजीव से जीवन वापन करता है । वही है सम्पक आजीव ।

क्या है मिश्रुओ ! सम्पक-म्यापाम ? मिश्रुओ ! मिश्रु अन्-उत्पन्न पापक = न कुसक  
 पमोकी न उत्पत्तिके किय निधय ( = छप् ) करता है परिधम करता है उद्योग करता है  
 विरको बकवता है रोकता है । उत्पन्न वाप = न कुसक पमोके प्रधान ( =छोड़ना विमाध )  
 के द्विरे निधय करता है । अन् उत्पन्न बुजाने ( =अच्छ ) पमोकी उत्पत्तिके द्विरे निधय ।

उत्पन्न कुलक धर्मोकी स्थिति=ज-विस्मरण, बन्ती=विपुलता भावना परिपूर्णताके लिये निश्चय करता है । वही है मिश्रुओ ! सम्पक् ष्यायाम ।

“क्या है मिश्रुओ ! सम्पक्-स्युति ? मिश्रुओ ! मिश्रु, काव (= शरीर) में काव (धर्म अग्रुधि बरा भादि) को अनुभव करता हुआ उद्योगशील अनुभव शाव-युक्त हो काकमें अमिध्या (= कोम ) भार शमनस्य (चित्त-संताप) को छोड़कर विहरता है । वदनाओंमें । चित्तमें । बर्मोंमें । मिश्रुओ ! वही सम्पक् स्युति कही जाती है ।

“क्या है मिश्रुओ ! सम्पक् समाधि ? मिश्रुओ ! मिश्रु, कामसे भक्ता हो आर न-कुशल धर्मों (=पुरे विचार भादि) से भस्मा हो सचित्तके स विचार विवेकस उत्पन्न प्रीति सुख-वाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । चित्तके आर विचारस घात होने पर भीतरी शांति चित्तकी एकाग्रता, न-चित्तके न-विचार समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुख-वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । प्रीतिस भी विरक्त, और उपेक्षक हो स्युति मान् संप्रक्रम्य (=अनुभव)-वान् हो कथासे सुलको भी अनुभव करता हुआ; जिसको कि कार्य लोग उपेक्षक स्युतिमान सुख-विहारी कहते हैं; (बर्म) तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । सुख आर दुःखके प्रहाण (=परिहाण)स; सौमनस्य (=चित्तस्थाम) और ईर्ष्यास्य (=चित्त-सन्ताप)के पहिळ ही जस्त होजायेमे न-दुःख न-सुख उपेक्षा स्युतिकी परिशुद्धता (=रूपी) अनुर्य ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । यह है कही जाती मिश्रुओ ! सम्पक्-समाधि ।

“यह कही जाती है मिश्रुओ ! बुद्ध-विरोध-नामिगी-प्रदिपद् कार्य सत्य ।

‘इस प्रकार भीतरी धर्मोंमें बमानु-पक्षी हो विहरता है । न-कर्म हो विहरता है । काक में किसी ( बन्तु ) को भी (मैं और मरा) करके बही ग्रहण करता । इस प्रकार मिश्रुओ ! मिश्रु आर कार्य-सत्य धर्मोंमें बर्मानुपक्षी हो विहरता है ।

‘जो कोई मिश्रुओ ! इन आर स्युति-प्रश्नाओं की इस प्रकार सात वर्ष भावना करे उसको हा कर्मोंमें एक कक (अवज्ञ) होना चाहिये-इसी कर्ममें आशा (अईत्व) का साक्षात्कार या ‘उपाधि शप हानैपर जनागामि माय । रहने दो मिश्रुओ ! साठ वर्ष को कोई इन आर स्युति प्रश्नाओंका इस प्रकार छ बप भावना करे । पाँच वर्ष । आर वर्ष । नतीन वर्ष । एक वर्ष । साठ मास । छः मास । पाँच मास । आर मास । तीन मास । दो मास । एक मास । जइ मास । सप्ताह ।

“मिश्रुओ ! ‘बह जो आर स्युति प्रत्यान ई’; बह मर्त्तोंके सोक-कहकी विमुद्धिके लिये बुद्ध शर्मस्यके अतिक्रमणके क्षिपु, श्राव (= सत्य) की प्राप्तिके लिये विर्वाण की प्राप्ति और साक्षात् करयेके लिये एकावन मार्ग ई । यह जो (मिने) कहा इती आरपसे कहा ।

भगवान्से यह कहा उन मिश्रुओंमें सन्नुष्ट हा भगवान्के बचनको अमिनम्बित किया ।

X X X X

( ६ )

## महानिदान-सुख ( ई पू ५१७ )

‘ऐसा मीने सुखा—एक समय भगवान् कुछ देखाँ कुछको निगम कइयासुद्धममें विहार करते थे ।

तब भ्रातृधाम् आनन्दु वहाँ भगवान् थे वहाँ गय । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे भ्रातृधाम् आनन्दुने भगवान्को कहा—

“आनन्दु है मन्ते ! अद्भुत है मन्ते ! क्लिप्ता गम्भीर है आर गम्भीरसा हीरता है यह प्रतीत्य-समुत्पाद् । परन्तु मुझे यह याक साक (= उत्तम ) भाव पवता है ।”

“ऐसा मठ कहो आनन्दु ! ऐसा मठ कहो आनन्दु ! आनन्दु ! यह प्रतीत्य-समुत्पाद् गम्भीर है और गम्भीरसा हीरता ( मी ) है । आनन्दु हम धर्म के न ज्ञानसे = न प्रतियेव करनेय ही यह मजा (= कवता ) उकसे सूतसी गाँठें पड़ी रस्मीसी मूँज-बस्त्रजसी जपजाप = भुग्ति = वि निपातको प्राप्त हो संसारसे नहीं पार हो सकती ।

“आनन्दु ! ‘क्या बरा-मरण स-कारण है ?’ पूछनेपर, है’ कहना चाहिये । ‘किस कारणसे बरा-मरण होता है’ यह पूछे तो ‘कर्मके कारण बरा-मरण होता है’ कहना चाहिये । ‘क्या जन्म (= जाति ) स-कारण है’ पूछनेपर, ‘है’ कहना चाहिये । ‘किस कारणसे जन्म होता है’ पूछनेपर ‘भवके कारण जन्म’ कहना चाहिये । ‘क्या भव स-कारण है’ पूछनेपर, ‘है’ । ‘किस कारणसे भव होता है’ पूछे तो ‘उपादानके कारण भव’ । ‘क्या उपादान स-कारण है’ पूछनेपर है । ‘किस कारणसे उपादान होता है’ पूछे तो ‘तृष्णाके कारण उपादान’ । वेदनाके कारण तृष्णा । स्पर्शके कारण वेदना । नाम-रूपके कारण स्पर्श । विज्ञानके कारण नाम रूप । नाम रूपके कारण विज्ञान ।

“इस प्रकार आनन्दु ! नाम-रूपके कारण विज्ञान है विज्ञानके कारण नाम-रूप है । नाम-रूपके कारण स्पर्श है । स्पर्शके कारण वेदना है । वेदनाके कारण तृष्णा है । तृष्णाके कारण उपादान है । उपादानके कारण भव है । भवके कारण जाति (= जन्म ) है । जातिके कारण बरा मरण है । बरा मरणके कारण सौक परिद्वेष (= रोषा पीडना ) भुक्त्वा वार्मनस्य (= मज-मन्ताप ) उपायाम ( परचाबी ) होते हैं । इस प्रकार इस केवक (= सम्पूर्ण )-हु-काण्डके (= कपीकोक ) का समुत्पन्न (= उत्पत्ति ) होता है ।

“जातिके कारण बरा-मरण’ यह जो कहा हमने आनन्दु ! इस प्रकार ज्ञानका चाहिये । यदि आनन्दु ! जाति न होती तो सर्वथा निष्कणुक ही सब किसीकी कुछ मी जाति न होती ; जैसे—दर्शक ईश्वर गम्भीरका गम्भीरत्व वहाँका वक्षत्व भूतोंका मृतत्व मनुष्योंका मनुष्यत्व अनुपपत्तों (= बीपार्थ ) का अनुपपत्त्व पक्षियोंका पक्षित्व सरीसृपों (= रेंवैषाकाँ) का सरीसृपत्व इन उन प्राणियों (= सत्त्वों) का यह होता । यदि

जाति न हो सर्वथा जातिक्रमभाव हो जातिक्रम निरोध (=विनाश) हो; तो क्या आनन्द ! जरा-भरण जान पड़ेगा ?”

“नहीं भन्ते !

“इसकिण् आनन्द ! जरा-भरणका यही हेतु है—यही विद्या है = यही समुच्च है = यही प्रत्यय है जो कि यह जाति ।

‘सबके कारण जाति होती है यह जो कहा सो आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये । यदि आनन्द ! सर्वथा सब किसीका कोई भव (=स्वप्न) न होता ; जैसे कि—काम-मभ रूप-मभ ध-रूप-मभ । ता सबके सर्वथा न होवेपर सबके सर्वथा समाप्त होने पर सबके निरोध होवेपर क्या आनन्द ! जाति जान पड़ती ?’

“नहीं भन्ते !”

“इसीलिये आनन्द ! जातिक्रम यही हेतु है जो कि यह भव ।

“उपादानके कारण भव होता है यह जो कहा सो आनन्द ! इस प्रकार जानना चाहिये । यदि आनन्द ! सर्वथा किसीका कोई उपादान न होता ; जैसे कि—काम-उपादान इति-उपादान इति-उपादान वा आत्मवाद-उपादान । उपादानके सर्वथा न होनेपर क्या आनन्द ! भव होता ?

“नहीं भन्ते !

इसीलिये आनन्द ! भवका यही हेतु है जो कि यह उपादान ।

“तृण्यके कारण उपादान होता है । यदि आनन्द ! सर्वथा तृण्य न होती; जैसे कि—रूप-तृण्य शब्द-तृण्य शंख-तृण्य रस-तृण्य स्पृह्य (=स्पर्श)-तृण्य कर्म (=भजनका विषय)-तृण्य । तृण्यके सर्वथा न होनेपर क्या आनन्द ! उपादान जान पड़ता ?”

“नहीं भन्ते !

“इसीलिये आनन्द ! उपादानका यही हेतु है जो कि यह तृण्य ।

“वेदनाके कारण तृण्य है । यदि आनन्द ! सर्वथा वेदना न होती; जैसे कि—बहु-संस्पर्श (बहु और रूपके योग) से उत्पन्न वेदना ओन्न-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना प्राय संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना विद्वा-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना काच-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना मन-संस्पर्शसे उत्पन्न वेदना । वेदनाके सर्वथा न होवेपर क्या आनन्द ! तृण्य जान पड़ती ?”

“नहीं भन्ते !

“इसीलिये आनन्द ! तृण्यका यही हेतु है जो कि—यह वेदना ।

“इस प्रकार आनन्द ! वेदना के कारण तृण्य तृण्यके कारण पर्येकता (=सोझना) पर्येकताके कारण काम कामके कारण विभिन्नय (=बहु विचार) विभिन्नयके कारण कम्प-राग (=आपसकी इच्छा) कम्प-रागके कारण अप्यवसाय (=अवज्ञा); अप्यवसायके कारण परिग्रह (=अज्ञा करना) परिग्रहके कारण मात्सर्य (=कड़वी) मात्सर्यके कारण आरक्षा (=हिंसाजल) आरक्षाके कारण ही दुःख-ग्रहण सक-ग्रहण ककह विग्रह विचार, ‘दुःखं मी मी (अनुर्ध सुर्ध) सुगली शूठ बोकना जनेक पाप=ज-कृतक-कर्म होते हैं ।

“आरक्षाके कारण ही दुःख-ग्रहण जनेक पाप होते हैं यह जो आनन्द ! कहा;

उसे इस प्रकारसे भी जानना चाहिये । यदि सर्वथा आरक्षा न होती, तो सर्वथा आरक्षाके न होनेपर, क्या आत्मन् ! इन्द्र-ग्रहण अनेक पाप होते ?

“नहीं मन्ते !”

“इसीकिये आत्मन् ! यह जो आरक्षा है यही इस रूप-ग्रहण पाप-अनुपपन्न करनेके उत्पत्तिकारण हेतु-निदान-समुच्चय-प्रत्यय है ।

“मात्सर्य ( = ईर्ष्या ) के कारण आरक्षा है यह जो कहा सो इसे आत्मन् ! इस प्रकार जानना चाहिये । यदि आत्मन् ! सर्वथा किसीको कुछ भी मात्सर्य न होता; तो सब तरह मात्सर्यके अभावमें-मात्सर्य ( = ईर्ष्या ) के विराधसे क्या आरक्षा देखनेमें आती ?”

“नहीं मन्ते !”

“इसीकिये आत्मन् ! आरक्षाका हेतु जो कि यह ईर्ष्या ।

“परिग्रह ( = अनाकरता बढोरना ) के कारण ईर्ष्या है । यदि आत्मन् ! सर्वथा किसीको कुछ भी परिग्रह न होता, क्या ईर्ष्या दिखाई पड़ती ? । ।

“अन्यथासाधक कारण परिग्रह है । यदि आत्मन् ! सर्वथा किसीको कुछ भी अन्याय न होता, क्या परिग्रह ( = बढोरना ) देखनेमें आता ? । ।

‘छन्द-रागके कारण अन्यायसाध होता है । क्या अन्यायसाध देखनेमें आता ? ।

“विभिन्नपके कारण छन्द राग होता है ।

‘अन्यके कारण विभिन्न है’ । यदि आत्मन् ! सर्वथा किसीको कहीं कुछ भी अन्याय न होता, क्या विभिन्न दिखाई देता ? । ।

‘पर्येक्यके कारण काम होता’ । क्या काम दिखाई देता ? । ।

‘तृष्णाके कारण पर्येक्य होती है’ । क्या पर्येक्य दिखाई देती ? । ।

“स्पर्शके कारण तृष्ण होती है । क्या तृष्ण दिखाई देती ? । ।

“नाम-रूपके कारण स्पर्श होता है । यह जो कहा इसको आत्मन् ! इस प्रकारसे जानना चाहिये जैसे ‘नाम रूपके कारण स्पर्श होता है । जिन आकारों-जिन किणों-जिन विमित्तों-जिन उद्-स्वोंसे नाम-काय ( = नाम-अनुपपन्न ) का ज्ञान होता; उन आकारों उन किणों उन विमित्तों उन उद्-स्वोंके न होने पर, क्या रूप-काय ( = रूप-समुदाय ) का अवि-बन्धन ( = नाम ) देखा जाता ?”

“नहीं मन्ते !”

आत्मन् ! जिन आकारों जिन किणों सं रूपकायका ज्ञान होता है; उन आकारों के न होनेपर, क्या नाम-अवयवों प्रतिब-संस्पर्श ( = अतिहिंसाका योग ) दिखाई पड़ता ?”

“नहीं मन्ते !”

“आत्मन् ! जिन आकारों से नाम-काय आर रूपकायका ज्ञान होता है; उन आकारों के न होनेपर, क्या अविबन्धन-संस्पर्श वा प्रतिब-संस्पर्श दिखाई पड़ता ?”

“नहीं मन्ते !”

“आत्मन् ! जिन आकारों जिन किणों जिन विमित्तों जिन उद्-स्वोंसे नाम-रूपकाय

ज्ञान (= प्रज्ञापन) होता है; उन आकारों उन किणों उन विमिर्तों उन उद्देश्योंके जगाममें क्या स्पर्श (=योग) दिखाई पड़ता ?

‘नहीं भन्ते !

‘इसीकिये आनन्द ! स्पर्शका नहीं हेतु = नहीं निदान = नहीं समुत्पन्न = नहीं प्रापय है जो कि नाम-रूप ।

‘विज्ञानके कारण नाम-रूप होता है । यदि आनन्द ! विज्ञान (= चित्त-आरा, बीज) माताके कोखमें नहीं आता तो क्या नाम रूप संचित होता ?’

‘नहीं भन्ते !

‘आनन्द ! ( यदि केवल ) विज्ञानही माताकी कोखमें प्रवेशकर निकल जाये; तो क्या नाम-रूप इसके किये बनेगा ( होगा ) ?’

‘नहीं भन्त !

‘कुमार वा कुमारीके अति-सिद्ध रहतेही यदि विज्ञान छिन्न हो जाये; तो क्या नाम-रूप यदि = विकृति = विपुण्याको प्राप्त होगा ?

‘नहीं भन्ते !’

‘इमीकिये आनन्द ! नाम रूपका नहीं हेतु है जो कि विज्ञान ।’

‘नाम-रूपके कारण विज्ञान जाता है । । आनन्द ! यदि विज्ञान नाम-रूपमें प्रतिष्ठित न होता तो क्या संविष्यमें (=आने अन्तर) जाति जरा मरण, दुःख समुत्पन्न दिखाई पड़ते ?

‘नहीं भन्ते !’

‘इसीकिये आनन्द ! विज्ञानका नहीं हेतु है जो कि यह नाम-रूप । आनन्द ! यह जो विज्ञान महित नाम-रूप है इतनेहीसे जन्मता, बड़ा होता मरता = एषुत्त इत्या उत्पन्न होता है; इतनेहीसे अविषयचल (= नाम संज्ञा)-अवधार इतनेहीसे निश्चिन्त (=माध्य) अवधार इतनेहीसे प्रज्ञा विषय है इतनेही से ‘इस प्रकार का जन्मजानेके किये सर्वं वर्तमान है ।

आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाला चित्तसे प्रज्ञापन (=अज्ञाना) करता है ? रूपवान् सुद रूप भारीको आत्मा प्रज्ञापन करते हुए ‘मेरा आत्मा रूप-वारी और सुद (= अणु) है’ प्रज्ञापन करता है । रूप-वान् और अनन्त प्रज्ञापन करते हुए ‘मेरा आत्मा रूपवान् आर अनन्त है प्रज्ञापन करता है । रूप-रहित अणु (=परिच) आत्मा करते हुए ‘मेरा आत्मा अ-रूप अणु है कहता है । रूप रहित अनन्तको आत्मा मानते हुए ‘मेरा आत्मा अ रूप अनन्त है कहता है ।

‘वहो जो आनन्द ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुए रूप-वान् अणु (= परिच) को आत्मा कहता है ‘वह वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करता रूप-वान् अणु कहता है । वा

१ उच्छेदकारी आत्माको विनासी मानते हुए वर्तमानमें ही उमड़ी मत्ता स्वीकार करता है ।



'भाषी आत्माको रूप-बान् जन्तु कहता है । वा उसको होता है कि 'बसा न होते हुए ( = अ-तथ ) को उस प्रकारका कहूँ । ऐसा होत हुए आत्मन् ! 'आत्मा रूप-बान् जन्तु है' इस दृष्टि ( = पारणा ) को पकड़ता है, यही कहना योग्य है ।

'बह जो आत्मन् ! आत्माको प्रज्ञापन करते हुए 'रूप-बान् जन्तु आत्मा कहता है । वह वर्तमानके आत्माको प्रज्ञापन करते हुए रूप बान् जन्तु कहता है; वा भाषी आत्माको रूप-बान् जन्तु कहता है । वा उसको ( मतमें ) होता है 'बसा न होते हुएको बसा कहूँ । ऐसा हाते हुए वह आत्मन् ! 'आत्मा रूप-बान् जन्तु है' इस दृष्टि ( = पारणा ) को पकड़ता है, यही कहना योग्य है ।

'बह जो आत्मन् ! 'आत्मा रूप-रहित जन्तु है' कहता है । वह वर्तमानके आत्माको कहता है; वा भाषीको ; वा बसको होता है कि — बसा न होते हुएको बसा कहूँ । ।

'बह जो आत्मन् ! 'आत्मा रूप-रहित जन्तु है' कहता है । । ।

'आत्मन् ! आत्माको प्रज्ञापन करनेवाका इन्हीं ( जैसे एक प्रकारसे ) प्रज्ञापित करता है ।

'आत्मन् ! आत्माको न 'प्रज्ञापन करनेवाका कैसे प्रज्ञापित नहीं करता !— आत्मन् ! 'आत्माको रूप बान् जन्तु न प्रज्ञापन करनेवाका ( = तथागत ) 'मेरा आत्मा रूप-बान् जन्तु है' नहीं कहता । आत्माको 'रूप-बान् जन्तु' न प्रज्ञापन करनेवाका 'मेरा आत्मा रूप-बान् जन्तु है' नहीं कहता । 'आत्माको रूप-रहित जन्तु' न प्रज्ञापन करनेवाका 'मेरा आत्मा रूप-रहित जन्तु है' नहीं कहता । आत्माको 'रूप-रहित जन्तु' न प्रज्ञापन करनेवाका 'मेरा आत्मा रूप-रहित जन्तु है' नहीं कहता ।

'आत्मन् ! जो वह आत्माको 'रूप-बान् जन्तु' न प्रज्ञापन करनेवाका प्रज्ञापन नहीं करता । वह वातो जात्रक ( = वर्तमान ) के आत्माको रूप बान् जन्तु प्रज्ञापन नहीं करता । वा भाषी आत्माको प्रज्ञापन नहीं करता । 'बसा नहींको बसा कहूँ' यह भी उसकी नहीं होता । ऐसा होमेस ( वह ) आत्मन् ! भू मा रूप-बान् जन्तु है इस दृष्टिको नहीं पकड़ता—यही कहना योग्य है । आत्मन् ! जो वह आत्माको 'रूप-बान् जन्तु' न प्रज्ञापन करनेवाका प्रज्ञापन नहीं करता । वह वातो वर्तमान आत्माको रूप-बान् जन्तु प्रज्ञापन नहीं करता । । जेसा होमेस ( वह ) आत्मन् ! 'आत्मा रूप-बान् जन्तु है' इस दृष्टिका नहीं पकड़ता, यही कहना चाहिए ।

'आत्मन् ! जो वह आत्माको 'रूप-रहित जन्तु' न प्रज्ञापन करनेवाका प्रज्ञापन नहीं करता । वह वातो वर्तमान आत्माको रूप-रहित जन्तु न माननेवाका होमेस प्रज्ञापन नहीं करता है । भाषी । ऐसा होमेस आत्मन् ! वह 'आत्मा रूप-रहित जन्तु है' इस दृष्टिको नहीं पकड़ता यही कहना चाहिए ।

१ प्राक्तनवादी आत्माका तात्रक ( = बिल ) मानते हुए, भक्ति में भी उसकी मता स्वीकार करता है । २ उच्छेदवादी और प्राक्तनवादी दोनों ही का । ३ तथागत ।

‘आत्मन् ! जो वह आत्माको रूप-रहित अस्त न बतकानेवाला, ( कुछ ) नहीं करता। वह वर्तमान आत्माका रूप-रहित अस्त बतकानेवाला हो, नहीं करता है। मायी । ‘मेरा नहींको मेरा कहूँ यह भी उसको नहीं होता। ऐसा होनेसे आत्मन् ! यही कहना चाहिये कि वह ‘आत्मा रूप-रहित अस्त है इस दृष्टिको नहीं पकड़ता ।

‘इत करवासे आत्मन् ! अथाध्य-आत्री ( आत्माकी प्रज्ञति ) नहीं करता ।

‘आत्मन् ! किम कारणसे आत्मदर्शी ( आत्माको ) देखता हुआ देखता है ? आत्मदर्शी देखते हुए वेदनाको ही ‘वेदना मेरा आत्मा है समझता है। अथवा ‘वेदना मेरा आत्मा नहीं अ-प्रतिसंवेदन ( = न अनुभव ) मेरा आत्मा है’ ऐसा समझता है अथवा— ‘व वेदना मेरा आत्मा है, न अ-प्रतिसंवेदन मेरा आत्मा है मेरा आत्मा वेदित होता है ( जतः ) वेदना धम-वाका मेरा आत्मा है। आत्मन् ! आत्मदर्शी देखते हुए देखता है ।

‘आत्मन् ! वह जो यह कहता है—‘वेदना मेरा आत्मा है उस पृथगा चाहिये— ‘आहुस ! सीध बंदनाई है सुखा-वेदना दुःखा-वेदना अदुःख-असुखा-वेदना इन तीनों वेदनाओंमें किसको आत्मा मानते हो ?’ जिस समय आत्मन् ! सुखा-वेदनाको वेदन ( = अनुभव ) करता है उस समय न दुःखा-वेदनाको अनुभव करता है न अदुःख अ-सुखा वेदनाको अनुभव करता है। सुखा वेदनाहीको उस समय अनुभव करता है। जिस समय दुःखा-वेदनाको । जिस समय अदुःख-असुखा-वेदनाको ।

‘सुखा वेदना मी आत्मन् ! अमित्त्व = संसृत ( = कृत ) = अतीत्य-समुत्पन्न ( = कारणसे उत्पन्न ) = सप धर्मवाकी अथवा धर्मवाकी विराग-धर्मवाकी विरोध धर्मवाकी है। सुखा-वेदना मी आत्मन् ! ; अदु-ख-असुख वेदना मी । उसको सुखा-वेदना अनुभव करते समय वह मेरा आत्मा है’ होता है। उसी सुखा-वेदनाके विरोध होनेसे ‘विगत होगया मेरा आत्मा’ ऐसा होता है। दुःखा-वेदना अनुभव करते । अदुःख असुख-वेदना अनुभव करते ‘वह मेरा आत्मा है’ होता है। उसी अदुःख-असुख-वेदनाके विरुद्ध ( = विगत विगत ) ( विधीन ) होनेपर ‘मेरा आत्मा विगत होगया’ होनेपर ‘मेरा आत्मा विगत होगया’ होता है। इस प्रकार आत्मन् ! इसी अर्थमें आत्माका अ-विद्य सुख दुःख ( वा ) व्यवकीर्ण उत्पत्ति धर्मवाका अन्वय ( = विनाश ) धर्मवाका देखता है; जो ऐसा कहता है कि ‘वेदना मेरा आत्मा है । इसकिये भी आत्मन् ! उसका ( ऐसा कहना ) कि ‘वेदना मेरा आत्मा है ठीक नहीं ।

आत्मन् ! जो वह ऐसा कहता है—‘वेदना मेरा आत्मा नहीं अ-प्रति-संवेदना मेरा आत्मा है उसे वह पृथगा चाहिये— आहुस ! जहाँ सब कुछ अनुभव ( = वेदित ) है वहाँ धर्म मी हूँ वह होता है ?”

“ नहीं भन्त !

इसीकिये आत्मन् ! इससे मी यह समझता ठीक नहीं—‘वेदना आत्मा नहीं है अ-प्रतिसंवेदना मेरा आत्मा है ।

“ आत्मन् ! जो वह यह कहता है— न वेदना मेरा आत्मा है अथवा न अ-प्रति संवेदना मेरा आत्मा है मेरा आत्मा वेदित होता है ( = अनुभव किया जाता है ) ; वेदना धर्मवाका मेरा आत्मा है । उसे वह पृथगा चाहिये— आहुस ! यदि वेदनाके सारी सर्ववा

विष्णुक मित्र हो जायें, तो वेदनाके सबधा न होनेसे बर्बाद निरोध होनेसे क्या बर्बाद में है वह होगा ?

“ नहीं मन्ते !

“ इसकिं चानन्द ! इससे भी यह समझता ठीक नहीं कि— न वेदना भरा वात्सा है और न अ-प्रतिबन्धना वेदना धर्मवाच्य भरा आत्मा है ।

“ किं चानन्द ! मिथु न वेदनाको आत्मा समझता है न अ-प्रतिबन्धनाको और नहीं 'आत्मा मेरा वेदित होता है वेदना धर्मवाच्य मेरा आत्मा है' समझता है । इस प्रकार न समझे हुये कोकमे क्रिस्तीको ( मैं आर मेरा करके ) नहीं ग्रहण करता । न ग्रहण करनेवाक्य होनेसे प्राप्त नहीं पाता । प्राप्त न पायेस स्वर्ग परि-निर्वाणको प्राप्त होता है । (तब)-जन्म कतम होगावा ब्रह्मचर्य-वाय हो युक्त कर्तव्य कर युक्त और कुष्ठ यहाँ ( करणीय ) बर्ही' आकता है । ऐसे विमुक्त-चित्त मिथुको जो कोई घेमा बड़े— मरनेके बाद तथ्यागत होता है—यह इसकी दृष्टि है सो अयुक्त है । 'मरनेके बाद तथ्यागत बर्ही होता है—यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है । 'मरनेके बाद तथ्यागत होता भी है बर्ही भी होता है—यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है । मरनेके बाद तथ्यागत न होता है न नहीं होता है यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है । मरनेके बाद तथ्यागत न होता है न नहीं होता है यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है । मरनेके बाद तथ्यागत न होता है न नहीं होता है यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है । मरनेके बाद तथ्यागत न होता है न नहीं होता है यह इसकी दृष्टि है—सो अयुक्त है ।

आनन्द ! विज्ञान ( = जीव ) की सात स्थितियाँ हैं और दो ही आवतव । कौन सी सात ? आनन्द ! (१) कोई कोई सत्त्व ( = जीव ) वागा कायावाक्ये और वागा संज्ञावाक्ये है जैसे कि मनुष्य कोई कोई वेधता ( = काम वातुके छः ) और कोई १ विनिपातिक ( = जीव गीतवाक्ये पिशाच ) वह प्रथम विज्ञान-स्थिति है । (२) आनन्द ! कोई कोई सत्त्व वाक्य कायावाक्ये किं नु एक प्रज्ञा ( = परम ) वाक्ये होत है, जैसे कि प्रथम ज्ञानके माघ उत्पन्न ब्रह्म-कायिक ( = ब्रह्मा कोश ) वेधता । यह दूसरी विज्ञान-स्थिति है । (३) आनन्द ! एक कायाकिं नु वागा संज्ञावाक्ये वेधता है जैसे कि आमास्वर वेधता । यह तीसरी विज्ञान-स्थिति है । (४) एक कायावाक्ये एक प्रज्ञावाक्ये वेधता जैसे कि छुमकीर्ण ( = सुम-किण्ड ) वेधता । यह चौथी विज्ञान-स्थिति है । (५) आनन्द ! ( कोई २ ) सत्त्व है ( जो कि ) रूप प्रज्ञाके अतिक्रमण प्रतिबन्धनाके अन्त ही जानैस वागापन संज्ञाके मयमें न करकेस अन्त आकाश' इष आकाश आवतव ( = विवास-स्वाव ) का प्राप्त है । यह पाँचवीं विज्ञान-स्थिति है । (६) आनन्द ! ( कोई कोई ) सत्त्व आकाश-आवतवको सर्वत्र अतिक्रमण कर 'विज्ञान अन्त है' इस विज्ञान आवतवको प्राप्त है । यह छठीं विज्ञान-स्थिति है । (७) आनन्द ! ( कोई कोई ) सत्त्व विज्ञान-आवतवको सबधा अतिक्रमणकर 'वहीं कुष्ठ है इस अकिंप्य-आवतव ( = निवृत्त-स्वाव ) को प्राप्त है । यह सातवीं विज्ञान-स्थिति है । ( दो आवतव है ) अर्थात्-

सत्य-आपतन (अज्ञान-रहित सत्योक्त आवास), और दूसरा नव-संज्ञा-आसंज्ञा-आपतन (अज्ञान-संज्ञा-न-असंज्ञा-आवास आपतन) ।

आनन्द ! जो वह प्रथम विज्ञान-स्थिति 'जाना क्या जाना सहा' है उसे कि । जो उस (प्रथम विज्ञान-स्थिति) को जानता है उसकी उत्पत्ति (अनुभव) को जानता है उसका अन्तगमन (अविद्या) को जानता है उसके आन्वयको जानता है उसके परिणाम (अविद्या) को जानता है उसके निस्सरण (असंज्ञा-सोपना) को जानता है क्या उस (आनन्दको) उस (विज्ञान-स्थिति) का जन्मजन्म करना सुख है ?

'नहीं मन्ते !'

दूसरी विज्ञान स्थिति— सातवाँ विज्ञान-स्थिति । असंज्ञा-सत्यापतन , निवसंज्ञा-न-संज्ञा-आपतन ।

आनन्द ! जो इन सात सत्य-स्थितियों और दो आपतनोंके समुच्चय अन्त-गमन आन्वय परिणाम निस्सरणको जानकर (उपादानोंका) न ग्रहणकर विमुक्त होता है; वह मिथु प्रज्ञा विमुक्त (अज्ञानकर मुक्त) कहा जाता है ।

“आनन्द ! यह आठ विमोक्ष हैं । जानस आठ ? (१) (स्वर्ग) रूप-आत् (दूसरे) रूपोंको देखता है । वह प्रथम विमोक्ष है । (२) भीतरमें (अध्यात्म) रूप-रहित सहा बाका, बाहर रूपोंको देखता है वह दूसरा विमोक्ष है । (३) 'सुप्त है' इससे अपिमुक्त (अविमुक्त) होता है वह तीसरा विमोक्ष है । (४) सर्वथा रूप सहाके अतिक्रमण प्रतिषेध (अप्रतिहिंसा) सहाके अन्त-गमन जाना-लक्ष्मी सहाके मनमें न करके 'आकाश अन्त है इस आकाशके आपतनको प्राप्त हो बिहरता है वह चौथा विमोक्ष है । (५) सर्वथा आकाशके आपतनको अतिक्रमणकर विज्ञान अन्त है इस विज्ञान आपतनको प्राप्त हो बिहरता है यह पाँचवाँ विमोक्ष है । (६) सर्वथा विज्ञान आपतनका अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं है इस आकल्प-आपतनको प्राप्त हो बिहरता है यह छठा विमोक्ष है । (७) सर्वथा आकल्प-आपतनको अतिक्रमणकर नव-संज्ञा-न-असंज्ञा आपतनको प्राप्त हो बिहरता है । यह सातवाँ विमोक्ष है । (८) सर्वथा नव-संज्ञा-न-असंज्ञा-आपतनको अतिक्रमणकर संज्ञाकी वेदना (अनुभव) के विरोधको प्राप्त हो बिहरता है । यह आठवाँ विमोक्ष है । आनन्द ! यह आठ विमोक्ष हैं ।

'अब आनन्द ! मिथु इन आठ विमोक्षोंको अनुक्रम (१ २ ३ क्रमसे) प्राप्त (असमाधि-प्राप्त) होता है प्रतिक्रमसे (८ ७ ६) भी (समाधि) प्राप्त होता है । अनुक्रम भी और प्रतिक्रम भी (१ ८ ७) प्राप्त होता है जहाँ चाहता है अब चाहता है जितना चाहता है उतनी (समाधि) प्राप्त होता है; (समाधिसे) उड़ता भी है । (आग द प आदि चित्त मर्क) के क्षयसे इसी क्रममें आन्वय-रहित (अन्वय-आपतन) चित्तकी विमुक्ति, प्रज्ञा-विमुक्तिको स्वर्ग जानकर अज्ञानात्कर प्राप्त हो बिहरता है । आनन्द ! यह मिथु उभयोभागा-विमुक्त (अज्ञान रूपसे विमुक्त) कहा जाता है । आनन्द ! इस उभयोभागा-विमुक्तिको बंधन-उत्तम दूसरी उभयोभागा-विमुक्ति नहीं है ।”

भगवान्ने मया कदा । सन्पुत्र हो आमुष्मान् जानन्दने भगवान्क भावना  
अभिर्नन्दन किया ।

×

×

×

×

पति-पत्नी-गुण । वैरंशक-ब्राह्मण-सुत । ( ई पू ५१७ ) ।

‘यम ईमे सुता—एक समय भगवान् मथुरा आर धरञ्जाके बीचमें रास्तेमें जा रह  
ये । उस समय बहुतमे गृहपति और गृह-पतिविधों में मथुरा और धरञ्जाके बीच रास्तेमें  
जा रही थीं । भगवान् मार्गमें हटकर एक वृक्षके नीचे बैठे । उन वे भगवान्को एक वृक्ष  
नीचे बैठे देखा । देखकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक  
ओर बैठे । एक ओर बैठे उन गृह-पतियों और गृह-पतिविधोंको भगवान्ने यह कहा—

“गृह-पतियो ! आर प्रकारके-संवास (=सहवास एक साथ वास) होते हैं । कान्ते  
आर ? (१) सब (=सुखी) सबके साथ संवास करता है; (२) सब देवीके साथ संवास  
करता है; (३) देव सबके साथ संवास करता है; (४) देव देवीके साथ संवास करता है ।  
कैसे गृहपतियो ! सब सबके साथ संवास करता है ? वहाँ गृहपतियो ! स्वामी (=पति)।  
हिंसक और दुराचारी शत्रु नसा-बाह्य दुष्टीक पाप घना कर्मनाशक गद्गाम शिष्ट शिष्ट  
धर्मज (=साधु) ब्राह्मणोंको दुर्बचन करने बाका हो गृहमें वास करता है (और) इसकी  
माया भी—हिंसक होती है । (उस समय) गृहपतियो ! सब सबके साथ संवास करता है ।  
कैसे गृह-पतियो ! सब देवीके साथ संवास करता है ? गृहपतियो स्वामी हिंसक होता है ।  
आर उसकी माया अ-हिंसरत औरी-रहित सहाचरिणी सखी नसा-बिरत सुसंग  
कल्याण-धर्म-शुद्ध, मन्-भास्वर्-रहित धर्मज-ब्राह्मणोंको दुर्बचन व करनेबाधी हो गृहमें वास  
करती है । (उस समय) गृह-पतियो ! सब देवीके साथ संवास करता है । कैसे गृहपतियो !  
देव सबके साथ वास करता है ? गृहपतियो ! स्वामी होता है अहिंसरत उसकी माया  
हिंसक होती है । (उस समय) गृहपतियो ! देव सबके साथ संवास करता है । कैसे गृह  
पतियो ! देव देवीके साथ संवास करता है ? स्वामी अहिंसरत आर उसकी माया भी  
अहिंसरत होती है । उस (उस समय) देव देवीके साथ संवास करता है । गृह-पतियो !  
यह आर संवास है ।

×

×

×

×

वैरंशक-सुत ।

‘येसा ईमे सुत—एक समय भगवान् वैरंशामें मलेय-सुखिमन्ध ( वृक्ष )के नीचे  
विहार करते थे ।

तब वैरंशक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान्के साथ --संनन्दन  
कर कुमाक प्रश्न पूछ एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए वैरंशक ब्राह्मणोंने भगवान्ने

कहा—“हे गातम ! मैंने सुना है कि अमर गातम जीर्ण-मृत्यु-महत्त्वक-ऋषि-गत-वचन-प्राप्त-माहर्षिके-आने-पर-न-अभिवादन-करता-है-न-प्रत्युत्पान-करता-है-न-आसनके-स्थित-कहता-है।-हे-गातम ! क्या-यह-ठीक-है ?”  
 “माहर्ष ! देव-भार-ब्रह्मा-सहित-सारे-लोकमें-अमर-माहर्ष-देव-मनुष्य-सहित-सारी-प्रजा (= जगत्ता) में-भी-मैं-किसीको-पूजा-यही-देखता-जिसको-कि-मैं-अभिवादन-करूँ-प्रत्युत्पान-करूँ, आसनके-स्थित-कहूँ।  
 माहर्ष ! तयागत-जिस (= मनुष्य) को-अभिवादन-करे, प्रत्युत्पान-करे-या-आसन-के-स्थित-कहे-उसका-गिर-भी-गिर-सकता-ह।

“गातम ! आप-अ-रम-रूप-हैं।

“माहर्ष ! ऐसा-कारण-है-जिम-कारणसे-मुझे-ठीक-कहते-हुये-अमर-गातम-अ-रम-रूप-हैं-कहा-जा-सकता-है।-माहर्ष ! जो-बह-रूप-रस (= रूपका-स्वाद) शब्द-रस-गंध-रस-रस-रस-स्पर्श-रस-हैं, तयागतके-बह-समी-प्रहीण-उप-भूक्तसे-कहे-गिर-कहे-ठाइसे, वह-आगे-न-उत्पन्न-होनेवाले-हो-गये-हैं।-माहर्ष ! यह-कारण-है-जिससे-मुझे-अमर-गातम-अ-रस-रूप-है-कहा-जा-सकता-है, ( किन्तु ) उसमें-वहीं-जिस-क्याकसे-कि-तू-कहता-है।

“आप-गातम ! विमोह-हैं।

“माहर्ष ! ऐसा-कारण-ह-जिसमें-ठीक-ठीक-कहते-मुझे-अमर-गातम-विमोह-है-कहा-जा-सकता-है।-जो-बह-माहर्ष ! शब्द-भोग ; तयागतके-बह-बह-आगेको-न-उत्पन्न-होनेवाले-हो-गये-हैं।-माहर्ष ! यह-कारण-है-जिससे-मुझे-अमर-गातम-गिर-भोग-है-कहा-जा-सकता-है।-उसमें-वहीं-जिस-क्याकसे-कि-तू-कहता-है।”

“आप-गातम ! अ-क्रिया-वादी-हैं

“माहर्ष ! ऐसा-कारण-है-जिसमें-।-माहर्ष ! मैं-काबाळ-दुराचार (= प्रल-हिंसा-चोरी-स्वभिचार) बचनके-दुराचार (= छठ-पुगडी-कठुबचन-प्रकाय) मनके-दुर्भरित (= कोम-मोह-मिच्छा-दृष्टि) को-अ-क्रिया-कहता-हूँ।-अनेक-प्रकारके-पाप-अ-भ-भुक्त-कर्मोंको-मैं-अ-क्रिया-कहता-हूँ।-यह-कारण-ह-माहर्ष !”

“आप-गातम ! उच्छेद-वादी-हैं।

“माहर्ष ! ऐसा-कारण-है-।-माहर्ष ! मैं-‘राग-होय-मोह-का-उच्छेद’ (करना-चाहिये) कहता-हू-अनेक-प्रकारके-पाप-अ-भ-भुक्त-कर्मोंको-उच्छेद-कहता-हूँ।-।”

“आप-गातम ! तृष्णु (= चला-करनेवाले) हैं।”

“ माहर्ष ! मैं-काथिक-काथिक-माथसिक-दुराचारोंमें-तृष्ण-करता-हूँ; अनेक-प्रकारके-पाप-।-।

“आप-गातम ! वैतथिक (= उद्योगवाले-साधनेवाले) हैं।”

माहर्ष ! मैं-राग-होय-माहक-विचरन (= दृष्टन) क-स्थित-धम-उपदेश-करना-हूँ; अनेक-प्रकारके-पाप-।-।

“आप-गातम ! तपस्वी-हैं।”

“ माहर्ष ! मैं-पाप-अ-भ-भुक्त-कर्मों (को) काय-अचन-अनके-दुराचारोंको-तयागतका-कहता-हूँ।-माहर्ष ! जिनके-पाप-तयागतके-घर्म-वहीं-हो-गये-अ-भ-भूक्तसे-

कल गये सिर ज्ये लाइस हो गये, अमावको प्राप्त हो गये मविष्यमें न उत्पन्न होने लायक हो गये, उसको मैं तपस्वी कहता हूँ। ब्राह्मण ! तप्यागत के पाप तपानेवाके धर्म नहीं हो गये मविष्यमें न उत्पन्न होनेलायक हो गये। ब्राह्मण ! यह कारण है किमसे ।।

“आप गौतम ! अप-गर्भ है ।

“ ब्राह्मण ! जिसका मविष्यका गर्भसत्त्व=आवागमन गन्त हो गया जब मूलसे ब्रह्मा गया ; उसको मैं अपगर्भ कहता हूँ । ब्राह्मण ! तप्यागतका मविष्यका गर्भ-सत्त्व आवागमन गन्त हो गया जब मूलसे क्लृप्त गया ।।

ब्राह्मण ! जैसे सुर्गीके आठ या दस या बारह मन्थे हों (भीर) सुर्गी-द्वारा भण्डी तरह सेवित हों = परिभ्रमवित हों । उन सुर्गीक बंधोंमें जो प्रथम पैरक बर्षास वा चौथसे अठेको फोड़कर सकुशल बाहर चले जाये उसको क्या कहना चाहिये ज्येष्ठ या कथिष्ठ ?

“ हे गौतम ! उसे ज्येष्ठ कहना चाहिये । वही उनमें ज्येष्ठ होता है ।

“ इसी प्रकार ब्राह्मण ! जविष्यामें पत्नी (अविष्याकपी) अठेसे अकपी इस प्रथम (अवमता) में मैं अठेलाही अविष्या (कपी) अठेक लोकको फोड़कर अनुत्तर (असर्वज ह) सम्यक-संबोधि (= बुद्धत्व) को ज्ञाननेवाका हूँ । मैं ही ब्राह्मण लोकमें ज्येष्ठ प्रथम हूँ । मैंनेही ब्राह्मण ! न देवदेवाका धर्म आरम्भ किया; विरारम-रहित स्मृति मेरे सम्मुख थी अ-सक भीर ज्ञात (मरा) शरीर वा पुत्राप्त समाहित चित्त वा । सो ब्राह्मण ! मैं स-वितर्क स-विचार विवेकसे उत्पन्न मीति-सुख बाक प्रथम प्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । वितर्क भीर विचार ज्ञात ही भीतरी छाति चित्तकी पुत्राप्तता अ-वितर्क अ-विचार समाधिसे उत्पन्न मीति सुख-बासे द्वितीय प्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । मीतिसे भी विरक्त, भीर उपेक्षक हो विहरता हुआ स्मृति-मान् अनुभव (= समज्जन्व) बाह् हो कायासे सुखको भी अनुभव करता हुआ; जिनको कि कार्य ज्ञात—उपेक्षक स्मृतिमान् सुख-विहारी—कहते हैं (ईसा हो) तृतीय प्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । सुख भीर बुद्धके प्रहण (=परित्याग) से; समज्जन्व (=विचोत्थान) आर धारमस्य (चित्त-सम्प्राप) के पहिलेही जन्म हो जायस अ-दुःख, अ-सुख उपेक्षा स्मृतिकी परिशुद्धता (रूपी) अनुर्भ प्यानको प्राप्त हो विहरने लगा । सो इस प्रकार चित्तक समाहित परिशुद्ध पर्वबदात अनुभव-रहित = उपेक्षक (=मल)-रहित सुदु मूल-अधम अयक स्थिर = अचरुता-भ्यास=समाहित हो जायपर, पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके ज्ञान (= पूर्वनिवासानुस्मृति ज्ञान) के सिधे चित्तको मैं बुद्धया । फिर मैं अनेक पूर्व-निवासोंको स्मरण करन लगा—ज्येष्ठ पुत्र जन्म भी वा जन्म भी आकार-रहित उद्-इय-सहित अवेक

पूर्व-निवासोंका स्मरण करने लगा । ब्राह्मण ! इस प्रकार प्रमाद-रहित तत्पर ध्यान संवम-सुख विहरते हुए यह रातके पहिले काममें सुप्त पहिली विद्या प्राप्त हुई, अविद्या गई, विद्या आई तम गह बुद्ध अलोक उत्पन्न हुआ । ब्राह्मण ! अठेस सुर्गीक बंध की तरह यह पहली छूट हुई ।

“सो इस प्रकार चित्तक परिशुद्ध=पर्वबदात होनेपर प्राणिको जन्म-मरणक सिध मैंने चित्तको सुकया । सो अ मानुष दिव्य विशुद्ध चक्षु (=मंत्र) न अर्प्ये तुरे, सुधर्म-सुधर्म, सुगत

(=अच्छी गतिमें गये -गुणत भरते-उत्पन्न होते प्राणिपौंडो देखन लगा । सो कर्मानुसार गतिको प्राप्त प्राणिपौंडो जानने लगा । ब्राह्मण ! रातके बिचस पहरमें यह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई, अविद्या गई । ब्राह्मण ! अण्डेसे मुर्गीके बच्चेकी भाँति यह वृत्तरी फूट हुई !

“सो इस प्रकार चित्तके भावनोंके क्षयके ज्ञानके छिय मैंने पित्तको मुक्तया—  
‘यह दुःख है इसे वधार्थ जान किया ‘यह दुःख-समुदाय है इस वधार्थ जान किया । ‘यह दुःख-निराध-गामिनी प्रतिपद् है इसे वधार्थ जान किया । ‘यह आलस है’ इसे वधार्थ जान किया । ‘यह आलस-निरोध है’ इस वधार्थ जान किया । ‘यह आलस-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् है हम वधार्थ जान किया । सो इस प्रकार जानते इस प्रकार देखते हुए चित्तकामालकों से छूट (मुक्त हो) गया । भवात्मकोंसे भी विमुक्त हो गया । भ-विद्यात्मकोंसे भी विमुक्त हो गया । छूट (अविमुक्त) जानेपर ‘छूट गया ऐसा ज्ञान हुआ । ‘तन्म समाप्त हो गया’ मह्यचर्य पूरा हो गया ; करमा या सो कर किया ; अब यहाँके किये कुछ (शय) नहीं होने जाया । ब्राह्मण ! रातके पिछले वाम (= पहर) में (यह) तृतीय विद्या प्राप्त हुई । अविद्या बची गई विद्या उत्पन्न हुई । तम गया आलोक उत्पन्न हुआ । ब्राह्मण ! अण्डेसे मुर्गीके बच्चेकी भाँति यह तीसरी फूट हुई ।

ऐसा कहनेपर बेरंजक ब्राह्मणने भगवान्को कहा —“जाय गीतम ! ज्यंष्ट ई ज्यप गीतम ! अ इ है । जाधर्म ! हे गातम ॥ जाधर्म ! हे गातम ॥ उपासक धारण करें ।”

+ + + +

( ५ )

बेरंजामें वर्षावास । ( ई पू ५१७ )

“मन्ते ! मिथु संघ-सहित भगवान् बेरंजामें वर्षावास स्वीकार करें । भगवान्ने मान्य उसे स्वीकार किया । भगवान्की स्वीकृतिको ज्ञान बेरंजक ब्राह्मण आनससे उठ भगवान्को लमिवाचनकर प्रकृतिना कर बध गया ।

उस समय बेरंजा बुद्धि-युक्त हो ईतिषो ( अक्षय्य और महामारी )में मुक्त श्वेत हृदिकोवासी सृष्टी कोलीवासी भी । (बहरी) मिष्टा करक गुजर करना सुकर न था । उस समय उत्तरायणके घोड़ोंके साश्वर पाँच-सा घोड़ोंके साथ बेरंजामें वर्षावास (करते थे) । घोड़ोंके डेरोंमें उन्होंने मिष्टाओंको प्रत्य भर चाबक बाँध रक्खा था ।

मिथु पूर्वाह्न समय (बीचर) पहनकर पाच-बीचर से बेरंजामें पिच-बारक किये प्रवेश कर पिच न पा घोड़ोंके डेरों (अप्रकर्म-उक्ति)में मिष्टाचार कर प्रत्य-प्रत्य चाबक (अनुमक) पा आराममें आकर, भोक्तमें फूट-फूट कर खात थे । आनुमान् भावन् प्रत्यभर पुक्तको सीकर पर पीसकर, भगवान्को देने भगवान् उसे मोहन करते थे ।

भगवान्ने ओषकक साह सुभा । जावते हुए भी तदागत पृष्णे ई । ( पृष्णेक ) क्यक जान पृष्णे ( ई ) ( न पृष्णम ) क्यक जान नहीं पृष्णे । अर्ध-मुक्तको पृष्णे ई अर्ध-मुक्तको नहीं । अर्ध-सहितमें तयागतोंका सेतु-बात (अवर्षा-वर्षण) है । सो कारणसे



बुद्ध भिक्षुओंको बुझते हैं (१) धर्म-वेधना करनेके किये या (२) धावकोंको सिखा-वध (अभिक्षुविषम) विधान करकेके किये । तब भगवान्‌मन् धावुप्मान् धानम्‌को कहा—

“आनन्द । क्या वह ओसकका सप्त है ?”

धावुप्मान् धानम्‌से वह (सप्त) बात भगवान्‌को कह थी ।

“साधु ! साधु ! आनन्द ! तुम मत्पुत्रपौत्रे ( भोजकके ) जीत किया । आनेवाकी कवठा ( ठो ) पुकाव ( साकि-मांस-ओदन ) चाहेगी ।

+ + + +

एकान्त-स्व ध्यात-अवस्थित धावुप्मान् सारिपुत्रके बित्तमें इस प्रकार बित्तर्क कलत्र हुआ—“किन् किन् बुद्ध भगवान्‌को मङ्गलार्थ (= सम्प्रदाय) चिर-स्वाधी नहीं हुआ ? किन् किन् बुद्ध भगवान्‌को मङ्गलार्थ चिर-स्वाधी हुआ ? तब संध्या समय धावुप्मान् सारिपुत्र ध्यात उठकर वहाँ भगवान्‌ से वहाँ गए ; आकर भगवान्‌को कनिष्ठादमकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे धावुप्मान् सारिपुत्रसे भगवान्‌की कहा—

मन्ते ! एकान्त-स्थित ध्यात-स्थित होनेके समय मरे बित्तमें इस प्रकार परी बित्तर्क उपपन्न हुआ—किन्-किन् बुद्ध भगवान्‌को सो मन्ते ! किन्-किन् बुद्ध भगवान्‌को ?”

‘सारिपुत्र म्मावाह विपस्वी भगवान्‌ (शुद्धी और भगवान्‌ विपस्वी (=वेस्मन्) का मङ्गलार्थ चिर-स्वाधी नहीं हुआ । सारिपुत्र ! भगवान्‌ कुकुत्सथ (=कुत्सथ), कानागमन और म्मावाह कावपका मङ्गलार्थ चिर-स्वाधी हुआ ।”

‘मन्ते ! क्या हेतु है मन्ते ! क्या प्रत्यय है (=कार्य-कारण) जिससे कि म्मावाह विपस्वी शिषी विपस्वीके मङ्गलार्थ चिर-स्वाधी न हुआ ?”

“सारिपुत्र ! भगवान्‌ विपस्वी सिखी वेस्मन् धावकोंको विस्तारसे धर्म उपदेश करनेमें आकम्ती (=किष्कम्ती) थे । उनके सुत (=सुत्र) गेय (=गोय वेस्वाकारण (=स्वाकारण-स्वास्मान) गाथा उदात्त इतिवृत्तक (=इतिवृत्तक) आतक अद्भुत धम्म (=अद्भुत धर्म) वेदक पोषे थे । उन्होंने शिक्षा-पद्दों (=भिक्षु-विषम बिलव) का विधान नहीं किया था । प्रादिमोक्षक उह इव वही किया था । उन बुद्ध भगवान्‌को अन्तर्धान होनेपर उनके बुद्ध-अनु बुद्ध धावकोंके अन्तर्धान होने बाद ; नामा-नाम नामा-नाम नामा-आति नामा-कुम्भ प्रमथित (जा) पिच्छके भावक (=सिप्य) थे उन्होंने उन मङ्गलार्थको सीप ही अन्तर्धान कर दिया ; जैसे सारिपुत्र ! सुत्तमें बिना विरोधे नामा पूरक तत्केपर रफ्टे हैं उनको इवा विपरती इ विषमक विध्वंसन करती है । सो किन् हेतु ? भूँ कि पृथसे विरोधे (=अपृथीत) नहीं हैं ; इसी प्रकार सारिपुत्र ! उन बुद्ध भगवान्‌के अन्तर्धान होने पर उन मङ्गलार्थको सीप ही अन्तर्धानकर दिया । ।”

“मन्ते ! क्या हेतु है क्या प्रत्यय है जिससे कि भगवान्‌ कुकुत्सथ कानागमन वेस्मन्‌के मङ्गलार्थ चिर-स्वाधी हुए ?”

सारिपुत्र ! भगवान्‌ कुकुत्सथ कानागमन वेस्मन्‌ धावकोंको विस्तार-पूर्वक

१. वर्तमान अक्षरपत्रक ० बुद्ध हैं उपरक छ धर्म मातर्क गातम बुद्ध ।

२. बुद्ध उपरस इन भी धम्मोंक ह । ३. भिक्षुओंक आचारिक विषम ।

धर्मविज्ञाना करनेमें मिर-आक्रम वे । उनके (उपदेश किये) सूत्र गेय व्याकरण शाखा उद्दान इतिहृतक, आतक मज्जु-त-धर्म वैदस्य बहुत ये । (उन्होंने) शिक्षा-यद् विधान किये वे प्रातिमोक्ष (=प्रातिमोक्षक) उद्दान किये ये । उन कुछ भगवानोंके अन्तर्गत होनेपर बुद्धबुद्ध-आवकोंके अन्तर्गत होनेपर, जो नाना-नाम नाना-गोत्र नाना जाति नाना कुलसे प्रकृत पीछेके शिष्य ये, उन्होंने उन महाश्वरोंके चिर तक दीर्घकाल तक स्थापित रखा । जैसे सारिपुत्र ! मृतमें संगृहीत (=रूँधे) तस्तेपर रखे नाना पूछ हों उनको हवा नहीं बिकेरती । ना किस मिये ? बूँकि मृतसे मुर्तगृहीत हैं । ।

तब ध्युप्मान् सारिपुत्रके आसनसे उठ उचारासंग (=चार) को एक कचेपर (बाहिने कंधेका जोके हुये रख) कर बिबर भगवान् ये उपर हाथ जोड़ भगवान्से कहा—  
“हसीका भगवान् ! काक है इन्कीका सुगत ! समथ है ; कि भगवान् आवकोंके किये शिक्षा-यद् विधान करि प्रातिमोक्षक उद्दान करै ; जिससे कि वह महाश्वर अश्वनीय-चिरस्थायी हो ।”

‘सारिपुत्र ! ठहरो सारिपुत्र ! ठहरा तबागत काक कार्यगी । सारिपुत्र ! शास्ता (=गुरु) तब तक आवकोंके किये शिक्षा-यद् विधान नहीं करते प्रातिमोक्ष उद्देश्य नहीं करते जब तक कि ‘संभमें कोई आश्रय (=चित्त-मक) काक धर्म (=उद्धार) प्राप्सुर्त नहीं हो जाते । सारिपुत्र ! जब यहाँ संभमें कोई कोई आश्रयके धर्म प्राप्सुर्त हो जाते हैं तब शास्ता आवकोंको शिक्षा-यद् विधान करते हैं प्राति-मोक्ष उद्देश्य करत हैं; उन्हीं आसन स्थायी धर्मोंके प्रतिपादके किये । सारिपुत्र ! संभमें तब तक कोई आसन स्थायी धर्म उद्भव नहीं होत जब तक कि सब रत्न-महत्त्व (=रत्नमुद्रा) का म प्राप्त हो । सारिपुत्र ! जब सब रत्न-महत्त्वको प्राप्त हो जाता है तब यहाँ संभमें कोई कोई आसन स्थायी धर्म उत्पन्न होते हैं और तबही शास्ता आवकोंके किये शिक्षा-यद् विधान करते हैं प्रातिमोक्ष उद्देश्य करत हैं । तब तक सारिपुत्र ! संभमें कोई आसनस्थायी धर्म नहीं उद्भव होते जब तक कि सारिपुत्र ! उनको बसुन्व-महत्त्व उत्तम (बसुन्वोंके) अमली बड़ाई (=अमलग-महत्त्व)को बाहु-सक । सारिपुत्र ! (इस समथ) सब धर्मुद्- (=मक) -रहित = आदिमक रहित अकिमि-रहित कुछ सारमें स्थित है । इन पाँचसौ मिसुओंमें जो सबसे पिछड़ा मिसु है वह श्रोतभाषित (कर्म)को प्राप्त पुर्गति-नी रहित स्थिर सबाधि-परायण (=परमज्ञान प्राप्तिमें विद्यक) है ।

वह कह भगवान्से ध्युप्मान् आनन्दको संबोधित किया—

‘आनन्द ! वह तबागतोंका आचार है कि जिनके द्वारा निर्मित हा वर्णाश्रम करते हैं उनके विना देलै (पूछे) नहीं जाते । कई आनन्द ! द्वैत ज्ञानको देलै ।”

“अच्छा मन्ते !” (कह) ध्युप्मान् आनन्दसे भगवान्को उत्तर दिया ।

भगवान् (बीबर) पहिल पात्र बीबर के आनन्दको अनुगामी बना जहाँ द्वैत ज्ञानका धर वा यहाँ गये । जाकर जिसे आसन पर बैठे । द्वैत ज्ञानका भगवान्के पास जाकर भगवान्को अमिबादनकर एक और यह गया । एक और धैरे द्वैत ज्ञानको भगवान्से कहा—

बुद्ध मिथुओंको बुझाई (१) धर्म-नेसना करनेके लिये या (२) भावकोंको सिद्धा-न्त (=मिथुनिवम) विधान करनेके लिये। तब भगवान्‌न जाबुप्मान्‌ जाबम्‌से कहा—

‘जाबम्‌ । क्या वह भोक्कका प्रश्न है ?’

जाबुप्मान्‌ धानम्‌ने वह (भव) बात भगवान्‌को कह रही।

‘साबु ! साबु ! जाबम्‌ ! तुम मत्तुप्‌पोंन (भोक्कको) जित लिया। आवेसणी वमत्ता (तो) पुक्काव ( सासि-मांम भोदन ) चाहगी ।’

+ + + +

एकान्त-रथ ध्यान-भरस्थित जाबुप्मान्‌ सारिपुत्रके चित्तमें इस प्रकार चित्तक उदय हुआ—‘किन्‌ किन्‌ बुद्ध भगवान्‌का प्रश्नार्थ (=सम्‌प्रश्न) चिर-रथावी नहीं हुआ ? किन्‌ किन्‌ बुद्ध भगवान्‌का प्रश्नार्थ चिर-रथावी हुआ ? तब म’धा समथ जाबुप्मान्‌ सारिपुत्र ध्यानसे उठकर जहाँ भगवान्‌ थे वहाँ गये ; जाकर भगवान्‌को धर्मिवात्तकर एक ओर बैस गये। एक ओर बडे जाबुप्मान्‌ सारिपुत्रन भगवान्‌ने कहा—

‘मन्ते ! एकान्त-स्मित ध्यानावस्थित होनेके समय मेरे चित्तमें इस प्रकार चित्तक उदय हुआ—किन्‌-किन्‌ बुद्ध भगवान्‌ सौ भन्ते ! किन्‌-किन्‌ बुद्ध भगवान्‌का ?’

‘सारिपुत्र भगवाण्‌ विपदपी भगवान्‌ (सिखी और भगवान्‌ विद्वत्तम्‌ (=वस्सम्‌) का प्रश्नार्थ चिर-रथावी नहीं हुआ। सारिपुत्र ! भगवान्‌ कुकुत्सध (=कुकुत्तम्‌) ; भगवान्‌ कोनागमन और भगवान्‌ काइयपका प्रश्नार्थ चिर-रथावी हुआ ।’

‘मन्ते ! क्या हेतु है मन्ते ! क्या प्रत्यक्ष है (=अर्थ-कारण) जिससे कि भगवान्‌ विपदपी सिखी विद्वत्तम्‌के प्रश्नार्थ चिर-रथावी न हुए ।’

‘सारिपुत्र ! भगवान्‌ विपदसी सिखी वेस्सम्‌ भावकोंको विस्तारसे धर्म उपदेश करनेमें अक्षमी (=किक्कासी) थे। उनके सुत्त (=सुत्त) गोप्प (=गोप वेष्वाकरण (=व्वाकरण=व्वाक्काव) गाथा उदान इतिवुत्तक (=इतिवुत्तक) जातक अट्ठुत्त-वग्ग (=अट्ठुत्त-वग्ग) वेस्सम्‌ बोधे थे। उन्होंने सिद्धा-यणी (=मिथु-निवम चित्तव) का विधान नहीं किया था प्रातिमोक्कक उद्‌ इस नहीं किया था। उन बुद्ध भगवान्‌के अन्तर्धान होनेपर, उनका बुद्ध-अनु बुद्ध भावकोंके अन्तर्धान होने बाद ; नावा-नाम नाम-गोत्र नावा-जाति नामा-कुलसे प्रकथित (बो) पिच्छे भावक (=सिक्क) थे उन्होंने उस प्रश्नार्थको सीत्र ही अन्तर्धान कर दिया। जैसे सारिपुत्र ! सुत्तमें जिना विरोधे नामा फूळ तकतेपर रखने हों उनके हवा किलेरती है विचमव विचमव करती है। सो किस हेतु ? कौंकि सुत्तसे विरोधे (=संग्रहीत) नहीं है ; इसी प्रकार सारिपुत्र ! जब बुद्ध भगवान्‌के अन्तर्धान होनेपर उस प्रश्नार्थको सीत्र ही अन्तर्धानकर दिया। ।

‘मन्ते ! क्या हेतु है क्या प्रत्यक्ष है जिससे कि भगवान्‌ ‘कुकुत्सध कोनागमन’ कस्सपके प्रश्नार्थ चिर-रथावी हुए ।’

‘सारिपुत्र ! भगवाण्‌ कुकुत्सध कोनागमन कस्सप भावकोंको विस्तार-रूपक

१ वर्तमान मन्त्रकर्मके • बुद्ध है ऊपरके ७ और सातवें पीठम बुद्ध ।

२ बुद्धके उपदेश इस भी प्रकारके हैं । ३ मिथुओंके आचारिक निवम ।

धर्मदेशना करनेमें बिर-आकस ने । उनके (उपदेश किये) पुत्र गोप स्वाकरण गाथा उद्दान इतिहृत्तक, आठक अज्ञुत-धर्म बंधन्य बधुत ने । ( उद्दान ) शिक्षा-पद विधान किये थे प्रातिमोक्ष ( =प्रातिमोक्षक ) उद्देश किये थे । उन पुत्र भगवानोंके अन्तर्धान होनेपर बुद्धानुबुद्ध-आवर्द्धक अन्तर्धान होनेपर, जो नामा-भाम नामा-भोत्र नामा याति नामा कुम्हसे प्रकथित पीछेके सिद्ध थे, उद्दानने उस अज्ञुत्तर्पको बिर एक दीर्घकाक तक स्थापित रखा । जैसे मारियुत्र ! सूत्रमें संगृहीत ( =सूत्र ) तकतेपर एकसे बाधा कृष्ट हों उनको हवा नहीं बिकरती । ना किस किये ? चूँकि सूत्रसे सुसंगृहीत है ।

तब आयुष्मान् सारियुत्रनै भासवसे उठ उच्छर्त्सण ( =उच्छर्त्स ) की एक रूपपर (बाहिये कंधेके पीछे हुये एक) कर बिपर भगवान् थे उपर हाथ जोड़ भगवान्ने कहा—  
‘इसीका भगवान् ! एक है इसीका सुगत ! समय है ; कि भगवान् आवर्द्धक किये शिक्षा-पद विधान करें प्रातिमोक्षका उद्देश कर । जिससे कि वह अज्ञुत्तर्प अन्वयीय= बिरस्थायी हो ।’

“सारियुत्र ! उद्दाने मारियुत्र ! उद्दाने तदागत काल आर्षिगे । सारियुत्र ! शास्ता ( =गुरु ) तब तक आवर्द्धके किये शिक्षापद विधान नहीं करते प्रातिमोक्ष उद्देश नहीं करते जब तक कि ‘संघमें कोई आशय ( =चित्त-अशय ) बाध धर्म ( =व्यर्थ ) प्राप्नुत नहीं हो जाते । सारियुत्र ! जब वहाँ समयमें कोई कोई आशयवाक धर्म प्राप्नुत हो जाते हैं तब शास्ता आवर्द्धके शिक्षा-पद विधान करते हैं प्राति-मोक्ष उद्देश करत हैं। उन्हीं आशय स्थायीय धर्मोंके प्रतिप्राप्तके लिये । सारियुत्र ! समयमें तब तक कोई आशय स्थायीय धर्म उन्पन्न नहीं होते जब तक कि सब रत्न-महत्त्व ( =रत्नमुत्तम ) को न प्राप्त हो । सारियुत्र ! जब सब रत्न-महत्त्वको प्राप्त हो जाता है तब वहाँ संघमें कोई कोई आशय स्थायीय धर्म उन्पन्न होते हैं, और तबही शास्ता आवर्द्धके किये शिक्षा पद विधान करते हैं प्रातिमोक्ष उद्देश करत हैं । तब तक मारियुत्र ! संघमें कोई आशयस्थायीय धर्म नहीं उन्पन्न होते जब तक कि मारियुत्र ! उन्का बंधुम्प-महत्त्व उत्तम ( बंधुओंके ) धर्मधी बर्बाई ( =कामग-महत्त्व )का बाहु-अशय । मारियुत्र ! (इम समय) संघ अन्तु ( =अशय )-रहित = आदिगव रहित अग्निमा-रहित शुद्ध पारमें स्थित है । इन शीघ्रसे मिथुनोंमें जो सबसे विषय मिथ है वह आनवापत्ति ( धर्म )की प्राप्त बुद्धि-ग रहित स्थिर संबोधि-पराधन ( =परमज्ञान प्राप्तिमें विषय ) है ।”

वह वह भगवान्ने आयुष्मान् अज्ञुत्तर्को प्रकथित किया—

“आवन्द् ! यह तपगतोक्ष आचार है कि जिनके द्वारा निर्मित हो बर्बा-धाम करते हैं उनको बिना देखे ( पूछे ) नहीं जाते । चर्च आवन्द् ! बैरज माहात्म्यो हेतु ।

“अच्छ भन्ते !” ( वह ) आयुष्मान् आनन्द्य भगवान्को उत्तर दिया ।

समयान् ( बीबर ) पहिल पात्र-बीबर के आनन्द्यके अनुयायी धमा जहाँ बैरज आनन्द्य कर वा वहाँ गये । आकर पिछे आसन पर बैठ । बैरज आनन्द्य भगवान्के पास आकर भगवान्का अविवाहकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ बैरज माहात्म्यो भगवान्ने कहा—

“ब्राह्मण ! तुझसे निर्मित हो हमने बर्पा-वास कर लिया । अब तुमको देखने आये है । हम अथपत्र-कारिका ( = वेदाङ्ग ) को जाना चाहते हैं ।”

‘हे गाँव ! सब-मुकशी मिले बर्पा-वासक किये निमग्नित किया था—भरा का देनेका परम था वह ( ईति ) नहीं दिया । सो न होनेके कारण नहीं और न देवेकी इच्छामें ( भी नहीं ) । सो ( सीका ) कैसे मिले ? गृहमें बपना ( = गृहस्वामन ) बहुत काम बहुत-कुलोंवाला ( होता है ) आप गीतम ककठे किये मिश्र-संबन्धित मेरा मोहन स्वीकार करें ।

भगवान् ने भीम रह स्वीकार किया । तब भगवान् बैरंज ब्राह्मणको धार्मिक कृपासे संवर्तन करा भासनेमें उठकर लक दिये ।

बैरंज ब्राह्मणने ठम रातके भीत जावेपर अपने परमें उचम काय-मोज्ज तम्पार करा भगवान्को ककठमी सूचना थी । तब भगवान् पूर्वाह्न समय ( चौबेर ) पहिन कर पात्र-चौबर के चहाँ बैरंज ब्राह्मणका घर था चहाँ गये । जाकर मिश्र सप-सहित बिले धामन पर बैठे । बैरंज ब्राह्मणन अपये दाबस पुत्र-मनुष्य मिश्र-संबको उचम काय-मोज्जसे संतर्पित कर पूर्ण किया जाकर पात्रसे हाव इय केनपर भगवान्को तीन ‘चीवरस आच्छादित किया । एक एक मिश्रको एक एक पुस्ते ( = पात्र ) जोड़ेसे आच्छादित किया । भगवान् बैरंज ब्राह्मणको परम उपदेश कर धामनमें उठ कर दिये ।

भगवान् घेरंजामें इच्छानुसार बिहरकर ‘सोरेप्य, ‘संकाष्य ( = संकरस काभ्य कुप्य ( = अण्यकुप्य कर्तव्य ) होते हुए चहाँ प्रयाग प्रतिष्ठान ( = पवारण-पतिष्ठान ) था चहाँ गये । जाकर प्रयाग-प्रतिष्ठानमें गङ्गा नदी पारकर जहाँ पारणसी थी चहाँ गये । तब भगवान् बारणसीमें इच्छानुसार बिहर कर, चहाँ वैशाखी थी चहाँ कारिकाके मिले एक दिये । अमसा कारिका करते चहाँ वैशाखी थी चहाँ पहुँच । वैशाखीमें भगवान् महाजन कृष्णारंशाकामें बिहार करते थे ।

सुन्दर्या-कारिका सुन्दर्या आचार है । बर्पा-वास समाप्तकर प्रवारणा करके कोक-संग्रहके किय वेद्य-रत करते हुए महा मण्डल मध्य मण्डल अन्तिम मण्डल इन तीन मण्डलमें सेसे एक मण्डलमें कारिका करते हैं । महामण्डल भी मी योजन है मध्य-मण्डल ९ पाञ्चन कार अन्तिम मण्डल तीकमी योजन है । अब महामण्डलमें कारिका करना चाहते हैं तो महाप्रवारणा ( = आधिनि पुर्णिमा ) को प्रवारणकर प्रतिपदके दिन महा-मिश्र-सघके माय निकककर ग्राम-विषम ( = कल्या ) जाहिमें अथ-पात्र जादि ( = आधिप ) ग्रहणकर कोरोंपर कृपा करते बर्म-दाव ( = बर्मोपदेश ) से उपके पुष्पकी बुद्धि करत मय मासमें वैशाख समाप्त करते हैं । यदि बर्पाकालमें मिश्रभौषी अमघ-विपस्याता ( = धामाधि-प्रज्ञा ) अपरिपठ ( = लक्ष्म ) होती है तो महाप्रवारणाकी प्रवारणा न कर कारिकाकी पूर्णमासीको प्रवारणकर मार्ग

१ (१) अन्तरावयक ( = सुद्धी ) (२) बन्तरासंग ( = इन्दरी चहर ) (३) बंवायी ( = इन्दरी चहर ) । २ सारों ( अन्त पद ) । ३ संक्रिया-बमन्तपुर ( जि कद व्यावाह ) । ४ अग्नी इन्द्रयात्रा । ५ दिनबहुकथा ( पाराजिना १ ) । ६ आधिप पुर्णिमाके उपोसत्तको प्रवारण करते हैं ।

श्रावणके पहिले दिन महा-मिथु-संघ-सहित निकलकर, उपरोक्त प्रकारसे ही मध्य-संघमें जाठ महीनेमें शारिका समाप्त करते हैं। यदि वर्षा समाप्त करनेपर भी बिजवाकीछी सर्पोंकी भावना नहीं होती तो उनकी भावनाके परिपक्व होनेके लिये मार्गशीर्ष मास भर भी वहीं वासकर पून (=पुनः) मासके पहिले दिन महा-मिथु-संघ-सहित निकलकर उक्त क्रमसे ही अन्तिम मण्डलमें सात महीनेमें शारिका समाप्त करते हैं।

+ + + + +

( ९ )

पनारममें । वैशाखीमें । ( ई पू ५१६ ) ।

१ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाराणसीमें श्रापिततन मृगयायमें बिहार करते थे।

वहाँ भगवान्ने पूवाह्न-समय ( शीबर ) पहिचकर पात्र शीबर क पाराणसीमें पिह चार क लिये प्रवेश किया। गोघोषगुह्यमें पिह-चार करते भगवान्ने किरी शून्य हृदय (- रिचास बहिर्मुख-चित्त (= बाहिरास) मूत्र-स्पृति संप्रजन्य-रहित अ-समाधान-चित्त = विप्रान्त-चित्त प्राकृत-शून्यिय (=साधारण काम-आगी जलो ब्रह्मा) मिथुको देखा। देखकर उन मिथुका कहा—

‘मिथु ! मिथु ! अपनेको तू जूटन मत बना। जूटन बन दुर्गन्धस कित्त हुये तुझपर कहीं मन्त्रिर्षो न आवे (गुह्ये) मन्त्रि न करवै। (नेर किये) यह उचित नहीं है।

भगवान्-द्वारा इस प्रकारके उपदेशसे उपदिष्ट हो वह मिथु संताप्य (= सवेग) को प्राप्त हुआ। भगवान्ने पाराणसीमें पिहचार कर, भोजनान्तर मिथुकोको संवापित किया—

‘मिथुको ! आज मैंने पूवाह्न समय मिथुको देखा। वृत्तकर मिथुको कहा—

‘मिथु ! मिथु ! अपनेको तू जूटन मत बना तब मिथुको ! वह मिथु मेरे इस उपदेशसे उपदिष्ट हो संवेगको प्राप्त हो गया।

ऐसा कहनेपर एक मिथुने भगवान्ने पूछा—

‘क्या है मन्त्रे ! जूटन (= कृषि) क्या है दुर्गन्ध (= अमगध) क्या है मन्त्रिर्षो ?

‘मिथु ! अमिथ्या (= लोम राग) जूटन है प्यापाय (= मोह) नामगंध है, धार पाप अ कुत्राक-वितर्क (= दुरे विचार) मन्त्रिर्षो है।

वैशाखीमें ।

‘उस समय वैशाखीके नाठिहूर कलम्ब-ग्राम नामक (गाँव) था। वहाँ सुदिष्ट कलम्बपुत्र नामक मठका लक्ष्मी रहता था। तब सुदिष्ट कलम्ब पुत्र बहुतसे मिथुके साथ किरी कामके लिये वैशाखी गया। उस समय भगवान् वहीं भारी परिपक्व साध बँड बर्न

१ अ. वि ३:३:६ । २ “बकहर्म उगा एक पाककथ वृत्त । अ. क. ३ चित्त (पाराजिक १) ।

उपदेश कर रहे थे। सुदिग्ध कलम्ब-पुत्रने भगवान्‌को उपदेश करते देखा। देखकर उसके चित्तमें हुआ—मैं भी क्यों न धर्म सुनूँ। तब सुदिग्ध कलम्ब-पुत्र वहाँ बह परिपक्व भी बहाँ गया। जाकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बटे हुए सुदिग्ध कलम्ब-पुत्रको यह हुआ—‘जैसे जैसे मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मका ज्ञान रहा हूँ (उससे जान पड़ता है कि) वह सर्वथा परिपक्व सर्वथा परिशुद्ध कराई शक्तता उज्वल नक्षत्रप धर्ममें बसे (=गृहरत्न रहते) को सुकर नहीं है। क्यों न मैं छिर-दाढ़ी मुद्रा कृपाय बख पहिन बरसे बेधर हो प्रमत्तित होजाऊँ? तब भगवान्‌के धार्मिक उपदेश को (सुन) वह परिपक्व जासतमे उठ भगवान्‌को जमिवादनकर, प्रदक्षिणकर लकी गई। परिपक्वके लके जानेके घोड़ीही देर बाद सुदिग्ध कलम्ब पुत्र वहाँ भगवान्‌ के बहाँ गया जाकर भगवान्‌को जमिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ सुदिग्ध कलम्ब पुत्रने भगवान्‌को कहा—

‘जैसे जैसे भन्ते! मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्मको जान रहा हूँ। भन्ते! मैं सिर-दाढ़ी मुद्रा प्रमत्तित होना चाहता हूँ। भन्ते! भगवान्‌ मुझे प्रमत्तित करें।

“सुदिग्ध! क्या घरसे बेधर हो प्रमत्तित होनेके लिये तुम माता पिताके द्वारा अनुज्ञात हो।”

“भन्ते! घरसे बेधर प्रमत्तित होनेके लिये मैं माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात नहीं हूँ।

सुदिग्ध! तबजात माता-पिता-द्वारा अनुज्ञात पुत्रको प्रमत्तित नहीं करते।”

“तो मैं भन्ते! ऐसा करूँगा जिसमें प्रमत्तित होनेकी अनुज्ञा (= आज्ञा) देंगे।

तब सुदिग्ध कलम्ब-पुत्र बैसालीमें उस कर्मको मुच्छाकर, वहाँ कलम्ब-प्राप्त था वहाँ माता-पिता ये बहाँ गया। जाकर माता-पिताको बोला—

“जम्मा! तात! जैसे जैसे मैं भगवान्‌के उपदिष्ट धर्म। मैं प्रमत्तित होना चाहता हूँ। मुझे प्रमत्तित होनेकी अनुज्ञा हो।”

ऐसा कहनेपर सुदिग्ध के माता पिताने सुदिग्धको यह कहा—“तात! सुदिग्ध! तुम हमारे भिन्न मनाप सुद्धमें बने सुद्धमें पके एक ही पुत्र हो। तात! सुदिग्ध! तुम सुद्ध सुद्ध भी नहीं जानते। मरनेपर भी हम तुमसे अभिच्छुक्त न हामे; फिर हम तुम्हें भीतेजी कैसे बरसे बेधर प्रमत्तित होनेकी अनुज्ञा देंगे?”

दूसरी बारभी सुदिग्धने माता पिताको यह कहा ।।

तीसरी बार भी ।।

तब सुदिग्ध कलम्ब-पुत्र—‘मुझे माता-पिता बरसे बेधर प्रमत्तित होनेकी अनुज्ञा नहीं देने’—( गोक ) लकी नगी परतीपर पड़ गया—‘वही मेरा मरण होगा या प्रमत्तित। तब सुदिग्ध ने एक ( बारका ) मात (= भाजन) न खाया था भी तीन भी चार चौच छः मात । तब सुदिग्धके माता पिताने सुदिग्धको यह कहा—

“तात! सुदिग्ध! तुम हमारे भिन्न एक पुत्र हो । मरनेपरभी हम तुमसे अज्ञान न हामे । उठो तात! सुदिग्ध लकी पीलो ( मुर्ली ) हो। लाने पाने सुद्धम काम-सुद्ध भोपाने पुत्र करते रमण करो। हम तुम्हें प्रमत्तित होनेकी अनुज्ञा न देंगे।

ऐसा बोझनेपर सुदिग्ध चुप रहा ।

दूसरी बार भी । ।

तीसरी बार भी । ।

तब सुदिब के मित्र जहाँ सुदिब था वहाँ गये, जाकर सुदिब को बोले—

“साम्य ! सुदिब ! तुम माता पिताके प्रिय एक-पुत्र हो । मरनेपर भी तुम्हारे माता पिता प्रसन्नित होने की आशा न होंगे । उठो साम्य सुदिब ! जामो पीमो पुष्य करते रमण करो । माता-पिता तुम्हें प्रसन्नित होनेकी आशा न होंगे ।”

ऐसा बोलनेपर सुदिब चुप रहा ।

दूसरी बार भी । ।

तीसरी बार भी । ।

तब सुदिबके मित्र जहाँ सुदिब के माता-पिता थे वहाँ गये । जाकर बोले—

अम्मा ! तात ! यह सुदिब नंगी घरतीपर पड़ा ( कइता है ),—‘यहीं मरण होगा वा प्रसन्न्या । यदि प्रसन्न्याकी अनुशा न दोगे तो वहाँ मर जायेगा । यदि सुदिबको प्रसन्न्याकी अनुशा देदोगे तो प्रसन्नित होकर उस रहेगामे । यदि सुदिबको प्रसन्न्या अथवा न लगी तो उसकी दूसरी और क्या गति होगी ?—यहीं काट जायेगा । सुदिब को प्रसन्न्याकी अनुशा देदो ।

“ताता ! हम सुदिबको प्रसन्न्याकी अनुशा दंत ह ।

तब सुदिब ककन्द पुत्र के मित्र जहाँ सुदिब ककन्द पुत्र था वहाँ गये जाकर सुदिब ककन्द-पुत्रको बोले—

“उठो साम्य ! सुदिब ! प्रसन्न्याके सिधे माता पिता-द्वारा अनुशात हो ।

तब सुदिब ककन्द-पुत्र— प्रसन्न्याके सिधे माता पिता-द्वारा अनुशात हूँ—(आम) इह—उदम इापने सरिर पोंछते उठ लड़ा हुआ । तब सुदिब कुछ दिनमें शक्ति पाकर वहाँ भगवान् के वहाँ गया; जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक मार बट गया । एक ओर बड़े हुए सुदिब ककन्द पुत्रने भगवान्को कहा—

“मन्ते ! प्रसन्न्याके सिधे मैं माता-पिता-द्वारा अनुशात हूँ । मुझे भगवान् प्रसन्नित करे ।

सुदिब ककन्द पुत्रने भगवान्के पास प्रसन्न्या (=आमनेरभाव) धार उपसपना (= मिथु भाव ) पाई । उपसपना (=मिथु होने) के धारों ही धेर बाद सुदिब इन बुड (=अवबूट)-गुणोंसे सुन्न हो लखी (बसा)के एक प्राममें बिहार करने लगे जस कारव्यक (=बनमें रहना) पिठ-पाठिक (=अपूकरी खावा बिसंजन आदि नहीं) पौन्न-कुकिक (=दोके बीचोंको ही सीकर पहिनता) आर स-यदान-चारी (निरतर चारिका चलत) रहना ।

+ + +

‘भगवान्ने तरहर्षा ( बर्षा ) खासिय पयतमें ( बिताई ) ।

+ + + +



( १ )

सीह-सुच ( ई पू ५१५ ) ।

‘प्रेसा मीने सुना—एक समय भगवान् वैशाखीमें महावनकी फूटागार-शासामें बिहार करते थे ।

उस समय बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित सिध्दप्रिय संस्थागार (=जलराज्यमग) में बैठे हुये एकत्रित हुये सुदृषय गुण बजावते थे धमका संघका गुण बजावत थे । उस समय गिरांटों (अश्विन) का अथक सिद्ध सेनापति उस समामें बैठा था । तब सिंह सेनापतिके चित्तमें हुआ—‘निर्वासक यह भगवान् आईए सम्पक-संजुद्ध होंगे तभी तो यह बहुतसे प्रतिष्ठित सिध्दप्रिय भोजन रह ई । क्यों न मैं उन भगवान् आईए सम्पक-संजुद्ध दानक लिये जाऊँ ।’

तब सिंह सेनापति आई गिरांट नाथ पुत्र थे आई गया । जाकर गिरांट नाथ-पुत्रको बोका—

“मन्ते ! मैं अमन गौतमको देखनेके लिये जाना चाहता हूँ ।”

“सिंह ! अक्रियावादी होते हुये तू क्या अक्रिया-वादी अमन गौतमके दसनमें जायेगा । सिंह ! अमन गौतम अक्रिया-वादी है अथकोंको अ-क्रिया-वाद्म उपदेश करता है ।”

तब सिंह सेनापतिकी भगवान्के दर्शनके लिये जानेकी जो इच्छा थी वह सांत हो गई । दूसरी बार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित सिध्दप्रिय । तब सिंह सेनापति आई गिरांट नाथ-पुत्र थे आई गया कहा ।

“क्या तू सिंह ! अक्रियावादी होकर अक्रियावादी अमन गौतमके दर्शनको जायेगा ।”

दूसरी बार भी सिंह सेनापतिकी इच्छा सांत हो गई ।

तीसरी बार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित सिध्दप्रिय । ‘पूछू वा न पूछू गिरांट नाथ-पुत्र मेरा क्या करेगा ? क्यों न गिरांट नाथ-पुत्रको बिना पूछे ही मैं उन भगवान् आईए सम्पक-संजुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ ?’

तब सिंह सेनापति पौष ती रजों के साथ दिन ही दिन (आठ पहर) को भगवान्के दर्शनके लिये बैशाखीसे निकला । कितना वात (हरम) का रास्ता था उतना वातम जाकर पानसे उतर, पैरक ही अराममें प्रविष्ट हुआ । सिंह सेनापति आई भगवान्के आई गया । जाकर भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिसे भगवान्को यह कहा—

“मन्ते ! मीने सुना है कि—अमन गौतम अक्रिया-वादी है । अक्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है उसीकी ओर सिध्दोंको के जाता है । मन्ते ! जो ऐसा कहता है—

अमन गौतम अक्रिया-वादी है । क्या यह भगवान्को ठीक कहता है ? अथवा (अज्ञे नहीं है ) से भगवान्की जिन्दा तो नहीं करता ? बर्नासुसार ही धर्मको कहता है ?

क्यों सह-धार्मिक ब्राह्मणवाद तो विविध नहीं होता ? मन्ते ! हम भगवान्की विन्दा करना नहीं चाहते ।”

“सिंह ! ऐसा कारण है जिस कारणसे ठीक ठीक कहते हुये मुझे कहा जा सकता है—  
‘अमम गौतम अक्रिया-वादी है ।’

“सिंह ! क्या कारण है अमम गौतम अक्रिया-वादी है सिंह ! मैं कथ  
बुद्धरित बचन-बुद्धरित मन-बुद्धरितको अनेक प्रकारके पाप अकुशल-धर्मोंको अक्रिया  
कहता हूँ ।

“सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे—‘अमम गौतम क्रिया-वादी है क्रियाके  
क्रिये धर्म उपदेश करता है उसीमे आचर्यको छे जाता है । सिंह ! मैं कथ-बुद्धरित  
( = अ-ईसा खोरी न करना अ-अभिचार ) वाक-बुद्धरित ( = अ-अ-बोझा बुद्धकी न  
करना मीमा बचन बकवाद न करना ) मन-बुद्धरित ( = अ-अ-म-अ-म-अ-म, सम्म-अ-दि )  
अनेक प्रकारके कुनाक ( = अ-अ-म ) धर्मोंको क्रिया कहता हूँ । सिंह ! यह कारण है जिस  
कारणसे मुझे ‘अमम गौतम क्रियावादी है ।’

“उच्छेदवादी । उगुप्सु । नैमायिक । उपस्थी । अपगर्भ ।

“सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे ठीक ठीक कहनेवाला मुझे कह सकता है—  
‘अमम गौतम अस्तसन्त ( = आधसन्त ) है आधासके क्रिये धर्म-उपदेश करता है उसीसे  
आचर्यको छे जाता है । सिंह ! मैं परम आधाससे आधासित हूँ आधासके क्रिये धर्म  
उपदेश करता हूँ आधास ( के मार्ग ) से ही आचर्यको छे जाता हूँ । यह कारण ।”

ऐसा कहनेपर सिंह सेनापतिने भगवान्को कहा—

“आचर्य ! मन्ते ! आचर्य ! मन्ते ! उपासक मुझे स्वीकार करें ।”

“सिंह ! सोच समझकर करो । तुम्हारे जैसे सभ्रातृ मनुष्योंअ सोच समझ कर  
( सिद्ध ) करना ही अर्थात् है ।

“मन्ते ! भगवान्को हम कबसे मैं और भी सम्बुद्ध हुआ । मन्ते ! दूसरे तैर्तिक  
मुझे आचर्य पाकर सारी बौद्धासीमें पताअ उवाते—सिंह सेनापति हमारा आचर्य ( = अ-अ )  
हो गया । लेकिन भगवान् मुझे कहते हैं—‘सोच समझकर सिंह ! करो । यह मैं मन्ते !  
दूसरी बार भगवान्की धरम जाता हूँ धर्म और सिद्ध-सबकी भी ।”

“सिंह ! तुम्हारा कुछ शीर्षकअसे निर्गठोंके क्रिये प्वाअकी तरह रहा है, उनके  
जानेपर पिड न देना ( चाहिये ) ऐसा मत समझना ।

‘मन्ते ! हमसे मैं और भी प्रसन्न-मन सम्बुद्ध और अमरित हुआ । । मैंने सुना  
था मन्ते ! कि अमम गौतम ऐसा कहता है—‘मुझे ही शान देना चाहिये दूसरोंको शान न  
देना चाहिये । मन्ते ! भगवान् तो मुझे निर्गठोंको भी शान देनेको कहते हैं । हम भी  
मन्ते ! इसे पुत्र समझेंगे । यह मन्ते ! मैं तीसरी बार भगवान्की धरम जाता हूँ । ।

तब भगवान्ने सिंह सेनापतिको आनुपूर्वी कहा कही जैसे—‘शान-कथा शीक-कथा

स्वर्ग-कथा कामभोगोंके श्रेय भयंकर जार छोडा; भीर निष्कर्मताका माहात्म्य प्रकाशित किया। यह भगवान्ने सिंह सेनापतिको ज़रोग-बिच सुख-बिच बनाकरद्विच बिच बह-बिच प्रसन्न-बिच जामा। तब यह जो बुद्धोंकी स्वर्ण उठानेवाकी धर्म देखवा ई उसे प्रकाशित किया—दुःख समुद्रब विरोध और मार्ग। जैसे कश्मिर-रहित दुःख बह जप्यी प्रकार एउ पक्षता है हमी प्रकार सिंह सेनापतिको उसी भासतपर कि-मक वि-रख धर्म चहु बल्पन हुआ—

‘जो दुःख समुद्रब धर्म है वह सब विरोध धर्म है। सिंह सेनापति एह धर्म-प्राप्त-धर्म-विविधित धर्म-परि-अवगाह-धर्म संदेह-रहित पाद-विबाह-रहित विस्तारवृत्ता-प्राप्त शास्ताके शासवर्मे स्वतन्त्र हो भगवान्से यह बोला—

‘मन्ते ! मिथु-संघके साथ भगवान् मेरा ककका मोहन रबीधर करे।

भगवान्ने मानसे स्वीकार किया। तब सिंह सेनापति भगवान्की रबीकृतिको जार भासतसे उठ भगवान्को अभिवादन कर प्रशिक्षणा कर कक गया।

तब सिंह सेनापतिने एक जादमीसे कहा—

‘हे जादमी ! जा तू तम्पार मौयको देख तो।

तब सिंह सेनापतिने उस रातके वातनेपर भयल धरमे उचम खाद्य-भोजन तम्पार करा भगवान्को कककी सूचना थी। भगवान् पूर्वाह्न समय (बीचर) पहनकर पाद-वीत के जहाँ सिंह सेनापतिकर बर था वहाँ गये। जाकर मिथु-संघके साथ बिके कामनपर बडे। बस समय बहुतसे निगंठ (अममायु) वैशाखीमे एक सड़कमे बूसरी सड़कपर, एक रौ चारस्तस वूसरे चारस्तपर बाँह उठाकर बिकला रह थे—‘अज सिंह सेनापतिने मोद पशुओंके मारकर अमय गौतमके किये भोजन एकया; अमय गौतम अज बूसकर (अपयैरी) उर स्वसे तैवार किये उस (मांस) का प्लाठा है।

तब कोई पुरुष जहाँ सिंह सेनापति था वहाँ गया। जाकर सिंह सेनापतिके ककमे बोला—

‘मन्ते ! जगत है बहुतसे निगंठ वैशाखीमे एक सड़क मे बूसरी सड़कपर पाँह उठाकर बिकला रहे है—अज।

‘जावे तो जाचों (अजयो) ! बिरककमे यह जायुप्पाम् (अनिगंठ) दुःख धर्म सबकी जिन्ना चाहने नाक है। यह जायुप्पाम् भगवान्की भसत् तुच्छ मिप्पा अ-मृत जिन्ना करते नहीं वारमाते। हम तो (अपन) प्राणके किये भी जाव बूसकर अज न मारंगे।”

तब सिंह सेनापतिने यह प्रमुग मिथु-संघको अपने हाथसे उचम खाद्य भोजनमे संतर्पित परिपूर्ण किया। भगवान्क भोजनकर पापसे हाज वीच त्त्रेपर सिंह सेनापति एक जोर बंद गया। एक और बंद हुए सिंह सेनापतिकर भगवान् धार्मिक कथामे संदर्शन करा भासतमे उठकर पन विव।

+

+

+

+

+

( ११ )

मैत्रिक-दीक्षा । मित्राखा । ( ई पू ५१५ )

'तब भगवान् वीशाहीमें इच्छामुसार बिहारकर सात बारहसा मित्रुओंके महाभिष्टुसंभक साथ बिहार महिया भी उधर चारिकाक किये बह दिये । कमरा: चारिका करते बहों महिया भी बहों पहुँचे । बहों भगवान् भरिया ( =भद्रिका ) में जातिघा( =जातिका )धनमें बिहार करते थे । मैत्रिक गृहपतिने मुना कि—'जात्य-कुम्भसे प्रभावित शाक्य पुत्र भगव गौतम महियामें व्यपू है जातिपावनमें बिहार करते हैं । उन भगवान् गतिमका पुता कस्वान ( =भक्त ) कीति घम् फँका हुआ है—'बह भगवान् बहंत सम्भक्-समुद्र, विद्या-भावरत्न-संपुच्छ, सुगत कोक-विद्, पुष्पीक अनुचर ( =सर्वथेष्ट ) दम्प-सारथी ( =बापुक-सवार , देव-मनुष्योंके सास्ता बुद्ध भगवान् हैं । वह देव-मार-जहा-सहित इन ध्येकको ; भगव-माइनों सहित द्ध-मनुष्यों सहित- ( इस ) प्रजा ( =जगता ) को, स्वय ( परम-तत्वको ) जानकर साझादकर समझाते हैं । वह आदि-कस्वान मध्य-कस्वान अक्षतान अन्तमें )-कस्वान अर्ध-सहित-अर्ध-जगसहित धर्मको उपदेशत हैं ; और केवक परिपूर्ण परिशुद्ध, महाचर्चक प्रकाश करते हैं । इस प्रकारके अइतोंका दर्शन उचम होता है ।

तब मैत्रिक गृहपति भद्र ( =उचम ) भद्र बानोंको पुत्रवाकर भद्र पानपर आरुह हा भद्र भद्र पाणोंके साथ भगवान्क दर्शनके किये मद्रिकसे निकल्य । बहुतसे तीर्थिकों ( धर्म-वापियों )के दूरमें ही मैत्रिक-गृहपतिको धाते हुये देखा । द्धकर मैत्रिक-गृहपतिको कहा—

“गृहपति ! तू कहाँ जाता है ?”

“मन्ते ! मैं भगव गौतमके दर्शनके किये जाता हूँ ।”

“क्यों गृहपति ! तू किपावाही होकर अ-किपावाही भगव गौतमके दर्शनके जाता है ? गृह-पति ! भगव गौतम अ-किपावाही है अ-किपाके किये धर्म उपदेश करता है उसी ( रास्ते )में जावकोंको भी ले जाता है ।

तब मैत्रिक गृहपतिको हुआ—

वित्त-शाय बह भगवान् बहैए सम्भक समुद्र होंगे विसकिये कि पद तीर्थिक निरा करते हैं ।

जितना रास्ता पानका था उतना पावस आकर ( फिर ) पावसे उतर, पैरक ही बहों भगवान् थे बहों गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बह गया । एक ओर बँडे मैत्रिक अ डीको भगवान्से आमुदुर्बिक 'कहा कही । मैत्रिक गृहपतिको उसी आसनपर पिमक विरज धर्म-बहु उत्पक हुआ—'जो कुछ समुद्र धर्म है वह विरोध-धर्म है । तब दृष्टधर्म मैत्रिक गृहपतिने भगवान् को कहा— 'आधर्म ! मन्ते !! अधर्म ! मन्त !! जस कि मन्त ! मैं भगवान्की शरण जाता हूँ धर्म और मिष्टु-संभकी भी । अधर्म भगवान् मुझे सांडिक शरणगत उपासक जानें । मन्ते ! मिष्टु-संभ-सहित भगवान् मेरा कस्का भीजन स्वीकार करें ।

१ महाभमा ६ १ मु गेर ( पितार ) । २ देखो पू २५ ।

स्वर्ग-कथा कमसभोगोंके शेष अपकार धार हूँ मैं; और निष्कर्मताका साहाय्य प्रकाशित किया। जब भगवान्ने सिंह सेनापतिको भ्रोग-चित्त सुदु-चित्त अनाध्यक्षित चित्त उदप्र-चित्त प्रसन्न-चित्त जाना। तब यह जो सुदुकी स्वर्ग उठानेवाली धर्म देसना है उसे प्रकाशित किया—बुद्ध समुद्रय निरोध और मार्ग। जैसे काकिमा-रहित सुद बद्ध अच्छी प्रकार तब पकड़ता है इसी प्रकार सिंह सेनापतिको उसी आसनपर वि-मल वि-रज धर्म पशु ब्रह्मन् हूँ—

‘जो कुछ समुद्रय धर्म है वह सब निरोध धर्म है। सिंह सेनापति उद-धर्म-आस-धर्म-अधिरित-धर्म-परि-अवगाह धर्म संदेह-रहित बाह-विबाह-रहित विभारवता-मास आस्ता-सासनमें स्वतन्त्र हो भगवान्से यह बोला—

‘मन्ते ! मिश्र-संघके साथ भगवान् मेरा ककन्न शोभन स्वीकार करें।’  
भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब सिंह सेनापति भगवान्की स्वीकृतिका बाद आसनसे उठ भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिण्य कर चला गया।

तब सिंह सेनापतिने एक आदमीसे कहा—  
‘ह आदमी ! जा तू तप्यार मौनको देख तो।’

तब सिंह सेनापतिन कम रातके बीचनेपर अपने धर्म उद्यम लाच-भोग्य तद्वार कर भगवान्को काकनी सूचना दी। भगवान् पूर्वाह्न समय (बीच) पहनकर पात्र-बीच के जहाँ सिंह सेनापतिको घर था वहाँ गया। आकर मिश्र-संघके साथ बैठे आसनपर बैठे। उस समय बहुतसे मिगठ (अनसापु) वैशाखीमें एक सड़कमें दूसरी सड़कपर एक ररे चारमसे दूसरे चारमपर बाँह उठाकर चिक्क रह गे—‘भय सिंह सेनापतिने माँदे पशुकाके मारकर अमज गौतमके किये शोभन पकड़ाया; अमज गौतम आज पृथक (अपनेही) उद-ह्वसे तीव्र किच कम (मांस) को खाता है।’

तब कोई पुरुष जहाँ सिंह सेनापति था वहाँ गया। आकर सिंह सेनापतिके धर्ममें बोला—

‘मन्ते ! जानते हैं बहुतसे मिगठ वैशाखीमें एक सड़क से दूसरी सड़कपर बाँह उठाकर चिक्क रहे हैं—अज ।’

‘जाने दो जाओ (अज्यो) ! चिरककसे यह आबुध्मात् (अकिगठ) बुद्ध धर्म सबकी विन्दा चाहने बाडे हैं। यह आबुध्मात् भगवान्की भक्त, तुच्छ मिथ्या न-भूत विन्दा करत नहीं करमाते। हम ता (अपने) माण्डे किये भी जान बूझकर माण्ड न मारेंगे।’

तब सिंह सेनापतिने बुद्ध प्रमुख मिश्र-संघको अपने हाथसे उद्यम लाच-भोग्यसे संतर्पित परिपूर्ण किया। भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ बीच छेनेपर सिंह सेनापति एक और बैठ गया। एक और धिडे बुने सिंह सेनापतिको भगवान् धार्मिक कथाने संदर्शन करा आसनसे उठकर चले गये।

+ + + + +

( ११ )

मैत्रिक-दीक्षा । विद्यासा । ( ई. पू. ५१५ )

‘तब भगवान् वीशास्त्रीमें इच्छानुसार बिहारकर सभ बारहसी मिथुनोंके महाभिधुसंपक साम बिपर ‘महिया भी उपर बारिकाक किये बड दिने । समसः बारिका करते जहाँ भरिया भी बहाँ पहुँचे । बहाँ मगवान् महिया ( =मदिक ) में जातिया ( =व्यातिका ) धनमें बिहार करते थे । मंगलक गृहपतिने सुना कि—‘शाक्य-कुलसं प्रवृत्त शाक्य पुत्र भगव गौतम भरिबामे थाप हैं जातिबाबतमें बिहार करते हैं । उन मगवान् गौतमका ऐसा कल्याण ( =मङ्गल ) कीर्ति धम्प रीका हुआ है— वह मगवान् बरैत सत्यक-संबुद्ध बिद्या बाबरण-समुक्त, सुगत लोक-विद, पुत्रोंके मनुचर ( =मन्त्रबोध ) धम्प-मारपी ( =बाहुक-सवार , देव मनुष्योंके प्रास्ता बुद्ध मगवान् हैं । वह ध्व-भार-महा-सहित इस क्येकको ; धमज-जाइकों सहित ऐक-मनुष्यों सहित- ( इस ) प्रजा ( =जनता ) को, स्वध ( परम-सत्यको ) जाबकर साक्षात्कर समझाते हैं । वह जावि-कल्याण मध्य-कल्याण बरसाव जन्तमें )-कल्याण धर्म-महित-धर्मजनसहित धर्मके उपपन्न है ; नगर क्येक परिपूर्ण परिभुद्ध, मङ्गलक्यक प्रकृत करते हैं । इस प्रकरके बहलोक्य वर्सन उचम होता है ।

तब मैत्रिक गृहपति मद्र ( =इतम ) मद्र पालोंको लुबकाकर मद्र पाबपर भावन हो मद्र मद्र पालोंके साथ मगवान्के दर्शनके किये मद्रिकामे निकला । बहुतस तीर्थिकों ( =व्यापिर्षों )के बुरसे ही मैत्रिक-गृहपतिको भाते हुये देखा । इतकर मैत्रिक-गृहपतिको कहा—

‘गृहपति ! तू कहीं जाता है ?’

‘मन्ते ! मैं धमज गौतमके दर्शनके किये जाता हूँ ।’

‘क्यों गृहपति ! तू बिबाबासी हाकर अ-बिबाबासी भगव गौतमके दर्शनको जाता है ? गृह-पति ! भगव गौतम अ-बिबाबासी है अ-बिबाके किये धर्म उपदेश करता है उसी ( रास्ते )स पाबकोंका भी के जाता है ।

तब मैत्रिक गृहपतिको हुआ—

‘वि-संहाप वह मगवान् बरैत सत्यक-संबुद्ध होंगे बिसकिसे कि वह त्रिपिक बिद्या करते हैं ।’

बिषवा रास्ता बानक या उतवा बानस जाकर ( फिर ) पाबसे उतर, पैपक ही बहाँ मगवान् थे बहाँ गया । बाकर मगवान्को अभिवाहनकर एक ओर बड गया । एक ओर बडे मैत्रिक अ हीको मगवान्ने आनुचरिक कहा कही । मैत्रिक गृहपतिको उसी भासनपर बिमक बिबर धर्म-क्यु उत्यक हुआ—‘जो कुछ समुद्घ धर्म है वह बिरोव-धर्म है । तब दृष्टधर्म मङ्गल गृहपतिने मगवान् को कहा—‘आधर्म ! मन्ते !! आधर्म ! मन्त !! बस कि धम्प ! मैं मगवान्की धरण जाता हूँ धम भीर मिधु-संबकी भी । जजम मगवान् मुन सांजके बरवागत उपासक जावें । मन्ते ! मिधु-संघ-सहित मगवान् मरा क्येक भोजन लीकर करें ।

“भगवान्ने मानसै स्वीकार किंवा ।

मैंडक गृहपति भगवान्की स्वीकृतिको ज्ञान भासनास उठ, भगवान्की भमिवादनकर प्रक्षिप्यकर चला गया ।

तब मैंडक गृहपतिने उस रातके बीतनेपर उत्तम क्लृप भोज्य तैयार करा भगवापको काल सूचित कराया । भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवर छे बहो मैंडक धे डीका घर बा बहो गये । जाकर मिश्रुसंघ-सहित बिछे भासनापर बठ । तब मैंडक गृहपतिकी भाषा पुत्र पुत्र-बहु (=मुनिता) जीर हास बहो भगवान् ये बहो गये, जाकर भगवान्को भमिवादनकर एक ओर बठ गये । उनका भगवान्ने धानुपूर्विक कथा कही । उबको उसी भासनापर वि-मळ वि-रज घम-बहु उत्पन्न हुआ । तब वह बर्भ उन्होने भगवान्को कइ—

“आजय ! मन्ते ॥ आजय ! मन्ते ॥ इम मन्ते ! भगवान्की धारण जाते हैं बर्भ और मिश्रु संघकी भी । आजस हमें मन्त ! उपायक बावें ।

तब मैंडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख मिश्रु-संघको उत्तम क्लृप भोज्यस संतर्पितकर, पूर्णकर भगवान्को भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ मैंडक गृह-पतिने भगवान्का कइ—

“अब तक मन्त ! भगवान् महियामें बिहार करते हैं तब तक मैं बुद्ध-प्रमुख मिश्रु संघकी श्रु-भक्त (=सर्वदास भोजक) से (संवा कहूँगा) ।

तब भगवान् ! मैंडक गृहपतिको धर्मिक कथा (कइ) भासनासे उठकर पळ दिवें ।

+ + + +

विशालाका जन्म ( वि पृ ४६५ ) ।

विशालाका जन्म भगवान्के महिया नगरमें मैंडक भडीक पुत्र धर्मजय धे छीकी अप्रमहिपी सुमना देवीकी कोलमें हुआ था । उसकी सात वर्षकी अवस्थामें शास्ता धम जाइन भाविको ( बांध करानके किये ) महामिश्रु संघक साथ चारिक करत हुए, उम नगरको प्राप्त हुए । उस समय मैंडक गृहपति उम नगरके पाँच महापुण्यात्माओंमें प्रजाण (=ग्येह) हाकर (नगर) धे डी-वर (पर) धम करता था । पाँच महापुण्यात्मा ये—मैंडक धे छी, अष्ट-पञ्चा उमकी प्रजाण भाषा उमका ग्येह-पुत्र धर्मजय हसकी भाषा सुमना देवा मैंडक धे डीका नाम पूरय । कबल मैंडक धे डी ही बहो बिद्यमान-राजाक राज्यमें पाँच ( जव ) धर्मितभागवाक थे—आतिय जटिल मैंडक, पुण्यक (=पूर्णक), और काक धर्मिय ।

उममें मैंडक धे डीने दस-बन (=बुद्ध) क अपने नगरमें भातेकी बाग जाकर अपने पुत्र धर्मजय क डीकी कथा विशालाकाको सुनाकर कइ —

“अजय ! तरा मी मंगल ह हमारा मी मंगल है । अपने परिपारकी पाँचमी कथाओं (नवा) पाँचमा दामिबोंके साथ पाँचमी तपोपर कइ दशावलीकी भगवानी कर ।”

उमके ‘अजय कइ देगा ही किंवा । कारण अ-कारण जाननेमें बुधाय होकम कितवा मार्ग

पात्रका या उतवा पानमे वा उतरकर पैदक ही शास्ताके पास या बन्धुनाकर एक ओर चर्चा हो गई। मगवान्ने उसे चर्चाके संबंधमें वेसवाकी। वेसनाक अन्तमें वह पाँचसौ कम्पाओंके नाम छोट-भापति-कस्में प्रतिष्ठित हुई। मण्डक धोष्टीमें भी शास्ताके पास आकर, भर्म क्वा मुख लौत भापति-कस्में प्रतिष्ठित हो दूसरे दिनक किये विमत्रितकर दूसरे दिन अपन घरमें उचन लाघ-भोम्य बुद्ध प्रमुच मिधु-संधको परोसकर हम प्रकार जाग मास महावान दिया। श्राम्ता भदिया ( = मु गेर ) नगरमें हृष्यनुसार बिहारकर चले गये।

उस समय विम्बसार मार प्रसेनजित् कोसक एक दूसरेके बहनोई थे। एक दिव कासक-राजान सोच—“बिम्बसारक राज्यमें पाँच अमितभोगवाके ( आदर्सी ) बसते हैं मेरे राज्यमें एक भी बीमा नहीं है। क्यों न बिम्बसारक पास आकर, एक महापुण्य की मांग करूँ। वह नहीं आकर राजाक प्रातिर करनेके बाद—“किस कारणसे जाय ? पूछे जाने-पर—“तुम्हारे राज्यमें पाँच अमित-भोग महापुण्य बसते हैं उधमेंसे एकको ल जानेके किय जावा हूँ। उनमेंन एक मुझे वा।”

“महाकुसुंकी हम दूटा नहीं सकते। —कहा।

“बिना पाये न जाऊँगा। —कहा।

राजाने अमात्योंसे सलाह करके—

“जोति जादि महाकुसुंका चरुना पुर्वाके बरालक समान है। मण्डक महाधोष्टीका पुत्र धनंजय धोष्टी है उसके साथ सलाहकर तुम्हें उतर हूँगा। कह उसको बुलवाकर—

“तात ! कासक-राजा—एक धर्मा भेड़ी से जानेको कहता है। तुम उसके साथ जाओ ?”

“भापक मेजनेपर हूँ ! जाऊँगा।”

“तो तात ! प्रबंध करके जाओ।

उसन अपना कृत्य समाप्त कर लिया। राजान भी उसका बहुत मन्थर करके—इसे से जाधा—कह प्रसेनजित् राजाका दे दिया। वह उसको लेकर एक रातेमें एक रात उतरकर जाते हुए, एक स्थानपर ठेरा बाल दिया। पर्वजय धोष्टीने पूछा—

“यह किसका राज्य है ?”

“मेरा है धोष्टी !

“यहाँसे भावस्ती कितनी दूर है ?”

“यहाँसे सात बीजनपर।

“नगरके मीठर बहुत मीठ होता है हमारा परिव्रज ( = नोकर-बाकर ) भारी है। यदि आज्ञा हो तो देव ! यहाँ बस।”

राजा ‘अप्य’ कह, उस स्थान पर नगर बनवा उस इकर बस्य गया। साथ पाम-न्यान पानेके कारण ‘साकेत’ बही नगरका नाम हुआ।

‘तब भदियामे हृष्यनुसार बिहारकर, मण्डक गृहपतिको बिना पूछे ही सारे बारह



“मगधाने मौससे णीकारं क्खिवा ।

मैत्रक गृहपति मगधान्की स्वीकृतिको ज्ञान आसतसे उठ, मगधान्को अमिबादकर मन्दिप्रकर चका गया ।

तब मैत्रक गृहपतिने उद्य रातके बीतनेपर उत्तम काच-भोज्य तैय्यार करा मगधानक काच सूचित करावा । मगधान् पूर्वाह्न समय पदिनकर पाप-पीवर ले चर्हो मैत्रक अहीका घर या चर्हो गये । चाकर मिथुसंभ-सहित बिछे आसतपर बैठे । तब मैत्रक गृहपतिभी भावां पुत्र पुत्र-वत्तु ( = सुभिसा ) और दास चर्हो मगधान् ले चर्हो गये । चाकर मगधान्को अमिबादकर एक ओर बैठ गये । उबका मगधान्ब आनुचरिंक कथा कही । उनको उसी असाकपर वि-मक वि-रक धर्म-वत्तु उत्पन्न हुआ । तब दस-धर्म उन्होंने मगधान्को कहा—

“आजर्ष ! मन्ते !! णजर्ष ! मन्ते !! हम मन्त ! मगधान्की तरण जाते हैं परं और मिथु सचन्दी मी । आजसे हमें मन्ते ! उपासक धामें ।

तब मैत्रक गृहपतिने अपने हापसे बुद्ध प्रमुच मिथु-संभको उत्तम काच भोज्यसे संतर्पितकर पूर्णकर मगधान्के भोजनकर पापसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठ मैत्रक गृह-पतिने मगधान्को कहा—

‘जब तक मन्ते ! मगधान् महियामें विहार करत है तब तक मैं बुद्ध-प्रमुच मिथु-सचन्दी प्रु-मक ( = सर्वाहाके भोजन ) सं ( सेवा करूँगा ) ।

तब मगधान् ! मैत्रक गृहपतिको धार्मिक कथा ( कथ ) आसतसे उठकर फड बिचे ।

+ + + +

विद्यावाका उम्म ( यि पू ४३५ ) ।

‘विद्यावाका उम्म अंगुशके महिया नगरमें मैत्रक अहीक पुत्र धर्मजय अहीकी अपमहिपी सुमवा देवीकी कोरुमें हुअ पा । उसकी साठ वर्षकी अवस्थामें सास्ता सैक माध्यम धारिकी ( बोध करानेके किये ) महामिथु संभके साथ चारिका करत हुये, उस नगरको ग्यस्त हुये । उस समय मैत्रक गृहपति उस नगरके पाँच महापुन्नात्माओंमें प्रथम ( = ज्येष्ठ ) होकर, ( नगर ) अ ही-वत् ( पर ) काम करता था । पाँच महापुन्नात्मा थे—मैत्रक अही, अन्त-पद्या उसकी प्रपाव भावां उसका ज्येष्ठ पुत्र धर्मजय इसकी भावां सुमवा देवा, मैत्रक अहीका दास पूरण । केवल मैत्रक अही ही नहीं बिसमार-नाजके राज्यमें पाँच ( जने ) अमितभोगवाले थे—जातिय अटिठ मैत्रक, पुण्णक ( = पूर्णक ), और काक पमिय ।

उन्हेसे मैत्रक अ हीने दस-वक ( = बुद्ध ) = अपने नगरमें आयेडी बात जानकर अपय बुद्ध धर्मजय अ हीकी कथा विद्यावाका उम्मकर कहा —

“उम्म ! तेरा मी संगण है हमारा मी संगण है । अपने परिवारकी पाँचमी कथाओं ( तथा ) पाँचमी धामिनोंके साथ पाँचमी रत्नोंपर अब दसवसकी अगपानी कर ।”

उमने ‘अप्या कह बीमा ही किया । करण अ-कारण जाननेमें बुगय होमैस कितना मार्ग

१ धर्मपद् अ क. ४६।२ तांताउ दक्षिण धर्ममात्र भागउपुर अर सु गेर किये (विहार) ।

पानका या उत्तम यानसे या उत्तरकर पैदल ही सास्ताके पास जा बन्दनाकर एक बार लपकी हो गइ। मगवान् उसे बर्बाके संक्षममें बैसनाकी। देशनाके अन्तमें वह पाँचसा कम्पागोंक साथ कोत-जापति-कक्षमें प्रतिष्ठित हुई। मैत्रिक भोष्टीने भी सास्ताके पास आकर भ्रम कथा सुन सौत जापति-कक्षमें प्रतिष्ठित हो दूसरे दिनक सिये निमत्रितकर दूसरे दिन अपन बरमें उत्तम खाद्य-भोग्य बुद्ध प्रमुख मित्रु संघको परासकर इम प्रकार आग मास महाशाम दिया। शास्ता भदिया (अमु गेर) नगरमें इच्छानुसार बिहारकर बडे गये।

उम समय विचस्यार और प्रसेमजित् कोमक एक दूसरेके बहनाइ ये। एक दिन कासल-राजान सोचा—“विचस्यारक राज्यमें पाँच अमितभोग्याके (जादमी) बसते हैं मरे राज्यमें एक भी बैसा नहीं है। क्यों न विचस्यारके पास आकर, एक महापुण्य को मांग लाऊँ। वह बहौँ आकर राजाके खातिर करनेके बाद—‘किस कारणसे जाय ?’ पूछ जाने-पर—‘तुम्हारे राज्यमें पाँच अमित-भाग महापुण्य बसते हैं उनमेंसे एकको ल जानेके किये जाया हूँ। उनमेंसे एक मुसे दो।”

“महाकुर्कोको हम हटा नहीं सकते। —कहा।

“बिना पाये न जाऊँगा। —कहा।

राजाने भमास्वौसे सलाह करके—

“जोति आवि महाकुर्कोकर बचाना पुण्याक बचानेक समाप्त ह। मैत्रिक महाभोष्टीका पुत्र घर्मजय भोष्टी है उसके साथ सलाहकर तुम्हें उतर हूँगा। कह, उसको बुलवाकर—

“तात ! कासल-राजा—एक पर्ना भोष्टी ले जानेको कहता है। तुम उसके साथ जाओगे ?”

“जापके मेजानपर देख ! जाऊँगा।

“तो तात ! प्रबंध करके जाओ।

उससे अपना कृत्य समाप्त कर लिया। राजाने भी उसका बहुत सत्कार करके—‘इसे ले जाओ—कह प्रसन्नजित् राजाको दे दिया। वह उमको लेकर एक रातेमें एक रात उहरकर आते हुए, एक स्थानपर बेरा बाक दिया। भयञ्चक भेड़ीने पूछा—

“यह किसका राज्य है ?”

“मेरा है बहौँ !”

‘यहाँसे भावस्त्री कितनी दूर है ?’

“बहाँसे सात योजनपर।

“नगरके भीतर बहुत मीठ होती है हमारा परिवन (जोकर-बाकर) मारी है। यदि व्याजा हा तो देख ! वहीं बरौँ !”

राज्य ‘अप्यज’ कह, उस स्थान पर नगर बनवा उसे इकर बस्य गया। साथ पाप-स्थान पावेक कारण ‘साकंठ’ बही नगरका नाम हुआ।

तब भदियामे इच्छानुसार बिहारकर, मैत्रिक गृहपतिको बिना पूछ ही साइ बाराह

साक महान् मिथु-संबन्धे साय भगवान् बहो 'अगुत्तराप वा बहो चारिकाकं किञ्च कम दिसे । मँडक गृहपतिने सुत्ता कि भगवान् अगुत्तरापको चारिकाके किये चल गब । तब मँडक गृह-पतिने दासों और कमकरोंको आज्ञा दी—

'ता भजे ! बहुत सा खोल ठेक मयु तहुक और लाघ गादिबोंपर कान्कर आभो । सादे बारह सी ग्वाडे भी साई बारह मा येनु ( =दूब देने वाली ) गापोंको ककर जावें । जहाँ हम भगवान्को देखेंगे वहाँ गमघारवाले दूषक साथ भोजन करावेंगे ।

तब मँडक गृहपतिने रास्तेमें एक जगळ ( =काँठार ) में भगवान्को पाया । जहाँ भगवान् ये बहो गया जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर लड़ा हा गवा । एक ओर कड़े दूए मँडक घेहीने भगवान्को कहा—

"मन्ते ! मिथु संघ-सहित भगवान् कलका मरा भात स्वीकार कर ।

भगवान्ने मावसे स्वीकार किया ।

तब मँडक ज ही भगवान्की स्वीकृतिको जान भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

मँडक गृह-पतिने उस रातक बीठ जानेपर उचम लाघ भोजन तदपार करा भगवा न्का काल सूचित कराया । तब भगवान् पूर्णाङ्क समय पहिनकर पात्रधीबर छे जहाँ मँडक गृहपतिका परासना था पहाँ गया । जाकर मिथु-संघ-सहित बिठे आसनपर बढ । तब मँडक गृहपतिने सादे बारह सा गांपालोंका आज्ञा दी—

'ता भजे ! एक एक गाव ले एक एक मिथुक पास खइ हा जाभा गर्मबारवाके दूषम भोजन करावेंगे । तब मँडक गृह पतिने अपन हाथस बुद्ध-भगुण मिथु-संघको उचम लाघ-भाजस मतपित किया पूर्ण किया । गर्मबारक दूषस भगवा कामी करते मिथु ( उस ) पहन न करत ये ।

( तब भगवान्ने कहा — "ग्रहण करो परिभोग करा मिथुजा !

मँडक गृहपति बुद्ध-भगुण मिथुसंघको उचम लाघ भाज तथ बार-उप्य दूषस, अपने हाथमे संतपितकर पूर्णकर एक ओर बढ गवा । एक ओर बैठे मँडक गृहपतिने भगवान्मे कहा—

'भन्त ! जल-रहित ग्राघ-रहित काँठार ( =रीरान ) माग भी है, बिना पायेबडे ( उतम ) जाना मुकर नहीं । अज्य हा भन्ते ! भगवान् पाथवकी अनुज्ञा दे ।

तब भगवान् मँडक घे हीका धर्म उपदेश ( कर ) आसनमे उठकर चल दिव । भगवान्ने हुमी प्रकरनमे धामिक कथा कह मिथुओंका आमंत्रित किया—

"अनुज्ञा करता हूँ मिथुजा ! पाँच गारमकी—दूब रही तक ( =छाछ ) लहीत ( =मरलव ) और घी ( =गपिप् ) ।

"मिथुओ ! (कोई कोई) जल-रहित ग्राघ-रहित काँठार-माग है, ( जिवम ) तिका पाथवके जाना मुकर नहीं । अनुज्ञा देता हूँ मिथुजा ! तंदूषवर्धी ( =तंदूष चारुववाका )

१ सुतेर भागलपुर त्रिण्डिका गंगाक उत्तरका भाग । अङ्क उत्तरभाप=गामी ( =गागा ) क उत्तरका अङ्क ।

हुकका मूँग बाहनवाला मूँगका उदक बाहनवाला उदकका कोन बाहनवाला कोनका गुह बाहनवाला गुहका लेक बाहनवाला लेकका बी बाहनवाला धीका पायेय हूँ हैं।”

“मिस्तुभो ! ( कोई काँई ) अज्ञासु भीर प्रसन्न मनुष्य होत हैं। वह कपियकरक ( मिथुका अनुचर गृह्य ) के हाथमें हिरण्य ( = सोना या सामेका सिक्का ) दते हैं—‘इसस कार्यका का विहित है यह के देना । मिस्तुभा ! उससे जो विहित हो उस उपभोग करनेकी अनुज्ञा देता हूँ । किन्तु, मिस्तुभो ! जातरूप ( = सोना )-रजत ( = चाँदी ) का उपभोग करना या समग्र करना मैं किसी भी हालतमें नहीं (विहित) करता ।

क्रमसः चारिका करतं द्रुप मगवान् बर्हो आपय या बर्हो पशुं च ।

+ + + +

( १२ )

### पोतलिय-सुत । ( ३ पू ५१५ )

‘देया मैनै सुता—एक समय मगवान् अंगुत्तराय-( देव ) में अंगुत्तरापीके आपण नामक निगम ( = कल्पे ) में विहार करते थे ।

तत्र मगवान् पूर्वाह्न समय ( पीर ) पहिनकर पात्र पीर ले मित्रा-चारके किये आपणमें प्रविष्ट हुये । आपणमें पिंड-चार करके पिंड पात ( = भोजन )-ग्रमात्कर एक बल शब्दमें दिनक विहारके किय गये । भीतर जाकर दिनक विहारक किये एक वृद्धके नीच बडे ।

१ म वि २:१:४ ( अहक्या )— अह्नी वह बलपद् है । मही (गंगा) नदीक उत्तरमें जो पापी है उसके अ-नूर उत्तर होनेसे उत्तराय कहा जाता है । किस महीके उत्तरमें ? महामहीके । वह अमह्नीय हस-महस-योजन बचा है । हममें चार हजार योजन मया जल्पन भरा होनेसे समुद्र कहा जाता है । तीन हजार योजनमें मनुष्य बसते हैं । तीन हजार योजनमें चारसी हजार कूटों ( = बोधियों )से सुसोमित चारों ओर बसती पाँच सा नदियोंसे विचित्र पाँच सौ बाजब कँचा हिमयाम् ( = हिमाक्य ) है । बर्हो पर कि—कम्पाई काफाई गहराईमें पचास-यचास योजन घेरमें कैसौ योजन समबतत-वृह कण्णमु उ-वृह रथकार-वृह, उहन्त वृह कुण्डाल-वृह मंदाकिमी सिह-पपातक ( = सिंह-मपातक ) यह मात महासरावर प्रतिष्ठित हैं । अनोत्तत वृह सुवर्दान कूट चित्र-कूट कास-कूट गंधमादन कूट कैलाश-कूट इन पाँच कूटों ( = गिरिशिखरों ) से घिरा है । इनकी चारों ओर सिंह मुक हस्ति मुक अदब मुक, गा-( = वृषभ ) मुक—चार मुक हैं जिनसे चार नदियाँ निकलती हैं । सिंह-मुकसे निकली नदीक किनारे सिंह बहुत होते हैं । हस्ति भादि मुकॉस ( निकली नदियोंके किनारे ) हस्ती अदब भार बेल । गङ्गा यमुना अशिर घती ( = आपती ) सरभू ( सरयू, पावरा ) महा ( = गडक ) - यह पाँच नदियाँ हिमशाल्में निकलती हैं । इनमें जो वह पाँचवीं मही है वही यहाँ महीसे अभिप्र त है । इन अंगुत्तराय जनपदमें आपण निगम नाम हजार आपणों ( = नृकानों ) क मुँह विमल थे । इस प्रकार आपणों ( = नृकानों ) से भरे होनेसे आपण नाम हो गया । उस निगमके अ नूर, नदीतीरपर बना छाया रमणीय भूमि भागवाला बल अह था । उसीमें मगवान् विहरत थे ।

पातकिय गृह-पति भी निवासन (= पासाक) - प्रारण (= बाहर) पहिले, अठा-वृत्ता प्रारण किये बर्बा-बिहार (= बहल-कदमी) के किये द्यकता बहो बह बतलंड वा बर्बा गवा । बबलंडमें मुसकर, बहो भगवान् ये बहो पहुँचा । बाकर भगवान् के साथ " समोसक कर एक ओर खाया हो गवा । एक ओर कहे हुये पोतकिय गृह-पतिको भयया नूने कथा—

“गृहपति ! आसन विद्यमान है यदि चाहते हो तो बैठो ।”

पेसा कइनेपर पोतकिय गृह-पति—“गृहपति (= गृहस्थ वैश्य) कइकर मुझे अन्न गौतम पुकारता है—कुपित और अ-अन्तुष्ट हो चुप रहा :

दूसरी बार भी । ।

तीसरी बार भी । तब पोतकिय गृहपतिने—“गृहपति कइकर—कुपित और अन्तुष्ट हो भगवान् के कथा—

“हे गौतम ! तुम्हें यह उचित नहीं तुम्हें यह योग्य नहीं जो मुझे गृह-पति कइकर पुकारते हो ।”

“गृहपति ! तेरे बही आकार है बही छिद्र है बही निमित्त (= किड) है जैसे कि गृह-पति के ।”

‘यु कि हे गौतम ! मैंने सारे कर्मान्त (= कर्ता) छेष दिये सारे अन्वहन (= अन्वय वा अभिन्न) समाप्त कर दिये । हे गौतम ! मेरे पास जो धन धान्य रत्न (= धौरी), धानकप (= सोना) वा सब पुत्रोंकी तर्का दे दिया । सो मैं (केती आदिमें) न ताकीद करनेबाक्य न कइ कइनेबाक्य हूँ ; सिर्फ जाने-पहिरने भरसे बास्ता रखने बाक्य (हो) बिहरता हूँ । ”

“गृहपति ! तू किस प्रकार अन्वहारके उच्छेदको कइता है । आर्षोंके विनयमें अन्वहार-उच्छेद (इससे) दूसरी ही प्रकार होता है ।

“ता भन्ते ! आर्ष विनयमें अन्वहार-उच्छेद कैसे होता है ? अथ्य ! भन्ते ! भगवान् मुझ उस प्रकारका धर्म उपदेश करे जैसे कि आर्ष-विनयमें अन्वहार-उच्छेद होता है ।

“तो गृहपति ! मुझे अच्छी तरह मर्ममें करो ; कइता हूँ ।

“अथ्य भन्ते !” पातकिय गृह-पतिने भगवान् के कथा । भगवान् ने कथा—

“गृहपति ! आर्ष-विनय (= आर्ष-धर्म आर्ष विनय) में यह आठ धर्म अन्वहार उच्छेद करनेके लिये हैं । कौन से आठ ? (१) अ-आत्तातिपाठ (= अहिंसा) के छिये आत्तातिपाठ छोड़ना चाहिये । (२) दिवा-केने (= दिवादान) के छिये अ-दिन्नादान (= चोरी न दिवा लेना) छोड़ना चाहिये । (३) सत्य बोलनेके छिये सूचाबाद छोड़ना चाहिये । (४) अ-पिण्डन-बचन (= न चुगली करने) के छिये पिण्डन-बचन छोड़ना चाहिये । (५) अ-गृह-अभेद (= निलोम) के छिये गृह-कोम छोड़ना चाहिये । (६) अ-दिन्दा-रोषके छिये दिन्दा छोड़ना चाहिये । (७) अ-ओष-उपावास (= परेसानी) के छिये ओष-उपावास छोड़ना चाहिये । (८) अ-अतिमानके छिये अतिमान (= अभिमान) को छोड़ना चाहिये । गृहपति ! संक्षिप्त कइ बिस्तारसे न विभाजित किये यह आठ धर्म, आर्ष-विनयमें अन्वहार-उच्छेद करनेके लिये हैं ।”

‘मन्ते ! भगवान्ने जो मुझे विस्तारसे म विभाजित किये संक्षिप्तसे धाढ धर्म  
कहा । अच्छा हो मन्ते ! (बन्दि) भगवान् अनुकम्पाकर (उम्हें) विस्तारसे विभाजित करें ।

‘‘तो गृहपति ! मुनो अच्छी तरह मतमें करो करता हूँ ।

‘‘अच्छा मन्ते ! पोतकिय गृहपतिने भगवान्को उत्तर दिया । भगवान् बोले—

‘‘गृहपति ! ‘‘प्राणातिपातके किये प्राणातिपात छोड़ना चाहिये यह जो कहा किस  
कारणसे कहा ? गृहपति ! आर्ष-आवक ऐसा सोचता है—‘‘जिन संयोजनोंके कारण मैं  
प्राणातिपाती होऊँ उन्हीं संयोजनोंको छोड़नेके किये उच्छेदक किये मैं क्या हूँ ? और मैं  
ही प्राणातिपाती होगया । प्राणातिपातके कारण आत्मा (=अपना चित्त) भी मुझे चिन्तारता  
है । प्राणातिपातके कारण, बिज्ञ काम भी जानकर चिन्तारते हैं । प्राणातिपातके कारण काम  
छोड़नेपर मरनेके बाद, दुर्गति भी होती है । यही संयोजन (= बंधन) है यही नीवरण  
(= बन्धन) है जो कि यह प्राणातिपात । प्राणातिपातके कारण जो विघात-परिवाह (= द्वेष  
अहम) और आत्मन (= चित्त-द्वेष) उत्पन्न होते हैं प्राणातिपातसे विरतका वह विघात  
परिवाह, अत्यन्त नहीं उत्पन्न होते । ‘‘अ प्राणातिपातके किये प्राणातिपात छोड़ना चाहिये’’  
यह जो कहा वह इसी कारण कहा ।

‘‘विद्यादानके किये अविद्यादान छोड़ना चाहिये यह जो कहा किस कारणसे कहा ?  
गृहपति ! आर्ष-आवक ऐसा सोचता है—‘‘जिन संयोजनोंके हेतु मैं अविद्यादायी (= विद्या दिये  
छेनेवाला) होताहूँ उन्हीं संयोजनोंके छोड़नेके किये उच्छेद करनेके किये मैं क्या हुआ हूँ ;  
और मैं ही अ-विद्यादायी होगया ! अ-विद्यादानके कारण आत्मा भी मुझे चिन्तारता है । अ-विद्या  
दानके कारण बिज्ञ काम भी जानकर चिन्तारते हैं । अ-विद्यादानके कारण आपा छोड़नेपर मरनेके  
बाद दुर्गति भी होती है । यही संयोजन है यही नीवरण है जो कि यह अ-विद्यादान ।  
अ-विद्यादानके कारण विपात (= पीडा) परिवाह (= अहम) (और) आत्मन उत्पन्न होते हैं ;  
अ-विद्यादान-विरतको वह नहीं होते । ‘‘विद्यादानके किये अ-विद्यादान छोड़ना चाहिये’’  
यह जो कहा वह इसी कारण कहा ।

अ-विद्यादान-वचनके किये ।

अ-गुरु-स्वीकारके किये ।

अ-विद्या-रोपकके किये ।

‘‘अ-अधि-उपावासके किये ।

‘‘अ-अभिमानके किये ।

‘‘गृहपति ! यह आठ अक्षिप्तसे कहे विस्तारसे विभाजित धर्म आठ-विधधर्म व्यवहार  
उच्छेद करनेवाक हैं । (किंतु हमस) सर्वथा सब कुछ व्यवहारका उच्छेद नहीं होता ।

‘‘ता कैसे मन्ते ! आर्ष-विनयमें सर्वथा सब कुछ व्यवहार उच्छेद होता है ? अच्छा  
हो मन्ते ! भगवान् मुझे कैसे धर्मका उपदेश करें, कैसे कि आर्ष-विनयमें ‘‘सर्वथा सब कुछ  
व्यवहारका उच्छेद होता है ?’’

‘‘तो गृहपति ! मुनो अच्छी तरह मतमें करो करता हूँ ।’’

‘‘अच्छा मन्ते । । ।

‘‘गृहपति ! सब मूलसे अति-दुर्लभ कुनकुन गो-घातकका सूत्र (=मौस कारणके

पोतक्षिप गृह-पति भी निवासन (=पोशाक)-प्रारण (=चादर) पहिन, छाता-वृत्र  
 धारण किये बंधा-विहार (=गृह-कर्म) के किये रह्यता जहाँ यह बतलंड या वहाँ  
 गया। बतलंडमें मुसकर जहाँ भगवान् ने वहाँ पहुँचा। आकर भगवान् साय समाप्त  
 कर एक ओर लड़ा हो गया। एक ओर लड़े हुए पोतक्षिप गृह-पतिको भयान  
 ग्ने कहा—

‘गृहपति ! आसन विद्यमान है यदि चाहते हो तो बसे।

पूसा कहनेपर पोतक्षिप गृह-पति—‘गृहपति (=गृहस्व वैश्य) कहकर मुस ब्रह्म  
 गौतम पुकारता है—कुपित धार असन्तुष्ट हो चुप रहा।

दूसरी बार भी । ।

तीसरी बार भी । तब पोतक्षिप गृहपतिने—‘गृहपति कहकर—कुपित धार  
 असन्तुष्ट हो भगवान्से कहा—

‘हे गौतम ! तुम्हें यह उचित नहीं तुम्हें यह योग्य नहीं जो मुझे गृह-पति कहकर  
 पुकारते हो।’

‘गृहपति ! तेरे वही आकार है वही किन्न है वही निमित्त (=लिङ्ग) है जैसे कि  
 गृह-पति के।’

‘यू कि हे गौतम ! मैंने सारे कर्मान्त (=केती) छोड़ दिये सारे व्यवहार  
 (=व्यापार बाधिर्य) समाप्त कर दिव। हे गौतम ! मेरे पास जो सब धान्य  
 रजत (=चाँदी), आनकप (=सोना) वा सब पुत्रोंको तर्ज दे दिया। सो मैं (केती  
 आदिमें) न ताकीर्ष करनेवाक्य न कहु कहनेवाका हूँ ; सिर्फ आने-गहिरने भरसे वास्ता रखने  
 वाक्य (ही) विहरता हूँ।

‘गृहपति ! तू जिन प्रकार व्यवहारके उच्छेदको करता है। जायोंके विनयमें  
 व्यवहार-उच्छेद, (इससे) दूसरी ही प्रकार होता है।

‘तो मन्ते ! धर्म विनयमें व्यवहार-उच्छेद कैसे होता है ? अच्छ ! मन्ते !  
 भगवान् मुझे उस प्रकारका धर्म उपदेश करी जैसे कि धर्म-विनयमें व्यवहार-उच्छेद होता है।

‘तो गृहपति ! मुझे अच्छी तरह मनमें करो ; कहता हूँ।

अच्छ मन्ते !’ पोतक्षिप गृह-पतिको मनावाक्यो कहा। भगवान्ने कहा—

‘गृहपति ! धर्म-विनय (=धर्म-धर्म धर्म विनय) में यह आठ धर्म व्यवहार  
 उच्छेद करनेके किये हैं। कौन स जाद ? (१) अ-प्रत्यातिपाठ (=आहिंसा) के किये  
 प्रत्यातिपाठ छोड़ना चाहिये। (२) विद्या-केने (=विद्यादान) के किये अ-विद्यादान  
 (=चोरी न विद्या लेना) छोड़ना चाहिये। (३) सत्व बोकनेके किये सूबावाह छोड़ना  
 चाहिये। (४) अ-पिण्डन-वचन (=न पुगकी करने) के किये पिण्डन-वचन छोड़ना  
 चाहिये। (५) अ-गृह-कोम (=निर्धर्म) के किये गृह-कोम छोड़ना चाहिये। (६) अ-  
 मित्रा-दोषके किये मित्रा छोड़ना चाहिये। (७) अ-द्वेष-उपावास (=परेवासी) के किये  
 द्वेष-उपावास छोड़ना चाहिये। (८) अन्-अतिमानक किये अतिमान (=अभिमान) को  
 छोड़ना चाहिये। गृहपति ! संक्षिप्तसे कहे, विस्तारसे व विभाजित किये यह आठ धर्म,  
 धर्म-विनयमें व्यवहार-उच्छेद करनेके किये हैं।’

‘मन्ते ! भगवान्ने जो मुझे विस्तारसे व विभाजित किये संक्षिप्तस भाव धर्म  
कहा । अच्छा हो मन्ते ! (पति) भगवान् अनुकम्पाकर (उम्हें) विस्तारसे विभाजित करें ।

“तो गृहपति ! सुनो, अच्छी तरह मममें करो कहता हूँ ।”

“अच्छा मन्ते ! पोतकिय गृहपतिने भगवान्को उत्तर दिया । भगवान् बोले—

“गृहपति ! ‘अप्राप्यतिपातके किये प्राणातिपात छोड़ना चाहिये यह जो कहा किस  
कारणसे कहा ? गृहपति ! आर्ष-भाषक ऐसा सोचता है—‘जिन संयोजनोंके कारण मैं  
प्राणातिपाती होऊँ’ उन्हीं संयोजनोंको छोड़नेके किये उच्छेदके किये मैं क्या हूँ’ और मैं  
ही प्राणातिपाती होगया । प्राणातिपातके कारण आत्मा (=अपना चित्त) भी मुझे बिखरता  
है । प्राणातिपातके कारण विश्व लोग भी जानकर बिखरते हैं । प्राणातिपातके कारण कया  
छोड़नेपर मरनेके बाद दुर्गति भी होती है । वही संयोजन (= बंधन) है यही नीबरण  
(= बन्धन) है जो कि यह प्राणातिपात । प्राणातिपातके कारण जो विघात-परिहाह (= होंप  
जकम) और आसन्न (= चित्त-रोप) उत्पन्न होते हैं प्राणातिपातमें विरतको वह विघात  
परिहाह, आसन्न वही उत्पन्न होते हैं । ‘अ प्राप्यतिपातके किये प्राणातिपात छोड़ना चाहिये  
यह जो कहा वह इसी कारणसे कहा ।

द्विज्ञानके किये अद्विज्ञान छोड़ना चाहिये यह जो कहा किस कारणसे कहा ?  
गृहपति ! आर्ष-भाषक ऐसा सांकेतिक है—‘जिन संयोजनोंके हतु मैं अद्विज्ञानी (= विना दिया  
बनेवाला) होताहूँ’ उन्हीं संयोजनोंके छोड़नेके किये मैं क्या हुआ हूँ ?  
और मैं ही अद्विज्ञानी हांगया ! अद्विज्ञानके कारण आत्मा भी मुझे बिखरता है । अद्विज्ञान  
के कारण विश्व लोग भी जानकर बिखरते हैं । अद्विज्ञानके कारण कया छोड़नेपर मरनेके  
बाद दुर्गति भी होती है । वही संयोजन है यही नीबरण है जो कि यह अद्विज्ञान ।  
अद्विज्ञानके कारण विघात (= पीड़ा) परिहाह (= बन्धन) (और) आसन्न उत्पन्न होते हैं,  
अद्विज्ञान-विरतको वह वही होते हैं । ‘द्विज्ञानके किये अद्विज्ञान छोड़ना चाहिये  
यह जो कहा वह इसी कारण कहा ।

‘अ-पिच्छ-बन्धनके किये ।

‘अ-गृह-कोमके किये ।

अ-निम्न-रोपके किये ।

‘अ-ज्योष-उपाशासके किये ।

‘अन्-मतिमानके किये ।

“गृहपति ! वह आठ संक्षिप्तमें कहे विस्तारस विभाजित धर्म आप-बिनधमें व्यवहार  
उच्छेद करनेवाले हैं । (किंगु इत्तस) सर्वथा सब कुछ व्यवहारका उच्छेद नहीं होता ।”

“तो कैस मन्ते ! आप-बिनधमें सर्वथा सब कुछ व्यवहार उच्छेद होता है ? अच्छा  
हो मन्ते ! भगवान् मुझे कैस धर्मका उपदेश करें, कैसे कि आर्ष-विश्वमें सर्वथा सब कुछ  
व्यवहारका उच्छेद होता है ?”

“तो गृहपति ! सुनो अच्छी तरह मममें करो कहता हूँ ।”

“अच्छा मन्ते । । ।

“गृहपति ! जैसे मूलस अति-दुर्बल कुत्तुर गो-मातकके सूना (= माँस कारक



पीरे) के पास जवा हो। कुर गो-घातक वा गा-घातकका जन्मेवासी उसको मॉसि-रहित कोहूमें सजी-हूँी पैक दे। तो क्या मानते हो गृहपति ! क्या वह कुम्भुर उस हूँी 'का काकर, मूजकी दुर्बकटाको हय सकता है ?'

'नहीं, भन्ते !

'तो किस हनु ?

'भन्ते ! वह छाह-में खुपही मॉसि-रहित हूँी है। वह कुम्भुर केवळ परेसाकी = पीषाकाही भागी होगा ।'

'ऐसे ही गृहपति ! आर्ष-भावक सोचता है—'मगावान्ने भोगोष्ठी बहुत दुःख बहुत परेसाकीबाके हूँीजसा कहा है इममें बहुतसी बुराहर्षा है। अतः इसको पयार्थसे अच्छी तरह प्रज्ञासे देखकर जो वह अनेकतावाकी अनेकमें जगी उपेक्षा है उसे छोड़ जो वह एकान्तवाकी एकान्तमें जगी ( उपेक्षा ) है जिसमें जोकक कामिप ( =भोग ) का उपादान ( =मदह ) सर्वथा ही हट जाते है; उसी उपेक्षाकी भावना करता है।

'जस गृहपति ! गिय, कौबा या बीख मॉसि-रहित हुकपेको लेकर उदे उसको गिय मी अने मी बीख मी पीछे उद उदकर मोर्षे खसोटें। ता क्या मानता है गृहपति ! वह गिय कौबा वा बीख यदि शीघ्र ही उस मॉसि-रहित हुकपेको न छोड़ दे तो वह उसक अरम मरजका वा मरवान्नु दुःखको पावेगा ?

'ऐसा ही भन्ते !

'ऐसा ही गृहपति ! आर्ष-भावक सोचता है—'मगावान्ने मॉसि-रहित हुकप की मॉसि-रहित बहुत दुःखवासे बहुत परेसाकीबाके कामों(भोगों)को कहा है; इममें बहुतसी बुराहर्षा है। इम प्रकार इसको अच्छी तरह प्रज्ञासे देखकर जो वह अनेकतावाकी अनेकमें जगी उपेक्षा है उसे छोड़ जो वह एकान्तवाकी एकान्तमें जगी उपेक्षा है; जिसमें जोककामिप ( =मॉसि-रहित भोग ) का उपादान ( =मदह ) सर्वथा ही बरिक्क हा जाते है; उसी उपेक्षाकी भावना करता है।

'जस गृहपति ! पुन नूजकी उरका ( =मसाक लुकारा ) को ल हवाके हय जावे। ता क्या मानते हो गृहपति ! यदि वह पुन शीघ्र ही उस नूज-उरकाकी न छोड़ दे तो ( क्या ) वह नूज उरका उसकी दधनीको ( न ) उरका दगी वा बौहका ( न ) अरम देगी वा नूमर भंग प्रान्तको न जका देती ?'

'जसा ही भन्ते !

'जस ही गृहपति ! आर्ष-भावक सोचता है—'नूज उरकाकी मॉसि-रहित बहुत दुःखवासे बहुत परेसाकीबाके है । ।

'जसे कि गृहपति ! मू-रहित अर्षि ( =मर्षि )-रहित भंगारका ( =भर, अमि-वर्ष ) हा। नव जिकि-इप्पुक मरक-अमिप्पुक लुग-इप्पुक दुःख अमिप्पुक पुन भाव; उनको ही बरपान पुन अनेक बाहुओं बरकर अहारकमें हाक हैं। ता क्या मानते हो गृहपति ! क्या पद पुन इम प्रकार बिगादीमें शरि ( नहीं ) हाकता ?'

'हैं भन्ते !'

'ता किस हनु ?'

‘मन्ते ! उस पुण्यको मात्म है यदि मैं हम अज्ञानधर्मोंमें सिद्धिगा तो उसके कारण मर्कंगा या मरणांत दुःख पाईंगा ।

‘पूसे ही गृहपति आर्य आचक यह सोचता है—अज्ञानकाकी मूर्ति दुःखम् । इसमें बहुत बुराईयाँ हैं । ।

‘जैसे गृह-पति ! पुण्य आरामकी रमणीयतासे पुण्य, वन-रमणीयता-पुण्य मृमि रमणीयता-पुण्य पुष्करिणी रमणीयता-पुण्य स्वमकां देव । सां बागमैपर कुछ न देखें । ऐसीही गृहपति ! आर्य-आचक यह सोचता है—मगवान्ने ( भोगोंको ) स्वप्न-समाच ( स्वप्नोपम ) बहुत दुःखम् कहा है । ।

‘असे कि गृह पति ! (किसी पुण्य (क पास) मँगनीक भोग बाल या पुण्यक उत्तम मणिदुष्ट हैं । वह उन मँगनीके भोगोंके साथ बाजारमें जाये । उसको देखकर आश्चर्य करे—कैसा भोग-संपन्न पुण्य है ! भोगी लोग ऐसेही भोगका उपभोग करत हैं ॥ सो उसको माकिक (स्वामी) जहाँ देखें वहाँ कनात कगारें । ता क्या मानते हो गृहपति ! क्या उस पुण्यक दूसरा (आर्य समझना) पुण्य है ?

‘हाँ मन्ते !

‘सो किम हेतु ?

‘( क्योंकि जेवरोंके ) माकिक कनात घेर देते हैं ।’

‘ऐसेही गृहपति ! आर्य आचक पूसा सोचता है—मगनीकी चीजक समाच ( = बाणितकूपम ) कहा है । ।

‘अस गृहपति ! प्राप्त वा निगमसे अ-बुर भारी बल-कण्ड ही । वहाँ कक-सम्पन्न = उत्पन्न कक वृक्ष हो । कोई कक मृमिपर न गिरा हो । तब कक-दृष्ट्युक्त, कक-गणेशक-कक-काजी पुण्य वृमते हुये आये । वह उस बलके मतिर जाकर उस कक-संपन्न वृक्षको देखे । उसको यह हो—वह वृक्ष कक-सम्पन्न है कोई कक मृमिपर नहीं गिरा है, मैं वृक्षपर चढ़ना जानता हूँ । क्यों न मैं चढ़कर इच्छा भर खाऊँ जाँर फँड ( = उत्पन्न उत्पन्न ) नर न चखूँ । तब दूसरा कक इच्छुक कक-गणेशी-कक-काजी पुण्य वृमता हुआ तेज कुप्याहा छिद्ये उम बल कण्डक भीतर जाकर उस वृक्षको देखे । उसको पूसा हो—वह वृक्ष कक सम्पन्न है मैं वृक्षपर चढ़ना नहीं जानता, क्यों न हम वृक्षका अक्षर करकर इच्छा भर खाऊँ धीर फँड भर के चखूँ । वह उस वृक्षको अक्षर करत । तो क्या मानते हो गृहपति ! वह वा पुण्य वेदपर पश्चिमे क्या वा बहि अन्विष्टी न उतर जाये ता (क्या) वह गिरता हुआ वृक्ष अक्षर हाथको (न) तोड़ देगा पैरको (न) तोड़ देगा वा दूसरे अज्ञानकक (न) तोड़ देगा ? वह उसके कारण क्या मरणको (न) प्राप्त हागा वा मरणांत दुःखको ( न प्राप्त होगा ) ?

‘हाँ मन्ते !

‘पूसा ही गृह-पति ! आर्य-आचक सोचता है—वृक्ष-कक-समाच कामोंको कहा है, हममें बहुत सी बुराईयाँ ( = अवि-नव ) हैं । हम प्रक्यर इसको क्यार्थतः अर्थात् प्रक्यर मशासे देखकर, जो यह अवेदता-बाकी अवेदमें कगी उपेक्षा है उसे छोड़, जो यह एकांतकी

एकान्तमें कभी उपेक्षा है जिसमें कोट-आमिषका उपादान ( = महान ) सर्वथाही उपेक्षित हो जाता है उसी उपेक्षाकी भावना करता है ।

'सो वह गृहपति ! आर्य-आचक इसी अनुपम ( = अनुसार ) उपेक्षा स्मृतिकी पारिभुक्ति ( = स्मरणको छुट्टि करनेवाकी ) को पाकर, अनेक प्रकारके पूर्व-विपत्तों ( = पूर्व जन्मों ) को स्मरण करता है, — बस कि एक जन्म भी हो जन्म भी तीस जन्म भी' इस प्रकार अकार-सहित उद्भव ( = नाम )-सहित अनेक प्रकारके पूर्व-विपत्तोंको स्मरण करता है ।

'सो वह गृहपति ! आर्य-आचक इसी अनुपम उपेक्षा स्मृति-पारिभुक्तिको पाकर, दिव्य वि-मुद्द ध-सामुप दिव्य चक्षुसे मरते उत्पन्न होते नीच-ऊँच पुण्य-दुपुण्य मुपत दुर्गत कर्मादुसार ( = कर्मके ) प्राप्त प्राणियोंको जानता है ।

'सो वह गृहपति ! आर्य-आचक इसी अनुपम उपेक्षा स्मृति-पारिभुक्तिको पाकर इसी जन्ममें आत्माओं ( = चित्त-श्रोत्रों ) के छवमं अन्-आचक चित्त-विमुक्तिको जानकर, पासकर, बिहरता है । गृहपति ! आर्य-विलसमें इस प्रकार सर्वथा सभी कुछ सब व्यवहारका उच्छेद होता है । ता क्या मानता है गृहपति ! जिस प्रकार आर्य-विलसमें सर्वथा सभी कुछ व्यवहार उच्छेद होता है क्या तु वैसे व्यवहार-समुच्छेद अपनेमें देखता है ?'

मन्ते ! कहाँ मैं और कहाँ आर्य-विलसमें व्यवहार-समुच्छेद ! मन्ते ! पश्चिमे अन्-आजानीय अन्व-तैत्तिक ( = पूर्वार्द्ध ) परित्राजकोंको हम आजानीय ( = परिभुद्ध मुद्द क्रांतिक ) समझते थे आजानीय होतोंको आजानीयका भोजन कराते थे अन्-आजानीय होतोंको आजानीय-स्थानपर स्थापित करते थे । आजानीय मिथुनोंको अन्-आजानीय समझते थे आजानीय होतोंको अन्-आजानीय भोजन कराते थे आजानीय होतोंको अन्-आजानीय स्थानपर रखते थे । मन्ते ! अब हम अन्-आजानीय होते अन्व-तैत्तिक परित्राजकोंको अन्-आजानीय जानते अन्-आजानीय भोजन करावेंगे, अन्-आजानीय स्थानपर स्थापित करेंगे । मन्ते ! अब हम आजानीय होते मिथुनोंको आजानीय समझेंगे आजानीय भोजन करावेंगे, आजानीय स्थानपर रखेंगे । कहाँ ! मन्ते ! भगवान् मुझे जन्मोंमें भ्रमण-म म पीदा कर दिया भ्रमणों ( साधुओं ) में भ्रमण-प्रसाद ( = भ्रमणोंके प्रति प्रसन्नता ) भ्रमण-गौरव । आश्चर्य ! मन्ते ! आश्चर्य ! मन्ते ! आश्चसे मगपात् मुन आश्चर्यी-यद्द सरस्वगत उपासक धारण करे ।"

x

x

x

x

( १२ )

सेल-सुघ ( ३० पू ५१५ ) ।

'येमा मीने मुक्ता—एक समय मगवाद् सारे बारद मी मिथुनोंक महामिथु-संघके साथ अगुचराप ( वंसमें ) पारिका करत हुये जहाँपर आपण नामक विगम ( = प्रसा ) था वहाँ पहुँच ।

१ देखो पृष्ठ ११५ ।

२ म दि. १११ ३ । मुक्त-निपाठ ३ । ।

केणिय अटिल्लम पुता—साक्य-कुक्कम प्रमज्जित् धाक्य-पुत्र अमण गौतम साइ बारह मी मिथु-सबके महासिधु-सबके साथ अंगुत्तरापमें बारिका करते हुए, आपजमें ब्यये है । उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण कीर्ति-वाक्य फँसा हुआ है । । इस प्रकारके अर्थात्का इत्तम उत्तम होता है ।

तब केणिय अटिल्लम वहाँ भगवान् से वहाँ गया आकर भगवान्के साथ संमोदन कर ( कुमाक-प्रसन्न पृष्ठ ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे केणिय अटिल्लको भगवान्क बर्म-उपदेश कर, संदर्शन समादपन समुत्तेजन संप्रशंसन किया । भगवान्के धम-उपदेश द्वारा संदर्भित हा केणिय अटिल्लम भगवान्को कहा—

“आप गौतम मिथु-सब-सहित ककक मरा भोजन स्वीकार करें ।

पूना कहनेपर भगवान्से केणिय अटिल्लको कहा—

“केणिय ! मिथु-सब बड़ा है साइ बारह सा मिथु है, आर तुम ब्राह्मणोंमें प्रसन्न

( = अद्वासु ) हो ।

दूसरी बार भी केणिय अटिल्लसे भगवान्को कहा—

“क्या हुआ है गौतम ! जा बड़ा मिथु-सब है साइ बारहमी मिथु है और मैं ब्राह्मणोंमें प्रसन्न हूँ ! आप गौतम मिथु-सब-सहित ककक मरा भोजन स्वीकार कर ।

दूसरी बार भी भगवान्ने केणिय अटिल्लको यही कहा— ।

तीसरी बार भी केणिय अटिल्लसे भगवान्को यही कहा— ।

भगवान्क माव रहकर स्वीकार किया ।

तब केणिय अटिल्ल भगवान्की स्वीकृतिको ज्ञान भासवाम उठ वहाँ उसका आश्रम था वहाँ गया । आकर मित्र-अमात्य आति-विराद्रीवालोंक कहा—

“आप सब मेरे मित्र-अमात्य आति-विराद्री सुर्न—मेरे मिथु-सब-सहित अमण गौतमको ककको मावकके किये विमंत्रित किया है सो आप जाग धीररसे सेवा करें ।

“अच्छ हो !” केणिय अटिल्लको मित्र-अमात्य आति-विराद्रीने कहा । ( उनमें से ) कोई वृथा खादने को कोई कककी फाइन को कोई बतल पोने को, कोई पानीक मटक ( = मज्जिक ) रसन को कोई आसन विमन को । केणिय अटिल्ल स्वयं पर-मंडप ( = मंडक-माक ) तैयार करने लगा ।

उस समय मिधुपट्ट कक्य ( = केट्टम )-अच्छर-अमर-सहित तीनों बद् तथा पाँचवें इतिहासमें पारइत पट्ट ( = ककि ) देवाकरण को-अपत ( शाक ) तथा महापुण्यलक्षण ( = नामुद्रिक-साक ) में निपुण ( = अथवथ ) सैक नामक ब्राह्मण आपजमें बाम करता था ; आर तीसरी विद्याजिरी ( = मावक ) का मंध ( = वेद ) पढ़ाता था । उस समय इतल ब्राह्मण केणिय अटिल्ल में जल्पन्त प्रमन्न ( = अद्वासु ) था । । तब ( वह ) तीसरी मावकके माव अंधा-बिहार ( = अहक-कामी ) क किय खल्ला हुआ वहाँ केणिय अटिल्लक आश्रम था वहाँ गया । इतल ब्राह्मणने देखा कि केणिय अटिल्लक अटिल्लों ( = अटा धारी बालरन्धी सिपों ) में कोई वृथा खाए रहे है तथा केणिय अटिल्ल स्वयं मंडक-माक तैयार कर ( रहा है ) । देखकर (उमने) केणिय अटिल्लम कहा—

“क्या आप केणियक वहाँ आबाह होगा विवाह होगा वा महा-वज्र अथ पट्टु वा है ?

या बहक-कष (अनेता)-सहित मगध-राज अग्नि विवसार ककके मोखलके छिने विमंत्रित किया गया है ?

“वहीं शौछ ! न मेरे वहाँ आबाह होगा न विबाह होगा भार न बहक-कष-सहित मगध-राज अग्नि विवसार ककके भावक छिप निर्मंत्रित है । बरिड मेरे वहाँ महा-वय है । साक्ष्य-कुम्भस प्रमन्त्रित साक्ष्य-पुत्र भमन गौतम माने बारहमी मिष्ठुभोंके महामिष्ठु-संघ के साथ जंगुत्तरावमें कारिका करते आपजमें जाये हैं । उन मगवान् गौतमक देसा मंगल कीर्ति-सम्प लेका हुआ है—वह अगवान् अर्हत् सम्बन्-संभुइ विद्या-आचरण-सपक सुगत लोक-विदु, अनुत्तर (= अनुपम ) पुत्रोंके वापुक-सवार देव-मनुष्योंके साक्षा पुत्र मगवान् हैं । वर मिष्ठु-संघ-सहित कक मेर वहाँ निर्मंत्रित हुये हैं ।

“हे अग्नि ! (नवा) ‘पुत्र’ कइ रहे हो ?”

“हे शौक ! (हाँ) ‘पुत्र’ कइ रहा हूँ ।

पुत्र कइ रहे हो ?”

“पुत्र कइ रहा हू ।

“पुत्र कइ रहे हो ?

पुत्र कइ रहा हू ।

तब शौक माण्डवको हुआ—‘पुत्र’ ऐसा शोध ( = आवाज ) मा कोकर्म दुर्मम है । हमारे मंत्रोंमें महापुत्रोंके बर्तीस कलन जाए हुए हैं, जिसस पुत्र महापुत्रकी हीरी गतिपाई हैं—वदि वह वरमें बास करता है तो वारों ओर तकका राजबवाका धार्मिक धर्म-राज बकवर्ती राज ( होता ) है । वह सागर-पर्यन्त इस पृथिवीको जिला दण्ड-शस्त्रके धर्मस विजय कर ज्ञानन करता है । और वदि घर छोड़ बेघर हो प्रमन्त्रित होता है ( तो ) कोकर्म आप्जानुन-रहित अर्हत् सम्बन्-संभुइ होता है । ‘हे केमिय ! तो फिर कइँ वह आप गौतम अर्हत् सम्बन्-संभुइ इस समय विहार करते हैं ?’

ऐसा कहने पर केपिय जटिछने दाहिनी बाँह पकडकर शौक माण्डवका वह कहा—

‘हे भल ! वहाँ वह बील बच-पौती है ।’

तब शौक तीनती मालवकोंके साथ वहाँ मगवान् ने वहाँ गया । तब शौक माण्डवने वच माण्डवकोंको कहा—

“आप लोग विस्तार ( = अक्षय सत्त् ) हो पैरके बाजू पैर रखने जावें । सिहोंकी मूर्ति वह मगवान् ककके विचरनेवाले ( और ) दुर्मम होसे हैं । बार जब डी भ्रमन गौतमके साथ संबाव कइँ तो आपको मेरे बीचमें बात न उठवें । आपकोय मेरे (कथन की समाप्ति तक चुप रहें ।”

तब शौक माण्डव वहाँ मगवान् से वहाँ गया ; जाकर मगवान्के साथ संमोहनकर ( कुशल-वच वृत् ) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठकर शौक माण्डव मगवान्के शरीरमें महापुत्रोंके बर्तीस अक्षण गोजने लगा । शौक माण्डवने बर्तीस महापुत्र-व्यसनोंमेंये दाको काप अचिन्ता मगवान्के शरीरमें देख किय । वो महापुत्र-लक्षणों—सिन्धु-सिंह की पुत्र-गुर्दी त्रिब बार अति-नीच-त्रिधा क वारमें स रहमें था । तब मगवान्के इस प्रकारका योगबक प्रकट किया त्रियम कि शौक माण्डवने मगवान्के काप आप्जानिन बलि-गुणको दया । फिर मगवान्

जीम बिकाकर ( उससे ) दोनों कानोंके जोतको सुभा मारे ककमर मंडकको जीमसे ढाँक  
 दिवा । तब शैल ब्राह्मणको ऐसा हुआ—अमन गौतम ध-परिपूर्ण नहीं परिपूर्ण बचीस  
 महापुरुष-कण्ठमेंसे पुक है । लेकिन कह नहीं सकता—तुझ हैं या नहीं । तुझ म महाकक  
 ब्राह्मणों आचार्य प्रवाचोंको कहते सुना है—कि जो अर्हत् सम्पक-संतुद्ध होते हैं वह अपने गुण  
 कहे जानेपर अपनेको प्रकाशित करते हैं । क्यों न मैं अमन गौतमके संसुख उपपुत्र गाथाओंसे  
 स्तुति करूँ । तब शैल ब्राह्मण मगधानके नामसे उपपुत्र गाथाओंसे स्तुति करने लगा—

“परिपूर्ण-अथा सुन्दर अथि ( =कृति ) बाके सुजाय चाद-दर्शन ।

सुबर्णवर्ण हो मगधान् ! सु-सुख-दति हो ( नार ) बीर्बवान् ॥१॥

सुजात ( =सुन्दर अम्मबाक ) नरके जो प्बंजन ( =अमन ) होते हैं

वह सभी महापुरुष-कण्ठज तुम्हारी अथार्थ ( ई ) ॥१॥

प्रमथ ( =निर्मक )-वेद सुमुख बड़े सीधे प्रताप-वान् ।

( भाप ) अमन सबके बीचमें आदित्यकी मूर्ति बिराजते हो ॥२॥

कल्याण-वर्णन ह मिथु ! कंचन-समान शरीरवाले ।

पूरे उत्तम वर्णवाले तुम्हें अमन-भाव ( =मिथु होने ) में क्या ( रक्खा ) है ॥३॥

तुम तो चारों ओरके राज्यवाके अम्प्रीपक न्यामी ।

रत्नम चक्रवर्ती राजा हो सकत हो ॥४॥

अग्निव मोक्ष-राजा ( =मंडकि-राजा ) तुम्हारे अनुयायी होते ।

ह गौतम ! राजाधिराज मनुजैन्द्र होकर राज्य करो ॥५॥

( मगधान्- ) “शैल ! मैं राजा हूँ अनुपम धर्मराजा ।

मैं न पकड़नेवाला चक्र धर्मके पाथ चल रहा हूँ ॥६॥

( शैल- ) “अनुपम धर्म-राजा संतुद्ध ( धपनेको ) करते हो ?

ह गौतम ! धर्मसे चक्र चल रहा हूँ कह रहे हो ॥७॥

कौन या दन्तप ( =वाग ) आषक आप साम्राजा सेनापति है ?

कौन इस अथार्थे धर्म चक्रको अनु-चाकन कर रहा है ॥८॥

( मगधान्- ) “शैल ! मेरे द्वारा स चाकित चक्र अनुपम धर्म-चक्रको ।

तथागतक अनुयात ( =पीछे उत्पन्न ) सारिपुत्र अनुचाकित कर रहा है ॥९॥

शातम्बको जान किया भावनीवकी साधना कर ली ।

परित्यागका कोष दिवा अता हे ब्राह्मण ! मैं तुझ हूँ ॥१०॥

ब्राह्मण ! मेरे विषयके संशयको हटायो छोड़ो ।

बार-बार संतुद्धोंका दर्शन तुल्य है ॥११॥

कोकमें बिसक बार-बार प्रादुर्भाव तुल्य है ।

वह मैं ( राग आदि ) सत्यक छेदनवाला अनुपम संतुद्ध हूँ ॥१२॥

महा-मूल तुल्य-रहित मार ( = रागादि जनु )-मवाक प्रमर्क ।

( मुझे ) देखकर कौन न संतुद्ध होगा चाहे वह कल्प-अभिजातिक क्यों न हो ॥१३॥

(सूक्त—) “जो मुझे चाहता है ( वह मेरे ) पीछे जावे जो नहीं चाहता वह जावे ।

( मैं ) वहाँ उत्तम-महाबाह ( गुह्य ) के पास प्रव्रजित<sup>१</sup> होऊँगा ॥१५॥

(शौकके सिन्धु)<sup>२</sup> “बढ़ि जापको वह सम्बन्ध-सुखका शासन ( =धर्म ) रहता है ।

( तो ) हम मी बर-महक पास प्रव्रजित होंगे ॥१६॥

यह कितन हीनसी ब्राह्मण हाथ-जोड़े हैं ।

( वह ) समी मगवान् ! तुम्हारे पास ब्रह्मचर्य<sup>३</sup> चरन करेंगे ॥१७॥”

(मगवान्—सूक्त ।) “(यह) ‘सांख्यिक’ ‘अकाशिक’ ‘स्वात्म्यात ब्रह्मचर्य है ।

वहाँ प्रमाद-शून्य सीखनेवालोंकी प्रव्रज्या असोच है ॥१८॥

शौक ब्राह्मणके परिषद्-सहित भगवान्के पास प्रव्रज्या आर उपसंपत्ता पाई ।

तब केपिय अटिठके उस रातके बीतनेपर अपने आश्रममें उत्तम जाघ-भोजन तैयार करा भगवान्को काककी सूचना दिक्वाई । तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-बीबर के वहाँ केपिय अटिठके आश्रम था वहाँ गये । बाहर बिछे आसबपर मिठु-संधके साथ बैठे । तब केपिय अटिठने सुख-मसुख मिठु-संधको अपने हाथमें संतर्पित किया पूर्ण किया । अगिय अटिठ भगवान्के भोजन कर पात्रस हाथ हटा केने पर एक बीबा आसब के एक ओर बंद गया । एक ओर बैठे हुये केपिय अटिठको भगवान्ने दूध गाथाओंसे (दाब) अनुमोदन किया—

“यहाँमें सुख अगि-होव है जन्मोंमें सुख ( =सुख्य ) सावित्री है ।

मनुष्योंमें सुख राजा है बधिधोंमें सुख सागर है ॥ (१)

बधुओंमें सुख चन्द्रमा है तपनेवालोंमें सुख आदित्य है ।

इच्छियोंमें (सुख) पुष्य (ई) पञ्च ( =दृष्टा ) करनेमें सुख संप है ॥ (२)

भगवान् केपिय अटिठको दूध गाथाओंसे अनुमोदित कर आसबसे उठ कर चक विरे । तब आनुष्मान् शौक परिषद्-सहित एकान्तमें प्रमाद-रहित उद्योग-सुख, आत्म-विग्रही हा बिहारे अथरमें ही कितके किये कुल-पुत्र चरसे बेबर हो प्रव्रजित होतै ई उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्त ( =विवाह ) को इसी अश्रममें स्वयं जानकर साक्षात् कर प्राप्त कर बिहारे खो । ‘अन्त छन हो पना ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया । करनीच कर लिया गया और वहाँ कुल करना नहीं —यह जान गये । परिषद्-सहित आनुष्मान् संक चर्चत हुये ।

तब आनुष्मान् शौकने साक्षा ( =सुख )के पास बाकर, बीबरको ( इक्षित कंथा नंगा रक्त ) एक कंधेपर (रक्त) बिबर भगवान् के अचर नम्बकि जांच कर भगवान्को प्रव्रज्यासे कहा—

हे अनुष्मान् ! जो मी आजस जाड दिन पूर्व तुम्हारी आजन आया ।

हे भगवान् ! तुम्हारे आसबमें साथ ही रातमें दौध हो गया ॥ (१) ॥

तुम्हीं सुख हो तुम्हीं शान्त्य हा तुम्हीं मार-बिजयी मुनि हो ।

तुम (राग जादि) अनुसर्वाँछ छिन्न कर (स्वयं) उर्ध्वार्च हो दूध प्रजाका तारते हो ॥२॥

अपनि तुम्हारी इद गई, आजस तुम्हारे बिहारित हा गये ।

१ गृह त्यागी । २ प्रत्यक्ष ककप्रह । ३ व काकान्तरमें कक-प्रह । ४ सुन्दर प्रकारमें व्याख्यात किया गया । ५. सावित्री गावर्धी ।

मिह-समान भव (सागर) की भीषणतामें रहित तुम उपादान रहित हो ॥१॥  
बह तीन सां मिथु हाव बोधे लड़े हैं ।

इ बीर ! पाद प्रसारित करो (पह) माग (उपाय-रहित) शारदाकी बंधना करें ॥२॥

+ + +  
( १७ )

केनिय झटिल । रोक्षमल्ल उपासक । आपणसे भावस्ती । ( ३ पू ५१५ )

'तब केनिय जटिलको हुआ—मैं भ्रमण गौतमके किने क्या किया करूँ । फिर  
केनिय इतिहासको हुआ—'जो कि वह महाशक्तोंके पूर्वके कृपि मंत्रोंको रचनेवाले (उरुचि)  
मंत्रोंको प्रवचन (व्याचन) करनेवाले थे—जिनके पुराने मंत्र-यज्ञको गीतको कथितको  
समीहितको आशंकक माकल अनुगाव करते हैं अनुभाषण करते हैं; मापितको ही अनुभाषण  
करते हैं बौधेको ही अनु-वाचन करते हैं—बड़े कि—अइक वामक वामद्व विवामित्र  
वमद्विगि भट्टिरा मारहाव वसिष्ठ कल्पव भृगु<sup>१</sup> । ( वह ) रातको ( भोजनसे ) उपरत थे  
विक्रास ( मन्त्राहोचर )-भोजनसे विरत थे । वह इस प्रकारके पाव ( पीनेकी चीज ) पीते  
थे । भ्रमण गौतम भी रातको उपरत = विक्रास-भोजनसे विरत हैं । भ्रमण गौतम भी इस  
प्रकारका पाव पी सकते हैं । ( यह सोच ) बहुतसा पाव तय्यार करा बँहगी ( अन्न )में  
उठवाकर वहाँ भगवान् से वहाँ गया । आकर भगवान्के साथ संभोजन किया ( बीर )  
एक ओर खड़ा हो गया । एक ओर लड़े हुए केनिय इतिहासने भगवान्को कहा—

"हे भगवान् ( उपाय ) ! गौतम यह मेरा पाव ग्रहण करें ।

"केनिय ! तो मिथुओंको वा ।"

मिथु आगा-पीछा करते ग्रहण नहीं करते थे ।

"अनुया देता हूँ मिथुओंको ! जाठ पावकी । आन्न-पाव अम्बू-पाव बोध-पाव माघ  
( अकेका )-पाव, मयु-पाव सुरिक ( = मंगूर )-पाव, साखक ( = कोंडकी बड़ )-पाव  
बीर पदसक ( = पदकसा )-पाव । अनुया देता हूँ सभी कक-रसोंकी एक जनाजक  
कक-रसमें छोड़ । सभी पत्र-रसकी एक बाकक रसको छोड़ । सभी पुष्प-रसकी एक  
महुवेके फूकक रस छोड़ । अनुया देता हूँ ककके रसकी । ..

x x x x

तब आपणमें इच्छानुमार विहार कर भगवान् साधे बारहसौ मिथुओंके मिथु-सच-सहित  
वहाँ कुसीनाराथ भी उपर बारिकक किने चक दिये । कुसीनाराथके 'मच्छो'ने मुना—साधे  
बारहसां मिथुओंके महासंधक साथ भगवान् कुसीनारा आ रहे हैं । उन्होंने निवम किया—  
'जा भगवान्की भयवाभीको नहीं आवे उसको पाँच सा रूँड । इस समय रोज वामक मल्ल  
भावन्क मित्र था । भगवान् वमराा बारिक करतें वहाँ कुसीनाराथ भी वहाँ पहुँचे ।  
कुसीनाराथके मच्छोने भगवान्क मन्पुद्गमव ( = भगवानी ) किया । रोजमक भी भगवान्का

१ परि-मह । २ महावाण्य । ३ इनके रथे मंत्रोंके बारेमें देखो "वर्षान्तरिर्वाच" पू ५१८ । ४ कसबा जि गोरखपुर । ५ आशंकककी सैबवार कृति ।



प्रत्युद्गमन कर जहाँ आयुष्मान् भ्रामन्थे थे, वहाँ गया। जाकर आबन्धको अभिवादनकर, एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुये रोज मस्केको आयुष्मान् भ्रामन्थे कहा—

‘आयुस रोज ! वह तेरा (कल्प) बहुत सुन्दर (= उदार) है जो तुने भगवान्की भगवाणी की।’

‘मन्ते ! भ्रामन्थे ! मैंने बुद्ध, धर्म सबका सम्मान नहीं किया ; बल्कि मैंने भ्रामन्थे ! ज्ञातिके दण्डके मयसे ही मैंने भगवान्का प्रत्युद्गमन किया।’

तब आयुष्मान् भ्रामन्थे म-सन्मुष्ट हुये—‘कैसे रोजमस्के ऐसा कहता है ?’

आयुष्मान् भ्रामन्थे जहाँ भगवान् थे वहाँ गए। भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् भ्रामन्थे भगवान्को कहा—

मन्ते ! रोजमस्के विभव-मन्थक अभिज्ञात-मसिद्ध मनुष्य है। इस प्रकारके ज्ञात मनुष्योंका इस धर्म-विषयमें प्रसाद (= ज्ञान) होना अप्पन्न है। अप्पन्न हो मन्ते ! भगवान् कैसा करे जिसमें रोज मस्के इस धर्म-विषय (= बुद्धधर्म) में प्रसन्न होवे।’ तब भगवान् रोज मस्केके प्रति सिद्धता-वर्ण (= मूत्र) चित्त उत्पन्न कर जासन से बट विहारमें प्रविष्ट हुये। तब रोज मस्के भगवान्के मूत्र-चित्तके स्पर्शमें छोटे बड़देवाकी गावकी भोंति एक विहारसे दूसरे विहार एक परिवेषसे परिवेषमें जाकर मिथुनोंको पृच्छता था—

‘मन्ते ! इस बण्ड वह भगवान् जहाँ सन्धक-संतुद्ध जहाँ विहार कर रहे हैं, इस उब भगवान् जहाँ सन्धक सन्मुद्धक वर्धन करवा चाहते हैं ?’

‘आयुस रोज ! वह वर्धाञ्ज-वन्द विहार है। मिःशम्प हो चरि भीरे जहाँ जाकर आकिन्धमें प्रवेशकर आंसकर बंजीरको बरखरायो भगवान् तुम्हारे किये द्वार खोक वेगे।’

तब रोज मस्के जहाँ वह बन्ध-द्वार विहार था वहाँ गित्तम्प हो भीरे भीरे जाकर आकिन्धमें हुसकर आंसकर बंजीर बरखराई। भगवान्ने द्वार खोक दिया। तब रोज मस्के विहारमें प्रवेशकर भगवान्की अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये रोज मस्केको भगवान्ने आयुर्विक कहा —‘रोजमस्केको उसी जासनपर विरज विमल धर्म बधु उत्पन्न हुआ—‘जो कुछ उत्पन्न होनेवाका है वह सब विनाश होनेवाका है। तब रोजने दण्डधर्म हो भगवान्को कहा—

अप्पन्न हो मन्ते जट्ठा (= आर्य = मिथु लोग) मेरा ही चीवर विट-वत्त (= मिथु) धवणामत्त (= आसन) म्भान-मत्थप-वेधज्ज-परिष्कार (= द्वा-मन्थ) प्रथक करि भीरीका बरी।

रोज तेरी तरह जिन्हींने अपूर्वज्ञान भीर अपूर्व-वर्धनमे धर्म देखा है उनको ऐसा ही होता है—‘जवा ही अप्पन्न हो अट्ठा मेरा ही प्रथक करि भीरीका बरी।’

तब भगवान् बुसीनारामे दण्डनुमार विहार कर जहाँ आतुमा भी जहाँ चारिण्डके निध बक दिने। उस समय आतुमामें बुधारेमें प्रव्रजित हुआ मूल वर्ध हजाम (= महापित) एक (= मिथु) विधाम करता था। उसके दो पुत्र थे (जो) जपवी विम्वान्तुरी धार धर्ममें सुन्दर प्रतिभावाकी इस सिष्यमें परिमुद्ध थे। बुद्ध-मन्थित

( बुझावमें = प्रव्रजित ) ने सुना कि भगवान् आतुमा जा रहे हैं । तब उस बृद्ध-प्रव्रजितने उन दोनो पुर्वोंको कहा—

तातो ! भगवान् आतुमामें जा रहे हैं । तातो ! इज्यामतक सामान केकर बाकी बाबापकक साथ बर धरमें फेरा जगाओ ( और ) कान तक तडुक भार बाघ ( परान ) संग्रह करो । जानेपर भगवान्को बचागू ( = किचड़ी ) राव देंगे । ”

“मच्छ तात ! बृद्ध-प्रव्रजितको कह, पुत्र इज्यामतक सामान के छोड़, तक तडुक बाघ संग्रह करते भूमने छो । उब फडकीका सुन्दर, मतिभा-संपन्न देकर, जिनको ( और ) न कराना था वह भी कराते थे भार अधिक देते थे । तब उन कर्कोंने बहुत सा छोड़ भी तक भी तडुक भी बाघ भी संग्रह किया । भगवान् क्रमसाः चारिक्र करते जहाँ आतुमा भी यहाँ पहुँचे । यहाँ आतुमामें भगवान् भुसापारमें बिहार करत थे । तब वह बृद्धा प्रव्रजित उस रातके बीच जगनपर, बहुत सा बागू तज्जार करा भगवान्के पास ल गया—“मगें ! भगवान् मेरी किचड़ी लीकार करें । भगवान्ने उस बृद्ध-प्रव्रजितसे पूछ—“कहाँस मिधु ! वह किचड़ी है ।

उस बृद्ध प्रव्रजितने भगवान्को ( सब ) बात कह दी । भगवान्ने पिजारा—

“मोच-पुच ( = लाकावक ) ! ( यह तेरा कहना ) अनुचित = धन अनुक्रम = अ-प्रतिक्रम अमज-कर्तव्यके विरुद्ध, अविहित ( = अ-कृपिय ) = अ-करमीव है । कैसे तू मोच पुच ! अविहित ( नीच )के ( जमा करनेके किये ) कहेगा ? ”

मिधुओंको आसन्नित किया—

“मिधुओ ! मिधुका निषिद्ध ( = अ-कृपिय ) के लिय जात्रा ( = समावपन ) नहीं ऐनी चाहिये । जो जात्रा व उसको दुष्कृत की जापति, और मिधुओ ! मृतपूर्व इज्यामको इज्यामतक सामान न ग्रहण करना चाहिये । जा ग्रहण करे, उस ‘दुष्कृत’ की जापति ।

तब भगवान् आतुमामें इच्छानुसार बिहारकर जिनर आबली भी उभर चारिक्रक कियें बक दिने । क्रमसाः चारिक्र करते जहाँ आबली भी यहाँ पहुँचे । यहाँ आबलीमें भगवान् अनाथपिंडकक आराम जेतवनमें बिहार करते थे । उस समय आबलीमें बहुत सा बाघ एक था । मिधुओंमें—“भगवान्को वह बात कही ।

“अनुया देता हूँ, सब बाघ कर्कोंके दिने ।

उस समय सबके बीजको प्यणिक ( = पौद्गकिक ) क्षेत्रमें रापते-जे पात्रकिक बीजको सबके क्षेत्रमें रोपते थे । भगवान्को वह बात कही—

( भगवान्ने कहा— ) “सबके बीजको यदि पौद्गकिक क्षेत्रमें बोवा जाय तो भाग देकर परिभोग करना चाहिये । पाद्गकिक बीजको यदि सबके क्षेत्रमें बोवा जाये ता भाग देकर परिभोग करना चाहिये ।”

“जो मैंने मिधुओ । ‘वह नहीं विहित है ( कइकर ) निषिद्ध नहीं किया यदि वह निषिद्ध ( = अ-कृपिय ) के अनुक्रम हो और विहित ( = कृपिय )का विरोधी

। ( अडकपामें ) “दशार्थ भाग देकर । वह अन्वहीप ( = मारत )में पुरातन राज ( = पौराण-चारिक ) है इसकिये वह भागमें एक भाग भूमिक माकिकोंको देना चाहिये ।

( तो ) वह तुम्हें विहित नहीं है । मिथुनो ! जिसे मैंने 'वह विहित नहीं है ( कइकर )  
 निषिद्ध नहीं किया यदि वह कल्पियके अनुकोम है और अ-कल्पियका विरोधी ( तो )  
 वह तुम्हें कल्पिय है । मिथुनो ! जिसे मैंने 'वह कल्पिय है ( कइकर ) अनुज्ञा नहीं  
 दी वह यदि अ-कल्पियके अनुकोम ( =अ-विरोधी ) है और कल्पियका विरोधी तो वह तुम्हें  
 कल्पिय ( = विहित ) नहीं है । मिथुनो ! जिसे मैंने 'वह कल्पिय है ( कइकर ) अनुज्ञा  
 नहीं दी वह यदि कल्पियके अनुकोम है और कल्पियका विरोधी तो वह तुम्हें कल्पिय है ।

x

x

x

x

( १५ )

चूल-इत्थियदोपम-सुच ( ई पू ५१७ ) ।

देसा 'मैंने सुना—एक समय भगवान् भावस्तीमें अनाथ पिंडकके आराम ओत  
 यगमें बिहार करते थे ।

उस समय जाशुहसोभि ( =जाशुभोगि ) ब्राह्मण सबस्वैत प्रोविर्षोंके रखर सकर  
 हो मध्याह्नको भावस्तीके बाहर आ रहा था । जाशुभोगि ब्राह्मणने पिछोतिक परिग्रहजकके  
 घूरसे ही भाते देखा । देखकर पिछोतिक परिग्रहजकसे यह कहा—

'हन्त ! वात्स्यायन ( =वत्स्यायन ) ! आप मन्वाहमें कहाँसे आ रहे हैं ?'

मो ! मैं भ्रमण गीतमके पाससे आ रहा हूँ ।'

'तो आप वात्स्यायन भ्रमण गीतमकी प्रज्ञा पाण्डित्यको क्या समझते हैं ? पंडित  
 मानते हैं ?'

'मैं क्या हूँ जो भ्रमण गीतमका प्रज्ञा-पाण्डित्य जानूँगा ?'

'आप वात्स्यायन उदार ( =बड़ी ) प्रवर्त्सा द्वारा भ्रमण गीतमकी प्रवर्त्सा कर रहे हैं ?'

'मैं क्या हूँ और मैं क्या भ्रमण गीतमकी प्रवर्त्सा करूँगा ? प्रज्ञान प्रवर्त्सा ( ही ) है  
 आप गीतम देख-समुप्योंके ओह है ।

आप वात्स्यायन किस कारणसे भ्रमण गीतमके विषयमें इतने जमिप्रसन्न हैं ?

( बँस ) कोई चतुर नाग-बनिक ( =डाबीके जंदाकका धारमी ) नाग-बनमें प्रवेश करे ।  
 वह वहाँ बड़े भारी ( बड़े बौद्ध ) हाथीके घेर ( =दृष्टि-पद ) ओ देखे । उसको विश्वास हो  
 जाय—अरे क्या भारी नाग है । इसी प्रकार मो ! जब मैंने भ्रमण गीतमके पार पद देखे,  
 तो विश्वास होगया—कि ( वह ) भगवान् अम्बक-संजुद्ध हैं भगवान्का धर्म लाकवात है  
 भगवान्का आचक-संब सुप्रतिपन्न ( =भुण्णर प्रकारसे शास्त्रपर ज्ञान ) है । कौनसे चार ? मैं  
 एकाता हूँ बाककी लाक उठारबंदाक दूसरीस बाह-विज्ञाह किने दुये त्रिगुल कोई कोई  
 क्षत्रिज पंडित मानों प्रज्ञामें स्थित ( तत्व ) से दृष्टिगत ( =पारजामें स्थित तत्व ) को  
 पंथा-नरी करने बकने हैं सुनते हैं—भ्रमण गीतम अनुक प्राप्त वा विगममें आवेगा । यह  
 प्रश्न तत्पार करते हैं—'हम प्रश्नको हम भ्रमण गीतमके पास जाकर पूछिगे । देसा हमारे

१ अ. नि. अ. क. २ ४:४—'बाहर्दही ( वर्त्सा ) भगवान्के अंतवर्त्समें बिताई ।

पुण्येपर यदि वह ऐसा उत्तर देगा; तो हम हम प्रकार बाद ( = माकार्य ) रोपेगे । वह सुनते हैं—अमम गातम अमुक् प्राप्त या भिगममें आगया । वह वहाँ अमम गातम हाता है वहाँ जाते हैं । उनको अमम गातम धार्मिक उपदेश कहकर दर्शाता है उभादान = समुत्तेजन समर्पसन करता है । वह अमम गातम धार्मिक उपदेश द्वारा संश्रित समाहित समुत्त जिन संप्रसमित हो, अमम गातमस प्रश्न भी नहीं पूछते उसके (साथ) बाद कहाँसे रोपेगे ? बल्कि धार भी अमम गातमके ही आशक ( = सिप्य ) हो जाते हैं । मा ! जब मैंने अमम गातममें वह प्रथम पद देखा तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्बन्ध संजुद्ध हैं ।

‘आर फिर मो ! मैं देखता हूँ वहाँ कोई कोई बाककी खाल उतारने वाले तूमरोंसे बाद-विचारमें सफल निपुण ब्राह्मण पण्डित । मैंने अमम गातम में यह तूमरा पद देखा । गृहपति ( = अहप )-पण्डित । यह तीसरा पद ।

अमम ( = अजजिन )-पण्डित । वह अमम गातमके धार्मिक उपदेशद्वारा समुत्तजित समशसित हो अमम गातमस प्रश्न भी नहीं पूछते, उसके ( साथ ) बाद कहाँसे रोपेगे ? बल्कि धार भी अमम गातमस वरसे बेधर(की) प्रवृत्ताक किये आज्ञा मोंगते हैं । उनको अमम गातम प्रवृत्तित करता है उपसम्पन्न करता है । वह वहाँ प्रवृत्तित हो अकक पुकावत्सेवी प्रमाद्-रहित तत्पर, आगम-संपदा हो विहार करत अचिर ही में जिनक किये कुक-सुख वरसे बेधर हो प्रवृत्तित होत है उम अमुपम अहस्यर्ष-कककी इमी अमममें स्वर्ब जान कर साहाय्य कर प्राप्त कर विहरते हैं । वह ऐसा कहत है—“मनको मो ! नाश किया मनको मो ! प्र-वास किया । हम पहिले अ-अमम होते हुये भी ‘हम अमम हैं’ दावा करत थे ; न ब्राह्मण होते हुये भी ‘हम ब्राह्मण हैं’ दावा करते थे । अन्-अर्हण होते हुये भी ‘हम अहर्ह हैं’ दावा करते थे । जब हम अमम हैं जब हम ब्राह्मण हैं जब हम अर्हर्ह हैं । अमम गातममें वह इस चौथे पदको देखा तब मुझे विश्वास हो गया—भगवान् सम्बन्ध संजुद्ध हैं । धो ! मैंने जब इन चार पदोंको अमम गातममें देखा तब मुझे विश्वास हो गया ।

ऐसा कहन पर जानुश्रीणी ब्राह्मणने सर्व-बोत घोषीके तबसे उत्तरकर एक कंधेपर उत्तरासंग ( = षादर ) करके त्रिपर भगवान् से उत्तर अजजि जाइकर तीन बार यह उवाच कहा—“नमस्कार है उस भगवान् अर्हर्ह सम्पक् संजुद्धको ‘नमस्कार है । ‘नमस्कार है । क्या मैं क्या किसी समय उम गातमके साथ निक सहीँगा ? क्या कमी कोई कथा संक्षप हो सकीगा ?

तब जानु श्रीणि ब्राह्मण वहाँ भगवान् धं वहाँ गया । जाकर भगवान्क साथ संमो इनकर ( कुसाक-प्रध वृष्ट ) एक ओर बंठ गया । एक ओर बंदे हुए जानु-श्रीणि ब्राह्मणने जो कुछ पिस्तेतिक परित्राजकके साथ क्या-सकप हुआ था सब भगवान्को कह दिया । ऐसा कहनेपर भगवान्क जानु-श्रीणि ब्राह्मणको कहा—

“ब्राह्मण ! इतने (ही) विस्तारय हरिन पद उपमा परिपूर्ण नहीं होती । ब्राह्मण त्रिप्य प्रकारके विस्तारसे इति-पद-उपमा परिपूर्ण होंगी ह ई उम सुवा जात मममें (चारण) करा ।”

“अप्य मो !” कह जानु-श्रीणि ब्राह्मणने भगवान्को उत्तर दिया । भगवान्ने कहा—

“जैसे ब्राह्मण नाग-वहिक नाग-वनमें प्रवेश करे। वहाँ पर नाग-वनमें वह बड़े भारी हस्ति-पदको देखे। जो वनुरनाग-वहिक होता है वह विषाम नहीं करता—भरे! वन भारी नाग है। किसकिये? ब्राह्मण! नाग-वनमें वामकी ( =ईशनी) नामकी हस्तिनिर्वा भी महा-पदवाली होती है। उबका वह पर हो सकता है। उसके पीछे चलते हुए वह नाग वनमें बड़े भारी (छन्ने चौड़े) हस्ति-पद और ऊँचे डीकको देखता है। जो वनुर नाग-वहिक होता है वह ठव भी विषास नहीं करता—भरे वन भारी नाग है। किसकिये? ब्राह्मण! नामवनमें ऊँची क्यछारिका नामक हस्तिनिर्वा बड़े पैरों वाली होती है। वह उबका पद हो सकता है। वह उबका अनुगमन करता है अनुगमन करते नाग-वनमें देखता है— बड़े भारी छन्ने चौड़े हस्ति-पद, ऊँचे डीक और ऊँचे दातोंसे आरंभित को। जो वनुर नाग वहिक होता है वह ठव भी विषास नहीं करता। सो किस किये? ब्राह्मण! नाग-वनमें ऊँची क्येलुका नामक हस्तिनिर्वा महा-पदवाली होती है। वह उबका भी पद हो सकता है। वह उसका अनुगमन करता है। उसका अनुगमन करते नाग-वनमें वह भारी (छन्ने चौड़े) हस्ति-पद, ऊँचे डीक कचे दातोंसे सुसोमित और आकाको ऊँचेसे दृश्य देखता है। वह विषास करता है परी वह महानाग है।

‘इसी प्रकार ब्राह्मण वहाँ तयागत अर्हत सम्यक-सम्पुत्र, विद्या-आचरण-सम्पन्न सुगण कोरुविद अनुचर पुत्र-वन्ध-सारथी देव-अनुष्ठीके शास्ता बुद्ध भगवान् कोकमें उलव होते हैं। वह हम देव-भार-ब्रह्मा सहित कोक, भ्रमण-ब्राह्मण-देव-अनुष्ठी-सहित प्रजाको लक्ष्य जान कर सङ्गान् कर समझाते हैं। वह आदि-कल्याण मन्त्र-कल्याण पर्व-वसाव-कल्याण वाले बर्षका उपद्वक करते हैं। अर्ध-महित अर्ध-वन्ध-सहित केकक परिपूर्ण परिष्कृत, ब्रह्म-वर्षको प्रकाशित करते हैं। उस वनमेंके गृह-पति या गृह-पतिका पुत्र या और किसी छोटे कुम्में उत्पन्न सुमता है। वह उस वनका सुनकर तयागतके विषयमें ब्रह्मा काम करता है। वह उस ब्रह्मा-कामसे संसुक्त हो वह सोचता है—गृह-वास बंजाक मैकक मार्ग है। प्रमत्ता मैदाव ( =चौड़ा) है। हम एकमन्त्र सर्षवा परिपूर्ण, सर्षवा परिष्कृत करादे संत बैसे ब्रह्मवर्ष का पावन वरमें बसते हुबेक किब सुकर नहीं है। क्यों व में सिर दाही मुँदाकर कथावचक पहिन, वरसे बेबर प्रमत्तित हो ब्याऊँ? सो वह हमरे समय अपनी धरु ( =चौड़ी) मोग राभि वा महा मोग राभिको छोड़ अरु ज्ञाति मंडक वा महा ज्ञाति-मंडकको छोड़ सिर दाही मुँदा कथावचक पहिन वरसे बेबर ही प्रमत्तित होता है। वह इस प्रकार प्रमत्तित हो जिष्णुर्वाकी शिष्टा समान बीबिकाको प्राप्त हो प्राणतिपाठ छोड़ प्राणदिसासे विरत होता है। दृष्ट-स्वागी दृष्ट-स्वागी कमी, दृष्टासु, नर्ष-माषों सर्ष-प्राण भूतोंका हित और अनु कर्षक हो विहार करता है। अ-दिम्बादान ( =वारी) छोड़ विम्बादापी ( =दियेके केने बाका) दृष्ट-मतिकांछी ( =दिपका चाहने बाका) पवित्रात्मा हो विहरता है। अ ब्रह्म वचको डोहरक ब्रह्मचारी प्राणवम मैजुनमे विरत हो आर-वारी ( =रू रहने बाका) होता है। दृष्टवाचको छोड़ दृष्टवाचमे विरत हो मान-वादी सत्य-नैथ लोकका अ-विसंवादक अविधायन-वाक -होता है। विष्णुन-वचक ( =पुगली) छोड़ पिष्णुन-वचनमे विरत होता है— वहाँ सुनकर इसके कोबनेके जिने वहाँ नहीं कहनेवाका होता, वा वहाँ सुनकर वनके कोबने क किये वहाँ कहने बाका नहीं होता। इस प्रकार मिष्ठी ( =कूमें) का मिठाने बाका

मिल बुझोके मिला न करने वाला एकतामें प्रसन्न एकतामें रत एकतामें धामनिवृत्त हा समग्र (= एकता) करणी बाणीका बोलनेवाला होता है। परप (= कट्ट) बचनका छोड़ परप बचनमें बिरत होता है। जो बह बाणी कर्ग-सुखा प्रभायीया इत्यत्रमा पीरी (= नागरिक सम्प्र) बहुजन-कान्ता = बहुजन मनापा है; बीमी बाणीका बोलनेवाला होता है। प्रकापको छोड़कर प्रकापसे बिरत होता है। काल-बादी (= समय देखकर बासनेवाला) मूठ (= वषाब) बादी धर्म-बादी धर्म-बादी बिलप-बादी हो तात्पर्य-सहित पर्यन्त-सहित धर्म-सहित मिथावतती बाणी का बोलनेवाला होता है।

“बह बीज-समुदाय भूत-समुदायके विनास (= समारंभ) से बिरत होता है। एकहारी रातको उपरत = बिकाक (= मष्पाहोत्तर)-भोजनय बिरत होता है। माका र्गप भार बिछेपनके धारण मंडन भार विभूषणसे बिरत होता है। उच्छायक और महाशयप (= शय्या) से बिरत होता है। बातरूप (= मोना)-रजतके प्रतिप्रहणसे बिरत होता है। कन्धे अनाजके प्रतिप्रहण (= सेवा) से बिरत होता है। कषा मोस कनेसे बिरत होता है। खी-कुमारीके । दासी-दास । भेड़-बकरी । मुर्गी-सूअर । हाथी-गाव । पादा-घोड़ी । खेत-बर । दूत बनकर जाने । रूप-विरूप । तराजूकी डगी कौंसकी डगी मान (= सर मन आदि) का डगी । पूस बचना जाक-मात्री कुटिल-बोग । छेदन बच बंधन छपा मारने आक्षेप (ग्राम जादिका विनास) करने डाका डाकने ।

“बह शरीरपरके पीचरसे, पैठके खानेसे सन्नुष्ट होता है। बह जहाँ जहाँ जाता है (अपना सामान) सिने ही जाता है; बस कि पहाँ जहाँ कहीं उफता है अपन पत्र-भार सहित उफता है। हुना प्रकार मिश्रु शरीरके पीचरसे पैठके खानेसे सन्नुष्ट होता है। बह हम प्रकार आर्ष-सीक (= विद्योप सदाचारकी) स्कंध (= राशि) से पुष्ट हो अपनेमें (= अज्याय) निशोय सुख अनुभव करता है।

“बह अशुभ रूपको देखकर विमिश्र (= किंग जाकृति आदि) भार अनुष्णजनका प्रहण करनेवाला नहीं होता। बूँकि अशु इन्द्रियका अ-रक्षित रख बिहरनवालाका राग द्वेष पाप अ-कुल्लत धर्म उत्पन्न हा जात है इसकिए उसका रक्षित रखता (= संवर करता) है। अशु इन्द्रियकी रक्षा करता है = अशु इन्द्रियमें संवर प्रहण करता है। बह भोतसे सन्नु सुबकर विमिश्र भार अनुष्णजनका प्रहण करनेवाला नहीं होता। प्राणसे राध प्रहणकर । विद्याम राम प्रहणकर आपन स्वर्ग प्रहणकर । मनसे धर्म प्रहणकर । इस प्रकार बह आर्ष-इन्द्रिय-संवरसे पुष्ट हो अपनेमें निमैक सुखको अनुभव करता है।

“बह जाने जानेमें जाणकर करनेवाला होता है। अवलोकाय विद्योकायमें संप्रजन्य पुष्ट (= जानकर करनेवाला) होता है। समेरेने-कैलायमें संप्रजन्य-पुष्ट होता है। संघापी पात्र-बीचर धारण करनेमें । जावा-पीना मांडन-आम्बाहृदमें । पाखाता-यंसावक काम म । जाते-बड़े हाते बँडल सोते-जागत, बाकत चुप रहते संप्रजन्य-पुष्ट होता है। यह हम आन-बीक-कँडलस पुष्ट हम आर्ष इन्द्रिय पवरण पुष्ट, हम आर्ष स्मृति-संप्रजन्य पुष्ट हा एकान्तमें—अरण्य वृक्षक नीच पर्वत कन्दरा गिरि-गुहा इमशाव बन जाम्ब

1

बौद्ध पुत्राकाङ्क्षे गर्ह्यमें—वास करता है। वह भोजनक पश्चात् आसन मारकर कप्याङ्गो सीबाकर स्थितिको सम्मुख रखकर बैठता है। वह सोकमें (१) अमिष्या (= छोम) को छोड़ अमिष्या-रहित-चित्त हो विहरता है; चित्तको अमिष्यास परिशुद्ध करता है। (१) व्यापाद् (= जोड़) दोपकी छोड़कर व्यापाद्-रहित चित्तसे सर्व प्राणिर्षोक्य हिताशुक्लमी हा विहरता है; व्यापाद् दोपसे चित्तको परिशुद्ध करता है। (२) स्वानमूद् (= मनके बाह्य) को छोड़ स्वानमूद्-रहित हो बालोक-संज्ञाबाका स्थिति सम्प्रत्यये बुद्ध हो विहरता है। धौदत्व-अङ्कत्वको छोड़ अन्-बद्ध हो भीतरसे शान्त हो विहरता है। (३) अमूदत्व-कौकुलमे चित्तको परिशुद्ध करता है। (५) विचिकित्सा (= सम्भेह) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो कुशाक (= उत्तम) अर्थात् विद्या रहित (= लक्ष्यकधी) हो विहरता है; चित्तको विचिकित्सासे परिशुद्ध करता है।

“वह इन पाँच नीचगणोंको चित्तसे छोड़ उप-छेसों (=चित्त-मर्म्म) को कर, (उप-छे) दुर्बल करनेक लिये कर्मोंसे पूषक हो, अ-कुशाक-कर्मोंसे पूषक हो स-वितर्क स-विचार विवेकस उत्पन्न प्रीति-सुखबाके प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पद् भी तत्रागतक पद् कहा जाता है यह (पद्) भी तत्रागतसे संकेत है यह (पद्) भी तत्रागत-रहित है। किन्तु आर्ष-आवक इतनेहीसे विभास नहीं कर केता—भगवान् सम्बक संजुद्ध हैं भगवान्क कर्म ल्वाकवात है, भगवान्क आवक-संभ सु-धतिपन्न है।

“और फिर ब्राह्मण? मिथु वितर्क और विचारके उपसत्त होनेपर भीतरक सम्प्रत्यय (=प्रसन्नता) = चित्तकी पृष्ठाप्रताको वितर्क-विचार-रहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखबाके द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पद् भी तत्रागतक पद् कहा जाता है, यह भी तत्रागत-सेकेत है यह भी तत्रागत-रहित है। किन्तु आर्ष-आवक इतनेहीसे विभास नहीं कर केता—भगवान् सम्बक-संजुद्ध हैं।

“और फिर ब्राह्मण! मिथु प्रीति और विरागसे उपेक्षक ही स्थिति और सम्प्रत्यये बुद्ध हो कप्यासे सुखको अनुभव करता विहरता है। जिसका आर्ष-जन उपेक्षक स्थितिमाद् सुख-विहारी कहते हैं; ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। ब्राह्मण! यह पद् भी तत्रागत पद् कहा जाता है। किन्तु आर्ष-आवक इतनेहीसे विभास नहीं कर केता।

“और फिर ब्राह्मण! मिथु सुख और दुःखक विनाशसे सामान्य धार रीर्मन्त्रके पूर ही जस्त हो जानेस दुःख-रहित सुख-रहित उपेक्षक हो स्थितिकी परिशुद्धता-बुद्ध कर्तुर्-प्राणको प्राप्त हो विहरता है। वह भी ब्राह्मण! तत्रागत-पद् कहा जाता है। किन्तु आर्ष-आवक इतनेहीसे विभास नहीं कर केता—भगवान् सम्बक संजुद्ध हैं।

“तो इस प्रकार चित्तके—परिशुद्ध परि-अवज्ञात अंगण-रहित=उपछेस (= मर्क) रहित मृदु बुद्धे कर्म-आवक स्थिर = अचकटा-यास=समाहित—हो जानेपर पूर्वकर्मोंकी स्थितिके ज्ञान (=पूर्व-निवासाऽनुस्थिति ज्ञान) के लिये चित्तको शुद्धता है। फिर वह जनक पूर्व-निवासोंको स्मरण करने लगता है—जैसे एक जन्ममी हा जन्ममी तीव्र जन्ममी चार पाँच छ इस बीम तीव्र, चाभीस पचाम मा इबार साहबार अनेक संवर्त (=अवस्य)-कश्य अनेक विवर्त (=मृष्टि)-कश्य अनेक संवर्त-विवर्त-कश्यकी भी—इस नामवाला इस गोघ-वाला इस बजवाका इस व्याहारवाका इस प्रकारके सुख-बुद्ध

को अनुभव करनेवाला इतनी आनु-वर्षण में बहुत आनन्द पर रहा। सो मैं बहोत खुश हो  
 यहाँ उत्पन्न हुआ। इस प्रकार आकर-सहित उद्देश्य-सहित अपने किये गए निवासोंको  
 आराम करता है। वह भी आनन्द ! तमागत-यद् कहा जाता है। ।

“ सो इस प्रकार चित्तके परिशुद्ध समाहित होनेपर प्राणियोंके जन्म-मरणके शाप  
 (= प्लुति-उत्पाद शाप ) के लिये चित्तको सुखता है। सो अ-आनुप दिव्य विशुद्ध चक्षुष  
 अच्छे डरे, सुबर्ण सुवर्ण सुगत सुरांत भरते उत्पन्न होते प्राणियोंको देखता है। उनके  
 कर्मोंके साथ सारोंको जानता है— यह जीव काव-सुखरित-सहित बचन-सुखरित-सहित  
 मन-सुखरित-सहित ये भाषोंके मित्रक (= उपवाचक ) मिथ्या दृष्टिवाके मिथ्यादृष्टि-सम्बन्धी  
 कर्मोंसे मुक्त थे। यह कावा डोष भरनेके बाद अ-याव = सुराति = विनिपात = कर्मों उत्पन्न  
 हुये हैं। किन्तु यह जीव (= सत्त्व ) काव-सुखरित-सहित बचन-सुखरित-सहित मन-सुखरित  
 सहित ये भाषोंके अ-मित्रक सम्प्रादृष्टिवाके सम्प्रादृष्टि-सम्बन्धी कर्मोंसे मुक्त थे। यह  
 कर्मसे बचना हो “मरणके बाद सुगति = स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार अ-आनुप  
 दिव्य विशुद्ध चक्षुसे प्राणियोंको देखता है। वह भी आनन्द ! तमागत-यद् कहा जाता है। ।

“ सो इस प्रकार चित्तके समाहित हो जानेपर आकर शब्द शाप (= रागादि मर्मोंके  
 शाप होनेका शाप ) के लिये चित्तको सुखता है। सो यह दुःख है इसे बचार्थसे जानता  
 है यह दुःख-समुच्च है इसे बचार्थसे जानता है यह दुःख-निरोध है इसे बचार्थसे  
 जानता है। यह आकर है। यह आकर-समुच्च है। यह आकर-निरोध है।  
 यह आकर-निरोध-गामिनी प्रतिपत् (= रागादि चित्त-मर्मोंके भासकी ओर के जानेवाला  
 मार्ग ) है। यह भी आनन्द ! तमागत-यद् कहा जाता है। ।

“ इस प्रकार जानते इन प्रकार देखते, उस (पुरुष) के चित्तको अम-आकर सो  
 छोड़ देता है भव-आकर भी अ-विद्या-आकर भी। छाड़ देते (= विमुक्त हो जाने) पर  
 चूर गया हूँ ऐसा ज्ञान होता है। जन्म जन्म ही गया ब्रह्मचर्य पर हां यथा करना  
 या सा कर दिया अब बर्हके लिये कुछ नहीं यह भी जानता है। आनन्द ! वह भी  
 तमागत-यद् कहा जाता है। इतनेसे मादध्य ! आर्षं भाषक विश्वास करता है—अगवान्  
 सम्बन्ध-संबुद्ध हैं।

“ इतनेसे मादध्य ! इति-वर्षकी उपमा विस्तारपूर्वक पूरी होती है। ”

ऐसा कहनेपर आनुशोभि आनन्दने अगवान्को यह कहा—

“ आध्वर्य ! मन्ते ॥ आध्वर्य ! मन्ते ॥ मन्ते ॥ मैं आप गौतमकी सरण जाता हूँ,  
 धर्म और मित्र-संबन्धी भी। आध्वर्य (मुझे) आप गौतम ब्रह्म-वद् उपसक धारण करें।  
 + + + +

(१९)

महा-इत्यिपदोपम-सुप ( ई पू ५१५ ) ।

‘ देमा मीने सुमा—एक समय अगवान् आध्वर्यी में अनाध्वर्यिकके आराम  
 जेतवन में विहार करते थे।



वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्रने मिथुजोंको संबोधित किया—

“आहुसो ! मिथुधो !

आहुस कह, उत्र मिथुजोंके आयुष्मान् सारिपुत्रको उतर दिया । आयुष्मान् सारिपुत्रने कहा—

“जसे आयुसो ! जगली प्राणियोंके किलने पद ह वह समी हाथीके पैर (= हति पद) में समा जाते हैं । बघाईमें हति-पद उगमें उग्र (= घेह) गिजा जाता है । ऐसे ही आयुसो ! किलने कुसक जर्म हैं वह समी बार भार्य-सत्वोंमें सम्मिकित हैं । कौनने चारोंमें ? दुःख भार्य-सत्वों दुःख-समुद्र भार्य-सत्वों दुःख-नितोष भार्य-सत्वों और दुःख-नितोष गामिनी प्रतिपद भार्य-सत्वों ।

क्या है आयुसो ! दुःख भार्य-सत्व ? जन्म भी दुःख है । उरा (= कुपारा) भी दुःख है । मरण भी दुःख है । शोक रोना पीटना दुःख है । मम संहाय परेशानी भी दुःख है । जो इच्छा करके नहीं पाता वह भी दुःख है । संक्षेपमें पाँच उपादान-स्वंप दुःख है ।

आहुसो ! पाँच उपादान-स्वंप कौनसे हैं ? (पाँच उपादान-स्वंप हैं) जैसे कि—  
 रूप-उपादान स्वंप देवपा संज्ञा संस्कार विज्ञाह । आयुसो ! रूप-उपादान-स्वंप क्या है ? बार महाभूत और चारों महाभूतोंको छेकर (हाथेबाडे) रूप । आयुसो ! बार महाभूत कौनसे हैं ? पृथिवी-वात, आप (= पानी) तेज (= अग्नि) वायु । आयुसो ! पृथिवी ! पातु क्या है ? पृथिवी वातु है (जो) आप्यात्मिक (= शरीरमें) बार बाहरी । आयुसो ! आप्यात्मिक पृथिवी वातु क्या है ? जो शरीरमें (= अण्वात्म) हरपक शरीरमें कर्कश कठोर किये हुये हैं जैसे कि—केष कोम गज इत्ये एक (= जगदा) मौस र्नायु (= नहाद) अन्वि अन्विके भीतरकी मजा तुल, इत्ये बहूत ह्येमक ड्रीहा पुष्पुम अंत अंत-यतकी उदरका मज (= करीब) । और यी जो कुछ शरीरमें प्रति शरीरक भीतर कर्कश कठोर किये हुये गृहीत है । वह आयुसो ! आप्यात्मिक पृथिवी-वातु कही जाती है । जो कि आप्यात्मिक पृथिवी वातु है, बार जो बाहरी (= बाहिरा) पृथिवी-पातु है वह पृथिवी भातुही ह । वह पद (पृथिवी) व मेरी ह न वह में ही हूँ, न वह मेरा आराम है यह यथापेसे अण्ठी प्रकार जानकर वैजना आदिह । इस प्रकार हसे बन्धुभीसे अण्ठी प्रकार जानकर देखनेसे, (ब्रह्म) पृथिवी वातुसे निर्वेद (= उदासीनता) को प्राप्त होता है । पृथिवी पातुसे किसको विरक्त करता ह ।

“आहुसो ! पैसा भी भ्रमप हाता है जब बाहरी पृथिवी पातु कुपित होती है उस समय बाहरी पृथिवी वातु अन्धपाँव होती है । (तब) आयुसो ! इतनी महाप बाहरी पृथिवी पातुकी भी अनिच्छता = अण-जर्मता = नि उरिवास घमता जान पवती है । इस धुत्र काबाका ता क्या (कहना है) ? तुष्यामें पैसा किम ‘मि’ मेरा’ वा मि हूँ (कहना) । वही इमका नहीं हसी ।

“मिथुको यदि हमरे आश्रीस-परिहास-कोष-जीवा देत हैं तां वह समझता है—  
 ‘वह उग्रक दुःखकम-वैजना (= जनुभव) गुमं भोतके संक्षेप (= अर्थ-स्वर्ण) से उग्रक हुई है । और पद कारजसे (= उग्रक हुई है) अ-कारजसे नहीं । किम कारजसे ? स्वर्णक कारज ।

‘स्पर्श-अ-विलस है’ यह वह देखता है। ‘वेदना-अ-विलस है’ ‘संज्ञा-अ-विलस है’। ‘अ-स्कार-अ-विलस है’। ‘विज्ञान-अ-विलस है’। उसका चित्त धातु (= पृथिवी) कृपी विषयसे पृथक् प्रसन्न (व्यथ) स्थिर, विमुक्त होता है। उस मिथुके साथ आबुसो ! यदि दूसरे अद्-इष्ट-अ-कृत = अ-मनाप (व्यवहार) से बर्णन करते हैं— हावके योग (= अ-स्पर्श) से इसके योगसे इसके योगसे अस्पर्शके योगसे। यह वह जानता है कि ‘यह इस प्रकारकी कथा है जिसमें पाणि-अ-स्पर्श भी करते हैं इसके अस्पर्श भी अंशक अ-स्पर्श भी हावके अस्पर्श भी। मगवानने ‘अ-अ-चोपम (= धाराके समान) अवकाद (= उपदेश) में कहा है—‘मिथुभी ! यदि चोर काट (= भोचरक) दोनों ओर दग्धेबाक धारासे भी एक एक धंग काटें वहाँपर भी का मकको कृषि करे वह मेरे सामन (= उपदेश) (के अनुकूल आचरण) करनेवाक नहीं है। मेरा धीरे (= अ-घांग) चकटा रहेगा विस्मरण-रहित स्मृति मरी उपस्थित (रहीगी) कथा स्थिर (= अ-अ-अ) अ-अ-अ (= अ-अ-अ) चित्त समाहित = एकाम (रहगा)। चाहे इस कथामें पाणि-अ-स्पर्श हो कथा मारवा हो कथा पड़े शक्य क्यो (किं) बुझाका उपदेश (प्रा) करना ही हागा।

“आबुसो ! उस मिथुको इस प्रकार बुझको बाद करते इस प्रकार धर्मको बाद करते इस प्रकार अंधको बाद करते कुशाक-संयुक्त (= निर्मल) उपेक्षा अब नहीं उदरती। यह उससे उदाम होता है संबेगको प्राप्त होता है—‘महो ! अ-काम है मुझे, मुझे काम नहीं हुआ; मुझे दुर्काम है सुकाम नहीं हुआ; जिस मुझे इस प्रकार बुझ धम संभको स्मरण करते कुशाक-संयुक्त उपेक्षा नहीं उदरती; उसे कि आबुसो ! वह (= सुमिसा) ममुरका अंधकर संविभ हाती है संबेगको प्राप्त होती है। इस प्रकार आबुसो ! उस मिथुको ऐसे बुझ धर्म संभ (के गुणों) को बाद करते कुशाक-संयुक्त उपेक्षा नहीं उदरती यह उससे सधगाको प्राप्त (= उदास) होता है—मुझे अकाम है। आबुसो ! उस मिथुको यदि इस प्रकार बुझ धर्म संभको अनुस्मरण करते कुशाक-संयुक्त उपेक्षा उदरती है तो वह उमसे-सम्पुष्ट होता है। इतनेसे भी आबुसो ! मिथुने बहुत कर किया।

“क्या है आबुसो ! आप धातु ? आप (= अक)-धातु ही होती है आप्यामिक और बाहरी। आबुसो ! आप्यामिक आप-धातु क्या है ? जो शरीरमें प्रतिशरीरमें पाणी या पाणीका (विषय) है; उस कि विषय इच्छेय (= अक) पीक काहु, स्वद (= असीका) मद, अनु बसा (= अर्थी) राक नासिकामक कर्ममक (= असिका) मूत्र और जो कुछ आप भी शरीरमें पाणी या पाणीक है। आबुसो ! यह आप धातु कही जाती है। जो आप्यामिक आप-धातु है और जो बाहरी आप धातु है वह आप धातु ही है। ‘वह मरा नहीं ‘वह ही नहीं’ वह मरा आप्या नहीं इस प्रकार इसे बर्णन जानकर देखवा अद्विभ ! इस प्रकार बर्णनता अच्छी तरह, जानकर देखकर आप धातुसे निर्देशका प्राप्त (= उदास) होता है। आप-धातुसे चित्तको विरक्त करता है।

“आबुसो ! पना भी समप होता है अब बाक आप धातु प्रकृषित होती है। हवा गाँवको भी विगमको भी नगरको भी जवपद्को भी जनपद्-प्रदेशको भी कहा देती है। आबुसो ! पना समप होता है अब महा समुद्रमें सी बोजन हो मा बोजन सातमी पाजनेके भी पानी धाते हैं। आबुसो ! सोभी समप होता है अब महा समुद्रमें साठ ताक उ ताक

पॉच ताक चार ताक तीव ताक, दो ताक ताकमर भी पानी होता है। आयुसो! जो समय होता है जब महासमुद्रमें पाठ पारिमा (=दुःख-परिमाण), पोरिसा भर पानी रर जाता है। जब महासमुद्रमें जाध पोरिसा कमर भर जाँध भर धुही भर पानी बहरता है।

जब महासमुद्रमें अंगुष्के पोर पोबे भरके किये भी पानी नहीं रह जाता। आयुसो! उस इतनी बड़ी बाह्न अपातुकी अखिलता ।। आयुसो! इतनेमे भी मिथुने बहुत किया।

“आयुसो! तेज-बातु क्या है? तेज बातु है आप्यात्मिक और बाह्न। आयुसो! आप्यात्मिक तेज बातु क्या है? जो शरीरमें प्रतिशरीरमें तेज (=अग्नि) वा तेजका है। जैसे कि—जिससे संतप्त होता है अर्जरित होता है परिदग्ध होता है जापा-नीया अप्ये प्रकार इवम होता है, वा जो कुछ और भी शरीरमें प्रतिशरीरमें तेज वा तेज-विषय है। वह कहा जाता है आयुसो! तेज-बातु। जो वह आप्यात्मिक (=शरीरमें की) तेज-बातु है और जो कि यह बाह्न तेज-बातु है वह तेज-बातुही है। ‘व यह मेरी है ‘व यह मैं हूँ’ ‘व यह मेरा आप्या है—इस प्रकार इसे बधार्थ जानकर बहना चाहिये। इस प्रकार इसे बधार्थतः जानकर बेकमेस तेजबातुमे विवेकमे प्राप्त होता है तेजबातुसे विषय विरक्त होता है।।

“आयुसो! ऐसा समय ( भी ) होता है जब बाह्न तेज-बातु कुपित होता है। वर गाँव विगम नगर को भी बहकता है। वह हरिबाकी महामार्ग ( अण्डमन्त ) वा सैक व पावी ( वा ) भूमि-भागको प्राप्त हो आहार व पा तुस खाता है। आयुसो! ऐसा भी समय होता है जब कि इमे सुर्वीके पर भर भी चमकेके किष्के भर मी हूँवते हैं। आयुसो! उस इतने बड़े तज-बातुकी अ-खिलता ।। आयुसो! इतनेस भी मिथुने बहुत किया।

“आयुसो! वातु बातु क्या है? वातुबातु आप्यात्मिक भी है बाह्न भी। आप्यात्मिक वातु बातु कीन है? जो शरीरमें प्रति शरीरमें वातु वा वातु विषयक है, जैसे कि कर्पतामी वात अयोगामी वात (=इवा) कुधि (=पट)के वात कोटेमें रहनेवाले वात अङ्ग-माल्यमें अनुसरण करनेवाले वात वा आवास-अवास और जो कुछ और भी । वह आयुसो! आप्यात्मिक वातु बातु। कहा जाता है।

“आयुसो! ऐसा समय भी होता है जब कि बाह्न वातु बातु कुपित होता है जब गाँवको भी उदा के जाता है। आयुसो! ऐसा समय ( भी ) होता है जब प्रीप्यक विष्के महीपेमें तारुका पंचा दुकाकर भी इवा खोजते हैं -- । आयुसो! इस इतने बड़े वातु-बातु उस मिथुको बधि नृपरे आबोज ।। इतनेसे भी आयुसो! मिथुने बहुत कर किया।

“इस आयुसो! बाह्न, बहकी नृन और सुत्तिकामे विरा आक्यस भर कहा जाता है। ऐसही आयुसो! अग्नि आतु भास भी चर्मसे विरा आक्यस रूप (=मूर्ति शरीर) बना जाता है। ( जब ) आप्यात्मिक (=शरीरमें की) वातु अ-परिमित (=अ-विहृत) होती है, बाह्नरूप सामने बही आते ( तो ) उनसे समन्वाहार (=सतसिहार विषय ज्ञान) उत्पन्न बही जाता; उसस उत्पन्न विज्ञान भाग प्रादुर्भूत नहीं होता। जब आयुसो! शरीरमें की अतु अ-परिमित होती है बाह्नरूप सामने आते हैं। ता उससे समन्वाहार (=विषय ज्ञान) उत्पन्न होता है इस प्रकार उसस उत्पन्न ( एक्यक ) विज्ञान भागका प्रादुर्भाव होता है।

“जो वातु-विज्ञानके सापका रूप है वह रूप उपादान-स्वर्ध गिवा जाता है । जो

वेदना है वह वेदना उपादान-स्वर्ध गिना जाता है। संज्ञा संज्ञा-उपादान-स्वर्ध । संस्कार संस्कार-उपादान-स्वर्ध । विज्ञान विज्ञान-उपादान-स्वर्ध । सो इस प्रकार बावता है—इस प्रकार इन पाँचों उपादान-स्वर्धोंका संग्रह=सन्निपाठ=समवाय होता है। यह भावान्ते भी कहा है—‘जो प्रतीत्य-समुत्पादको देखता (= जानता ) है वह धम्मको देखता है, जो धम्मको देखता है वह प्रतीत्य-समुत्पाद ( कार्य कारणसे उत्पत्ति ज्ञाने ) को देखता है यह प्रतीत्य-समुत्पन्न ( =कारणकारके उत्पन्न ) है जो कि वह पाँच उपादान-स्वर्ध । जो इन पाँच उपादान-स्वर्धोंमें कम्भ ( =कवि )=आलय = अनुभव = भव्यवसाय इ वही बुद्ध-समुत्पन्न है। जो इन पाँच उपादान-स्वर्धोंमें कम्भ=सायक इत्यादि सोचना है वह बुद्ध विरोध है। इतनेसे भी आहुतो ! मिथुने बहुत किया ।

‘आहुतो ? यदि आध्यात्मिक (अधारीरमेक) धीव अ-विकृत होता है। । आण । विद्वान् । अय । मज । इतनेसे भी आहुतो ! मिथुन बहुत किया ।’

आपुप्पान् सारिपुत्रने यह कहा । मनुज हो उन मिथुधर्मोंमें आपुप्पान् सारिपुत्रके भाष्यको अनुमोदित किया ।

+ + +

आस्सलायण-सुत्त ( ई० पू ५१५ ) ।

देसा मीने सुवा—एक समय भगवान् भावस्तीमें अनाद्यपिंडकक कारण जेत वनमें विहार कर रहे थे ।

उस समय नावा देसीके पाँचवाँ ब्राह्मण किसी कामसे आवनतीमें खरे थ । तब उन ब्राह्मणोंको यह (विचार) हुआ—यह अमण गौतम चारों बर्षकी बुद्धि (=आनुष्मन्नी बुद्धि) का उपदेश करता है । क्या है जो अमण गौतमसे इस विषयमें बाह कर सक ? उस समय आवनतीमें आश्रयण नामक शिष्य-कुंडुम (=कल्प) -जलर-यमेह = शिष्या -सहित तीनों बेशों तथा पाँचवें इतिहासमें भी पाठगत पदक (=कवि) वपाकरण कोअपठ महापुठ कल्प (साको) में त्रिपुण अविठ (=मुबिठ) -वीर तदम मानवक (=विद्यार्थी) रहता थ । तब उन ब्राह्मणोंको यह हुआ—यह आपस्तीमें आश्रयण नामक रहता है यह अमण गौतमसे इस विषयमें बाह कर सकता है ।

तब यह ब्राह्मण उहाँ आश्रयण नामक या वहाँ गये । जाकर आश्रयण नामकसे बोले—

“आश्रयण ! यह अमण गौतम ‘आनुष्मन्नी बुद्धि उपदेश करता है । काहूँके ध्यप आश्रयण अमण गौतमसे इस विषयमें बाह कीजिये ।”

देखा कहने पर आश्रयण नामकने उन ब्राह्मणोंको कहा—  
 “अमण गौतम धमचारी है । धमचारी बाह करनेमें बुध्यतिमंथ (=बाह करनेमें बुद्धा ) हाने हैं । मैं अमण गौतमक साथ इस विषयमें बाह नहीं कर सकता । तुमरी बाह की उन ब्राह्मणोंने आश्रयण नामकको कहा ।

१ म वि १७५३ । २ केवक ब्राह्मणोंकी नहीं चारों बर्षोंकी ध्यान आदिसे पाप-बुद्धि ।

नीतरही वार भी उच भाइकायन भावबकको कहा—

‘भो भाइकायन ! यह भ्रमण गातम चातुर्वर्णी शुद्धिका उपदेश करता है । कइये भाप भाइकायन भ्रमण गातमसे हुन बिषयमें बाद् कीजिब । भाप भाइकायन सुद्धमें बिका पराजित हुये ही मत पराजित हा बाये ।

पुना कहने पर भाइकायन भावबकने उच भाइकायनका कहा—

‘मैं भ्रमण गातमक साथ नहीं (पार) पा सकता । भ्रमण गातम धर्म बारी है । मैं भ्रमण गातमक साथ हुन बिषयमें बाद् नहीं कर सकता । तो भी मैं भाप हागोंके कहनेम बाऊंगा ।

तब भाइकायन भावबक बद् भारी भाइकायन-गातम साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । बाकर भगवान्क साथ संभावन कर । ( कुशाक-प्रश्न पूछ ) ‘एक ओर बँद गया । एक ओर बँदे हुये भाइकायन भावबकने भगवान्को कहा—

‘हे गातम ! भाइकायन ऐसा कहते हैं— भाइकाय ही अष्ट वर्ण हैं दूसरे वर्ण छोटे हैं । भाइकाय ही सुद्ध वर्ण हैं दूसरे वर्ण कृष्ण हैं । भाइकाय ही सुद्ध होत हैं अ-भाइकाय नहीं । भाइकायही महाकाके आरस पुत्र हैं सुगम उत्पन्न महा-अ महा-निमित्त महाका दावाद् है । हुन बिषयमें भाप गातम क्या कहते हैं ।

“ कश्चित् आश्रयछाडयन् । भाइकायनो भाइकायनो अमुमती गर्भिणी जनन करतं, विकसती वैगी जाती है । बोविये उत्पन्न होते हुए भी वह ( भाइकाय ) पुना कहते हैं—भाइकाय ही अष्ट वर्ण है !!

‘वद्यपि भाप गातम पुना कहते हैं, फिर भी भाइकाय ता ऐसाही कहते हैं—भाइकाय ही अष्ट ।

“ तो क्या मानते हो भाइकायन ! तुमने सुना है कि ‘वचन और कर्मोबमें भाप दूसरे भी सीमान्त वेस्तोंमें हो ही वच हाते हैं—आर्ष (स्वर्ण) और दास (अगुकाय) । आर्ष हो दास हो ( एक )ता है दास हो आर्ष हा ( एक )ता है ?

हो भो ! मैंने सुना है कि वचन और कर्मोबमें ।

भाइकायन ! भाइकायनो क्या वच = क्या आवास है जो भाइकाय ऐसा कहते हैं—भाइकायही अष्ट वर्ण है ?

‘वद्यपि भाप गातम ऐसा कहते हैं फिर भी भाइकाय तो ऐसाही कहते हैं ।”

त क्या मानते हो भाइकायन ! कश्चित् प्राण-हिंसक और दुराचारी अष्ट कुशाक-ओर, कटुभाषी बकबासी कभी होती मिष्ठा-वदि (= कृती चारणावाक्य) हो । ( तो क्या ) कावा छोड़ मरनेक व व जयाव = दुर्गति = विनिपात = नरकमें उत्पन्न होगा वा नहीं ? भाइकाय प्राणि हिंसक हो नरकमें उत्पन्न होगा वा नहीं ? कर्म ? सुद्ध नरकमें उत्पन्न होगा वा नहीं ?

“ भो गातम ! कश्चित् भी प्राणि-हिंसक ही नरकमें उत्पन्न होगा ! भाइकाय भी ।

१ पश्चिमी वाक्तर जहाँ सिक्करक बाद वचन ( धीक ) कोय बसे हुये थे, अथवा वृषाम । २ ताबिककाय ।

बैश्य भी । शूद्र भी । सभी चारों वर्णों हे गातम ! प्राणि हिंसक हा नरकमें उतार दोगे ।

“ तो फिर आश्रकायन ! ब्राह्मणोंको क्या बक = क्या आश्वासन है जो ब्राह्मण ऐसा करते हैं ।

“ फिर भी ब्राह्मण तो ऐसा ही करते हैं ।

“ तो क्या मानते हो आश्रकायन ! क्या ब्राह्मण ही प्राण-हिंसामें विरत होता है चारीसे विरत होता है दुराचार छद्म युगकी कट्टबचन बकबादमें विरत होता है, अक्षेपी अ-श्रेणी सम्बन्ध-रहित (= सभी परिहाता ) हो शरीर छोड़ मरनेके बाद मुगति स्वर्गकोकर्म उत्पन्न होता है ; क्षत्रिय नहीं बैश्य नहीं शूद्र नहीं ?”

“ नहीं है गौतम ! क्षत्रिय भी प्राण-हिंसा-विरत मुगति स्वर्ग-सोकमें उत्पन्न हो सकता है ब्राह्मण भी बैश्य भी शूद्र भी सभी चारों वर्णों ।”

‘ आश्रकायन ! ब्राह्मणोंको क्या बक ? !

“ तो क्या मानते हो आश्रकायन ! क्या ब्राह्मण ही वर-रहित द्वेष-रहित मैत्री विरतकी भावना कर सकता है क्षत्रिय नहीं बैश्य नहीं शूद्र नहीं ?

“ नहीं हे गातम ! क्षत्रिय भी इस स्थानमें भावना कर सकता है ० । । सभी चारों भावना कर सकते हैं ।

‘ यहाँ आश्रकायन ! ब्राह्मणोंको क्या बक ? ” ।

‘ तो क्या मानते हो आश्रकायन ! क्या ब्राह्मण ही मंगल (= स्वरित ) स्नातन-वर्ण केकर बन्दीका या मीक भी सकता है क्षत्रिय नहीं ?

नहीं हे गातम ! क्षत्रिय भी मंगल स्नातन-वर्ण छ नहीं जा सैठ था सकता है सभी चारों बज ।”

“ यहाँ आश्रकायन ! ब्राह्मणोंको क्या बक ? ”

“ तो क्या मानते हो आश्रकायन ! ( बन्दि ) यहाँ मूर्खों-भिषिक क्षत्रिय राजा नामा जातिके भी पुरुष हृच्छन्द करे ( और उन्हें बन्दि )—जायें आप सब जो कि क्षत्रिय कुकर्म ब्राह्मण-कुलसे और राजान्व (= राजमताम ) कुलसे उत्पन्न हैं; और शास्त्र ( मान् ) की पा सरक ( ब्रह्म ) की वा चन्द्र की पा पत्र ( काष्ठ ) की उत्तरारणी करके आग बनायें तोत्र प्रादुभू त करें । ( और ) आप भी जायें जो कि चण्डालकुलमें निपादकुलमें बन्धार (= बन्धु )-कुलसे रजस्व-कुलमें पुच्छकुलमें उत्पन्न हुए हैं और कुतेके पीनेकी सूजरक पीनेकी कन्दरीकी पोथीकी कन्दरीकी या रेंदकी ककड़ीकी उत्तरारणी करके, आग बनायें तोत्र प्रादुभू त करें । तां क्या मानते हो आश्रकायन ! जो वह क्षत्रिय-ब्राह्मण-बैश्य-शूद्रकुलोंमें उत्पन्नों-द्वारा छाल-मरक-चन्द्र पत्रकी उत्तरारणीको करके अग्नि उत्पन्न की गई है तोत्र प्रादुभू त किया गया क्या बही भविमान् = उपोतिवास्त ) वर्णान् प्रमान् अग्नि हाया ? उनी आगम अग्निका काम किया जा सकता है; और जो वह चौडाक-निपाद-बन्धार-वपकार पुच्छ कुलोत्पन्नीं हाथ बपान-कन्दरीकी सूकर-पान-कन्दरीकी, रेंद-काष्ठकी उत्तरारणीको लेकर

उत्पन्न भया है, प्राहुन् त तेज ( है ) वह अर्धिमान् वर्णवाक् प्रभारकर भ होगा ? उस अर्धि  
अधिक काम नहीं किया जा सकेगा ?

नहीं है गीतम ! जो वह अर्धिब कुम्होत्पन्न द्वारा अग्नि बनाई गई है वह भी  
अर्धिमान् अग्नि होगी उस आगसे भी अग्नि का काम किया जा सकता है; और जो वह  
बाँटा कुम्होत्पन्न द्वारा अग्नि बनाई गई है वह भी अर्धिमान् अग्नि होगी । सभी  
आगसे अग्नि का काम किया जा सकता है ।”

“वहाँ आश्वलायन ! ब्राह्मणों का क्या कह ?” ।

“तो क्या मानते हो आश्वलायन ! यदि अर्धिब-कुमार ब्राह्मण-कम्पाक साथ संपास  
करे । उसके सहवाससे पुत्र उत्पन्न हो । जो वह अर्धिय-कुमार द्वारा ब्राह्मण-कम्पाके पुत्र उत्पन्न  
हुआ है क्या वह माताके समान और पिताके समान अर्धिब ( है ) 'ब्राह्मण ( है ) क्या  
जाना चाहिये ?” है गीतम ! कहा जाना चाहिये ।

“आश्वलायन ! यदि ब्राह्मण-कुमार अर्धिय-कम्पाक साथ संपास करे 'ब्राह्मण  
( है ) क्या जाना चाहिये ?” “ब्राह्मण ( है ) कहा जाना चाहिये ।

“माश्वलायन ! यहाँ घोड़ीको गर्हस बोधा शिकमें उनके बोधसे किबोर  
( =बद्धा ) उत्पन्न हो । क्या वह माता पिताके समान 'बोधा है 'गर्हा है क्या  
जाना चाहिये ?”

“ है गीतम ! वह अन्तर ( =अन्तर ) होता है । यहाँ 'अन्तर देखता हूँ' । वन  
दूसरीमें कुछ भेद नहीं देखता ।”

आश्वलायन ! यहाँ ही मानवक अग्नि में भाई हों । एक अन्वयन करनेवाला और  
उपनीत ( =उपनीत द्वारा गुणके पास प्राप्त ) है; दूसरा अन्-अन्वयक और अन्-उपनीत  
( है ) । ब्राह्मण, वज्र वा पाहुनाई ( =पाहुने, में ब्राह्मण किसकी प्रथम भोजन करावेंगे ?”

“ है गीतम ! जो वह मानवक अन्वयक और उपनीत है उसीको प्रथम भोजन  
करावेंगे । अन्-अन्वयक अन्-उपनीतको देखेस क्या महाफल होगा ?

“तो क्या मानते हो आश्वलायन ! यहाँ ही मानवक अग्नि में भाई हों । एक अन्वयक  
उपनीत ( किन्तु ) हुस्तीक ( =दुराचारी ) पाप धर्म ( =पापी ) हो; दूसरा अन्-अन्वयक  
अन्-उपनीत ( किन्तु ) सौख्यवाक् कर्षण-धर्म । इधमें किसको ब्राह्मण साथ वा वज्र वा  
पाहुनाईमें प्रथम भोजन करावेंगे ?”

“ है गीतम ! जो वह मानवक अन् अन्वयक अन्-उपनीत ( किन्तु ) सौख्य  
कर्षण-धर्म है उसीको ब्राह्मण प्रथम भोजन करावेंगे । हुस्तीक-वाप धर्मको दान देनेसे  
क्या महा-फल होगा ?”

“आश्वलायन ! पहिले दू आतिपर पहुँचा आतिपर आकर संभोपर पहुँचा संभोपर  
आकर अब दू आतिपर पहुँचा आतिपर आकर संभोपर पहुँचा संभोपर आकर

ऐसा कहनेपर आश्वलायन मानवक सुप होयवा मूक हा गया अन्वयक चिन्तित  
विधित्त हो बस ।

तब भगवान्ने आश्वलायन मानवकको सुप मूक विधित्त में देखे कहा—

“पूर्वकर्मों आश्वलायन ! अंगकर्म पर्वकुटियोंमें बास करते हुये सात ब्राह्मण-  
 ऋषियोंको इस प्रकारकी पाप-दण्डि (= कुरी धारणा) उत्पन्न हुई—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है ।  
 आश्वलायन ! तब असित द्युष्य ऋषिने मुना सात ब्राह्मण ऋषियोंको इस प्रकारकी पाप  
 दण्डि उत्पन्न हुई है । तब आश्वलायन ! अमित देवक ऋषि मिर-वाही मुंडा मंडीके रंगक  
 (=काक) बुस्सा पहिन कषाठपर वह साने चाहीका बंड धारण कर सातों ब्राह्मण  
 ऋषियोंकी कुटीके अंगनमें प्राप्नुत हुए । तब आश्वलायन ! असित वेबळ ऋषि सातों  
 ब्राह्मण ऋषियोंके कुटीके अंगनमें दृक्ते हुये कहने लगे—‘हे ! आप ब्राह्मण-ऋषि कहां  
 गये ? हे ! आप ब्राह्मण ऋषि कहां गये गये ?’ तब आश्वलायन ! उन सातों ब्राह्मण  
 ऋषियोंको बुझा—‘कौन है वह गौंवार ऋषिकेकी तरह सातों ब्राह्मण ऋषियोंकी कुटीके  
 अंगनमें दृक्ते ऐसे कह रहा है—हे ! आप । अच्छा तो इसे साप देखें । तब आश्वलायन !  
 सात ब्राह्मण-ऋषियोंअसित देवक ऋषिको साप दिखा—घृष्ट ! (=बुध्क) भय हो  
 बा । उसे उस आश्वलायन ! सात ब्राह्मण ऋषि असित देवक ऋषिको साप दते थे बसही  
 बीने देवक ऋषि अधिक सुन्दर, अधिक वर्षानीय = अधिक प्रासादिक होते जा रहे थे ।  
 तब आश्वलायन ! सातों ब्राह्मण ऋषियोंको बुझा—‘हमारा तप धर्म है, ब्रह्मचर्य  
 विष्णुक है । हम पहिले किसको साप दत—‘बुध्क ! भय होबा वह भयही होता बा ।  
 इसको हम जैसे जैसे साप देते हैं जैसे ही जैसे वह अमिरूप-तर वर्षानीय-तर प्रासादिक-तर  
 होता जा रहा है । ( असित देवकने कहा )—‘आप लोगोंका तप धर्म नहीं ब्रह्मचर्य विष्णुक  
 नहीं आप लोगोंका मन जो मेरे प्रति दृष्टि हा गया है उसे छोड़ दें । (उन्होंने कहा)—‘जो  
 मनोपद्रोस (=मानसिक दुर्भाव) है उस हम छोड़ते हैं आप कौन हैं ?’ ‘आप लोगोंने  
 असित देवक ऋषिको मुना है ?’ ‘हाँ मो !’ ‘वही मैं हूँ ।’

“तब आश्वलायन ! सातों ब्राह्मण ऋषि असित देवक ऋषिको अमिवाह्य करनेके  
 किये पास गए । असित देवक ऋषिने कहा—‘मिने मुना कि ‘अरुणके भीतर पर्वकुटियोंमें  
 बास करते सात ऋषियोंको इस प्रकारकी पापदण्डि उत्पन्न हुई है—ब्राह्मणही श्रेष्ठ वर्ण है ।  
 ‘हाँ मो ! ‘जाते हैं आप कि जगती=माता ब्राह्मणोंके पास गई अ-ब्राह्मणके पास  
 नहीं ?’ ‘वहीं । ‘जाते हैं आप कि जगती = माताकी माता सात पीढ़ी तक माताम ही  
 (=माता) ब्राह्मणोंके पास गई अ-ब्राह्मणके पास नहीं ?’ ‘वहीं मा ! ‘जाते हैं  
 आप कि अकिता = पिता पितामह-सुगण (=दादा) सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मणोंके  
 पास गये अ-ब्राह्मणोंके पास नहीं ?’ ‘नहीं मो ! ‘जाते हैं आप गर्भ कैसे उदरता है ?’  
 ‘हाँ जाते हैं मो ! जब माता-पिता एकत्र होते हैं माता कतुमती होती है और गर्भ  
 (=उत्पन्न होने बाका सत्त्व) उपस्थित होता है ; इस प्रकार तीनोंक एकत्रित होनेसे गर्भ  
 उदरता है । ‘जाते हैं आप कि वह गर्भ अशुभ होता है, ब्राह्मण बहन बा घृष्ट होता  
 है ?’ ‘वहीं मो ! हम नहीं जानते कि वह गर्भ ।’ ‘जब ऐसा ( है ) तब जानत हो  
 कि हम कौन हो ?’ ‘मो ! हम नहीं जानत हम कौन हैं ।’

“हे आश्वलायन ! असित द्युष्य ऋषि-शरा काठियादेके विषयमें घृष्ट जानेपर, वह  
 सातों ब्राह्मण ऋषि नी (उत्तर) व द सके; वो फिर आज तुम क्या (उत्तर) दोगे, (अथकि)  
 अपनी धारी पहिन्वाई-अहित तुम उधके रसाईंशर (=विष्णुदेव) ( क समाप्त ) हो ।



पेसा कहने पर आश्वलायन माणवकने मगधान्को कहा—“आश्व ! हे गौतम ! आश्व ! हे गौतम ! आश्वसे मुझे अंशु-वद उपासक कारण करें ।

+ + +

(१८)

महाराजलोवाद-सुच । अक्षुण्य-सुच ( इ० पू० ५१५ ) ।

पेसा मीने सुना - एक समय मगधान् ध्यावस्तीमें मनाथपिण्डकके आराम जेत वन में बिहार करते थे ।

तब पूर्वाह्न समय मगधान् पहिनकर पात्र चीवरके आश्रयमें पिण्ड- ( वार )के किने प्रविष्ट हुये । आयुष्मान् राजकुली पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्र-चीवरके मगधान्के पीछे पीछे होकिये । मगधान्ने देखकर आयुष्मान् राजकुलीके संबोधित किया—

‘राहुक ! जो कुछ रूप है - मूत-मचिण्य वर्तमान-का शरीरके नीतर ( = अण्डाण्य ) का या बाहरका महान् या सूक्ष्म अण्डाण्य या पुरा पुर वा समीप-का—समी रूप न वह मेरा है ‘य मी वह हूँ ‘न वह मेरा भाव्या है, इस प्रकार बधार्थ जानकर देखक ( = ममज्ञाना ) चाहिये ।’

‘रूपहीको मगधान् ! रूपहीको सुगत !’

‘रूपकोमी राहुक ! वेदवाकोभी संशाकोमी, सस्वरकोमी विज्ञानकोमी ।’

तब आयुष्मान् राजकु—‘कौन आज मगधान्का उपवेश्य सुतकर गर्बमें पिण्ड-वार क किये जाने ?’ ( सोच ) वहाँसँ ऊँटकर एक वृद्धके नीचे आसन्न मार शरीरको सीधा रख स्मृतिको सम्मुख इतराकर बैठगये । मगधान्ने आयुष्मान् राजकुको वृद्धके नीचे बैठ देखा । देखकर संबोधित किया—

‘राहुक ! आण्यपात्र सति ( = प्राणपात्र ) भावनाकी भावना ( = आण्य ) कर । राहुक आण्यपात्र-सति ( = आण्यपात्र स्मृति ) भावना किये जानेपर महाकल्याणक बने महाकल्याणकी दात्री है ।

तब आयुष्मान् राजकु सार्वकालके ध्यावने उठ वहाँ मगधान् के वहाँ गये । आजक मगधान्का अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् राजकुने मगधान्को बह कहा—

मन्ते ! किस प्रकार भावना की गई, किस प्रकार कर्माई गई, आण्यपात्र सति महा कल्याणक बने महाकल्याणकी दात्री है ?’

राहुक ! जो कुछ भी शरीरमें ( = अण्डाण्य ) प्रतिशरीरमें ( = अण्डाण्य ) कर्माई, लयराई जय - वय जीम नक रॉत चमका मांस रानु, अस्ति अस्ति-प्रजा पुत्र इत्यन पकूठ क्लामक प्कीहा पुत्रकुम अंत पतकी अंत ( = अंत-गुण = अंतकी रम्यी ) पेटक मक । और जो धीर भी कुछ शरीरमें प्रतिशरीरमें कर्माई है । राहुक ! बह सब । अण्डाण्य वृधिराणु, कर्मावती है । जो कुछ कि अण्डाण्य वृधिराणु

है और जो कुछ बाह्य, यह (सब) पृथिवी-धातु, पृथिवी-धातु ही है। उसका 'यह मेरी नहीं 'यह मैं नहीं हूँ' 'यह मेरा भावना नहीं है' इस प्रकार वयार्थता जानकर देखना चाहिये। इस प्रकार इस वयार्थता: अच्छी प्रकार जानकर देखनेसे (मिथु) पृथिवी-धातुमें उदास होता है पृथिवी धातुसं चित्तको विरह्य करता है।

'क्या है राहुक ! भावधातु ? भाप ( = अक ) धातु ( जो ) हैं आध्यात्मिक ( = शरीरमें की ) और बाह्य । क्या है ? अध्यात्मिक भाव-धातु ' । तेज-धातु । वायु-धातु ।

'क्या है राहुक ! आकाश धातु ? आकाश धातु आध्यात्मिक भी है और बाह्य भी । "राहुक ! आध्यात्मिक आकाश-धातु क्या है ? जो कुछ शरीरमें प्रतिशरीरमें आकाश या आकाश-विषयक है जैसे कि—कर्म-छिद्र नासिका-छिद्र मुख-द्वार जिससे अन्न-पान कादन-आम्बाहन किया जाता है और जहाँ आवा-पीना उदरता है, और जिससे कि जघोभागमें जाया-पिना बाहर निकलता है। धार या कुछ और भी शरीरमें प्रति-शरीरमें आकाश या आकाश-विषयक है। वह सब राहुक ! आध्यात्मिक आकाश धातु कही जाती है। जो कुछ आध्यात्मिक आकाश-धातु है धार जो कुछ बाह्य आकाश-धातु है वह सब आकाश-धातु ही है। 'वह न मेरी है ।

'राहुक ! पृथिवी-समान भावनाकी भावना ( = ध्यान ) कर । पृथिवी समान भावनाकी भावना करते हुये राहुक ! तेरे चित्तको विक्र को अच्छे कमानेवाले स्पर्श—चित्तको चारों ओरसे पकड़कर न चिमरेंगे। जैसे राहुक ! पृथिवीमें मृषि ( = अविज्ञ वस्तु ) भी पकड़ते हैं अमृषिमी पकड़ते हैं। पाखालामी पेशाबमी कक, पीब कोहू । उससे पृथिवी बुझी नहीं होती म्यामि नहीं करती दूना नहीं करती इसी प्रकार ; ए राहुक ! पृथिवी-समान भावनाकी भावनाकर । पृथिवीसमान भावना करते राहुक ! तेरे चित्तको अच्छे कमानेवाले स्पर्श चित्तको न चिमरेंगे ।

'जाप ( = अक )-समान । जम राहुक ! अकमें मृषिमी चोते है ।

'तेज ( = अमि )-समान । जैसे राहुक ! तेज मृषिको भी ककता है ।

'वायु-समान । जैसे राहुक ! वायु मृषिक पासमी बहता है ।

आकाश समान । जैसे राहुक ! आकाश किमी पर प्रतिष्ठित नहीं। इसी प्रकार ए राहुक ! आकाश-समान भावनाकी भावना कर । राहुक ! अकाश-समान भावनाकी भावना करवैपर उत्पन्न हुये सबको अच्छे कमानेवाले स्पर्श चित्तको चारों ओरसे पकड़कर चित्त को न चिमरेंगे ।

'राहुक ! मीची ( = तबको मित्र समझना )-भावनाकी भावना कर । मीची भावनाकी भावना करवैसे राहुक ! जो व्यापाह ( = श्रेय ) है वह हूर जावेगा ।

'राहुक ! कल्पना- ( = सर्ग ) प्राप्तिपर दूना करना ) भावनाकी भावना कर । कल्पना भावनाकी भावना करवैसे राहुक ! जो तेरी बिहिना ( = पर-पीछ प्रवृत्ति ) है वह हूर जापरी ।

'राहुक ! मुदिता ( = मुखी का बेज प्रयत्न होना )-भावनाकी भावना कर ।

राहुक ! जो तेरी अ-रति (= मन्त्र पढ़ना) है वह हृद जायेगी ।

“राहुक ! उपेक्षा (= शत्रुकी शत्रुताकी उपेक्षा)-भावनाकी भावना कर । जो तेरा प्रतिष (= प्रतिहिंसा) है वह हृद जायेगा ।

राहुक ! अ-सुम (= सभी भोग भुरे हैं)-भावनाकी भावना कर । जो तेरा राग है वह ब्रह्म जायेगा ।

‘राहुक ! अ-नित्य-संज्ञा (= सभी पदार्थ अ-नित्य हैं)-भावनाकी भावना कर । जो तेरा अस्मिमान (= अहंकार) है वह सूत्र जायेगा ।

“राहुक ! आश्रयान-सति (= आश्रयान) भावनाकी भावना कर । आश्रयान-सति भावना करना-ब्रह्मना राहुक ! महा-अन्ध-मन्त्र बड़े महात्म्यवाका है । राहुक ! आश्रयान-सति भावना भावित होवेपर बड़ाई जानेपर कस महा-अन्ध-मन्त्र होती है ? राहुक ! मिथु अरुणमें बृहदे नीच वा शूल-गृहमें आसन मारकर, शरीरको सीधा चारण कर, स्फुटि को मन्मुख रख बैठता है । वह स्मरण रखते सांस छोड़ता है स्मरण रखत सांस कटा है, कम्बी सांस छोड़ते कम्बी सांस छोड़ रहा हूँ जायता है । कम्बी सांस छोड़े कम्बी सांस के रहा हूँ’ जानता है । छोटी सांस छोड़ते छोटी सांस छोड़े । ‘सारे कामको अनु-मन्त्र (=प्रतिप्रवेदन) करते सांस छोड़ सीखता है । ‘सारे कामको अनुमन्त्र करते सांस छू सीखता है । कायाके संस्कारों प्राण आवि का द्वाते हुये सांस छोड़ूँ, सांस छू सीखता है । पीठिको अनुमन्त्र करते सांस छोड़ूँ । सांस छूँ सीखता है । मुख अनुमन्त्र करते । चित्तके संस्कारको अनुमन्त्र करते । चित्त संस्कारको द्वाते हुय । चित्तको अनुमन्त्र करते । चित्तको प्रमुदित करते । चित्तको समाधान करते । चित्तको (राग अदिसे) विमुक्त करते । (सब पदार्थोंको) अनित्य देखने भाषा हो । (मन्त्र पढ़ावोंमें) विरागकी दृष्टि से । (सब पदार्थों में) विरोध (अविनाश) की दृष्टि । (सब पदार्थों में) परित्यागकी दृष्टिसे सांस छोड़ूँ सीखता है । परित्यागकी दृष्टिसे सांस छूँ सीखता है । राहुक ! इस प्रकार भावना की गई बड़ाई गई आश्रयान-सति महा-अन्ध शत्रुकार बड़े महात्म्यवाकी होती है । राहुक ! इस प्रकार भावना की गई, बड़ाई गई आश्रयान-सतिस जो वह अन्तिम आश्रय (= सांस छोड़ना) प्रथम (= सांस छोड़ना) है वह भी विहित होकर लक्ष्य (=निष्पत्ति) हाथ है अविहित होकर नहीं ।”

भगवान् ने यह कहा । आश्रयान् राहुकने मन्तुप्य है । भगवान् ने भावनाकी अभितन्त्र द्रष्टा ।

‘अद्वयान-गुण ।

‘जमा मने गुण—एक समय भगवान् धायलीमें अनाथविश्वको आराम जेतव मने विहार करा था ।

बढ़ी भगवान् ने निशुभोंका संवाधित द्रष्टा—

मन्त ! (कह) उन मिथुनोंके उत्तर दिया । तब भगवान् ने उक्त मिथुनोंकी कहा  
 "मिथुनों ! जोक क्षण-कल्प है क्षण-कल्प है ऐसा अज्ञ (=अज्ञान) पृथग्जन  
 करता है लेकिन वह क्षण वा अ-क्षणको नहीं जानता । मिथु ब्रह्मचर्य-वासके लिये यह जाद  
 अ-क्षण=अ-समय है । कौनसे जाद ? मिथुओं ! जोकमें तयागत अर्धत् सम्बन्ध संसुद्ध  
 विद्या-आचरण-सपन्न सुगत जोक-विद्, अनुपम पुद्गलके वाचक-सचार, देव-मनुष्य-उपदेशक  
 सुद्ध मगवान् उत्पन्न हों । यह सुगतके ज्ञात उपजात करनेवाके निर्वाणको लानेवासे संबोधित  
 (=परमज्ज्ञान)-गामी धर्मको उपदेश करते हों । (१) (उक्त समय) यह पुद्गल (=पुद्गल)  
 नकमें उत्पन्न हो । (२) पञ्चपीठमें उत्पन्न हो । (३) प्रेतलोकमें उत्पन्न हो । (४)  
 किसी हीर्षांशु देव-समुदायमें । (५) (एत) प्रत्यन्त (=स्तीमान्त) देशमें अविश्रम्भणों  
 (के देश) में उत्पन्न हो जहाँ मिथु-मिथुणियों तथासक-उपासिकोंकी गति नहीं ।  
 (६) 'मध्यमज्जनपत्तों (=मन्दिनेसु जनपदैसु) में उत्पन्न हुआ हो (किन्तु) सिद्धा दृष्टि-  
 ठकरी मत का हो—दान (कुष्ठ) नहीं पञ्च (कुष्ठ) नहीं सुद्धत-मुद्धत कर्मोंका चक्र=विपाक  
 कुष्ठ नहीं यह जोक नहीं परलोक नहीं माता नहीं है पिता नहीं उत्पन्न होनेवाके (=जोप  
 पातिक) प्राणी (कोई) नहीं । जोकमें अण्ठी तरह पहुँचे अण्ठी तरह (उत्पन्ने) प्राप्त  
 हुये भ्रमज-जाह्नय (कोई) नहीं हैं जो कि इस लोक और परलोकको सब जानकर=साक्षात्  
 कर ज्ञातार्थे । (७) यह पुद्गल मध्यम-देशमें पैदा हुआ हो लेकिन वह है दुष्पञ्च जन्म,  
 ब्रह्ममूर्त्त (=एवमूय=मेह-गूँगा); सुभाषित दुर्भाषितके अर्थको जाननेमें असमर्थ यह  
 मिथुओं ! ब्रह्मचर्य-वासके लिये सातवाँ अ-क्षण=अ-समय है ।

"(८) और फिर मिथुओं ! जोकमें तयागत उत्पन्न हों उपदेश करते हों उस समय  
 यह पुद्गल मध्यम-देशमें न पैदा हुआ हो और मज्ञावान्, अजन्म अज्ञ-एवमूय सुभाषित दुर्भा  
 षितके अर्थ जाननेमें समर्थ हो । यह मिथुओं ! ब्रह्मचर्य-वासके लिये आठवाँ अ-क्षण=अ-समय ।

"यह मिथुओं ! ब्रह्मचर्य-वासके लिये न अ-क्षण=अ-समय है । मिथुओं ! ब्रह्मचर्य  
 वापके लिये एक ही क्षण=समय है । काब सा एक ? मिथुओं ! जोकमें तयागत  
 उत्पन्न हों उपदेश करते हों, भार यह पुद्गल मध्यम-देशोंमें पैदा हुआ हों और वह हो  
 मज्ञावान् अजन्म अज्ञ-एव-मूय सुभाषित दुर्भाषितके अर्थ जाननेमें समर्थ । यही मिथुओं  
 एक क्षण=समय है ब्रह्मचर्य-वासके लिये ।

+ + + +  
 ( १९ )

पोट्टपाइ-सुच ( ई पू ५१५ )

'पसा मीने सुना—एक समय भगवान् अनाद्यपिद्गलके आराम जेतवनमें विहार  
 करते थे ।

तब मगवान् पूर्वाह्न समय पहिलकर पात्र-धीवर ल आबस्तीमें पिद्गल लिये प्रविष्ट  
 हुए । तब मगवान्को यह हुआ - आबस्तीमें पिद्गलकारके लिये अर्धी बहुत सबेरा है ज्यों न

१ वर्तमान हिंदीभाषी (कोर्यासे कुल्लेह हिमाकपसे विन्वाचक तकके बीचका) देश ।  
 देखो पूछ १।२ ही नि १:२ ।

में समय प्रघातक (= मित्र-मित्र मठोंके आक्षेप स्वाद्य) एकसासक (= एक बड़ी जात नामे) मल्लिका (= कोसलेपर-महिषी) के आराम 'तिन्धुकाधीरमें, बहो पाठुपाए परित्राजक है बहो बहो। तब भगवान् बहो तिन्धुकाधीर या बहो गये।

उस समय पोद्दुठ (= प्रोष्ठ) पाए परित्राजक राज-कथा बार-कथा महारम्भ-कथा सेना-कथा मय-कथा पुद्द-कथा अन्न-कथा पाम-कथा बन्न-कथा शयन-कथा गेब-कथा माला-कथा शाति (= कुक)-कथा वाव (= बुद्ध पात्रा) कथा धाम-कथा क्रियम-कथा नगर-कथा जन-पद-कथा क्षी-कथा दूर-कथा विमिला (= बौरस्ता)-कथा कुम्भ-रथाम (= पनघट)-कथा पूर्व-मेत (= पहिले सरोंकी)-कथा नागत्य-कथा शोक-आत्मविषय, समुद्र-आलपाविका इति-मन्वाजक (= ऐसा हुआ मुसा नहीं हुआ)-कथा जाति विरसक कथार्थ कहती गए करती शोर मचाती बड़ी भारी परित्राजक-परिपत्रके साथ बस वा। पोद्द-पाए परित्राजकने दूरसे ही भगवान्को भाने देखा। इत्तर अपनी परिपत्रको कहा— आप सब निःसण्ड हो आप सब शपद मत करीं। भ्रमण गौतम जा रहे हैं। वह जातुप्पाए निःसण्ड-मेमो कि (= कल्प)-सण्ड परांसक हैं। परिपत्रको कल्प सण्ड देब सम्भव है (द्वय) भाये।" ऐसा कहनेपर (वे) परित्राजक चुप हो गये।

तब भगवान् बहो बोद्धपाए परित्राजक वा बहो गये। बोद्धपाए परित्राजकने भगवान्को कहा—

"आइये भन्ते ! भगवान्। स्वागत है भन्त ! भगवान्। चिर (-काक) के वा भगवान् बहो जाब हैं। ईदिये भन्ते ! भगवान् वह आसन बिछा है।

भगवान् बिठे आसनपर बैठ गये। पोद्धपाए परित्राजक भी एक बीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ हुये पोद्ध-पाए परित्राजकको भगवान्ने कहा—

"पोद्धपाए ! किम् कथामें इस समय बैठे थे क्या कथा बीचमें हा रही थी ?"

ऐसा कहनेपर पोद्ध-पाए परित्राजकने भगवान्को यह कहा—

"आज हीदिने भन्त ! इस कथाको जिस कथामें हम इस समय बैठे थे। तुमी क्या भन्ते ! भगवान्को पीठे भी सुबनेमें दुर्लभ न होगी। पिछसे दिनोंके बहिक भन्त ! कुन्दरस आसामें अमा हुये नावा लीची (= पंचों) के भ्रमण-वाइयामें अभिनशा निरोध (= एक लमायि, पर कथा बन्नी—'मो ! अभिनशा निरोध किस होता है ?' बहो किन्हीने कहा—'बिना हनु = बिना प्रणपही बुद्धकी संज्ञा (= चेतना) उत्पन्न भी होती है बिन्द भी होती है। वह उस समय संज्ञा-रहित (=अ-संज्ञी) होता है। हम प्रकार कोई कोई अयि संज्ञा निरोधका प्रचार करते हैं। उनको तूमरने कहा— मो ! वह ऐसा नहीं हा सकता। संज्ञा पुरुषका व्याप्ता है। वह जाता भी है जाता भी है। जिस समय जाता है उस समय संज्ञा-वान् (=संज्ञी) होता है; जिस समय जाता है लज्ञा-रहित (=अ-संज्ञी) होता है। हम प्रकार कोई कोई अभिन-संज्ञा-निरोध बतकात है। उसका तूमरने कहा—'मो ! यह ऐसा नहीं हागा। (कोई कोई) भ्रमण-वाइयन महा कइदि मान् = महा अनुभव वान् है। वह ह्य पुरुषको संज्ञाको उत्पन्न भी है विकल्पन भी है। जिस समय उत्पन्न है उससमय संज्ञा वान् हाता है। जिस समय विकल्पन है उस समय अ-संज्ञी हाता है। हम प्रकार कोई कोई अभिन-संज्ञा

विरोध बतलाते हैं। उसको दूसरेय कहा—मो ! यह पूंसे न होगा। (कोई कोई) देवता महा-  
 कृदि-मान्-महा-अनुभव-वान् हैं। वह इस पुस्तकी संज्ञा (=बोधा) डालते भी हैं निकारते भी  
 हैं। इस प्रकार कोई कोई अभि-संज्ञा-विरोध बतलाते हैं। तब मुझको भन्ते ! भगवान्‌के  
 बारेमें ही धारण जाया—'महो अवश्य वह भगवान् सुगत हैं' जो इन धर्मों (=अभिज्ञता)  
 में चतुर हैं। भगवान्‌ जमि संज्ञा-विरोधके प्रकृतिज्ञ (=व्यभाषक) हैं। कैसे भन्ते ! अभि  
 संज्ञा-विरोध होता है ?

'पौष्ट-पाद ! जो वह समय ब्राह्मण ऐसा कहते हैं—बिना हेतु-बिना प्रत्यक्षही पुस्तकी  
 संज्ञावें उत्पन्न होती हैं निरुद्ध भी होती हैं आदिमेही उम्होंने मूक की। वह किम लिये ?  
 स-हेतु (=अधारणसे) =स-अत्यय पौष्टपाद पुस्तकी संज्ञावें उत्पन्न होती हैं निरुद्ध भी होती हैं।  
 शिक्षासे कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती है शिक्षासे कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती है।'

'आर शिक्षा क्या है ?

भगवान्‌ने कहा— 'पौष्टपाद ! यहाँ लोकमें तयागत उत्पन्न होत हैं—सम्पन्न स पुत्र  
 विद्या-आचरण-संपन्न, सुगत लोक-वित् अनुपम पुस्तक-बाधुक-सवार, देव-मनुष्य-उपदेशक  
 पुत्र भगवान्‌। वह इस द्वा-मार-ब्रह्म-महित कोकको १। धर्म-वैद्यक करने हैं। उद्देश्य,  
 बध बचन ध्या मारने आछोह (=माम आदि विनाश करने) बाध डालनेसे विरत होते  
 हैं। इस प्रकार पौष्टपाद ! मिश्र स्त्रीकसम्पन्न होता है। उसे इन पाँच नीचरत्नोंसे मुक्त हो,  
 अपनेको देखनेसे प्रसाद उत्पन्न होता है। ममुदितको प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति-सहित  
 विरतबाधेकी जाया अ-बंधक (=प्रसन्न) होती है। प्रसन्न-काय-बाध सुख-अनुभव करता  
 है। सुखितक विरत समाहित (=एकत्र) होता है। वह कामोंसे पृथक हो अ-कुशल धर्मोंस  
 पृथक हो स-वितर्क-विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखबाध प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी  
 जो वह पहिलेकी काम-संज्ञा है वह निरुद्ध (=नष्ट) होती है। विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखबाध  
 सूक्ष्म सत्व-संज्ञा उस समय होती है किमसे कि वह उस समय सूक्ष्म-सत्त्व-संज्ञी जाता है।  
 इस शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञावें उत्पन्न होती हैं कोई कोई निरुद्ध जाती हैं।

'आर भी पौष्टपाद ! मिश्र विरत विचारके उपघात होनेपर भीतरक संप्रसाद  
 (= प्रसन्नता) = विरतकी एकप्रताको विरत-विचार-नहित समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुख-बाले  
 द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। उसकी जो वह पहिली विवेक प्रीति-सुख बाधकी  
 सूक्ष्म सत्व-संज्ञा थी वह निरुद्ध होती है। समाधिसे उत्पन्न प्रीति-सुखबाधकी सूक्ष्म-सत्त्व-  
 संज्ञा-वान् ही वह उस समय होता है। इस शिक्षामें भी कोई कोई संज्ञा उत्पन्न होती हैं  
 कोई कोई संज्ञा निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।

'और फिर पौष्टपाद ! मिश्र प्रीति और विरागसे उपेक्षक शून्य ध्यानसे प्राप्त हो  
 विहरता है। उसकी वह पहिलेकी समाधिसे प्रीति-सुख-बाधकी सूक्ष्म सत्व-संज्ञा निरुद्ध होती  
 है। उपेक्षा-सुख-बाधकी सूक्ष्म सत्व-संज्ञा उस समय (पेश) होती है। उपेक्षा-सुख-सत्व  
 संज्ञीही वह उस समय होता है। ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञावें उत्पन्न जाती हैं कोई  
 कोई संज्ञावें निरुद्ध होती हैं। यह शिक्षा है।"

“और फिर पोट्टपाद ! मित्र सुन आर बुतक विनाशके अनुप-व्याजको प्राप्त हो विहरता है । उसकी वह जो पहिलेकी उपसा-सुख-वासी सूक्ष्म सत्य-संज्ञा ( यी वह ) निरुद्ध होती है । बहुधा-असुख सूक्ष्म सत्य-संज्ञा, उम समय होती है । उस समय ( वह ) अनुसूक्ष्म-सूक्ष्म-सत्य संज्ञाही वह होता है ऐसी शिक्षासे भी कोई कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं कोई कोई संज्ञायें निरुद्ध होती हैं । यह शिक्षा है ।

“आर फिर पोट्टपाद ! मित्र रूप-संज्ञाओंके सर्वथा छोड़नेसे प्रतिब ( = प्रतिहिता ) संज्ञाओंके जन्म हो जानेसे नाशपन ( = नाशत्व ) की संज्ञाओंका मर्ममं व करतेस, अकल्प नाशपन इस नाशपन-अनल्प-आपतनको प्राप्त हो विहरता है । उसकी जो पहिलेकी रूप-संज्ञा यी वह निरुद्ध हो जाती है आकाश-अनल्प-आपतनवाकी सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा उस समय होती है । आकाश-आनल्प-आपतन सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा ही वह उस समय होता है । यी शिक्षा से यी ।

“और फिर पोट्टपाद ! मित्र आकाश अनल्प-आपतनको सर्वथा अतिप्रमत्त कर विज्ञान अल्प है हम विज्ञान आनल्प-आपतनकी प्राप्त हो विहरता है । उसकी वह पहिलेकी आकाश-आनल्प-आपतनवाकी सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा वह होती है विज्ञान अनल्प-आपतनवाकी सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा हाती है । विज्ञान-आनल्प-आपतन-सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा ही ( वह ) उस समय होता है ।

“और फिर पोट्टपाद ! मित्र विज्ञान-आनल्प-आपतनको सर्वथा अतिप्रमत्त कर ‘हुड नहीं है इस अकिंचन्य ( = न-कुछ-भी-पना ) आपतनको प्राप्त हो विहार करता है । उसकी वह पहिलेकी विज्ञान आनल्प-आपतनवाकी सूक्ष्म-सत्य-संज्ञा वह हो जाती है अकिंचन्य आपतनवाकी सूक्ष्म-सत्य संज्ञा ही । वह अकिंचन्य-आपतन-सूक्ष्म सत्य संज्ञा ही उस समय होता है ।”

“चूँकि पोट्टपाद ! मित्र एक-संज्ञी ( = अपनेमें सदा प्रवृत्त करनवाकर ) होता है ( इसलिये ) वह बहोस बहो बहोसे बहो अमथा अवे-तर सज्ञा प्राप्त ( = स्वयं ) करता है । अवे-तर-संज्ञापर स्थित हो उसको वह होता है—“मेरा चिंतन करना बहुत तुरा ( = व्यापीचस ) है, मेरा व चिंतन करना बहुत अल्प ( = अवेत् ) है । यदि मैं न चिंतन करूँ न अमिसस्करण करूँ तो वह संज्ञायें मेरी गड हो जायेंगी और और मी विज्ञान ( = उदार ) उद्योगें उत्पन्न होंगी । क्यों न मैं न चिंतन करूँ न अमिसस्करण करूँ । उसके चिंतन न करने, अमिसस्करण न करनेसे वह संज्ञायें गारा हो जाती हैं और दूसरी उदार संज्ञायें उत्पन्न नहीं होतीं । वह निरोधको स्वयं ( = व्याप्त ) करता है । इस प्रकार पोट्टपाद ! अमथा अमिसंज्ञा ( = संज्ञा-कैतना ) निरोधवाकी संज्ञात-समापत्ति ( = संज्ञात-समापत्ति-सप्रशात-समापत्ति ) उत्पन्न होती है ।

“तो क्या मानते हो पोट्टपाद ! क्या तुमने इससे पूर्व इस प्रकारकी अमथा अमिसंज्ञा-निरोध-सप्रशात-समापत्ति सुनी थी ?”

“बहाँ भन्ते ! मयवाक्यके माफ्य करनेसे ही मैं इस प्रकार जानता हूँ ।”

“चूँकि पोट्टपाद ! मित्र बहाँ एक-संज्ञी होता है । ( इसलिये ) वह बहोसे बहो

वहाँसे वहाँ क्रमशः संज्ञाके अग्र (= उत्तम स्थाव ) को प्राप्त ( स्पर्श ) करता है । संज्ञाके अग्र पर स्थित हो उसका ऐसा होता है—“मेरा चिंतन करना बहुत बुरा है चिंतन न करना मेरे लिये बहुत अच्छा है । यह निरोधको स्पर्श करता है । इस प्रकार पोहपाद । क्रमशः अभिसंज्ञा-निरोध समझाव-समाधि होती है । ऐसे पोहपाद ।

“मन्ते ! मयवान् कथा एक हीको संज्ञा-अग्र (= संज्ञाओंमें सर्व-श्रेष्ठ ) बतलाते हैं या एकक एक भी संज्ञाओंको कहते हैं ?”

“पोहपाद ! मैं एक भी संज्ञाएँ बतलाता हूँ, चार एकक एक भी संज्ञाओंको बतलाता हूँ । पोहपाद ! जैसे जैसे निरोधको प्राप्त (= स्पर्श ) करता है जैसे जैसे संज्ञाअग्रको मैं कहता हूँ । इस प्रकार पोहपाद । मैं एक भी संज्ञाएँ बतलाता हूँ और एक भी संज्ञाओंको बतलाता हूँ ।

“मन्ते ! संज्ञा पहिले उत्पन्न होती है, पीछे ज्ञान, या ज्ञान पहिले उत्पन्न होता है पीछे संज्ञा, या संज्ञा और ज्ञान न पूर्व न-पिछ उत्पन्न होते हैं ?”

“पोहपाद ! संज्ञा पहिले उत्पन्न होती है पीछे ज्ञान । संज्ञाकी उत्पत्तिसे ( ही ) ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । यह यह जानता है— इस कारण (= प्रत्यक्ष ) से ही यह मेरा ज्ञान उत्पन्न हुआ है । पोहपाद ! इस कारणसे यह जानना चाहिये कि संज्ञा प्रथम उत्पन्न होती है ज्ञान पीछे, संज्ञाकी उत्पत्तिसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है ।”

“संज्ञा ( ही ) मन्ते ! पुरुषका आत्मा है, या संज्ञा अकर्म है आत्मा अकर्म ?”

“किसको पोहपाद ! व आत्मा समझता है ?”

“मन्ते ! मैं आत्माको स्पृक (= औद्योगिक ) रूप-वान् चार महामूर्तीवाला कहकर-करके-आवेवाक्य (= कर्मकार-आहार ) मानता हूँ ।”

“तो पोहपाद ! तेरा आत्मा यदि स्पृक कर्म अनुभवात्मिक कर्मकार आहार वाद है, तो ऐसा होनेपर पोहपाद ! संज्ञा दूसरी ही होगी आत्मा दूसरा ही होगा । तो इस कारणसे भी पोहपाद ! जानना चाहिये कि संज्ञा दूसरी होगी आत्मा दूसरा । पोहपाद ! धर्म तो इसे—आत्मा स्पृक है (इस) के होनेहीसे इस पुरुषकी दूसरी ही संज्ञाके उत्पन्न होती है दूसरी ही संज्ञाके निरुद्ध होती है । तो इस कारणसे भी पोहपाद ! जानना चाहिये संज्ञा दूसरी होगी आत्मा दूसरा ।

“मन्ते ! मैं आत्माको समझता हूँ—मनोमय सब बंग प्रथमवाक्य इन्द्रियसंज्ञा ।

“ऐसा होनेपर भी पोहपाद ! तेरी संज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरा । तो इस कारणसे भी पोहपाद ! जानना चाहिये ( कि ) संज्ञा दूसरी होगी आत्मा दूसरा । पोहपाद ! सर्वांग-मूर्त्त-ग-मुक्त इन्द्रियोंसे अहीन मनोमय आत्मा है तभी इस पुरुषकी कोई कोई संज्ञाके उत्पन्न होती है कोई कोई संज्ञाके निरुद्ध होती है । इस कारणसे भी पोहपाद !

“मन्ते ! मैं आत्माको रूप-रहित संज्ञा-मय समझता हूँ ।

“यदि पोहपाद ! तेरा आत्मा रूप-रहित संज्ञामय है तो ऐसा होनेपर पोहपाद ! ( इस ) कारण से जानना चाहिये कि संज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरा । पोहपाद ! रूप-रहित संज्ञा-मय आत्मा है ही तभी इस पुरुषकी ।



‘ मन्ते ! क्या मैं यह जान सकता हूँ—कि संज्ञा पुस्तकी भाषा है वा संज्ञा सूत्री ( चीज ) है भाषा सूत्री ( चीज ) ?

पोद्दुपाद् ! ‘मित्र-रष्टि ( = धारणा )-वाके मित्र-शान्ति ( = चाह )-वाक, मित्र-रष्टिवाके मित्र-आयोग-वासं मित्र-आचार्य रखनेवाक सेरे मित्र—‘संज्ञा पुस्तकी भाषा है ’—जाबना मुश्किल है ।

‘ यदि मन्त ! मित्र-रष्टि-वाके मरे किये ‘संज्ञा पुस्तकी भाषा है ’-जाबक मुश्किल है, तो फिर क्या मन्ते ! ‘लोक मित्र ( = साधत ) है, यही सच है सूत्रा ( अमिषता का विचार ) मिरर्बक ( = मोम ) है ?’

‘ पोद्दुपाद् !—‘लोक मित्र है यही सच है और सूत्रा ( वाद ) मिरर्बक है—जैसे मरे अ-प्राकृत ( = कथन-विचार न होने से अ-कथित ) किया है ।’

क्या मन्त !—‘लोक अ-साधत ( = अ-मित्र ) है यही सच और सच ( वाद ) पन्क है ?

‘ यह भी पोद्दु-पाद् ! लोक अ-साधत मरे अ-प्राकृत किया है ।’

‘ क्या मन्ते !—‘लोक अन्त-वाद् है ?

‘ यह भी पोद्दु-पाद् ! अ-प्राकृत ।’

क्या मन्ते !—‘लोक अ-अन्त-वाद् है ?

‘ यह भी पोद्दु-पाद् ! अ-प्राकृत ।

‘ यही चीज है यही सरीर है ? ’ अ-प्राकृत ।’

‘ यही सूत्रा है सरीर सूत्रा है ? ’ ‘ अ-प्राकृत ।’

‘ मरनेके बाद तत्काल फिर ( पैदा ) होता है ? ’ अ-प्राकृत ।

‘ मरने के बाद फिर तत्काल नहीं होता ? ’ अ-प्राकृत ।’

‘ होता है और नहीं भी होता है ? ’ अ-प्राकृत ।

‘ मरने के बाद तत्काल न होता है न नहीं होता है ? ’ अ-प्राकृत ।’

‘ किस किये मन्ते ! मगवाद् ने इसे अ-प्राकृत किया है ? ’

‘ पोद्दुपाद् ! न यह अर्थ-मुक्त ( = स-मपोषक ) है न अर्थ-मुक्त न अर्थ-अप्राकृतके उपपुक्त, न मिर्बक ( = अ-प्राकृत ) केकिये न विराय केकिये न विरोध ( = स-विनाश ) केकिये न उपसम ( = छाति ) के किये न अविज्ञाकेकिये न संबोधि ( = परमार्थ-ज्ञान ) केकिये न विचार्य के किये है । इसकिये मरे इसे अ-प्राकृत किया ।’

‘ मन्ते ! मगवाद् ने क्या क्या अ-प्राकृत किया है ?

‘ पोद्दुपाद् ! यह हुआ है ( इस ) मरे अ-प्राकृत किया है । यह हुआ-समुप है मरे अ-प्राकृत किया है । यह हुआ-विरोध है । यह हुआ-विरोध-सादिकी-मतिपद् ( = मार्ग ) है ।’

‘ मन्ते ! मगवाद् ने इसे क्यों अ-प्राकृत किया है ?

‘ पोद्दुपाद् ! यह अर्थ-उपपोगी अर्थ-उपपोगी अर्थ-अप्राकृतके अर्थ-उपपोगी है । यह मिर्बक किये विरायके किये विरोधके किये उपसमके किये अविज्ञाके किये संबोधके किये विचार्यके किये है । इसकिये मरे इसे अ-प्राकृत किया ।’

“बह ऐसाही है मगवान् ! यह ऐसाही है सुगत ! अब मन्ते ; मगवान् जिसका कणक समझते हैं ( सो करें ) ।”

तब मगवान् आसामने उठकर चक दिपे ।

तब परित्राजकोंने मगवान्के जानेके घोड़ीही देर बाद, पोट्टुपाद् परित्राजकको चारों ओरसे बाग्-बाजसे अर्द्धरित करवा शुरु किया—“हृषी प्रकभर आप पोट्टुपाद्, जी जो भ्रमण पीतम कहता ( रहा ), उसीको अनुमोदन करते ( रहे ) ‘यह ऐसाही है मगवान् ! यह ऐसाही है सुगत । हमतो भ्रमण पीतमका कहा कोई धर्म एकसा नहीं देखते कि—‘कोक क्षाभत है’ कोक-असाभत है ‘कोक अन्तवान् है ‘कोक अन्-अन्त-वान् है ‘बही जीव है बहो धरीर है ‘वूसरा जीव है वूसरा धरीर है ‘तथागत मरनेके बाद होता है ‘तथागत मरनेके बाद नहीं होता’ ‘तथागत मरनेके बाद होता है नहीं भी होता है । ‘तथागत मरनेके बाद न होता है न नहीं होता है ।

ऐसा कहनेपर पोट्टुपाद् परित्राजकने उन परित्राजकोंको यह कहा—“मैं भी भो ! धमण गौतमका कहा कोई धर्म एकसा नहीं देखता—‘कोक क्षाभत है । बकि भ्रमण गौतम ‘भूत-तव्य ( =वधाई ) धर्ममें स्थित हो धर्म-नियामक-मतिपद् ( = मार्ग, ज्ञान ) को कहता है । ( तो फिर ) मेरे बैसा बिज्ज धमण गौतम के सुभाषितको सुभाषितके तीरपर कैसे अनुमोदन न करेगा ?”

तब दो तीन दिवके बीतनेपर, बिज्ज इत्थि-सारिपुत्त और पोट्टुपाद् परित्राजक जहाँ मगवान् थे वहाँ गये। जाकर बिज्ज इत्थि-सारिपुत्त मगवान्को अभिवादन कर एक ओर बस्य । पोट्टुपाद् परित्राजक मगवान्के साथ संमोदन कर , एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे पोट्टुपाद् परित्राजकने मगवान्को कहा—

‘उस समय मन्ते ! मगवान्के चले जानेके घोड़ीही देर बाद (परित्राजक) मुझे चारों ओरसे अर्द्धरित करने लगे—‘हृषी प्रकभर आप पोट्टुपाद् ! । मेरे बैसा बिज्ज सुभाषितको कैसे अनुमोदन नहीं करेगा ?’

‘पोट्टुपाद् ! सभी यह परित्राजक अन्ते-अन्तु रहित हैं” । ए ही उभमें एक अनु-मान् है । पोट्टुपाद् ! मैंने ( कितने ही ) धर्म एकांशिक कहे हैं = प्रस्थापित किये हैं । कितनेही धर्म अन्-एकांशिक भी कहे हैं । पोट्टुपाद् ! मैंने कौनसे धर्म अन्-एकांशिक उपदेश किये हैं ? ‘कोक क्षाभत है इसको मैंने अर्द्धांशिक धर्म कहा है । ‘कोक अ-क्षाभत है अर्द्धांशिक धर्म । । तथागत मरनेके बाद न होता है न नहीं होता है मैंने अर्द्धांशिक धर्म उपदेश किया है । यह पोट्टुपाद् ! न अर्ध-उपयोगी है न धर्म-उपयोगी है न आदि ब्राह्मण्य उपयोगी है । न विधेयके किये न वीरग्यके किये । इसकिये इन्हें मैंने अन्-एकांशिक उपदेश किया

‘पोट्टुपाद् ! मैंने कौनसे एक-अंशिक धर्म कहे हैं=अस्थापित किये हैं ? ‘बह बुद्ध है । यह बुद्ध-विरोध-गामिनी-मतिपद् है इसे पोट्टुपाद् ! मैंने एकांशिक धर्म बतलाया है । यह पोट्टुपाद् ! अर्ध-उपयोगी है । इसकिये मैंने इन्हें एकांशिक धर्म कहा है = प्रस्थापित किया है ।

‘पोट्टुपाद् ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण ऐम बाद ( = मत )-वाक-अपेसी दृष्टिवादे

‘मन्ते ! क्या मैं वह जान सकता हूँ—कि संज्ञा पुरुषकी आत्मा है, या सज्ञा दूसरी (बीज) व आत्मा दूसरी (बीज) ?

पोहपाह ! ‘मिथ-रपि ( = धारणा )-वाले मिथ-शान्ति ( = वाह )-वाले, मिथ-रपिवाले मिथ-आशय-वाले मिथ-आचार्य रत्नमेवाले तरे किन्—‘संज्ञा पुरुषकी अज्ञा है ।—जानना मुश्किल है ।’

“वह मन्ते ! मिथ-रपि-वाले मरे किन् ‘संज्ञा पुरुषकी आत्मा है—अन्त-मुश्किल है, तो फिर क्या मन्त ! ‘काक-नित्य ( = साधत ) है, वही सच है वृषा (अनित्यता का विचार) निरर्थक ( = मोष ) है ?”

“पोहपाह !—‘कोक-नित्य है वही सच है और दूसरा ( वाह ) निरर्थक है—वही मैंने अ-व्याकृत ( = अ-प्रमाण विषय व होने से अ-कथित ) किया है ।

क्या मन्ते !—‘कोक-अ-साधत ( = अ-नित्य ) है वही सच और सच ( वाह ) अर्थक है ?

“यह भी पोह-पाह ! कोक-अ-साधत मैंने अ-व्याकृत किया है ।”

“क्या मन्ते !—‘कोक-अन्त-वाह है ?”

वह भी पोह-पाह ! अ-व्याकृत ।

क्या मन्ते !—‘कोक-अन्-अन्त-वान् है ?

“यह भी पोह-पाह ! अ-व्याकृत ।”

“‘वही बीज है वही सरीर है ?” “अ-व्याकृत ।”

“बीज दूसरा है सरीर दूसरा है ?” “अ-व्याकृत ।

“मरनेके बाद तत्काल फिर ( पैदा ) हुमा है ? अ-व्याकृत ।”

“मरने के बाद फिर तत्काल नहीं होता ?” “अ-व्याकृत ।”

होता है और वही भी होता है ?” “अ-व्याकृत ।

“मरने के बाद तत्काल न होता है न नहीं होता है ?” “अ-व्याकृत ।”

“किस किन्ने मन्ते ! अगवाह ने इसे अ-व्याकृत किया है ?

“पोहपाह ! न यह अर्थ-सुख ( = अ-प्रमाण ) है न अर्थ-सुख, न आदि-अज्ञानके अर्थसुख, न निर्बोध ( = अज्ञानीयता ) के किन्ने न विराय के किन्ने न निरोध ( = अ-स-विचार ) के किन्ने न अ-प्रमाण ( = शांति ) के किन्ने न अ-मिज्ञाके किन्ने न संशयके ( = अ-सामर्थ-ज्ञान ) के किन्ने न विचारके किन्ने है । इस किन्ने मैंने इसे अ-व्याकृत किया ।”

मन्ते ! अगवाह ने क्या क्या व्याकृत किया है ?”

“पोहपाह ! वह दुःख है ( इसे ) मैंने व्याकृत किया है । वह दुःख-समुद्र है मैंने व्याकृत किया है । वह दुःख-निरोध है । वह दुःख-निरोध-नामिकी-अतिपर ( = मार्ग ) है ।

“मन्ते ! अगवाह ने इसे क्यों व्याकृत किया है ?”

“पोहपाह ! वह अर्थ-अ-प्रयोगी अर्थ-अ-प्रयोगी आदि-अज्ञान-अर्थ-अ-प्रयोगी है । वह निर्बोधके किन्ने विरायके किन्ने विरोधके किन्ने अ-प्रमाणके किन्ने अ-मिज्ञाके किन्ने संशयके किन्ने विचारके किन्ने है । इस किन्ने मैंने इसे व्याकृत किया ।”

यह ऐसाही है मगवान् । यह ऐसाही है सुगत । अब मन्ते ; मगवान् जिसका काक समझते हैं ( सो करें ) ।

तब मगवान् जासन्से उठकर चक विने ।

तब परित्राजकोंने मगवान्के जानेके बोधीही ढेर बाद पोट्टपाद परित्राजकोंको खरों भोरसे बाए-बाजस बर्बरित करना सुक किया— 'इसी प्रकार आप पोट्टपाद, जो जो भ्रमण गौतम कहता ( रहा ), उसीको अनुमोदन करते ( रहे ) 'यह ऐसाही है मगवान् । यह ऐसाही है सुगत । हमतो भ्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एकसा नहीं देखते कि— 'काक साधत है' 'कोक-जसाधत है' 'काक जन्तवान् है' 'कोक भद्र-भ्रन्त-वान् है' 'बही जीव है बहो शरीर है' 'दूसरा जीव है दूसरा शरीर है' 'तथागत मरनेके बाद होता है' 'तथागत मरनेके बाद नहीं होता' 'तथागत मरनेके बाद होता है' नहीं भी होता है । 'तथागत मरनेके बाद न होता है न नहीं होता है ।

येना कहनेपर पोट्टपाद् परित्राजकने उन परित्राजकोंको यह कहा— 'मैं भी भो ! भ्रमण गौतमका कहा कोई धर्म एकसा नहीं देखता— 'कोक साधत है । बल्कि भ्रमण गौतम 'मृतत्वव्य ( = यथावत् ) धर्ममें स्थित हो, धम-विषयमक-प्रतिपद् ( = मार्ग ज्ञान ) को कहता है । ( तो फिर ) मेरे बीसा बिज्ज भ्रमण गौतम के सुभाषितको सुभाषितके तारपर कैसे अनुमोदन न करेगा ?'

तब ही तीन दिक्के बीचनेपर, बिज्ज हत्थि-सारिपुत्त भीर पोट्टपाद् परित्राजक वहाँ मगवान् ने वहाँ एके । जाकर बिज्ज हत्थि-सारिपुत्त मगवान्को बनिबादन कर एक भोर बैठा । पोट्टपाद् परित्राजक मगवान्के साथ संमोदन कर , एक भोर बैठ गया । एक भोर बैठे पोट्टपाद् परित्राजकने मगवान्को कहा—

"उस समय मन्ते ! मगवान्के चक जानेके बोधीही ढेर बाद (परित्राजक) मुझे खरों भोरसे बर्बरित करने को— 'इसी प्रकार आप पोट्टपाद ! । मेरे बीसा बिज्ज सुभाषितको कैसे अनुमोदन नहीं करेगा ?

'पोट्टपाद् ! सभी वह परित्राजक अपने-बहु-रहित हैं । तू ही उनमें एक बहु-मात्र है । पोट्टपाद् ! मैंने ( कितने ही ) धर्म पृकासिक कहे हैं = प्रज्ञापित किये हैं । कितनेही धर्म अन्-पृकासिक भी कहे हैं । पोट्ट-पाद् ! मैंने जानसे धर्म अन्-पृकासिक उपदेश किये हैं ? 'कोक साधत है' इसको मैंने अनेकासिक धर्म कहा है । 'कोक अ-साधत है' अनेकासिक धर्म । 'तथागत' मरनेके बाद न होता है न नहीं होता है मैंने अनेकासिक धर्म उपदेश किया है । वह पोट्टपाद् ! न अर्थ-उपयोगी है, न धर्म-उपयोगी है न यदि प्रज्ञावर्ष उपयोगी है । न विवेकके किये न ईरान्णके किये । इसकिये इन्हें मैंने अन्-पृकासिक उपदेश किया

'पोट्टपाद् ! मैंने कौनसे पृक-असिक धर्म कहे हैं = प्रज्ञापित किये हैं ? 'वह बुद्ध है । यह बुद्ध-विरोध-गामिणी-प्रतिपद् है इस पोट्ट-पाद् ! मैंने पृकासिक धर्म बतलाया है । वह पोट्टपाद् ! अर्थ-उपयोगी है । इसकिये मैंने इन्हें पृकासिक धर्म कहा है = प्रज्ञापित किया है ।"

"पोट्टपाद् ! कोई कोई भ्रमण ब्राह्मण ऐसे बाद ( = मत )-वाक-भेदी दृष्टिवाक

है—'मरनेके बाद आत्मा अरोग एकान्त-सुखी ( = केवल सुखी ) होता है । उससे मैं यह कहता हूँ—'सच-सुख तुम सब आयुष्मान् इस वादवाले=इस दृष्टिवाले हो—'मरने के बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है ? यह जब ऐसा पृष्ठभेद पर मुझे 'हाँ' करते हैं । तब उसको मैं यह कहता हूँ—'नया तुम सब आयुष्मान् एकान्त सुखवाले लोकमें जाते, देखते बिहार करते हो ? ऐसा पृष्ठभेद पर 'नहीं' कहते हैं । उनको मैं यह कहता हूँ—'नया तुम सब आयुष्मान् एक रात वा एक दिन आधी रात या आधा दिन एकान्त-सुखवाले आत्माको जाते हो ? ऐसा पृष्ठभेद पर 'हाँ' करते हैं । उनको मैं यह कहता हूँ—'नया आप सब आयुष्मान् जाते हैं वही मार्ग = वही प्रतिपत् एकान्त-सुखवाले लोकमें साक्षात्कारके किये है ? ऐसा पृष्ठभेद पर 'नहीं' करते हैं । उनको मैं यह कहता हूँ—'नया आप सब आयुष्मान् जो यह वैयता एकान्त-सुखवाले लोकमें उत्पन्न हैं, उनके भावित लक्ष्यको सुनते हैं एकान्त-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके किये—'मार्ग ! सु-प्रतिपत् (=सीकस पदु से) हो, मार्ग ! अज्ञ-प्रतिपत् (=अ-सुरिष्कतासे प्राप्त) हो इस भी माप ! ऐसे ही प्रतिपत् (=मार्गात्क) हो एकान्त-सुख-वाले लोकमें उत्पन्न हुने हैं ?' ऐसा पृष्ठभेद पर 'हाँ' करते हैं । तो क्या माते हो पोहू-याद् ! क्या ऐसा होमे से अब अमन-ब्राह्मणोंका कथन प्रमाण (=अभि-हरण)-रहित नहीं होया ?'

"अबश्य मन्ते ! ऐसा होनेपर अब अमन ब्राह्मणोंका कथन प्रतिहरण-रहित होता है ।

"कैसे कि पोहूयाद् ! कोई पुरुष ऐसा कहे—इस अनपद् (=नेत्र) में जो अबश्य कस्याभी (=वैशकी सु दरतम की) है, मैं उसको चाहता हूँ उसकी अमनता करता हूँ । उसको यदि (योग) ऐसा कहे—'हे पुरुष जिस अबश्य-कस्याभीको दूँ चाहता है=अमन करता है जानता है कि वह अविवाली है ब्राह्मणी है वैय-की है या पत्नी है ? ऐसा पृष्ठभेद पर 'हाँ' बोले तब उसको यह कई—'हे पुरुष ! जिस अबश्य-कस्याभीको दूँ चाहता है जानता है ( वह ) अमुक-धाम-वाकी अमुक-गौत्र-वाकी है अम्भी छोटी या मझोकी, काकी इवामा या महगुर (=अंगुर मझकी) के वर्णकी है; इस धाम नियम वा वागमें (=वहती) है ?' यह पृष्ठभेद पर 'हाँ' कहे । तब उसको यह कई—'हे पुरुष जिसको दूँ नहीं जानता जिसको दूने नहीं देखा; उसको दूँ चाहता है उसकी दूँ अमनता करता है ? ऐसा पृष्ठभेद पर 'हाँ' कहे । तो क्या माते हो पोहू-याद् ! क्या ऐसा होनेपर अब पुरुषका माफल प्रतिहरण-रहित नहीं हो जाता ?'

"अबश्य मन्ते ! ऐसा होनेपर अब पुरुषका माफल प्रतिहरण-रहित हो जाता है ।"

"इसी प्रकार पोहूयाद् ! जो यह अमन ब्राह्मण इस तरह वाद वापे=रहि वाके हैं—'मरनेके बाद आत्मा अ-रोग एकान्त-सुखी होता है उसको मैं यह कहता हूँ—सचसुख तुम सब आयुष्मान् । । तो पोहू-याद् ! क्या अब अमन-ब्राह्मणोंका कथन प्रतिहरण-रहित नहीं है ?'

'अबश्य ! मन्ते ।

"कैसे पोहूयाद् ! कोई पुरुष औरतके (=वातुर्माहापत्) पर महकपर कपड़ेके किये सीढ़ी बनाये । तब उसको (योग) यह कई—'हे पुरुष ! जिस ( मासाद् ) के किये तुम सीढ़ी



“दूसरे लोग यदि पोद्दुपाद् ! हमें पूछें—क्या है अशुभो ! अ-रूप शरीरप्रह ?

“जैसे पोद्दुपाद् ! कोई पुरुष प्रामादपर अनेक छिने उसी प्रासादके बीचे सीढ़ी बनाने । उसको यह पूछें—हे पुरुष ! जिस प्रासादपर अनेके छिने तुम सीढ़ी बनाने हो; आकते हो वह प्रासाद पूर्ण विज्ञानमें है, वा इच्छित , ऊँचा है वा नीचा वा मझोका ? । यह यदि नहीं—यह ही आशुभो ! वह प्रासाद जिसपर अनेका उसीके बीचे मैं सीढ़ी बनता हूँ । तो क्या मानते हो पोद्दुपाद् ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ?”

“अबश्य भन्ते ! ऐसा होनेपर उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होगा ।

“इसी प्रकार पोद्दुपाद् ! यदि दूसरे हमें पूछें—आशुभो ! यह स्पूक शरीर-परिग्रह क्या है । ।

“ आशुभो ! यह मनोमय शरीर-परिग्रह क्या है ? ।

“ आशुभो ! यह अ-रूप शरीर-परिग्रह क्या है जिसके प्रहाय ( = परिष्कार ) के छिने तुम धर्म-उपदेश करते हो ; ? उनके ऐसा पूछनेपर हम यह उत्तर देंगे—‘वह ( पूर्वोक्त ) ही आशुभो ! वह अ-रूप शरीर-परिग्रह । तो क्या मानते हो पोद्दुपाद् ! ऐसा होनेपर क्या उस पुरुषका भाषण प्रामाणिक होता है ?”

“अबश्य भन्ते !

ऐसा करनेपर जिस इच्छित-पुस्तने भयवाङ्को कहा—“भन्ते जिस समय स्पूक शरीर-परिग्रह होता है उस समय मनोमय शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप-शरीर-परिग्रह मोक्ष ( = मिच्छा ) होते हैं स्पूक शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके छिने सच्चा होता है । जिस समय भन्ते ! मनोमय शरीर-परिग्रह होता है उस समय स्पूक शरीर-परिग्रह तथा अ-रूप शरीर-परिग्रह मिच्छा होते हैं मनोमय शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके छिने सच्चा होता है । जिस समय भन्ते ! अ-रूप शरीर-परिग्रह होता है उस समय स्पूक शरीर-परिग्रह तथा मनोमय शरीर-परिग्रह मिच्छा होते हैं अ-रूप शरीर-परिग्रह ही उस समय उसके छिने सच्चा होता है ।

“जिस समय जिस ! स्पूक शरीर-परिग्रह होता है उस समय ‘मनोमय शरीर-परिग्रह ही नहीं समझा जाता । न ‘अ-रूप शरीर-परिग्रह ही नहीं समझा जाता है । ‘स्पूक शरीर परिग्रह ही नहीं समझा जाता है । जिस समय जिस ! मनोमय शरीर-परिग्रह । जिस समय अ-रूप शरीर-परिग्रह । यदि जिस ! तुझे यह पूछें—तू मृत-काकमें या नहीं तो तू न या ! भविष्य-काकमें तू होगा ( रहेगा ) ? नहीं तो तू न होगा ? इस समय तू है ? नहीं तो तू नहीं है ?”

“ऐसा पूछने पर भन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा—‘मैं मृत काकमें या ( मैं नहीं तो न ) या । भविष्य काकमें मैं हाऊँगा नहीं तो मैं न होऊँगा । इस समय मैं हूँ नहीं तो मैं नहीं हूँ । ऐसा पूछने पर मैं भन्ते ! इस प्रकार उत्तर दूँगा ।”

“यदि जिस ! तुझे यह पूछें—‘को तेरा मृतकाकका शरीर-परिग्रह या यदि तेरा शरीर परिग्रह सत्य है भविष्यका और वर्तमानका ( क्या ) मिच्छा है ? को तेरा भविष्यमें होनेवाला शरीर-परिग्रह है नहीं सच्चा है मृतका और वर्तमानका ( क्या ) मिच्छा है ? को इस

समय तेरा वर्तमान शरीर-परिमह है वही तेरा शरीर परिग्रह सत्त्वा है मूतका भार मबिष्यक ( कमा ) मिष्या है ? ऐसा पूछनेपर चित्त तू कर्म उत्तर देगा ?

“ यदि मन्त ! मुझे ऐसा पूछो जो तेरा मूतककर्म शरीर-परिमह था । ऐसा पूछनेपर मन्ते ! मैं इस प्रकार उत्तर दूँगा—जो मेरा मूतका शरीर-परिमह था वही शरीर परिग्रह मेरा उस समय सत्त्वा था मबिष्य और वर्तमानके असत्त्व थे । जो मेरा मबिष्यमें भव-भागत शरीर-परिमह होगा वही शरीर-परिमह मेरा उस समय सत्त्वा होगा ; मूत और वर्तमानके शरीर-परिमह असत्त्व होंगे । जो मेरा इस समय वर्तमान शरीर-परिमह है, वही शरीर-परिमह मेरा ( इस समय ) सत्त्वा है मूत और मबिष्यके शरीर परिग्रह अ-सत्त्व हैं । ऐसा पूछनेपर मन्ते ! मैं यह उत्तर दूँगा ।”

ऐसे ही चित्त ! जिस समय स्पृक शरीर-परिमह होता है उस समय मनोमय शरीर परिग्रह नहीं कहा जाता न उस समय अ-रूप शरीर-परिमह कहा जाता व स्पृक शरीर-परिमह ही उस समय कर्म-जाता है । जिस समय चित्त ! मनोमय शरीर-परिमह । जिस समय चित्त ! अरूप शरीर-परिमह होता है उस समय 'स्पृक शरीर परिग्रह है नहीं कहा जाता ; न 'मनोमय शरीर-परिमह है कहा जाता है । अरूप शरीर-परिमह है नहीं कहा जाता व । जैसे चित्त ! गावसे बूब तूबसे दही बहीस नबनीत ( =मन् ), नबनीतस धी ( =मपिपु ) सर्पिप्से सपिपु-मंड ( =बीका सार ) होता है । जिस समय तूब होता है उस समय न दही होता है न नबनीत न सर्पिपु न सर्पिपु-मंड ; बूब ही उस समय उसका नाम होता है । जिस समय दही । नबनीत । सर्पिपु । सर्पिपु-मंड । मूत ही चित्त ! जिस समय स्पृक शरीर-परिमह होता है । मनोमय । अ-रूप । यह चित्त ! काकिक संज्ञायें हैं = काकिक विद्विष्यो हैं = औकिक व्यवहार हैं = काकिक प्रज्ञसिपों हैं तजागत रूपमे बिना किस रूपे व्यवहार करते हैं ।

ऐसा कहनेपर पोहपाद परित्राककने भगवान् को कहा—

आधर्य ! मन्ते ! आधर्य ! मन्त ! ! आज्ञम आप गातम मुझे अज्ञधि-बद उपासक पारम करें ।”

चित्त हृदियसारि पुत्त ( =चित्त हस्तिमारि-पुत्त ) ने भगवान्को कहा—

आधर्य ! मन्ते ! आधर्य ! मन्ते ! ! मन्ते ! मैं भगवान्को अरणागत हूँ धर्म नार सिधु-संबन्धा नी; मन्ते ! भगवान्को पास मुझे प्रज्ञया सिद्ध, उपसपदा मिल्स ।

चित्त हृदिय सारि पुत्त ( =चित्त हस्ति-सारि-पुत्त ) न भगवान्को पास प्रमथ्या पाई, उपसपदा पाई । आधुष्मान् चित्त हस्तिमारिपुत्त उपसम्पदा प्राप्त करनेक बोधे ही दिन बाद, एककी एकतवासी प्रमान्-रहित उद्योगी आत्म-संबन्धी हा विहार करत रूपे अस्ती ही जिसक लिने कुल-पुत्र अधर्य तरह बरसे बेधर हो प्रज्ञमित होते हैं उस अनुपम प्रज्ञधर्य-कर्म को इसी अन्तमें आधर्य-माहात्कर-पाकर विहार करत कर्म । 'अन्त हीन हीनवा प्रज्ञधर्य-वास ही किन्दा करना था सो कर लिया नौर कुछ करनको नहीं रहा । यह जान गय । आधुष्मान् चित्त हृदिय सारि-पुत्त महतामैस एक रूपे ।





तृतीय-खण्ड  
आयु-वर्ष ४९-५५  
(ई पू ५१४-५०८)



## तृतीय-खंड

( १ )

वेपिज-सुप्त ( ई पू ५१४ )

पूमा मीमे सुभा—एक समय मगधान 'कोसल देशमें पाँचमी सिद्धुओंके महामिधु पंथके साथ शरिषा करते वहाँ ममसाकट नामक कोमकोंका ब्राह्मण-ग्राम था, वहाँ पहुँच । वहाँ मगधान् ममसाकटमें ममसाकटके उत्तर तरफ अचिरवती नदीके तीर आश्रयनमें विहार करते थे ।

उस समय बहुतमे अभिजात (= प्रसिद्ध ) अभिजात ब्राह्मण महाशाक (= महा धनिक ) ममसाकटमें निवास कर रहे थे जैम कि—<sup>१</sup> 'यदि ब्राह्मण तादृश्य ब्राह्मण पाण्डुरस्मानि माह्वय जानुस्सोपि ब्राह्मण तोषेध्य माह्वय चार नृपरे मी अभिजात अभिजात ब्राह्मण महाशाक ।

तब यहकर्मिक किपु टुकरत हुये विचरते हुये बशिष्ठ भीर भारद्वाज में शस्त्रोंमें बाध उत्पन्न हुई । वाशिष्ठ मानवकमे कहा—

वही मार्ग ( बैसा करवेवासेको ) यह-सकोकटाक सिपु जपती पहुँचानेवाकर सीधा मे बावैवाका है, जिये कि यह ब्राह्मण पोण्डरसातिने कहा है ।

भारद्वाज मानवक ने कहा—“ वही मार्ग है जिसे कि ब्राह्मण तादृश्ये कहा है ।

वाशिष्ठ मानवक भारद्वाज मानवकको वही ममसाकट था मारद्वाज मानवक वाशिष्ठ मानवकको ( ही ) ममसाकट । तब वाशिष्ठ मानवकने भारद्वाज मानवकको कहा—

यह भारद्वाज ! मानव-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र अमज गौतम ममसाकटमें मम साकटके उत्तर अचिरवती (= रापती ) नदीके तीर आश्रयनमें विहार करते हैं । उन मगधान् गातमके किपु ऐसा मंगल कर्ति शब्द प्रकट हुआ है— यह मगधान् बुद्ध मगधान् हैं । कपो भारद्वाज ! वहाँ अमज गातम हैं वहाँ कर्तः ! कर्कर हस बातको अमज गातममें पूछें । जसा हमका अमज गातम उत्तर देंग बैसा हम धारण करेंगि ।

“अप्यम मो १” कह भारद्वाज मानवकने उत्तर दिया ।

तब वाशिष्ठ भीर भारद्वाज ( दोनों ) मानवक वहाँ मगधान् व वहाँ गय, जाकर मगधान्के साथ संमोहनकर ( कुसल-ग्राम पृष्ठ ) एक ओर बट गय । एक ओर बटे हुए वाशिष्ठ मानवकन मगधान्म कहा —

१ ही मि १ १३ । २ उत्तरप्रदेशके ईलाहाबाद, गोंडा बहराइच मुस्तापुर बाराबंकी और बनसी क जिले तथा गोरखपुर जिलेका किरवा ही भाग । ३ यदि ओपसाध-विवाही तादृश्य इष्टाभंगक-निवासी पाण्डुरस्मानि उद्धवा-वामी जानुस्सापि आबन्धी-निवासी, तोषेध्य तृतीय-ग्राम-निवासी ।

“ हे गौतम ! रास्तेमें हमकोगोंमें यह बात उत्पन्न हुई । यहाँ हे गौतम ! विग्रह है विचार है वाग्वाचा है । ”

क्या वाशिष्ठ ! वृ पेसा कहता है— यही मार्ग है जिसे कि ब्राह्मण पीप्पल सातिथे कहा है ? और भारद्वाज मायबक यह कहता है— जिसे कि ब्राह्मण तास्मिने कहा है । तब वासिष्ठ ! किम विषय में विग्रह है ?

“ हे गौतम ! मार्ग-अमार्गके संबन्धमें ऐतरेय ब्राह्मण तैत्तिरीय ब्राह्मण छन्दोग ब्राह्मण-अ-छन्दावा-ब्राह्मण ब्रह्मसूत्र-ब्राह्मण अथर्व ब्रह्मण ब्रह्मण नामा मार्ग बतलाते हैं । तब भी यह (बैसा करनेवालेको) ब्रह्माकी सत्कोकता को पहुँचाते हैं । जैसे हे गौतम ! घाम वा मितामके अ-दूरमें बहुतसे नामा-मार्ग होते हैं तो भी व समी घाममें ही जावेवाले होते हैं । ऐसे ही हे गौतम ! ब्राह्मण नामा मार्ग बतलाते हैं । ब्रह्माकी सत्कोकताको पहुँचाते हैं । ”

‘वासिष्ठ ! ‘पहुँचते हैं कहते हो ?’ ‘पहुँचते हैं’ कहता हूँ ।

“ ‘वासिष्ठ ! पहुँचाते हैं कहते हो ?’ ‘पहुँचाते हैं ।

वासिष्ठ ! पहुँचाते हैं कहते हो ?’ ‘पहुँचाते हैं । ”

वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें एक भी ब्राह्मण है जिसने ब्रह्माको अपनी आँखने देखा हो ?

“ नहीं हे गौतम । ”

क्या वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य है जिसने ब्रह्माको अपनी आँखने देखा हो ?

“ नहीं हे गौतम । ”

“ वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंका एक भी आचार्य-प्राचार्य है ? ” “नहीं हे गौतम ! ”

क्या वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंके आचार्योंकी सातवीं पीढ़ी तकमें कोई है ?

“ नहीं हे गौतम । ”

“ क्या वाशिष्ठ ! का त्रैविद्यब्राह्मणोंके पूर्वज मन्त्रोंके कर्ता मन्त्रोंके प्रवक्ष्य क्षयि (ये)—जिनके कि गीत प्रोक्त, समीहित पुराने मन्त्र-यज्ञको ध्यायकस त्रैविद्य ब्राह्मण अनुष्ठान, अनुमापन, करते हैं साफिनाकी अनुमापन करते हैं बाँचेको अनु-वाचन करते हैं जैसे कि बहुत कामके कामदेव विद्यामित्र बसवृमि अत्रिवा परशुराम वसिष्ठ, कश्यप ऋषि । उन्होंने भी (क्या) यह कहा—जहाँ ब्रह्मा है जिसके माय ब्रह्मा है जिस विषयमें ब्रह्मा है इन यह जानते हैं इस यह देखते हैं । ”

“ नहीं हे गौतम । ”

इस प्रकार वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंमें एक ब्राह्मण भी नहीं जिसने ब्रह्माको अपनी आँखने देखाही । एक आचार्य भी । एक आचार्य-प्राचार्य भी । सातवीं पीढ़ी तकके आचार्योंमें भी । का त्रैविद्य ब्राह्मणोंके पूर्ववाले क्षयि । और त्रैविद्य ब्राह्मण जना कहते हैं ।—‘जिसको न जानते हैं जिसको न देखते हैं उसकी स-कोकताकेलिये हम मार्ग उपदेश करते हैं । यही मार्ग ब्रह्म-मन्त्रोक्तानके विषय अस्ती-पहुँचावेवाक्य है ॥ तो क्या मानते हो वाशिष्ठ ! क्या जेमा होतैपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कश्चन अ-प्रासादिकप्रत्ये नहीं प्राप्त हो जाता है ?

“अबश्य हे गौतम ! पूसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन न-प्रामाणिकताको प्राप्त होकरता है ।

“नहो ! वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको न जानते हैं जिसको न देखते हैं उसकी सलोकताके मार्गका उपदेश करते हैं ॥—यही सीधा मार्ग है । यह उचित नहीं है । जैसे वासिष्ठ ! अण्डोंकी पौती एक दूसरेसे जुड़ी; पहिलेबाह्य भी नहीं देखता बीचवाका भी नहीं देखता पीछेबाह्य भी नहीं देखता । ऐसेही वाशिष्ठ ! अण्ड-वर्षाक समान ही त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन है पहिलेबाह्य भी नहीं देखा । (मत) उन त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन प्रकटपरी उद्हरता है ‘धर्म रिक्त = सुच्छ । तो वाशिष्ठ ! क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यको तथा दूसर बहुतमे जनोंको देखते हैं कि कहाँ वह उगते हैं, कहाँ डूबते हैं जो कि (उपकी) प्रार्थना करते हैं स्तुति करते हैं हाथ जोड़कर ममस्कार करते पूजते हैं ?

‘हो हे गौतम ! त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्य तथा दूसरे बहुत जनोंका देखते हैं ।

“ता क्या जानते हो वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्रसूर्य वा दूसरे बहुत जनोंका देखते हैं, कहाँस । क्या त्रैविद्य ब्राह्मण चन्द्र सूर्यकी सलोकता (=सहृष्यता = एक स्थान निवास) के किये मार्ग का उपदेशकर सकते हैं—‘यही ईसा करनेवाले का चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके किये सीधा मार्ग है ?

‘नहीं हे गौतम’ ।

“हम प्रकर वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसको देखते हैं प्रार्थना करते हैं । उन चन्द्र-सूर्यकी सलोकताके किये भी मार्गका उपदेश नहीं कर सकते, कि यही सीधा मार्ग है; तो फिर ब्रह्माका—जिसे न त्रैविद्य ब्राह्मणोंने अपनी आँखोंसे देखा न त्रैविद्यब्राह्मणोंके पूर्व-बाहे कपिओंने । तो क्या वाशिष्ठ ! पूसा होनेपर त्रैविद्य ब्राह्मणोंका कथन न प्रामाणिक (नहीं) (=अप्यादिरीक) उद्हरता ?”

“अबश्य हे गौतम !

“अच्छ वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिस न जानते हैं जिस न देखते हैं उसकी सलोकताके किये मार्ग उपदेश करते हैं—यही सीधा मार्ग है । यह उचित नहीं । जैसे कि वाशिष्ठ ! पुरुष ऐसा कह—हम अनपह (=नृ) में जो अनपह-कम्पायी (जैसेकी सु दरतम थी) हैं मैं उसको चाहता हूँ । तब उसको वह पृष्ठ—हैं पुरुष ! जिसको तू नहीं जानता जिसको तूने नहीं देखा उसको तू चाहता है उसकी तू कामना करता है ? पूसा पुरुषनेपर ही कहे । ता वाशिष्ठ ! क्या ऐसा होनेपर उस पुरुष का मापन न-प्रामाणिक नहीं उद्हरता ?”

“अबश्य हे गौतम ! ।”

“पूसा ही हो वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मणोंने ब्रह्माको अपनी आँखोंसे नहीं देखा । भद्र ! यह त्रैविद्य ब्राह्मण वह कहते हैं—जिसे हम नहीं जानते उसकी सलोकता के किये मार्ग उपदेश करते हैं । तो क्या वाशिष्ठ ! मापन न-प्रामाणिक नहीं होता ?

“अबश्य हे गौतम ! ”

“साधु वाशिष्ठ ! भद्रो ! वाशिष्ठ ! त्रैविद्य ब्राह्मण जिसका नहीं जानते

उपवास करत है। यह युक्त नहीं। उस वाशिष्ठ ! कोई पुरुष चाराहपर महसुपर अपनेसे सिधे नहीं बनाव । ?

‘अथर्व्य इ गातम ।’

“सायु वाशिष्ठ ! । यह युक्त नहीं। जम वाशिष्ठ ! इस अचिरवती ( =रापती ) नदीकी पार उदकम पूर्ण ( =समतलितिका ) ककपेवा हो सब पार-अर्थी =पारगामी =पार-गवपी =पार जानेकी इच्छमवासा पुरुष जाने वह इस किमारपर गये हो दूसर तीरको आह्वान करे—‘हे पार इस पार कैसे जाओ। ‘इ पार ! इस पार चल जाओ ; ता क्या मानते हो वाशिष्ठ ! क्या उस पुरुषके आह्वानक कारण वा पाचवाक कारण वा मार्गवा क कारण वा अभिवन्धके कारण अचिरवती नदीक पारवास्त तीर इस पार आ जावगा ?”

“नहीं है गौतम !”

“इसी प्रकार वाशिष्ठ ! प्रविद्य आह्वान—जो आह्वान बनानेवाक धर्म है उनको छोड़ कर जो अ-आह्वान बनानेवाक धर्म है उनस युक्त होत हुए कहन है—

( इस ) इन्द्रकी आह्वान करते हैं ईशावर्ता आह्वान करत हैं प्रजापतिका आह्वान करते हैं अज्ञाको आह्वान करत हैं महर्दिको आह्वान करत हैं वमको आह्वान करत हैं। वाशिष्ठ ! अहो ! प्रविद्य आह्वान जो आह्वान बनानेवाक धर्म है उदक छोड़कर आह्वानके कारण कया छोड़नेपर मरनेके वाद् अज्ञाकी सकाकताको प्राप्त होजावेंगे) वह संभव नहीं है।

‘जैसे याशिष्ठ ! इस अचिरवती नदीकी पार उदक-पूर्ण ( करारपर बंद ) कानेअ भी पीने लायक हो। पार जानेकी इच्छमवासा पुरुष अथवे। वह इन्ही तीरपर इद मूर्च्छम पीके बाँह करके मजबूत बंधवसे बँधा हो। वाशिष्ठ ! क्या वह पुरुष अचिरवतीके इस तीरसे परके तीर कया आवेगा ?”

‘नहीं इ गातम !’

“इन्ही प्रकार वाशिष्ठ ! वहाँ पाँच काम-गुण आर्य-विश्वमं जंजोर कह जाते हैं बंधव कह जाते हैं। कानसे पाँच ? ( १ ) अजुस विज्ञेय इन्द्र = कोत = मताप = मित्र कप कम-युक्त कप रागात्यादक है। ( २ ) ओन्नस विशेष शब्द । अन्नस विज्ञेय गंध । ( ३ ) जिज्ञासे विज्ञम रस। ( ४ ) कप ( =वक् )ये विशेष स्वर्ण। वाशिष्ठ ! वह पाँच काम-गुण बंधन कहे जाते हैं। वाशिष्ठ ! प्रविद्य आह्वान इन पाँच काम-गुणसे मूर्च्छित किस अ-परिजाम-दर्शी है इन्से मिच्छमैक शान न करके ( =अनिस्मरण पत्रा ) भोगकर रहे है। वाशिष्ठ ! अहो !! वह प्रविद्य आह्वान जो आह्वान बनानेवाके धर्म है उन्ह छोड़कर पाँच काम-गुणोंको भोग करते हुए कामके बंधनमें बँधे हुए कया दूरनपर मरनेके वाद् अज्ञाको सकाकताको प्राप्त हंम वह संभव नहीं।

“ याशिष्ठ ! इस अचिरवती नदीकी पार ; पुरुष जाने; वह इस तीरपर मुँह बाँककर बैठ जावे। तो परके तीर कया जावगा ?

“ नहीं है गातम !”

‘ऐसे ही वाशिष्ठ ! वह पाँच नीचरत आर्य विद्व ( = आर्य धर्म बंध-धर्म ) म

आवरण भी कहे जाते हैं। नीवरण भी कहे जाते हैं। परिजवनाह (= बंधन) भी कहे जाते हैं। क्यसे पाँच ? (१) क्यसक्यम्भी नीवरण (२) ध्यापाद् (३) सधामपुद् (४) धीहरण क्यक्यम्भी (-) निचिक्किस्ता । वाशिष्ट ! यह पाँच नीवरण आय-विनयमें आवरण भी कहे जाते हैं। वाशिष्ट ! त्रिबिध ब्राह्मण इन पाँच नीवरणों (स) आहुत = निवृत्त अवतल = पपवतल (= बँधे) हैं। वाशिष्ट ! अहा ॥ त्रिबिध ब्राह्मण जो ब्राह्मण बनावेवाक । पाँच नीवरणोंम आहुत बँधे भरनेके बाद ब्रह्माभोक्त्रि सकोक्यताको प्राप्त होंगे ॥ यह संभव नहीं।

तो वाशिष्ट ! क्या तुमने ब्राह्मणोंक हृद् = महस्सकों आचार्य-प्रत्यापोंको कहने सुना है—ब्रह्मन्स परिग्रह है वा अ-परिग्रह ? अ परिग्रह है गौतम !

स-वैर-चित्त या वर-रहित चित्तवाला ? " अ-वैर-चित्त हे गौतम !  
 " स ध्यापाद् (= हृद् )-चित्त या ध्यापाद्-रहित चित्तवाला ? " अ-ध्यापाद्-चित्त हे गौतम ! "

संक्लिष्ट (= मरु )-पुक चित्तवाला या अ-संक्लिष्ट-चित्त ? " अ-संक्लिष्ट-चित्त हे गौतम ! "

" बसवर्ती (= अवरतव जिनोत्त्रिय ) या अ-बसवर्ती ? " बस-वर्ती हे गौतम !  
 'तो वाशिष्ट ! त्रिबिध ब्राह्मण सपरिग्रह है वा अपरिग्रह ? " स-परिग्रह हे गौतम ! "

" सवर-चित्त ? । ? सध्यापाद्-चित्त ? । ? संक्लिष्ट-चित्त ? । बसवर्ती ?  
 अ-बसवर्ती हे गौतम ! "

इस प्रकार वाशिष्ट ! त्रिबिध ब्राह्मण सपरिग्रह है और ब्रह्म अ परिग्रह है। क्या स परिग्रह त्रिबिध ब्राह्मणोंका परिग्रह-रहित ब्रह्माक साथ समान हुआ मिलना हा सकता है ?  
 नहीं हे गौतम ! "

साधु वाशिष्ट ! अहा ॥ सपरिग्रह त्रिबिध ब्राह्मण क्यथा एव मरभक पाद् परिग्रह (= धी )-रहित ब्रह्माक साथ सकोक्यताका प्राप्त करेंगे यह संभव नहीं।

स वैर-चित्त त्रिबिध ब्राह्मण अवरचित्त ब्रह्माक साथ सकोक्यता संभव नहीं।  
 अ-ध्यापाद्-चित्त । संक्लिष्ट-चित्त । अ-बसवर्ती ।

" वाशिष्ट ! त्रिबिध ब्राह्मण बरास्त जा कँस है फँसकर विषयक्या प्राप्त है; मूलमें गानो लर रहे है। इसलिये त्रिबिध ब्राह्मणोंकी त्रिबिधा मदभूमि (= अंतर) भी कही जाती है विविध (= अलग ) भी कही जाती है ध्यसक (= आहत ) भी कहा जाती है। "

युवा कहवपर वाशिष्ट मामत्रकर्म मगवाक्यको कहा— " सिने यह सुना है हे गौतम !  
 कि अमज गौतम ब्रह्माभोक्त्रि सकोक्यताका मार्ग जानना है ?

" ता वाशिष्ट ! मगवाक्य यहाँस समीप है ? मगसाक्यट यहाँस दूर नहीं है ?  
 " हाँ ! हे गौतम मगवाक्य यहाँस समीप है यहाँस दूर नहीं है । "

" ता वाशिष्ट ! यहाँ एक पुण्य है। ( जा कि ) मगवाक्यदर्शमें पैदा हुआ है क्या है। उमका मगसाक्यका शला पुँछे। वाशिष्ट ! मगसाक्यमें जन्मे कइ उम पुण्यका मगवाक्यका मार्ग पुउनेम ( उचर देनेमें ) क्या देरी या जड़ना हागी ? "

" नहीं हे गौतम ! "



“ सो किस कारण ? ”

“ हे गौतम ! वह पुरुष सबसाक्षरमें उत्पन्न और बड़ा है उसको मनुसाकरके सभी मार्ग सुचिहित हैं । ”

‘बाशिष्ठ ! मनुसाक्षरमें उत्पन्न और बड़े हुए उस पुरुषको मनुसाक्षरका भाग पूजनेसे बेरी या बढ़ता हो सकती है; किन्तु तत्रागतको ब्रह्मलोक या ब्रह्मलोक जानेवाला मार्ग पूजने पर, बेरी या बढ़ता नहीं हो सकती । बाशिष्ठ ! मैं ब्रह्मको जानता हूँ ब्रह्मकोकला और ब्रह्मकोक-गामिनी-मातेपद् (=ब्रह्मकोकके मार्ग) को भी; और जैसे मार्गादि होतैस ब्रह्मकोकमें उत्पन्न होता है उसे भी जानता हूँ ।

ऐसा कहनेपर बाशिष्ठ मानवको भगवान्को कहा—

“ हे गौतम ! मैंने वह सुना है भ्रमण गातम ब्रह्मभोक्ती सञ्चोक्तका मार्ग उपदेश करता है । भ्रष्ट हो गए गौतम इमें ब्रह्माकी सञ्चोक्तके मार्ग ( का ) उपदेश करें । हे गातम ! आप ( इस ) ब्रह्मण-संज्ञानका उद्धार करें । ”

तो बाशिष्ठ ! मुझे भ्रष्टी प्रकार मनमें ( धारण ) करो कहता हूँ ।

भ्रष्ट मो ! बाशिष्ठ मानवको भगवान्को कहा । भगवान्को कहा —

“ बाशिष्ठ ! यह लोकमें तत्रागत उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार सिद्ध शरीरके बीच और पेदके भोजनसे सम्पुष्ट होता है । इस प्रकार बाशिष्ठ ! सिद्ध शील-संबन्ध होना है । वह अपनेको इस पौत्र शरीरमेंसे मुक्त देख प्रसुद्धि होता है । प्रसुद्धि प्रीति प्राप्त करता है प्रीतिमान्का शरीर फिर सौत होता है । मनुष्य (=सौत) शरीरवाला सुप्त अनुभव करता है सुचिहित चित्त प्रकाश होता है ।

वह मित्र-भाव मुक्त चित्तसे एक दिशाको पूर्व करके विहरता है दूसरी दिशा तीसरी दिशा चौथी दिशा इसी प्रकार ऊपर नीचे जगह-जगह सगुण मनुष्ये सबके फिर सारेही लोकको मित्र-भाव-मुक्त, विपुल महान् न-प्रमाण बर-रहित ब्रह्म-रहित चित्तसे स्पर्श करता विहरता है । उसे बाशिष्ठ ! कल्याण संज्ञान्ता (=संज्ञ ब्रह्मब्रह्मण) योही ही मिहकत सं चारों दिशोंको गुंजा देता है । बाशिष्ठ ! इसी प्रकार मित्र-भावकत सक्ति चित्तकी विमुक्ति (=अज्ञान) से कितने प्रमाणमें काम किया है वह नहीं जानसे म कतम नहीं होता । वह भी बाशिष्ठ ! ब्रह्मभोक्ती सञ्चोक्तका मार्ग है ।

और फिर बाशिष्ठ ! कल्याण-मुक्त चित्तसे एक दिशाको । मुक्ति-मुक्त चित्तने ! उपज्ञान-मुक्त चित्तसे सारेही लोकको उपज्ञान-मुक्त विपुल महान् न-प्रमाण बर-रहित ब्रह्म-रहित चित्तसे स्पर्श करके विहरता है । उसे बाशिष्ठ ! कल्याण संज्ञान्ता । बाशिष्ठ ! इसी प्रकार उपज्ञानसे भाक्ति चित्तकी विमुक्तिसे कितने प्रमाणमें काम किया गया है वही अज्ञानक कतम नहीं होता । यह भी बाशिष्ठ ! ब्रह्मभोक्ती सञ्चोक्तका मार्ग है ।

“तो बाशिष्ठ ! इस प्रकारके विहार बाका सिद्ध स परिग्रह है वा न-परिग्रह ? ”

“न-परिग्रह है गौतम !

“न-बर-चित्त वा न-बर-चित्त ? ” “न-बर-चित्त हे गौतम !

“स-व्यापाद्-चित्त है या अ-व्यापाद्-चित्त ?” “अ-व्यापाद्-चित्त है गौतम !”

“संक्षिप्त (= मक्ति) -चित्त या अ-संक्षिप्त-चित्त ?” “अ-संक्षिप्त-चित्त है गौतम !”

“वस-वर्ती (= कितेन्द्रिय) वा अ-वस-वर्ती ?” “वस-वर्ती है गौतम !”

“इस प्रकार वासिष्ठ ! मिथु अ-परिग्रह है प्रज्ञा अ-परिग्रह है तो क्या अ-परिग्रह मिथुकी अ-परिग्रह प्रज्ञाके साथ समानता है मेक है ?” “हाँ ! है गौतम !”

“साधु वासिष्ठ ! वह अ-परिग्रह मिथु कया छेव मरनेके बाद, अ-परिग्रह प्रज्ञाकी सञ्चोक्ता को प्राप्त होवे यह संभव है। इस प्रकार मिथु अ-वैर-चित्त है ।। वस-वर्ती मिथु कया छेव मरनेके बाद वस-वर्ती प्रज्ञाकी सञ्चोक्ताको प्राप्त होवे यह संभव है।

ऐसा कहनेपर वासिष्ठ और भारद्वाज माण्यवर्गमें भगवान् को कहा—

“आश्चर्य है गौतम ! आश्चर्य है गौतम ! आजसे अप गौतम हमको अंशुकि-वद प्रजागत उपासक धारण करें ।”

x

x

x

x

( २ )

अम्बट्ट-सुच ( ई पू ५१४ ) ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् पाँच सा मिथुओंके महान् मिथु-संघके साथ चारिका करते हुए, वहाँ इच्छानगळ नामक कोसलसौका ब्राह्मण-ग्राम या वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् इच्छावर्गकमें इच्छानगळ वनतण्डमें विहरते थे।

उस समय पौष्कर-साति ब्राह्मण, अवाकीर्ण तृणग्रह-उदक-धान्य-सहित कोसक-राज प्रसेव-वित्त-द्वारा दत्त राजा-सोम्य राज-दास्य बस-नेप उच्छाक्य स्वामित्व करता था।

पाष्करसाति ब्राह्मणने सुना—साक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-गुण अमज गौतम कोसक-देशमें चारिका करते इच्छावर्गकमें विहार कर रहे हैं। उभ भगवान् गौतमक येसा मंगल-

१ ही वि १११ ।

१ अ क. “भगवान्की चारिका हो प्रकारकी होती थी—त्वरित चारिका धार अत्वरित चारिका। दूर बोधनीय मनुष्यको देखकर, उसके बोधके किये सहसा गमन त्वरित चारिका है। वह महाकाश्यप स्वविरके प्रत्तुद्गमन (=भगवानी) आदिमें जानना चाहिये। अथवा, महाकाश्यप स्वविरके प्रत्तुद्गमनके किये एक मुहूर्तमें तीव्र गम्पूति (सङ्कीर्ण) मार्ग चले गये, ब्राह्मणकडे किये तीस बोधन, अतवा ही अंशुकि-याकके किये, पुण्ड्रमातिक किये २५ बोधन महाकल्पिनके किये १९ बोधन धमियके किये १ ७ बोधन गये। धर्म सेनापति (=सारिपुत्र) के शिष्य दनवासी शिष्य ग्राममेरके किये १२ बोधन तीव्र गम्पूति गये। यह त्वरित-चारिका है। जो गाँव विगमके अमसे प्रति-दिव्य बोधन कई-बोधन करके विद्वार करते कोकानुग्रह करते गमन करना है वह अ-त्वरित चारिका है। (पौष्करसाति) तीनों देशोंमें पाण्डित पंडित-अप्यन्त हो अम्पूद्गीपमें धम ब्राह्मण था। दूसरे समय उसन कोसक-राजको (अथवा) गुण (=शिष्य) दिखलवा। तब उसके कियसे प्रसन्न हो राजावे उच्छाक्य नामक मदानगरको ब्रह्म-देव दिया।”

कीर्ति शब्द उभय हुआ है । इस प्रकारके बर्हत्तोक दर्शन अच्छा होता है । उस समय पौष्करसाति माहजनका सिष्य अम्बद नामक माणवक ( या जो कि ) अण्वाणक मंत्र-धर विष्णु केदुम (=अम्बद)-महर-प्रभेद (=विज्ञान निरुक्त)-सहित तीनों वेद, पाँचवें इतिहासका पारदूत पद-ज दीपाकरण कोकप्रयत् ( साध ) तथा महापुरुषकलन (=आधुनिक-शास्त्र) में परिपूर्ण, अपनी पंक्तिताई, प्रथमबर्मे—“जो मैं मानता हूँ सो तु जानता है, जो तु जानता है वह मैं जानता हूँ ( कहेकर आचार्य-द्वारा ) जपुद्गाठ प्रतिज्ञात (=स्वीकृत) था ।

तब पौष्करसाति माहजनके अम्बद माणवकके संबोधित किया—

‘तात ! अम्बद ! आत्म-कुसोपपन्न विहार करते हैं इस प्रकारके बर्हत्तोक दर्शन अच्छा होता है । आओ ! अम्बद ! जहाँ जगत् गौतम हैं वहाँ आओ । आकर जगत् गौतमको जानो कि आप गौतमका शब्द (=कीर्ति) क्या-क्या बुझा है या अ-वकर्म ? क्या-कर्म हैं या नहीं किमर्थ कि हम उन आप गौतमको जानें ।

“कैसे मो ! मैं उन गौतमको जानूँगा—कि आप गौतम बसे हैं या नहीं ?”

“तात अम्बद ! हमारे मंत्रोंमें बर्चीत महापुरुष-कल्पन भावे हैं । जिसस कुछ महा-पुरुषकी जो ही गतिपाँ होसी है तीसरी वहाँ । यदि वह बरमें रहता है चण्डली राजा होता है । यदि धरसे बेबर हो प्रमदित होता है, बर्हत्तु सम्यक सप्रद होता है । तात अम्बद ! मैं मन्त्रोंका दाता हूँ, तुम मन्त्रोंके प्रतिपूरीता हो ।

पौष्करसाति माहजनको “हैं मो” कहे अम्बद माणवक आसबधे उठ, अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर घोषीके रथपर चढ़ बहुत माणवकोंके साथ शिघर इच्छामगल बर-कर्म या उबरको कर्म । जितनी रथकी नूमि थी रथसे जाकर बातसे उतर, पदक ही आराधन प्रविष्ट हुआ । उस समय बहुतसे मिथु लुछी जगहमें खक रहे थे । तब अम्बद माणवक वहाँ वह मिथु थे वहाँ गया आकर उन मिथुओंको बोला—

‘मो ! आप गौतम इस समय कहीं विहार कर रहे हैं ? हम आप गौतमके दर्शनके किये वहाँ जाय हैं ।’

तब उन मिथुओंका पद हुआ—पह कुथीन पसिद्ध अम्बद माणवक अभिज्ञात (= धर्म्यात) पौष्करसाति माहजनका सिष्य है । इस प्रकारके कुछ-पुत्रोंके साथ कथा-संकाय भगवान्को मारी नहीं होता । (धीर) अम्बद माणवको कहे—

‘अम्बद ! यह शर-बन्ध विहार है वहाँ पुत्रचाप पीरसे आकर वराटेमें (= अकिन्त) प्रवेशकर खांसकर जंजीरको पदखटामो ताकेको दिकाओ । भगवान् तुम्हारे किये द्वारा रोके हों ।

तब अम्बद माणवकके वहाँ शर-बन्ध विहार (= विधासवर) या पुत्रचाप धरिने पहाँ जा ताकको दिकाया । भगवानने शर काक दिया । अम्बद माणवकने प्रवेश किया । (कुन्त) माणवकजेल मी प्रवेश कर भगवान्के साथ संमोदन किया (धीर), एक बार केंड गये । किंतु अम्बद माणवक बंद हुये मी भगवान्के इहायते बन्ध कुछ पृष्ठ रहा ना धने हुये मी बंदे हुये, भगवान्के साथ ।

तब भगवानने अम्बद माणवकको यह कहे—

“अम्बद ! क्या बुद्ध = महस्वक आचार्य प्राचार्य ब्राह्मणोंके साथ क्या-संघाप ऐसेही होता है जैसे कि तू चकते खड्ग बीटे हुये मेरे साथ कर रहा है ?”

“नहीं हे गौतम ! चकते ब्राह्मणके साथ चकते हुये खड़े ब्राह्मणके साथ पड़े हुये बड़े ब्राह्मणके साथ बड़े हुये बात करवा चाहिये, सोये ब्राह्मणके साथ साथे बात कर सकते हैं । किंतु जो हे गौतम ! मु उक भ्रमज इम्म जैसे प्रज्ञा (=बुद्ध) क पैरकी संताव हैं उनके साथ ऐसेही क्या संघाप होता है जमा कि आय गौतमके साथ ।

“अम्बद ! अर्षीकी मौति तेरा नहीं थागा हुआ है । ( मनुष्य ) जिस अर्षक जिसे भये उसी अर्षको मर्गमें करवा चाहिये । अम्बद ! तूने (गुरुकुलमें) नहीं वास किया है, क्या नाम करे जिवाही (गुरुकुल-) वासकर भूमिमागी है ?

तब अम्बद मानवकने भगवान्के (गुरुकुल) भ-वास कहनेसे कुपित हो अर्षतुष्ट हो भगवान्को ही क्षुप्तसाते (=तुभ्येस्ते) भगवान्को ही निन्दते, भगवान्को ही ताना देते भ्रमज गौतम बुद्ध (= पापिक) होया (सोच) यह कहा—

“हे गौतम ! शाक्य-जाति बंध है । हे गौतम ! शाक्य जाति क्षुत्र (=समुद्र) है । हे गौतम ! शाक्य-जाति बकवासी (= रस) है । गीच (इम्म) समान होनेसे शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करत ब्राह्मणोंका गारव नहीं करते नहीं माकते, =नहीं पूजते; नहीं अपचय करते । हे गौतम ! सो यह अ-च्छत्र=अशौच्य है जो कि गीच गीच-समान शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते ।”

इस प्रकार अम्बदने शाक्योंपर यह प्रथम इम्पवाद (=गीच करना) कहा आक्षेप किया ।

अम्बद ! शाक्योंने तेरा क्या कसूर किया ह ?”

“हे गौतम ! एक समयमें आचार्य ब्राह्मण शौण्डरसातिके किसी क्षमसे कपिअस्तु पया । ( वहाँ ) वहाँ शाक्योंका संस्थागार (= प्रकृतज्ञ-भवन) है वहाँ गया । उस समय बहुतसे शाक्य तथा शाक्य-कुमार सुख्यागारमें ऊँचे आसनोपर एक दूसरेको अंगुली गड़ाते हैंस रह ये केक रहे थे, मुन ही मानो हैंस रहे थे । किसीने मुझे आसनपर बठनेको नहीं कहा । सो यह गौतम ! अच्छत्र=अशुच्य है जो यह इम्म तथा इम्म-समाज शाक्य ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं करते ।

इस प्रकार अम्बद मानवकने शाक्योंपर दूसरा इम्पवादका आक्षेप किया ।

“अशुचिकता चिदिवा मी अम्बद ! अपने बोंसकेपर स्वचरु-आकापिनी होती हैं । कपिअस्तु शाक्योंका अपवा ( वर ) ह अम्बद ! इस धीरी वातस तुम्हें अमर्ष न करना चाहिये ।

“हे गौतम ! धर बर्ष हैं—क्षत्रिय ब्राह्मण, वश्य धार क्षुद्र । इनमें हे गौतम ! क्षत्रिय बंध क्षुद्र वह तीन वर्ण ब्राह्मणके ही सबक है । गौतम ! सो यह अशुच्य ह ।

इम प्रकार अम्बद मानवकने शाक्योंपर तीसरा इम्पवादका आक्षेप किया । तब भगवान्को यह हुआ—यह अम्बद मानवक बहुत बड़ बड़कर शाक्योंपर इम्पवादका आक्षेप कर रहा है क्यों न मैं धोख पूछूं । तब भगवान्ने अम्बद मानवकको कहा—

“किम गोत्रक हो अम्बद !”

“कृष्णासन हूँ हे गौतम !”

“अम्बह ! तुम्हारे पुराणों नामगोत्रके अनुसार साक्ष्य कार्य ( = स्वामि )-पुत्र होते हैं तुम शाक्योंके दासी-पुत्र हो । अम्बह ! शाक्य राजा इक्ष्वाकु ( = श्वेतक ) के पितामह वारण करते ( = भावते ) हैं । पूष काकमें अम्बह ! राजा इक्ष्वाकुने अपनी प्रिया = मताया रात्रीक पुत्रको राज्य देपेकी इच्छासे शोच्यमुख ( = शक्य मुख ) करण्ड इस्थितिक, वीर सिनीसूर ( यामक ) चार बड़े कर्कड़की राज्यसे निर्वामित कर दिया । वह निर्वामित हो हिमाच्छयके पास सरोवरके किनारे ( एक ) बड़े शाक्यनमें वास करने लगे । वातिके विगलनेके उरसे अपनी बहिनोंके साथ उन्हींमें संवास ( = स मोग ) किया । तब अम्बहट ! राजा इक्ष्वाकुने अपने आमात्यों वीर दरबारियोंको पछा—‘कहाँ हैं मो ! इस समय कुमार ?’

‘बेच ! हिमाच्छान्के पास सरोवरके किनारे महाशाक-वन ( = साक-संख ) है वहीं इस एक कुमार रहते हैं । वह वातिके विपलनेके उरसे अपनी बहिनोंके साथ संवास करते हैं ।’

“तब अम्बह ! राजा इक्ष्वाकुने उदाह कहा—‘अहो ! कुमार ! शाक्य ( = स्वामि ) है रे ! महाशाक्य है रे कुमार ! तबसे अम्बह ! वह साक्ष्यक नामही से प्रसिद्ध हुए वही ( = इक्ष्वाकु ) उनका पूर्वपुरुष था । अम्बह ! राजा इक्ष्वाकुकी प्रिया नामकी दासी थी । उससे कृष्ण ( = कृष्ण ) नामक पुत्र पैदा हुआ । पैदा होते ही कृष्णने कहा—‘अम्मा ! पीसो मुझे अम्मा ! मङ्गलको मुझे इष्ट चंद्रगौ ( = मङ्गल ) से मुझे मुक्त करो मैं तुम्हारे काम जाऊँगा ।’ अम्बह ! जैसे आजकल मनुष्य पितापोंको देखकर ‘पिताच’ करते हैं वैसे ही उस समय पितापोंको कृष्ण कहते थे । उन्हींने कहा—‘इसने पैदा होते ही बात की (यथा वह) ‘कृष्ण पैदा हुआ’ ‘पिताच पैदा हुआ’ । इसीसे आगे कृष्णासन प्रसिद्ध हुए वह कृष्णवर्णों का पूर्व-पुरुष था । इस प्रकार अम्बह, वेरे मातृ-पिताओंके गोत्रको क्याक करकेसे साक्ष्य कार्य पुत्र होते हैं व साक्ष्योंका दासी-पुत्र है ।”

ऐसा कहनेपर उन मानवकोंने भगवान्को कहा—

‘आप गौतम ! अम्बह मानवकोंको कबे दासी-पुत्र-वादसे मत कबलें । हे गौतम ! अम्बह मानवक सुजात है कृष्ण-पुत्र है बहुसुत सुवर्ण पंडित है । अम्बह मानवक इस बातमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है ।

तब भगवान्ने उच मानवकोंको कहा—

“वदि तुम मानवकोंको होता है—अम्बह मानवक सुजात है म-कुण्डपुत्र है अल्प सुत सुवर्ण सुवर्ण ( = म-पंडित ) । अम्बह मानवक असल गौतमके साथ इस विषयमें वाद नहीं कर सकता । तो अम्बह मानवक बिदे, तुम्हीं इस विषयमें मेरे साथ वाद करो । यदि तुम मानवकोंको ऐसा है—अम्बह मानवक सुजात है । । तो तुम कोय उदरो अम्बह मानवकोंको मेरे साथ वाद करने दो ।

“हे गौतम ! अम्बह मानवक सुजात है । अम्बह मानवक इस विषयमें आप गौतमके साथ वाद कर सकता है । हम कोय चुप रहते हैं । अम्बह मानवक ही आप गौतमके साथ इस विषयमें वाद करैगा ।

तब भगवान्ने अम्बह मानवकोंको कहा—

“अम्बह ! वह तुझपर चर्म-संक्रन्धी प्रथ आठा है न इच्छा होते ही कतर देवा

चाहिये यदि यहीं उत्तर देगा या हूपर उपर करेगा या बुप होगा या बम्ब जायेगा, तो यहीं तेरा शिर सात टुकड़े हो जायगा । तो अम्बह ! क्या तुमने बृह = महत्कक प्राणियों आचार्य-शास्त्रियों अमर्षोमे सुना है (कि) कबस कृष्णयपन है और उनम पूर्व-सुदप काय या ?”

पेसा पूछनेपर अम्बह माणवक बुप होगया ।

बृसरी बार भी भगवान्‌ले अम्बह माणवकको यह पूछा— ।

तब भगवान्‌ले अम्बह माणवकको कहा—

“ अम्बह ! उत्तर दो यह तुम्हारा बुप रहनेका समय नहीं । जो काहू ठमागतस एमिबार स्वधर्म-संबंधी मद्य पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा उसका शिर यहीं सात टुकड़े हो जायगा ।

उस समय वज्रपाणि पक्ष बड़े मारी आहीस=मंत्रप्रवर्णित=मंत्रकास छोड़-जोड़ (=अपय कूर) की ककर अम्बह माणवकके ऊपर आकाशमें खड़ा था— यदि यह अम्बह माणवक तथा गतसे तीव्रबार स्वधर्म-संबंधी मद्य पूछे जानेपर भी उत्तर नहीं देगा; (तो) यहीं इसक शिरको सात टुकड़े करूँगा । उस वज्रपाणि पक्षको (या तो) भगवान्‌ देखते थे वा अम्बह माणवक । तब उसे देख अम्बह माणवक मधमीत, अहिम रोमांचित हो भगवान्‌से प्राण=कपय=सरज बाहता बँडकर भगवान्‌म बोका—

‘ क्या आप गौतमने कहा, फिरस आप गौतम कहें ता ?

“ तो क्या मागते हो अम्बह ! क्या तुमल सुना है ? ”

“ पेसा ही हे गौतम ! कैसा कि आपने कहा । तबस ही कृष्णयपन बुप, और यही कृष्णयपोंका पूर्व-सुदप था ।

पेसा कहनेपर माणवक उच्चाद = उचसप्त = महाशप्त (= कोकाहफ) करने लगे—

“ अम्बह माणवक दुर्बल है अ-कुलपुत्र है । अम्बह माणवक शास्त्रियोंका दासी पुत्र है । शास्त्र अम्बह माणवकके आर्य (=स्वामि)-पुत्र होते हैं । सत्यवादा भ्रमज गौतम को हम अग्रहोप करवा चाहते थे । ”

तब भगवान्‌को यह हुआ— यह माणवक अम्बह माणवकका दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक कजबात हैं क्यों न मैं (इसे) सुझाऊँ । तब भगवान्‌ले माणवकों को कहा—

“माणवको ! तुम अम्बह माणवकको दासी-पुत्र कहकर बहुत अधिक मल लजबाओ । यह कृष्ण महात् ज्ञपि थे । उन्होंने वृक्षिण इंद्र में जाकर ब्रह्ममंत्र पढ़कर राजा इक्ष्वाकु से पास वा मुद्र-रूपी कन्याको माँगा । तब राजा इक्ष्वाकुने—‘भरे यह मरी दासीका पुत्र होकर मुद्र-रूपी कन्याको माँगाता है (तीव) कुपित हा जसन्तुह हो बाय ब्रह्मपा । अत्रिज उस बाबको न वह छोड़ सकता था न समेट सकता था । तब आमात्य आर पार्यद (=द्वारी) कृष्ण जपिके पास जाकर बाले—

‘भदन्त ! राजाका मंगल हो भदन्त ! राजाका मंगल ( स्वप्ति ) हा ।

‘राजाका मंगल होगा यदि राजा बीचकी आर बाय (=धूरम) को छोड़गा । (ककिज) जिनका राजाका राज्य है उतनी टूटती बिहीर्ण हो जायगी ।

‘भदन्त ! राजाका मंगल हो जगपद (=द्वैय) का मयक हो ।

‘राजाका मंगल होगा जनपदका भी मंगल होगा; यदि राजा ऊपरका ओर बाज पावगा ( क्विच ) वहाँ तक राजाका राज है वहाँ सात वर्षतक वर्षा न होगी ।

मदन्त ! राजाका मंगल हो जनपदका मंगल हो देश भी वर्षा करे ।

देवभी वर्षा करेगा यदि राजा ज्येष्ठ कुमारपर बाज छोड़े । कुमार स्वधि पूर्वक ( किन्तु ) राजा हो जायेगा ।

तब मास्यज्ये ! आमात्योंने इक्ष्वाकुको कहा— ज्येष्ठ कुमारपर बाज छोड़े कुमार स्वधि-सहित ( किन्तु ) राजा होगा राजा इक्ष्वाकुने ज्येष्ठ कुमार पर बाज छोड़ दिया । उस ब्रह्मदण्डसे भयभीत उद्दिग्ग, रोमांचित तर्जित राजा इक्ष्वाकुने क्षत्रियों कन्याप्रदान की । मानवको ! जम्बवट मानवकको दासी-पुत्र कह तुम मत बहुत अभिद्र कहनामो । वह कृष्ण महान् क्षत्रिये ।”

तब भगवान्ने अम्बदण्ड मानवकको संबोधित किया—

“तो जम्बवट ! यदि एक क्षत्रिय-कुमार ब्राह्मण-कन्याके साथ संवास करे उबड़े संवाससे पुत्र उत्पन्न हो । जो क्षत्रिय-कुमारसे ब्राह्मण-कन्यामें पुत्र उत्पन्न होगा क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन्न और पानी पायेगा ? ‘पायेगा हे गौतम !’ “क्या ब्राह्मण आज स्वाक्षिपाक बज्र वा पट्टुबाईमें उसे खिचवेंगे ?” “खिचवेंगे हे गौतम !” “क्या ब्राह्मण उसे मंत्र ( ज्येष्ठ ) बँचावेंगे ?” “बँचावेंगे हे गौतम !” “इसको स्त्री ( पत्नी ) में लकावट होगी, वा नहीं ?” “नहीं लकावट होगी ।” “क्या क्षत्रिय ! उसे क्षत्रिय-अभिवेषके अभिषिक्त करेंगे ?” “नहीं हे गौतम !” “माताकी औरसे हे गौतम !” अशुभ है ।

‘तो अम्बदण्ड ! यदि एक ब्राह्मण-कुमार क्षत्रिय-कन्याके साथ संवास करता है, उबड़े - वासस पुत्र उत्पन्न होवे ता जो वह ब्राह्मण-कुमारसे क्षत्रिय कन्यामें पुत्र उत्पन्न हुआ है क्या वह ब्राह्मणमें आसन्न पानी पायेगा ? ‘पायेगा हे गौतम !’ “क्या ब्राह्मण आज स्वाक्षिपाक बज्र वा पट्टुबाईमें उसे खिचवेंगे ?” “खिचवेंगे हे गौतम !” “क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचावेंगे वा नहीं ?” “बँचावेंगे हे गौतम !” “क्या उसे ( ब्राह्मण- ) स्त्री ( पत्नी ) में लकावट होगी ?” “लकावट न होगी हे गौतम !” “क्या उसे क्षत्रिय क्षत्रिय-अभिवेषके अभिषिक्त करेंगे ?” “नहीं हे गौतम !” “तो किस हेतु ?” “गौतम पितासे वह अनुपपन्न है ।

इस प्रकार अम्बदण्ड ! स्त्रीसे करके भी पुत्रप करके भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है ब्राह्मण हीच है । ता अम्बदण्ड ! यदि ब्राह्मण किसी ब्राह्मणकी किन्ही कारणसे घुरसे मुग्धित कर बोधेक वापुक्त मार कर राज वा नगरसे निर्वासित कर दें । क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन्न, पानी पायेगा ? “नहीं हे गौतम !” “क्या ब्राह्मण आज स्वाक्षिपाक बज्र पट्टुबाईमें उसे खिचवेंगे ?” “नहीं हे गौतम !” “क्या ब्राह्मण उसे मंत्र बँचावेंगे वा नहीं ?” “नहीं हे गौतम !” “उसे ( ब्राह्मण ) स्त्री ( स्त्री ) में लकावट होगी वा लकावट ?” “लकावट होगी हे गौतम !”

“ तो अम्बदण्ड ! यदि क्षत्रिय ( एक पुरुषको ) किन्ही कारणसे घुरसे मुग्धित कर, बोधेक वापुक्त मार कर, राज वा नगरसे निर्वासित कर दें । क्या वह ब्राह्मणोंमें आसन्न पानी पायेगा ?” “पायेगा हे गौतम !” “क्या ब्राह्मण उसे खिचवेंगे ?” “खिचवेंगे हे गौतम !”

“क्या आइएन उस मंत्र बैचापेंगे ?” “बैचापेंगे हे गौतम । ‘क्या उसे खीमें दम्बकट होगी या वेदकट ?’ “वेदकट होगी हे गौतम ।”

“अम्बह ! क्षत्रिय बहुत ही मिहीन ( अर्थात् ) हो गया रहता है जब कि हमको क्षत्रिय किसी अपरमस मुण्डित कर । इस प्रकार अम्बह ! जब वह क्षत्रियोंमें परम नीचताका प्राप्त है तब भी क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है आइएन हीन है । ब्रह्मा सनत्कुमारने भी अम्बह ! यह गाथा कही है—

‘गोत्र ककर चरुनेवाळे जनोंमें क्षत्रिय श्रेष्ठ है ।’

“जो विद्या भार आचरण युक्त है वह देव मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ॥

सो अम्बह ! यह गाथा ब्रह्मा सनत्कुमारने उचित ही गार्गी ( = सुगीता ) है अनुचित नहीं गाथी है—सुभाषित है सुभाषित नहीं है ; साबक है निरर्थक नहीं ; मैं भी सहमत हूँ मैं भी अम्बह कहता हूँ—“गोत्र ककर ।”

“क्या है हे गौतम ! चरण, और क्या है विद्या ?”

अम्बह ! अनुपम विद्या-आचरण-सम्पदाको जातिवाद नहीं कहत नहीं गोत्र-वाद कहते हैं नहीं मान-वाद—‘मेरे दू पौत्र है ‘मेरे दू पांगव नहीं है कहते हैं । जहाँ अम्बह आबाह-विवाह होता है वहीं यह जातिवाद—गोत्रवाद मानवाद, मेरे दू पान्य है ‘मेरे दू पौत्र नहीं है’ कहा जाता है । अम्बह ! जो कोई जातिवादमें बँधे है गोत्र वादमें बँधे (अभि) मान-वादमें बँधे है आबाह-विवाहमें बँधे है वह अनुपम विद्या-चरण-संपदास तूर है । अम्बह ! जाति-वाद-अथवा गोत्र-वाद-अथवा मान-वाद-अथवा आबाह-विवाह सब छोड़कर अनुपम विद्या-चरण-संपदा प्रत्यक्ष की जाती है ।

“क्या है हे गौतम ! चरण और क्या है विद्या ?”

“अम्बह ! काकमें तयागत उत्पन्न होता है । । इसी प्रकार मिथु शारीरक चौर, परके खानमें सम्पुष्ट होता है । इस तरह अम्बह ! मिथु सील-मपक इन्ता है । वह प्रति-सुखवाके प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । यह भी उसके चरणमें होता । । द्वितीय ध्यान । तृतीय ध्यान । ० अनुप ध्यानको प्राप्त हो विहरता है यह भी उसके चरणमें होता है । अम्बह ! वह चरण ज्ञानके प्रवह करनेके किण्व, (मनुष्यक) चित्तको समाता है छुकाता है । सो इस प्रकार चित्तक परिशुद्ध । इस प्रकार आकार-सहित उद्देश-सहित जनेक पूर्व विधासोंको जाबता है । वह भी अम्बह ! उसकी विद्यामें है । । दिव्य विदुक्त अत्युस प्राणिनों को देवता है । यह भी अम्बह ! उसकी विद्यामें है । जगम खतम होगवा ब्रह्मचर्य पूरा

१ पृष्ठ १६ १२ । २ अ. क. ‘तापस आठ प्रकारके होते हैं—(१) स-युत्र मार्ग (१) उ अचारी (२) अग्नि-पक्षिक (३) अ-म्बर-पात्री (४) अस्म-मुष्टिक, (५) पंतवककिक (६) महुत-कक-भोजी (७) पाण्डु-वकसिक । इनमें जो केजिय खटिखकी भौति कुटुंब सहित वास करते हैं स-युत्र-मार्ग कहलाते हैं । जो गाँव-करबोंसे बाबलकी भिक्षा लेकर पत्र कर जाते हैं वह अग्नि-पक्षिक । जो गाँवमें जाकर पत्नी भिक्षाको ग्रहण करत है वह अ-म्बर-पात्री । जो पावरम अम्बहक भादि हस्तोंक चमक उकाच कर खाते है वह ‘अस्म-मुष्टिक’ । जो दौतमे ही ( एक = बकक ) उपाकर लाते हैं वह महुत



यामक, यामबेव, विह्वामिज धमदग्नि, अंगिरा भरद्वाज वशिष्ठ कश्यप न्यु।  
 'उमके मंत्रोंके आचार्य-सहित मैं अध्ययन करता हूँ' क्या इतनेसे तु कपी वा कपिलके  
 मार्गपर जाकर हो जायगा ? यह संभव नहीं।

'तो क्या अम्बह ! तुने बुद्ध-महत्त्वक आश्रयों आचार्यों प्राचार्योंको करते सुना है जो  
 वह आश्रयोंके पूर्वज कपि धरक (धे); क्या वह ऐसे सुस्मृत सु-विदित अंगाराव  
 कमाने केस मोंक सँचारे मज्झिमक आभरण पहिने स्वच्छ (स्वैत) बछ-धारी पाँच कम-  
 गुणोंमें किस पुत्र, बिर रहते थे; किस कि आचार्य-सहित तू है ?' 'नहीं हे गौतम !'

'तूसे क्या यह आश्रय मात छुट मोंसक सेवन (=उपसेवन) आश्रयसहित  
 तू (आश्रय), अनेक प्रकारकी तकारी (उपबन्धन) भोजन करते थे जसे कि आज आचार्य  
 सहित तू ?' 'नहीं हे गौतम !'

'तूसे क्या वह (माही) बेहित कमलीय गात्रवाली छियोंके साथ रमते थे जैसे कि  
 आज आचार्य-सहित तू ?' 'नहीं हे गौतम !'

'तूसे क्या वह कड़ेवाकोंवाली धोखियोंके रथपर कम्बे उड़ेवाने कोषोंसे बाइतक  
 पीछे गमन करते थे जैसे कि ?' 'नहीं हे गौतम !'

'तूसे क्या वह काँई-कोरे परिब (=कण्ड-भ्यकर) उरूपे बगर-रक्षिकधर्मोंमें (स-  
 क्यकरिकामु) शीर्ष-जातु पुरुषोंसे रक्षा करवाते थे जसे कि तू ?' 'नहीं हे गौतम !'

'इस प्रकार अम्बह ! न आचार्य-सहित तू कपि है न कपिलके मार्गपर  
 जाकर। अम्बह मेरे विद्वयमें जो तेरा संघन-विमति हो वह प्रसन्न कर, मैं उसे उरुते  
 (दूर करूँगा)।'

वह वह भगवान् विहारसे निकल चंक्रम (अम्बह) के स्वाभपर पड़े हुए। अम्बह  
 माणवक भी विहारसे निकल चंक्रमपर कड़ा हुआ। तब अम्बह माणवक समाचारके पीछे शीघ्र  
 दृष्टता भगवान्के शरीरमें ३२ महापुरुष-कण्डोंको डूँडता था। अम्बह माणवकने हो को अनेक  
 बर्त्सीस महापुरुष कण्डोंमेंसे अचिन्तक समाचारके शरीरमें श्रेष्ठ किये। '। तब अम्बह  
 माणवकको देसा हुआ—'जमन गौतम बर्त्सीस महापुरुष-कण्डोंसे समन्वित परिपूर्ण हैं  
 धार समाचारको बोका—'हन्त ! हे गौतम ! अब जायगे हम बहुत कृपवाके बहुत  
 कामवाके हैं।

'अम्बह ! जिसका तू काक समझता है ?'

तब अम्बह माणवक बड़वा (=धीवी)-रथपर चढ़कर चला गया।

उस समय पौष्करसाति आश्रय बड़े भारी आश्रय-गणके साथ उरुतेके निकलकर,  
 जयने धराम (अधारी) में अम्बह माणवककी ही मठीझा करते बीटा था। तब अम्बह  
 माणवक अहाँ जयना धराम का बहाँ गया। जितम्, बान (अध) का शान्ता था उरुता  
 बावसे काकर, बावसे उतर पैरक ही अहाँ पौष्करसाति आश्रय का बहाँ गया। काकर आश्रय  
 पौष्करसातिके अजिवाहनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अम्बह माणवकको पौष्कर  
 सातिके कहा—

“क्या तात ! अम्बह ! उम भगवान् गौतमको देखा ?”

“देखा मो ! हमने उम भगवान् गौतमको ।”

“क्या तात ! अम्बह ! उम भगवान् गौतमका पधार्षिमें शब्द कैसा हुआ है या अवधार्षिमें ? क्या आप गौतम वैस ही हैं वा दूसरे (अम्बह) ?”

“वधार्षिमें मो ! उम भगवान् गौतमके छिये शब्द पैका है । आप गौतम बने ही हैं दूसर नहीं । आप गौतम बलीस महापुरुष-अज्ञानोंसे समन्वित परिपूर्ण हैं ।”

“तात ! अम्बह ! क्या अमज गौतमके साथ तुम्हारा कुछ कथा संकाप हुआ ।

“हुआ मो ! मेरा अमज गौतमके साथ कथा संकाप ।

“तात ! अम्बह ! अमज गौतमके साथ कैसा कथा-संकाप हुआ ?”

तब अम्बह माधवकने जितना भगवान्के साथ कथा-संकाप हुआ था सब पौष्करसाति ब्राह्मणको कह दिवा । ऐसा कहनेपर ब्राह्मण पौष्करसातिने अम्बह माधवकको कहा—

“अहो रे ! हमारी पंडिताई !! अहो रे ! हमारी बहुमुताई !! अहो बत ! रे !

हमारा त्रैविद्यक-पता ! इस प्रकारके पीछ कामसे पुष्ट कथा छोड़ मरनेके बाद, जयाप=

दुर्गति-विनिपात-निरप (अन्तर्क) में ही उत्पन्न होगा जो अम्बह ! उम भाव गौतमसे इस प्रकार झुमिठ करते हुए तुमने बात की । और आप गौतम ( ब्राह्मणों ) को भी ऐसे लोफ

छोकर थोड़ । अहोबत ! रे !! हमारी पंडिताई !!! अहोबत ! रे !! हमारी बहुमुताई, अहोबत ! रे !! हमारा त्रैविद्यकपन !!! ” ( पूसा कह पौष्करसातिने ) कुपित अर्सदृष्ट

हो अम्बह माधवकको पैरु ही वहाँसे हटाया और उसी बग भगवान्के दर्शनार्थ जानेको (तिपार) हुआ । तब उम ब्राह्मणों पौष्कर-साति ब्राह्मणको यह कहा—

“मो ! अमज गौतमके दर्शनार्थ जानेको आज बहुत बिकाफ है । दूसरे दिन आप पौष्करसाति अमज गौतमके दर्शनार्थ जावें ।”

इस प्रकार पौष्करसाति ब्राह्मण अपने घरमें उतम खाद्य मोज्य तपवारकर धार्मिक

रक्षा महाक (अन्तर्क) की शीतनीमें उकहासे बिकक जहाँ इच्छानगक बत-तद वा ठपर गया । जितनी पावकी भूमि थी उतनी बाकसे जाकर बागसे उतर पैरु ही जहाँ भगवान् थे

बहो गया । जाकर भगवान्के साथ सम्मोदककर (कुशल-यस दृष्ट) एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे पौष्करसाति ब्राह्मणने भगवान्को कहा—

हे गौतम ! क्या हमारा अन्तेवासी अम्बह माधवक बहो जाया था ?

ब्राह्मण ! मेरा अन्तवासी अम्बह माधवक बहो जाया था ।

हे गौतम ! अम्बह माधवकके साथ क्या कुछ कथा-संकाप हुआ ।”

ब्राह्मण ! अम्बह माधवकके साथ मेरा कुछ कथा संकाप हुआ ।

हे गौतम ! अम्बह माधवकके साथ कैसा कथा-संकाप हुआ ?”

तब भगवान्ने, अम्बहके साथ जितना कथा-संकाप हुआ था ( वह ) सब पौष्कर साति ब्राह्मणको कह दिवा । ऐसा कहनेपर पौष्कर-साति ब्राह्मणने भगवान्को कहा—

“बाकड है हे गौतम ! अम्बह माधवक । समा करे हे गौतम ! अम्बह माधवकको ।

“सुधी होवे ब्राह्मण ! अम्बह माधवक ।

होगया करना या सो कर दिया, अब यहाँके किये कुछ नहीं है यह भी बातता है। यह भी उसका विद्यामें है। वह अम्बष्ट ! विद्या है। अम्बष्ट ! ऐमा सिद्ध विद्या-सम्पन्न कष्ट प्राप्त है। इस प्रकार चरण-संपन्न; इस प्रकार विद्या चरण-संपन्न होता है ! इस विद्या-संपन्न, उच्च चरण-संपन्नदास बनकर दूसरी विद्या-सम्पदा वा चरण-सम्पदा नहीं है।

“अम्बष्ट ! इस अनुपम विद्या-चरण-सम्पदाके चार अपाय-मुक्त (=विज) हैं। कौनसे चार ? कोई भ्रमण वा ब्राह्मण अम्बष्ट ! इस अनुपम विद्या चरण संपदाको पूरा न करके चारी-विधिय (=सोरी मंत्रा बाधप्रत्नीके समाप्त) लेकर — ‘कर्म-मूकफकाहारी होऊँ’ (सोच) बन-बासके किये जाता है। वह विद्या चरणसे मित्र वस्तुका परिचरक (=संबन्ध) बनता है। इस अनुपम विद्या-चरण-संपदाका यह प्रथम अपाय मुक्त (=विज) है। चार फिर अम्बष्ट ! यहाँ कोई भ्रमण वा ब्राह्मण इस अनुपम विद्या-चरण-संपदाको पूरा न करके फलहारिताको भी पूरा न करके कुदाकके ‘कर्म-मूकफकाहारी होऊँ’ (सोच) विद्या चरणसे मित्र वस्तुका परिचरक बनता है। यह द्वितीय अपाय-मुक्त है। और फिर अम्बष्ट ! फकाहारिताको न पूरा करके गाँवके पास वा विद्या (=कर्म) के पास कर्म-साध्य बना अग्नि-परिचरण (= होम आदि) करता रहता है। यह तृतीय अपाय मुक्त है। चार फिर अम्बष्ट ! अग्नि-परिचरणको भी पूरा न करके चौररतेपर चार द्वारों वाला अम्बष्ट बना कर रहता है कि चारों दिशाओंसे जो यहाँ भ्रमण वा ब्राह्मण आबगा उसका भी बधार्थक = बधावस सत्कार करेगा। यह इस प्रकार विद्याचरणसे मित्रहीका परिचरक बनता है। यह चतुर्थ अपाय-मुक्त है। इस अनुपम विद्या-चरण-संपदाका अम्बष्ट यह चार विज है।

‘तो अम्बष्ट ! पवा आचार्य-सहित तुम इस अनुपम विद्याचरण-संपदाका उपदेश करते हो ?

“वहीं है गौतम ! कहीं आचार्य सहित मैं और कहीं अनुपम विद्या चरण-संपदा ! है गौतम ! आचार्य-सहित मैं अनुपम विद्या चरण संपदाय नूर है।

“तो अम्बष्ट ! इस अनुपम विद्या चरण संपदाको पूरा न कर छोड़ी और ( चारी-विधिय ) लेकर ‘महूच फलभोजी होऊँ’ ( सोच ) क्या ए बनबासके किये आचार्य सहित बबमें प्रवेश करता है ?

नहीं है गौतम ।

‘कर्म-भारती’ । जो स्वयं गिरे फूट-फूट-पल गगते जीवित-यापन करते है वह ‘पौंड्र पकामिक’ । यह तीन प्रकारके होते है उलूह मज्जम और सुदुक्त (=साधारण) । जो बदनक न्यायसे बिना उदहाय पट्टेचर्म मरक स्थानक फलको गगते है वह ‘उलूह’ । जो एक वृद्धम वृद्धको नहीं जाते वह ‘मज्जम’ । जो त्रिम किसी वृद्धक भीने जाचर न्यायकर गगते है वह ‘सुदुक्त’ । यह जादों तापस-मज्जमार्थे उम्हीं चारमें आ जाती है । ईय ? इयमें ‘मज्जम भाव’ उदघाचारी दाभागाय शेषक करत है । ‘अतन्वि-विकिक और ‘अ-स्वर्ण-पार्थ अम्बधारा । ‘अम-मुष्टिक’ और ‘दम्ब वदनिकिक’ कर्म-मूक-फक भोजी । ‘पौण्ड्र-पकामिकी पट्टेच-कर्म भोजी’ ।

“ । । औरस्तेपर चार हारों बाधा भागाए वनाकर रहगा है कि वो नहीं चारों  
विशासोंमें अमृत या मादक चायेगा उसका मैं पचासति पचासक सत्कार करूँगा ?”

“नहीं है गौतम !”

“इस प्रकार अमृत ! आचार्य-मदित तू इस अनुत्तर विद्या-चरण-संप्रदायमें भी हीन  
है और वह जो अनुत्तर विद्या चरण सम्प्रदायके चार अपाय-मुक्त हैं उनसे भी हीन । तूने  
अमृत ! आचार्य ब्राह्मण पौष्कर-सातिसे सीखकर यह बाणी बोकी—‘कहाँ इन्द्र (स्नीचा  
इन्द्र) काक पैरसे उल्लस मु डक अमृत हैं और कहीं त्रैविद्य मादक्योंका साक्षात्कार’ । स्वयं  
अपायिक ( = बुगंतिगामी ) भी ( विद्या चरण ) न पूरा करते ( हुये भी ) अमृत ! अपने  
आचार्य ब्राह्मण पाष्करसातिका यह अपराध देल । अमृत ! पौष्करसाति ब्राह्मण राजा प्रसे  
मजित् कोसकका दिवा खाता है । राजा प्रसेमजित् कोसक उसको दर्शन भी नहीं देता ।  
जब उसके साथ मंत्रणा भी करता है तो कपड़ेकी आवस मंत्रणा करता है । अमृत !  
जिसकी धार्मिक ही हुई मित्राको (पौष्करसाति) प्रह्व्य करता है वह राजा प्रसेमजित् कोसक  
उसे दर्शन भी नहीं देता ॥ एक अमृत ! अपने आचार्य ब्राह्मण पौष्करसातिका यह अपराध  
तो क्या मानते हो अमृत ! राजा प्रसेमजित् कोसक हाथीपर बैठा या घोड़ेपर बैठा या रथके  
ऊपर बड़ा ‘उम्रोंके साथ वा राजभ्यों’के साथ कोई सहाइ करे और उस स्थानमें इतर  
एक और खड़ा दो जाये । तब ( कोई ) घृत्त या घृत्त-दास वा जाय वह उस स्थानपर पड़ा  
हो उसी सहाइको करे—जंसी राजा प्रसेमजित् कोसकने की भी तो क्या वह राज-कर्मको  
करता है राजमंत्रणाको मंत्रित करता है इतनेस वह राजा वा राज अमात्य हो जाता है ?

“नहीं है गौतम !”

“इसी प्रकार है अमृत ! जो वह ब्राह्मणोंके पूर्वज क्षत्रि मन्त्र-कर्ता मंत्र-मन्त्र (वे)  
जिनके कि पुराने गीत प्रोक्त समीहित ( = चिन्तित ) मन्त्रपत्रको ब्राह्मण जासकक अनुगाय  
अनुभाष्य करते हैं भाषितको अनुभाषित वाकितको अनु-वाकित करते हैं, तैस कि—मदक

१ अ. क. “वह (पाष्करसाति) सम्मुलावर्द्धनी माया (=Hypnotism) जानता  
था । जब राजा महार्थ अमृतकारसे जसकृत होता तब राजाके पास बड़ा होकर उस अककर  
का नाम देता । नाम कनेवर राजा ‘नहीं हूँगा नहीं कह सकता था । देकर फिर महोत्सवके  
दिन ‘अमृतकार अं यात्रो कह कर ‘देव ! नहीं है तुमने ब्राह्मण पौष्करसातिका दे दिवा  
करने पर ‘मैंने क्यों दिया ?’ पूछता । वे आमात्य ‘वह ब्राह्मण ‘आचर्यनी-माया’ जानता  
है उसीमें आपको मरमाकर अं जाता है करते । दूसरे राजाके साथ उमकी परममित्रताको  
न सहनकर कहत—‘देव ! इम ब्राह्मणके शरीरमें क्षत्र-पक्ति-कुह ( संप्रसा उजला का )  
है । तुम हमको देखकर धार्मिकत्व करत हो छुते हो । यह कुह ( रोग ) काय संसगमे अनु  
गमन करता है, पसा मठ करी । सबसे राजा उसको दर्शन नहीं देता । ( भक्ति ) कृति  
वह ब्राह्मण पठित धन-विद्यामें कुसक था हमकिये उमके साथ सहाइ करक दिया काम  
नहीं बिगड़ता ( सोच ) कलाके मीतर खड़े हा बाहर खड़े उमक साथ मन्त्रण करता । २  
‘अं अं अं अं अं अं । ३ अमिपेक-वदित कुमार । ४ इय भाद्रो क्षत्रियोंमें विज्य छत्रं मंत्र  
कक संहिताक विज्य मंथर्मोंमें है—मदक ( १ ) बामदेव ( ४ ) विधामित्र ( ३ ९ ) अमृति  
( < ९ ) मद्राज ( १ ९ ) वशिष्ठ ( ० ९ ) वरपप ( १ ९ ) मयु ( ९ ) ।

धामक, धामदेव, विश्वामित्र धमदमि, अंगिरा मन्त्राज बहिए कश्यप मुगु ।  
 'उनके मंत्रोंको आचार्य-सहित मैं अभ्यस्य करता हूँ' क्या इतनेमे तु कपी वा कर्त्तव्ये  
 मार्गपर धारक हो जायगा ? वह संभव नहीं ।

"तो क्या अम्बष्ट ! तुने शुद्ध-महत्त्वक ब्राह्मणों आचार्यों-आचार्योंको कहे मुझा है जो  
 वह ब्राह्मणोंके पूर्वज कपि करक (वे); क्या वह ऐसे सुस्तात सु-विक्रित ब्रह्मण  
 कगाये केवा माऊ सँवारे मणिकुण्डक धामरण पहिने स्वच्छ (स्वैत) बह-वारी पाँच कान  
 गुणोंमें कित कुछ, धिरे रहते थे; बस कि आचार्य-सहित तू है ?" 'नहीं हे गौतम !"

"ऐसे क्या यह साक्षिक भाव सुदू मर्ममय सेवन (अवसेवन) कश्मिमारहित  
 सूप (अदाक), अनेक प्रकारकी तर्कारी (अर्पजन) भाज्य करते थे बस कि आज आचार्य  
 सहित तू ?" "नहीं हे गौतम !"

"ऐसे क्या यह (साही) बेहित कमनीय गात्रवाली शिष्टोंके साथ रमते थे जैसे कि  
 आज आचार्य-सहित तू ?" "नहीं हे गौतम !"

"ऐसे क्या यह कडेबाओंवाली घोड़ियोंके रथपर कम्मे डरेपान कोदोंसे बाहोंको  
 पीठे घामन करते थे जैसे कि ?" "नहीं हे गौतम !"

"ऐसे क्या यह लोई-खोदे परिण (अकष्ट-भाकर) ठठये नगर-रक्षिकार्थमें (अ-  
 कष्टपरिहृत्य) शीर्ष-आयु-युक्तोंसे रक्षा करवाते थे जैसे कि तू ?" 'नहीं हे गौतम !'

"इस प्रकार अम्बष्ट ! न आचार्य-सहित तू कपि है न कपिबके भावस  
 धारक । अम्बष्ट में विषयमें जो तेरा संस्य-अविमति हो वह प्रभ कर, मैं उसे कहलमे  
 (बुर करूँगा) ।"

यह कह मगवान् विहारस निकक चक्रम (अहकर्म) के म्भावपर लड़े हुए । अम्बष्ट  
 माणवक भी विहारस निकक चक्रमपर लड़ा हुआ । तब अम्बष्ट माणवक भगवान्क पीछे शीठे  
 इम्भटा भगवान्क शरीरमें ३२ महापुरुष-कस्तनोंको डूँडता था । अम्बष्ट माणवकने दो को छोड़  
 पक्षीस महापुरुष कक्षोंमेंसे अधिकृत मगवान्के शरीरमें खेल किये । 'तब अम्बष्ट  
 माणवकको पन्ना हुआ—अमण गौतम वर्त्तिस महापुरुष-कक्षोंसे समन्वित परिपूर्व ई  
 भोर मगवान्को बोला—'इन्त ! हे गौतम ! अब जायेंगे, हम बहुत कृष्णबाल पटुत  
 कामवाक है ।"

"अम्बष्ट ! त्रिमय तू काल समझता है ?"

तब अम्बष्ट माणवक बहवा (अधीरी)-रथपर बहकर चला गया ।

उम समय पीप्परसति ब्राह्मण बड़े भारी ब्राह्मण-गणके साथ उज्जहास विद्वत्तर,  
 अपव भाराम (अगीच) में अम्बष्ट माणवककी ही मर्त्याधा करते बैठे था । तब अम्बष्ट  
 माणवक जहाँ अपना भाराम था वहाँ गया । त्रितल, बान (अव) का रामा था उतवा  
 पावने आकर, पावस उतर पैदल ही जहाँ पाप्परसति ब्राह्मण था वहाँ गया । आकर ब्राह्मण  
 पीप्परसतिकी अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक बार कई अम्बष्ट माणवकको पाप्पर  
 सतिन कहा—

“क्या तात ! अम्बह ! उम भगवान् गौतमको देखा ?”

“देखा भो ! हमने उम भगवान् गातमको ।”

“क्या तात ! अम्बह ! उम भगवान् गौतमका पधार्षमे सम्प कैसा हुआ है या अपधार्षमे ? क्या आप गौतम केमे ही है या दूसरे (अम्बह्याहस) ?”

“पधार्षहीमे भो ! उम भगवान् गौतमके किये दाध् कैसा है । आप गातम केसे ही है दूसर नहीं । आप गातम बचीम महापुरुष-उच्छर्णोस समन्वित परिपूर्ण है ।

“तात ! अम्बह ! क्या भ्रमज गौतमके साथ तुम्हारा कुछ कथा संव्यप हुआ ।

“हुआ भो ! मरा भ्रमज गौतमके साथ क्या संव्यप ।

“तात ! अम्बह ! भ्रमज गातमके साथ कैसा कथा-संव्यप हुआ ?”

तब अम्बह माणवकने जितना भगवान्के साथ कथा-संवाप हुआ था, तब पाण्डरसाति ब्राह्मणको कह दिया । एसा करनेपर ब्राह्मण पाण्डरसातिने अम्बह माणवकको कहा—

‘अहो रे ! हमारी पण्डितार्ह ! अहो रे ! हमारी बहुभुतार्ह ! अहो बत ! रे ! हमारा त्रैविद्यक-यना ! इस प्रकारक बीच कामस पुण्य कथा छोड़ मरनेक बाद, अपाव=दुगति-व्यतिपात-विरय (अन्ध) में ही उत्पन्न होगा जो अम्बह ! उम आप गौतमस इस प्रकार झुमित करते हुए तुमने बात की । और आप गीत हम ( ब्राह्मणों ) को भी ऐसे खोख खोकर बोले । अहोबत ! रे ! हमारी पण्डितार्ह ! अहोबत ! रे ! हमारी बहुभुतार्ह ! अहोबत ! रे ! हमारा त्रैविद्यकपण ! ( एसा कह पीण्डरसातिने ) कुपित असंतुष्ट हो अम्बह माणवकको पैदक ही बहोस हठपा और उमी बण्ड भगवान्के दक्षगार्थ जानेकी (संवार) हुआ । तब उम ब्राह्मणों पीण्डर-साति ब्राह्मणका यह कहा—

“ भो ! कामस गौतमके दर्शनार्थ जानेको आज बहुत विषयक है । दूसरे दिन आप पीण्डरसाति भ्रमज गौतमके दर्शनार्थ जायें । ”

इस प्रकार पाण्डरसाति ब्राह्मण अपने घरमें उचम साथ भोज्य तथ्यारकर चानोंपर रखवा मसाल (उदक) की रोशनीमें उकड़ामे निकक जहाँ इच्छानंगल बन-नंद का उधर गया । जितनी बामकी भूमि थी उतनी पानस आकर बाबमे उतर पैदक ही जहाँ भगवान् थे बहो गया । जाकर भगवान्के साथ सम्मोदनकर (कुशल-संभ पूछ) एक ओर बन गया । एक ओर बैठे पाण्डरसाति ब्राह्मणने भगवान्का कहा—

इ गौतम ! क्या हमारा अन्तेवासी अम्बह माणवक बहो आया था ?

ब्राह्मण ! तब अन्तेवासी अम्बह माणवक बहो आया था ।

इ गातम ! अम्बह माणवकके साथ क्या कुछ कथा-संव्यप हुआ । ”

“ ब्राह्मण ! अम्बह माणवकके साथ मरा कुछ कथा संवाप हुआ ।

“ हे गातम ! अम्बह माणवकके साथ कैसा कथा-संव्यप हुआ ? ”

तब भगवान्के, अम्बहके साथ जितना कथा-संवाप हुआ था ( यह ) मब पाण्डर साति ब्राह्मणको कह दिया । एसा करनेपर पीण्डर-साति ब्राह्मणने भगवान्को कहा—

“ बाकउ इ हे गातम ! अम्बह माणवक । इसा करें इ गौतम ! अम्बह माणवकका ।

“ सुधी हमे ब्राह्मण ! आपण्ड माणवक ।

तब पीछरसाति ब्राह्मण भगवान्के क्षीरमें १९ महापुरुष-कल्पोंको डूँडने लगा ।  
पीछरसाति ब्राह्मणको हुआ—भयण गीतम बत्तोस महापुरुष-ब्रह्मणोंस समन्वित परिपूर्ण  
ई भार भगवान्के बोध—

मिथु-संघ-सहित आप गीतम आज्ञा मेरा मानन स्वीकार करें ।”

भगवान्के मौनसे स्वीकार किया ।

तब पीछर-साति ब्राह्मणने भगवान्की स्वीकृति जाब भगवान्को काऊ निवेदन  
किया—( वह भोजनका ) काऊ ई हे गीतम ! भाव तय्यार ई । तब भगवान् पहिनकर  
पाव-बोबर से अहाँ ब्राह्मण पीछर-सातिके परोसनेका स्वाग था, बहाँ गये । जाकर बिडे  
भासनपर बैठ गये । तब पाछर-साति ब्राह्मणने भगवान्को अपने हासस इतम द्यध मौन  
से संतर्पित = संप्रवारित किया; और माणवकोंने मिथु-संघको । तब पीछर-साति ब्राह्मण  
भगवान्के भोजनकर पावने हाथ हट्य कंनपर एक दूधरे पीचे भासनको से एक मोर बैठ  
गया । एक मोर बैठे दूधरे पीछर-साति ब्राह्मणको भगवान्के “अमुर्षी-कथा कही पीछर  
साति ब्राह्मणको इसी भासनपर बिरज = बिरज धर्म-बहु—“ओ कुछ ममुर्ष-धर्म ई पर  
मिरोब-धर्म ई—इत्यथ हुआ ।

तब पीछर-साति ब्राह्मणने दृष्ट धर्म हो भगवान्को कहा—

“आमर्षे ! हे गीतम ! पुत्र-सहित आर्षा-सहित, परिषद्-सहित, भसात्स-सहित,  
मैं गीतमकी सरन जाता हूँ, धर्म और मिथु-संघकी मी । आज्ञासे आप गीतम मुझे कदांकि  
उपासक धारण करें । जैसे उक्तार्म धाप गीतम नूसरे उपासक-कुछोंसे जाते हैं वसे ही  
पुत्र-साति-कुछोंसे भी भाये । बहाँपर माणवक (=तय्यार ब्राह्मण) वा माणविका जाकर  
भगवान् गीतमको अग्निपावन करेंगे भासन वा उदक देंगे या ( आपके प्रति ) चित्तको  
प्रसन्न करेंगे । वह उनके किये बिरजाकतक हित मुझके किये होगा ।”

“मुन्दर ( कल्पवृक्ष ) कहा ब्राह्मण !”

x

x

x

( १ )

चकि-सुत ( १ पू ५१४ ) ।

पुसा मीने सुना—एक समय महा-मिथुसंघके साथ भगवान् कास्यमें चारिक्य करते  
बहाँ ओपसाद् नामक कोसखीका ब्राह्मण-माम था बहाँ भगवान् ओपसाद्से उतर दंतवव  
( नामक ) साव-वर्गमें विहार करते थे ।

उस समय चकि-ब्राह्मण बनाकीर्ष तुल-काष्ट-उदक-पाण्य-समयक हाबभोग्य राजा  
मसेनविद् कीसकहारा मन्थ राज-दापक ब्रह्मण्य ओपसाद्के सामी हो काम करता था ।

ओपसाद्वासी ब्राह्मणोंने सुना—साव्य-कुछने मन्त्रित काव्य-पुत्र धमन गीतम  
चारिक्य करते महा-मिथु-संघके साथ ओपसाद्में पहुँचे हैं और ओपसाद्में ओपसाद्से उतर

देवचन शास्त्र-बचमें बिहार करते हैं। उन मगवान् गातमक्य पुसा मंगल कीर्तिवाप्य ठठा हुआ है 'परिमुद्ध मङ्गलर्षे प्रकथित करते हैं इस प्रकारके बर्हंतोक्य दर्शन अर्थात् होता है।

तब आपसाद्-बासी ब्राह्मण गृहस्थ ओपसाद्से निकलकर सुन्दक सुन्द उत्तर मुँहकी ओर बर्हो देवचन शास्त्रचन था, उधर जाने लगे। उस समय चंकि ब्राह्मण दिनके शायनके किये प्रासादके ऊपर गया हुआ था। चंकि ब्राह्मणने देखा कि ओपसाद्-बासी ब्राह्मण गृहस्थ उत्तर मुँहकी ओर उधर जा रहे हैं। देखकर श्रुता (=महामात्य) को संबोधित किया—

'क्या है हे श्रुता ! ( कि ) ओपसाद्-बासी ब्राह्मण गृहस्थ बर्हो देवचन शास्त्र-बच है उधर जा रहे हैं।

"ह चंकि ! शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र अमज गौतम कोसलमें वारिका करते महामिमु संधके साथ देवचन शास्त्रचनमें बिहार कर रहे हैं। उन मगवान् गातमक्य पुसा मंगलकीर्ति-सम्पद ठठा हुआ है '। उन्हीं भागवान् गातमक्य दर्शनके स्थले जा रहे हैं।

'तो श्रुता ! बर्हो ओपसाद्क ब्राह्मण गृहपति हैं, बर्हा जाओ। जाकर ओपसाद्क ब्राह्मण गृहपतियोंको पूसा कहो—चंकि ब्राह्मण पूसा कह रहा है—'आधी देर आप सब उधर चंकि ब्राह्मण भी अमज गातमके दर्शनार्थ आयेगा।

चंकि ब्राह्मणको अज्य मो ! कह यह श्रुता बर्हो ओपसाद्क ब्राह्मण भ बर्हा गया। जाकर बोला :

—चंकि ब्राह्मण पूसा कह रहा है— आधी देर आप सब उधर चंकि ब्राह्मण भी अमज गौतमके दर्शनार्थ आयेगा।

उस समय जना देहोंके पीप सा ब्राह्मण किसी कामसे ओपसाद्में बास करते थे। उन ब्राह्मणों सुना कि चंकि ब्राह्मण अमज गातमके दर्शनार्थ जाने पाका है। तब वह ब्राह्मण बर्हो चंकि ब्राह्मण जा, बर्हो गये जाकर चंकि ब्राह्मणको बोले—

'सचमुच आप चंकि अमज गातमके दर्शनार्थ जाने वाले हैं ?'

'हाँ मो ! मुझे कह हा रहा है मैं भी अमज गातमके दर्शनार्थ जाऊँ।

'आप चंकि गौतमके दर्शनार्थ मत जायें। स पको अमज गातमके दर्शनार्थ जाना उचित नहीं है। अमज गातमको ही आप चंकिके दर्शनार्थ जाना योग्य है। आप चंकि दोनों ओरसे सुजात (=कुलीन) हैं मातास भी पितासे भी ; मातामह-पुगलकी सात पीढ़ियों तक, जाति-वाप्य अक्षित-अन्-उपक्षित (=अ-निमित्त) हैं। जो आप चंकि दोनों ओर स सुजात हैं ; इस कारण भी आप चंकि अमज गातमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं। अमज गातम ही आप चंकिके दर्शनार्थ जाने योग्य है। आप चंकि अज्य महापत्नी महा मीगवाक है ; इस अंगसे भी आप चंकि तीनों वेदोंके पारंगत। आप चंकि जमि रूप-दर्शनार्थ-प्रासादिक परम-वर्ण-मुन्दरतासे युक्त, मङ्गलर्षेवाके मङ्गलर्षेकी दर्शनक किये अज्य भी अवकाश न रखनेवाक। आप चंकि शीलवान् कृदसीक (=बर्ही हुए शील वाले) स युक्त है। आप चंकि कल्याण-वचन वाकनेवाक = कल्याण-वाक करव स पार (=नागार्थ सम्प) वाणीस युक्त। आप चंकि बहुताके आचार्य प्राचार्य हैं तीन सा



माजपकोडा मंथ पदाने है । आप चंकि राजा प्रसन्नजिन् कामसम सत्कृत-गुरुद्वारा-प्रसिद्ध, पृथित-भरुषित है । आप चंकि पाण्डुरसाति ब्राह्मणम है । आप चंकि ओपसाइके स्वासी हो समत है । इस बगल भी आप चंकि असम यातमक दर्शनार्थ जावे बाग्य नहीं है । असम गीतम ही आप चंकिडे दर्शनार्थ जाने बाग्य ह ।

“ता मा ! मेरी भी मुना—(कैसे) हमी असम गीतमके इसबाथ जाने बाग्य है वह आप असम गीतम हमारे दर्शनार्थ जाने बाग्य नहीं है । ओ ! असम गीतम दोनो कामे सुजात है ; इस बगल भी हमी असम गीतमक इसबाथ जाने बाग्य है आप असम गीतम हमारे इसबाथ जाने योग्य नहीं है । असम गीतम बहुत ना भूमित्य भार माकासत्य हित्त सुपय छोड़कर प्रसिद्धि हुए है । असम गीतम बहुत काले कलाकाल भ्रष्टीकरण संतुष्ट अतिवदन प्रथम बयममें ही घरेने बेधर हा प्रसिद्धि हुये । असम गीतम माता-पिताको अनिष्टक अघुमुष्ट रोसे हुए, (छोड़) शिर-दाही मुँहाकर कापय-बन्ध पहिन धरसे बेधर प्रसिद्धि हुये । असम गीतम अमिष्टक-दर्शनीय महादर्शनी दर्शनक लिप् अल्प भी लक्ष-कास व रजनेवाले । असम गीतम लीलबाध । असम गीतम कल्याण-बचन बोलनवाले । असम गीतम बहुतोके भाचार्य प्राचार्य है । असम गीतम-विहीन । प्रपंच-रहित । असम गीतम कर्मबाही क्रियाबाही ब्राह्मण-भ्रंशानके लिप्पाय अग्रणी है । असम गीतम अर्थन छत्रिण-कुल उद्य-कुलसे प्रसिद्धि हुए । महाधनी महाभोगवान् माका-कुलसे प्रसिद्धि हुए । असम गीतमको वेदाके बाहरसे शास्त्र बाहरसे भी (भोग) एतनेका आले है । असम गीतमकी अनेक महल देवता (अपने) प्राणोंस शरणगत हुए है । असम गीतमका ऐमा मंगल कीर्ति-शब्द उठा हुआ है । असम गीतम बसीय महापुन-छलमोंसे पुष्ट है । असम गीतमकी राजा मागब श्रेष्ठिक बिम्बसार पुत्र-भार-सहित ब्राह्मण पौण्डरसाति । असम गीतम मा ! ओपसाइके प्राण हुए है ओपसाइके देवबल शाकबलमें बिहार कर रहे है । ओ कोई असम या ब्राह्मण हमारे गाँव-खेतमें आते है वह अतिथि होते है । अतिथि सत्करणीय-गुरुदर्शनीय-भावननीय-पूजनीय है । चूंकि ओ ! असम गीतम आपसाइके प्राप्त हुये । अतः) हमारे अतिथि है । असम गीतम अतिथि हो हमारे सत्करणीय । इस अंतरे भी । इतना ही भी ! मैं उन आप गीतमका गुण क्यता हूँ लेकिन वह आप गीतम इतने ही गुणवाले नहीं है । वह आप गीतम अ-परिमाण-गुणवाले है । एक-एक बगले भी कुछ होबेपर आप असम गीतम हमारे दर्शन करनेके किय जाने योग्य नहीं है बकि हमी उन आप गीतमक दर्शनार्थ जाने बाग्य है । इसकिय हम सभी असम गीतमके दर्शनार्थ जलें ।”

तब चंकि ब्राह्मण महार ब्राह्मणके लक्षके बाध नहीं भगवान् ले बहोँ गया । बाकर मगवाबके साथ संभोदक कर एक ओर बैठ गया । उस समय मगवान् बुद्ध बुद्ध माहा बौद्धके साथ कुछ (बात करते) बडे हुये थे ।

उस समय कापयिक नामक लक्ष मु विठ-सिर लक्षसे सोइलक्ष्यकर --- लोकोँ बैदोंकर पारंगत मन्त्रबक परिष्कमें बैठ था । वह बूँ-बूँ ब्राह्मणके मगवान्के साथ बातचीत करते समय बीच बीचमें बोक उठता था । तब मगवान्ने कापयिक मन्त्रबकको मजा किया ।

‘बाबुप्पार भारद्वाज ! बूँ बूँ ब्राह्मणोंके बात करनेमें बात मत झाको । बाबुप्पार भारद्वाज ! कथा समाप्त होने दो !’

(भगवान्से) ऐसा करनेपर बौद्धि ब्राह्मणने भगवान्को कहा—

“आप गौतम कापथिक माणवकको मत ठोकेँ, कापथिक माणवक कुक्कु-पुत्र(=भुज्जीव) है बहुसुत है सुबध्य, पंडित। कापथिक माणवक आप गौतमके साथ इस बातमें बाध कर सकता है।”

तब भगवान्को हुआ—अबइस कापथिक माणवककी कथा त्रिवेद प्रवचन (=वेदाध्ययन) संबंधी होयी जिससे कि ब्राह्मण इसे जागे कर रहे हैं। उस समय कापथिक माणवकको (विचार) हुआ—“अब अमग गौतम मेरी आँखकी ओर आँख लायेगा तब मैं अमग गौतम को मर चूँगा”। तब भगवान्ने (अपने) चित्तसे कापथिक माणवकके चित्त-वितर्कको बाध कर, विपर कापथिक माणवक या उबर (अपनी) आँख फेरी। तब कापथिक माणवकका हुआ—“अमग गौतम मुझे देख रहा है, क्यों व मैं अमग गौतमको मर चूँगा ?” तब कापथिक माणवकने भगवान्से कहा—

“हे गौतम ! जो यह ब्राह्मणोंका पुराण संज्ञपद (= बंद ) इस परम्परासे, पिच्छ (=बचक समूह) अग्रवापस है। उसमें ब्राह्मण पूर्वकमसे मिष्टा (=सुख) रक्त हैं—‘यही सत्य है आर सच छट’। इस विषयमें आप गौतम क्या कहते हैं ?”

“क्या मारहाज ! ब्राह्मणोंमें एक मी ब्राह्मण है, जो कहे—‘मैं इस जाबता हूँ इस देखता हूँ, यही सच है और छट है ?’ ‘नहीं, हे गौतम !’”

“क्या मारहाज ! ब्राह्मणोंका एक आचार्य भी एक आचार्य-आचार्य मों, परमाचार्यों की साथ पीड़ी तकमी। ब्राह्मणोंके पूर्वक अपि ० अष्टक, आसक ० उन्होंने मी, क्या कहा—‘इम इसको जाबते हैं इम इसको देखते हैं, यही सच है और छट है ?’”

‘नहीं हे गौतम !’

इस प्रकार मारहाज ! ब्राह्मणोंमें एकमी ब्राह्मण नहीं है जो कहे ।। जसे मारहाज ! अंप-वेसु-गरंपरा (=अंबोकी कब्रकीका ताँता) कमी हो पहिलेवाक्य भी नहीं देखता बीचका मी नहीं देखता पिछका मी नहीं देखता। ऐसेही मारहाज ! ब्राह्मणोंका कथन अंध-बोशु (=अंधेकी कब्रकी) क समाच है पहिलेवाक्यमी नहीं देखता बीचका मी नहीं देखता पिछका मी नहीं देखता। तो क्या मानते हो मारहाज ! क्या पूसा होबैपर ब्राह्मणोंकी अज्ञा अ-सूकक नहीं हो कती ?”

“हे पाठम ! नहीं ब्राह्मण अज्ञाहीकी उपासना नहीं करते अनुजन (= सुति) की मी उपासना करते हैं।”

“पहिले मारहाज ! ए अज्ञा (=विद्या) पर पहुँच या अथ अनुभव करता है। मारहाज ! यह पाँच धर्म इसी अग्रमें दो प्रकारक विपाक (=कस) देनेबाक है। कीमत पाँच ? (१) अज्ञा (२) कथि, (३) अनुभव (४) आकार-परिवितर्क (५) दृष्टि-निष्पावाह (=विद्विनिष्पावक)। मारहाज ! यह पाँच धर्म इसी अग्रमें दो प्रकारके विपाक देनेबाक है। मारहाज ! सुन्दर-तीरसे अज्ञा किचा मी रिक्त-सुप्य बीर सुपा हो सकता इ सुअज्ञा

१ न क. (अष्टक आदि अपिर्षीमे) दिव्य-बसुसे देखकर भगवान् काश्यप सम्यक्-संयुक्त कथनके साथ मिकाकर, मंत्रोंको पर-हिंसा-रुग्ण प्रमित किचा था। उसमें दूसरे ब्राह्मणोंने प्राधि-हिंसा आदि काकर तीन वेद बना सुद-वचनसे विरक्त कर दिया।

न किन्ना भी यथावत्=तथ्य=अव्यय हो सकता है। सुख किन्ना भी। सु-अनुकृत किन्ना भी। सु-परिविक्त किन्ना भी। सु-निष्ठाव किन्ना भी रिक्त=गुण्य और सुख हो सकता है। सु-निष्ठाव न किन्ना भी यथावत्=तथ्य=अव्यय हो सकता है। भारद्वाज ! सत्यानुरक्षण विज्ञ पुस्तकमें यहाँ एकांससे (सोझो जाया) विद्या करना मान्य नहीं है कि—'यही सत्य है, और बाकी मिथ्या है।'

'हे गौतम ! सत्यानुरक्षा (=सत्यकी रक्षा) कैसे होती है ? सत्यका अनुरक्षण कैसे किया जाता है इस आप गौतमको सत्यानुरक्षण पूछते हैं ?'

'भारद्वाज ! पुस्तकको यदि भ्रष्ट होती है 'यह मेरी भ्रष्टा है' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहाँ एकांससे विद्या नहीं करता—'यही सत्य है और (सब) झूठ ? भारद्वाज ! यदि पुस्तकको रक्षित होती है। 'यह मेरी रक्षित है' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है किन्तु यहाँ एकांससे विद्या नहीं करता—'यही सत्य है और झूठ।'

'भारद्वाज ! यदि पुस्तकको अनुभव होता है। 'यह मेरा अनुभव है' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहाँ एकांससे विद्या नहीं करता—'यही सत्य है, और झूठ ? भारद्वाज ! यदि पुस्तकको आकार-परिविक्त होता है, 'यह मेरा आकार विक्त है' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहाँ एकांससे विद्या नहीं करता—'यही सत्य है, और झूठ।' भारद्वाज ! यदि पुस्तकको रक्षि निष्ठावना हो जाता है; 'यह मेरा रक्षि-निष्ठावना' कहते सत्यकी अनुरक्षा करता है। किन्तु यहाँ एकांससे विद्या नहीं करता 'यही सत्य है और झूठ। इतनेसे भारद्वाज सत्य-अनुरक्षण होता है। इतनेसे सत्यकी अनुरक्षाकी जाती है। इतनेसे हम सत्यका अनुरक्षण (= रक्षण) मन्नापित करते हैं; किन्तु (इतनेसे) सत्यका अनुबोध (= बोध) नहीं होता।'

'हे गौतम ! इतनेसे सत्यानुरक्षण होता है इतनेसे सत्यकी अनुरक्षाकी जाती है। इतनेसे सत्यका रक्षण हम भी देखते हैं। हे गौतम ! सत्यका बोध कितनेसे होता है, कितनेसे सत्य वृत्ता है। हे गौतम ! हम इसे आपसे पूछते हैं।'

'भारद्वाज ! विद्यु किसी ग्राम या निगमको आश्रयकर विहरता है। (कोई) गृहपति (=गृहत्व) या गृहपति-पुत्र जाकर कोम, द्वेष मोह (इन्द्र) तीव्र धर्मोंके विषयमें उसकी परीक्षा करता है—'क्या इस आधुष्मात्को वैसा सोमनीय धर्म (=बात) है, जिस प्रकारके कोम धर्मन्वी धर्मके कारण व क्षान्ते 'क्षान्ता हूँ' कहें, न देखते 'देखता हूँ' कहें। या वैसा उपदेश करें, जो वृत्तोंके किञ्च दीर्घकाय तक नहिण और बुद्धके किये हो। इस आधुष्मात्का कथ-समाचार (=वाकिक-वाचर) (और) कथ-समाचार (=वाकिक-वाचर) वैसा है वैसा कि अलोनीका। ( वा ) यह आधुष्मात् किस धर्मका उपदेश करते हैं (क्या) यह धर्म न भीर, दुष्ट सन्तुर्बोध सात प्रवीत (=उत्तम), अतर्कचर (=तर्कसे अज्ञान) निपुण=परिविक्त-बेहवीच है ? यह धर्म कोमी-द्वारा उपदेश करमा सुगम ( तो ) नहीं है ?'

'जब जोरते हुए कोम-सर्वबी धर्मोंसे (उसे) विद्युद पाता है। तब आगे द्वेष-सम्बन्धी धर्मोंके विषयमें उसकी परीक्षा करता है—'क्या इस आधुष्मात्को वैसा द्वेष-सम्बन्धी धर्म है ; यह धर्म द्वेषी द्वारा उपदेश करमा ( तो ) सुगम नहीं ?'

जब परीक्षा करते हुए द्वेष-सम्बन्धी धर्मोंसे उसे विद्युद पाता है। तब आगे

मोह-संन्यासी धर्मोंके विषयमें उसकी द्योतता है—'क्या इस व्यापुष्मानको क्या मोह-संन्यासी धर्म तो है वह धर्म, मोही (=मूढ) द्वारा उपदेश करवा सुयम ( तो ) नहीं ?

'यह द्योतते हुए उसे हीमर्षीय द्वेषनीय मोहपीय धर्मोंसे विमुक्त पाठा है; तब धर्ममें अज्ञा स्थापित करता है। अज्ञावात् हो पाम जाता है पास बाके परि-उपासन (=सेवा) करता है। पशुपासना करके काम लगाता है काम लगाके धर्म सुनता है। सुनकर धर्मको धारण करता है। धारण किये हुए धर्मोंके धर्मकी परीक्षा करता है। धर्मकी परीक्षा करके धर्म विप्लव करने लायक होते हैं। धर्मके निष्पान (=ध्याय) योग्य होनेसे स्मृति रूचि (=हृद्य) उत्पन्न होती है। हृद्यवाक्य (=रुचिवाक्य) उत्साह (=प्रयत्न) करता है। उत्साह करते लोक्य करता है। लोक्य करते पराक्रम (=पुरुह्व) करता है। पराक्रमी हो, इसी क्रममें ही परम सत्यका साक्षात्कार (=दर्शन) करता है प्रज्ञासे उसे बेधकर देखता है। इतनेसे मारहाण ! सत्य-बोध होता है इतनेसे मय वृत्तता है। इतनेसे हम मत्त्व अनुबोध बतकाते हैं, किन्तु ( इतनेहीसे ) सत्य अनुपत्ति नहीं होती।

'हे गौतम ! इतनेसे सत्वानुबोध होता है इतनेसे सत्य वृत्तता है, इतनेसे हम भी सत्वानुबोध देखते हैं। परन्तु हे गौतम ! सत्य-अनुपत्ति कितनेसे होती है कितनेसे मत्त्वको पता है, हम आप गौतमसे सत्वानुपत्ति (=सत्य-माप्ति) पूछते हैं ?

'मारहाण ! कहीं धर्मोंके सेवते, भावना करके बढ़ानेसे सत्य की प्राप्ति होती है। इतनेसे मारहाण सत्य-माप्ति होती है सत्यको पाता है इतनेसे हम सत्य-माप्ति बतकाते हैं।' 'इतनेसे हे गौतम ! सत्य-माप्ति होती है हम भी इतनेसे सत्य-माप्ति देखते हैं। हे गौतम ! सत्य प्राप्तिका कौन धर्म अधिक उपकारी (=बहुकार) है, सत्य प्राप्तिके सिधे अधिक उपकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं।

मारहाण ! सत्य-प्राप्तिकर बहुकारी धर्म 'प्रधान' है। यदि प्रधान (=प्रयत्न) न करे, तो सत्यको (भी) प्राप्त न करे। चूँकि 'प्रधान' करता है, इसीकिये सत्यको पता है इसकिये सत्य-प्राप्तिके सिधे बहुकारी धर्म 'प्रधान' है।'

'प्रधानके सिधे हे गौतम ! कौन धर्म बहुकारी है। प्रधानके बहुकारी धर्मको हम आप गौतमसे पूछते हैं ?'

'मारहाण ! प्रधानका बहुकारी उरवान है यदि उत्पान (=उद्योग) न करे तो प्रधान नहीं कर सक्ता। चूँकि उत्पान करता है इसलिये प्रधान करता है। इसकिये उत्पान प्रधानका बहुकारी है।'

'। उत्साह उरवान का बहुकारी।' '। हृद्य उत्साहकर । '। धम्म-निष्पानासक्य (=धर्म निष्पानासक्य) हृद्यकर । ' 'धर्म उपरीक्षा (=धर्मकी परीक्षा) धर्म-निष्पानासक्य । ' '। धर्म धारण । ' 'धर्म प्रयत्न । ' '। काम लगाता (=श्रीय-अवधान) । ' 'पशुपासक (=सेवा) । ' । पास आवा । '। अज्ञा ।

'सत्य-अनुरक्षणसे हमने आप गौतमसे पूछा। आप गौतमने सत्वानुरक्षण हमें बतकाया, वह हमें बतवा भी है, = समता भी है। उससे हम समुक्त हैं। सत्य-अनुबोध (= सत्यको वृत्तता)को हमने आप गौतमसे पूछा। सत्य प्राप्ति । सत्य-प्राप्तिके बहुकारी

धर्मको हमने आप गौतमसे पूछा । सत्य प्राप्तिके बहुकारी धर्मको आप गौतमने बतलाया । वह हमें कष्टता भी है = कष्टता भी है । उससे हम समुद्ध हैं । जिस किसीको हमने आप गौतमसे पूछा उस बसिके आप गौतमने ( हमें ) बतलाया । और वह हमको कष्टता भी है = कष्टता भी है । उससे हम समुद्ध हैं ।

“हे गौतम ! पहिले हम ऐसा जानते थे कहीं इन्द्र ( = नीच ) कष्टे ब्रह्मके पीछे उत्पन्न ( = शून्य ), सु बह-भयान और कहीं धर्मका जानना । आप गौतमने (स्थापित किया) मुझमें भयान-भयान = भयान-भयान । आजसे आप गौतम मुझे अशुभिनन्द शरणागत उत्पन्न करके ।

x

x

x

( ४ )

‘शूल-दुःख-सुख-सुख’ ( ई पू ५१४ )

ऐसा मीरे सुना—एक समय भगवान् शाक्य ( ईस ) में कपिलवस्तुके म्बाप्रो-पाराममें बिहार करते थे ।

तब महात्मा शाक्य वहाँ भगवान् से वहाँ आया । आकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे महात्मा साक्यने भगवान्का कहा—

मन्ते ! दीर्घ-रात्र ( = बहुत समय )से भगवान्के उपदेश धर्मको मैं इस प्रकार जानता हूँ—कोम विचका उपदेश ( = मर ) है होय विचका उपदेश है मोह विचका उपदेश है । तो मी एक समय कोम-बाके धर्म मेरे विचको विपट रहते हैं । तब मुझे मन्ते ! ऐसा होना है—कोम सा धर्म ( = जात ) मेरे भीतर ( = मन्ते )से कहीं छूटा है जिससे कि एक समय कोमधर्म ?”

“महात्मा ! तेरा वही धर्म भीतरसे नहीं छूटा जिससे कि एक समय कोम धर्म तेरे विचका । महात्मा ! यदि वह धर्म भीतरसे छूटा हुआ होता तो धर्ममें बाध न करता धर्मोपयोग न करता । कि महात्मा ! वह धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा इसलिये ए शूल है धर्मोपयोग करता है । धर्म ( = योग ) न-मसक करनेवाले बहुत शूल देनेवाले बहुत उपावास ( = परेशानी ) देनेवाले हैं । धर्ममें आदिधर्म ( = धर्मरिजाम ) बहुत हैं । महात्मा ! जब आर्ष-आवक बचार्थतः अच्छी प्रकार जान कर इसे देव देता है । तो वह धर्मोंसे बहुत ( = धर्म )-धर्मोंके, कर्मोंमें प्रीति सुख या बससे भी अधिक शान्तर ( सुख )को नहीं पाता तब वह धर्मोंमें कौटुके बाध’ होता है । महात्मा ! आर्ष-आवकको जब धर्म ( = योग ) न-मसक करनेवाले बहुत शूल देनेवाले बहुत परेशानी करनेवाले मासक होते हैं । ‘धर्ममें आदिधर्म बहुत हैं’ इसे महात्मा ! जब आर्ष-आवक बचार्थतः अच्छी प्रकार जानकर इसे देव देता है, तो वह धर्मोंसे कर्म न-कुशल धर्मोंसे प्रकृष्ट प्रीति सुख या बससे शान्तर ( बस ) पाता है, तब वह धर्मोंकी ओर ‘न-धर्मने बाध’ होता है ।

“मुझे मी महात्मा ! सर्वोधि ( धर्म करने )से धर्म’ शूल न धर्मोंसे धर्मोपयोग होनेसे समय वह धर्मसक करने वाले बहुत शूल, बहुत परेशानी करनेवाले धर्म ( होते थे )

तव 'इत्तमे' दुष्परिणाम बहुत है—वह ऐसा परार्थतः अच्छी प्रकार जानकर मैंने तुझा किंतु कामोंसे अलग अलगप्रसन्न मनोसे अलग प्रीति-मुख या उभयसंज्ञांतर (बस्तु) नहीं पासकर। इसलिये मैं उतनेसे कामोंकी ओर 'य' अंतर्ने बाध (अपने को नहीं जाना। अथ महानाम ! काम अमसन्नकर बहुत बहुदुःखद, बहु-अवासर है; इत्तमे दुष्परिणाम बहुत है यह ऐसा। तो कामोंसे अलगप्रसन्नमनोसे अलग ही प्रीति-मुख (तया) उससे भी ज्ञात-तर (बस्तु) पाई; तव मने (अपने को) कामोंकी ओर 'न' अंतर्ने बाध' जाना।

'महानाम ! कामोंका अस्वाह (अस्वाह) क्या है ? महानाम ! यह पाँच काम-गुण। कौनसे पाँच ? (१) इष्ट कृत क्वचि त्रिय-रूप काम-मुख (चित्त को) रजत करपेवाछा अमुसे विशेष (अज्ञानसे योग्य) रूप। (२) इष्ट, कान्त जोर विज्ञेय रूप। (३) प्राण-विज्ञेय रंभ। (४) विज्ञा-विज्ञेय रस। (५) काय-विज्ञेय स्पर्श। महानाम ! यह पाँच कामगुण हैं। महानाम ! इन पाँच कामगुणोंके कारण जो मुख या सीममल (अधिकारी सुग्री) उत्पन्न होता है यही कामोंका अस्वाह है।

'महानाम ! कामोंका अविनाश (दुष्परिणाम) क्या है ? महानाम ! कुण्ड-गुण जिस किसी क्षिप्रसे—बाहे मुद्रासे वा शनकासे वा संकलासे वा कृपिते वा क्षत्रियसे, घोषाकालसे वा बाध-अप्यसे वा राजाकी बाँकरी (अराज-पोरिन) से, वा किसी (अन्य) शिष्यसे, सीतल-अन्य-वीरित (अपुरस्कृत) उद-अच्छर-इवा-अप-सरीरुप (असौप विष्णु भादि) के स्पर्शसे अर्णवित होता भूख प्याससे मरता, क्षीबिक्र करता है। महानाम ! यह कामोंका दुष्परिणाम है। इसी अन्तमें (यह) दुष्परिणाम पुत्र (अनुक-स्पर्श) काम-हेतु-अमम विद्याम काम-अपिच्छर (अवासस्थान विषय) कामोंहीके कारण है। महानाम ! उस कुण्ड-गुणको यदि इस प्रकार उद्योग करते-उत्थान करते मोहनत करते वह भोग नहीं उद्योग होते (तो, वह छोड़ करता है दुःखी होता है चिन्मयता है अती पीरकर अर्थन करता है मूर्च्छित होता है—'हाह ! मेरा प्रयत्न अर्थन हुआ मरी मोहनत विष्णुक हुई ! महानाम ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम इसी अन्तमें दुःख-स्पर्श। यदि महानाम ! उस कुण्डगुणको इस प्रकार उद्योग करते वह भोग उत्पन्न होते हैं। तो वह उन भोगोंकी रक्षाके विषयमें दुःख-अर्णविक्र होला है—अर्णु मेरे भोगको रक्षा न हर लेजायें और न हर लेजायें भाग न बाधे, पानी न बहावे अ-मिथ-अपादा न लेजायें। उसके इन प्रकार रक्षा-गोपन करते उन भोगोंकी रक्षा के जाते हैं; वह छोड़ करता है—'जो भी मेरा था वह भी मेरा नहीं है। महानाम ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम।

'और फिर महानाम ! कामोंके हेतु-अममविद्याम कामोंके अग्रदे (अपिच्छर) से कामोंके किये राजा भी राजाओंसे अग्रदत्ते हैं क्षत्रिय भोग क्षत्रियोंसे ब्राह्मण ब्राह्मणोंसे गृहपति (अन्य) गृहपतियोंसे माता पुत्रके साथ पुत्र भी माताके साथ पिता भी पुत्रके साथ पुत्र भी पिताके साथ भाई भाईके साथ भाई भगिनीके साथ भगिनी भाईके साथ मित्र मित्रके साथ अग्रदत्ते हैं। वह नहीं अग्रद-विष्णु-विद्या करके, एक दूसरेपर हाथोंसे भी आक्रमण करते हैं अर्णुसे भी अर्णुसे भी अर्णुसे भी आक्रमण करते हैं। वह नहीं अर्णुको प्राप्त होते हैं वा अर्णु-अमान दुःखको। महानाम ! यह भी कामोंका दुष्परिणाम।

“धीरं चिरं महानाम ! कामोंके हेतु तलवार (=असिचम्म=तलवारका चमड़ा) डेकर, धनुष (=धनुष-कवच=धनुषकी कवची) चढ़ाकर, हाथों बारासे व्यूह रचे, संग्राममें होइते हैं। बाबाओंके कथ्यते में, शक्तिबोधके पोंके जातेमें, तलवारोंकी चमकमें, वह बाबाओंके किन्हीं होते हैं शक्तियोंसे तावित होते हैं, तलवारसे चिर-विघ्न होत हैं। वह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं या मृत्यु-समान दुःखको। वह भी महानाम ! कामोंका दुष्परिणाम ।

‘धीरं चिरं महानाम ! कामोंके हेतु, तलवार डेकर, धनुष चढ़ाकर, भीगे-किंगे हुए प्राकारों (=उपकारी=बाहर-यन्त्र) को हीइते हैं। बाबाओंके कथ्यते जाते में । वह वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं । वह भी महानाम ! कामोंका दुष्परिणाम ।

“धीरं चिरं महानाम ! कामोंके हेतु सोंध भी कनाते हैं, (गॉँव) उच्चाकर डे ऊठे हैं, बोरी (=एकआगारिक=एक भरको घेरकर सुराचा) भी करते हैं रहजनी (=अपरिणम) भी, करते हैं परकीपमन भी करते हैं। तब उसको राधा कोग पकड़कर बाबा प्रकटकी मञ्ज (=अम्मकरक) कराते हैं—बाबुक्रमे भी पिटाते हैं बेंतसे भी, जुमाना भी करते हैं, हथ भी काटते हैं पैर भी काटते हैं हाथ-पैर भी काटते हैं काब भी नाक भी काब-कफ भी चिखनापाकिन्ध भी करते हैं संकर्मिन्ध भी गड्ढुमुख भी, ज्योतिमाकिन्ध भी हृत्-ज्योतिन्ध भी परक-वतिन्ध भी चौरक-वासिन्ध भी ऐवेवक भी बहिष्-मासिन्ध भी कार्यापन्नक भी चारापमधिक्क भी परिव-परिवर्तक भी पकाक-पीठक भी तपाने ठेकने भी गहकाते हैं कुचोंम भी कटवाते हैं बीतेजी शूकीपर कटवाते हैं तलवारले शीस कटवाते हैं। वह वहाँ मरणको प्राप्त होते हैं, मरण-समान दुःखको भी। वह भी महानाम ! कामोंका दुष्परिणाम ।

‘धीरं चिरं महानाम ! कामके हेतु कायासे दुष्परित (=पाप) करते हैं बचबसे मक्से वह काय-बचन-मनसे दुष्परित करके, धरीर डोबवैपर मरनेके बाद कपाच=दुर्गति=विचिपात, निरय (नर्क)में उल्लस हाते हैं। महानाम ! जन्मान्तरमें यह कामोंका दुष्परिणाम दुःख-सुख काम-बेध=अम-विद्याव कामोंका हागडा कामोंहीके किये होता है।

एक समय महानाम ! मैं राखगुहमें शूभकूट-पर्यंतपर विहार करता था। उस समय बहुतसे विगंड (=जैन-साधु) श्रुतिगिरिकी काकाहाम्टापर लड़े रहने का प्रथ डे जासन छोड़ उपक्रम करते दुःख कइ तीव्र वेदना सेक रहे थे। तब मैं महानाम ! सार्धकक प्याकते उठकर, वहाँ श्रुतिगिरिके पास काकधिल्ल भी वहाँपर कि वह विगंड थे, वहाँ गया। बाकर उन विगंडोंके बोका—‘वहाँ धनुषी विगंडो ! तुम लड़े अस्तव छोड़ दुःख कइक तीव्र वेदना सेक रहे हो ? ऐसा कइवेपर उब विगंडोंके कइ—‘बाबुच ! विगंड नाथपुत्र (=वैष्णवीके महाधीर) सर्वश=सर्वदर्शी ध्यप अधिक (=अपरि शेष) हाव=दर्शनको जानते हैं—‘कइते, लड़े सोते जागते, सदा किरंतर (उलको) ज्ञानवर्तन उपरिष्ठ रहता है’। वह ऐसा कइते हैं—विगंडो ! जो तुम्हारा पहिलेका किना हुआ कर्म है जने इस कइधी दुष्कर-किना (=उपस्था)से नास करो धीर जो इस बच वहाँ काव-बचन-मनसे संवृत् (= पाप न करनेके करण रक्षित, गुप्त) हो वह मविष्यके किये पापक न करवा हुआ। इस प्रकार पुराने कर्मोंका तपकासे जन्म होजैसे धीर नये कर्मोंके न करनेसे, मविष्यमें चित्त अन्-आकन (= विमूक) होंगे। मविष्यमें जाकर न होजैसे कर्मक बच

(होगा) कर्म-क्षयसे दुःखका क्षय; दुःख-क्षयसे वेदना (= संसारा) का क्षय वेदना क्षयसे सभी दुःख नष्ट होंगे। हमें यह (विचार) दृष्टता है = समझता है इससे हम संतुष्ट हैं।

ऐसा कहनेपर मैंने महात्मान-। उन निगडोंको कहा—'क्या तुम आहुसो। निगडों! जानते हो 'हम पहिले से ही हम नहीं बने ?' 'नहीं आहुस। 'क्या तुम आहुसो। निगडों! जानते हो—'हमने पूर्वमें पापकर्म किये ही हैं, नहीं पहिले किये ?' 'नहीं आहुस। 'क्या तुम आहुसो। निगडों! यह जानते हो—'अमुक अमुक पाप कर्म किया है'। 'नहीं आहुस। 'क्या तुम आहुसो। निगडों! जानत हो, इतना दुःख प्राप्त होगाया, इतना दुःख प्राप्त करना है इतना दुःखप्राप्त होनेपर सब दुःख नाश हो जायेगा ?' 'नहीं आहुस। 'क्या तुम आहुसो। निगडों! जानते हो—'हसी अम्म में अमुक ( = बुरे ) बमोका महाग ( विनाश ), और कुशल ( = अच्छे ) बमोका काम ( होगा है ) ?' 'नहीं आहुस। 'इस प्रकार निगडों! तुम नहीं जानते—'हम पहिले से या नहीं०। हसी अम्ममें अमुक बमोका महाग और कुशल बमोका अम्म ( होगा है ) ऐसा ही होनेसे तो आहुस। निगडों! जो कोकमें बड़ ( = मर्कट ) लव-रंग-हाथवाड़े, कर-कर्मा मनुष्योंमें नीच जातिवाड़े ( = पचा जाता ) हैं वह निगडोंमें साधु बनते हैं। आहुस। गौतम! सुखमें सुख प्राप्य नहीं है दुःखसे सुख प्राप्य है। आहुस। गौतम! यदि सुखसे सुख प्राप्य होता तो राजा मागध श्रेणिक विवसार सुख पाता। राजा मागध श्रेणिक विवसार आपुप्मान् ( = आप ) के साथ बहुत सुख-विहारी है ? 'आपुप्मान् निगडोंने अबदन, बिना विचारे जल्दीमें यह बात कही। 'आहुस। गौतम! सुखसे सुख नहीं प्राप्य है दुःखसे सुख प्राप्य है। सुखसे यदि आहुस। गौतम! सुख प्राप्त होता तो राजा मागध श्रेणिक विवसार सुख प्राप्त करता, राजा मागध श्रेणिक विवसार आपुप्मान् गौतमके साथ बहुत सुख विहारी है। 'तो तुझे ही पूछना चाहिये—'आपुप्मानोंके किये कौन अधिक सुख-विहारी है राजा विवसार वा आपुप्मान् गौतम ?' 'अबदन आहुस गौतम! हमने बिना विचारे जल्दीमें बात कही। नहीं आहुस गौतम! सुखसे सुख प्राप्य है। जान हीजिय इस अब हम आपुप्मान् गौतमके पूछते हैं—'आपुप्मानोंके किये कौन अधिक सुख विहारी है, राजा विवसार वा आपुप्मान् गौतम ? 'तो आहुसो निगडों! तुमको ही पूछते हैं 'ऐसा तुम्हें जैसे ब्रह्मा उत्तर हो।' तो क्या मानते हो आहुसो! निगडों! क्या राजा विवसार आपुप्माने बिना दिके बचनसे बिना बोके सात रात-दिन केबल ( = एकल ) सुख अनुभव करते विहार कर सकता है ?' 'नहीं आहुस ?' 'तो क्या मानते हो आहुस। निगडों! छ रात-दिन केबल सुख अनुभव करते विहार कर सकता है ?' 'नहीं आहुस! पाँच रात दिन चार रात-दिन। तीन रात-दिन। दो रात-दिन। एक रात दिन। 'नहीं आहुस ?' 'आहुसो! निगडों! मैं आपुप्माने बिना दिके बचनसे बिना बोके एक रात दिन, दो रात-दिन तीन रात दिन चार, पाँच छ सात रात-दिन केबल सुख अनुभव करता विहारकर सकता हूँ, तो क्या मानते हो आहुसो। निगडों! ऐसा होनेपर कौन अधिक सुखविहारी है राजा मागध श्रेणिक विवसार वा मैं ? 'ऐसा होनेपर तो राजा मागध श्रेणिक विवसारसे आहुप्मान् गौतम ही अधिक सुख-विहारी है।



जावान्, यह कहा—महानाम कास्वने सन्नुह हो मगवान्के मापका कवि-  
बन्धन किया ।

x

x

x

### कुटुम्ब-सुच ( ई पू. ५१४ ) ।

ऐसा मीने सुना—एक समय पाँच सौ मिश्रुओंके महान् मिश्रु-संघके साथ मगवान्  
मगवान्-सैन्यमें चारिक्रम करते, जहाँ बालुमत्त नामका मगवान्के प्राङ्गण-ग्राम था वहाँ गये ।  
वहाँ मगवान् बालुमत्तमें अन्धकद्विष्टका (= अन्धकद्विष्ट) में विहार करते थे ।

उस समय कुटुम्ब प्राङ्गण अवाकीर्ण, सूर्य-अङ्क-अङ्क-आत्म-संपन्न राज-मोक्ष राज  
मागव श्रेणिक विचसार हाथ दत्त, राज-शाय अङ्कदेव बालुमत्तमें स्थानी होकर रहता था ।  
उस समय कुटुम्ब प्राङ्गणको महापद्म उपस्थित हुआ था । सात सौ बैर सात सौ बन्धे  
सात सौ बन्धियों सात सौ बन्धियों सात सौ भई पशुके किय स्पृष्ट (= प्रम्मे ) पर  
काई गाई थी ।

बालुमत्त वासी प्राङ्गण गृहपतिपौत्रे सुना—सायन-कुम्भके प्रवृत्त सायन-पुत्र अमज  
गौतम अन्धकद्विष्टके विहार करत हैं । अब आप गौतमका ऐसा मंगलकीर्ति श्रवण उद्ग  
हूम्भ । इस प्रकारके बर्तोंका वर्सन अन्धक होता है । तब बालुमत्तके प्राङ्गण गृहपति  
बालु-मत्तसे विक्रमकर सुम्भके सुम्भ विपर अन्धकद्विष्टका भी उपर जाने का । उस समय  
कुटुम्ब प्राङ्गण प्राङ्गणके ऊपर विरके क्षयके किये गया हूम्भ था । कुटुम्ब प्राङ्गणके सुम्भके  
सुम्भ बालुमत्तके प्राङ्गण-गृहस्थोंको बालुमत्तसे विक्रमकर, विपर अन्धकद्विष्टका भी उपर जाने  
देखा । देखाकर क्षया (अन्धक) को संबोधित किया—

“क्या है, हे क्षया ! ( जो ) बालुमत्तके प्राङ्गण-गृहस्थ अन्धकद्विष्टका का  
रहे हैं ?”

“मो ! सायनकुम्भ-प्रवृत्त अमज गौतम अन्धकद्विष्टके विहार कर रहे हैं । अब  
गातमका ऐसा मंगल कीर्तिसम्भ उद्ग हुआ है । उम्भी आप गौतमके वर्सनार्थ जा रहे हैं ।”

तब कुटुम्ब प्राङ्गणको हुआ—“मीने यह सुना है कि अमज गौतम सोकह परिष्कारों-  
वासी विविध पद्म-सपदाको आपता है । मैं महापद्म बन्धन करता चाहता हूँ । क्यों व  
अमज गातमका पास चक्रकर सोकह परिष्कारोंवासी विविध पद्म-सपदाको पूछें ?” तब  
कुटुम्ब प्राङ्गणके क्षयाका संबोधित किया—

“तो हे क्षया ! वहाँ बालुमत्तके प्राङ्गण-गृहपति हैं वहाँ जाओ । जाकर बालुमत्तके  
प्राङ्गण-गृहपतिपौत्रे ऐसा कहो—कुटुम्ब प्राङ्गण ऐसा कह रहा है ‘बोधी देर आप सब उम्भी  
कुटुम्ब प्राङ्गण भी अमज गौतमके वर्सनार्थ जायेगा ।

“कुटुम्ब प्राङ्गणको अन्धक मो ! कह क्षया वहाँ गया वहाँ बालुमत्तके प्राङ्गण  
गृहपति थे । जाकर वह कहे—कुटुम्ब ।

उस समय कई सौ प्राङ्गण कुटुम्बके महापद्मको भोग्येके किये बालुमत्तमें वास करते

ये । उन ब्राह्मणोंमें सुता-कुटुम्ब माह्वय अमय गौतमके दर्शनार्थ जायेगा । तब वह ब्राह्मण वहाँ कुटुम्ब था वहाँ गये । चाकर कुटुम्ब ब्राह्मणको बोले—

‘सचमुच आप कुटुम्ब अमय गौतमके दर्शनार्थ जायनाके हैं ?’

‘हाँ भो ! मुझे वह (विचार) हो रहा है (कि) मैं भी अमय गौतमके दर्शनार्थ जाऊँ ।’

‘आप कुटुम्ब अमय गौतमके दर्शनार्थ मत जायें । आप कुटुम्बको अमय गौतमके दर्शनार्थ नहीं जाने योग्य हैं । यदि आप कुटुम्ब अमय गौतमके दर्शनार्थ जायेंगे (तो) आप कुटुम्बका पस खींच होगा अमय गौतमका पस बड़ेगा । क्योंकि आप कुटुम्बका पस खींच होगा अमय गौतमका पस बड़ेगा इस बात (=मंग) से भी आप कुटुम्ब अमय गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं । अमय गौतम ही आप कुटुम्बके दर्शनार्थ जाने योग्य है । आप कुटुम्ब बहुतेके आचार्य-प्रचार्य हैं तीन सौ मायबच्चोंको मंत्र (=नेत्र) पढ़ाते हैं । बाबा विद्याबोले बाबा देसोंसे बहुतसे मानवक मंत्रके किये मंत्र-पढ़नेके किये आप कुटुम्बके पास आते हैं । आप कुटुम्ब जीर्ण = बूढ़ = महकक = अन्धगत = कर्ण-प्राप्त हैं । वह गाँवम ठरुप है तबक साधु है । आप कुटुम्ब शम्भा मागव अथिक् विंखलारसे सत्कृत = गुणकृत = मानित = पूजित = अपचित हैं । आप कुटुम्ब ब्राह्मण चौक्यसाहितसे सत्कृत हैं । आप कुटुम्ब काणुमयके स्वामी हैं । इस मंग (= कारण)स भी आप कुटुम्ब अमय गाँवमके दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं हैं अमय गौतम ही आपके दर्शनार्थ जाने योग्य है ।

देसा कहतैपर कुटुम्ब ब्राह्मणने, उन ब्राह्मणोंको यह कहा —

‘तो भो ! मरी भी सुनो कि क्यों हमी अमय गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं आप अमय गाँवम हमारे दर्शनार्थ जाने योग्य नहीं है । अमय गौतम भो ! दोनों औरसे सुजात है ; इस अंगसे भी हमी अमय गौतमके दर्शनार्थ जाने योग्य हैं आप अमय गौतम हमारे दर्शनार्थ अन्धे योग्य नहीं हैं । अमय गाँवम बड़े भारी जाति संभका छोड़कर प्रव्रजित हुये हैं । अमय गौतम हीकबान् अपर्यशीक-मुक्त कुण्डक शीकी = अन्धे शीकसे मुक्त । अमय गाँवम सुचर्य = कल्याण-वाकरय । अमय गौतम बहुतेके आचार्य-प्रचार्य । अम-राग-रहित चपलता-रहित । कर्मबादी क्रियाबादी । ब्राह्मण संतानके निष्ठाप अमयी । नमिअ उचकुक छत्रिचकुकस प्रव्रजित । बाह्य महाधरी महाभोगवान् कुण्डस प्रव्रजित । बूधरे धारों दूसरे उचपहोसे बूढ़नेके किये आते हैं । अनेक महल देवता प्रार्थोस सरनागत हुये । अमय गौतमके किये देसा मंगक-झीति शब्द उचक हुआ है—कि वह मगवाक् । अमय गाँवम बचीस महापुरुष-कण्ठोस मुक्त है । अमय गौतम ‘बाओ स्वागत बोळनैबाके संभोदक अम्माकुटिक (= अनुकुटिक) उचान-मुक्त एर्षभायी । चारों परिपहोस सत्कृत = गुणकृत । अमय गौतममें बहुतसे देव और मनुष्य अज्ञावान् हैं । अमय गौतम जिस प्राप्त था नगरमें बिहार करते हैं उसे अ-मनुष्य (= देव मूठ जादि) नहीं सताते । अमय गौतम संधी (=संवाधियति), गणी गण्यार्थ बड़े तीर्थकारी (=समहाय-व्यापकी)में पवान् कद आते हैं । जैसे किमी किसी अमय ब्राह्मणका बस अम कर्म हो जाता है उस तरह अमय गौतमका पस नहीं हुना है । अनुत्तर (=अनुपम) विद्या-चरन संपदास अमय

१ देखो पृष्ठ १० । २ पृष्ठ ३१ ।

गातमञ्ज पश उत्पन्न हुआ । अमण गातमञ्ज, भा ! पुत्र महिन, भाषा महिन, अमात्र सहित राजा मागप अत्रिह विषसार भाषास शरणगत हुआ है । राजा प्रसन्नचित्त होमकः ।

ब्राह्मण पीण्डरसाति० । अमण गौतम राजा विषसारसं सक्त । राजा प्रसेनजित् ० । ब्राह्मण पीण्डरसाति०० । अमण गौतम व्याणुमतमें आवे हैं । गणु मतमें अम्बलट्टिकामें बिहार करत हैं । जा कई अमण या ब्राह्मण हमारे गाँव घेतमें आवे हैं वह (हमार) अतिथि हमने हैं । अतिथि हमारा सत्करणीय=गुदकरणी मागधीय=पुत्रणीय है । 'कौं भो ! अमण गौतम व्याणुमतमें आवे हैं । अमण गौतम हमारे अतिथि हैं । अतिथि हमारा सत्करणीय है । इस अंगस भी । भो ! मैं अमण गातमक इतब ही गुणवत्त करता हूँ, लेकिन वह आप गौतम इतने ही गुणवत्त नहीं हैं, आप गातम अ-परिमाणगुणवत्त हैं ।'

इतना कहनेपर उन ब्राह्मणोंमें कुदन्त ब्राह्मणको कहा—

'जस आप कुदन्त अमण गौतमका गुण कहत हैं (तब ता) यदि वह आप गातम पहोंस भा पात्रवपर भी हों ता भी पात्रव बाँधकर, अज्ञात कुकुत्रको दर्शनार्थ जाना चाहिये । तो भो ! हम सभी अमण गौतमक दर्शनार्थ अर्हण ।

तब कुदन्त ब्राह्मण महान् ब्राह्मण गणके साथ अहाँ अम्बलट्टिका भी अहाँ भगवान् घे अहाँ गथा । आकर भगवान् के साथ समोद्व किया । व्याणुमतके ब्राह्मण पूर पतिवोंमें भी कई कोई भगवान् का अविचारकर एक बार बँद गय, कोई कई समोद्वर । जिपर भगवान् घे, उपर हाथ जोड़कर ; चुपचाप एक बार बँद गये ।

पुत्र अर बँदे हुए कुदन्त ब्राह्मणने भगवान् को कहा—

'हे गौतम ! मैंने सुना है कि—अमण गातम सोसह परिच्छर सहित त्रिबिध पञ्च-संपदाको अर्हण हैं । भो ! मैं सोसह परिच्छर-सहित त्रिबिध पञ्च संपदाका नहीं अर्हण । मैं महापञ्च करना चाहता हूँ । अच्छा हो यदि आप गौतम सोसह परिच्छर-सहित त्रिबिध पञ्च-संपदाका मुझे उपदेश कर ।'

'तो ब्राह्मण ! सुन, अच्छी तरह मधमें कर कहता हू ।'

'अच्छा भो !' कुदन्त ब्राह्मणने भगवान् को कहा । भगवान् बोले—

पूर्व-कालमें ब्राह्मण ! महाबली महाभोगवान् बहुत-सापा-चौड़ीबाका बहुत-बिल-उपकरण (= साधन)वाका बहुत-बलवान्, मेरे कोश कोशगारवाका महाबिक्रित कामक राजा वा । ब्राह्मण ! ( उस ) राजा महाबिक्रितको एकान्तमें विचारते चित्तमें वह क्याक उत्पन्न हुआ— 'मुझे मनुष्योंके विपुल भोग मिले हैं ( मैं ) महान् पृथिवी-मंडलको जीतकर शासन करता हूँ । क्यों न मैं महापञ्च करूँ जो कि चिरकालक मेरे हित-मुलके सिने हो । तब ब्राह्मण ! राजा महाबिक्रितवै पुरोहित ब्राह्मणको बुलाकर कहा— ब्राह्मण ! यहाँ एकान्त म बँद विचारते मेरे चित्तमें वह क्याक उत्पन्न हुआ— क्यों न मैं महापञ्च करूँ । ब्राह्मण ! मैं महापञ्च करना चाहता हूँ । आप मुझे अनुशासन कर जो चिरकाल तक मेरे हित-मुलके सिने हो । एसा कहनेपर ब्राह्मण ! पुरोहित ब्राह्मणवै राजा महाबिक्रितको कहा— आप का देश सर्वदक उत्पीडा-सहित है—( राज्यमें ) आम घात (=मासोंकी लूट ) भी विचार्य पपते है बहजारी भी देखी जाती है । आप ऐस सर्वदक उत्पीडा-सहित जनपदसे बकि (= कर ) लेते हैं । इसने आप हम ( देश )के अक्षय करी है । सापव आप का

(विचार) ही, वस्तु कीकड़ी हम सब बंधन हाथि, निर्वासनसे उखाड़ देंगे। ककिन इस वस्तु कीक (सूत्र-पाठ रूपी कीक) को इस प्रकार अच्छी तरह नहीं उखाड़ा जा सकता। जो मानसेस बच रहेंगे वह पीछे राजाके जनपदको सत्तावेंगे। वह वस्तुकीक इस उपायसे मन्त्री प्रकार उन्मुख होसकता है राजन्! जो कोई आपके जनपदमें कृषि-पापाकन करनेका उस्ताह रखते हैं उनको आप बीज और मोहन सम्पादित करें। बाधिम्य करनेका उस्ताह रखते हैं उन्हें आप पूँजी (= मान्यत) दें। जो राजा पुढपाई (= राजाकी पाठरी) करकेका उस्ताह रखते हैं उन्हें आप मत्ता-वेतन (= धत्त-वेतन) दें। (इस प्रकार) वह लोग अपने काममें जो राजाके जनपदको नहीं सत्तावेंगे। आप को महान् (धन् धान्यकी) राशि (मास) होगी जनपद (= देस) भी पीड़ा रहित कंडक-रहित छम युक्त होगा। मनुष्य भी गोदमें पुत्रोंको पचातेसे, लुके घर बिहार करेंगे। राजा महा भिजितने पुरोहित माह्यणको अच्छा मो माह्यम। कह जो राजाके जनपदमें कृषि-नोरक्षामें उस्ताही थे, उन्हें राजाने बीज मत्ता संपादित किया। जो राजाके जनपदमें बाधिम्यमें उस्ताही थे उन्हें पूँजी संपादित की। जो राजाके जनपदमें राज पुढपाईमें उस्ताही थे, उनको मत्ता वेतन दीककर दिया। उन मनुष्योंम अपन अपने काममें क्या राजाक जनपदको नहीं सत्ताया। राजाको महाराशि मिथी। जनपद कंडक अपीहित छेम-स्वियत होगया। मनुष्य हरित मोहित गोदमें पुत्रोंको पचातेसे लुके घर बिहार करने लगे।

“माह्यम ! तब राजा महाभिजितने पुरोहित माह्यणको बुकाकर कहा—‘मो ! मीने वस्तु-कीक उखाड़ दिया। मेरे पास महाराशि है। हे माह्यण ! मी महान् करना चाहता हूँ। आप मुझे अनुसासन करें जो कि चिरकाक तक मेरे हित-मुक्कके लिए हो’। ‘ता आप ! जो आपके जनपदमें जनपद (=माम के) नैगम (=सहर-कस्बेके) अनुपुक्त क्षत्रिय हैं आप उन्हें कहें—‘मी मो ! महापश करना चाहता हू आप लोग मुझे अनुज्ञा (= आज्ञा) करें जो कि मेरे चिरकाकतक हित-मुक्कके लिये हो’। जो आपके जनपदमें जानपद या नैगम अमात्य (=अभिन्नरी) पारिषद (=समासह)। जनपद में जानपद या नैगम माह्यम महाशाक (= प्रतिहित-धनी)। जानपद या नैगम गृहपति (=वैश्य) नेचयिक। राजा महाभिजितने माह्यम पुरोहितको ‘अप्य मो कहकर जो राजाके जनपदमें अनुपुक्त क्षत्रिय अमात्य पारिषद माह्यम महाशाक गृहपति वेचयिक (= धनी) थे, उन्हें धार्मिकत किया—‘मो ! मी महापश करना चाहता हू आप लोग मुझे अनुज्ञा करें जो कि चिरकाक तक मेरे हित-मुक्कके लिये हो’। ‘राजा ! आप यज्ञ करें महाराज वह यज्ञका फल है। यह चारों अनुमति-पक्ष उसी पक्ष (चार) परिष्कार होते हैं।

(वह) राजा महाभिजित आठ धर्मोंसे युक्त था। (१) दोनों ओरसे बुझात (१) अभिकूप = दर्शनीय महाधर्मों=महाहृदि दर्शनके लिये सबकरना न रखन बाका। २) शीक वान् ।(३) धाव्य महाधर्मवान् महाभोग-वाद् बहुत चर्ची-सोन बाका धृष्ट विल उपक-रबभन्ना बहुत धन-वान्धवाक परिपूर्ण-कोस-धोहागारवाक्य (५) बध्बली चतुरंगिनी सेनासे युक्त कस्मर (=आजक) के लिये अजवाह-प्रतिन्नर (= धोवाह पतिवार) के सिव वसस मार्गो बाबुमोडी तपात्तामा वा। (६) अदातु हायक=शानपति अमय माह्यम हरिश्च-अधिक (= मंगला) वन्दीभव (=वधिपद) पाचकोंके लिये लुङ-शर-बाका प्वाड-सा हो, पुण्य

करता था। (७) बहुभुत-सुने हुआ कहे हुआका अर्थ जावता-वा-इस कथन का वह अर्थ है, इस कथनका वह अर्थ है। (८) पंडित-अथवा मन्त्री भूत-मन्त्रिय-वर्तमान संबंधी कृत-को सोचनेमें समर्थ। राजा महाबिजित इव भाट अंगोंसे युक्त (वा)। वह भाट अथ उमी पञ्चके भाट परिष्कार है।

‘पुरोहित प्राज्ञान चार अंगोंसे युक्त ( वा )।—(१) शोभो ओरस सुख्यत । (२) अथाथक मंत्र-अथ । शिबेद पारंगत (३) शीमन्वात् । (४) पंडित-अथवा मन्त्री युक्त (= इक्षिया) प्रह्व करने बाह्यमें प्रथम या द्वितीय वा। पुरोहित प्राज्ञान इव चार अंगोंसे युक्त (वा)। वह चार अंग भी उसी पञ्चके परिष्कार होते हैं।

‘तव प्राज्ञान। पुरोहित प्राज्ञानने पहिले राजा महाबिजितको सोच विचारके उपदेश किया (१) बह्वकरनेकी इच्छा बाके आप को आपत्त करी अथसोस हो—‘बड़ी बह-रूपि बड़ी आपोगी तो आप राजाको वह अथसोस न करना चाहिये। (२) बह्व करते हुये आप राजाको सावत् करी अथसोस हो—‘बड़ी बह-रशि बड़ी गई सा यह अथसोस आपको न करना चाहिये। प्राज्ञान। इस प्रकार पुरोहित प्राज्ञानने राजामहाबिजितको पञ्चसे पहिले छैव विच बतझने।

‘तव प्राज्ञान। पुरोहित प्राज्ञानने पञ्चसे पूर्वही राजा महाबिजितके (इववस) प्रति-प्राहकों के प्रति (उत्पन्न होनेकी सम्भावना बाक) इस प्रकारके विप्रतिसार (अथिको पुत्र करना) इत्यादि-१) आपत्त बजमें प्राजातिपाती (= हिंसारत) भी बाह्ये प्रजातिपात-विरत (= अहिंसारत) भी। जो प्राजातिपाती है (उत्पन्न प्राजातिपात) उन्हींके किये हैं जो न प्राजातिपात विरत है उन्के प्रति आप बजन करे मोक्ष करे आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न (= स्वच्छ) करें। (२) आपके बजमें अविचारशी (= चोर) भी बाह्ये अविचार्य विरत (= अचोर) भी। जो वहाँ चोर है वह अपने किये हैं जो वहाँ न चोर है उन्के प्रति आप बजन करे मोक्ष करे, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (३) काम-मिच्छाशी (= अमिच्छारी) न-अमिच्छारी भी। (४) मृषावादी (= झूठे) मृषावाद्-विरत भी। (५) पिच्छ-वादी (= चुगुल-चोर) पिच्छ-वचन-विरत भी। (६) पक्ष-वादी (= अक्ष-वचनवाके) पक्ष-वचन-विरत भी। (७) संकापी (= अकचारी) समझाप-विरत भी। (८) अमिथ्यातु (= लोभी) अमिथ्या-विरत भी। (९) अथाथ-विरत (= शोरी) न-अथाथ-विरत-भी। (१) मिथ्यादृष्टि (= झूठे सिद्धांतवादी) सम्मग-दृष्टि (= अल्प-सिद्धांतवादी) भी। जो वहाँ मिथ्यादृष्टि है अपनेही किये हैं, जो वहाँ सम्मग-दृष्टि है उन्के प्रति आप बजन करे मोक्ष करे। आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। प्राज्ञान। पुरोहित प्राज्ञानने पञ्चसे पूर्वही राजा महाबिजितके (इववस) प्रतिप्राहकों (= बाह्ये बाह्ये के प्रति (उत्पन्न होनेवाले) इव इस प्रकार के विप्रतिसार (अथिक-मन्त्रियता) अलग कराये।

‘तव प्राज्ञान। पुरोहित प्राज्ञानने बज करते बज राजा महाबिजितके चित्तको सोच प्रकाशमें सम्पूर्ण-समापन-अमुक्तजन-संपूर्ण किया—(१) आपत्त बज करतेहुये आप राजाको कोई बोकनेवाला हो-राजा महाबिजित महापक्ष कर रहा है किंतु उसने मैगम-आपत्त अनुभूत-अविषो-मोक्षिक वा शागीरदार राजाओंको आमंत्रित नहीं किया, तो भी बज कर रहा है। ऐसा भी आपको परसे बोकनेवाला कोई नहीं है। आप मैगम (= अहरी) जानपद

(अग्नीहोत्री) अनुपुच्छ-शत्रिणोंको धामंत्रित कर चुके हैं। इससे भी आप इसको धार्यें। आप यजन करें, आप सोहन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (२) सायद् कोई बोझनेवाला हो— वैगम ज्ञानपद् धामात्वीं (अभिकारी ज्ञानसर) पार्वर्द्धीं (असमासद्) को धामंत्रित नहीं किया। (३) ब्राह्मण महाशाक्तों। (४) वैच्यिक गृहपतिपों (अधनी, वैश्यों)को। (५) कोई बोझनेवाला हो—राजा महाभिक्षित बन्न कर रहा है, किंतु वह दोनों ओरसे मुखात नहीं है। तो भी महायज्ञ यजन कर रहा है। ऐसा भी आपको धर्मसं कोई बोझनेवाला नहीं है। आप दोनों ओरसे मुखात हैं। इससे भी आप राजा इसको धार्यें। आप यजन करें, आप सोहन करें, आप अपने चित्तको भीतरसे प्रसन्न करें। (६) धर्मिरूप=वर्धनीय। (७) धीकवान्। (८) भाव्य महाभोगवान् बहुत सोना-बाँड़ीवाले, बहुत चित्त-उपकरणवान् बहुत चत-बाल्य-वाप् कोस-कोडगार-परिपूर्ण। (९) बकवती यत्तु रंगिणी सेवास। (१०) ब्रह्मणु दायक। (११) बहुभुत। (१२) पंडित=ध्यक्त, सेबावी। (१३, पुरोहित दोनों ओरसे मुखात। (१४) पुरोहित अप्यायक मंत्रधर। (१५) पुरोहित धीकवान्। (१६) पुरोहित पंडित=ध्यक्त। ब्राह्मण! महायज्ञ यजन करते हुये राजा महाभिक्षितके चित्तको पुरोहित ब्राह्मणनै-इव सोकह विधोसे समुचेकित किया।

“ब्राह्मण! उस यज्ञमें धार्यें नहीं मारी गईं बकरे भेड़ें नहीं मारे गये भुर्रों-मुजर नहीं मारे गये न नाश प्रकारके प्राणी मारे गये। न धूपके किये हुए करते गये। न पर हिंसाके किये धर्म करते गये। जो भी उसके हाथ प्रप्य (अजीकर) कर्मकर थे उन्होंने भी बृह-तर्कित अय-तर्कित हो अनुमुक्त रोठे हुये सेवा नहीं की। किन्हींने चाहा उन्होंने किया किन्हींने नहीं चाहा उन्होंने नहीं किया। जो चाहा उसे किया, जो नहीं चाहा उसे नहीं किया। धी ठेक मन्त्रधर रही मनु गृह (अधमित)स ही वह बह समाप्तिको प्राप्त हुआ।

“तब ब्राह्मण! वैगम ज्ञानपद् अनुपुच्छ शत्रिय धामात्प-पार्वर्द्धीं, महाशाक्त (अधनी) ब्राह्मण वैच्यिक-गृहपति (अधनी वैश्य) बहुतसा चत-बाल्य के राजा महाभिक्षितके पास जा कर ऐसा बोले—‘बह देव! बहुतसा चत-बाल्य (असापतेष्य) तुम्हें किये धार्यें हैं। इसे देव धीकर करें। ‘नहीं सो! मेरे पास भी यह बहुतसा सापतेष्य धर्मसे उपार्कित हैं। वह तुम्हारा ही रहे वहाँस भी और के धामी’। राजाके हुक्म करमेपर एक ओर जाकर उन्होंने सहाह की—‘बह हमारे किये उचित नहीं कि हम इस चत-बाल्यको फिर अपने बरको कीटा केर्वाँच। राजा महाभिक्षित महायज्ञकर रहा है इत्यंत! हम भी इसके अनुवाची (अपीठे-पीठे बह करवैवाळे) होंगे।

“तब ब्राह्मण! पशुवात (=पशुवात)के पूर्व ओर वैगम ज्ञानपद् अनुपुच्छ-शत्रिणोंने अपना दाय उपापित किया। ब्रह्मवातके ब्रह्मण्य और असत्य-पार्वर्द्धींसे। पश्चिम ओर ब्राह्मण महाशाक्तोंने। उत्तर ओर वैच्यिक-वैश्योंने। ब्राह्मण! उन (अनु-पशु)पशुधर्म भी धार्यें नहीं मारी गईं। धी ठेक मन्त्रधर रही मनु धीवस ही वह पशु समाप्तिको प्राप्त हुआ।

१ न क “धूप नामक महा-कर्म पदाकर—अमुक राजा अमुक असत्य अमुक ब्राह्मणनै इस प्रकारके नामधामके वापको किया नाम दिखाकर रखते हैं।

इस प्रकार चार अनुमति-पत्र बाह बागोंस पुक्त राजा महाविजित, चार बागोंसे पुक्त पुरोहित ब्राह्मण यह सोकर परिष्कार और तीन बिधे हुई । माह्वण ! इमे ही त्रिबिध पत्र-सपदा आर सोकर-परिष्कार कहा जाता है ।

ऐसा कहेपर यह ब्राह्मण उवाच = उच्यते महासब्द करने लगे—'अहो बह ! अहो ! बह-सम्पदा !! कुटुम्ब ब्राह्मण उपचाप ही बैठा रहा । तब उन ब्राह्मणोंने कुर्यात् ब्राह्मणको यह कहा—

"आप कुर्यात् किसकिये अमन गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अनुमोदित नहीं करते ?

"मो ! मैं अमन गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अनु-अनुमोदित नहीं कर रहा हूँ । फिर भी उच्यते यह आपणा जो अमन गौतमके सुभाषितको सुभाषितके तौरपर अनुमोदित नहीं करेगा । मुझे यह ( विचार ) होता है, कि अमन गौतम यह नहीं करते—'पेसा मीने सुभा' या ऐसा हो सकता है' । बहिक अमन गौतमके—ऐसा तब प, इस प्रकार तब पा' कहा है । तब मुझे ऐसा होता है—अबश्य अमन गौतम उस समय (या तो) पत्र-रामी राजा महाविजित थे या वज्रके पात्रविता पुरोहित ब्राह्मण । क्या जाते हैं आप गौतम ! इस प्रकारके पत्रको करक पा कराके ( मनुष्य ) कृपा घोष करनेके बाद सुगति कर्ग-कोकमें उत्पन्न होता है ?"

'ब्राह्मण ! जानता हूँ इस प्रकारके पत्र । मैं उस समय उस पत्रका पात्रविता पुरोहित ब्राह्मण था'

"हे गौतम ! इस सोकर परिष्कार त्रिबिध पत्र-सपदासे भी कम सामग्री (= अर्थ) बाका कम किया (=समारंभ, वाका किंतु महाकल-दायी पत्र है ?

'हे ब्राह्मण ! इस स भी महाकल-दायी ।

'हे गौतम ! यह इस से भी महाकल-दायी पत्र कहा है ?'

"ब्राह्मण ! यह जो प्रत्येक कुकमें शक्तिवान् (=सहाचारी) प्रवृत्तियोंके किये विलक्षण किये जाते हैं । ब्राह्मण ! यह वज्र इस स भी महाकल-दायी है ।

'हे गौतम ! क्या हेतु है क्या प्रत्येक है, जो यह विलक्षण अनु-कुल-पत्र इस स भी महाकल-दायी है ?

'ब्राह्मण ! इस प्रकारके (महा)बागोंमें अर्हन् ( =मुक्तपुरुष ) या अर्हन्-मार्गाक नहीं आते । सो किस हेतु ? ब्राह्मण ! वहाँ बृह-महार आर गह-मह ( =गह्य पत्रकथा ) भी देखा जाता है । इसकिये हम प्रकारके बागोंमें अर्हन् नहीं आते । जो कि यह विलक्षण है हम प्रकारके वज्रमें ब्राह्मण ! अर्हन् जाते हैं । सो किस हेतु ? वहाँ ब्राह्मण ! यह प्रकार गह-मह नहीं देखा जाते । इसकिये हम प्रकारके वज्रमें । ब्राह्मण ! यह हेतु है यह प्रत्येक है त्रिमये कि विलक्षण उस से भी महाकल-दायी है ।

'हे गौतम ! क्या कोई कृपा पत्र हम सोकर-परिष्कार त्रिबिध पत्रमें भी अधिक कल-दायी इस विलक्षण अनु-कुल-वज्रमें भी अल्प-सामग्री-वाला अल्प-सामारम्भवाला और महा कल-दायी महामादा-कल-पात्र है ?'

'ब्राह्मण ! ।

“हे गौतम ! यह ब्रह्म कौनसा है ( का कि ) इस सोछह ?”

“ब्राह्मण ! यह जो चारों दिशाओंके सम्पर्के किये ( = चातुर्विहसं मध्य उदरिसस ) विहार बनवाना है । यह ब्राह्मण । ब्रह्म इस सोछह ।

हे गातम ! क्या कोई दूसरा ब्रह्म इस त्रिविधपञ्चसे भी इस नित्यदान से भी इस विहार-दानसे भी अल्प-सामग्रीक अल्प-क्रियावाला और महाफलवादी महामाहात्म्यवाला है ?”

“हे ब्राह्मण ! ।

“हे गौतम ! कौनसा है ?”

“ब्राह्मण ! यह जो प्रसन्न चित्त हो बुद्ध ( = परमतरुण ) की शरण जाना है धर्म ( = परम-तरुण ) की शरण जाना है सब ( = परमतरुण रक्षण-समुदाय ) की शरण जाना है ब्राह्मण ! यह ब्रह्म इस त्रिविध पञ्चसे भी ।”

हे गातम ! क्या कोई दूसरा ब्रह्म इस शरण-गमनोंसे भी अल्प-सामग्रीक अल्प क्रियावाला और महाफलवादी महा-माहात्म्यवाला है ?

“हे ब्राह्मण ! ।

“हे गौतम ! कौनसा है ?”

“ब्राह्मण ! यह जो प्रसन्न ( = स्वच्छ ) चित्त ( हा ) शिक्षापद् ( = धर्म-नियम ) ग्रहण करना है - ( १ ) प्राणातिपाठ-विरमण ( = ज-हिंसा ) ( २ ) अदिवादान-विरमण ( = ध-बोरी ) ( ३ ) काम मिथ्याचार-विरमण ( = धम्ममिचार ) ( ४ ) मृष्यवाद् विरमण ( = झूठ त्याग ) ( ५ ) भुरा-भेरेय-मद्य प्रमाद-त्याग विरमण ( = ब्रह्मात्याग ) । यह ब्रह्म ब्राह्मण ! इस शरण गमनोंसे भी महा-माहात्म्यवाला है ।

“हे गातम ! क्या कोई दूसरा ब्रह्म इस शिक्षापदोंसे भी महा-माहात्म्य वादा है ?”

हे ब्राह्मण ! ।

“हे गौतम ! कौनसा है ?”

ब्राह्मण ! यहाँ छेकमें तबागत १ उदरुद्ध होते हैं ? । इस प्रकार ब्राह्मण सीरु-संपन्न होता है । प्रथमस्थानको प्राप्तहो विहरता है । ब्राह्मण ! यह ब्रह्म पूर्वक ब्रह्मोंसे अल्प-सामग्रीक और महामाहात्म्यवाला है ।”

“क्या है हे गौतम ! इस प्रथमस्थावसे भी ?”

“हे । “कौन है ?”

“ द्वितीय-स्थाव । ‘तृतीय-स्थाव । “ चतुर्थ-स्थाव ।

“ज्ञान दर्शनक किये चित्तका रुगाता पित्तको मुक्ता है । “ नहीं अब और महामाहात्म्यवादा है । ब्राह्मण ! इस पञ्च-संपदासे उत्तरितर ( = उत्तम ) = प्रथी उत्तर दूसरी पञ्च-संपदा नहीं है ।

येमा कहने पर कुटुम्ब ब्राह्मणने माग्नाउको कहा—



‘हे गीतम ! आजर्ष ! हे गीतम ! ध्याजर्ष ! \* । मैं भगवान् घातमन्त्री बनन जाऊ हूँ चर्म और मिथु-संबन्धी भी । आप गीतम आ-बसे मुझे अंजलि-बद्ध उपासक बनान करीं । हे गीतम ! यह मैं सातसौ बैकों सातसौ बहकों, सातसौ बहियों सातसौ बकरों सतसता भेड़ोंको डोषवा देता हूँ, बीबन इन देता हूँ ; ( यह ) इरी घासी खर्बे रंडा पानी पीनी, रंडी हवा ठण्डे ( किय ) कडे ।”

तब भगवान्ने कुद्वंत ब्राह्मणको अनुपूर्वी-कथा कही । कुद्वन्त ब्राह्मणको उनी आसनपर बिरज = विमल चर्म-कण्डु उत्पन्न हुआ—“जो कुछ उत्पत्ति-धर्म है वह विनाश धर्म है” । तब कुद्वन्त ब्राह्मणने दृश्यधर्म हो भगवान्को कहा—

“मिथु-संधके साथ आप गीतम मेरा कळकळ मीजब स्वीकार करीं ।”

भगवान्ने मीजसे स्वीकार किया । तब कुद्वन्त ब्राह्मण भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठकर, भगवान्को अभिवादनकर प्रशिक्षाकर चला गया ।

तब कुद्वन्त ब्राह्मणने उस रातके बीतनेपर, यज्ञशालमें उठम आद्य-भोज्य तयारकरा, भगवान्को काल सूचित कराया । भगवान् पूर्वाह्न-समय पहिचकर पात्र-बीबर के मिथुसंधके साथ चर्ही कुद्वंत ब्राह्मणका यज्ञघाट या चर्ही गये । जाकर बिछे आसनपर बैठे । कुद्वंत ब्राह्मणने कुछ प्रमुख मिथुसंधको अपवैहायसे उठम आद्य-भोज्यसे संतर्पित-संतीयवारित किया । भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ इटा सेनेपर, कुद्वन्त ब्राह्मण एक छोटा आमल क एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए, कुद्वन्त ब्राह्मणको भगवान् धार्मिक कथासे संदर्श-समाहपन, समुचजन संप्रहर्षणकर आसनसे उठकर चक दिये ।

×

×

×

×

( १ )

सोणदंड-सुप्त । महालि-सुप्त । सेविञ्ज-वन्धुगोच-सुप्त । ( ई पू ५१४ ) ।

‘देमा ईने मुना—एक समय पंच सौ मिथुसंधके महामिथु-संधके साथ भगवान् ‘अग ( देम ) में चरिका करते चर्ही चम्पा ई चर्ही पहुँचे । चर्ही चम्पामें भगवान् चर्मरापुष्करिणीके तीरपर बिहार करते थे ।

उस समय सोणदंड ( = स्वयंभूदंड ) ब्राह्मण अनाकीर्ण तृण-कण्ड-उदक बाम्ब-मरिच राज-भोग्य राजा मागध जेलिक विचसार-द्वारा दृष्ट राजद्वार ब्रह्मदेव चम्पाका स्वामी थे ।

चम्पानिवासी ब्राह्मण गृहपतिपोंने मुना—सायकपुल-मन्त्रित अमल गीतम चम्पामें गर्गरा पुष्करिणीके तीर बिहार कर रहे हैं । अब भगवान् घातमन्त्र देमा मंगल-कीर्ति-सम्पन्न उदा हुआ ई— । इस प्रकारके अर्हतीका दर्शन अण्ड्य होता ई । तब चम्पा-वासी ब्राह्मण गृहपति चम्पासे निकलकर हुण्डके हुण्ड बिबर गगारा पुष्करिणी ई उधर जाने लगे । उस समय सोणदंड ब्राह्मण दिग्दक्ष शकनके सिधे प्रामादपर गया हुआ था । सोणदंड ब्राह्मणने

१ पृष्ठ २५ ।

२ श्री वि. १४ । ३ बिहारमंडमें भागलपुर-सुंगेर जिलेका गंगाक दक्षिणका भाग ।

४ चंपा-नगर ( बि मावलपुर बिहार ) । ५. पृष्ठ ११ ।

अम्पा-निवासी ब्राह्मण गृहस्थोंको त्रिषर गगरा पुष्करिणी है, उधर जाते देखा। दसकर झरनाके सञ्चोपित्त क्रिया— १ ।

उस समय अम्पामें माना देसोंके पौंच-सी ब्राह्मण किसी कामसे काम करते थे। उन ब्राह्मणोंमें मुग्धा—सोमदण्ड ब्राह्मण अमज गौतमके दर्शनार्थ जायेगा। तब वह ब्राह्मण जहाँ सोमदण्ड ब्राह्मण था, वहाँ गया। जाकर सोमदण्ड ब्राह्मणको बोले— १ ।

तब सोमदण्ड ब्राह्मण महान् ब्राह्मण-गणके साथ जहाँ गगरा-पुष्करिणी थी, वहाँ गया। तब बचकडकी आड़में जाकेपर सोमदण्ड ब्राह्मणके चित्तमें चित्तकं उत्पन्न हुआ— यदि मैं ही अमज गौतमको प्रश्न पूछूँ तब यदि अमज गौतम मुझे ऐसा कई—ब्राह्मण! यह प्रश्न इस तरह नहीं पूछा जाना चाहिये ब्राह्मण। इस प्रकारसे यह प्रश्न पूछा जाना चाहिये। तब मुझे यह परिपत् तिरस्कार करेगी—मज्ज (=बाक) =अप्यक है, सोमदण्ड ब्राह्मण, अमज गौतमसे ठीकसे (=व्योमितो) प्रश्न भी नहीं पूछ सकता। जिसको यह परिपत् तिरस्कार करेगी उसका बस भी क्षीण होगा, जिसका बस क्षीण होगा, उसके भोग भी क्षीण होंगे। यत्तसे ही भोग मिलते हैं। और यदि मुझे अमज गौतम प्रश्न पूछें यदि मैं प्रश्नके उत्तरद्वारा तनका चित्त समुत्पन्न न कर सकूँ। तब मुझे यदि अमज गौतम ऐसा कई ब्राह्मण! यह प्रश्न ऐसे नहीं उत्तर देना चाहिये, ब्राह्मण! यह प्रश्न इस प्रकारसे व्याकरण (=उत्तर व्याख्यान) करना चाहिये। तो यह परिपत् मुझे तिरस्कार करेगी। मैं यदि इतना समीप जाकर भी अमज गौतमको बिना देते ही लौट जाऊँ तो इससे भी यह परिपत् मुझे तिरस्कार करेगी—बाक =अप्यक है सोमदण्ड ब्राह्मण, मानी है अचनीत है; अमज गौतमके दर्शनार्थ जानेमें समर्थ नहीं हुआ। इतना समीप जाकर भी अमज गौतमको बिना देते ही कैसे लौट गया। जिसको यह परिपत् तिरस्कार करेगी।

तब सोमदण्ड ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्के साथ समीप कर एक ओर बैठ गया। स्वपा-निवासी ब्राह्मण-गृहपति भी—कोई कोई भगवान्के अधिवादन कर एक ओर बैठ गया कोई कोई समोदन कर कोई कोई त्रिषर भगवान्के उधर हाथ छोड़ कर कोई कोई कामतीव्र मुग्धा कर कोई कोई सुपचाप एक ओर बैठ गये।

वहाँ भी कुन्दन्त ब्राह्मण (चित्तमें) बहुतमा चित्तकं करते हुए बैठा था— यदि मैं ही अमज गौतमको प्रश्न पूछूँ। अहोचत! यदि अमज गौतम (मेरी) अपनी त्रैविद्यक पंडितार्थमें (प्रश्न) पूछते तो मैं प्रश्नोत्तर देकर उभर चित्तको समुत्पन्न करता।

तब सोमदण्ड ब्राह्मणके चित्तके चित्तकंको भगवान्के (अपने) चित्तस ज्ञानकर सोचा— यह सोमदण्ड ब्राह्मण अपने चित्तमें मारा जा रहा है। क्यों न मैं सोमदण्ड ब्राह्मणको (उसकी) अपनी त्रैविद्यक पंडितार्थमें ही प्रश्न पूछूँ। तब भगवान्के सोमदण्ड ब्राह्मणको कहा— 'ब्राह्मण! ब्राह्मण काग कितने भगों (=पुत्रों)म पुत्रको ब्राह्मण करते हैं वह 'मैं ब्राह्मण हूँ' कहते हुए सब करता है, कड बोलनेवाला नहीं होता?'

तब सोमदण्ड ब्राह्मणको हुआ— भगो! जो मरा इच्छित=मास्मीक्षित=अभिप्रेत=

प्रार्थित था—अहोबल ! यदि अमम गौतम मरी जपनी त्रैविद्यक पंडितार्थमें प्रश्न पूछा ।  
सी अमम गौतम मुझे अमनी त्रैविद्यक पंडितार्थमें ही पूछ रह है । मैं अमम प्रश्नोत्तरसे  
उमके विद्यको समुह करूँगा । तब सोजवृद्ध आश्रम शरीरको उमकर परिष्करी और  
विकीकनकर मगवान्मे बोध—

हे गौतम ! आश्रम लोग पाँच अंगोंसे पुच्छको, आश्रम पतताते हैं । कबसे पाँच ?  
(१) आश्रम दोनों ओरसे मुजात हो । (२) अम्यावक मंत्रावर त्रिवेदपारंगत । (३)  
अमिरुप म दृष्टानीय वर्णपुच्छकतासे पुच्छ हो । (४) श्रीकवान् । (५) पंडित मेवाही,  
बद्धदृष्टिया (=मुखा) प्रहम करवेवाक्यमें प्रथम वा द्वितीय हो । इन पाँच अंगोंसे पुच्छको ।  
“आश्रम इन पाँच अंगोंमेंसे एकको छोड़ चार अंगोंसे पुच्छको भी आश्रम कहा जा  
सकता है ?”

“कहा जा सकता है हे गौतम ! इन पाँचों अंगोंमेंसे हे गौतम ! वर्ण (३) को छोड़ते  
हैं । वर्ण (=रुप) क्या करेगा यदि मो ! आश्रम दोनों ओरसे मुजात हो । अम्यावक  
मंत्रावर हो । श्रीकवान् हो । पंडित मेवाही हो । इन चार अंगोंसे पुच्छको हे गौतम !  
आश्रम लोग आश्रम करते हैं ।”

“आश्रम ! इन चार अंगोंमेंसे एक अंगको छोड़ तीन अंगोंसे पुच्छको भी आश्रम कहा  
जा सकता है ?”

“कहा जा सकता है हे गौतम ! इन चारोंमेंसे हे गौतम ! मन्त्रों (=बहु)को छोड़  
हैं । मंत्र क्या करेगा यदि मो ! आश्रम दोनों ओरसे मुजात हो । श्रीकवान् हो । पंडित  
मेवाही हो । इन तीन अंगोंसे पुच्छको हे गौतम ! --आश्रम करते हैं ।”

“आश्रम ! इन तीन अंगोंमेंसे एक अंगको छोड़ दो अंगोंसे पुच्छको भी आश्रम कहा  
जा सकता है ?

“कहा जा सकता है हे गौतम ! इन तीनोंमेंसे हे गौतम ! आदि (१) को छोड़ता हूँ  
आदि (=अमम) क्या करेगा यदि मो ! आश्रम श्रीकवान् हो । पंडित मेवाही हो । इ  
दो अंगोंसे पुच्छको आश्रम करते हैं ।

पूसा कहनेपर उम आश्रमोंके सोजवृद्ध आश्रमको कहा—

‘आप सोजवृद्ध ! ऐसा मत कहें आप सोजवृद्ध ऐसा मत कहें । आप सोजवृद्ध वर्ण  
(= रंघ) का प्रत्याख्यान (=अपवाह) करते हैं मंत्र (= वेद) का प्रत्याख्यान करते हैं आदि  
(=अमम) का प्रत्याख्यान करते हैं, एक अक्षस आप सोजवृद्ध अमम गौतमकेही वापको ली  
कर कर रहे हैं ।”

तब मगवान्मे उम आश्रमोंको कहा—

‘यदि आश्रमों ! तुमको यह हो रहा है—सोजवृद्ध आश्रम अल्प-मुत्त है । अ मुत्त  
है दुपपञ्च है सोजवृद्ध आश्रम इस बातमें अमम गौतमके साथ वाद नहीं कर सकता  
तो सोजवृद्ध आश्रम चारे दुर्धी मेर साथ बात करो । यदि आश्रमों ! तुमको ऐसा होता है—  
सोजवृद्ध आश्रम बहुमुत्त है, अमुत्त है पंडित है सोजवृद्ध आश्रम इस बातमें अमम

गीतमके साथ बात कर सकता है, तो तुम उहरो सोमवर्ष ब्राह्मणको मेरे साथ बात करने दो।

ऐसा कहनेपर सोमवर्ष ब्राह्मणने भगवान्को कहा—

“आप गीतम उहरीं आप गीतम मीन धारण करीं मैं ही धर्मके साथ हवक्य बतार दूँगा।

तब सोमवर्ष ब्राह्मण उनको कहा—

“आप लोग ऐसा मत कहें आप लोग ऐसा मत कहें—आप सोमवर्ष वर्षक्य प्रत्या कथान करते हैं। मैं वर्ष या मन्त्र (= वेद) या जाति (= जन्म) का प्रत्याकथान नहीं करता।”

उस समय सोमवर्ष ब्राह्मणका भागिधेय बहक नामक मानवक उस परिपत्रमें बैठा था। तब सोमवर्ष ब्राह्मणने उन ब्राह्मणोंको कहा—

आप सब हमारे भागिधेय (= भाँजे) बहक्य मानवकको देखते हैं ?

“हां भो !”

“भो ! (१) बहक्य मानवक अभिरूप-दर्शनीय-प्रसंगिक परमवर्ष (= क्यरह)-पुण्यक्यासे पुण्य है। इस परिपत्र में समस्त गीतमको छोड़कर, वर्षमें इसके बराबरक्य (दूसरा) कोई नहीं है (२) बहक्य मानवक भन्वावक मंत्र-धर (= वेद-पाठी) विरह-क्य बहक्यमनेद सहित शीतो वेद और पांचवे इतिहासक्य पारंगत है पदक (= क्य) रीया करक छोड़कर-महापुरुष क्यण- (शाखों) में पूर्व है। मैं ही इसका मन्त्रों (= वेद) का पढ़ानेवाक्य हूँ। (३) बहक्य मानवक दोनों ओरसे सुझात है। मैं इसके माता पिताकी जाकता हूँ। (पदि) बहक्य मानवक प्राणोंको भी मारे, खोरी भी करे, परखीयामब भी करे सूबा (= छट) भी बोके मघ भी पीके। वहाँ पर अब धो ! वर्ष क्या करीया ? मंत्र और जाति क्या ( करीया ) ? अब कि ब्राह्मण ( १ ) शिकवान् (= सदा-पाठी) बहक्यसीकी (= बदे शिकवान् ) बहक्यसीकसे पुण्य होता है (२) पंडित और मेघाधी होता है सुझा (= पत्र-इतिहास)-प्रहक्य करनेवाक्यमें प्रथम या द्वितीय होता है। इन दोनों बहक्यसे पुण्यको ब्राह्मण लोग प्राह्मण करते हैं। (बह) मैं ब्राह्मण हूँ” कहते सच कहता है छट बोकनेवाक्य नहीं होता।

“ब्राह्मण इन दो बहक्यमेंसे एक बहक्यको छोड़ एक बहक्यसे पुण्यको भी ब्राह्मण कहा जा सकता है ?”

“नहीं दे गीतम ! शीकसे प्रहक्यकित है प्रजा (= ज्ञान) प्रहक्यसे प्रहक्यकित है शीक (= भाषार)। जहाँ शीक है वहाँ प्रजा है जहाँ प्रजा है वहाँ शीक है। शिकवान्को प्रजा (होती है) प्रजावान्को शीक। किन्तु शीक कोकर्म प्रजाओंक्य अगुमा (= मघ) कहा जाता है। जैसे दे गीतम ! हाथसे हाथ धोके पैरसे पैर धोके, पैम ही दे गीतम ! शीक-प्रहक्यकित प्रजा है।”

“यह ऐसा ही है ब्राह्मण ! शीक प्रहक्यकित प्रजा है प्रजाप्रहक्यकित शीक है। जहाँ शीक है वहाँ प्रजा, जहाँ प्रजा है वहाँ शीक। शीकवान्को प्रजा होती है प्रजावान्को शीक।

किन्तु लोकमें सीक प्रजाओंका सर्दार क्या जाता है। आह्वय ! सीक क्या है ? प्रजा क्या है ?  
 "हे गौतम ! हम विषय में हम इतना ही भर जाते हैं। अथवा हो परिणत  
 पीतम ही (इसे कहें)।"

"तो आह्वय ! मुझे अच्छी तरह मर्षमें करो कहता हूँ।"

"अथवा सो ? (कह) सोणद्वन्द्व आह्वयने भगवान्को उत्तर दिया। भगवानने कहा—

'आह्वय ! तयागत लोकमें उत्पन्न होते हैं।' इस प्रकार मिश्र सौख-संपन्न होता  
 है। वह भी आह्वय वह सीक है।

"प्रथमज्जाय । द्वितीयज्जाय । तृतीयज्जाय । चतुर्थज्जाय । ज्ञान-वर्षण  
 के द्विपे विस्तारके ज्ञाता है। सब कुछ पर्वो करनेको नहीं है यह जानता है। वह जी  
 वसकी प्रज्ञा है। आह्वय ! वह है प्रजा।"

ऐसा करने पर सोणद्वन्द्व आह्वयने भगवान्को यह कहा—

"अथर्व हे गौतम ॥ आथर्व हे गौतम ॥। जाससे आप गौतम मुझे ब्रह्म-  
 वह अरणागत उपासक धारण करें। मिश्र-संब संहित आप मेरा ककक भोजन स्वीकार करें।"

भगवान्ने भौक्स स्वीकार किया। तब सोणद्वन्द्व आह्वय भगवान्की स्वीकृति जब,  
 जासवसे उठ कर भगवान्को अभिवादन कर प्रवक्षिणा कर चका गया।।

तब सोणद्वन्द्व आह्वय भगवान्के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा कनेपर एक छोड़  
 धासन के एक बार बैठ गया। एक और बैठे हुये सोणद्वन्द्व आह्वयने भगवान्को कहा—

"बदि हे गौतम ! परिष्वमें बैठे हुये मैं जासगसे उठकर, आप गौतमको अभिवादन  
 करूँ तो मुझे वह परिष्व तिरस्कृत करेगी। वह परिष्व मिश्रका तिरस्कार करेगी बसक  
 पक्ष मी क्षीम होगा। त्रिस्तत्र पक्ष क्षीम होगा उसका भोग भी क्षीम होगा। बससे ही तो

हमारे भोग निकले हैं। मैं बदि हे गौतम ! परिष्वमें बैठे हाथ बोहूँ उसे आप गौतम मेरा  
 प्रत्युपन्यास समझे। मैं बदि हे गौतम ! परिष्वमें बैठे साध (अथर्व) इटाऊँ, उसे आप

गौतम मेरा शिरसे अभिवादन समझें। मैं बदि हे गौतम ! पानमें बैठे हुआ जाससे उठकर,  
 आप गौतमको अभिवादन करूँ उससे वह परिष्व मेरा तिरस्कार करेगी। मैं बदि हे

गौतम ! बापमें बैठे ही पतोह-कड़ी (अथर्वका उदा) ऊपर उटाऊँ। उसे आप गौतम मेरा  
 बाससे उठरना धारण करें। पदि मैं हे गौतम ! पानमें बैठे हाथ उटाऊँ उसे आप गौतम

मेरा शिरसे अभिवादन स्वीकार कर।"

तब भगवान् सोणद्वन्द्व आह्वयको धार्मिक-कथासे समुत्थित कर जासवसे उठकर  
 चक दिने।

महात्कि सुत्त ।

'ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् वैश्यालीमें महाबनको कूटागारहासामें  
 विहार करत थे।

उस समय बहुतसे कामरुद्ध आह्वय-वृत्त भगवान् आह्वय वृत्त वैश्यालीमें किमी  
 धामसे वास करते थे। उन कोसक-भगवान्के आह्वय वृत्तोंमें सुना—साकवकुल-भमभित शाक्य

पुत्र अमल-गौतम बंधाकीमें महाबन्धी कृत्यगारथाकामें विहार करते हैं। उन आप गौतमके किन्प ऐसा मंगल कीर्ति-सम्प सुनाई पड़ता है—<sup>१</sup>। इस प्रकारके धर्तोंका दर्शन अच्छा होता है।

तब वह कोसल-मागध-महाजनूत वहाँ महाबन्धी कृत्यगारथाका भी वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् नागित भगवान्के उपस्थाक (= इग्री) थे। तब वह मागधजनूत वहाँ आयुष्मान् नागित थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् नागित सं बोले।—

“हे नागित ! इस बन्ध आप गौतम कहीं बिहारेते हैं ? हम उन आप गौतमका दर्शन करवा चाहते हैं।

‘आयुष्मो ! मगधान्के दर्शनका यह समय नहीं है। मगधान् ध्यानमें हैं।

तब वह मागधजनूत वहाँ एक ओर बैठ गये—‘हम उन आप गौतमके दर्शन करके ही आवेंगे। ओहुइ (=अपे ओठबाक) किच्छवि भी वही मारी छिच्छवि-परिपत्के साथ वहाँ आयुष्मान् नागित थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् नागितका अभिवादनकर एक ओर जाया हो गया। एक ओर वही हुये ओहुइ किच्छविने आयुष्मान् नागितको कहा—

‘मन्ते नागित ! इस समय वह मगधान् धर्त-सम्पक-संडुइ वहाँ विहार कर रहे हैं। उन मगधान् धर्त-सम्पक-संडुइ हम दर्शन करना चाहते हैं।

‘महालि ! मगधान्के दर्शनका यह समय नहीं है। मगधान् ध्यानमें हैं।

ओहुइ छिच्छवि भी वही एक ओर बैठ गया।— उन मगधान् धर्त-सम्पक-संडुइका दर्शन करके ही आवेंगे’।

तब सिंह अमणोइ वहाँ आयुष्मान् नागित थे वहाँ जाया। जाकर आयुष्मान् नागितको अभिवादनकर, एक ओर जाया होगया। वह कहा—

‘मन्ते अइवप ! यह बहुतसे मागध-नूत मगधान्के दर्शनके किये वहाँ जाये हैं।

ओहुइ छिच्छवि भी मही छिच्छवि-परिपत्के साथ मगधान्के दर्शनके किये वहाँ जाया है। मन्ते अइवप ! अच्छा हो यदि यह जगता मगधान्का दर्शन पाये।

‘तो सिंह ! तुम जाकर मगधान्से कह।

आयुष्मान् नागितको ‘अच्छा मन्ते !’ कह, सिंह अमणोइ वहाँ मगधान् के वहाँ गया। जाकर मगधान्को अभिवादनकर एक ओर जाया ही मगधान्को कहा—

‘मन्ते ! वह बहुतसे अच्छा हो यदि वह परिपत् मगधान्का दर्शन पाये।

‘तो सिंह ! बिहारकी छावामें जासन बिहार।

अच्छा मन्त ! कह बिहारकी छावामें जासन बिहाया। तब मगधान् बिहारसे निकलकर बिहारकी छावामें बिके जासनपर बडे।

तब वह मागध नूत वहाँ मगधान् थे वहाँ गये। जाकर मगधान्के साथ संमोदन कर। ओहुइ छिच्छवि भी किच्छवि-परिपत्के साथ वहाँ मगधान् थे वहाँ गया। जाकर मगधान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बडे हुये ओहुइ किच्छविने मगधान्को कहा—

'पिछले दिनों (= पुरिमाधि दिवसाधि पुरिमतराधि) सुनकरलक्ष्मण किष्कंधिबुधुत वहाँ में वा वहाँ आया। जाकर मुझे बोला—महाकि! जिसके छिन्ने में भगवान् के पास अब-अधिक तीन वर्ष तक रहा—प्रिय कमवीय रंजनीय दिव्य शब्द सुनूँगा; किन्तु प्रिय कमवीय रंजनीय दिव्य शब्द मैंने नहीं सुना। भन्ते! क्या सुनकरलक्ष्मण किष्कंधि-पुत्रने विद्यमान ही दिव्यशब्द वहाँ सुने वा अधिद्यमान ?'

'महाकि! विद्यमान ही दिव्यशब्दोंके सुनकरलक्ष्मण ने नहीं सुना अ-विद्यमान वहाँ।

"भन्ते! क्या हेतु है क्या मत्पय है जिससे कि विद्यमान ही दिव्यशब्दोंके सुनकरलक्ष्मण ने नहीं सुना ?'

"महाकि! मिथुको पूर्व-विद्यामें दिव्य रूपोंके दर्शनार्थ एकांश-समाधि भावित होती है किन्तु दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ वही। वह पूर्व-विद्यामें दिव्य-रूपको श्रवणता है, किन्तु दिव्य-शब्दोंके वही सुनता। सो किस हेतु? महाकि! पूर्व-विद्यामें एकांश भावित समाधि होनेसे दिव्य-रूपोंके दर्शनके छिन्ने जाती है दिव्य शब्दोंके श्रवणके छिन्ने वही। और फिर महाकि! मिथुको दक्षिण-विद्यामें, पश्चिम-विद्यामें उत्तर-विद्यामें ऊपर भीचे तिरछे रूपोंके दर्शनार्थ एकांश भावित समाधि होती है।

"महाकि! मिथुको पूर्व-विद्यामें दिव्य शब्दोंके श्रवणार्थ। दक्षिण-विद्यामें पश्चिम-विद्या। उत्तर-विद्या।

"महाकि! मिथुको पूर्व-विद्यामें दिव्य-रूपोंके दर्शनार्थ, और दिव्य-शब्दोंके श्रवणार्थ उभयपक्षा (= वा तरकी) समाधि भावित होती है। वह उभयपक्षा समाधिके भावित होनेसे पूर्व-विद्यामें दिव्य-रूपोंको श्रवणता है दिव्य-शब्दोंको सुनता है। दक्षिण-विद्यामें। पश्चिम-विद्यामें उत्तर-विद्यामें। ऊपर। नीचे। तिरछे।"

"भन्ते! इस समाधि भावनाओंके साक्षात्कार (= अनुभव) के छिन्नेही भगवान् के पास मिथु ब्रह्मचर्य-पाठ्य करते हैं ?'

"वही महाकि! इन्हीं के छिन्ने (नहीं)। महाकि! दूसरे इनसे बचकर, तथा अधिक उत्तम धर्म हैं जिनके साक्षात्कारके छिन्ने मिथु मेरे पास ब्रह्मचर्य-पाठ्य करते हैं।"

भन्ते! औरतसे इनसे बचकर तथा अधिक उत्तम धर्म हैं जिनके छिन्ने ब्रह्मचर्य पाठ्य करते हैं ?'

'महाकि! मिथु तीन संभोजनों (= संभोजनों) के श्रवणसे व पठित होनेवाला नियत, संभोजि (= परमज्ञान) की और जानेवाला स्रोत भाषण होता है। महाकि! वह भी धर्म है। और फिर महाकि! तीनों संभोजनोंके श्रवण होनेपर शाय होय मोहके निर्वहण (= तपु) पश्चेपर सद्गुणागामी होता है = एक ही बार (= मङ्गल पत्र) इस काममें फिर वा (= जन्म) कर बुद्धका जन्त करता (= विद्याम प्राप्त होता) है। वह भी महाकि! धर्म है। और फिर महाकि! मिथु चौथो जन्म भागीय (= औरतभागीय = वही आद्यागमनमें रखनेवाले) संभोजनोंके श्रवण होनेसे औपपाठिक-वहाँ (= अर्वांगकोर्म) निर्वान पायेवाले = ( फिर वहाँ) व औरतकर भावैवाक्य होता है। वह भी महाकि! धर्म है। और फिर महाकि! आत्मनों (= अचित्तमर्म) के श्रवण होनेसे आत्मव-रहित चित्तकी मुक्तिको ज्ञान द्वारा

इसी जन्ममें स्वर्ग प्राप्तकर=साक्षात्कार=प्राप्त कर विहार करता है। •बह भी महाकि !  
धर्म है। बह है महाकि ! अधिक उत्तम धर्म जिनके साक्षात् करनेके लिये भिक्षु मेरे  
पास महाधर्म-पाठन करते हैं।

“क्या मन्ते ! इन्ध धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये मार्ग = प्रतिपद् है ?”

है महाभि ! मार्ग = प्रतिपद् ।

‘मन्ते ! कौन मार्ग है, कौन प्रतिपद् है ।’

“यही आर्षे ब्रह्मिणिक-मार्ग किं कि—( १ ) सम्मग-दृष्टि ( २ ) सम्मग-संकल्प,  
( ३ ) सम्मग-वचन ( ४ ) सम्मग-कर्मण्य ( ५ ) सम्मग आजीव ( ६ ) सम्मग-व्यावाम  
( ७ ) सम्मग-स्मृति ( ८ ) सम्मग-समाधि । महाकि ! बह मार्ग है बह प्रतिपद् है, इन्ध  
धर्मोंके साक्षात् करनेके लिये ।”

‘एक पार मैं महाकि ! कौशाम्भीमें घोषिताराममें विहार करता था । तब दो  
प्रश्नित ( =साधु )-मखिस्स परिग्रहक, तथा दादपात्रिकक्य चिन्ध आखिय—जहाँ  
मैं था, वहाँ आये। अन्ध मेरे साथ संमोदन कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े  
हुये जब दोनों प्रश्नितोंने मुझे कहा—‘आजुस ! गीतम ! क्या बही जीव है, बही शरीर है  
अथवा जीव दूसरा है शरीर दूसरा है ? ‘तो आजुसो ! मुझे अच्छी तरह मनमें करो  
कहता हूँ ।’ अन्ध आजुस ! यह उन दोनों प्रश्नितोंने मुझे कहा । तब मैंने कहा—  
आजुसो ! लोकेमें तयागत उत्पन्न होते हैं । इन्ध प्रकार आजुसो भिक्षु शील-मन्थक होता  
है । प्रथम-व्यापको प्राप्त हो विहरता है । आजुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता  
है उसको क्या यह कहनेकी बकरत है—‘बही जीव है बही शरीर है वा जीव दूसरा है,  
शरीर दूसरा है ?’ आजुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता है ऐसा देखता है क्या उसको यह  
कहनेकी बकरत है—‘बही जीव है ? मैं आजुसो ! इसे पेंस जानता हूँ ता मी मैं नहीं  
कहता—बही जीव है बही शरीर है वा । द्वितीय व्यापको प्राप्त हो विहरता है ।

‘तृतीय व्यापको प्राप्त हो विहरता है । ‘अनुर्ध-व्यापको प्राप्त हो विहरता है । आजुसो !  
जो भिक्षु ऐसा जानता=ऐसा देखता है । ज्ञान=पूर्वक लिये चित्तको धरता =सुकरता  
है । आजुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता = ऐसा देखता है । और अब यहाँ नहीं है —  
जानता है । आजुसो ! जो भिक्षु ऐसा जानता = ऐसा देखता है । क्या उसको यह कहनेकी  
बकरत है—‘बही जीव है बही शरीर है, वा जीव दूसरा है शरीर दूसरा [ है ?’ आजुसो !  
जो ऐसा देखता है उस यह कहनेकी बकरत नहीं है—• । मैं आजुसो ! ऐसा जानता हूँ  
तो मी मैं नहीं कहता— बही जीव है बही शरीर है अथवा जीव दूसरा है शरीर दूसरा ।”

मगवान्ने बह कहा—ओट्टन्द लिच्छवियिण सम्मुट्ट हो मगवान्के भाषणको  
अनुमोदित किया ।

तवित्र बच्छ-गोत-मुत्त ।

‘पुमा मँने सुभा—एक समय मगवान् वैशाखीमें महापत्तकी कूटागारशाखामें  
विहार करते थे ।



इस समय यच्छगोत्र (= वरसगोत्र) परिभाषक एकपुण्डरीक परिभाषक-राममें पास करता था। भगवान् पूर्वाङ्क-समय पहिलकर पात्रार्थीवर से बैसाराममें विद करके किये प्रविष्ट हुये। तब भगवान्को ठमरा हुआ—अर्था बैसाराममें विदधार करतक तिन बहुत सबेरा है। क्यों न मैं जहाँ एकपुण्डरीक परिभाषकाराम है जहाँ यच्छगोत्र परिभाषक है, वहाँ चलूँ। तब भगवान् वहाँ गये।

यच्छगोत्र परिभाषकने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। दृष्टकर भगवान्का बन्ध-  
 “आहूये भन्ते ! भगवान् ! स्वागत भन्ते ! भगवान् ! बहुत दिन होगाया भन्ते ! भगवान्को वहाँ आये। बढिये भन्ते ! भगवान् ! यह आसन विष्णु है।

भगवान् बिछे आसनपर बैठ गये। बत्सगोत्र परिभाषक भी एक नीच आसन ककर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बडे बत्सगोत्र परिभाषकने भगवान्को कहा—

“सुभा है भन्ते !—‘अमय गौतम सर्षश=सर्षदशी है, मित्रिक ज्ञान-दर्शक (=ज्ञानको अनुभव करने) का दावा करते हैं। कहते पक्ष सोते जागते (भी उनको) निरतर मरा शक-पूर्वक उपस्थित रहता है। क्या भन्त ! (पुसा कहबेबाके) भगवान्के प्रति यथार्थ कहबे-बाक है जार भगवान्को असत्य = आभूतस मित्रा (= अम्बाक्याम) तो वही करते ? कर्मके अक्षुण्ड ( तो ) कर्मन करते हैं ? कोई यह धार्मिक (= धर्मानुष्ठान) बाइका अ-प्रदान गर्त (= मित्रा ) तो वही होती।

‘बन्त ! जो कोई मुसे ऐसा कहते हैं—‘अमय गौतम सर्षश है। वह मेरे बारेय यथार्थ कहबेबाके नहीं है। अ-सत्य (= अमृत) से मरी मित्रा करते हैं।’

‘कसे कहते हुये भन्ते ! इस भगवान्के बभार्थबाही होते भगवान्को अमृत (=असत्य) स नहीं मिश्रित करतो ?’

‘दारस !—अमय गौतम त्रैविद्य (=तीन विद्याओंका ज्ञानवेवाका) है—ऐसा कहते हुये, मर बारेंमें यथार्थबाही होगा। (१) बत्स ! मैं जब चाहता हूँ अनेक किये पूर्व विवासां (=पूर्वजन्मों)के अरणकर सकता हूँ कसे कि—एक जाति (=जन्म)। इस प्रकार आकर (=बारीर आकृति आदि) नाम (=उठ स)क सहित अनेक पूर्वजन्मोंको कल्प करता हूँ। (२) बत्स ! मैं जब चाहता हूँ अ-मानुष विभुज दिव्य-बहुस मरते जलज होते, नीच-अ-ब सुवर्ण-सुवर्ण सुगत-सुगत कर्मानुसार (गतिको) प्राप्त सत्त्वोंको आकता हूँ। (३) बत्स ! मैं आकतों (=राय-द्वेष आदि)के क्षयमे आकत-रहित चित्तकी विमुक्ति (=मुक्ति) प्रका द्वारा विमुक्तिको इसी जन्ममें स्वर्ष साकादम्बर-व्यास कर विहरता हूँ।

ऐसा कहनेपर बरसगोत्र परिभाषकने भगवान्को कहा—

“हूँ गौतम ! क्या कोई गृहक है जो गृहकके संवीजनो (=संबंधों)को विना छोड़े कपाको छोड़ दुःखक अन्त करबेबाका (=निर्वाण प्राप्त करबेबाका) हो ?’

“नहीं बत्स ! ऐसा कोई गृहक्य नहीं।

‘हे गौतम ! है कोई गृहक जो गृहकके संबंधनोंको विना छोड़े कपा छोड़ने (=मरने) पर, स्वर्गको प्राप्त होबेबाक्य हो ?’

“बल्ल ! एक ही नहीं सा मी नहीं होमो भतीवमो चारसा, पॉचसा और मी बहुतसे गुरुत्व है (जो) गुरुत्वके संबोधनोंको बिना छोड़े मरनेपर स्वर्गगामी होते हैं ।”

“हे गौतम ! है कोई आशीर्षक, जो मरनेपर दुःखका जन्त करनेवाका हो ?”

‘नहीं बल्ल ! ।

“हे गौतम ! है कोई आशीर्षक जो मरनेपर स्वर्गगामी हो ?”

बल्ल ! नहींसे दुःखनके कण्ट तक में अरण करता हूँ किसीको भी स्वर्ग जानेवाका नहीं जानता सिवाप एकके; और वह भी कर्म-बादी-किवापाही था ।”

‘हे गौतम ! यहि ऐसा है ता यह तीर्थावतन (=‘पंच’) शुम्भ ही है नहीं तक कि अग-गामियोंसे मी ।

“बल्ल ! ऐसा होते वह ‘पंच’ शुम्भ ही है ।

भगवान् ने यह कहा ! चारसगोत्र परिभाषकने सन्तुष्ट हो, भगवान् के भाषणका अनु मोदक दिया ।

× × × ×

( • )

१५ वॉ बर्षावास । मरह-सुच । शाक्य-कोटिय-बिवाद् । महानाम-सुत् ।  
क्रीटागिरिमें । क्रीटीगिरि-सुच । ( ई पू. ५१४-१३ ) ।

‘पद्मद्वी बर्षा ( भगवान् ने ) कपिलवस्तुमें बिताई ।...

मरह सुच ।

‘ऐसा मीने सुना—एक समय भगवान् कौसलमें चारिकर करते जहाँ कपिलवस्तु था वहाँ पहुँचे ।

महानाम शाक्यने सुना—भगवान् कपिलवस्तुमें जाके हैं । तब महानाम शाक्य जहाँ भगवान् ने वहाँ गया । जाकर भगवान् को अभिवादनकर एक ओर कहा हो गया । एक ओर जाई हुने महानाम शाक्यको भगवान् ने कहा—

“आ महानाम ! कपिलवस्तुमें ऐसा स्थान देख जहाँ इन आज एक-रात बिहार करें ।

महानाम ने भगवान् को ‘मन्ते अचञ्ज कइ’ कपिलवस्तुमें प्रवेश कर सारे कपिलवस्तुको हींके हुने ऐसा स्थान जहाँ देखा जिसमें भगवान् एक रात बिहार करते । तब महानाम शाक्य, जहाँ भगवान् ने वहाँ गया, जाकर भगवान् ने बोका—

“मन्ते ! कपिलवस्तुमें ऐसा जाणसब (=अतिबिसाख) जहाँ है जहाँ भगवान् एक-रात बिहार करें । मन्ते ! यह मरह काकाम भगवान् का पुराणा स-अच्छकारी (=गुरुमाई) है, आज भगवान् एक रात उसके आश्रममें ही बिहार करें ।

‘महानाम ! आ आसन (=संसार) बिछ ।’

“अप्य भन्ते” कह महानाम, वहाँ भरहु काखामका आश्रम था वहाँ गया। जाकर आसन विद्य पर धोनेके लिये बस रहा कर वहाँ भगवान् से वहाँ जाया। जाकर भगवान् से बोला—

“भन्ते ! आसन विद्य गया। पर धोनेको बस रहा दिवा। (अब) भगवान् जो उचित समझे ( करें )।

तब भगवान् वहाँ भरहु काखामका आश्रम था, वहाँ गये। जाकर विद्ये आसनपदा बैठकर भगवान् से पर पकारा। तब महानाम शास्त्रको हुआ—जात्र भगवान् की परि-उपासनाका समय नहीं है भगवान् बड़े हुये हैं। कल में भगवान् की परि-उपासना (=सर्तसंघ) कहेगा। वह (सोच) भगवान् को अभिवादन कर प्रशंसित कर कहा गया।

तब महानाम शास्त्र उक्त रातके धीतयेपर वहाँ भगवान् से, वहाँ जाया। जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बस। एक ओर बैठे महानाम शास्त्रको भगवान् से कहा—

“महानाम ! जोकमें तीन प्रकारक शास्त्र (=गुरु) विद्यमान हैं। नीचसे तीन। (१) वहाँ एक शास्त्र महानाम। कामोंकी परिशा (अप्याय) का उपदेश करते हैं (केवल) हर्मोंकी परिशा वेदनाओंकी परिशाको नहीं प्रकाशित करते। (२) कामोंकी परिशा रूपोंकी परिशाको प्रकाशित करते हैं (किन्तु) वेदनाओंकी परिशाको नहीं। (३) कामोंकी परिशा को भी, रूपोंकी परिशाको भी वेदनाओंकी परिशाकोभी प्रकाशित (= उपदेश) करते हैं। महानाम ! जोकमें वह तीन प्रकारक शास्त्र हैं। इन्हीं तीनों शास्त्रोंकी महानाम ! क्या एक विद्या (= धारणा) है वा अलग अलग विद्या है ?”

ऐसा कहने पर भरहु काखामसे महानाम शास्त्रको कहा—

महानाम ! कह—‘एक है

ऐसा कहने पर भगवान् से महानाम शास्त्रको कहा—

“महानाम ! कह ‘नादा है

दूसरी बार भी भरहु काखामसे । । ।

तीसरी बार भी । । ।

तब भरहु काखामका हुआ—महेश्वर (=महासमर्थवान्) महानाम शास्त्रके सामने आसन पीठमको मीने तीव्रधार अ-मसक किया। (अब) मुझे अपिब्रह्मलुसे क्या धारणा चाहिये। तब भरहु काखाम अपिब्रह्मलुसे कहा गया। जो वह अपिब्रह्मलुसे ब्रह्मका ताँ बैसे क्या ही गया कि फिर कौलकर व गया।

### शास्त्र-कोटिय-विद्या ।

“शास्त्र और कोटिय अपिब्रह्मलु और कोटिय नगरके बीचकी रोडिणी नदीको दक्षी बँचसे बँचकर खेती करा करते थे। तब अठ महीनेमें खेतीको सूखती देव शीर्ष नगरोंके बाणी कमकर (= मजदूर) पकवित हुये। वहाँ कोटिय नगर वासियोंने कहा— ‘वह पानी शीर्ष और केलावेपर व तुम्हारा ही पुरा होगा व हमारा ही। हमारी खेती एक पानीसे ही पुरी होजायेगी वह पानी हमें देने दो’। दूसरोंने भी कहा—‘तुम्हें कौटिर्वा भरकर

कड़े देख, रक्त सुवर्ण नीलमणि काँडे-क्यापाप (= लक्षिके जैसे) लेकर पच्छि (= टोकरा) पसिप्यक (= बोरा) आदि लेकर तुम्हारे द्वारोंपर हम नहीं बूमेंगे। हमारी भी खेती पकड़ी पानीसे होखायेगी यह पानी हमको लेने दो।' 'हम नहीं देंगे। 'हम भी नहीं देंगे। ऐसे बात बहाकर, एकमे बहकर एकपर शपथ छोड़ दिया। उसने भी बूसरेपर। इस प्रकार एक बूसरेको मारकर राज-कुर्सी (शास्य-कोष्ठिक बंशों) की आतिथको बीचमें डाक कटकरको बना दिया। कोष्ठिक कर्मकर करते थे—

कपिष्ठवस्तु-वासिबोंको इटाओ ! जिन्होंने कुपे स्वारकी मूर्ति अपनी बहिनोंके साथ संवास किया उनके हाथी बोड़े डाक इबिपार हमारा क्या कर सकते हैं ?

शास्य-कर्मकर बोधते—

"तुम कोष्ठिकोंके कर्षकोंको इटाओ जोकि अनाथ निःशरण विधिवोंकी मूर्ति कोस (= वीर) के बूसपर वास करते रहे। इनके हाथी बोड़े डाक-इबिपार हमारा क्या कर सकते हैं ?"

उन्होंने आकर इस काममें विरुक्त अमात्स्योंको कहा। अमात्स्योंने राज कुर्सीको कहा।

तब शास्य (वीर) कोष्ठिक युद्धके किन्ने तैय्यार होकर निकले। शान्ता भी सवेरेके बच छोड़को देखते आतिथकोंको देखकर, "अच्छेही आकाससे आकर रोहिणी नदीके बीचमें आकाशमें आसन मारकर बैठे। आतिथकों (= ज्ञातकों) ने साक्षाको देख ज्ञानुब रक्तकर बन्धना की।

तब शान्ता (= युद्ध) ने कहा।

"किस बातकी कम्ब है महाराजो ?" "मन्ते ? हम नहीं जानते।"

"तब कौन जानता है ?" "सेवापति जानता है।"

सेवापति ने— "उपराज जानता है।

इस प्रकार (एकमे बाद एकको पूछते) दासों कर्मकरोंने पूछने पर कहा— "मन्ते ! पानीका झगवा है।"

"महाराजो ! उदकका क्या मोक है ?" "मन्ते ! कुछ नहीं।

"अग्निबोंका क्या मोक है ?" "मन्ते ! अबमोक।"

"तुम लोगोंको मुक्तके पानीके किन्ने जनमोक अग्निबोंका डाक ब करना चाहिये।

बह चुप हो गये। तब साक्षाने " बह गाभासे करी—

"हम बरिबोंमें धरैरी हो बहुत सुखसे जीते हैं।

बैरी मनुष्योंमें हम जैरी हो बिहरते हैं ॥

महानाम-सुप्त ।

धैमा मीने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (ज्येश) में कपिष्ठवस्तुके म्यप्रो धाराम में बिहार करते थे।

उस समय महानाम शाक्य बीमारीसे अभी अभी उठा था। उस समय बहुतसे

मिथु भगवान्का चीवर बना रहे थे—'चीवर बन जाने पर तीन मास बाद भगवान् चारिकले छिने जायेंगे' । । तब महानाम शास्त्र वहाँ भगवान् के वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक और बँड महानाम शास्त्रने भगवान्को कहा—

"भस्ते ! तुम है— बहुतसे मिथु चीवर बना रहे हैं भगवान् चारिक (सामर) को जायेंगे । सो भस्ते ! नामा विहारों (=प्याव आदि)से विहारे हम कोयोंको किस विहारे विहारा चाहिये ?

"साधु, साधु महानाम ! तुम्हारे जैसे कुछपुत्रोंको यह बोलवही है जो तुम तबगत के पास आकर प्यसे हो— हमकोगोंको किस विहार । महानाम ! आरापक (=सापक =मुमुक्षु) भवगत होने अन्नगत नहीं उद्योगी (=भारद्विरिष) होने अन्-उद्योगी नहीं । (सर्वज्ञ) उपस्थित-स्थितिवाक्य होने नष्ट-स्थितिवाक्य नहीं । समाहित (=प्राप्त-चित्त) होने अ-समाहित नहीं । प्रज्ञावान् होने, बुद्धिमान् नहीं । महावाम ! तुम इन पाँच बर्षों में स्थित होकर छ उचर बर्षों की भावना करो ।

धीर फिर महानाम ! तुम अपने स्वार्थ (=स्वार्थको) परण करो—तुमने काम है तुमने बड़ा काम हुआ, जो मैं मन्-मन्तर-किस जगतामें मन्-मन्तर-विरहित चित्त ही मुक्त बानी ब्रह्म-भाषि (=जुके हाथ) दाम विमान-नष्ट हो, पृथ्वीमें बास कर रहा हूँ । जिस मन्त्र महानाम !

'महानाम ! तुम तबगतका कारण करो—'जैसे यह भगवान् आईन् मन्त्रक संतुष्ट, विद्याचरण-सम्पन्न सुगत लोकविद, अनुपम पुण्य-दम्भ सारथी देव-मनुष्योंके साम्य हैं । जिस समय महानाम ! आर्ष आचक तबगतको अनुकरण करता है उस समय उसका चित्त व राय-स्थित होता है व ह्ये स्थित (=हृत्-वीर उचित) व मोह स्थित । उस समय उसका चित्त अ-सुदृढ (=अनुगत-सीमा) होता है । तबगतके प्रति अ सुदृढ-चित्त हो आर्ष-आचक अर्षदेव (=परमार्थ-ज्ञान) का प्राप्त होता है धर्म-वेद (=धर्म ज्ञान) को प्राप्त होता है धर्म-संयुक्त प्रमोद (=चित्तक आनन्द) को प्राप्त होता है । प्रसुरित पुण्यको प्रति उल्लस होती है शीतिलान्का शरीर स्थिर होता है । स्थिर-काय मुख अनुभव करता है । सुखिकका चित्त समाहित (=व्यग्र) होता है । महानाम ! तुम इन पुत्र-अपुत्रयुक्तको ब्रह्म-कर यह भावना करो । ईदो भी जावना करो, सेदो भी । कर्मान्त (=प्रेती) की देव-देव (=अधिदान) करते भी । पुत्रोंमें विरी शक्यकर भी ।

"धीर फिर महानाम ! तुम धर्मका अनुकरण करो—'भगवान्का धर्म आचकात है तन्वाम अन्वयाचक है मन्वामन्तरमें नहीं वही दिव्याई देवनामा विज्ञानोंसे अपने आचकीमें जानने योग्य है । जिस समय महानाम ! धर्मको अनुकरण करता है ।

आर फिर महानाम ! तुम सर्वका अनुकरण करो—'भगवान्का आचक-सर्व सुवर्णवत् है । भगवान्का अन्न अन्न मन्त्रक (=अर्षिे मागपर आनन्द) है, ईदोके प्रतिवत् है, वही भगवान्का आचक-सर्व है आदि बार पुत्र-पुत्रान् आर पुत्र-प्यति । यह अन्वु अन्वु-प्राप्तुवेव (=विज्ञानिकरन योग्य) (विद्या) दाम जैसे वाक्य (=अधिमेव) अज्ञानि आर्ष योग्य और आदके पुत्र (=धर्म)का क्षेत्र है ।

"धीर फिर महानाम ! तुम अ-वर्ष-अभ विद्व अ शक्य-व्यक्तव्य रहित (=विज्ञान)

उक्ति ( = सुखित्त ) विज्ञानसे प्रदर्शित ज-विदित अपने शीखों ( = सदाचारों ) को अनुसरण करो । जिस समय शीखक अनुसरण करता है ।

‘और फिर महात्मा ! इस देवताओंक अनुसरण करो—(१) चातुर्माहात्मिक देवता है (२) अश्विनी देवता है (३) काम , (४) दुहित (५) निर्मातरति , (६) परनिर्मित वसवर्ती , (७) महाकापिक (८) उनसे उपरके देवता हैं । जिस प्रकारकी प्रज्ञासे पुत्र हो वह देवता यहाँसे भरकर वहाँ उत्पन्न हुये, मेरे पास भी बैसी प्रज्ञा है । शीख । सुत । मेरे पास भी बैसा त्याग ( = दाव ) है । मेरे पास भी बैसी प्रज्ञा ( = ज्ञान ) है । जिस समय महात्मा ! आर्य-आचक अपने और इन देवताओंकी प्रज्ञा शीख सुत त्याग और प्रज्ञाको सरण करता है । = सुखित्तक विष समहित ( = एकत्र ) होता है । इसे करते हैं महात्मा ! : ‘आर्य आचक वि-वम ( = उच्छृं ) प्रज्ञामें समता ( = सीमापन ) को प्राप्त हो बिहर रहा है । त्रोट-सुख प्रज्ञामें ज-त्रोट-सुख बिहर रहा है । धर्म-कोल ( = धर्म-प्रवाह ) में प्रवृत्त हो देवता-अनुस्यूतिकी भावना कर रहा है । महात्मा ! इस देवताअनुस्यूतिको प्रम कष्टे भी भावना करो जड़े भी छेदे भी, कर्मान्तकका अपिहान करते भी पुत्रोंसे विरी क्षमापर भी ।

+ + + + +

कीटागिरिमें ।

‘तब महात्मा आचकीमें इच्छानुसार विहार कर, सारिपुत्र, मोमम्मान और पाँच सौ मिष्ठुनोंके महासङ्घके साथ वहाँ कीटागिरि है वहाँ चरित्रके किये कहे । अश्वजित् और पुनवसु मिष्ठुनोंने सुना—महात्मा पाँच सौ मिष्ठुनोंके महामिष्ठु-संघ तथा सारिपुत्र मीरुन्वाचकके साथ कीटागिरि जा रहे हैं ।

तो आबुसो ! ( जाबो ) हम सब संघके शक-आसनको बँटें हैं । सारिपुत्र मीरुन्वाचक पाप ( = दुःखी )-इच्छाओंसे मुक्त हैं । हम उन्हें शक-आसन न देंगे । वह सोच उम्होंने सभी साधिक शक-आसनोंको बँट किया ।

तब महात्मा क्रमसा चरित्र करते वहाँ कीटागिरि है, वहाँ पहुँचे । तब महात्माने बहुते मिष्ठुनोंको कहा—

‘आबो मिष्ठुओ ! अश्वजित् पुनवसु मिष्ठुनोंके पास जाकर ऐसा कहो—‘आबुसो ! महात्मा जा रहे हैं । आबुसो ! महात्माके किये शक-आसन डीक कर संघके किये भी और सारिपुत्र मीरुन्वाचकके किये भी ।’

‘अच्छा मन्ने ! कर उब मिष्ठुनोंने आकर अश्वजित् पुनवसु मिष्ठुनोंको यह कहा—“ ” । ( उम्होंने कर )—

‘आबुसो ! ( वहाँ ) साधिक शक-आसन वहाँ है, हमने सभी बँट किया । स्वागत है आबुसो ! महात्माक । जिस विहारमें महात्मा वहाँ उस विहारमें पास करें । ( किट ) पापेच्छ है सारिपुत्र मीरुन्वाचक हम उन्हें शक-आसन नहीं देंगे ।

१ बिबव पुस्तकमा ६ । २ बहारससे जबोप्या ( = साकेत )के राक्षेपर वर्तमान केराकय ( कीनपुर ) । ३ सारे संघकी सम्पत्ति एक व्यक्तिकी नहीं ।

“क्या आनुसो ! तुमने मंत्रिक व्यवसाय ( = अन्तर सामान ) बॉट किया ?”

“हाँ आनुस !”

तब उस मिथुजोने जाकर वह बात भगवान्‌को कही ; भगवान्‌के विचार का मिथुजोसे कहा —

“मिथुजो ! वह पाँच अ-विमान है संघ-गल वा पुत्रक ( = व्यक्ति ) द्वारा व बॉटने योग्य है । बॉटनेपर भी यह अविमानक ( = बिना बॉट ) ही रहते हैं; जो बॉटता है उसे लूट-व्यवस्थाका अपराध जगता है । अन्तम पाँच ? (१) आराम वा आराम-वस्तु ( = अराम-घर ) । (२) विहार वा विहार-वस्तु । (३) मंच पीठ, परा लकिया... । (४) लोह-कुम्भ, लोह-मालक लोह-बारक लोह-कराह बापी ( = बँटव्य ) आराम कुम्भापी कुम्भक मिहारक ( = अन्तम लोहार ) । (५) वस्ती याँस मूँक वस्त्रक लूट, मिही कम्पनीक वर्तव मिहीक वर्तव ।”

### ‘कीटागिरि-सुत्त ।

ऐसा मीने सुना—एक समय बड़े भारी मिथु संभके साथ भगवान् काशी-वैश्वं चारिक्य करते थे । वहाँ भगवान्‌के मिथुजोको आमंत्रित किया—

‘मिथुजो ! मैं रात्रि-भोजनसे बिरतहो भोजन करता हूँ । रात्रि भोजन छोड़कर भोजन करनेसे आरोग्य उत्पन्न, एक सुख-पूर्वक विहार अनुभव करता हूँ । आओ मिथुजो ! तुम भी रात्रि-भोजन बिरत हो भोजन करो रात्रिभोजन छोड़कर भोजन करनेसे तुम भी अनुभव करोगे ।

‘अच्छ मन्ते !’ उस मिथुजोने भगवान्‌को कहा ।

तब भगवान् काशी ( वैश्वं ) में क्रमशः चारिक्य करते वहाँ काशिवोंक विमान ( = करवा ) कीटागिरि का वहाँ पहुँचे । वहाँ काशिवोंके निगम कीटागिरिमें भगवान् विहार करते थे ।

उस समय अश्वजित्, और पुनवसु नामक ( शो ) आवासिक मिथु कीटागिरिमें रहते थे । तब बहुतसे मिथु वहाँ अश्वजित् पुनवसु के वहाँ गये । जाकर बोले—

‘आनुसो ! भगवान् रात्रि भोजन बिरतहो भोजन करते हैं और मिथु-सब भी । रात्रि-भोजन-बिरतहो भोजन करनेसे आरोग्य । आओ तुमभी आनुसो ! रात्रि-भोजन-बिरत हो भोजन करो ।

ऐसा कहनेपर अश्व-जित्-पुनवसुजोने उस मिथुजोको कहा—

‘हम आनुसो ! सामको भी जाते हैं प्रातः दिव ( = मन्वाह ) और विकारको ( = दोषहरणात् ) भी । सो हम सार्प प्रातः मन्वाह विकारको भोजन करते भी आरोग्य हो बिरहते हैं । सो हम वनों पत्तक ( = सारिकिक ) को छोड़कर, काकाभारके ( = अश्वजित् ) किने दीके । हम सार्पभी जावेंगे प्रातामी दिवमेंमी विकारमेंमी ।

जब वह मिथु अश्वजित् पुनवसु को व समझा सके तो वहाँ भगवान् के वहाँ

गये । जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठकर उन मिष्ठुओंने भगवान् से कहा—

“मन्ते ! हमने अशक्ति पुनर्वसु के पास ‘आ’ यह कहा—‘भगवान् रात्रि सोजल-विरत । ऐसा कहने पर मन्ते ! अशक्ति, पुनर्वसु मिष्ठुओंने कहा—‘हम आबुसो ! शामको भी जाते हैं । अब हम मन्ते ! अशक्ति पुनर्वसु मिष्ठुओंको न समझ सके तब हम यह बात भगवान्‌को कह रहे हैं ।

तब भगवान्‌ने एक मिष्ठुको आमंत्रित किया—

“आ मिष्ठु ! तू मेरी बातसे अशक्ति पुनर्वसु मिष्ठुओंको कह—‘शाखा आबुप्पाओं को बुझाते हैं ।

“अप्य मन्ते ! कह उस मिष्ठुने अशक्ति पुनर्वसु मिष्ठुओंके पास जाकर कहा—

‘शाखा आबुप्पाओंको बुझाते हैं’ ।

“अप्य आबुस ! कह अशक्ति पुनर्वसु मिष्ठु जहाँ भगवान् से, वहाँ गये । जाकर भगवान्‌की अभिवादन कर एक ओर बैठ गए । एक ओर बैठ अशक्ति पुनर्वसु मिष्ठुओंको भगवान्‌ने कहा—

“सब-सुख मिष्ठुओ ! बहुतसे मिष्ठु तुम्हारे पास जाकर बोके (ये )—‘आबुसो ! मयाख रात्रि-सोजल-विरत हैं ? ऐसा कहने पर मिष्ठुओ ! तुमने—’ कहा ?

‘हाँ मन्ते !’

“क्या मिष्ठुओ ! तुम मुझे ऐसा धर्म उपदेश करते जानते हो—जो कुछ यह सुख पुत्रक (अनुभव) सुख हुआ वा अनुभव-अनुभव अनुभव करता है (उससे) उसको अनुभव (अनुभवे) धर्म वह हो जाते हैं और कुशाक धर्म बपते हैं ?’

‘नहीं मन्ते !

“क्या मिष्ठुओ ! तुम मुझे ऐसा धर्म उपदेश करते जानते हो—एकको इस प्रकार सुख वेदना (अनुभव) अनुभव करते अनुभव-धर्म बपते हैं कुशाक-धर्म नष्ट होते हैं । किन्तु एक को इस प्रकारकी सुख-वेदनाको अनुभव करते अ कुशाक-धर्म नष्ट होते हैं कुशाक-धर्म बपते हैं । सुख वेदनाको अनुभव करते अ-कुशाक धर्म बपते हैं कुशाक-धर्म नष्ट होते हैं । अनुभव-धर्म नष्ट होते हैं । एकको इस प्रकारकी अनुभव-अनुभववेदनाको अनुभव करते ? ?

‘हाँ मन्ते !

‘मायु, मिष्ठुओ ! यदि मैं अ-ज्ञान भरत अ विदित <sup>अज्ञान-ज्ञान-अज्ञान</sup> <sup>अज्ञान-ज्ञान-अज्ञान</sup> <sup>अज्ञान-ज्ञान-अज्ञान</sup> (कहता )—यहाँ किसीको इस प्रकारकी सुख-वेदनाको अनुभव करते अनुभव-धर्म बपते हैं और कुशाक-धर्म नष्ट होते हैं । ऐसा न जानते यदि मैं ‘इस प्रकारकी सुख-वेदनाको छोड़ो’ बोलता । तो क्या मिष्ठुओ ! यह मरे किंव उचित होता ?’

‘हाँ मन्ते !’

“क्योंकि मिष्ठुओ ! मैं इसको देना जाना साक्षात्-किया स्पर्श किया-आनन्द (कहता हूँ) इस सिने मैं कहता हूँ—‘इस प्रकारकी सुख-वेदनाको छोड़ो’ । और यदि मुझे



वह अज्ञात जगह होता ऐसा ब बाने परि में करता—इस प्रकारकी सुख-वेदनाको प्राप्त कर विहार करो तो क्या मिथुनो ! वह मेरे किने उचित होता ?”

“वही मन्ते !”

“क्योंकि मिथुनो ! यह मुसे ज्ञात रह विहित साक्षात्कृत प्रज्ञासे स्पर्शित ( है )- यहाँ एकके अकृपक-धर्म मह होते हैं कृपाक-धर्म करते हैं । इस किने मैं करता हूँ ‘इस प्रकारकी सुख-वेदनाको प्राप्त कर विहार करो’ ।

“मिथुनो ! मैं सभी मिथुनोंको नहीं कहता कि—‘प्रमादरहित हो करो’ । और व मैं सभी मिथुनोंको ‘अप्रमाद रहित हो न करो’ करता हूँ । मिथुनो ! जो मिथुन अर्हद-अक्षीण-आत्म ( अक्षय्य ) प्राप्त कर चुके कृत-कृत्य मार-मुक्त, सत्त्व अर्बको प्राप्त मय-संबोधन ( अर्बधन )- रहित, अच्छी तरह जानकर मुक्त ( = मयक-अज्ञा-विमुक्त ) हैं । मिथुनो ! वैसेको मैं ‘प्रमाद रहित हो करो’ नहीं कहता । सो किस हेतु ? उन्होंने प्रमाद-रहित हो ( करनीव ) कर किना वह प्रमाद ( = आकल्प सू ) कर नहीं सकते । मिथुनो ! जो सैख-अन-मास-वित्त हैं अनुपम बोध-क्षेम ( = विचार ) के इच्छुक हो विहरते हैं । मिथुनो ! वैसे ही मिथुनोंको मैं ‘प्रमाद-रहित हो करो’ करता हूँ । सो किस हेतु ? ज्ञाप्य यह आनुष्मान् अनुकूल सत्त्व आत्मकको सेवन करते कल्याण-मिथु ( = मुमिथु ) को सेवन करते इष्टिओंको संभव करते। जिसके किने कृक-पुत्र अच्छी तरह वरसे वैभव हो प्रकथित होते हैं उस अनुत्तर ( = अर्बोधन ) अक्षय्य-कृककी इसी अन्तर्में स्वयं जानकर, साक्षात्कर प्राप्त कर विहरें । मिथुनो ! उन मिथुनोंको अप्रमादक यह एक देखते हुए मैं ‘प्रमाद-रहित हो’ करो करता हूँ ।

“मिथुनो ! सात पुत्रक ( = पुत्रक ) कोकर्म- विद्यमान हैं । कौनसे सात ? ( १ ) अयव-तो-माग-विमुक्त ( २ ) मज्ञाविमुक्त, ( ३ ) कय-साक्षी ( ४ ) टटि मात ( ५ ) अद्व-विमुक्त, ( ६ ) धर्म-अनुसारी ( ७ ) अज्ञा-अनुसारी ।

“मिथुनो ! कौन पुत्रक ( = पुत्रक ) अयवतो-माग-विमुक्त हैं ? मिथुनो ! जो प्राणी कि विमोक्षको अतिक्रमण कर रूप ( = वात ) में आकल्प ( वात ) को प्राप्त हैं उन्हें कोई पुत्रक कथासे स्पर्शकर विहार करता है । ( उन्हें ) प्रज्ञासे देखकर उसके आत्म ( = विद्यमान ) मह होजते हैं । मिथुनो ! वह पुत्रक अयवतो-माग-विमुक्त कहा जाता है । मिथुनो ! इस मिथुनको अप्रमादसे करो’ मैं नहीं कहता । किस हेतु ? क्योंकि वह प्रमाद-रहित हो ( करनीव ) कर चुका । वह प्रमाद नहीं कर सकता !

“मिथुनो ! कौन पुत्रक मज्ञा-विमुक्त हैं ? मिथुनो ! जो प्राणी कि विमोक्षको वारकर रूप ( वात ) में आकल्पको प्राप्त हैं उन्हें कोई पुत्रक कथासे कृक नहीं विहरते, ( किंतु ) प्रज्ञासे देखकर उनके आत्म पास होजते हैं । वह पुत्रक मज्ञा-विमुक्त कहे जाते हैं । ऐसे मिथुनको भी ‘अप्रमादसे करो’ मैं नहीं कहता ।

“मिथुनो ! कौन पुत्रक कय-साक्षी हैं ? मिथुनो ! जो एक पुत्रक उन्हें कथासे कृक नहीं विहरता प्रज्ञासे देखकर उसके कोई कोई आत्म मह हो जाते हैं । वह = कय-साक्षी है । इस मिथुनको मिथुनो ! अप्रमादसे करो’ मैं करता हूँ । सो किस हेतु ? स्वयं वह आनुष्मान् प्राप्त कर विहार करें ।

“मिथुनो ! कौन पुत्रक टटि-मात है ? मिथुनो ! कथासे कृक नहीं विहरता

कोई कोई आकाश गन्ध हो गये हैं प्रज्ञाशाला तन्मागतके बतलाने धर्म उसके ज्ञान हाते है। यह दृष्टि-वास है। । ।

“मिथुभो ! काल पुद्गल अज्ञानिमुक्त है ? प्रज्ञाने कोई कोई आकाश उसक गन्ध हो गये हैं, तन्मागतमें उसकी अज्ञा प्रतिष्ठित=अज्ञ-पञ्चमी=विधि होती है। यह अज्ञानिमुक्त । । ।

“मिथुभो ! काल पुद्गल परमानुसारी है ? प्रज्ञाशाला तन्मागतके बतलाने धर्म उसके लिये मात्रघः ( =कुठ मात्रामें ) निष्पन्न ( =निदिध्यासन )के योग्य हो गये हैं। आर उसको वह धर्म प्राप्त है जैसे कि—अज्ञा-इन्द्रिय धर्म इन्द्रिय स्मृति-इन्द्रिय समाधि इन्द्रिय प्रज्ञा इन्द्रिय। यह परमानुसारी है। । ।

मिथुभो ! काल पुद्गल अज्ञानुसारी है ? तन्मागतमें उसकी अज्ञान-मात्र=रेस मात्र होता है। आर उसको वह धर्म ( प्राप्त ) होत है जैसे कि—अज्ञा-इन्द्रिय प्रज्ञा इन्द्रिय। यह अज्ञानुसारी । । ।

“मिथुभो ! मैं आदिसही आशा ( = धर्म )की आराधना नहीं कहता बल्कि मिथुभो ! क्रमसः सिद्धासे क्रमसः क्रियास क्रमसः प्रतिपत्स आशाकी आराधना हाती है। मिथुभो ! क्रमसः प्रतिपत्सने कस आशाकी आराधना हाती है ? मिथुभो ! अज्ञानान् हा ( बेने ज्ञानीके ) समीप जाता है समीप जानेसे परि-उपासना करता है। परि-उपासना करनेसे क्रम उगाठा है। क्रम उगातेसे धर्म सुबता है। धर्म सुबकर धारण करता है। धारण किये धर्मों की परीक्षा करता है। धर्मोंकी उप-परीक्षा करने पर धर्म निष्पापन ( = निदिध्यासन )के योग्य होते हैं। धर्मके निष्पापक योग्य होनेपर, कर्म ( = कर्म ) उत्पन्न होता है। कर्म होनेपर उत्साह करता है। उत्साह करनेपर उत्थान करता है ( = तुष्टेति )। उत्थान कर प्रभाव ( = प्रभाव ) करता है। प्रयानात्म ( = समहित-चित्त ) हो ( इस ) कालसेही परम-सत्त्वका साक्षात्कार करता है। प्रज्ञास उसे बतता है। मिथुभो ! वह अज्ञान मी यदि न हुई। वह प्राप्त जाना भी ( = उप-संक्रमण ) न हुआ । । वह प्रभाव भी न हुआ । ( तो ) विप्रतिपन्न ( = अमार्गाकृष्ट ) हो मिथुभो ! निष्पा-मतिपन्न मिथुभो ! वह मोक्ष पुद्गर ( = आकाशक ) इस धर्म-विषयस बहूत दूर चके गये हैं।

“मिथुभो ! अनुभव व्याकरण होता है जिसके धर्मको करने पर विशुद्ध रूप अन्वही ( इसे ) प्रज्ञासे जानता है। मिथुभो ! गुण इस समस्तत हा ?

“मन्ते ! कहीं हम आर कहीं धर्मका जानना ?”

मिथुभो ! जो वह साम्रा ( = युद्ध ) आसिप गुह ( = जन भोगमें बन्ध ) आसिप-दावाह ( योगोंका कर्मकाका ) आसिपसे लित हा विहरता है वह भी इस प्रकारकी कार्त्त ( = पत्र ) नहीं उगाता—यदि हमें देया हो ता इस करेंगे यदि हमें देया न हो तो नहीं करेंगे। फिर मिथुभो तन्मागतका ता क्या ( कहना है ) ( जा कि सर्वथा आसिप ( = जन भोग से ब-किस हो विहार करते हैं। मिथुभो ! अज्ञानु आरको साम्राके आसन ( = धर्म )में परिचाग ( = योग )के लिय बतलाने करते हुये यह धनु धर्म हाता है—मगवान् साम्रा ( = युद्ध ) है मैं आरक ( = विधि ) हूँ “मगवान् जानत है मैं नहीं जानता । मिथुभो ! अज्ञानु आरक क किये साम्राके आसनमें परिचागके किय बतले समय साम्रा का साधन आज-

बाहू होता है। अज्ञान भावकको यह दृष्टता होती है।—बाहे चमका तस और दृष्टी ही बच रही शरीरका एक-मांस सूत (बसों ब) जाये (किंतु) पुढके क्याम=पुढप-वीर्य=पुढप-पराक्रम से जो (कुछ) प्राण्य है उसे बिना पाये (मेरा) उपयोग न करेया। मिथुको ! अज्ञान भावक को साक्षात् सासधर्म परिपोगके किये बर्तते समय दो रक्तोंमेंसे एक कसकी उमेद (अचरम) रखनी चाहिये—इसी धम्ममें (परम ज्ञान) जाहूंगा या उपाधि (=मळ) रखने पर अनागामिपण (पाहूंगा)।”

मगवान्ने यह कहा। संतुष्ट हो उन मिथुओंके भगवान्के माफ्यम अनुमोहन किया

× × × ×

( ८ )

हरयक-सुच । सन्दक-सुच । महासकुलुदायि-सुच । सिगालोवाद-सुच ।

( इ पू ५१३ १२ )

‘तब भगवान् कीटागिरिमें हृष्यनुसार विहार कर वहाँ ‘आलसी भी वहाँ पारिका के किये गये । क्रमशः पारिका करते वहाँ आलसी भी वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् आलसीमें अभास्य (= अभास्य ) शैत्यमें विहार करते थे ।

+ + + +

‘( भगवान्ने ) सोचवही वहाँ आलस्यकको सम्यक आलसीमें ( पितार्ह ) ।

हरयक-सुच<sup>१</sup>

देखा मैंने सुना—एक समय भगवान् आलसीमें अभास्य-शैत्यमें विहार करते थे ।

तब हरयक आलस्यक पौष्ठी उपासकोंके साथ वहाँ भगवान् के वहाँ गया, आकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए हरयक आलस्यकको भगवान्ने कहा—

‘हरयक (= हस्तक ) ! यह तेरी परिपत् वही भारी है ! कैसे हरयक ! तू इस महती परिपत्को मिला रखता (= संग्रह करता ) है ?’

“भग्ने ! आपने जो चार संग्रह-बस्तुओंका उपदेश किया है उसीसे मैं इस महती परिपत्को प्राप्त करता हूँ । ( १ ) भग्ने ! मैं जिसको जानता हूँ, यह शान (= दान)से संग्रह योग्य है उसे शानसे संग्रह करता हूँ ( २ ) जिसको जानता हूँ वह ‘वेदवाचक’ (= प्यातिर) से संग्रह-योग्य है उसे वेदवाचकसे संग्रह करता हूँ । ( ३ ) जिसको जानता हूँ, वह अर्थ-वर्षा (= प्रकोषण पूरा करने)से संग्रह-योग्य है उसे अर्थ-वर्षासे संग्रह करता हूँ । ( ४ ) जिसको जानता हूँ वह समान भाव्यतासे संग्रह योग्य है उसे समानभाव्यता (= वारवरी)से संग्रह करता हूँ । भग्ने ! मेरे कुर्मों भोग (= संपत्ति) हैं । वरिष्ठ होने पर तो वह हमारी नहीं मुनता चाहते ।”

१ सुस्तवाय ६ । २. ‘पंचाक-बंधो आकरको’ ( दौ नि. ३: ९ ) कहनेसे आलसी (= आलसिकानुरी ) पंचाक-बंधमें या जो वर्तमान अर्थल ( त्रि कानपुर ) हो सकती है ।

३ अ. नि. अ. क. २: १५ । ४ अ. नि. ४: ११ ३ । ४ ।

“साधु साधु इत्युक्त ! महती परिष्कृत चारम करने का बही उपाय है । इत्युक्त ! जिन्होंने पूर्वकार्यमें महती परिष्कृत संग्रह की उन सबोंने इन्हीं चार समग्र-वस्तुओंसे महती परिष्कृत चारम किया । इत्युक्त ! जो कोई मविष्णु-कार्यमें करेंगे वह सभी इन्हीं । इत्युक्त ! जो कोई भाव-कर्म ।।

तब इत्युक्त भास्वत्क भगवान्ने धार्मिक-कर्म-द्वारा संश्लिष्ट-समाप्त-पितृ-अनुष्ठेय-संश्लिष्ट हो जासकसे उक्त भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर लक्षा गया । तब भगवान्ने इत्युक्त-भास्वत्कको आनेके धोरेही रेर बाएँ मिश्रुओंको संबोधित किया—

“मिश्रुओ ! इत्युक्त भास्वत्कको आठ आश्चर्य-अव्युत्त धर्मोंसे युक्त जानो । कौनसे आठ ? मिश्रुओ ! इत्युक्त भास्वत्क (१) प्रहास है । (२) सीकवान् है । (३) होमान् (= कर्मासीक) है । (४) भववशी (= धर्म-शील) है । (५) बहुसुत है । (६) त्यागवान् (= दानी) है । (७) प्रहावान् है । (८) अस्न-इच्छुक (= अतिच्छुक) है । इन आठ अव्युत्त धर्मोंसे युक्त जानो ।

‘तब भगवान् आठवींमें इच्छनुसार विहार कर जहाँ रात्र्युह है उभर जासकने को चले ।

+ + + +

सम्बन्ध-सूत्र

‘वेसा मीने सुवा—एक समय भगवान् कौश्याम्बीके घोषितायाममें विहार करते थे । उस समय पाँचसौ परित्राजकोंकी महापरित्राजक-परिष्कृतके आष सम्बन्ध परित्राजक ‘अस्नसुगुहामें वास करता था ।

आपुष्मान् आनन्दने सार्वत्रिक प्यानसे उठकर मिश्रुओंको संबोधित किया—  
 आनुसो ! आषो जहाँ देवकट-सोम्य (=नेत्रकट-वज्र-स्वामाधिक भगम-रूप) है जहाँ देवनेके किने चले ।”

“अथवा आनुस !” कह कर मिश्रुओंने आपुष्मान् आनन्दको उत्तर दिया । तब आपुष्मान् आनन्द बहुसुते मिश्रुओंके साथ जहाँ देवकट-सोम्य था जहाँ गये । उस समय सम्बन्ध परित्राजक रात्र्युह आषि विरर्बक कया कहती बाह करती शोर मचाती बड़ीमारी परित्राजक-परिष्कृतके साथ रँध था । सम्बन्ध परित्राजकने दूरहीसे आपुष्मान् आनन्दको आते देखा । देखकर अपनी परिष्कृतके कहा—आप सब सुप हों । मत्त रात्र्यु करे । वह समय शीतमक्य आषक समय आनन्द था रहा है । भ्रमण शीतमके जितने आषक कौश्याम्बीमें वास करते हैं उनमें एक वह समय आनन्द है । वह आपुष्मान् कीर्ग मिःसह-मेमी अल्प अल्प-मर्त्सक होते हैं । परिष्कृतके अस्नसुगु देख संभव है (इधर) भी जायें । तब बहु परित्राजक सुप होगये ।

तब आपुष्मान् आनन्द जहाँ संबन्ध परित्राजक था चला गये । संबन्ध परित्राजकने आपुष्मान् आनन्दको कहा—

१ अनुष्ठेयमा १ । २ मन्त्रिम वि १।३।६ । ३ अनेकके पास पमोसा ( जि इच्छवान् ) । ४ पमोसामें कोई धार्मिक अक-कु क पा । ५ सुह १०६ ।

“भाइये आप भावम् । स्वागत हे आप भावम् । चिरकाल-वाग् आप भावम्  
पहों जाये । बैठिये आप भावम्, वह आमन विद्या है ।

आपुष्मान् भावम् विद्ये आमनरर बदे । सन्धक परिमात्रक भी एक गीषा भासव के  
एक ओर बैठ गया । एक ओर बदे, स दक परिमात्रकको आपुष्मान् भावम्ने कदा—

“सदक ! किम् कथामें बैठे थे पीपमें क्या क्या चक रही थी ?”

‘ जाने दीजिये इस कथाको हे भावम् ! किस कथामें कि हम इस समय बैठे थे ।  
ऐसी कथा आप भावम्को पीछे भी सुननेको दुर्कर्म न हांगी । अच्छा हा आप भावम् ही  
अपने आचार्यक (=धर्म)-विषयक धार्मिक-कथा कह्ये ।

‘तो सन्धक ! सुनो अच्छी तरह मर्ममें करो कहता हूँ ।

“अच्छा भो । ( कह ) सदक परिमात्रकने आपुष्मान् भावम्का उत्तर दिया ।  
आपुष्मान् भावम्ने कहा—

“सन्धक ! उक्त आतकार देववहार सन्धक संतुद्ध भगवान्ने चार अ-महाचर्य-वास  
कहे हैं और चार आवाचन व देवेवाके महाचर्य-वास (=संन्यास) कहे हैं; जिनमें विज्ञ-पुरुष  
अपनी शक्ति सर महाचर्य-वास न करे । वास करनेपर न्याय (=मिर्दान) कुशाक (=अच्छे)-  
धर्मक व पा सकेगा ।

“हे भावम् ! उक्त भगवान्ने कौनसे चार अ-महाचर्य वास कहे हैं ?”

“सन्धक ! पहों एक प्राण्य (= गुद पंथ चकारेवाका) ऐसा वाद (= दृष्टि) रखने  
बाधा होता है—‘नहीं है दान ( क्य क्य ) नहीं है पत्र (क्य क्य) नहीं है इवन (क्य क्य)  
नहीं है सुकृत दुकृत कर्मोंका कक = विपाक यह लोक नहीं है पर-लोक नहीं है माता नहीं  
पिता नहीं । धीपपातिक (= अयोगिक, देव आदि) प्राणी नहीं हैं । लोकमें ( पस ) सत्यको  
प्राप्त (=सम्पत्-नात) सत्वाक्य भ्रमय प्राप्त नहीं हैं जाकि इस लोक परलोकको स्वयं जान  
कर साक्षात्कर, (बुद्धोंको) बतलावेंगे । यह पुरुष आधुर्महाभूतिक (=चर मूर्तोंका वना)  
है । जब मरता है पृथिवी पृथिवी अथ (=पृथिवी)में मिक जाती है चली जाती है । आप  
(=पानी) आप-आधर्ममें मिक जाता है । तेज (=अग्नि) तेज-आधर्ममें मिक जाता है ।  
वायु वायु-आधर्ममें मिक जाता है । इन्द्रियो आकाशमें (चली) जाती है पुरुष मृत (शरीर)  
को आरपर के जाते हैं । बचाने तक यह (=विद्य) जान पकते हैं : ( फिर ) इन्द्रियो कन्तरके  
(पंथ) सी (सचन्) हो जाती है । (पूर्वकृत) आहुतिर्वा राध ( हो ) रह जाती है । यह दान  
सूक्तोंका प्रज्ञापन (=उपदेश) है । जो कोई धार्मिक-वाद करते हैं वह उनका सुक-कृत है ।  
सूक्त पा पंक्ति (सर्मा) शरीर कादनेपर उच्छिन्न हो जाते हैं यिनय हो जाते हैं मरनेक बाद  
(कोई) नहीं रहता । इस विषयमें विश्पुत्रक पने विचारता है—‘यह आप धाम्ना इस वाद  
(=दृष्टि) बाधे हैं—‘नहीं है दान । यदि हम आप धाम्नाक वचन सत्य है तो (पुण्य) बिना  
किने भी मीनेकर किया (महाचर्य) बिना वास किने भी वास कर किया ; नाकिक गुद और  
मी—हम दोनों ही पहों बराबर आमन्व (=सं वास)को प्राप्त हैं; जोकि मैं नहीं करता (हम)  
दार्थों कथा छोड़ उच्छिन्न-अविषय होये मरनेके बाद नहीं रह जावेंगे । ( फिर ) वह आप धारता  
की ( यह ) धर्मता सुँ दता उच्छिन्न-तप (=उच्छिन्नकल्पभाव) केस-समु-नाचना कन्धक है”  
और जो मैं पुत्रादीर्घ हो पर (=सपत्न) में वास करते कभीके पंथक मया केये माध

सुरांश-शेष धारण करते सोना-चाँदीका रस लेते मरभैपर इन आप दास्ताके समान गति पाऊँगा । सो मैं क्या समझ कर क्या देख कर, इन ( शास्त्रिक-बादी ) शास्त्राके पास मद्राचर्ष पाठन करूँ ।' (इस प्रकार) वह, 'वह अ मद्राचर्ष-वास है' समझ उस मद्राचर्ष (असाधुपन) से डरास हो डर जाता है । यह सम्बन्ध ! उग मयपान्मे प्रथम अ-मद्राचर्ष-वास कहा है जिसमें विद्व-पुरुष ।

“और फिर सम्बन्ध ! यहाँ एक शाब्दा ऐसे वाद् (= मत्) बाका होता है—‘करते करवाते करते कटवाते, पकाते पकवाते, शोक कराते परेसाग कराते मघते मघाते प्राण मारते जोरी करते सेंच फगाते गाँच छुटते पर छुटते रहजमी करते पर-खी-नामन-करते बड़ बोझते भी पाप नहीं किया जाता । छुरेसे तेज चक्र-द्वारा जो इस पृथिवीके प्राणिकोंका (कोई) एक मौंसका कडिवाण एक मौंसका पुत्र बनाये ता इसके कारण उस पाप नहीं होगा; पापकर व्यागम नहीं होगा । यदि बात करते-कराते कारते-कटते पकाते-पकवाते गंगाके दाहिने तीरपर भी जावे, तो भी इसके कारण उसको पाप नहीं पापका अग्रम नहीं होगा । दान देते दान विछते पत्र करते बत्र कराते गंगाके उत्तर तीर भी जाने तो इसके कारण उसको पुष्प नहीं पुष्पका आगम नहीं होगा । दान (इन्द्रिय)मम संघम सप्येपन (असह-बत्र)से पुष्प नहीं पुष्पका व्यागम नहीं होता’ । सम्बन्ध ! विद्व पुरुष पसा विचारता है—वह आप दास्ता इस वाद्=दृष्टि-वाक है—करते करवाते । यदि इन आप दास्ताका बचन सच है । तो हम दोनों ही बराबर आत्मस्य (=सम्वास) को प्राप्त हं दोनोंहीके करते पाप नहीं किया जाता । यह आप दास्ताकी नगता । । यह सम्बन्ध ! उग मयपान्मे द्वितीय अ-मद्राचर्ष-वास कहा है ।

‘और फिर सम्बन्ध ! यहाँ एक शाब्दा ऐसे वाद् (=दृष्टि)वाक्य होता है—‘सत्त्वोंके संकषेसका कोई हेतु=कोई मत्पन नहीं । बिना हेतु, बिना मत्पनके प्राणी संकषेस (=विद्यमा किम्ब)को प्राप्त होते हैं । मामिकोंकी ( विद्य )बिद्युद्विद्य कोई हेतु = मत्पन नहीं है । बिना हेतु = मत्पनके प्राणी बिद्युद्व होते हैं । बस नहीं ( चाहिये ) बीर्य नहीं पुरुषका काम (=दृष्टता) नहीं = पुरुष-पराक्रम नहीं ( चाहिये ) समी सत्व = समी प्राणी=सभी मूढ=समी क्षीण अ-बस = अ-यत्न=अ-बीर्य मिश्रति (=भवितव्यता) के बसमें हो उहाँ अमिकाविशोंमें सुख हुआ अनुभव करते हैं । यदि इन आप दास्ताका बचन सत्य है । तो हम दोनों ही हेतु=मत्पन बिना ही सुख हो जावेंगे । । यह सम्बन्ध ! मयपान्मे तृतीय अ-मद्राचर्ष-वास कहा है ।

और फिर सम्बन्ध ! यहाँ एक शाब्दा ऐसी दृष्टि वाक्य होता है—‘यह सात अकृत = अकृतविधि=अ-निर्मित=निर्माता-रहित अचर्य्य=अदृश्य जन्मबन् (अचक) है’ । यह चक नहीं होते विचारको प्राप्त नहीं होते; न एक दूसरेको जानि पहुँचाते हैं; न एक दूसरेके सुप्त हुआ वा सुख-दुःखके किये पचाँह हैं । कंगसे सात ? पृथिवी-काय आप-काय तेज-काय वायु-काय सुख हुआ और बीज—यह सात । यह सात काय अकृत कुक-दु कने पाम्ब नहीं हैं । यहाँ न इन्द्रा (=मारनेवाका) है न वाचविता (=व्यक्त करनेवाका) न सुवनेवाका न सुवावेवाका न आग्नेवाका न ब्रह्मनेवाका । जो तील्प-उद्यमे सीस भी छरते हैं (तो भी) चाँई किसीको प्राप्तमें नहीं मारता । सादा कार्योंमे अलग दिवर (=छाकी जगह)में छप

(=इन्द्रियार) गिरता है। वह प्रभाव-योगि—बौद्ध-सी हज़ार, (बूमरी) साठ-सौ ठिथामर-सी, और पाँचमी कर्म और पाँच कर्म और छीव कर्म (एक) कर्म और अथा कर्म, वासठ प्रतिपद्, वामठ अस्त-रूप छ अमिवाति भयड पुद्गपकी भूमिर्वा उ वाम सी आजीवक, उ वास सी परिवाजक उ वास बागोंके आवास बीससी इन्द्रिय छीमसी बरक छतिस रजो-धनु साठ संज्ञावान् गर्भ साठ अर्द्धही गर्भ, साठ निप्र भी गर्भ साठ द्ब साठ मयुज्ज साठ पिशाच साठ सरोवर, साठ गौड (=पमुद) माठ प्रपाठ साठमी प्रपाठ साठ म्बज साठसौ खज्ज- (इवमें) बीरासी हज़ार महाकर्मों तक द्वाककर=आवागमनमें पदकर, मूर्त्त और पण्डित (समी) दुःखका अंत (=निर्वाण प्राप्ति) करेंगे। वहाँ (यह) नहीं है—इम छीक वा जग वा उप म्ब- चवसे ही अवरिपवच कर्मको पचाईगा परिपवच कर्मको भोग कर भयड कर्देगा। सुख दुःख ज्ञोय (-जाप) से बपे-गुके हुये है संसारमें पछवा बज्ञाता उरुर्त्त अयकर्म नहीं होता जैसे कि सूतकी गोकी सेंकनेपर उधरती हुई गिरती है ऐसेही मूर्त्त (=वाच) और पण्डित द्वाककर=आवागमनमें पदकर दुःखअ अंत करेंगे। तहाँ मन्वक ! विज्ञ-गुरुप येने विचारता है।—यह आप साक्षा ऐसे बाद = रहिवासे है। जैसे कि सूतकी गोकी। यदि इव आप साम्नाक बचन सत्य है तो विवा किने भी मीने कर किया। यह आप साम्नाकी मन्वता। यह मन्वक ! उव भगवान्ने जगुर्त्त अ-महाचर्च-वास कहा है।

“सन्वक ! उव भगवान्ने यह चार अ-महाचर्च-वास कहे हैं।

‘आमर्च ! हे आमन्व ॥ अन्मुठ ॥ हे ज्यवन्व ॥ जो वह उव भगवान्ने यह चार अ-महाचर्च-वास कहे हैं। किन्तु, हे आमन्व ! उव भगवान्ने कौकसे चार अनायासिक महाचर्च कहे हैं ॥”

“सन्वक ! वहाँ एक साक्षा (विप्रव) सर्वज्ञ सर्वदर्शी जसेप-ज्ञान-दर्शन बाध होनैक दावा करता है—‘चकते, चके होते, सोते जागते सदा सर्वदा मुझे शान-दर्शन मौजूद (=अस्तु पस्वित) रहता है। (तो भी) वह सूने धरमें जाता है (वहाँ) मिश्रा भी नहीं पाता कुनपुर भी काट जाता है चंड-हाथीसे भी सामना पद जाता है चंड बोदेसे भी सामना पद जाता है चंड-बकसे भी। (सर्वज्ञ होनेपर भी) की-गुरुओंके वाग-गोत्रको पूछता है। प्राम-विगमक नाम और राखा पूछता है। (आप सर्वज्ञ होकर) यह क्या (पूछते हैं)’—पूछनेपर कहता है—‘सूने धरमें हमारा ज्ञान बड़ा वा इसकिने गये। मिश्रा व मिश्री भी वही भी इसकिने न मिकी। कुनपुरका काटना क्या था। हाथीस मिकवा क्या था।। तहाँ सन्वक ! विज्ञ-गुरुप यह सोचता है—यह आप साक्षा दावा करते हैं (तब) यह—‘यह महाचर्च (=पंच) अनायासिक (=मनको संतोप व देवे बन्क) है—यह जान उस महाचर्चसे=उदास हो इद जाता है। यह सन्वक ! उव भगवान्ने प्रथम अनायासिक महाचर्च कहा है।

“और फिर सन्वक ! वहाँ एक साक्षा आनुभविक=अनुभव (=भूति) की सत्य मानने बाधा होता है। (भूतिमें) ऐसा’ (स्थितिमें) ऐसा परम्परासे पिठक-संमवाव (=मन्व-प्रमन्व) से चर्मका बपदेस करता है। सन्वक ! आनुभविक=अनुभवको सच मानने बाधे साक्षाक अनुभव सुखुठ (=ठीक सुवा) भी हो सकता है। दुःखुठ भी, पैसा (=वचार) भी हो सकता है उच्छा भी हो सकता है। यहाँ सन्वक ! विज्ञ-गुरुप यह सोचता है—यह अथ

शास्त्र जानासकिक ई । वह 'पह ब्रह्मचर्य अनायासिक ह । द्वितीय अनायासिक ब्रह्मचर्य कहा ई ।

'जीर फिर सम्बन्ध ! यहाँ एक छास्ता ताकिन्कि-विमर्शी हाता ई । वह तर्कस = विमर्सेमे प्राप्त अपनी प्रतिभासे शात धर्मका उपदेश करता ई । सम्बन्ध ! ताकिन्कि-विमर्शीक (=मीमांसक) छास्ताक्य (विचार) सुतकिन्कि मी ही सकता ई कुतकिन्कि मी । ईस (=पदार्थ) मी हो सकता ई कल्प्य मी हो सकता ई ।।। तृतीय अनायासिक ब्रह्मचर्य कहा ई ।

चार फिर सम्बन्ध ! यहाँ एक छास्ता सम्बन्धित मूढ (=भोसुह) होता ई । वह मन्ध होबैसे अति-मूढ होबैसे बीसे बीसे प्रश्न पूछनेपर बचनसे विशेषका-अमरा-विशेषको प्राप्त होता ई—'एमा मी मेरा (मठ) नहीं बैसा (=तवा) मी मेरा नहीं, अम्यवा मी मरा (मठ) नहीं नहीं मी मेरा (मठ) नहीं, न नहीं मी मेरा (मठ) नहीं । यहाँ सम्बन्ध ! विश्व पुरुष पह मीचता ह ।।। अनुर्थ अनायासिक ब्रह्मचर्य कहा ई ।

"सम्बन्ध ! उन मगवानने वह चार अनायासिक ब्रह्मचर्य कहे ई ।

"आश्रय ! हे आश्रय !। अनुमुक्त ! हे आश्रय !। जो वह उन मगवानने चार अनायासिक ब्रह्मचर्य कहे ई । किन्तु हे आश्रय ! वह छास्ता किस बाद-किस दृष्टि बाका हाता बाहिरे यहाँ विश्व पुरुष स्व-शक्ति मर ब्रह्मचर्य-वास करे वास कर म्बाद = कुशल-चर्य की धारापना करे ?"

"सम्बन्ध ! यहाँ तयागत लोकमें उपपन्न होते ई । उन धर्मको गृहपति या गृह पति-पुत्र सुवता ई । वह संशयको छोड़ संसय-रहित होता ई । वह इन पाँच मीचर्योंको हट बिचके दुर्बल करनेवाले उपपन्न हो ( =विचमर्क) का जान कर्मोंस अलग हा अकुसल धर्मोंसे अलग हो प्रथम प्यानको प्राप्त हा बिहरता । सम्बन्ध ? जिस शास्ताक पास आश्रय इस प्रकार के बड़े (=उद्धार) विशेषका पाब यहाँ विश्व-पुरुष स्वशक्तिमर ब्रह्मचर्य-वास करे ।

"जीर फिर सम्बन्ध ! द्वितीय प्यानका प्रथ हो बिहरता ई । तृतीय प्यान ।। अनुर्थ प्यान ।। पूर्व कर्मोंको रमरण करता ई ।। कर्मानुसार अम्यत धर्मोंको जानता ई ।। 'अब यहाँ दुमरा कुठ करवा नहीं रहा'-जानता ई ।।

"हे आश्रय ! वह जो मिश्र अर्हण (=मुक्त) ई क्या वह कर्मोंक भोग करगा ?"

"सम्बन्ध ! जो वह मिश्र अर्हण ई वह (इव) पाँच बातोंमें असमर्थ ई । क्षीण आश्रय (=अर्हण, मुक्त) मिश्र (१) जानकर प्राण नहीं मार सकता । (२) खोरी नहीं कर सकता । (३) मीचुन सेवन नहीं कर सकता । (४) जानकर झूठ नहीं बोल सकता । (५) क्षीणआश्रय मिश्र एकप्रित कर (अन्न पान आदि) काम भोगोंको भोगकरके अशान्त ई ईमे कि वह पहिके गुरी हाती भोगता था ।।

"हे आश्रय ! जो वह अर्हण-क्षीणम्यक मिश्र ई क्या उन अन्ध-वेदन पाते जागन मिरम्वर (वह) जान-दर्शन मीमूद रहता ई—'मेरे आश्रय (=विचमर्क) क्षीण हो गय' ।



(अभिचार) गिरता है। वह प्रबान-बोधि—बीह-सी हजार (पूसरी) साठ-सौ छियासठ-सौ और पाँचसौ कर्म और पाँच कर्म और तीन कर्म (पूक) कर्म और भाषा कर्म, बासठ प्रतिपद् बासठ अन्त-कल्प उ अभिजाति अठ पुण्यप्री भूमिर्बो उ नाम सी भाजीबक उ बाल सी परिब्राह्मण उ बास बागोंके भाषास बीससी इन्द्रिय तीमसी परक छतिस रबो पातु साठ संज्ञाबान् गर्भ साठ अंसही गर्भ, साठ निम्न धी गर्भ साठ द्ब साठ मनुष्य साठ विद्याक साठ सरोवर, साठ गॉट (अपमृद) साठ प्रपात साठसी प्रपात साठ स्वप्न साठसां स्वप्न- (इन्में) बीरासी हजार महाकर्मों तक शीघ्रकर=भावागमनमें पढ़कर, मूर्ख और पंडित (समी) दुःखकर अंत (अभिर्बाव प्राप्ति) करेंगे। वहाँ (वह) नहीं है—इस शीक या मग वा उप मङ्ग चर्चसे मैं अपरिपक्व कर्मको पचाऊँगा परिपक्व कर्मको मोग कर अन्त करूँगा। मुच हुक्म श्रेय (आप) से नये-मुके हुके हैं संभारमें बयाना बड़ाया उल्कर अपकर्ष नहीं होया जैसे कि सुतकी गोकी पेंकनेपर उबरती हुई गिरती है ऐसेही मूर्ख (अवाक) और पंडित शीघ्रकर=भावागमनमें पढ़कर दुःखकर अंत करेंगे। तहाँ सन्धक ! विश्व-सुखप वसे विचारता है।—यह आप छाया ऐसे बाद उ छिन्नासे है। जैसे कि सुतकी गोकी। यदि इय आप छायाका बचन सत्य है तो बिना किने भी मैंने कर किया। • यह आप छायाकी बन्मता। यह सन्धक ! उन भगवानने चतुर्थ अ-अज्ञाचर्च-वास कहा है।

“सन्धक ! उय भयवाचने वह चार अ-अज्ञाचर्च-वास कहे है।

“आचर्च ! है आचर्च ॥ अचमुत ! ह आचर्च ॥ जो यह उन भयवान्ने वह चार अ-अज्ञाचर्च-वास कहे है। किन्तु, हे आचर्च ! उय भगवान्ने कौसे चार अवाचासिक मज्ञाचर्च कहे है ?”

“सन्धक ! वहाँ एक छाया(निर्ग्रथ) सर्वज्ञ सर्ववर्षी जसेप-ज्ञाच-वर्चन बाध्य होगैक बाधा करता है—‘जकते कहे होत सोते जगते सदा सर्वज्ञा मुसे ज्ञान-वर्धन मौजूद (अचतु पंडित) रहता है। (तो भी) वह सुने धरमें जाता है, (वहाँ) भिक्षा भी नहीं पाता कुन्तुर भी अठ जाता है चंड-हाथीसे भी सामना पढ़ जाता है चंड भोजेसे भी सामना पढ़ जाता है चंड-बीकसे भी। (सर्वज्ञ होनेपर भी) अ-गुठबोंके नाम-गोत्रको पूछता है। ग्राम-विगमका नाम और राखा पूछता है। (आप सचज्ञ होकर) वह क्या (पूछते हैं)’—पूछनेपर कहाता है—‘सुने धरमें हमारा जाना क्या था इसकिने गये। भिक्षा व भिक्षा भी नहीं इसकिने न भिक्षा। कुन्तुरका अठना क्या था। हाथीसे भिक्षा क्या था।। तहाँ सन्धक ! विश्व-सुखप वह सोचता है—‘वह आप छाया बाधा करते है (तब) वह—‘वह अज्ञाचर्च (= पंच) अवाचासिक (= मनको संतोप प देने बाका) है’—वह जान उस अज्ञा-चर्चसे-उदास हो हठ जाता है। यह सन्धक ! उस भगवानने प्रथम अवाचासिक मज्ञाचर्च कहा है।

‘और फिर सन्धक ! वहाँ एक छाया अचतुर्बधिक=अनुभव (= अचुति) की सत्य मानने पाध्य होता है। (चुतिमें) ऐसा (स्युतिमें) ऐसा परम्परासे विदक-संभवाच (=अग्र-पमाल) से धर्मका उपदेश करता है। सन्धक ! अचतुर्बधिक=अनुभवको सच मानने बाके छायाका अनुभव सुधुत (= ठीक सुगत) भी हो सकता है। सुधुत भी, बैसा (=बचार्थ) भी हो सकता है उच्य भी हो सकता है। यहाँ सन्धक ! विश्व-सुखप वह सोचता है—यह आप

शास्ता आनुभविक है । वह 'बह ब्रह्मचर्य' अनायासिक है । द्वितीय अनायासिक ब्रह्मचर्य कहा है ।

"बीर फिर सम्बन्ध ! यहाँ एक शास्ता तार्किक=विमर्शी होता है । वह तर्कसे = विमर्शमे प्राप्त अपनी प्रतिभासे ज्ञात चर्मका उपदेश करता है । सम्बन्ध ! तार्किक=विमर्शक (=मीमांसक) शास्ताका (बिम्बर) सुचर्चित भी हो सकता है सुचर्चित भी । वैसे (=बर्बाद) भी हो सकता है अज्ञान भी हो सकता है ।।। तृतीय अनायासिक ब्रह्मचर्य कहा है ।

बीर फिर सम्बन्ध ! यहाँ एक शास्ता मन्व=मति मूढ (=मोमूढ) होता है । वह मन्व होनेसे अति-मूढ होनेसे वैसे वैसे प्रश्न पूछनेपर, बचनसे विशेषको=अमरा-बिम्बपको प्राप्त होता है—'ऐसा भी मेरा (मत्) नहीं बला (=तया) भी मेरा नहीं; अन्यथा भी मेरा (मत्) नहीं वहीं भी मेरा (मत्) नहीं, न नहीं भी मेरा (मत्) नहीं । यहाँ सम्बन्ध ! विशुद्ध यह सीखता है ।।। चतुर्थ अनायासिक ब्रह्मचर्य कहा है ।

'सम्बन्ध ! उन भगवान्मे यह चार अनायासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं ।

"भाष्य ! हे आत्मन् ! अप्रमुक्त ! हे आत्मन् ! जो यह उन भगवान्मे चार अनायासिक ब्रह्मचर्य कहे हैं । किन्तु हे आत्मन् ! वह शास्ता किस वाद=किस दृष्टि बाका होना चाहिये अर्हो विशुद्ध-युक्त स्व-शक्ति भर ब्रह्मचर्य=वास करै वास कर न्याय = कुशल-वर्म की धाराधना करे ?"

"सम्बन्ध ! यहाँ तयागत लोकमें उत्पन्न होते हैं । उस धर्मको गृहपति या गृह पति-युक्त सुगता है । वह सक्षमके ध्येय संक्षय-रहित होता है । वह इन पाँच नीचरर्षीको हटा बिचके दुर्बल करनेवाले उपल्लेखी (=चित्तमल) का ज्ञान कामोंसे असंग ही, अकुशल चर्मोंसे लज्जा हो प्रथम ध्यायको प्राप्त हो विहरता । सम्बन्ध ? किस शास्ताके पास भाषक इस प्रकार के बड़े (=उद्धार) विशेषको पावे अर्हो विशुद्ध-युक्त आशक्तिभर ब्रह्मचर्य=वास करे ।

"बीर फिर सम्बन्ध ! द्वितीय ध्यानका प्राप्त हो विहरता है । तृतीय ध्यान ।। चतुर्थ ध्यान ।। एवं चर्मोंको स्मरण करता है ।। कर्मानुसार चर्मसे सर्वोन्मी ध्यानता है ।। 'जब यहाँ दूसरा कुल करवा नहीं रहा—जानता है ।।

"हे आत्मन् ! वह जो मिथु अर्हन् (=मुक्त) है क्या वह चर्मोंका भोग करेगा ?"

'सम्बन्ध ! जो वह मिथु अर्हन् है वह (इन) पाँच बातोंमें असमर्थ है । क्षीण आत्मन् (=अर्हन्, मुक्त) मिथु (१) आत्मन् प्राप्त नहीं मार सकता । (२) खोरी नहीं कर सकता । (३) सीधुन सेवन नहीं कर सकता । (४) आत्मन् लज्ज नहीं बोल सकता । (५) क्षीणआत्मन् मिथु एकचित्त कर (अथ पाव जादि,) काम-भोगोंको भोगकरनेके अनात्म है जैसे कि वह पहिले गृही होते भोगता था ।।"

"हे आत्मन् ! जो वह अर्हन्=क्षीणआत्मन् मिथु है क्या उसे चर्मों-चर्मों से संतो-आयते विरन्तर (बह) ज्ञान-वर्तन मान्द रहता है—'मेरे आत्मन् (=चित्तमल) क्षीण हो गय ।

“ता सङ्क ! तरे त्रिवे एक उपमा देता हूँ । उपमासे भी कोई कोई विश्व-पुरुष कहलेश मतलब समझ लेते हैं । सम्बुद्ध ! जमे पुरुषरुद्र हाथ-पर कटे हों उसको चफते बन्दते सीते जायते निरंतर (होता है) मेर हाथ-पर कटे ह । इसी प्रकार सम्बुद्ध ! जो वह भार्य = स्त्रीशासन भिक्षु है उसके निरंतर आसन स्त्री ही है, वह उसकी प्रत्यक्षता करके जानता है— मरे-आसन स्त्री ही है ।

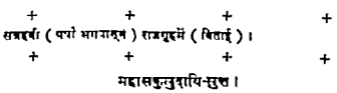
“ह जानम्बु ! इस धर्म-विषय ( धर्म) में कितने मार्गदर्शक (=निर्वाता) हैं ?”  
 “सम्बुद्ध ! एक सा ही नहीं हा मो ही नहीं तीनसौ , चारसौ पाँचसौ बरिष्ठ और भी अधिक निर्वाता इस धर्म-विषयमें हैं ।

आकर्षण ! है जानम्बु ! जानम्बु ! हे जानम्बु ! न अपने धर्मका उत्कर्ष (=तारीफ) करता न पर-धर्मकी निन्दा करता (कीक) जयद (=जापतक) पर धर्म-वेसवा ! इतने अधिक मार्ग-दर्शक जात्र पवते हैं ! यह आजीवक दूत-मरीके दूत तो अपनी बधाई करते हैं । तीवको ही मार्गदर्शक (=निर्वाता) बतलाते हैं जैसे कि—नन्द बारस कुस सोझय और मन्वसी गासाल

तब सङ्क परिभाषकने अपनी परिपक्वो संबोधित किया—  
 “आप सब भ्रमण गातमक पास महाचर्च-वास करें । हमारे त्रिवे ता काम-सत्कार प्रदना छादना इस बल सुकर बही है ।

जम सम्बुद्ध परिभाषकने अपनी परिपक्वो भगवान्के पास महाचर्च-वास करनेके त्रिवे प्र रित किया ।

‘(भगवान् आष्टपीस बज्जर) क्रमसा चारिक करते जहाँ राजगृह है वहाँ पहुँच । वहाँ भगवान् राजगृहमें पेशुवन कसम्बुद्ध निवापमें विहार करत थे । उस समय राजगृहमें बुधिस था ।’



‘जमा मीने मुता—एक समय भगवान् राजगृह पेशुवन कसम्बुद्धनिवापमें विहार करले न । उस समय बहुतसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध (=अभिजात) परिभाषक मारनिवाप परि प्राज्ञकाराममें वास करने थे; जय कि—अनुगाम शरथर और सङ्क-उत्पायी परिभाषक तथा नूनरे अभिजात अभिजात परिभाषक ।

तब भगवान् वृषांड क्रमव पहिनकर पाप-शिवर ल राजगृहमें विद्व चारक त्रिवे प्रसिद्ध हुए । तब भगवान्क यह हुआ - ‘राजगृहमें विद्व-चारक त्रिवे धर्मी बहुत सबरा है वरों न म जहा मार-निवाप परिभाषकाराम है जहाँ मङ्गल-उत्पायि परिभाषक है वहाँ चर्च । तब भगवान् जहाँ मार निवाप परिभाषकाराम था वहाँ गये । उस समय सङ्क उत्प्रायी परिभा

कह 'बहुत भारी परित्राजक-परिपत्रके साथ बड़ा था। सङ्कुच-उदायी परित्राजकने वृत्तसे ही भगवान्को आते देखा। देखाकर भयभी परिपत्रको कहा— । )

भगवान् वहाँ सङ्कुच-उदायी परित्राजक था वहाँ गये। सङ्कुच-उदायी परित्राजकने भगवान्को कहा :—

“बाहूने भन्ते भगवान् ! स्वागत है भन्ते भगवान् ! चिरकालपर भगवान् वहाँ जाये। भन्ते भगवान् ! बैठिये यह आसन विद्य है।”

भगवान् बिठे आसनपर बैठे। सङ्कुच-उदायी परित्राजक भी एक लीचा आसन लेकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सङ्कुच-उदायी परित्राजकको भगवान्ने कहा—

‘उदायी ! किस कथामें बैठे ने क्या कथा बीचमें हो रही थी ?’

“जाने हीजिये भन्त ! इस कथाको जिस कथामें हम इस समय बैठे थे। ऐसी कथा भन्ते ! आपको पीछे भी सुननी दुर्लभ नहीं होगी। पिछले दिनों भन्ते ! कुतूहल-शाळामें बैठे, एकदिवस हुए, माना तीर्थों (पर्वतों)के समान माइनोंके बीचमें यह कथा उत्पन्न हुई। अङ्ग-मार्गको काम है अङ्ग-मार्गको अङ्क काम मिका, वहाँपर कि राजगृहमें (पेसे पूसे) संवत्ति-मार्गी-मार्गार्थ ज्ञात-मार्गकी बहुतकथोंके सुसम्मानित तीर्थकर (अर्थ स्वार्थ) वर्षावासके किये जाये हैं। यह पूर्व काश्यप संधी मनी गन्धार्थ ज्ञात मसली बहुजन-सुसम्मानित तीर्थकर हैं सा भी राजगृहमें वर्षावासके किये जाये हैं। यह मकलली गोसाळ ०।० अजित केशकम्बली ०० प्रहृष्य कार्यायन ०।० संजय बेखट्टिपुत्र ०।० निगठ नाथपुत्र । यह समान शौतम भी संधी । यह भी राजगृहमें वर्षावासके किये जाये हैं। इस सभी भगवान् समान माइनोंमें क्षेत्र भावकों (अधिर्णों)सं (नजिक) सङ्कुच = गुहकृत = मानित = पूजित हैं ? किसको भावक सङ्कर, गौरव मान पूजाकर विहरते हैं ?’

“वहाँ किन्हींने ऐसा कहा—यह जो पूर्व काश्यप संधी हैं सो भावकोंसे व सङ्कुच न पूजित हैं। पूर्व काश्यपको भावक सङ्कर गौरव मान पूजा करके नहीं विहरते। पहिले (एक समय) पूर्व काश्यप अनेक-सीधी ममाको धर्म उपदेशकर रहे थे। वहाँ पूर्व काश्यपके एक भावकने शब्द किया—‘माप लोग इस बातको पूर्व काश्यपसे मत पूजें। यह इसे नहीं जानते। हम इसे जानते हैं। हमें यह बात पछि। हम इसे आप लोगोंको बत करेंगे। उक्त वक्त पूर्व काश्यप वहाँ पकवकर विस्काते थे—‘माप सब हुए रहें शब्द मत करें। यह लोग आप सबको नहीं पूजते। हमको पूजते हैं। हम इन्हें बतकरेंगे।— (किन्तु) नहीं (चुप करा) पाते थे। पूर्व काश्यपके बहुतसे भावक विवाद करके निकल गये—‘तू इस धर्म-विलयको नहीं जानता मैं इस धर्म विषयको जानता हूँ। तू क्या इस धर्मको जानिया ? ‘तू मिथ्या-आकाश है, मैं सत्य-आकाश (असम्यक प्रतिपन्न) हूँ। मेरा (बचन) सहित (अर्थात्) है तेरा अ-सहित है। ‘पहिले कश्मेडी (बात दूने) पीछे कही पाँछे कश्मेडी (बात) पहिले कही। ‘व किये (अभिधीर्ण)की तुने उक्त दिया। ‘तेरा शब्द निमहमें आगया। ‘बात छोड़ानेके लिये (पक) करा। ‘यदि सक्त हो ता शोक

को । इस प्रकार पूर्व काश्यप आचर्योंसे न साकूत न पूजित हैं । बल्कि पूर्व काश्यप समाधी विहार (=बम्मखोस)से विहारते गये हैं ।

“किसी किसीने कहा—यह प्रकृष्टाष्टी गोस्ताष्ट सर्षी भी आचर्योंसे न साकूत न पूजित हैं । । । यह ज्वित वेदा-कर्मकी भी । । यह प्रकृष्ट आत्वाचर भी । । यह सर्वत्र वेदविपुल भी । । यह विगंड भावयुल भी । ।

“किसी किसीने कहा—यह अमन गौतम सपी हैं । और यह आचर्योंसे पूजित हैं । अमन-गौतमका आचर सत्कार=गीरव कर आरंभ क विहारते हैं । पहिले एक समय अमन गौतम अनेक सौकी समाधी धर्म उपदेश कर रहे थे । वहाँ अमन गौतमके एक सिष्यने खोसा । दूसरे सन्न्यासिणी (=गुणमार्ग)ने उसका पैर दबाया—‘आधुम्यान् ! गुण रहें आधुम्यान् ! शब्द मत करें । सास्ता हमें धर्म-उपदेश कर रहे हैं । जिस समय अमन गौतम अनेकमत परिचर्योंके धर्म उपदेश देते हैं उस समय अमन गौतमके आचर्योंका [दुःखने खोसनेका] (भी) शब्द नहीं होता । उनकी बनता प्रशंसा करती प्रत्युत्थान करती है—जो हमें भगवान् धर्मउपदेश करींगे उसे सुर्षींगे । अमन गौतमके जो आचर सन्न्यासिणीयोंके साथ विवाद करके ( मिथु ) सिद्धा (= नियम ) को छोड़ हीन ( गृहस्थ-आचर ) को खीर करते हैं यह भी साग्गाके प्रशंसक रहते हैं धर्मके प्रशंसक रहते हैं सर्वके प्रशंसक रहते हैं । दूसरेकी नहीं अपकीही निन्दा करते हैं—‘हमही ‘मागधीन हैं जो कि ऐसे खाल्वात धर्ममें प्रज्वित हो परिपूर्ण परिपुष्ट अक्षर्यको जीवन्मर पाक्य नहीं करसके’ ( और ) यह आराम-सेवक (= आरामिक ) हो या गृहस्थ (=उपासक ) हो, पांच सिद्धासिणीको ग्रहण करके रहते हैं । इस प्रकार अमन गौतम आचर्योंसे पूजित हैं । अमन गौतमको आचर सत्कार=गीरव कर, आकम्भ के विहारते हैं ।”

“उदायी ! ए किम किम कितने धर्मोंको देखता है जिनसे मुझे आचर पूजते हैं ?”

“अन्ते ! भगवान् में पांच धर्मोंको देखता हू जिनसे भगवान्को आचर पूजते हैं । कीचसे पांच ? अन्ते ! भगवान् (१) अन्त्याहारी अन्त्याहारके प्रशंसक हैं जो कि अन्ते ! भगवान् अन्त्याहारी अन्त्याहार-प्रशंसक हैं; इसको मैं भन्ते ! भगवान्में प्रथम धर्म देखता हू बिछसे भगवान्को आचर पूजते हैं । (२) जैसे जैसे चीवर (=वस्त्र) से सन्तुष्ट रहते हैं जैसे जैसे चीवरसे संतुष्टताके प्रशंसक । (३) जैसे जैसे विद्यपत्त (=मिथ्या-भोजन) से सन्तुष्ट संतुष्टता-प्रशंसक । (४) सपत्तासक (=बर विहार) से संतुष्ट संतुष्टता प्रशंसक । (५) पृथान्तधसी पृथान्त-वास प्रशंसक । अन्ते ! भगवान्में मैं हू पांच धर्मोंको देखता हूँ ।

“उदायी ! ‘अमन गौतम अन्त्याहारी अन्त्याहार-प्रशंसक हैं’ इससे यदि मुझे आचर पूजते, आकम्भ के विहारते, तो उदायी ! मेरे आचर कोसक (=पुरवा) मर आहार करदेबाके अर्द्ध-कोसक-आहारी वास (=वास करकेर दबाया छोटा बर्तन) मर आहार करदेबाके आवा बाँस-आहारी भी है । मैं उदायी ! कभी कभी इस पात्रमर काटा हू ज्विक भी काटा हू । यह अन्त्याहारी अन्त्याहार-प्रशंसक हैं’ इससे पूजते तो उदायी ! जो मेरे आचर अन्त्या-वास आहारी हैं, यह मुझे इस धर्मसे न सत्कार करते ।

“उदायी ! जैसे जैसे चीवरसे सन्तुष्ट संतुष्टता-प्रशंसक ‘इधसे यदि मुझे आचर

पूजते ; तो उदासी ! मेरे आचक पांसु-मूकिक = इच्छा चीवर धारी भी हैं । वह स्मभावसे कृपेके डेरसे कठे चीवरके बटोरकर लंबाडी ( = मिथुनका उपरका दोहरा, बध ) तथा चारक करते हैं । मैं उदासी ! किसी किसी समय एक सच-दस्य कौका जैसे रोम बाके ( = मज्जमक ) पृथपक्षियोंके बकको भी चारण करता हू । ।

उदासी ! जैसे जैसे पिंड-पातसे सम्पुष्ट संतुष्टता-प्रशंसक = इससे यदि मुझे आचक पूजते ; तो उदासी ! मेरे आचक पिंड-यातिक ( = मज्जकरी-बाके ) सपदानचारी ( = निरन्तर बकते रह, मित्रा मार्गनेवाले ) उच्छ-वतमें रत भी हैं । वह गाँवमें आसबके किये निर्मजित होमेपर भी ( निमन्त्रण ) नहीं स्वीकार करते । मैं तो उदासी ! कभी कभी विमन्त्रणमें भावक्य भात काकिमा-रहित अनेक रूप अनेक प्बन्ध ( = तर्कारी ) भी मोचक करता हू । ।

“उदासी ! जैसे जैसे ध्यनासमसे सम्पुष्ट सम्पुष्टता-प्रशंसक इससे यदि मुझे आचक पूजते ; तो उदासी ! मेरे आचक बृह-मूकिक ( = वेषके नीचे सदा रहनेवाले ), बरमोक्षसिक ( = बप्पबकासिक = सदा चीवेमें रहनेवाले ) भी हैं यह भाद मास ( वर्षाके चार मास छेद ) छतक नीचे नहीं आते । मैं तो उदासी ! कभी कभी किये-पोते वायु-रहित किवाड़-किवाड़की-बन्ध कोमें ( = कूटागारों )में भी बिहरता हूँ । ।

‘उदासी ! एकान्तवासी एकान्तवास-प्रशंसक हैं इससे यदि पूजते ; तो उदासी ! मेरे आचक अरम्पक ( = सदा अरम्पमें रहनेवाले ), मान्त-अधनासन ( = बनीसे दूर कुटीबाके ) हैं, ( वह ) अरम्पमें बरप्रस्थ-मान्तक सपवासनोंमें रहकर बिहरते हैं । वह प्रत्येक अर्द्धमास प्रातिमोक्ष-उद्देश ( = अपराध-स्वीकार )के किये, सबके मध्यमें आते हैं । मैं तो उदासी ! कभी कभी मिथुनों मिथुनियों उपासकों उपासिकाओं राजा राज-महामाल्यों तीर्थिकों तीर्थिक-आचकोंसे आकीर्ण हो बिहरता हूँ । । इस प्रकार उदासी ! मुझे आचक इन पाँच वर्गोंसे नहीं पूजते ।

‘उदासी ! दूसरे पाँच वर्ग हैं जिनसे आचक मुझे पूजते हैं । कौनसे पाँच ? वहाँ उदासी ! (१) आचक मेरे शीक ( = आचार )से सम्मान करते हैं—अमम गौतम छीकवान् हैं परम शीक-स्कन्ध ( = आचार-समुदाय )से संबुध हैं । जो कि उदासी ! आचक मेरे शीकमें विवास करते हैं— ; वह उदासी ! अमम वर्ग है जिससे ।

“और फिर उदासी ! (२) आचक मुझे अमिवाण्त ( = मुन्वर ) शान-दर्शक ( = शाव का मन्ते प्रत्यक्ष करने )में समाहित करते हैं—आचकर ही अमम गाँवम करते हैं— ‘आवण हूँ देखकर ही अमम गाँवम करते हैं—‘देखता हूँ’ । अनुभवकर ( = अभिज्ञान ) ही अमम गौतम परम उपदेश करते हैं जिवा अनुभव किच नहीं । स-निदान ( = कारण-सहित ) अमम गौतम वर्ग उपदेश करते हैं अ-निदान नहीं । स-यातिद्वार्य ( = सकारण ) , अ-प्रतिहार्य नहीं । ।

और फिर उदासी ! (३) आचक मुझे प्रज्ञामें समाहित करते हैं— अमम गौतम परम-मशा-स्कन्ध ( = उत्तम शान-समुदाय )से बुध हैं । उनके किये अममम ( = मविष्य ) के वाद-विचारका मार्ग अन्-देखा है ( वह वर्तमानमें ) उत्पन्न दूसरेके प्रचार ( = उद्देश )

को धर्मके साथ न रोक सकेंगे' यह संभव नहीं। तो क्या भावते हो उदासी ! क्या मेरे भावक ऐसा जानते हुये ऐसा देखते हुये, बीच बीचमें बात डोकेंगे ?

“बहोँ मन्ते !”

‘उदासी ! मैं भावकोंके अनुसामनकी भावकीया नहीं रखता, बल्कि भावक मेरे ही अनुसामनको दोहराते हैं ।

“और फिर उदासी ! (४) दुःखसे उतीर्ण विगत-दुःख हो, भावक मुझे ध्याकर दुःख धर्म-सत्यको पृच्छते हैं । पृछे जानेपर उनके मैं दुःख धर्म-सत्य व्याख्यात करता हूँ । प्रश्नके उत्तरसे मैं उनके चित्तको समुद्र करता हूँ । वह ध्याकर मुझे दुःख-समुद्रव धर्म-सत्य पृच्छते हैं । दुःख-मिरोध । दुःख-मिरोध गामिनी-मतिपद् धर्म-सत्य पृच्छते हैं ।

“और फिर उदासी ! (५) मैंने भावकोंको प्रतिपद् (=मार्ग) बतका ही है । जिस पर धारण हो भावक चारों स्थितिप्रस्थानोंकी भावना करते हैं—मिथु धारणमें आपानुपस्थी हा विहरते हैं । वेदनानुपस्थी चित्तानुपस्थी धर्ममें धर्मकी अनुपस्थाना (=अनुभव) करते तत्पर स्थिति-संप्रत्यय कुछ हो मोह=धर्मनस्त्वको हटाकर धोकेमें विहरते हैं । तिममें बहुतसे मेरे भावक अमिशा-अप्यवसाव-मास=अमिशा-पारमिता प्राप्त (=बर्हत्-पर प्राप्त) हो विहरते हैं ।

और फिर उदासी ! मैंने भावकोंको (बह) प्रतिपद् बतका ही है, जिसपर धारण हो मेरे भावक चारों सम्बन्ध-वधानोंकी भावना करते हैं । उदासी ! मिथु (१) (वर्तमानमें) अद् उत्पन्न पाप=अ-दुःखक (=दुःख) धर्मोंको न उत्पन्न होने केनेक छिये अद् (=अधि) उत्पन्न करते हैं कोभिस करते हैं=धीर-आरम्भ करते हैं चित्तको निग्रह=प्रधान करते हैं । (२) उत्पन्न पाप = अ-दुःखक-धर्मोंके विनाशके छिये । (३) अनुत्पन्न कुलक-धर्मोंकी उत्पत्तिके छिये । (४) उत्पन्न कुलक-धर्मोंकी स्थिति = अर्ध-मोघ बुद्धि=विपुलताके छिये भावना पूर्व कर अद् उत्पन्न करते हैं । यहाँ भी बहुतसे मेरे भावक ( बर्हत्-पर ) प्राप्त हैं ।

“और फिर उदासी ! मैंने भावकोंको प्रतिपद् बतका ही है जिसपर धारण हो मेरे भावक चारों कृदि-पार्श्वोंकी भावना करते हैं । यहाँ उदासी ! मिथु (१) अम्ब-समाधि-प्रधान संस्कार-मुक्त कृदि-पार्श्वकी भावना कहते हैं । (२) धीर-समाधि-प्रधान-संस्कार-मुक्त कृदि पार्श्वकी भावना करते हैं । (३) चित्त-समाधि । (४) विमर्श-समाधि । यहाँ भी ।

‘और फिर उदासी ! जिसपर धारण हो मेरे भावक पाँच इन्द्रियोंकी भावना करते हैं । उदासी ! मिथु (१) उपशाम=संशोषिकी और ज्ञानेश्वरी अज्ञा-इन्द्रियकी भावना करते हैं । (२) धीर-इन्द्रिय (३) स्थिति-इन्द्रिय (४) समाधि इन्द्रिय । ।

“ । पाँच धर्मोंकी भावना करते हैं ।— अज्ञातक धीर-वक् स्थिति-वक् समाधि-वक् प्रज्ञावक् ।

। सप्त बोधि-धर्मोंकी भावना करते हैं ।—यहाँ उदासी ! मिथु विवेक आश्रित, विराग आश्रित मिरोध-आश्रित अन्वसर्ग प्रकृताक ( १ ) स्थिति-संशोषि-धर्मकी भावना करते हैं (२) धर्म विवेक-संशोषि-धर्मकी भावना करते हैं । (३) धीर-संशोषि-धर्म ।

(३) प्रीति-संबोधन । (५) प्रकृष्टि-संबोधन । (६) समाधि-संबोधन । (७) उपेक्षा-संबोधन ।

“भीर फिर धारै अर्थांगिक मार्गोकी भावना करते हैं। उदायी। वहाँ मिथु (१) सम्भर्ग-रक्षिकी भावना करते हैं। (२) सम्भर्ग-प्रकृत्य । (३) सम्भर्ग-वाक् सम्भर्ग-कर्मण्य । (५) सम्भर्ग-आशीष । (६) सम्भर्ग-आपाम । (७) सम्भर्ग-स्मृति । (८) सम्भर्ग-ममाधि । १०।

( “आठ विमोहोंकी भावना करते हैं। (१) रूपी (= रूपवादा) रूपोंको देखते हैं वह प्रथम विमोह है। (२) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) अ-रूप-संज्ञी (=रूप नहीं है-के ज्ञान बाके) बाहर रूपोंको देखते हैं । (३) शुभ ही अधिमूढ (=मूढ) होते हैं । (४) सर्वथा रूपसंज्ञा (=रूपके ब्यापक) को अतिक्रमण कर, प्रतिहिंसाके ब्यापक त्रुस होनेस तानापनके ब्यापकको मनमें ब करवेसे ‘आकाश जनत है इस आकाश-भावन्वापतनको प्राप्त हो विहरते हैं । (५) सबथा आकाशाभावन्वापतनको अतिक्रमण कर ‘विज्ञान (=चेतना) जनत है इस विज्ञान-भावन्वापतनको प्राप्त हो विहरते हैं । (६) सर्वथा विज्ञानाभावन्वापतनको अतिक्रमण कर कुछ नहीं है इस अकिंचन्वापतनको प्राप्त हो । (७) सर्वथा अकिंचन्वापतनको अतिक्रमण कर निवसज्ञा-नासंज्ञा-आपतन (= जिस समाधिआ आभास न चेतवाही कहा जा सकता है व अचेतना ही) को प्राप्त हो । (८) सर्वथा वैक-संज्ञान-संज्ञापतनको अतिक्रमण कर मज्ञा-वदित निरोध (पञ्चवेदवित-निरोध) को प्राप्त हो विहरते हैं वह अद्वैती विमोह हैं। इससे आर इसमें मेरे यदुतसे भावक (अर्हत् पर प्राप्त हैं)।

‘भीर फिर उदायी। आठ अमिथू-आपतनोंकी भावना करते हैं। (१) एक (मिथु) शरीरके भीतर (=अध्यात्म) रूपका ब्यापकबाका (= रूपसंज्ञी) बाहर सु-वर्ण दुर्बल शुभ-रूपोंको देखता है उन्हें अमिथूत कर विहरता है। वह प्रथम अमिथूतव है। (२) अन्वयममें रूप-संज्ञी बाहर सु-वर्ण दुर्बल अ-प्रमाण (= बहुत मारी) रूपोंको रणता है। उन्हें अमिथूतकर जानता हू देखता हूँ इस ब्यापकबाका हाता है। (३) अन्वयममें अ-रूप-संज्ञी (=‘रूप नहीं है’ इस ब्यापकबाका) बाहर सुवर्ण दुर्बल शुभ-रूपोंको देखता है— । (४) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर सुवर्ण-दुर्बल अ-प्रमाण रूपोंको देखता है— । (५) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी बाहर नीक=नीकवर्ण=नीक-निर्दान बीक-नीमास रूपोंको देखता है। जसकि अकसीका पूक नीक=वर्ण=नीक-निर्दान=पीक-निमास, जसेकि दुगों ओर से विमूढ (कोमल बिकना) नीक ‘बहारसी ( बाराजसक) बस; येमेही अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक (मिथु) बाहर नीक रूपोंको देखता ह—‘उनको अमिथूतकर जानता हू रणता हू इस जानता ह । (६) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी एक (मिथु) बाहर पीत (=पीक)=पीतवर्ण पीत-निर्दान=पीत-निमास रूपोंको देखता है। जैसेकि पीत अमिथूत पूक पा जैसे वह पीत बहारसी बस । (७) अध्यात्ममें अरूप-संज्ञी (पुण्य) कोहित (= काक )=कोहितवर्ण=कोहित-निर्दान=कोहित-निमास रूपोंको देखता है। जसकि

१ अ क “वही(बनारसमें)रूपसभी कोमल नृकथइवैवाकी तथा उकादे भी अनुर उक भी सु-वि विमान (ई)। वहाँका बस हातो ही भारत” कोमल और स्विग्य होता है ।”



कोहित संतुलीयक (=संतुलीयक) का कूक या जैसे काक बहारसी बख । । (४) अन्व-  
यमें अक्षय-संज्ञी अक्षयत (=संज्ञे) कर्मोंको देखाता है । जैसे कि अक्षयत तुम्हारा  
(=अक्षय-संज्ञी) या जैसेकि संज्ञे बहारसी बख । ।

“और फिर उदायी ! एक कृष्ण-आकृतन (=अस्तित्वगत) की भावना करते हैं ।  
(१) एक पुद्गल ऊपर नीचे तिष्ठे अस्तित्व अग्रमान दृष्टी-कृतन (=दृष्टी-अस्तित्व-संज्ञी  
दृष्टी ही) कावता है । (२) आप-कृतन (=सारा पानी) । (३) अक्षय-कृतन (=सारा  
तेज) । (४) वायु-कृतन (=सारी हवा/ही) । (५) शीत-कृतन (=सारा नीच/रंग) ।  
(६) पीत-कृतन । (७) कोहित-कृतन । (८) अक्षयत-कृतन (=सारा संज्ञे) । (९)  
आकाश-कृतन । (१०) विज्ञान-कृतन (=अक्षयमान विज्ञान) ।

“और फिर उदायी ! चार प्वासोंकी भावना करते हैं । उदायी ! मिथु कर्मोंसे  
अलग हो अक्षयक कर्मों (=सुरी बाँतों) से अलग हो अक्षय-विचार-सहित विवेकसे उत्पन्न  
श्रीति-सुख कर्म) मध्यम प्वासको प्राप्त हो बिहरता है । वह इसी कावाको विवेकसे उत्पन्न  
श्रीति सुख-द्वारा प्वासित, परिष्कृत करता है परिष्कृत=परिष्करण करता है । (असकी)  
इस सारी कापात्र कूक मी (अक्षय) विवेक-अ श्रीति सुखसे अक्षय नहीं होता । जैसे कि  
उदायी ! एक (=अक्षय) बहापित (=अक्षयके वाक्य) या बहापितका चेक (=अक्षयवासी)  
कर्मोंके पाकमें स्वाधीन-वर्णको अक्षयक, पानी सुखा सुखा दिखावे । तो इसकी बहाप-पित्री  
धूम (=अक्षय) अक्षयक धूम-परिष्कृत धूमसे अक्षय-बाहर किस हो रिष्कृती है ।  
ऐसेही उदायी ! मिथु इसी कावाको विवेकक श्रीति सुखसे प्वासित कापात्रित करता है  
परिष्कृत = परिष्करण करता है । ।

‘और फिर उदायी ! मिथु अक्षय’ विचारोंके उपलब्ध होवेसे ‘श्रीति अक्षयको  
प्राप्त हो बिहरता है । वह इसी कावाको समग्रिक श्रीति-सुखसे प्वासित = कापात्रित  
करता है । जैसे उदायी ! पाटाक अक्षयक रिष्कृत पात्रीका दर हो । उसके न पूर्व-दिशामें  
पात्रीके अक्षय मार्ग हो न पश्चिम-दिशामें न उत्तर-दिशामें न दक्षिण-दिशामें । दक्ष  
भी समग्र समग्रपर अक्षय तरह चार न बरसावे । तो मी उस पात्रीके दर (=अक्षय-दर)  
से अक्षयक बारीधारा कूकक उस अक्षय-दरको अक्षयक अक्षयसे प्वासित कापात्रित करै परि  
दरक-परिष्करण करै, इस सारे अक्षय दरक कूक मी (अक्षय) अक्षयक अक्षयसे अक्षय न हो ।  
ऐसे उदायी ! इसी कावाको समग्रिक श्रीति-सुखसे ।

“और फिर उदायी ! मिथु ‘दृष्टी अक्षयको प्राप्त हो बिहरता है । वह इसी कावा  
को विधीतिक (=श्रीति-रहित) सुखसे प्वासित करता है । जैसे उदायी ! अक्षयकी  
(=अक्षयक संज्ञे), पश्चिमी पुष्करिकीमें कोई कोई अक्षय पक्ष पुष्करिक पात्रीमें अक्षय  
पात्रीमें नई पात्रीसे (बाहर) न अक्षयके भीतर इधेही पीपित सुखसे सिखा तक अक्षयक अक्षयसे  
प्वासित होत है । ऐसेही उदायी ! मिथु इसी कावाको विधीतिक ।

“और फिर उदायी ! ‘अक्षय अक्षयको प्राप्त हो बिहरता है । वह इसी कावाको  
परिष्कृत=परि-अक्षयक अक्षयसे प्वासित कर बैठा होता है । । जैसे कि उदायी ! पुद्गल अक्षयक

(= इनेत) - बलसे धार तक कपेटकर बंध हो। उसकी सारी कपाक्य कुछ भी (भाग) श्वेत बलसे बनाकरादित ब हो। ऐसे ही उदायी ! मित्रु हसी कपाको । तहाँ भी मेरे बहुतसे भावक जमिशा-म्यबसाब-यास भमिशा-पारमि प्राप्त हैं ।

“और फिर उदायी ! मैंने भावकोंको यह मार्ग बतका दिया है जिस (मार्ग) पर आकरहो मेरे भावक ऐसा बनते हैं—यह मेरा सरीर रूपवान्, चातुर्महामूर्ति, माता पितासे उत्पन्न मात दाकसे बदा, मन्त्रिण्य = उच्छेद = परिमर्दन=मेदन = विष्वसन धर्मदाका है। यह मेरा विज्ञान (=नेतना) यहाँ बंधा=प्रतिबद्ध है। कम उदायी शुभ सुन्दर जाति की अटकोपी, सुन्दर पाकिश की (=सुपरिकर्मकृत) लच्छ = विभसक, सर्व-भयकर पुच्छ वैशुर्कमणि (= हीरा) हो। उसमें भीक पीठ कोहित, जवदात वा पाँह सूत पिरावा हो। इसको आँखवाक्य पुरुष हाथमें सेकर देखे—यह शुभ वैशुर्कमणि है सूत पिरावा हो। ऐसेही उदायी ! मैंने बतला दिया है। तहाँ भी मेरे बहुतसे भावक ।

“और फिर उदायी ! मार्ग बतका दिया है जिस मार्गपर आकर हो मेरे भावक इस कपासे रूपवान् (= साकार) मनीम्य, सर्वांग-मत्वग-पुच्छ अक्षरित-इन्द्रिबोपुच्छ हूसरी कावाको निर्माण करते हैं। जैसे उदायी ! पुरुष मूर्ध्मेस सीक निकाले। उसको ऐसा हो—‘यह मूर्ध्मे है यह सीक। मूर्ध्मे जलग है, सीक जलग है। मूर्ध्मेसे ही सीक निकली है। जैसे कि उदायी ! पुरुष म्वातसे लकवार निकाले। उसको ऐसा हो—‘यह लकवार है यह म्वात है। लकवार अलग है म्वात अलग। म्वातसही लकवार निकली है। जैसे उदायी ! पुरुष सर्पको पिठारीसे निकाले। ऐसेही उदायी ! मार्ग बतका दिया है।

“और फिर उदायी ! मार्ग बतका दिया है जिस मार्गपर आकर हो मेरे भावक अनेक प्रकारके अदि-विष (= बाग-बमत्कार) को अनुभव करते हैं। एक होकर बहुत हो जाते हैं। बहुत होकर एक होते हैं। आविर्भाव तिरोभाव (करत हैं) जैसे भीत-पार म्कार-पार परंत पार। अकासमें जैसे बिना छेप (पार) हो जाते हैं। पृथिवीमें भी बूबवा उतरावा करते हैं जैसे कि अकमें। पानीमें भी बिना भीये चकते हैं जैसे कि पृथिवीमें। बहि (= अकृमी) की माति अयसन बाँधे आकाशमें चकते हैं। इतने महर्दिक=महासुमाव (= तेजस्वी) इन अदि-सर्वको भी हाथसे छुते हैं। ब्रह्मकोक तक कपासे बरामे रखते हैं। जैसे उदायी ! अनुर कु भकार वा कु भकारका बेका सिझाई मिझीसे जो जो कितोच मात्रक चाहे उसी उसीकी बनावे = निष्पादन करे। या जैसे उदायी ! अनुर इन्तकार (= उदायीके दंतक्य काम करनेवाक्य) वा इंतकारका बेका सिझाये दंतसे जो जो दंत-बिहृति (= दंतकी बीज) चाहे, उसे बनावे = निष्पादन करे। या जैसे उदायी ! अनुर सुवर्च-कार वा सुवर्चकारका बेका सिझाये सुवर्चसे जिस जिस सुवर्च बिहृतिको चाहे उसे बनावे। ऐसे ही उदायी !

“और फिर उदायी ! जिस मार्ग पर आकर हो मेरे भावक दिव्य विद्युत्, जमानुष मोत्र-वानु (= अवन) से दिव्य और मानुष, वृषर्तों अर समीपवर्तों दोबोही तरहक शम्हीं को सुकते हैं। जैसे कि उदायी ! बलवान् शंख-वमक (= शंख-वज्रनेवाका) अण्ड-मवाससे पारों विसाजोंको बतकावे। ऐसेही उदायी ।

“और फिर उदायी ! जैसे मार्ग पर आरुह हो मेरे आचक दूसरे सत्त्वों-दूसरे पुद्गलों के चित्तको (अपने) चित्तद्वारा धारते हैं। सराग चित्तको 'राग सहित (यह) चित्त है जानते हैं। वीतराग चित्तको 'वीत-राग चित्त है जानते हैं। सङ्गेव चित्तको 'स-ङ्गेव चित्त है' जानते हैं। वीत-रूप चित्त । स-मोह चित्तको । वीत-मोह चित्तको । संक्षिप्त चित्तको । विक्षिप्त चित्तको । महद्गत ( = विद्याक ) चित्तको । न-महद्गत चित्तको । स-उत्तर ( = जिससे बढ़कर भी है ) चित्तको । अन्-उत्तर चित्तको । समाहित (अपकाय) चित्तको । न-समाहित चित्तको । विमुक्त ( = मुक्त ) चित्तको । न-विमुक्त चित्तको । जैसे उदायी ! कोई सौकीय भी वा पुद्गप बाधक वा तटल । परिशुद्ध = परिबधवात् वर्णन ( = भावार्थ ) या स्वच्छ अक्षरों के पात्रों अपने मुक्त-निमित्त ( = मुक्तकी सत्क ) को देखते हुये स-कथिक अंग होने पर स-कथिकांग ( = सद्योप संय ) जाने न-कथिकांग होनेपर न-कथिकांग जाने । ऐसेही उदायी । ।

“और फिर उदायी ! जिस मार्ग पर आरुह हो मेरे आचक अनेक प्रकारके पूर्व विधासों ( = पूर्ववर्तियों ) को जानते हैं । जैसे कि एक जाति ( = जन्म ) भी, दो जातिमी तीन जातिमी चार जातिमी, पाँच जातिमी बीस जातिमी तीस जातिमी चासीस जातिमी पचास जातिमी सा जातिमी हजार जातिमी सौ हजार जातिमी अनेक, संवर्त-कल्पों ( = महाप्रलयों ) को भी अनेक विवर्त-कल्पों ( = चरित्रों ) को भी अनेक संवर्त-विवर्त-कल्पों-को भी 'मैं' वहाँ इस नाम इस गोत्र इस वर्ण, इस जाहार बाका, ऐसे मुक्त-दुक्तको अनुभव करन-बाका इतनी आधु पर्यन्त था । सो मैं वहाँसे च्युतहो वहाँ उत्पन्न हुआ । वहाँ भी मैं इतनी आधुपर्यन्त रहा । सो वहाँसे च्युत ( = च्युत ) हो वहाँ उत्पन्न हुआ' । इस प्रकार स आकार ( = भावृति-सहित ) स-उद् स ( = नाम-सहित ) अनेक प्रकारके पूर्व-विधासोंको अनुस्मरण करते हैं । जैसे उदायी ! पुरुष अपने प्रामसे दूसरे प्राममें जाये । उस प्रामसे भी दूसरे प्रामको जाने । वह उस प्रामसे अपनेही प्रामको खीट जाये । उसको ऐसाहो—'मैं अपने प्रामसे बस गाँवको गया । वहाँ ऐसे बड़ा हुआ पेश बैठा पेश बोका ऐसे चुप रहा । उस प्रामसे भी उस प्रामको गया । वहाँ भी ऐसे बड़ा हुआ ।

“और फिर उदायी । जैसे मार्ग पर आरुह हो मेरे आचक दिव्य विद्वद्, न-मानुष चक्षुस इति प्रसीत ( = उत्पन्न ) सुवर्ण सुवर्ण सु-गत सुगत सत्त्वोंको च्युत होते उत्पन्न होते देखते हैं । कर्मानुसार ( गतिको ) प्राय सत्त्वोंको जानते हैं—'वह आप सत्त्व काय बुद्धिरतसे पुच्छ, बाग-बुद्धिरतसे पुच्छ, मन-बुद्धिरतसे पुच्छ जानोंके विन्ध्य मिथ्या-दधि, मिथ्या दधि कर्मको स्वीकार करनेवाले (वे) वह कावा छोड़ मरनेके बाद अयाव-सुगति-विनिपात लक्ष्में उत्पन्न हुये । और वह आप सत्त्व काय-सुचरितसे पुच्छ जायोंके अन् उत्पन्न ( = अविच्छेद ) सम्भव-दधि सम्भव-दधिकर्मको स्वीकार करनेवाले (वे), वह सुगति = स्वर्गकोकर्म उत्पन्न हुये हैं' । इस प्रकार दिव्य चक्षुस देखते हैं । जैसे उदायी ! समाव-हारवाले हो वर (हैं) वहाँ आँसुवाका पुद्गप बीचमें बड़ा मनुस्त्वोंको धरमें प्रवेश करते भी बिकल्पते भी, अनुसंभरण विचरण करते भी देखे । ऐसे ही उदायी ! ।

“और फिर उदायी ! जिस मार्गपर आरुहहो मेरे आचक आसुओंके विधाससे अन् आरुह ( = निर्मल ) चित्तकी विमुक्ति प्रज्ञा-विमुक्तिको हमी जन्ममें स्वर्ण जानकर साक्षात्

कर प्राप्तकर विहरते हैं। जैसे कि उदायी ! पचतमे घिरा अष्ट = द्विप्रसन्न = अन् भावित उदक-इत् (= उदकाद्य ) हो। वहाँ भाँखबाका पुरुष तीरपर लडा सीपको कंकड़ परपरको भी चकते लड़े मात्प-सु उको भी देख। देखेही उदायी ! ।

“बह है उदायी ! पाँच धर्म विवसं मुझे आवक एवते हैं । ।

भगवान् ने यह कहा सङ्कुल उदायी परिव्राजकनै भगवान् के भापजका अनुमोदन किया ।

सिगाळोषाद्-सुत्र

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें वेणुधन कल्लन्द-निवापमें विहार करते थे ।

उस समय सिगाळ (=सूगाळ) नामक गृहपति-पुत्र सबैरही उठकर, राजगृहमें निकल कर मीरे-बद्ध, मीरे-केस हाथ जोड़ पूर्व-दिशा दक्षिण-दिशा पश्चिम-दिशा उत्तर दिशा नीचेकी दिशा ऊपरकी दिशा—आवा दिशाओंको नमस्कार कर रहा था ।

तब भगवान् पूर्वाह्न-समय नीचेर पश्चिमकर पात्र-नीचेर सं राजगृहमें सिगाळे किपू प्रविष्ट हुए । भगवान् ने सिगाळको आवा दिशाओंको नमस्कार करते देखा । देखकर सिगाळ गृहपति-पुत्रको यह कहा—

“गृहपति-पुत्र ! तू क्या सबेर ही उठकर नमस्कार कर रहा है ?”

मन्ते ! मेरे पिताने मरण बन्ध मुझे यह कहा है—‘तात ! दिशाओंको नमस्कार करना । सो मैं मन्ते ! पिताके बचकका सत्कार करते = शुभकार करते मान करते = पूजा करते सबेर ही उठकर नमस्कार कर रहा हूँ ।

“गृहपति पुत्र ! आर्य-विनय (= आर्यधर्म ) में इस तरह उ दिशापे नहीं नमस्कार की जाती ?”

“किर कैसे मन्ते ! आर्य-विनय में उ दिशापे नमस्कार की जाती है ? मन्ते ! अच्छा हो जैसे आर्य-विनयमें दिशापे नमस्कार की जाती है जैसे भगवान् मुझे धर्म-उपदेश करें ?”

“तो गृहपति-पुत्र ! सुनो अच्छी तरह मन्ते करो कइता हूँ ।”

‘अच्छा मन्ते !’—इह सिगाळ गृहपति-पुत्रने भगवान् को उत्तर दिया ।

भगवान् ने यह कहा—

‘गृहपति-पुत्र ! जब आर्य-आचकके चार कर्म-नकेस हुए जाते हैं । चार स्वामीसे (बह) पाप-कर्म नहीं करता । मोगों (=बन)के विनासके उ कारजों को नहीं सेवक करता । (तब) वह इस प्रकार चौदह पावों (=चुराहवों) में रहित हो उ दिशाओंको आच्छादित कर लोगों कोऊँके दिव्यधर्म संकल्प होता है । उसका यह कीक भी आराधित होता है परकोक भी । वह कदा छोड़नैपर मरणके बाद सुगति स्वर्गकोकर्म उत्पन्न होता है ।

कैसे इसके चार कर्म-नकेस हुए हैं ? गृहपति-पुत्र ! (१) प्राण्यतिपात (=हिंसा) कर्म-नकेस है । (२) अद्रुतादान (=भारी) । (३) मृदाबाद (=मूठ) = । (४) काम-मिच्छाचार । उसके बह चारों नकेस हुए जाते हैं ।”

भगवान् ने यह कहा । यह कहकर सुगत सालाने यह भी कहा—

“प्राण्यतिपात अद्रुतादान मृदाबाद (को) कहा जाता है ।

आर परदार-गमन ( हलकी ) पंडित मर्यादा नहीं करते ॥

“किं चार स्वामीसे पापकर्मको नहीं करता । (१) छत्र (अथवेध्याचार)के रास्तेमें जाकर पापकर्म करता है । (२) छत्रके रास्तेमें जाकर । (३) मोहके । (४) भयके । वृत्ति गृहपति-पुत्र । जायै आशयक व छत्रके रास्ते जाता है । न छत्रके , न मोहके , न भयके । ( अतः ) इह चार स्वामीसे पापकर्म नहीं करता ।—मगवान् न वह कदा । वह कहकर शाश्वत सुगतमे फिर वह भी कदा—

“छत्र, होय भय और मोहसे जो धर्मको अतिक्रमण करता है ।

छत्रपक्षके चन्द्रमाकी भौति उभय पक्ष क्षीण होता है ।

छत्र ह प, भय और मोहसे जो धर्मको अतिक्रमण नहीं करता ।

छत्रपक्षके चन्द्रमाकी भौति उभय पक्ष वृद्ध होता है ।

“श्रीमते छ भोगोंके अपाययुक्त (= विवाहके कारण ) हैं । (१) सराव नशा शक्ति का सेवन । (२) विकार (= संख्या)में चौरस्तेकी संर (= विसिद्धा-वरिया)में तत्पर होना । (३) समज्या (= समाज = नाच-तमाशा)का सेवन । (४) ब्रूना (और दूसरी) विभाग विद्यालयेकी चीजें । (५) घुरे मित्र (= पाप-मित्र)की मिठाई । (६) धाकस्वमें रीसबा ।

गृहपति-पुत्र ! सराव-नशा आदिके सधनमें छ दुष्परिणाम हैं । (१) तत्काक चक्की हाथि । (२) ककहक बचना । (३) (बह) रोगोंका घर है । (४) अपस उत्पन्न करनेवाला है । (५) कजा नाश करनेवाला है । और छठे (६) बुद्धि (= प्रज्ञा)को दुर्बल करता है ।

“गृहपति-पुत्र ! विकारमें चारस्तेकी संरके चार दुष्परिणाम हैं । (१) स्वयं भी वह न-गुप्त = न-रक्षित होता है । (२) उसके भी पुत्र भी न-गुप्त-नरक्षित होते हैं । (३) उसकी भव-संपत्ति भी नरक्षित होती है । (४) घुरी बातोंकी संख्या होती है । (५) छड़ी बात उस पर कम्पू होती है । (६) बहुतसे दुःख कारण कामोंका करनेवाला होता है । ।

“गृहपति-पुत्र ! समज्यामिचरकमें छ दोष (= अशुभ ) हैं । (१) (नाच) कहीं नाच है इसकी परेशानी । (२) कहीं वाद्य है । (३) कहीं जाल्मान है ? (४) कहीं पाणिखर ( हाथसे ताक बेकर मूल धीत ) है ? (५) कहीं कुम्भ-मूल (बादल-विरोध) है ?

“गृहपति पुत्र ! घृत प्रसाद आशयके न्यसवमें छ दोष हैं । (१) नव ( होमैर ) ईर उत्पन्न करता है । (२) पराक्षित होमैर ( हारे ) बनकी सीध करता है । (३) तत्काक नवका कुकसाव । (४) समामें जानेपर नवका विश्वास नहीं रहता । (५) मित्रों और अमात्सी द्वारा तिरस्कृत होता है । (६) शाही-विवाह करनेवाके—यह सुचारी श्यामी है जो का भरण-पोषण नहीं कर सकता—सोच ( कम्पा देवमें ) अशुभ करते हैं ।

“गृहपति-पुत्र ! बुद्ध-मित्रकी मिठाईके छ दोष होते हैं । जो (१) चूर्त (२) स्तम्भ, (३) पिबक ( अतिपास ) (४) कुत्तव्य (५) बंचक और (६) गुण्डे (= साहसिक कृषि ) होते हैं वही इसके मित्र होते हैं ।

“गृहपति-पुत्र ! अशुभस्वमें पक्षमें वह छ दोष हैं—(१) ( इस समय ) बहुत ईश्वर है ( सोच ) काम नहीं करता । (२) 'बहुत गर्म है'—( सोच ) काम नहीं करता ।

(१) 'बहुत काम हो गई है (सोच) । (२) 'बहुत सवेरा है । (३) 'बहुत मूका हूँ ।  
 (४) 'बहुत लाबा हूँ इस प्रकार बहुतसी करणीय बातोंको ( न करके उसको )  
 अनुत्पन्न मोग उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न मोग नष्ट हो जाते हैं । । मगवाग्ने वह कहा ।  
 यह कहकर सास्ता सुगतने फिर यह भी कहा—

'ओ (मध्य-)पात्रमें सखा होता है, ( सामने ) मित्र बनता है, (वह मित्र नहीं) ।

ओ काम हो जानेपर भी मित्र रहता है नहीं सखा है ।

अति-विज्ञा पर-स्त्री गमन, वर उत्पन्न करना और जनन करना ।

बुरेकी मित्रता और बहुत कंजूसी यह छ मनुष्यों को बर्बाद कर देते हैं ॥

पाप-मित्र (=बुरे-मित्रबाका), पाप-सखा और पापाचार में अनुरक्त ।

मनुष्य इस लोक और पर(लोक) दोनोंसे ही नष्ट-मष्ट होता है ॥

जूबा, स्त्री बालमी, मृत्यु-गीत दिनकी मित्रा चार अ-समनकी सेवा ।

बुरे मित्रोंका होना और बहुत कंजूसी यह छ मनुष्यको बर्बाद कर देते हैं ॥

(ओ) जूबा बंधते हैं सुरा पीते हैं परापी प्राप्त-प्यारी विसों (का यमन करते हैं) ।

भीषण सेवन करते हैं, पंचितका सेवन नहीं (बह)रूप-पक्षकी अज्ञानसे क्षीण होत हैं ॥

ओ बालमी(रत) निर्धन मुहताज पियङ्ग प्रमादी (होता है) ।

(ओ) पार्थकी तरह ज्ञानमें अज्ञानाह्व करता है (बह) शीघ्रही अपनेको प्याकुल करता है ।

दिनमें मित्राक्षीक रातको उदमें सुरा माननेबाका ।

सखा (बचामें) मस्त सीढ गृहस्त्री (=पर-आवास) नहीं कर सकता ॥

'बहुत क्षीण है 'बहुत उष्ण है 'अथ बहुत सख्या हो गई' ।

इस तरह करते मनुष्य जन-हीन हो जाते हैं ॥

ओ पुरुष काम करते क्षीण-उष्णको तुलसे अधिक नहीं मानता ।

यह सुकसे बंचित होबैबाका नहीं होता ॥

"गृहपति-सुत्र । इन चारोंको मित्रके रूपमें अमित्र (=सन्धु) जानना चाहिये ।

(१) पर-जन-द्वारकको मित्र-रूपमें अमित्र जानना चाहिये । (२) केवल बात बनानेबाकोके ।

(३) (सदा) शिष्य बचन बोलनेवालेको । (४) अपाव (=दायिकर कुर्वीमें-सहायकको ।

गृहपति पुत्र । चार बातोंसे पर-जन-द्वारकको ।—

(१) पर-जन-द्वारक हाता है । (२) बोदे ( चक्र ) द्वारा बहुत ( पाला ) चाहता है ।

(३) अथ अविपत्ति का काम करता है । (४) चार म्बार्थके किये सेवा करता है ॥

"गृहपति-सुत्र । चार बातोंमें बन्धुपरम (=केवल बात बनानेबाका) को ।—

(१) मृत (कालिक वस्तु) की प्रशंसा करता है । (२) मन्त्रिककी प्रशंसा करता है ।

(३) निरर्थक (बात) की प्रशंसा करता है । (४) बर्तमानके काममें विपत्ति प्रवर्धन करता है ॥

गृहपति-सुत्र । चार बातोंसे मित्रसाक्षी (= मित्र बचन बोलनेबाके ) को ।—

(१) बुरे काममें भी अनुमति देता है (२) अच्छे काममें भी अनुमति देता है । (३)

सामने वारीक करता है । और (४) पीढ-पीढे लिप्ता करता है

"गृहपति पुत्र । चार बातोंसे अपाव सहायकको ।—

(१) सुरा मेश्वर मद्य-पान ( जसे ) प्रमादके काममें र्जसवैमें साथी होता है । (२) वैश्वानर और मृगशिरस में साथी होता है । (३) समग्ना देवतामें साथी होता है । (४) श्वा लेकने ( जैसे ) प्रमादके काममें साथी होता है ।

मगबागूने यह कहकर फिर यह भी कहा—

‘पर धन-हारी मित्र और जो बर्षीपरम मित्र है ।

मित्र भाभी मित्र और जो अपावोंमें सखा है ॥

यह चारो अमित्र हैं ऐसा जानकर पंडित (पुरुष) ।

बतरे-बाके शास्त्रकी भौंति (उन्हे) दूरसे ही छोड़ दे ॥

‘गृहपति-पुत्र ! इन चार मित्रोंको सुझइ जानना चाहिये ।—

(१) उपकारी मित्रको सुझइ जानना चाहिये । (२) सुख-दुःखको समान भोगनेवाले मित्रको । (३) अर्ध ( श्री-प्राप्तिके उपवाक्यको ) कहनेवाले मित्रको । (४) अशुभपक मित्रको ।

“गृहपति-पुत्र चार बातोंसे उपकारी मित्रको सुझइ जानना चाहिये—

(१) प्रमत्त ( = मूक करनेवाले ) की रक्षा करता है । (२) प्रमत्तकी संपत्तिकी रक्षा करता है । (३) भयभीतकम रक्षक ( = सारण ) होता है । (४) काम पक्ष जाननेपर, उसे दुःखना पक्ष उपपन्न करवाता है ।

‘गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे समान-सुख-दुःख मित्रको सुझइ जानना चाहिये—(१) इसे गुण (बात) बतकाता है । (२) हमकी गुण-बातको गुण रक्ता है । (३) व्यपहर्में इसे बर्षों छोड़ता (४) इसके किए प्राप्त भी लेकने लैवार रहता है ।

‘गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अर्ध-आकवाची मित्रको सुझइ जानना चाहिये—

(१) पापका निवारण करता है । (२) पुण्यज्म प्रवेश कराता है । (३) अ-शुभ (विद्या) को श्रुत करता है । (४) स्वर्गका मार्ग बतकाता है ।

“गृहपति-पुत्र ! चार बातोंसे अशुभपक मित्रको सुझइ जानना चाहिये—

(१) मित्रके (बन्ध-संपत्ति) होनेपर लुप्त नहीं होता । (२) होनेपर भी लुप्त नहीं होता । (३) (मित्रकी) मित्रता करनेवालेको रोकता है । (४) प्रसंसा करकेपर प्रसंसा करता है । १ यह कहकर फिर यह भी कहा—

‘जो मित्र उपकारक होता है सुख-दुःखमें जो सखा (बन्ध) रहता है ।

जो मित्र अर्ध-आकवाची होता है चार जो मित्र अशुभपक होता है ॥

परी चार मित्र हैं बुद्धिमान् ऐसा जानकर ।

सन्कार-पूर्वक माता-पिता और पुत्रकी भौंति इनकी सेवा करे ।

सहाचारी पंडित मनुमन्थकी भौंति भोगोंको संख्य करते ।

प्रत्यक्षित अग्निकी भौंति प्रकृतप्रमाण होता है ॥

(उत्सवों) भोग ( अर्धपत्ति ) जैसे बस्नीक बड़ता है, बस बन्ते हैं ॥

हम प्रकार भोगोंका संख्यकर अर्ध-संपन्न बुद्धिवाक्य (जो) गृहस्थ ।

चार भागमें भोगोंको विभाजित करे बड़ी मित्रोंको पावैगा ॥

एक भागको स्वर्ण भाग दो भागोंको काममें कमावे ।

चौथे मागको अर्थानुसार काम धानेके किये रखाउने हेतु ।

‘गृहपति पुत्र ! यह दिशार्थे आशनी चाहिये । माता-पिताको पूर्व-विद्या जानना चाहिये । आचार्योंको दक्षिण-विद्या जाननी चाहिये । पुत्र-श्रीको पश्चिम-विद्या । मित्र-अमात्योंको उत्तर-विद्या । दास-कर्मकरकी मीथकी विद्या । अमण-माद्यमोंको ऊपरकी विद्या ।

‘गृहपति-पुत्र ! पाँच तरहसे माता-पिताका प्रत्युपस्थापन (= सेवा) करना चाहिये ।

(१) (इन्होंने मेरा) भरण-पोषण किया है अतः मुझे (इनका) भरण-पोषण करना चाहिये ।  
 (२) (मेरा काम किया है अतः) इनका काम मुझे करना चाहिये । (३) (इन्होंने कुम्ह-बंस कायम रखा अतः) मुझे कुम्ह-बंस कायम रखा चाहिये । (४) इन्होंने मुझे दास (= ब्राह्मण) दिया अतः मुझे दास प्रतिपादन करना चाहिये । सुत मेंतोंके मिमित्त प्राङ्-दान देना चाहिये । इन पाँच तरहसे सेवित (माता-पिता) पुत्रपर पाँच प्रकारसे अनुकंपा करते हैं—(१) पापसे निवारण करते हैं । (२) पुत्रमें लगाते हैं । (३) सिद्ध सिद्धकाले हैं । (४) योग्य कीसे संबंध कराते हैं । (५) समय पाकर दास्य विष्णादन करते हैं । गृहपति-पुत्र ! इन पाँच बातोंसे पुत्रद्वारा माता-पिता-रूपी पूर्व-विद्या प्रत्युपस्थापन की जाती है । इस प्रकार इस (पुत्र) की पूर्व-विद्या प्रतिष्ठा (= बंधकी रक्षाबुद्ध) धर्म-युक्त, भय-रहित होती है ।

‘गृहपति-पुत्र ! पाँच बातोंसे सिष्यद्वारा आचार्य-रूपी दक्षिण-विद्या प्रत्युपस्थापन (= उपासना) की जाती है । (१) अन्नान (= उत्प्रेरता) से (२) उपस्थान (= हाजिरी = सेवा) से (३) सुश्रूपासे (४) परिचर्या = सत्संग से सत्पुत्र-पूर्वक सिष्य सीकनेसे ।

गृहपति-पुत्र ! इस प्रकार पाँच बातोंसे शिष्यद्वारा आचार्य सेवित हो पाँच प्रकारसे सिष्यपर अनुकंपा करते हैं—(१) सु-विनयसे युक्त करते हैं । (२) सुन्दर सिद्धाको मन्त्री प्रकार सिद्धकाले हैं । (३) ‘हमारी (विद्या) परिपूर्ण रहूँगी सोच सभी सिष्य सभी सुत (= विद्या) को सिद्धकाले हैं । (४) मित्र-अमात्योंको सुप्रतिपादन करते हैं । (५) विद्याकी सुरक्षा करते हैं ।

‘गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारसे स्वामि-द्वारा मार्गा-रूपी पश्चिम-विद्याका प्रत्युपस्थापन करना चाहिये । (१) सम्मानसे (२) अपमान से करणसे (३) अतिचार (पर-श्री-यमान धारि) न करनेसे (४) पेरुबर्ष प्रदायसे (५) अन्नकार प्रदायसे । गृहपति-पुत्र ! इन पाँच प्रकारोंसे स्वामिद्वारा मार्गा-रूपी पश्चिम-विद्या प्रत्युपस्थापनकी जाँचपर, स्वामिपर पाँच प्रकारसे अनुकंपा करती है—(१) (मार्गाद्वारा) कर्मान्त (= कर्म-आज) मन्त्री प्रकार होते हैं । (२) परिचर्य (= मीठर-आकर) बसने रहते हैं । (३) (स्वर्ष) अतिचारिणी मन्त्री होती । (४) अमितकी रक्षा करती है । ( ) सब कामोंमें निराकरण और दृष्ट होती है ।

गृहपति पुत्र ! पाँच प्रकारसे मित्र-अमात्य रूपी उत्तर-विद्याका प्रत्युपस्थापन करना चाहिये—(१) दाससे (२) मित्र-वचनसे (३) अर्थ-वर्षा (= काम कर देने)से (४) सम्मानता (पर्याप्त)से (५) विश्वास प्रदानसे । गृहपति पुत्र ! इन पाँच प्रकारोंमें प्रत्युपस्थापन की गई मित्र-अमात्यरूपी उत्तर-विद्या पाँच प्रकारसे (उत्त) कुम्ह-पुत्रपर अनुकंपा करती है—(१) वसाए (= पूर्य आकर) कर देवेपर रक्षा करते हैं । (२) प्रमत्तकी संपत्तिकी रक्षा करते हैं ।



(३) भवभीत होनेपर शरण (ऋण्यक) होते हैं । (४) आपत्काममें वहीं छोड़ते । (५) दूसरी पक्षा (= भोग) में (ऐसे मित्र-अमान्यतामें) इस पुरुषका सम्भार करती है ।

‘गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारोंसे आर्थिक (= मासिक) द्वारा शास-कर्मकर रूपी निष्कामी-विज्ञान प्रस्तुपस्थान करना चाहिये—(१) बलसे अनुसार कर्माणि (= काम) देनेमें (२) भीजन-वैतप (मत्त-वैतप) बहावमें (३) रोगि-मुग्धतामें (४) उत्तम रतों (बाध पराधों)को प्रदान करनेसे (५) समयपर सुदृष्टी (= बोध) देनेमें । गृहपति-पुत्र ! इन पाँचों प्रकारोंमें— प्रस्तुपस्थान किये जानेपर शास-कर्मकर पाँच प्रकारमें मासिकपर अनुकंपा करते हैं—(१) (मासिकसे) पहिले (विस्तारमें) उठ जानेवाले होते हैं । (२) पीछे सोनेवाले होते हैं । (३) दिनेको (ही) देनेवाले होते हैं । (४) कर्माको अच्छी तरह करनेवाले होते हैं । (५) कीर्ति प्रशंसा देनेवाले होते हैं ।

गृहपति-पुत्र ! पाँच प्रकारमें कुल-पुत्रको भ्रमण-प्राप्त्यन्तकी ऊपरकी विज्ञान प्रस्तुपस्थान करना चाहिये । (१) मीठी-शाव-मुक्त आर्थिक-कर्मसे (२) मीठी-शाव-मुक्त आर्थिक-कर्मसे (३) मासिक-कर्मसे (४) (बाधकों-मिथुनोंके सिने) सुके-हारवाक्य होनेसे (५) ध्यापिप (खान-शाव आर्थिक बस्तु)के प्रदान करनेमें । गृहपति-पुत्र ! अनुकंपा करते हैं—(१) पाप (दुर्गति)से निवारण करते हैं । (२) कल्याण (= मङ्गल)में प्रवेश कराते हैं । (३) कल्याण (भवाव)-द्वारा स्वपर अनुकंपा करते हैं । (४) अशुभ (विद्या)को सुगमते हैं । (५) सुभ (विद्या)को उद करते हैं । (६) स्वर्गाका रास्ता बतलते हैं ।

ऐसा कहनेपर सिगाक गृहपति-पुत्रसे भगवान्को यह कहा—‘आश्चर्य ! मन्ते ! ! अस्मृत ! मन्ते ! ! आशसे मुझे भगवान् अञ्जलि-बद्ध भ्रमणागत उपासक धारण करें !’

x

x

x

x

( ९ )

### चूल-सुकुलवापि-सुप्त (ई पू ५१२)

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजपुत्रमें जेणुवन कल्याणक-निवापमें विहार करते थे । उस समय सकुल उद्यायी परित्राजक महती परिष्कके साथ बरिवाक करारमें वास करता था ।

‘भगवान् पूर्वाह्न समय । जहाँ सकुल उद्यायी परित्राजक था वहाँ गये । तब सकुल-उद्यायी परित्राजक ने भगवान् को कहा—‘बाह्ये मन्ते ।

। ‘जाने हीजिये मन्ते ! इस कथाका । जब मैं मन्ते ! इस परिष्कके पास नहीं होता । तब वह परिष्क जेके प्रकारकी प्यर्बकी कथायें (तिरच्छाज-कथा) कहती बैठती है । और जब मन्ते ! मैं इस परिष्कके पास होता हूँ तब वह परिष्क मेरा ही मुख देखती बैठती होती है—‘हमें भ्रमण उद्यायी को कहीया उछे सुनैंगे । जब मन्त ! भगवान् इस परिष्कके पास होते हैं, तब मैं और वह परिष्क भगवान्का मुख टाकती बैठती होती है—‘भगवान् हमें जो धर्म उपदेश करेंगे उसे हम सुनैंगे ।

उदायी ! तुझे ही जो मालूम पर्यं तुझे कह ।

“विष्णुके दिनों भन्ते ! ( जो वह ) सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, विविक्त-ज्ञान पूर्वात्त (—जाता) होनेका वाचा रखते हैं—‘कल्पने पर्यं छोटे जागते भी ( तुझे ) निरन्तर ज्ञान-वर्षण उपरिच रहता है’ । वह मेरे आरंभ-संबंधी प्रश्न पूछनेपर इधर-उधर जाने लगे बाहरकी कदमों जाने लगे । उन्होंने क्रोध रूप और अभिश्वास प्रकट किया । प्रश्न भन्ते ! तुझे मगधान के ही प्रति प्रीति उत्पन्न हुई—अहो ! निश्चय मगधान् ( है ) नहीं । निश्चय सुगत ( है ) जो इन घर्मोंमें पंडित ( =कुशल ) हैं ।’

“काल है वह उदायी ! सर्वज्ञ-सर्वदर्शी० जो कि तेरे आरंभ-संबंधी प्रश्न पूछनेपर इधर उधर जाने लगे अभिश्वास प्रकट किये !”

‘भन्ते ! निरांत माघ-पुत्र ।

“उदायी ! जो अनेक प्रकारके पूर्व-अर्थोंको जानता है । वह तुझे आरम्भ ( =पूर्व अन्त) के विषय में प्रश्न पूछे, और उसको मैं पूर्वान्तके विषयमें प्रश्न पूछूँ । वह मेरे पूर्वान्त विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, मेरे विषयको प्रसन्न करे । तब मैं उसके पूर्वान्त विषयक प्रश्नका उत्तर देकर, उसके विषयको प्रसन्न करूँ । जो उदायी ! विषय चक्षुसे सरबोंको प्युत होते उत्पन्न होते देखता है । वह तुझे दूसरे छोर ( =अपर-अन्त) के विषयमें प्रश्न पूछे मैं उसे दूसरे छोरके विषयमें प्रश्न पूछूँ । वह मेरे प्रश्नका उत्तर दे, मेरे विषयको प्रसन्न करे, और मैं उसके विषयको । ना उदायी ! जाने दो पूर्व-अन्त जाने दो अपर-अन्त । मैं तुझे वर्म बलप्रकार हूँ—‘ऐसा होवेपर, यह होता है इसके उत्पन्न होनेसे यह उत्पन्न होता है । इसके न होनेपर वह नहीं होता । इसके विरोध ( =विनाश) होनेपर वह विच्छेद होता है ।

“भन्ते ! जो कुछ कि इसी शरीरमें अनुभव किया है मैं तो उसे भी आकार-उद्देश्य सहित स्मरण नहीं कर सकता कहींसे भन्ते ! मैं अनेक-विधित पूर्व-निवासों ( =पूर्व-अर्थों) को स्मरण करूँगा—कैसे कि मगधान् भन्ते ! मैं इस बल पांशु-पिशाचक ( =पुच्छक) को भी नहीं देखता कहींसे फिर मैं विषय चक्षुसे सरबोंको प्युत उत्पन्न होते देखूँगा कैसे कि मगधान् ? भन्ते ! मगधान् जो तुझे कहा—‘उदायी ! काल हा पूर्वान्त इसके विरोध होनेपर वह विच्छेद होता है । यह मेरे किये अधिक पसन्द आता है । क्या भन्ते ! मैं अपने मत ( =आचार्यक)के अनुसार प्रकृतार हूँ, मगधान्के विषयका प्रसन्न करूँ ।

“उदायी ! तेरे ( अपने ) मतमें क्या है ?”

‘हमारे मत ( =आचार्यक)में भन्ते ! ऐसा ह—‘वह परम-वर्ण ( है ) यह परम-वर्ण ( है ) ।’

‘उदायी ! आ यह तेरे आचार्यकमें ऐसा होता है—‘वह परम वर्ण यह परम-वर्ण’ वह काल या परम-वर्ण है ?

“भन्ते ! त्रिष वर्णस उत्तर-तर-आ प्रजीवतर ( =उत्तमत) दूसरा वर्ण नहीं है, वह परम-वर्ण है ।’

“कौन है उदायी ! वह वर्ण, जिससे प्रजीवतर दूसरा वर्ण नहीं है ?

“मन्ते ! जिस वन (= रङ्ग)मे प्रतीतार (= अधिक उत्तम) दूधरा वन नहीं है, वह परम-वर्ण है ।

“उदायी ! वह तरी (बात) दीप- (कालक) मी चक—जिम वनमे प्रतीतार दूधरा वर्ण नहीं तो मी दू उस वर्णको नहीं बतला सकता । जैसे कि उदायी ! (कोई) पुण्य पूजा करे—मैं जो इम अक्षर (= देश)में जो अक्षर इन्पाणी (= मुन्दर रियोकी राणी) है, उसको चाहता हूँ” तो क्या मानते हो उदायी ! क्या ऐसा होवेवा उम पुण्यका कवन अ-पामाधिक नहीं होता ?”

“अक्षर मन्ते ! ऐसा होवेपर उस पुण्यका कवन अपामाधिक होता है ।”

“दूमी प्रकार दू उदायी !—जिस पर्यसे प्रतीत-तर दूधरा वर्ण नहीं वह परम वर्ण है, और उस वर्णको नहीं बतलाता ।”

“जम मन्ते ! सुभ्र उत्तम आठिकी अरकोपी पाकिसकी हुई वैदुय-मणि (=दीरा), पाङ्क-कवल (=काल-दीराके)में रही भासित होती है कमकती है, विरोधिन जाती है मरनेके बाद भी आत्मा हमी प्रकारके वर्णवासा हो अरोग (= अ-बिवासी) होता है ।”

“ता क्या मानते हो उदायी ! सुभ्र वैदुय-मणि विरोधित होती है आर जा वह रातक अक्षरमें लुगन् कीड़ा है इन दोनों वर्णों (= रङ्गों)में कान अधिक कमकीका (= अमिकातर) आर प्रतीतार है ?”

“जो यह मन्ते ! रातक अक्षरमें लुगन् कीड़ा है वही इन दोनों वर्णोंमें अधिक कमकीका है ।

“ता क्या मानते हो उदायी ! जा वह रातके अक्षरमें लुगन् कीड़ा है और जो वह रातक अक्षरमें लेक प्रतीय ( है ), इन दोनों वर्णोंमें कानमा अधिक कमकीका वा प्रतीतार है ?”

“मन्त ! वह जा रातके अक्षरमें लेक प्रतीय है ।

“ता क्या मानते हो उदायी ! जा वह रातके अक्षरमें लेक प्रतीय है आर जा वह रातके अक्षरमें महान् अति-रङ्ग (= आकाश रंग) है । इन दोनों वर्णोंमें कानमा अधिक कमकीका है ?”

“मन्ते जा वह अति-रङ्ग ।”

“ता उदायी ! जा वह रातके अक्षरमें महान् अति-रङ्ग है, और जो यह रातके अक्षरमें मेघ-रहित स्पष्ट आकाशमें आधि-तारा (= सुक) है इन दोनों वर्णोंमें कानमा अधिक कमकीका है ?”

“मन्त जा वह ! आधि-तारा ।

“ता उदायी ! जो वह आधि-तारा है जो वह आधि-रातको मेघ-रहित स्पष्ट

आकाशमें उस दिग्दे उपनामकी पुर्णिमाका चन्द्र है; इन दोनों बर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला है ?”

“मन्ते जो वह चन्द्र ।”

“तो उदायी ! जो वह चन्द्र है नार जो वह बर्णके पिछके भाग धारके साथ मेघ-रहित स्वच्छ आकाशमें मण्णाहके समान सूर्य है; इन दोनों बर्णोंमें कौनसा अधिक चमकीला है ?”

“मन्ते ! जो वह सूर्य ।

“उदायी ! मैं ऐसे बहुतसे देवताओंको जानता हूँ जिनपर चन्द्र-सूर्यका प्रकाश नहीं आता । तब भी मैं नहीं कहता— जिस बर्णसे प्रकीर्ण-तर दूसरा बर्ण नहीं । और तू तो उदायी ! जो वह प्रकाश कीदृशे भी हीन-तर निकृष्ट-तर बर्ण है वही परम-बर्ण है इसीका बर्ण ( =तारीफ ) बखानता है ।”

‘यह कैसा अच्यम मगवान् ! वह कैसा अच्यम मुगत !’

“उदायी ! क्या तू ऐसे कह रहा है—‘यह कैसा अच्यम ।

“मन्ते ! हमारे आचार्यक ( =मठ )में ऐसा होता है— वह परम-बर्ण है ‘यह परम बर्ण है’ । सो हम मन्ते ! मगवान्के साथ अपने आचार्यकके विषयमें कुछने = अवगाहन करने = सम्-अनुभाषण करनेपर रिक्त=शुद्ध = अपराधी ( स ) हैं ।

‘क्या उदायी ! जो एकान्त-सुख ( =सुख-मय ) है ? एकान्त-सुखवाके लोकक साक्षात्कारके किये क्या ( कीई ) आकारवती ( = सचिदार ) प्रतिपद् ( =मार्ग ) है ?

“मन्ते ! हमारे आचार्यकमें ऐसा होता है— एकान्त-सुखवाका लोक है, एकान्त-सुखवाक लोकक साक्षात्कारके किये आकार-वती प्रति-पद् भी है ।

“कौन सी है उदायी ! आकारवती प्रतिपद् ?”

“वहाँ मन्ते ! कोई ( पुरुष ) प्रणतिपातका जोष प्राण-हिंसासे विरत होता है । अदत्तादान ( =विनाशिका केना=कोरी ) जोष अदत्तादानसे विरत होता है •अम मिष्याचार ( =अभिचार ) से विरत होता है । भूषाबाद् ( =शुद्ध बोलने ) से विरत होता है । किसी एक तपोगुणको लेकर रहता है । वह है मन्ते ! आकारवती प्रतिपद् ।

“तो उदायी ! जिस समय प्रणतिपात-विरत होता है क्या उस समय आत्मा एकान्त-सुखी ( = केवल सुख अनुभव करनेवाक ) होता है वा सुख-दुःखी ?”

“सुख-दुःखी मन्ते !”

“तो उदायी ! जिस समय अदत्तादान-विरत होता है क्या उस समय आत्मा एकान्त सुखी होता है वा ‘सुख-दुःखी ?”

“सुख-दुःखी मन्ते !”

“तो उदायी ! जिस समय काम-मिष्याचार-विरत । । भूषाबाद् • । • किसी एक तपो-गुणसे शुद्ध होता है । क्या उस समय आत्मा एकान्त-सुखी होता है वा सुख-दुःखी ?”

“सुख-दुःखी मन्ते !”

“तो क्या मावते हा उदायी ! क्या अक्षयिर्ण ( = मिश्रित ) ( पुरुष ) को सुख-दुःख

(मिश्रित) मार्ग (अतिपद्) को पाकर, एकांत-सुखवाले लोकका साक्षात्कार होता है ?”

‘बह कैसा अच्छा ! भगवान् ! ! बह कैसा अच्छा ! सुगत ! !”

“उदायी ! क्या तू यह ऐसे कह रहा है—‘बह कैसा अच्छा ।

‘मन्ते ! हमारे आचार्यक (=मठ) में ऐसा होता है—एकांत-सुखवाला लोक है एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकार-बत्ती प्रतिपद् है । सा मन्ते ! हम भगवान्के माया करने पर तृप्त हैं । क्या मन्ते ! एकांत-सुखवाला लोक है ? एकांत सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकारबत्ती प्रतिपद् है ?

है उदायी ! एकांत-सुख लोक है आकारबत्ती प्रतिपद् ।

‘मन्ते ! एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये आकार-बत्ती प्रतिपद् कीवली है ?”

‘वहाँ उदायी ! मिथु १ प्रथम ध्यानका प्राप्त हो विहरता है । द्वितीय-ध्यानको । तृतीय ध्यानको । यह है उदायी ! आकारबत्ती प्रतिपद् ।

‘मन्ते ! एकांत-सुखवाले लोकके साक्षात्कारके लिये वही आकारबत्ती प्रतिपद् है ? इतने हीसे मन्ते ! उसको एकान्त-सुख लोकका साक्षात्कार होयवा रहता है ?”

‘वहाँ उदायी ! इतनेसे एकांत-सुखवाले लोकका साक्षात्कार (वही) होगवा रहता । यह तो एकांत-सुखलोकके साक्षात्कारकी आकारबत्ती प्रतिपद् है ।’

ऐसा कहनेपर सङ्घ-उदायी परित्राजकनी परिपद् उदायिनी=उच्चसङ्घ—महासङ्घ (=कीकाहक) करनेवाली हुई—वहाँ हम अपने मठसे गठ होंगे, वहाँ हम ब्रह्म (=मन्त्र) होंगे । इससे अधिक उत्तम हम नहीं जानते । तब सङ्घ-उदायी परित्राजकने उब परित्राजकको गुण करा भगवान्को कहा—

‘मन्ते ! कितनेसे हम (उत्तम) को एकान्त-सुखवाले लोकका साक्षात्कार होता है ?”

‘वहाँ उदायी ! मिथु सुखको भी छोड़ चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है ( तब ) कितने रहता एकान्त-सुखलोकमें उत्पन्न है उन देवताओंके साथ उदरता है संजाप करता है साक्षात्कार करता है । इतनेसे उदायी ! इसको एकांत-सुखवाला लोक साक्षात्कार (=प्रत्यक्ष) होता है ।

उदायी ! इतने से लिये मेरे पास महासर्व नहीं पाछ्य करते । उदायी ! दूसरे उत्तर-तर=अधीततर (=दूमने भी उत्तम) बस है जिनके साक्षात्कारके लिये मिथु मेरे पास महासर्व पालन करते हैं ।”

‘मन्त ! बह बस कायम है ?

‘उदायी ! वहाँ लोकमें तथगत उत्पन्न इतने है १ पुद् भगवान् । बह इव पंच बीजरलोक का विषयके उपलब्धो (=मन्ते) को प्रथम ध्यान द्वितीय-ध्यान तृतीय ध्यान चतुर्थ ध्यानका प्राप्त हो विहरता है । यह भी उदायी ! धर्म उत्तर-तर=अधीत-तर ४ तिसक साक्षात्कारके लिये मिथु मेरे पास महासर्व पालन करते हैं । बह अनेक प्रकारके पूर्व-विशामको अनुसरण करते हैं । । खुल और उत्पन्न होत मानवीका अल्प

हैं ।। दुःखविरोध-गामिनी प्रतिपद् भावब-विरोध-गामिनी प्रतिपद्को बधार्पणः जायते  
है बर्हो कृष्ण बर्ही है जानते हैं यह उदायी ! उच्छरि-तर धर्म है जितके द्विजे सेरे  
पास ब्रह्मचर्य-गालम् करते हैं ।”

येसा कहनेपर उदायी परित्राजकने भगवान्- ( से प्रजन्वा मांगी तब उसकी  
परिपद्ने ) कहा—

“उदायी ! आप भमज गीतमके पास मत ब्रह्मचर्यवास करै ( = मत क्षिप्य हो ) मत  
आप उदायी आचार्य होकर जन्तेवासी ( = शिष्य ) की तरह वास करै जैसे फरका ( =  
मदकी ) होकर पुरवा होने इसी प्रकारकी यह सम्पत् ( = भवत्वा ) आप उदायीकी होगी ।  
आप उदायी ! भमज गीतम ।”

इस प्रकार सङ्कट उदायी की परिपद्ने सङ्कट-उदायी को भयवान्के पास ब्रह्मचर्य  
पाकम करनेमें विज्ञ बाका ।

× × ×  
( १ )

१८ बी वपा खालिय-पर्यतमें । द्विष्टिबन्ध सूच । शूलि अस्सपुर-सुच ।  
कञ्जगला-सुच । ( ई पू ५११ ) ।

( भगवान्के ) 'भगवान्के ( वपा ) खालिय-पर्यतमें ( बिताई ) ।

+ + + +  
द्विष्टिबन्ध-सूच ।

येसा मैंने सुना—एक समय भगवान् जन्पामें गगगायुष्करिणीके तीर बिहार  
करते थे ।

तब बज्जियमदित गृहपति भगवान्के दर्शनको चम्पास निकला । बज्जियमदित  
( = बज्जि देशमें समाहित ) गृहपतिको यह हुआ—यह भगवान्के दर्शनका काक नहीं है  
भगवान् प्यातमें होंगे । मध-भाषना करनेवाको मिष्ठुर्भोंके भी दर्शनका यह काक नहीं यह  
मध-भाषना बात मिष्ठु भी ( इस समय ) प्यातका होंगे । क्यों न मैं जहाँ अन्य-सैविक  
( = दूसरे पक्षवाके ) परित्राजकोंने भाराम है बर्हो बर्हो ।

तब बज्जियमदित गृहपति जहाँ अन्य-सैविक परित्राजकोंनेका भाराम या बर्हो गया ।  
उस समय अन्य-सैविक परित्राजक एकत्रित हां... इत्यादि करते -- नाता प्रकारकी चर्चे-कथा  
कहते बडे थे । उन अन्य-सैविक परित्राजकोंने बुरसे ही बज्जिय-मदित गृह-पतिको जाते  
देखा । देखकर एकने दूसरेको कहा—आप सब चुप हों आप सब चुप मत करै । यह  
भमज गीतमका भावक बज्जिय-मदित गृह-पति भा रहा है । भमज गीतमके जितने गृहस्थ  
सदेव-बधारी भावक चंपामें बसते हैं यह बज्जिय-मदित गृहपति उनमेंसे एक है । यह

आयुष्मान् भक्ष्य-शाम् ( = विद्याम् ) -आकांक्षी जन्मशाम्-मर्त्तसक होते हैं। जन्म सम्पत् परिपक्वो देह कर, क्या जाने ( इतर ) जाना चाहें ।”

तब वह परित्राजक चुप हुए। बज्जियमहित गृह-पति वहाँ वह परित्राजक ने वहाँ गया। पास जाकर उन अल्प-संनिक परित्राजकोंके साथ संमोहन कर एक धोर बट गया। एक धोर बैठे बज्जियमहित गृहपतिको उन परित्राजकोंके कहा—

“सबसुख गृहपति ! ( क्या ) भ्रमण गौतम सभी तपोंकी विद्या करते हैं ? ( क्या ) सभी ब्रह्म-आत्मीयों ( = ब्रह्मा आदीय विद्यामेवाके ) तपस्वियोंके भ्रमण-पुरा ( = उपश्रमेस ) करते हैं।

“भ्रमते ! भगवान् सभी तपोंकी विद्या नहीं करते व सभी तपस्वियोंके मध्य-पुरा करते हैं। विद्वानोंकी भगवान् विद्या करते हैं प्रसंसनीयकी प्रशंसा करते हैं। निद्वानोंकी विद्या करते प्रसंसनीयकी प्रशंसा करते हुये वह भगवान् यहाँ विमम्बवादी ( = विमागकर प्रसंसनीय अंधके प्रशंसक और निद्वानोंके अंधके निद्वक ) हैं।

ऐसा कहनेपर एक परित्राजकने बज्जियमहित गृह-पतिको कहा—

“रहवै दे तु गृहपति ! जिस समय गौतमकी तु प्रशंसकर रहा है वह समय गौतम वैश्विक ( = अर्थकर करनेवाका ) न-प्रवृत्तिक ( = किसी प्रतिपादन न करनेवाका ) है ।”

भ्रमते ! मैं आयुष्मानोंको धर्मके साथ करता हूँ। भगवान्ने ‘यह कुम्रक ( = अण्डक ) है प्रतिपादन किया है भगवान्ने ‘यह न-कुम्रक ( = पुरा ) है प्रतिपादन किया है। हम प्रकट कुम्रक न-कुम्रकको प्रतिपादन करते हुये भगवान् स प्रवृत्तिक ( = सिद्धान्त-प्रतिपादक ) हैं न-वृत्तिक-न-प्रवृत्तिक नहीं।

ऐसा कहनेपर वह परित्राजक चुप हो मूक हो कन्धा कुम्भके जलोमुख खोच करते प्रतिमा-हीन हो बैठे। तब बज्जियमहित गृहपति उन परित्राजकोंको प्रतिमाहीन हो बैठे देह ध्यामते उठ वहाँ भगवान् से वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक धोर बैठे। एक धोर बैठे बज्जियमहित गृहपतिने जो कुछ क्या-संनिक अल्प-संनिक परित्राजकोंके साथ हुआ था सब भगवान्से कह दिया।

‘साधु, साधु गृहपति ! उन मोक्ष-पुरुषोंको समझ-असमझकर इस प्रकारसे परान करवा चाहिये। गृहपति ! मैं नहीं करता—‘सब तप तपना चाहिये न मैं करता हूँ—‘सब तप नहीं तपना चाहिये। गृहपति ! मैं नहीं करता हूँ—‘सब ( मठ ) धारण करवा चाहिये’। न मैं करता हूँ—‘सब ( मठ ) न धारण करवा चाहिये। गृहपति ! मैं नहीं करता—‘सब प्रभावों (निर्वाणमन्थी मयकों)में जगना चाहिये न मैं करता हूँ—‘सब प्रभावों में न जगना चाहिये।’ गृहपति ! मैं नहीं करता—‘सभी ब्रह्म ब्रह्म करवा चाहिये। गृहपति ! मैं नहीं करता—‘सभी विमुक्तियों छोड़नी चाहिये।

“गृहपति ! जिस तपके तपते इसके अकुम्भक-धर्म ( = पाप ) बढ़ते हैं कुम्भक-धर्म ( = पुण्य ) क्षीण होते हैं ऐसा तप न करना चाहिये-कहता हूँ। जिस तपके तपते इसके अकुम्भक-धर्म क्षीण होते हैं कुम्भक-धर्म बढ़ते हैं ‘ऐसा तप तपना चाहिये’—कहता हूँ। जिस प्रण-प्रदानस । जिस प्रभावमें ध्यामस । जिस प्रति-विस्मर्ग ( = परार्थन )के ब्रह्म धारणमें । जिस विमुक्तिके छोड़नेसे ।

तब ब्रह्मिणहित गृहपति भगवान्से धार्मिक-कथा द्वारा सुमुत्तेजित ल'प्रसंसित हो भासगसे उठ भगवान्को ब्रमिवादन कर प्रदक्षिणा कर, चका गया।

तब ब्रह्मिणहित गृह-पतिके ल'ठे ब्रह्मके घोषीही देर बाद, भगवान्ने मिश्रुओंको संबोधित किया।

“मिश्रुओ ! जो मिश्रु इस ब्रम-विनयमें अल्प-मक-वाक्य है वह भी अल्प-तैयिक परिवाचकोंको ब्रमके साथ इसी प्रकार सुनिप्रहके साथ सुबिगृहीत (= सुपुराजित) करे; जैसे कि ब्रह्मिणहित गृहपतिने विगृहीत किया।

### बृहजस्यपुर-सुक्त ।

येसा मीने सुभा—एक समय भगवान् भग ( देव )में ब्रमोंके कस्बे ब्रह्मपुरमें विहार करते थे। वहाँ भगवान्ने मिश्रुओंको संबोधित किया— ‘मिश्रुओ !’

“मद्वत् ! कह उठ मिश्रुओंने भगवान्को उत्तर दिया। भगवान् ने कहा—

“मिश्रुओ ! ब्रमण’ ‘ब्रमण’ लोग नाम भरते हैं। तुम लोग भी ‘तुम कौन हो’ पूछनेपर (हम) ब्रमण हैं’ उत्तर देते हो। ऐसी संज्ञा ऐसी प्रतिज्ञावाके तुम लोगोंको ऐसा सीखना चाहिये— जो वह ब्रमण को सब करनेवाका माग है, हम उस मार्गपर ब्यक्त होंगे। इस प्रकार वह हमारी संज्ञा सब होयी हमारी प्रतिज्ञा (= दावा) पक्षार्थ होती। दिनके (दिब) भीबर (= बह) पिंड पाठ (= मिच्छा) स्रवसासव (= मिवास) न्यून प्रम्य-भेज्य (= रोगीका औषध-पत्र) सामग्रीका हम उपभोग करते हैं उनके (किये) हमारे प्रति वह (दान-) कर्ष मो महाफलवाके, महासाहाय्यवाके होंगे; और हमारी भी यह प्रमत्या विर्मक ब्रह्म = स-उद्व होती।

‘मिश्रुओ ! मिश्रु ब्रमणको सब करनेवाके मार्ग (= ब्रमण-समीची प्रतिपदा )पर कैसे जाकर नहीं होता ? मिश्रुओ ! जिस अग्निष्वाहु (= छोसी ) मिश्रुकी अग्निष्वा वह नहीं जाती, प्रोह-सहित चित्तवाके (= व्यापकचित्त)का व्यापाद् (= प्रोह) नष्ट नहीं हुआ रहता ओषी का ओष पाचंडी (= उपनशी)का पाचंड मर्षीकी ककक (= ब्रमण = ब्रमण) पकासी (= ब्रह्मण = विन्दुर)का पकास ईर्ष्यांतु की ईर्ष्या मल्लरीका मासर (= कुपण्डा, शरणी शरणा माचारी (= ब्रह्मण)की मापा पापेच्छु (= ब्रह्म-वीचत)की पापेच्छु मिष्वा-रहित (= ब्रह्मे सिद्धान्तवाके) की मिष्वा इति (= ब्रह्मी धारण्य) नष्ट नहीं हुई रहती। वह ह्व ब्रमण-मर्षी = ब्रमण-वार्थी = ब्रमण-कर्मण, व्यापाचको के ज्ञानेवाके दुर्गतिके अनुभव करानेवाके कर्मणोंके अ-विनाशसे ब्रमण-समीचि-प्रतिपद्पर जाकर नहीं हुआ,’ ( येसा ) में कहता हूँ। जैसे मिश्रुओ ! मज्ज नामक तीरथ दुबारा जाबुव (= इचिवार) होता है वह संघाटीसे ईका किये हो; उसीके समान मिश्रुओ ! मैं इस मिश्रुकी प्रमत्या को कहता हूँ।

“मिश्रुओ ! मैं संघाटी (= मिश्रु-ब्रह्म) वाकेके संघाटी पारण मात्रसे ब्रमण्य (= ब्रमण्य) नहीं कहता। धकेकक (= ब्रह्म-रहित)के भी रहने मात्रसे ब्रमण्य



(= साधुपत्र) नहीं कहता। मिथुन! रजोविकिक (=बीच-बासी साधु)की रजोविकिकता मात्रसे भ्रामण्य नहीं कहता। उदकबरोहक (= बर-बासी)के उदकवास मात्रसे। बुद्ध-सूक्तिक (=सदा बुद्धके बीच रहनेवाले)के बुद्धके पीछे वास मात्रसे। अण्ववकासिक (= चाहेमें रहनेवाले)। उदमदिक (= सदा उदक रहनेवाले)। पचाय-मदिक (बीच बीचमें गिराहार रह मोहन करनेवाले)। मंत्र-अध्यायक (= वेद-पाटी)के मंत्र-अध्यायन मात्रसे मैं भ्रामण्य नहीं कहता। अदिकके अद्य-धारण मात्रसे।

‘मिथुनो! यदि संघादिक संघाटी-धारण मात्रसे अभिप्यालुका जोम हट जाता प्यापाद हट जाता श्रेय उपनाह मर्य पकास ईर्ष्या •मात्तर्ब रादता, माया पापेच्छा मिप्या दृष्टिकी मिप्या दृष्टि हट जाती; तो उसको मित्र-जमात्व जाति-बन्धु पैदा होते ही संघादिक बना देते संघादिकताका ही उपदेश करै— ‘अ मद्भुज! ए संघादिक हो जा। संघादिक होनेपर संघाटी-धारण मात्रसे तुझ अभिप्यालुका जोम नष्ट हो जायगा। मिप्या-दृष्टिकी मिप्या-दृष्टि नष्ट हो जायगी। क्योंकि मिथुनो! मैं किसी किसी संघादिकको भी अभिप्यालु, प्यापत्र-विच, श्रेयी उपनाही मर्य, पकसी ईर्ष्यालु मस्सरी घट मायावी पापेच्छु, मिप्या-दृष्टि देखता हूँ इसलिये संघादिकके संघाटी-धारण मात्रसे भ्रामण्य नहीं कहता।

‘मिथुनो! यदि अनेककमी अनेककता-मात्रसे। रजोविकिककी रजोविकिक-कता मात्रसे। उदकबरोहके उदकबरोहन मात्रसे। बुद्ध-सूक्तिककी बुद्ध-सूक्तिक-कता मात्रसे। अण्ववकासिक। उदमदिक। पचाय-मदिक। मंत्र अध्यायक। अदिकके अद्य धारण मात्रसे अभिप्या •— मिप्या-दृष्टि बट होती।

‘मिथुनो! मिथु अमन-सामीची प्रतिपद् (=सदा अमन बनानेवाले मार्ग) पर कैसे मार्गांकु होता है? मिथुनो! किस किसी अभिप्यालु मिथुकी अभिप्या (= जोम) नष्ट होती है •—• मिप्यादृष्टि नष्ट होती है, (बह) इय अमन-मकों क विचारसे अमन-सामीची-प्रतिपद्पर मार्गांकु होनेमें ही कहता हूँ। ( फिर ) वह इन सभी पापक अ-कुसल धर्मोंसे अपनेको विमुक्त देखता है अथवाको विमुक्त देखता है। ( फिर ) इन सभी पापक धर्मोंसे अपनेको विमुक्त विमुक्त देखनेवाले उस (पुरुष)को प्रमोद उत्पन्न होता है। प्रमुदितको प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीतिमार्गका काया स्थिर होती है। स्थिर शरीर मुक्त अनुभव करता है। सुखितका विच सामाहित (=पकम) होता है। वह ( १ ) मीचीमुक्त चित्तम एक दिशाका प्कपित कर बिहरता है और दूसरी दिशा और तीसरी और चौथी इसी प्रकार ऊपर नीचे तिष्ठें सबकी इच्छाम सबके अर्थ सभी लोकको विपुल महात् अ-ममान अ-बीर ह्ये-रहित मीची-मूल चित्तस प्कपित कर बिहरता है। ( २ ) कण्ठ-मुक्त चित्तमे। ( ३ ) सुदित्त-मुक्त चित्तमे। ( ४ ) उपेक्षा-मुक्त चित्तमे।

‘जैस मिथुनो! स्वच्छ मयुर पीतल अमवाजी शमयीव सुम्बर घाटोंवाली पुष्प रानी ही। यदि पूर्व दिशास भी काममें तथा (अधर्म अमितल)अधर्म-परत बका लुपित अविवासित पुरुष जाव, वह उन पुष्करिणीको बाकर उदक-पियामाका दूर कर कामक तापको दूर कर। अमिद दिशास भी। उपर दिशास भी। दक्षिण दिशासे भी। जहाँ कहींसे भी। केंमें ही मिथुनो! यदि अक्षिण-मुक्त धरस अथ प्रमदित होय और वह तथागतके

उपदेश किसे ब्रह्मको प्राप्त कर इस प्रकार मैत्री, कल्या मुद्रिता उपेक्षाकी भावना करे (तो वह) आध्यात्मिक शांतिकी प्राप्त करता है। आध्यात्मिक शांति (= उपसम) से ही 'ब्रह्मज-सार्माणी-पतिपदपर मार्गात्क ई कहता हूँ'। यदि आह्वान-कुम्भसे। यदि वरप कुम्भसे। जिस किसी कुम्भसे भी घरस बेघर प्रव्रजित।

शुद्धिय-कुम्भसे भी घरस बेघर प्रव्रजित हो। आर वह व्याकरणों (= शिष्य-दोषों) क क्षपसे आनन्द-रहित शिष्य-विमुक्ति प्रज्ञा-विमुक्तिको इसी कर्ममें स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरता है। व्याकरणों क क्षपसे ब्रह्मण होता है। आह्वान-कुम्भसे भी। वरप-कुम्भसे भी। शुद्ध कुम्भसे भी। जिस किसी कुम्भसे भी।

भगवान् यह कहा उन मिश्रुर्षोने सम्पुष्ट हो भगवान् क भाषणको अनुमतिवित किया।

+ + + +

कज्जगला-सुत्त।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कज्जगलामें वणुवनमें विहार करते थे।

तब बहुतसे कज्जगलाक उपासक वहाँ कज्जगला मिश्रुणी भी, वहाँ तब। आकर कज्जगला मिश्रुणीको अभिवादन कर एक बार बैठे। एक ओर बैठे थे उपासक कज्जगला मिश्रुणीका बोले—

“अप्पा ! भगवान् ने कहा है—‘महाप्रश्नोंमें एक प्रश्न एक उद्देश्य=एक उत्तर ही, तीन चार पाँच छ साठ आठ नव इस प्रश्न इस उद्देश्य इस उत्तर (= व्याकरण), है। अप्पा ! भगवान् के इस संक्षिप्त कथनका विस्तारस कैसे अर्थ समझना चाहिये ?’

“आहुसो ! मैंने इस भगवान् क मुखम नहीं सुना नहीं प्रश्न किया; आर मनकी धारणा करवैवाके मिश्रुणीके मुखस भी नहीं सुना नहीं प्रश्न किया बल्कि वहाँ जो मुझे समझ पड़ता है उसको सुनो अप्पी तरह मझमें करो कहती हूँ ।’

अप्पा जल्पा !’ कह उपसर्कने उत्तर दिया। कज्जगला मिश्रुणीने कहा—

एक प्रश्न एक उद्देश्य एक व्याकरण (= उत्तर) ऐसा जो भगवान् ने कहा। सा किस कारण ऐसा कहा ? आहुसो ! एक बरतुमें मिश्रु मकी प्रकार निर्बेद (= उदासीनता) की प्राप्त हो मकी प्रकार विरागको प्राप्त हो मकी प्रकार विरक्त हो अप्पी प्रकार अन्त-दर्शी हो समानताके अर्कका प्राप्त हो इसी कर्ममें बुद्धका अन्त करवैवाका होता है। किस एक बर्ममें ? ‘समी सत्त्व (= मात्री) आहार-रिपतिक (= आहारपर निर्भर) है। आहुसो ! इस एक बरतुमें मिश्रु। जो भगवान् ने ‘एक प्रश्न एक उद्देश्य एक व्याकरण’ कहा सी इसी कारणसे कहा। सो किस कारणसे ऐसा कहा ? आहुसो ! दो बर्मोंमें मिश्रु मकी प्रकार निर्बेदको प्राप्त। किन दो बर्मोंमें ? नाम आर रूपमें।। ‘तीन प्रश्न तीन उद्देश्य तीन व्याकरण’ का भगवान् ने ऐसा कहा; (सी) किस कारणसे ऐसा कहा ? आहुसो ! तीन बर्मोंमें मिश्रु मकी प्रकार निर्बेदको प्राप्त। किन तीन बर्मोंमें ? तीनों वेदवाकों (= सुत्त सुत्त न सुत्त-न बु-क) में।।

१ न वि १:१:३:१८। २ कज्जगला (जि संघाल-वगना)। ३. ५३ ११ १९।

४ ५३ २५। ५. देखो आगे संगीत-परिचाय सुत्त।

“चार प्रश्न चार उद्देश चार व्याकरण” ऐसा जो भयवान्ने कहा सो किस कारणसे ऐसा कहा ? आबुसो ! चार धर्मोंमें मिथु बच्ची प्रकार (= सम्मक ) चित्तको माववा कर (= सुभावित-चित्त) बच्ची तरह अन्त-दर्शी समास्ताक धर्मको प्राप्त हो इसी धर्ममें सुख का अन्त करनेवाला होता है। किन् चार धर्मोंमें ? चार 'स्मृति प्रस्थान । पाँच धर्मोंमें— सुभावित-चित्त । किन् पाँच धर्मोंमें ? पाँच 'इन्द्रियों । छ धर्मोंमें— सुभावित-चित्त । किन् छ धर्मोंमें ? छ विासरणीय बातुओंमें । साठ धर्मोंमें सुभावित-चित्त । साठ 'शोधकोंमें । आठ धर्मोंमें सम्मक निर्बेदको प्राप्त । बच 'सत्वावास (= प्राणियोंके देव मातृव आदि बच आवास) । इस धर्मोंमें सम्मक सुभावित-चित्त । इस 'सम्मक धर्म-धर्मोंमें । 'इस प्रश्न इस उद्देश इस व्याकरण' ऐसा जो भगवान्ने कहा सो इसी कारणसे कहा । इस प्रकार आबुसो ! भगवान्ने 'महाधर्मोंमें एक प्रश्न एक उद्देश एक व्याकरण — इस प्रश्न एक उद्देश इस व्याकरण कहा । आबुसो ! भगवान्ने इस संक्षिप्त कथकथ में ऐसा अर्थ जानती हूँ । आबुसो ! यदि चाहो तो तुम भगवान्के पास जाकर इस बातको पूछो जैसा भगवान् व्याकरण (= उत्तर) करे जैसा धारण करो ।

“अच्छ भवना !” कहा, कर्जंगळाके उपासक कर्जंगळा मिथुनीके भाष्यको अधि गन्धित कर कर्जंगळा मिथुनीको अधिवादन कर प्रशिक्षण कर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । जाकर भगवान्को अधिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठ कर्जंगळा-विधासी उपासकोंने कर्जंगळा मिथुनीके साथ कितना कथ-संवाप हुआ था उस सबको भगवान्को कह दिया ।

“साधु साधु गृहपतिवो ! कर्जंगळा मिथुनी पंथिता है । कर्जंगळा मिथुनी महा पंथिता है । कर्जंगळा मिथुनी महामया है । यदि गृहपतिवो ! तुमने मेरे पास जाकर इस बातको पूछा होता, तो मैं भी इसे जैसे ही व्याकरण करता जैसे कर्जंगळा मिथुनीने व्याकरण किया । वही उसका अर्थ ( है ) इसीको धारण करना ।

x

x

x

( ११ )

इन्दिय भाषना-सुष । सम्बहुल-सुष । उदायि-सुष । मेधिय-सुष ।

( ३ पू ५११-१० ) ।

ऐसा मैंने सुना— एक समय भगवान् कर्जंगळामें सुवेणुवन (= 'सुवेणुवन )में विहार करते थे ।

तब पारासिबियका अन्तर्धामी (अधिप) उत्तर माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के माथ सँभोदन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे पारासिबियके अन्तर्धामी उत्तर माणवकको भयवान्ने कहा—

“उत्तर ! क्या पारासिबिय आकाश शिष्योंको इन्द्रिय-भाषना ( -मन्थनी ) उपदेश करता है ?”

‘हे गौतम ! पारासिबिय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है ।’

‘तो उत्तर ! कैसे इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है ?’

‘हे गौतम ! आँखसे रूप नहीं देखता कावसे सन्ध नहीं सुनता । इस प्रकार

हे गौतम ! पारासिबिय ब्राह्मण शिष्योंको इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करता है ।

‘जैसा पारासिबिय ब्राह्मणका बचन है वैसे होनेपर उत्तर ! जन्मा इन्द्रिय-भावना करनेवाका (=माहितेन्द्रिय) होगा बहिर माहितेन्द्रिय होगा । क्योंकि उत्तर ! जन्मा आँखसे रूप नहीं देखता बहिरा कावसे सन्ध नहीं सुनता ।

ऐसा कहनेपर पारासिबियका अन्तेवासी उत्तर मानवक रुप मूक गव्वन मुकाये भबोमुक सोचता प्रतिभाहीन, हा बटा । तब भगवान् ने उत्तर मानवकको रुप जानकर आयुष्मान् अमन्त्को संबोधित किया—

‘आवन्त् ! पारासिबिय ब्राह्मण ब्राह्मणों (= शिष्यों)को दूसरी तरह (= अल्पधा) इन्द्रिय-भावना उपदेश करता है और आपोंके विनयमें दूसरी तरह अनुत्तर (=मर्बोत्कृष्ट) भावना होती है ।

‘भगवान् ! इमीका काक है सुगत ! इमीका काक है कि भगवान् आर्ष-विनय (=वाङ्-वच) क अनुत्तर इन्द्रिय-भावनाका उपदेश करे । भगवान् मुनकर मिष्टु पारण करेते ।’

‘तो आवन्त् ! सुनो अच्छी तरह मचमें करो कइता हूँ ।’ ‘अच्छा अन्ते !

भगवान् ने यह कहा—

‘कैसे आवन्त् ! आर्ष-विनयमें अनुत्तर इन्द्रिय-भावना जाती है ? यहाँ आवन्त् ! चक्षु(=आँख)से रूपको देखकर मिष्टुका मवाप (=पसन्द् माख्स) होता है ज-मवाप होता है मवाप-अमवाप होता है । यह ऐसा जानता है—‘यह मुसे मवाप उत्पन्न हुआ ज मवाप मवाप-अमवाप । किन्तु यह संसृष्ट (=कृत्त कृत्रिम) = औदारिक = प्रतीत्व-समुत्पन्न (=हनु-अनित) है । वही सान्त वही प्रणीत (=उत्तम) है जो कि यह (रूप आदिसे) उपेक्षा । (तब) उत्तका यह उत्पन्न मवाप उत्पन्न जमवाप मवाप-ज-मवाप विद्वत् (=मष्ट) हो जाता है । उपेक्षा दहरती है । जस आवन्त् ! अर्कवाका पुन्य पकक चपाकर गिरावे, पकक गिराकर जगद, इसी तरह आवन्त् ! जिस किसीको इतना शर्म इतनी जल्दी इतनी जासागीस उत्पन्न मवाप उत्पन्न अ-मवाप उत्पन्न मवाप अ-मवाप दूर होजाते हैं उपेक्षा दहरती है । यह जानन्त् ! आर्ष-विनयमें चक्षुस जाने जानेवाके (=चक्षुर्विशेष) रूपोंक विपबन्दी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना कही जाती है । और फिर जानन्त् ! श्रोत्रसे शब्दको सुन कर । उपेक्षा दहरती है । जसे कि जानन्त् ! बकवात् पुण्य मज्जास सुदकी बजावे, पुसेही जानन्त् ! जिस किसीको इतना शर्म । यह जानन्त् ! आर्ष-विनयमें श्रोत्र-विशेष शब्दोंक विपबन्दी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना कही जाती है । और फिर जानन्त् ! मानसे ग घको घूँघकर । उपेक्षा दहरती है । जैम कि जानन्त् ! पय-यवमें कापीमी हवाय पार्मीक बुक बुके उठने हैं दहरने बहो; पुमही जानन्त् ! । यह प्राण-विशेष गर्बीके विपबन्दी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है । और फिर जानन्त् ! जिह्वामे रय चल्कर । उपेक्षा दहरती है । जैम कि जानन्त् ! बकवात् पुण्य जिह्वके मोरपर लम्-पिण (=पूक-कक) जमाकर जमवाय ही

केंद्रे, ऐसे ही आत्मन् । यह जिज्ञा-विज्ञेय रसोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना / और फिर आत्मन् ! कावा (=वक्)से स्पष्टत्वके स्पर्शसे । उपेक्षा झरती है । जैसे कि आत्मन् ! ब्रह्मान् पुरुष समेदी बाँहको फैलावे पैरबाँह बाँहको समेदे; ऐसेही आत्मन् ! यह काम-विज्ञेय स्पष्टत्वोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है । और फिर आत्मन् ! मयस धर्मको जानकर । उपेक्षा झरती है । जैसे कि आत्मन् ! ब्रह्मान् पुरुष दिवमें तरे कोदेके कण्डहपर हो-तीव पानीकी बूँद डाक; आत्मन् ! पानीकी बूँद पककर 'तुरन्त ही'— धबकी प्राप्त हो आवे । ऐसेही आत्मन् ! । यह मन-विज्ञेय धर्मोंके विषयकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना है ।

"वहाँ आत्मन् ! चतुस रूपको देखकर, मिथुको मनाप (=मिय) उत्पन्न होता है ज-मनाप उत्पन्न होता है मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह उस उत्पन्न मनाप अमनाप मनाप-अमनापसे बुद्धित होता है बहराता है वृष्य करता है । धोप्रसे सन्ध सुनकर । ज्ञानसे गंध सूँबकर । जिह्मसे रस पचकर । कापासे स्पष्टत्व सूकर । मयसे धर्म जानकर मिथुको मनाप अमनाप मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह उस उत्पन्न मनाप अ-मनाप मनाप-अमनापसे बुद्धित होता है बहराता है वृष्य करता है । इस प्रकार आत्मन् ! सत्य (=विमको अभी सीखना है सैल)-प्रतिपद् (=परिपद्) होती है ।

"कैसे आत्मन् ! भावितत्रिव हो आर्ष (जहाँ, असीध-असल) होता है ? वहाँ आत्मन् ! चतुस रूपको देखकर धोप्रसे ज्ञानसे जिह्मसे कापासे मयसे धर्म जाबकर मनाप अ-मनाप मनाप-अमनाप उत्पन्न होता है । वह यदि चाहता है कि प्रतिपूकमें अ-प्रतिपूक जान विहार करे" अ प्रतिपूक जाबतही वहाँ विहार करता है । यदि चाहता है कि अ प्रतिपूकमें प्रतिपूक जान विहार करे", प्रतिपूक ज्ञानसे ही वहाँ विहार करता है । यदि चाहता है—प्रतिपूक अ-प्रतिपूक दोनों बन्धित कर स्युति-सम्प्रज्ञन्द-मुक्त उपेक्षक हो विहार करे", वह स्युति सम्प्रज्ञन्द-मुक्त उपेक्षक हो विहारता है । इस प्रकार आत्मन् ! भावितैन्द्रिय आर्ष (=मुक्त) होता है ।

"इस प्रकार आत्मन् ! मीने आर्ष-विमकी अनुत्तर इन्द्रिय-भावना उपदेस कर ही; हीरुव प्रतिपद् भी उपदेस कर ही; भावितत्रिव आर्ष भी उपदेस कर दिया । हितैषी अनुकल्पक शास्त्र (=गुरु) को अनुकम्पा (=रुपा) करके भावकोंके किय जैसे करना चाहिये वैसा मीने तुम कौर्गोक किय कर दिया । आत्मन् ! यह वृक्ष मूल (वृक्षके नीचेकी भूमि) है वह घूम पर है प्यान करी आत्मन् ! मत प्रमाद करा; पीठ अक्षसोम मत करना । यह तुम्हारे लिये हमार अनुमायव है ।"

भगवान् ने यह कहा थापुण्यात् आत्मन् ने समुद्र इ। भगवान् के भावनाका अनुमो-दित किया ।

### संयदुस-सुप्त ।

'केया मीने मुना—एक समय भगवान् सुप्त (रोग)में शिवापती में विहार करते थे ।

उस समय भगवान्से थोड़ी दूर पर बहुतसे प्रमाद-रहित उद्योगी संवन्धी मित्र विहार करते थे। तब पापी मार बड़ी बड़ा बड़ापे, सुगन्धर्म पहिले छोड़े (=गोपावर्सी) की तरह कमरबाक्य हुआ बग डुङ्कर-डुङ्कर टाकते, गूकरका बंध छिये माहजनका रूप बना बहाँ वह मित्र थे बहाँ गया। जाकर उन मित्रोंको बोला—

“भाप सब प्रमत्तित ! जति तपन बहुत काळे-केस-बाळे मद्र (=सुप्तर) प्रथम पीबनसे पुच्छ, कामोंमें (अमी) न खेड़े हुए हैं। भाप सब मगुब-कामोंको योग करें। वर्तमानको छोड़कर मत काकाम्तरकी (बीज) के पीछे दोई।

‘माहजन ! हम वर्तमान छोड़कर काकाम्तर की (बीज) के पीछे नहीं बंध रहे हैं। काकाम्तरकी (बीज) छोड़कर माहजन ! हम वर्तमानके पीछे बंध रहे हैं। माहजन ! भगवान्से कामोंको बहुत दुःख-बाळे बहुत प्रयास-बाळ बुप्परिजाम-बाळे काकिक (काकांतरका) कहा है। वह बर्म सांघिक (=वतमाभमें फफमप) न-काकिक नहीं देखा कवेबाक्य, पास पहुँचाने बाका वंदितांद्वारा प्रतिघरीरमें अनुभव करने योग्य है’

ऐसा करनेपर पापी मार सिर हिका बीम निकाल -- उडा टेकते चला गया।

### उदायि सुत ।

‘ऐसा दिने सुवा—एक समय भगवान् सुद्ध ( वेस )में सुद्धोंके कन्से सेतकविष्क में विहार करते थे।

तब जाबुप्मान् उदायी बहाँ भगवान् थे बहाँ गब। जाकर भगवान्का अभिवादन कर एक मोर बढ गये। एक मोर बँडे जाबुप्मान् उदायीने भगवान्की कहा—

“मन्ते ! जाधर्पे ॥ मन्ते बद्धसुत ॥ भगवान्के विषयमें प्रेम पौरव कजा मय मरे भीतर कितना ह। मन्ते ! पहिले गृहस्थ होते मुस धर्मसे बहुत काम ब मिकन था। सबने। सा भी भगवान्से प्रेम गारव कजा सबके कारण बरसे बेबर हा प्रमत्तित हुआ। तब मुझे भगवान्से धर्म उपदेश किया—ऐस रूप है, ऐस कर्माकी उत्पत्ति (=समुदय) है ऐस कर्माका विनाश ह। ऐसी बेदना है ऐस बदनाकी उत्पत्ति है ऐस बदनाका जन्ममम (=विनाश) है। ऐस सधा है। ऐस सस्कार। ऐस विज्ञान। तो मीने मन्ते ! दुष्प-जागारमें रहते इन पाँच ‘उदादाय-स्वर्वाका उच्छ छोना कर दोहरात—‘बह दुःख है इसे बषावसे जाबा ‘यह दुःख-समुदय है ‘यह दुःख-विरोध है ‘यह दुःख विरोध-गामिकी प्रतिपद् है। धर्मको मीने मन्ते ! देखा किया मार्ग मिक गया। वह मेरे द्वारा भावित = बहुकीकृत (हो) रीया विहार करते—मुझे बैसे भावको के जाबगा, जिसस कि मैं जाँगा—‘जाति (=जन्म) लप हो गई, मकधर्षबाण रा हो चुका, करना या सो कर किया (बब) हुआ बहाँक किये (कुछ करना) नहीं ( है )—‘रसुति सवोप्यग मन्त। मुझे मिक गया। वह मेरे द्वारा भावित बहुकीकृत हा। उवेशा संवोप्यग मन्ते ! मुझे बह मार्ग मिक गया, वह मेरे द्वारा भावित ही।

‘साडु, साडु उदायी ! उदायी ! तुम वह मार्ग मिक गया। जो तर द्वारा भावित = बहुकीकृत हो रीय बैसे विहार करते रीय भावना के जाबगा जिसस कि मैं जाँगा— जाति

कर्म होयई मङ्गलार्थ-वास पूरा होयुछ करमा वा सो कर किवा (अथ) दूसरा बर  
(करनेको) नही है।<sup>१</sup>

‘भगवान्ने उचीसर्षी (वर्षा) भी आलिय-पर्यंतर्म (किताई)।

+ + + +

मेधिय-सुत्त।

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् आलिका (अक्षिप) में आसिकापर्वतपर  
बिहार करते थे।

उस समय आसुप्मान् मेधिय भगवान्के उपस्थाक (—दूरी) थे। तब आसुप्मान्  
मेधिय जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बड़े हो गये।  
एक ओर बड़े आसुप्मान् मेधियने भगवान्को कहा—

मेधिय ! किछका ट् कच समस्तता है (बैसा कर)।

‘भन्ते ! मैं जन्तु-ग्राममें पिंढक (—मिशा) के किये जावा चाहता हू।’

तब आसुप्मान् मेधियने पूर्वाह्न-समय पहिक्कर पात्र-धीवर के जन्तुग्राममें पिंढ  
पाठके किन् प्रवस किवा। जन्तु ग्राममें पिंढ-चारक भोजनके बाद कृमिकासा नदीके  
तीरपर गये। जाकर कृमिकासा नदीके तीर अरुण-कर्मनी (=अथा-बिहार) करते बिचरते  
उन्होंने सुम्पर रमणीय आनन्द देखा—

‘मोहा ! वह बोगामिच्छा की कुडपुत्रके मन्वास (=प्रधान) के योग्य स्थाव है।

यदि भगवान् मुझे आज्ञा दें, तो मैं बोगक किये इस आनन्दमें जाऊँ।’

तब आसुप्मान् मेधिय जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर  
एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आसुप्मान् मेधियने भगवान्को कहा—

‘भन्ते ! मैं पूर्वाह्न-समय पहिक्कर पात्र-धीवर के जन्तु-ग्राम में पिंढके किये गया।

भोजनके बाद कृमिकासा नदीके तीरपर गया। सुम्पर रमणीय आनन्द देखा। देखकर  
मुझे ऐसा हुआ—जा हो ! वह । यदि भन्ते ! भगवान् मुझे अनुज्ञा दें तो उन आनन्द-वर्त्म  
प्रधान (= बोग-मन्व) क किये जाऊँ।

ऐसा कहनेपर भगवान्ने आसुप्मान् मेधियको कहा—

‘मेधिय ! तब तक इहरो अब तक कि दूसरा कोई मिश्रु आ जाये। मैं जडेका हूँ।

दूसरी बार भी आसुप्मान् मेधियने भगवान्को यह कहा—

‘मात ! भगवान्को (अथ) जागे कुड करनेको नही है। कियेका काय करण

(—प्रतिबन्ध) नही है। मुझे भन्ते ! धागे करनेको है कियेका जोप करवा है। यदि भन्ते !  
भगवान् मुझे आज्ञा दें ।

दूसरी बार भी भगवान्ने आ मेधियको कहा— मेधिय ! तबतक इहरो ।

तीसरी बार भी मेधियने यह कहा—भन्ते ! भगवान्को धागे कुड करनेको

नही है।

‘मेधिय ! ‘प्रवाह (=योग) करनेवालेको क्या कहें ? मेधिय ! जिसका तू काम समझे (बसा कर) ।

तब आबुप्मान् मेधिय आसबसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वहाँ यह कामका भाग था वहाँ गये । जाकर उस आसबनके भीतर चुसकर एक वृद्धके पीचे दिक्के विहारके किचे बैठे । तब आबुप्मान् मेधियको उस आसबनमें विहार करते अधिकतर तीन पाप = अ-कृपाक वितर्क (मर्म्म) पैदा होते थे । जैसे कि काम-वितर्क (= काम-भोग सम्बन्धी-विचार) व्यापाह (=होप)-वितर्क विहिंसा-(व्हीसा)-वितर्क । तब आबुप्मान् मेधियको हुआ—

आशर्च ! भो ! ! अद्भुत ! भो ! ! अज्ञासे मैं घरसे बेबर हो प्रव्रमित हुआ हूँ । तो भी मैं तीन पाप वितर्कमें—काम-वितर्क व्यापाह-वितर्क विहिंसा-वितर्कसे मुक्त हूँ ।

तब आबुप्मान् मंथिय सार्पकक आसनासे उठकर वहाँ भगवान् के वहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे आबुप्मान् मेधियने कहा—

आशर्च ! भो ! ! ।

‘मेधिय ! अ-परिपक चित्त-विमुक्तिको परिपक करनेके किये पाँच धर्म (=कार्य) हैं । कीजसे पाँच ? (१) मंथिय ! मिथु कस्वान मित्र (= अच्छे मित्रोंवाला) = कस्वान-सहाय होना अपरिपकचित्त-विमुक्तिके परिपक करनेके किये यह प्रथम धर्म है । (२) फिर मंथिय । मिथु सीकवान् होता है, प्रतिमोह (कपी) सवर (=रक्षा) से रक्षित, आचारगोचरसे संयुक्त छोटे दोषोंसे भी भय जानेवाला होता है । सिद्धापर्यो (=सहाचार विधियोंको) को प्रहण कर अग्रास करता है । मेधिय ! अपरिपक चित्त विमुक्तिके परिपक करनेके किये यह द्वितीय धर्म है । और फिर मेधिय ! जो यह कपायें पुमनेवाकी चित्तको जोकपेमें सहायक, केवक विवेक (उपासीतता) विराग निरोध = उपशम अभिज्ञा = स बोध निर्वाणके किंच है जैसे कि—अपेच्छ-कथा समुक्ति-कथा प्रविवेक-कथा अ-ससर्ग-कथा वीपारम्म (=उद्योग)-कथा सीक-कथा समाधि-कथा प्रज्ञा-कथा विमुक्ति (=मुक्ति)-कथा, विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन-कथा । ऐसी कथाओंको बिना कदिनाईके (सुनने) पाता है । मेधिय ! यह तृतीय धर्म है । (३) और फिर मेधिय ! मिथु अकुसल-धर्मों के हटानेके किये, कुसल धर्मोंकी प्रासिक किये उद्योगी (= आरम्भ-वीर्य) = स्थामवान् = इह-पराक्रम होता है । कुसल-धर्मों (= अच्छे कामों)में प्रुधा न केकनेवाका । मंथिय ! यह चतुर्थ धर्म है । (४) और फिर मेधिय ! मिथु प्रज्ञावान् ही = उद्व-अस्तका जानेवाकी अर्प-विषेचिड मयी प्रकार दुःख सबकी ओर के जानेवाकी प्रज्ञासे मुक्त होता है । मंथिय ! यह पंचम धर्म है ।

“मेधिय ! कस्वान-मित्र = कस्वान-सहाय मिथु के किये यह आश्वक है कि यह सीकवान् हो । यह आश्वक है कि कथा पुमनेवाकी । यह आश्वक है कि कुसल धर्मोंके हटानेके किये । यह आश्वक है कि प्रज्ञावान् हो ।

“मेधिय ! उस मिथुको इन पाँच धर्मोंमें स्थित हो ऊपरके (इह) चार धर्मोंकी भावना करनी चाहिये—(१) हायके प्रहाण (=बाध) के किये अग्रास (भावना) याचना करनी चाहिये (२) व्यापाह (=होप)के प्रहाणके किये मीत्री (भावना) भावना करनी चाहिये । (३) वितर्कक वासके किंच व्यानापाह स्पृति (=प्राणाश्रम) करनी चाहिये । (४) अर्हकार



( = अस्मिमात्र ) के विवाहके किये अन्तिम संज्ञा ( = सब शक्ति अन्तित्व है यह ज्ञान ) । अन्तिम संज्ञा ( = सबको अन्तित्व समझनेवाले ) को मंत्रिय ! अन्-आत्म संज्ञा उद्धारती है । अन्तात्म संज्ञाका अन्तिममात्र नाशको प्राप्त होता है वह इमी जन्ममें निर्वाणको ( प्राप्त होता है ) ।

तब भगवान् इस अर्थको जानकर उसी समय यह उवाच बोले—

“मनके उत्पीड़क रूपर न निकले जो सुप्त बितर्क मूढम बितर्क है । हृद मनके बितर्कोंको न जानकर प्रांत-विष्ट ( पुरुष ) आवागमनमें शीघ्रता है । इन मनके बितर्कोंको जानकर स्मृतिमान् ( पुरुष ) तत्पर हो सपन करता है । सुखके मनके इन असेच-उद्गात पीडाधोक्य विनाश कर दिया ।

+ + + +

( १२ )

( जीवक-परिचर । इ पू ५०९ ) ।

बीसवीं वर्षमें ( भगवान् ) राजगृह ही में बसे ।

+ + + +

जीवक-परिचर ।

उस समय वैशाखी ऋतु=स्थित ( =समुद्रिसाकी ) बहुजना=मनुष्योंसे जाकीर्ण सुनिष्ठा ( =अन्यपान-संपन्न ) थी । उसमें ७७७७ प्रासाद, ७७७७ नृपगार ७ ७७ अराम ७ ७७ पुष्करिणिर्वा भी । गणिका अम्बापाकी अमिकम्प=द्वसंजीव = प्रासादिक परम रूपवती नाच गीत और वाद्यमें अतुर थी । चाहनेवाले मनुष्योंके पास पचास अर्थापन्न रातपर जावा करती थी । उससे वैशाखी और भी प्रसन्न होमिष्ठ थी । तब राजगृहके निगम किन्नी कामसे वैशाखी गया । राजगृहके निगमने वैशाखीको देखा—कह । राजगृहका निगम वैशाखीमें उस कामको अतमकर फिर राजगृह और गया । औरकर कहीं रात्र मन्वय केविक विरससार वा नहीं गया । जाकर रात्र विरससारको बोध—

“देव ! वैशाखी कह = स्थित और भी सोमिष्ठ है । अच्छा हो देव ! हम भी गणिक्य करी करें ?”

“तो मने ! बीसवीं कुमारी हुईं जो जिसको तुम गणिक्य करीकर सको ।

उस समय राजगृहमें साधवती नामक कुमारी अमिकम्प दुर्लभ थी । तब राजगृहके निगमने साधवती कुमारीको गणिक्य करी की । साधवती गणिक्य मांके काकमें हा भव गीत और वाद्यमें अतुर हो गई । चाहनेवाले मनुष्योंके पास स्त्री ( अर्थापन्न ) में रातपर जावा करती थी । तब वह गणिक्य न फिरमें ही पर्ववती होगई । तब साधवती गणिक्यको वह हुआ—गणिक्य की पुष्कोंको मापसह ( =अ-मवाप ) हांता है यदि मुझे कोई जानेग—

१ अ नि अ क. २:७५ । २ महाभारत ६ । ३ उस समयका एक त्रैविक्य चौकोर

सिद्धा जिसकी अ-प्रति आनकके बारह धाकेके बराबर थी ।

साक्यवती गणिका गमिनी है तो मेरा सब सत्कार बका जायेगा । क्यों न मैं बीमार बन जाऊँ । तब साक्यवती गणिकाने दौवारिक (=दुर्बान)को आज्ञा दी —

‘मने ! दौवारिक ! कोई पुत्र नहीं आर मुझे पछे तो कह देना—बीमार है ।

“अच्छा जाये ! (=अप्ये ! ) उस दौवारिकन साक्यवती गणिकाका कहा ।

“साक्यवती गणिकाये उस गर्भके परिपक्व होनेपर एक पुत्र बना । तब साक्यवती ने दासीको बुझना दी—

“हन् ! मे ! इस बच्चेको कचरेके सूपमें रखकर दूधके ऊपर छोड़ दे ।

दासी साक्यवती गणिकाको “अच्छा जाये !” कह उस बच्चेको कचरेके सूपमें रख छोड़कर दूधके ऊपर रख आई ।

उस समय अमप राजकुमारने सक्कलमें ही राजाकी हाजिरीको जाते ( समय ) कौर्मोसे बिदे उम बच्चेको देखा । बेलकर ममुर्षोको पूछा—

मने ! (=रे ! ) यह कौर्मोस गिरा क्या है । “देव ! बका है”

‘मने जीता है ? ‘देव जीता है !

तो मने ! इस बच्चेको छ बाकर हमारे जन्तपुरमें हासियोंका पोसनके लिये दे जाओ ।

“अच्छा देव !” उस बच्चेको अमप-राजकुमारके जन्तपुरमें हासियोंको पोसनके लिये दे जाये । ‘जीता है ( जीवति ) बरके उसका नाम भी जीवक रक्ता । कुमारने पोसा या इसलिय कौमार-नृत्य नाम हुआ । जीवक कौमार-भृत्य न-चिरही में बिद्ध हो गया । तब जीवक कौमार-नृत्य जहाँ अमप राजकुमार था वहाँ गया, जाकर अमप राजकुमारका बोध—

“देव ! मेरी माता कौन है मेरा पिता कौन है ?”

‘मने जीवक ! मैं तेरी माँको नहीं जानता और मैं तारा पिता हूँ मैंन तुझे पोसा है ।

तब जीवक कामार नृत्यको यह हुआ—

“राजकु ( =राजद्वार ) मायी होता है यहाँ कित्त सिखके बोधिका करवा मुश्किल है । क्यों न मैं सिख सीखूँ ।

उम समय तस जिलामें ( एक ) विद्या-प्रमुख ( =विद्यंत प्रसिद्ध ) बघ रहता था । तब जीवक अमप राजकुमारको बिना पछे किरर तस-सिख वी उभर बका । अमपका जहाँ तस-विद्या वी जहाँ वह ईश्वर का वहाँ गया । जाकर उम ईश्वरको बोला—

“बाबायै ! मैं सिख सीखना चाहता हूँ ।

“तो मने जीवक ! ‘सीखो ।

१ अ. क “जैत दूसरे हात्रिब आदिब लपके जाकार्थको घब देकर कुछ काम न कर बिद्या सीखते हैं उसने बसा नहीं ( किया ) । वह कुछ भी घन न दे अर्म-अन्तेवासी हो एक समय बपाप्यापक्ष काम करता एक समय पकता था ।” २ बाह्योकी बेरी स्तेमन लकसिका वि राजकुविधी ( प पंजाब ) ।

जीवक कौमार-मृत्यु बहुत पक्का था अपनी धारणकर फटा था अपनी तरह समझना था पहा हुआ इसको भूकटा न था। साथ ही भीतनेपर जीवक को यह हुआ—'बहुत पक्का हूँ' पक्के हुये साथ ही हो गये लेकिन इस सिधरका अन्त नहीं माखम होता। कब इस सिधरका अन्त जान पड़ेगा? तब जीवक जहाँ वह बीघ था, वहाँ गया जाकर उस बीघको बोला—

‘आचार्य! मैं बहुत पक्का हूँ। कब इस सिधरका अन्त जान पड़ेगा?’

‘तो मने जीवक! खनती (=खनित्र) केकर तछ-शिफाके बोजन-बीजन चारों ओर घूमकर जो अ-अपज्य (=प्राके अयोग) देलो उसे के भायो।’

‘अच्छा आचार्य! जीवक ने कुछ भी अ-अपज्य न देला (भीर) जाकर उस बीघको कहा—

‘आचार्य! तछ-शिफाके बोजन-बीजन चारों ओर मैं घूम आया (किट्ट) मैंने कुछ भी अ-अपज्य नहीं देला।

‘सिख कुछ मने जीवक! वह तुम्हारी जीविकके लिये पर्याप्त है।’ (कह) उसने जीवक कौमार मृत्युको बोला पायेव दिया। तब जीवक उस लक्ष्य-पायेव (=राह काच) को से सिधर राजपूह था उबर चला। जीवक का वह स्वप्न पायेव रास्तेमें साकेत (=अधोष्ठा) में अतम हो गया। तब जीवक कौमार-मृत्युको यह हुआ—अध-पान-रहित जंगली रास्ते हैं बिना पायेवके जाना मुकर नहीं है; क्यों न मैं पायेव हूँ।

उस समय साकेतमें अट्टि (=नगर-सेठ) की भाषाको साथ बर्षका सिर-दर्द था। बहुतसे बड़े-बड़े दिगंत विख्यात बीघ जाकर वहाँ अ-रोगकर सके (भीर) बहुत हिरम्ब (=असर्दी) सुबन केकर चले गए। तब जीवकने साकेतमें प्रवेशकर आदिमियोंको घूम—

मने कोई रोगी है जिसकी मैं चिकित्सा करूँ?’

‘आचार्य! इस अट्टि-भाषाको साथ बर्षका सिर-दर्द है आचार्य! जाओ अट्टि भाषाकी चिकित्सा करो।

तब जीवक ने वहाँ अट्टि गृहपतिका मकान था वहाँ जाकर हीवारिकको बुलवा दिया—

‘मने! हीवारिक! अट्टि-भाषाको कह—‘आर्ये! बीघ जाया है वह तुम्हें देखना चाहता है।

अच्छा आर्य! कह हीवारिक जाकर अट्टि-भाषाको बोला—

‘आर्ये! बीघ जाया है वह तुम्हें देखना चाहता है।

‘मने हीवारिक! कैसा बीघ है?’

‘आर्ये! तदन (=दहरक) है?’

‘तब मने हीवारिक! तदन बीघ मेरा क्या करेगा? बहुतसे बड़े-बड़े दिगंत विख्यात बीघ।

तब वह हीवारिक वहाँ जीवक कौमार-मृत्यु था वहाँ गया। जाकर बोला—

‘आचार्य! अट्टि भाषा (=संझानी) पूसे कइती है—तब मने हीवारिक।’

'अ मग द्वाचारिक ! सेठानीको कह—भायें ! बघ पस कहता है—भरवा ! पहिले कुछ मठ दा बघ न-रोग हो जाना, तो जो चाहना सो वेण ।

'अच्छा आचार्य ! द्वाचारिकने अ हि-मार्वाको कहा—भायें ! बघ ऐसे कहता है ।'

'तो भजे ! द्वाचारिक ! बघ भायें ।'

"अच्छा भरवा ! जीवकको—कहा—“आचार्य ! सेठानी तुम्हें बुकती है ।”

जीवक सेठानीक पास जाकर, रोगको पहिचान सेठानीको बोझ—

"अरवा ! मुझे पसर मर भी चाहिये ।

सेठानीने जीवक को पसरमर भी दिल्वाया । जीवक ने उस पसरमर धीको नाम द्वाहूपोस पकाकर सेठानीको चारपाईपर उतान केदवाकर नपथोंमें दे दिया । भ्राक से दिया वह भी मुझसे निकक पया । सेठानीक पीकपानमें पूककर दासीको हुकम दिया—

"इन्द् जे ! इस धीको बर्तनमें रक छे ।

तब जीवक कीमार-भृत्यको बुझा— आचार्य ! यह धरनी कितनी कृपण है जो कि इस पैकने कापक धीको बतवमें रकवाती है । मेरे बहुतसे महार्थ आपधि इसमें पड़े हैं इसक किये वह क्या देगी ?' तब सेठानीने जीवक के भावको ताडकर जीवक कं कहा—

"आचार्य ! तू किस किये उदास है ?'

'मुझे ऐसा हुआ—आचार्य ! ।'

"अच्छा ! हम गृहन्विने (=भ्याचारिक) हैं इस संपमको जावती हैं । यह धी दासी कमकर्तोंके पैरमें मरुने नार दीपकमें दासकको अरवा है । आचार्य ! तुम उदास मठ होओ । तुम्हें जो देना है उसमें कमी नहीं होगी ।'

तब जीवकने सेठानीके साथ बर्षके शिर-वर्षको एक ही नससे निकाल दिया । सेठानीने अरोग हो जीवकको चार हजार दिया । पुत्रने 'मेरी माताको निराग कर दिया ( सोच ) चार हजार दिया । बहूने 'मेरी सासको निरोग कर दिया ( सोच ) चार हजार दिया । अ हि गृहपतिने 'मेरी भार्याको निरोग कर दिया' ( सोच ) चार हजार एक दास एक दासी और एक घोड़ेका रक दिया । तब जीवक उब सोरुह हजार, दास दासी और अरवपको ले जहाँ राजगृह या उषर लक । अमराः जहाँ राजगृह जहाँ अमय-राजकुमार या जहाँ गया । जाकर अमय-राजकुमारको बोला—

"देव ! यह—सोरुह हजार, दास दासी नार अरव-रप मेरे प्रथम कामका फक है । इमे देव ! पोसाई ( =पोसाचिक ) में स्वीकार करें ।

"बही भये जीवक ! ( यह ) तेरा ही रहे । हमारे ही अन्त-पुर (=देवीकीकी सीमा)में मकान बनवा ।'

"अच्छा देव !" कह जीवक ने अमय-राजकुमारक अन्त-पुरमें मकान बनवाया ।'

उस समय राजा मागव अ थिक बिचसारको भगादरका रोग था । अतिपीठ(अभारक) प्तसे सन जाती थी । देविर्वा देककर परिहास करती थीं— इस समय देव अनुमती है

देवको एक उपद्रव हुआ है। जल्दी देव प्रसन्न करेंगे। इससे राजा मुक्त होता था। तब राजा विचसारने भगवन्-राजकुमारको कहा—

“मझे भयम् ! मुझे ऐसा रोग है जिससे धोतिर्बो खुलसे लग जाती है। देविर्बो दबाकर परिहास करती है। तो भवै भयम् ! ऐसे वैद्यको हूँ जो, जो मेरी चिकित्सा करे।

“देव ! वह हमारा तपन वैद्य जीवक अच्छा है, वह देवकी चिकित्सा करेगा।”

“तो भवै भयम् ! जीवक वैद्यको आज्ञा दो वह मेरी चिकित्सा करे।

तब भयम्-राजकुमारने जीवकको बुझुम दिया—

“भवै जीवक ! जा राज्याधी चिकित्सा करे।”

“अच्छा देव !” कह जीवक श्रीमाल-मूत्र तपन देवाने जहाँ राजा विचसार था वहाँ गया। जाकर राजा विचसारको बोला—

“देव ! रोगको देखो।

तब जीवकने राजा विचमारके भगवन् रोगको एक ही छेपसे निष्काक दिया। तब राजा विचमारने मिरोग हा पाँवकी छिपोंको सब कर्कशोंसे कर्कशत-भूषितकर ( फिर उस अमूल्यको ) छोड़वा मुँह बनवा जीवक का कहा—

“भव ! जीवक ! वह पाँवकी छिपोंका अमूल्य तुम्हारा है।”

“बड़ी बस है कि देव मेरे उपकारको धारण करें।

‘जो मने ! जीवक ! मेरा उपस्वाभ ( = स्वेधा चिकित्साद्वारा ) करो, रवधास और बुद्ध प्रमुक्त मिष्ट-संशय भी ( उपस्वाभ करो )।

“अच्छा देव ! ( कह ) जीवकने राजा विचसारको उचर दिया।

उस समय राजगृहके ओड़ीको सात वर्षका सिरदर्द था। बहुतसे बड़े बड़े दिग्गज चिकित्सा ( = हिमा-वामोश्क ) वैद्य जाकर मिरोग ब कर सके ( और ) बहुत सा द्रव्य ( = अर्घ्य ) छेकर पड़े गये। बच्चोंने उस ( दवा करमेसे ) अवाध दे दिया था। किन्हीं बच्चों ब कहा—बच्चों दिन अड़ी गृहपति भरेगा। किन्हीं बच्चोंने कहा—सातवें दिन। तब राजगृहक भगवन्को यह हुआ—“यह अड़ी गृहपति राजाका और भगवन्का भी बहुत काम करनेवाला है। लेकिन बच्चोंने इस अवाध दे दिया है। वह राजाका तपन वैद्य जीवक अच्छा है। क्यों न हम अड़ी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजास जीवक वधको मरिगे। तब राजा गृहक भगवन्ने राजा विचसारके पास जा कहा—

“देव ! वह अड़ी गृहपति दबका भी, भगवन्का भी बहुत काम करनेवाला है। लेकिन बच्चोंने अवाध दे दिया है। अच्छा हा देव जीवक वैद्यको अड़ी गृहपति की चिकित्साके लिये आज्ञा दे।”

तब राजा विचसारने जीवक कुमार भूतकी आज्ञा दी—

“जाओ भव जीवक ! अड़ी गृहपति की चिकित्सा करो।

“अच्छा देव !” कह जीवक अड़ी गृहपतिके विचारको पहिचान कर अड़ी गृहपति को बोला—

“बहि मैं गृहपति ! तुम विराम करदू तो मुझे क्या दोगे ?”

“आचार्य ! सब कम तुम्हारा हो भार मैं तुम्हारा दास।

‘न्यों गृहपति ! तुम एक करवटसे सातमास खेदे रह सकते हो ?’

‘आचार्य ! मैं एक करवटसे सातमास खेदा रह सकता हूँ ।’

‘क्या गृहपति ! तुम दूसरी करवटसे सात मास खेदे रह सकते हो ?’

‘आचार्य !—सकता हूँ ।’

‘क्या उठान सात मास खेदे रह सकते हो ?’ आचार्य ! सकता हूँ ।’

तब बीबकने खेड़ी गृहपतिको चारपाई पर कियकर, चारपाईस बाँधकर, शिरके चमचेको काबकर जोपड़ी कोक दो जन्तु बिकाक लोगोको बिलखाये—

‘देखो यह दो जन्तु हैं—एक बड़ा है एक छोटा । जो वह आचार्य कह कहत ये—

पौचवें दिन खेड़ी गृहपति मरिगा उन्होंने इस बड़े जन्तु को देखा था पौच दिवमें यह भ ही गृहपति की गुरी चाट लेता गुरीके चाट केनेपर खेड़ी गृहपति मर जाता । अब आचार्योंने छीक देखा था । जो वह आचार्य यह कहते ये—सातवेंदिन खेड़ी गृहपति मरिगा उन्होंने इस छोटे जन्तु को देखा था ।’

जोपड़ी (असिम्बनी) जोबकर, शिरके चमचेको सीकर छेप कर दिया । तब खेड़ी

गृहपतिने ससाह बीतनेपर बीबक को कथा—

आचार्य ! मैं एक करवटसे सातमास नहीं खेद सकता ।’

‘गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था— सकता हूँ ।’

‘आचार्य ! यदि मैंने कहा था तो मर मके ही जाऊँ, किंतु मैं एक करवटसे सात मास खेदा नहीं रह सकता ।’

‘तो गृहपति ! दूसरी करवट सात मास खेदे ।’

तब खेड़ी गृहपतिने ससाह बीतनेपर बीबक को कथा—

आचार्य ! मैं दूसरी करवटसे सातमास नहीं खेद सकता । । ।’

‘तो गृहपति ! उठान सात मास खेदे ।’

तब खेड़ी गृहपतिने ससाह बीतनेपर कथा—

‘आचार्य ! मैं उठान सात मास नहीं खेद सकता ।’

‘गृहपति ! तुमने मुझे क्यों कहा था— सकता हूँ ?’

‘आचार्य ! यदि मैंने कहा था तो मर मके ही जाऊँ, किंतु मैं उठान सात मास खेदा नहीं रह सकता ।’

‘गृहपति ! यदि मैंने यह ब कहा होता तो इतना भी पूर खेदता । मैं तो जाबता था तीन ससाहोंमें खेड़ी गृहपति निरोग हो जायेगा । अब गृहपति ! निरोग हो गये । आभये हो मुझे क्या देना है ?’

‘आचार्य ! सब बर तुम्हारा और मैं तुम्हारा शत्रु ।’

‘बस गृहपति ! सब बर मेरा मत ही और ब तुम मेरे दास । राजाको सर हज्जार दे दो और सौ हजार मुझे ।’

तब गृहपतिने निरोग हो सीहजार राजाको दिया और सीहजार बीबक कीभार चुराया ।

उस समय पनारसक भंडी (अनगर-सेठ)के पुत्रको मध्यवतिका (= शिरके बक तुमरी काइया) खेदते बीतप्रीमें गंडि पदजातेका रोग (शोगवा) था; जिसने पीई जाइ

(=बागु = यबागु) भी अच्छी तरह नहीं पचती थी ज्ञाना भात भी अच्छी तरह न पचता था। ऐसाच पाखाना भी ठीकसे न होता था। वह उससे कुछा रूझ = दुर्बल पीका इदरी (= धमनि-सम्पत-वाच) भर रह गया था। तब बनारसके अड़ीकी यह हुआ— 'मेरे पुत्रको वैसे रोग है जिससे बाहर भी । क्यों न मैं राजगृह जाकर अपने पुत्रकी चिकित्साके लिये, राजसे जीवक वैद्यको माँगू। तब बनारसका अड़ी राजगृह जाकर राजा बिबसारको यह बोला—

"देव ! मेरे पुत्रको वैसे रोग है न अच्छा हो यदि देव मेरे पुत्रकी चिकित्साके लिये वैद्यको आज्ञा दें।

तब राजा बिबसारने जीवक को आज्ञा दी—

"मझे जीवक ! बनारस जाओ और बनारसके अड़ीके पुत्रकी चिकित्सा करो।"

'अच्छा देव ! कह बनारस जाकर, जहाँ बनारसके अड़ीका पुत्र था वहाँ गया। जाकर अड़ी पुत्रके चिकित्साके पहिचान लोगोंको इटाकर कनात बरबा लंबोंको वैजना भाषोंको सामने एक पेटके चमड़ेको काच आँतकी गाँठके चिकित्सा भाषोंको चिकित्साया—

'देखो अपने स्वामीका रोग इसीसे बाहर पीका भी अच्छी तरह नहीं पचता था।

गाँठको सुखझाकर आँतकिणोंको (मीतर) बाककर पेटके चमड़को सीकर, कप कगा दिया। बनारसके अड़ीका पुत्र बोधी ही देरमें मिरोग हो गया। बनारसके अड़ीने 'मेरा पुत्र मिरोग कर विधा (सोच) जीवक कौमार-सूर्यको सोचकर हठार विधा। तब जीवक अब सोचकर हठारको के फिर राजगृह और गया।

उस समय राजा प्रद्योतको पाँहु-रोगकी बीमारी थी। बहुतसे बड़े-बड़े विगत चिकित्सात वैद्य जाकर मिरोग न कर सके; बहुत-सा हिरण्य (= अक्षर्य) खेर कर चके गये। तब राजा प्रद्योतने राजा मागध अफिक बिबसारके पास वृत्त भेजा—

'मुझे देव ! ऐसा रोग है अच्छा हो यदि देव जीवक-वैद्यको आज्ञा दें कि वह मेरी चिकित्सा करे।

तब राजा बिबसारने जीवक को बुझुम दिया—

'जाओ मझे जीवक ! उम्बैन (= उम्बैनी) जाकर राजा प्रद्योतकी चिकित्सा करो।

"अच्छा देव !" कह जीवक उम्बैन जाकर जहाँ राजा प्रद्योत (= पद्योत) था वहाँ गया। राजा प्रद्योतके चिकित्साके पहिचानकर बोला—

'देव ! भी पक्यता हूँ, उस देव पीरें।

"मझे जीवक ! बस, धीके विधा (जीर) जिससे तुम मिरोग कर सको उसे करो। धी से मुझे वृत्त = पहिचूकटा है।

तब जीवक को यह हुआ— 'इस राजाका रोग ऐसा है कि पीके विधा अगाम नहीं किया जा सकता; क्यों न मैं धीकी कपाच-बर्न कपाच-नाच कपाच-रस पक्यऊँ। तब जीवक ने राजा जीवकीसे कपाच-बर्न, कपाच-नाच कपाच-रस पक्यवा। तब जीवक को यह हुआ— 'राजाको धी पीकर पचते बस उबतत होता जान पड़ेगा। वह राजा धी

(कोपी) है मुझे मरना न दायें। क्यों न मैं पहिले ही ठीक कर लवूँ। तब बीबक जाकर राजा प्रद्योतको बोला—

देव ! हम लोग बच हैं; बैसे बैसे (बिसेप) मुहूर्तमें मूक उखाड़ते हैं बीबक संग्रह करते हैं। जय्या हो यदि देव बाहन-बाकाओं और नगर-द्वारोंपर आज्ञा दे दें कि बीबक जिस बाहनसे चाहे, उस बाहनसे जाने जिस द्वारसे चाहे उस द्वारसे जावे; जिस समय चाहे उस समय जावे; जिस समय चाहे उस समय (नगरक) भीतर जावे।”

तब राजा प्रद्योतने बाह्यद्वारों और द्वारोंपर आज्ञा दे दी— जिस बाहन से । उस समय राजा प्रद्योतकी मन्त्र-वृत्तिका नामक इषिणी (दिनमें) पचास बोजन (बजने) वाली थी। तब बीबक क्रीमार मृत्यु राजाके पास भी ले गया—“देव ! कपय पिये”। तब बीबक राजाको भी पिबाकर इषि-स्तारमें उस मन्त्रवृत्तिका इषिणी पर (सवार हो) नगरसे निकल गया। तब राजा प्रद्योतने उस पिये धीको उबाँध दिया। तब राजा प्रद्योतने मनुष्योंको कहा—

“मने ! कुछ बीबकने मुझे भी पिबाया है बीबक बैचको हूँदो।”

“देव ! मन्त्रवृत्तिका इषिणीपर नगरसे बाहर गया है।”

उस समय भममुषसे अल्पक काक नामक राजा प्रद्योतक दाम (दिनमें) साठ बोजन (बजने) काक था। राजा प्रद्योतने काक दासको बुझुम दिया—

“मने काक ! तू बीबक बैचको कौट क्य—‘आचार्य ! राजा तुम्हें कौटना चाहते हैं। मने काक ! यह बैच लोग बचे मावाची होते हैं उस (के हाथ)का कुछ मत लेना।

तब काकने बीबक क्रीमार मृत्युको मार्गमें कौटान्धीमें कडेवा करते हुआ। काक दासने बीबक को कहा—

‘आचार्य ! राजा तुम्हें कौटवाते हैं।

“ठहरो मने काक ! बचक का हूँ। हन्त मने काक ! (तुम भी) जाओ।

बसे आचार्य ! राजाने आज्ञा दी है—‘यह बैच लोग मावाची होते हैं उस (के हाथ) का कुछ मत लेना।

उस समय बीबक क्रीमार-मृत्यु बचसे दवा कया आँकड़ा काकर पापी पीता था। तब बीबक ने काक को कहा—

“तो मने काक ! आँकड़ा जाओ और पापी पिओ।”

तब काकदासने (सोचा) ‘यह बैच आँकड़ा का रहा है पापी पी रहा है (इसमें) कुछ भी जनिह नहीं हो सकता—(बीर) जाया आँकड़ा जाया और पापी पिबा। उसका जाया यह आँकड़ा नहीं निकल गया। तब काक (दास) बीबक क्रीमार-मृत्युको बोला—

“आचार्य ! क्या मुझे बीना है ?”

“मने काक ! हर मत तू भी निरोग होगा राजा भी। यह राजा चट है मुझे मरना न दायें इसलिये मैं नहीं हूँगा। (—कह) मन्त्रवृत्तिका इषिणी काकको दे वहाँ राजगृह का वहाँको कका। कभरा वहाँ राजगृह का वहाँ राजा बिबस्तार का वहाँ वहुँका। पडु चकर राजा बिबस्तारको यह (सब) बात कह डायी।

‘मने बीबक ! जय्या किया जो वही कौट। यह राजा चट है मुझे मरना भी दाय्या।”



तब राजा प्रद्योतने निरोग हो जीवक कौमार-मृत्युके पास दूत भेजा—'जीवक जबें पर (=हमाम) हूँगा' 'बस आर्य ! देव मरा उपकार (=अधिकार) वाह रखे। उस समय राजा प्रद्योतको बहुत सौ हजार पुष्पाकेके ओषधोंमें अश्वत्थ=हृत्सुम्ब=इक्षुम = प्रवर पशुपि ( देव) के हुस्तासोंका एक ओषध प्राप्त हुआ था। राजा प्रद्योतने उस सिक्किने हुस्ताकेकी, जीवकके किये भेजा। तब जीवक कौमार-मृत्युको यह हुआ—

'राजा प्रद्योतने मुझे यह सिक्किन पुष्पाका ओषध भेजा है। उन भगवान् जहाँ सम्बन्ध संसुद्धके बिना वा राजा मागव श्रेष्ठिक विषंसारके बिना दूसरा कोई इसके बोल नहीं है।'

उस समय भगवान्का शरीर शोष-ग्रस्त था। तब भगवान्ने अश्वत्थान् अश्वत्थको संबोधित किया—

'अश्वत्थ तपागतका शरीर शोष-ग्रस्त है तपागत पुष्पाव (=विरीच) लेना चाहते हैं।'

अश्वत्थान् अश्वत्थ जहाँ जीवक था वहाँ आकर बोले—

'अश्वत्थ जीवक ! तपागतका शरीर शोष-ग्रस्त है, पुष्पाव लेना चाहते हैं।'

'तो मन्ते ! आश्वत्थ ! भगवान्के शरीरको कुछ दिन स्निग्ध करें (=चिकना करें)। तब अश्वत्थान् अश्वत्थान् भगवान्के शरीरको कुछ दिन स्नेहित कर आकर जीवक को बोले—

'अश्वत्थ जीवक ! तपागतका शरीर अब स्निग्ध है, अब चिकना समय समयको (बैसा करो)।'

तब जीवक कौमार, मृत्युको यह हुआ—

यह मेरे किये योग्य नहीं कि मैं भगवान्को मामूली पुष्पाव हूँ। (इसकिये) तीव्र उत्पन्न-इस्तको भाग्य जीवकोंसे माधितकर, आकर भगवान्को एक उत्पन्न-इस्त (=अश्वत्थ) दिया—

'मन्ते ! इस पहिले उत्पन्न इस्तको भगवान् सूँभे यह भगवान्को इस बार पुष्पाव कयावेगा। इस दूसरे उत्पन्न-इस्तको सूँभें। इस तीसरे उत्पन्न-इस्तको भगवान् सूँभें। इस प्रकार भगवान्को तीस पुष्पाव होंगे।'

जीवकने भगवान्को तीस पुष्पावके किये भीषण दे अविवाहनकर प्रदक्षिणकर एक दिया। तब जीवकको बड़े दर्बानेसे विचकनेपर यह हुआ—'मैंने भगवान्को तीस पुष्पाव दिया। तपागतका शरीर शोष-ग्रस्त है भगवान्को तीस पुष्पाव ब होगा एक कम तीस पुष्पाव होगा। अब भगवान् पुष्पाव हो जानेपर वहाँसे तब भगवान्को एक और विरीचन होया। तब भगवान्ने जीवकके चिकने विचकनेको आनकर, अश्वत्थान् अश्वत्थको कहा—

'आश्वत्थ ! जीवकको बड़े दर्बाने से चिकनेपर । इसकिए आश्वत्थ ! धर्म एक तप्यार करो।'

'जप्य मन्ते !' कह भाग्युष्मान् ज्ञानम्बुन एक तप्यार किया । तब जीवक-  
बाकर 'भगवान्से बोध—

'मुझे मन्ते ! बड़े बर्बादसे निकलने पर । मन्ते ! स्वाम कर सुगत ! स्वाम कर ।'  
तब भगवान्ने गर्म बरसे स्वाम किया । वहाँ पर भगवान्को एक ( और ) विरेचन  
हुआ । इस प्रकार भगवान्को चूरे तीस विरेचन हुये । तब जीवक ने भगवान्को  
पह कहा—

'तब तक मन्ते ! भगवान्का शरीर खल्य नहीं होता तब तक मैं बूँस'पिंड  
पात ( हूँगा ) ।'

भगवान् का शरीर बोधे समयमें ही खल्य हो गया । तब जीवक उस सिबिधे  
हुसाले को क, वहाँ भगवान् ने कहा गया । बाकर भगवान्को अग्निदाहनकर एक और  
दीया । एक और बड़े जीवक " ने भगवान्को पह कहा—

'मैं मन्ते ! भगवान्से एक वर माँगता हूँ ।'

'जीवक ! तपागत बरके परे हो गये हैं ।

'मन्ते ! जो कुछ है जो मिर्दोच है ।'

'बोधी जीवक !

'मन्ते ! भगवान् पांशुद्विक ( =कलाधारी ) हैं और मिश्र-संब मी । मन्ते मुस  
वह सिबिधे हुसाल्य बोधा राजा प्रद्योतने मेधा है । मन्ते ! भगवान् मेरे इस सिबिधे हुसाल्य  
बोधेकी स्वीकार करें और मिश्र-संबकी गृहस्थोंके दिन शीघर ( =गृहपति-शीघर ) की  
बाधा रहे ।'

भगवान्ने सिबिधे हुसाले को स्वीकार किया । मिश्रसंबको धर्मत्रित किया—

'मिश्रको ! गृहपति-शीघर ( के उपयोगकी ) अनुज्ञा देता हूँ । जो चाहे पांशुद्विक  
रहे जो चाहे गृहपति-शीघर चारण करे । ( दोबोमें ) किसीसे भी संघुष्टि कहता हूँ ।'

उस समय काशिराजने जीवक शीमार-शुत्वको पंचसीका बंधन भेजा । जीवकने  
" भगवान्की कहा—

'मन्ते ! मुझ 'काशिराजने वह बंधनकी बंधन भेजा है । मन्त ! भगवान्  
कर्मकको स्वीकार करें जो कि शीघ-रात तक मर हित मुझके किये हा ।'

भगवान्ने स्वीकार किया " ।

'मिश्रको ! उ प्रकारके शीघरोंकी अनुज्ञा देता हूँ, (१) काम (२) कार्पासिक  
(=कपासक) (३) कपेव (=रुचम) (४) कर्मक (५) साल (=समक) (६) भंग ।

उस समय मिश्र अग्निद्विक (= बिना अटकर जोड़े ) ही "कपाव ( बसों ) को  
चारण करते थे । तब भगवान् राजगृहमें बधेष्क विहार कर जहाँ दृष्टिपागिरि है वहाँ  
परिष्कारको दधे । भगवान्ने भगवके शैठोंको अग्नि (= कपारी )-बद्ध, पाकि (=मैठ )-बद्ध=

१ अ. क "भगवान्के हुसाल्य ज्ञानसे" दोस वर्षतक किसीन गृह-पति-शीघर चारण  
नहीं किया सब पांशुद्विक ही रहे ।"

१ अ. क 'कासीदेसका राजा (=कासिबंध राजा) प्रसन्नजिन्का एक पितासे भाई ।'

मर्वादावद् अस्मिन्क- (कोबोका मेक) -वद् देवा । एतत्तु भावुप्पान् भावन्त्थे संबोधितं किंवा—

‘आनन्द ! देखते हो भगवन् के श्रोतोंको—अर्चि-वद् ?’ ‘अन्ते ! हाँ ।’

आनन्द ! मिथुओं के किये इस प्रकारका चीवर बना सकते हो ?’

‘भगवान् ! ( बना ) सकता हूँ ।’

इतिपायिदिमें इच्छानुसार विहारकर भगवान् पुनः राजगृहमें स्थाय भाये । तत्र भावुप्पान् भावन्त्थे बहुतसे मिथुओंके चीवरोंको बनाकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, जाकर भगवान्को यह बोले—

‘अन्ते ! भगवान् देखीं मैंने चीवर बनाये हैं ।’

भगवान्ने इसी विधान-इसी प्रकारमें धार्मिक कथा कहकर मिथुओंको आर्म्भित किंवा—

‘मिथुओ ! आनन्द पंडित हैं मिथुओ ! आनन्द महाप्रज्ञ है इसने मेरे संबोधने कहे का विचारसे अर्ध आन किंवा । कुपी भी बनाई आधी कुपी भी बनाई । मंडक भी बनाया आधा मंडक भी बनाया । विषर्त्त भी बनाया अनु विषर्त्त भी बनाया । प्रविषक भी बनाया अविषक भी । बाहन्त मो । छिन्नक ( = अर्द्धकंडककर सिद्ध चीवर ) सत्त्व-रूप ( = आकाश-रूप ) चीवर अमजोंके योग प्रत्यर्षिर्वा ( = धार जारि ) के ( किये ) वेदामका होया ।

‘मिथुओ ! छिन्नक-संबन्धी, छिन्नक-उत्तरासग छिन्नक-अन्तरवासकी अनुज्ञा करता हूँ ।’

× × × ×

( १३ )

चोरीकी ( २ ) पारासिका । त्रिचीवर-विधान । मैथुन ( १ )

पारासिका । ( इ पू ५०८ ) ।

‘इस समय भगवान् राजगृहमें गृध्रकूट-पर्वतपर विहार करते थे ।

बहुतसे संज्ञान्त = संदह मिथु प्रियिगिरि ( = इसिगि ) की बगळमें तुल-कुटी बना वर्षावास करते थे । तत्र वह मिथु वर्षावासकर तीव्र मासके बाद तुल-कुटियोंको उजाड़ तुल और काष्ठ सपुर्र्कर अबद-धारिक ( = अमत्त ) को चले गये । किंतु भावुप्पान् धनिय कुम्भकार पुत्र जहाँ वर्षासे बसे वहीं हेमन्तमें वहीं प्रीष्यमें भी । भावुप्पान् अन्विक कुम्भकार-पुत्रके गर्भमें पिबपाठ ( सिद्धा ) के किये जानेपर तुल-हारिषिर्वा काष्ठ-हारिषिर्वा तुल-कुटीको उजाड़कर तुल और काष्ठ केकर चली गई । दूसरीबार भी भावुप्पान् अन्विक कुम्भकार-पुत्रके तुल और काष्ठ जमाकर तुल-कुटी बनाई । दूसरी बारभी जा अन्विक के गर्भमें । तत्र भावुप्पान् अन्विक कुम्भकार-पुत्रके वह बुद्धा—तीव्र बार भी मेरे गर्भमें पिबपाठके किये जानेपर तुल धार काष्ठ केकर चली गई । मैं अर्पणे आचार्यक ( = वेसा ) कुम्भकार-

१ पारासिका । २ ( जित्त-पिदक ) ।

कर्ममें सु-विहित हैं। क्यों न मैं स्वयं क्षीचद् मर्त्य कर सारी मही ही क्षी कुटी बनाऊँ।  
 तब आपुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रने स्वयं क्षीचद् मर्त्यकर सर्व-सूक्तिका-मय कुटी बना, तुम  
 गोबर ककड़ी इकट्ठा कर उस कुटीको पकवाया। वह अमिरुप = वर्तनीय = प्रासपरिक कास  
 रंगकी हुई, जैसे कि वीर-बहुटी (= इन्द्र-गोपक)। जैसे द्विक्रियाका शब्द, जैसे ही उस  
 कुटीका (उन डम) स्रष्टृ होता था।

भगवान् ने बहुतसे मिष्ठुओंके साथ गृध्रकूट-पर्वतसे उतरते उस अमिरुप क्षक  
 कुटियाको देखा। देखकर मिष्ठुओंके आसक्ति किया—

“मिष्ठुओ! यह अमिरुप काक वीर-बहुटी जैसी क्या है?” तब भगवान् को उन  
 मिष्ठुओंसे वह (सब) बात कही। भगवान् ने विचारता—

“मिष्ठुओ! उस मासाचक्रको यह अन्-अनुच्छदिक = अन्-अनुलोम = अ-मतिरुप  
 (= अयोध) अमज-आचारके विद्वद्, अ-कल्प्य = अ-करणीय है। कैम मिष्ठुओ! उस मोघ  
 पुरुषने सर्व-सूक्तिकमयी कुटी बनाई? मिष्ठुओ! मोघ पुरुषको प्राणियोंपर दबा = अनुकम्पा =  
 अ-विहिता न होगी। जाओ मिष्ठुओ इसे छोड़ छोड़ो, जिसमें आनैवाकी अगता प्राणातिपात  
 में न पड़े। ओर मिष्ठुओ! सर्व-सूक्तिकमयी कुटी न बनाया चाहिये। जो बनावे उसको  
 दुर्गन्धकी आपत्ति।

अप्य मन्ते!” भगवान् को कह वह मिष्ठु अहाँ वह कुटी भी वहाँ गये; जाकर  
 (उन्होंने) उस कुटीको छोड़ छोड़। तब आपुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रने उन  
 मिष्ठुओंको कहा—

“आबुसो! तुम मेरी कुटिकाको क्यों कोफते हो?”

“आबुस! भगवान् कोफता रहे हैं।

‘आबुसो! कोफो यदि धर्म-स्वामी कोफताते हैं।

तब आपुष्मान् धनिय कुम्भकार पुत्रको वह हुआ—‘तीन-तीन बार मेरे गाँवमें  
 पिंडपातके किये जानेपर तुम हारिणियाँ तुम काष्ठ उठा ल गइ। जो मैंने सर्व-सूक्तिकमयी  
 कुटी बनाई, वह भी भगवान् ने कोफता ही। दाद-गृहमें (= दाद-गोशाम) में गजक (= हृक)  
 मेरा परिचित (= संविद्ध) है। क्यों न मैं दादगृहमें गजकस लकड़ी साँगकर लकड़ीके  
 भीतवाकी कुटी बनाऊँ। तब आपुष्मान् धनिय अहाँ दादगृहका गजक था वहाँ गये।  
 जाकर दादगृहके गजकसे बोके—

‘अबुस! तीन बार गाँव में मेरे पिंडपातके किये जानेपर। आबुस! मुस लकड़ी  
 दो लकड़ीके भीतवाकी कुटी बनाना चाहता हूँ।”

‘मन्ते! जैसे काष्ठ नहीं है जिन्हें मैं आर्ध-मे हूँ। मन्ते वह राजकीय (= दैवगृह)  
 काष्ठ ‘नगरकी मरम्मतके किये रखते हैं। यदि राजा दिक्कवावे तो मन्ते! उस ल अजा।”

१ अ क. ‘नगरकी मरम्मतके उपकरण। ‘आबुसके किये अग ल्याने या पुराणा  
 होने या सत्रराजाके बेरा देनेस या गोपुर बहुराज राजाका अन्तपुर इव सार आदिकी  
 विपत्ति।

“आबुस ! राजाने (रे) दिया है ।’

तब दाह-गृहके गणकने—‘यह शापयपुत्रीय जमण (संभवासी) बर्म-बारी, समचारी ब्रह्मचारी सत्य-बारी शक्ति-बान् कस्नाक-यर्मा होते हैं। राजा भी इन्पर बलि प्रसन्न है। अदिब (= न दिने) को दिब (= दिया) नहीं कह सकते।—तोच आबुप्पान् पविब को यह कहा—

“भन्ते ! ठे बाजो !’

आबुप्पान् पविब ने उच काण्होको बंधारसही कय कर गाणीमें बुद्धवा कर लकीने नीतकी कुटी बवाई ।

तब मगधका महामात्य चर्पेकार आह्वय राजगृहमें कर्मान्तो (= कर्मो) का निरीक्षण (= अनुसन्धान) करते जहाँ दाह-गृहका गणक वा बहो गया। जाकर दाह-गृह-गणकको बोला—

“भन्ते ! जो यह राजकीय काह नगरकी मरम्मतके किये स आपत्के किये रखते थे वह कहाँ है ?’

‘रवामी ! देखने उच काण्होको कार्य बविब कुम्भकार-पुत्रको दे दिया !’

तब चर्पेकार आह्वय मगध-महामात्य रंज बुधा—‘किये देखने नगरकी मरम्मतके किये, आपत्के किये रखके राजकीय काह को बविब कुम्भकार (= पुत्रको) दे दिया ?’ तब चर्पेकार मगध-महामात्य जहाँ राजा विजसार वा, बहो गया, जाकर राजा “विजसारको बोला—

“क्या सच-मुच देखने नगरकी मरम्मतके किये आपत्के किये रखके राजकीय काहकी बविब कुम्भकार-पुत्रको दे दिया ?’

“किसने ऐसा कहा ?’

“देव ! दाह-गृहके गणकने ।’

“तो दाह-गृह-गणकको आज्ञा दो ।’

तब चर्पेकार आह्वय मगध-महामात्यने दाह-गृह-गणकको बधिगका हुकुम दिया। आबुप्पान् पविब कुम्भकार-पुत्रने दाह-गृह-गणकको बधिगकर से जाते देखा। दलकर दाह-गृह-गणकको पूछा—

“आबुस ! ( तुम्हें ) क्यों बधिगकर से जा रहे हैं ?’

“भन्ते ! उच लकीबिबोके किये ?’

“बको आबुस ! मैं भी जाता हूँ ।’

‘भन्ते ! मेरे भारे जानेसे पहिले जाना ।’

तब आबुप्पान् पविब कुम्भकार-पुत्र जहाँ राजा विजसारका विवास था बहो गये। जाकर बिडे आसनपर बिडे। तब राजा विजसार जहाँ आबुप्पान् पविब से बहो गया। जाकर आबुप्पान् पविब “को अमिवात्त कर एक ओर बिट गया। एक ओर बिट राजा—” विजसारने आबुप्पान् पविब को कहा—

“भन्ते ! क्या मैंने सचमुच राजकीय काय्य कार्यको किये ?’

“हाँ महाराज !”

“मन्ते ! हम राजा को बहुत दुःख = बहुत दर्द ( = बहुत कामवाले ) होते हैं देकर भी नहीं समझ करते । अच्छा तो ( = हँस ) मन्ते ! समझ कराओ ।”

“महाराज ! पाप है प्रथम अग्निपेक होनेपर यह बचन बोले थे—प्रथम-माहात्म्यको तुम काह-उदक दे दिया ( उदक ) परिभोग कर ।”

“मन्ते ! पाप करता हूँ प्रथम-माहात्म्य कजावान्, संवेदवान्, संभम-आकांक्षी ( होते हैं ) उन्हे बोधी-सो ( बात ) में भी सम्येह उदक होता है । उनके क्वाकसे मैंने कहा ( या ) और यह तो बांगळमें बेमाकिणके ( तुल-काह-उदक ) के विषयमें ( या ) सो मन्ते ! तुमने उस बातसे अविद्य ( = बिना दिने ) दाद ( = काह ) को के जावा मान किया । मन्ते ! मेरे जैसे ( भावनी ) राज्यमें बसते कैसे कोई प्रथम या माहात्म्य इनम करे या संभन करे वा देखसे बिकाके ( = पदवावेद ) । मन्ते ! जाओ 'कोम ( = रोये ) से बँच गये फिर ऐसा मत करवा ।”

मनुष्य ( इसे सुनकर ) सोचते कुपते विचारते थे— शाक्य पुत्रीय अमन निर्द्वज है, दुःखीक ( = बुराचारी ) स्यावाही है । यह ( अपने दिने ) धर्म-धारी सम-धारी बहारी सरयवाही शीकवान् कसपाय-धर्मा ( होनेका ) दावा करते हैं । इनमें अमन-पव ( = आमन्व ) नहीं है, इन्होंने महाराज नहीं है । इनका आमन्व यह हो गया इनका माहात्म्य यह हो गया । कहाँ है इन्होंने आमन्व ? कहाँ है इन्होंने माहात्म्य ? आमन्वसे यह दूर है । राजाको भी यह समते हैं, और मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? भिक्षुओंने उन मनुष्योंको सोचते कुपते विचारत मुवा । तब जो बक्येय संतुष्ट, कजावान्, कितावान् ( = अविद्यक ) संभम इष्टुक भिक्षु थे वह सोचने कुपने विचारने को—‘कैसे जानुमान् धविष कुम्भकार-पुत्रने बिना दिने राजाक दाद के दिने । तब उन भिक्षुओंने भगवान्को यह बात कही । भगवान्ने इसी भिक्षुन = इसी प्रकारमें भिक्षु-संभको पकभित कर जानुमान् धविष कुम्भकार-पुत्रको पूज्य—

“धविष ! क्या तुने सचमुच राजाके अद्वय काहका आदान ( व्यहम ) किया ?”

‘भगवान् सच-मुच ।

भगवान्ने विहरा—“मोघ-पुदव ! ( तुने यह ) अन्-अनुप्यविक-अन्-अनुकीमिक अ-प्रतिरूप ( = अयोग्य ) अ आमन्व-अ-कल्प्य-अ-कल्पिष ( किया ) । मोघ-पुदव ! राजाके अद्वय-काहको तुने कैसे आदान किया ? मोघ-पुदव ! वह अ-असत्ताको प्रसन्न करनेके दिने नहीं प्रसन्नो ( की प्रसन्नता ) को बढ़ानेके किन् नहीं । धविष-मोघ पुदव ! अ-असत्ताको प्रसन्न करनेके दिने प्रसन्नोमें भी किताकोंको अन्ववा ( = उदक ) कर देनेके दिने है ।

१ अ. क. ‘जैसे ( कुह ) दूध मांस काबेके दिने महार्थ कोसवन्दी भेदको पकव के काये । तब उसको दूसरा बित्त-पुदव देखकर ‘इस महका मांस एक कार्याय मूल्यका है । कोम ( = काह ) तो हर कदाईक समय अनेक कार्याय मूल्यके है’ ( सोच ) दो काह-रहित भेद है, के जाये । इस प्रकार वह भेद बित्त-पुदवको वा कोमके कारण मूल्य हो जाय । पैस ही तुम इन प्रज्या-विद्य कपी-अमस भेदकी तरह बित्त-पुदवको प्राप्त हो, मूल्य हो गये ।”

उस समय मिथुनोंमें प्रवृत्त हुआ एक भूत-पूर्व व्यवहार-आमात्य ( = व्यवसायाधीन ) मगधान्से अ-विभू ( = समीप ) बंटा था । मगधान्ने उस मिथुनको पछा—

‘मिथु ! राजा मागध कबिक बिबसाह कितने (के अघराथ) से चोरको पकड़ कर मारता है बौद्धता है या वैस निकरक देता है ?’

“पादसे मगधान् ! या पादके बराबर मूख होने से ।

उस समय राजगृहमें पाँच ‘मापक ( = मास ) का पाद होता था । तब मगधान् अशुभ्यान् बबिब कुम्भकार-पुत्रको बिकार कर—

‘ओ कीर्त्त मिथु ग्राम या अरभ्यसे चोरी मानी जानेवाली अदृष्ट ( पस्तु ) प्रकृत कर, कितनेके अदृष्टतादायसे राजाको मगधान् चोरको पकड़कर—(१) चोर है बाण है मूढ़ है स्तेन है (२) मारें बौधें वा वेध निकरक हैं, उतकक अदृष्ट-आहाम ( = बिमा दिया केन ) से मिथु पाराजिक होता है ( मिथुनोंके साथ ) प काम करने अघक ।

पाराजिक होता है = जैसे बेंपसे दृष्ट पीका पत्ता (किर) हरा होने अघक महीं होता ऐधेरी मिथु पाद वा पाद-मूखक या पादस अघिक चोरी माने जानेवाले अदृष्टको आघाम कर, अ-अमन अ-आप्य-पुत्रीय होता है इसकिसे कहा पाराजिक होता है ।

राजगृहमें बनेष्व बिहार कर मगधान् बहौ वैशाखी है बहौ पारिकके किये बडे । राजगृह और वैशाखीक बीचके मागमें जाते मगधान्ने बहुतस मिथुनोंको चीवरोंकी गदरी—सिरपरमी चीवरकी गदरी कम्पेपरमी चीवरकी गदरी कमरमेंमी चीवरकी गदरी—ककर अते रखा । बेककर मगधान्को हुआ—‘बही जन्पी वह नाकाक ( = मोख-पुदप ) बडोरसे कम्पे पवे । ननों न मी मिथुनोंके किये चीवर-सीमा = चीवर-अघावा स्वापित करे । अमक पारिक करते मगधान् बहौ वैशाखी है बहौ पहुँचे । बहौ वैशाखीमें मगधान् गौतमककेलमें बिहार करते से । उस समय मगधान् ठण्डी अन्तरदकक ( माघ और अशुवके बीचकी अठ अ क. ) हेमन्तकी रातमें हिम-पाकके समय लुकी अगहमें एक चीवर के कडे । मगधान्को डंडक न माकस हुई । प्रथम-माम बीतजाने पर ( = १ बजेके बाद ) मगधान् को डंडक माकस हुई, मगधान्ने दूसरा चीवर ओका मगधान्को डंडक न माकस हुई । प्रथम-माम बीत जानेपर ( = २ बजेके बाद ) मगधान्को डंडक माकस हुई, मगधान्ने एक और चीवर ओका मगधान्का डंडक न माकस हुई । परिधम ( = पिछके ) काम ( = पहर ) के बीतजावेपर कधी फेकते राकिके नमिभुकी होते समय मगधान्को डंडक माकस हुई, मगधान्ने चौथा चीवर ओका मगधान्को डंडक न माकस हुई । तब मगधान्को वह हुआ—‘आमी वह जीतासु मी कुक-पुत्र इस बर्नमें प्रवृत्त हुने है वह मी तीव चीवरने गुजारा कर सकत है ननों न मी मिथुनोंके चीवर की सीमा बीच अघावा स्वापित करे’ बि चीवरकी अघुया ( = आवा ) है । तब मगधान्ने मिथुनोंको अमजित किया

१ अ क. पाँच मासका पाद होता था । उस समय राजगृहमें बीस मासेका कर्पाण ( = कदापन ) होता था, इसकिसे पाँच मासेका पाद । इस कम्पले सब अघपहोंमें अहापकक अघुर्न माघ पाद आबना चाहिये । वह पुराने नीक-अहापकक बारोंमें है इससे अघरामक अघिडे ( अहापकोंक बारोंमें ) नहीं ।

'मिथुनो ! तीन बीबरकी अनुशा देता हूँ—बोहरी सभाटी एकदरा उत्तरासंभ  
( = ऊपरकी आदर ) एकदरा अन्तरासंभ ( = सुयी ) ।'

मैथुन-( १ ) पाराजिका ।

उस समय 'बन्नीमें हुमिस' था । । तब आपुप्मान् सुदिन्नको यह हुआ—'इस समय बन्नीमें हुमिस' है, उच्च-परिग्रहने (बीबर) पापन करना सुदिन्नक है । और बन्नीमें मेरी आतिबाडे बहुत भाव्य=महाशयी=महामोगवाडे बहुत-सोवा-बोधीबाडे, बहुत बिल उपकरणबाडे बहुत धन-आन्व-बाडे हैं । क्यों न मैं आतिबाडोंका आग्रह के बिहार करूं । आतिबाडे मुझे दान होंगे पुण्य करेंगे मिथुनोंका धाम पावेंगे मैं भी पिंडसे तत्कालीन न पाऊँगा । तब आपुप्मान् सुदिन्न सत्यपासन सँभाल कर पापबीबर के बिपर वसाकी भी उपर चले । क्रमसाः अहाँ वैशाकी भी वहाँ पहुँचे । वशाकीमें आ सुदिन्न महावनमें बिहार करते थे । आपुप्मान् सुदिन्नके आतिबाडों ( =श्रातक ) ने मुना—सुदिन्न कलम्-पुस्त वैशाकीमें आये हैं । तब वह आपुप्मान् सुदिन्नके किये साठ स्वाक्षियाक भोजनार्थ के आये । आपुप्मान् सुदिन्न उन साठ स्वाक्षि-पाकोंको मिथुनोंको देकर पूर्वाह्न समय (बीबर) पहिन कर पात्र बीबर हाथमें के कलम्-भाममें पिंड चार करते अहाँ अपने पिताका घर आ वहाँ गये ।

उस समय आपुप्मान् सुदिन्नकी गृहवासी ( =श्राति-वासी ) बासी ( =अभि-दोषिक ) बाक ( = कुम्भास कुम्भाप ) को फेंकना चाहती थी । आपुप्मान् सुदिन्नने उस वासी को कहा—

'मागिनी ! यदि वह फेंकनेको इ तो वहाँ मेरे पात्रमें बाक रहे ।'

'आपुप्मान् सुदिन्नकी श्राति-वासी उस वासी कुम्भापका "पात्रमें बाकठे बल हाथ पैर और स्वरकी अनुहारको पहिचान गई । तब श्राति वासी बाकर आपुप्मान् सुदिन्नकी माताको बोली—

'अरे अम्मा ! आकती हो आर्ष-पुत्र सुदिन्न आ पहुँचे हैं ।'

'यदि ने ! ( =मगही ये ! ) सच बोळती है तो तुसे न-वासी करती हूँ ।'

'आपुप्मान् सुदिन्न उस वासी कुम्भापको एक भीतकी जगमें बँदकर आते थे । आपुप्मान् सुदिन्नके पिताने कर्मान्त ( =काम ) परसे आते आपुप्मान् सुदिन्नको उस वासी कुम्भापको आते देजा । देखकर अहाँ आपुप्मान् सुदिन्न ये वहाँ गया । आकर बोळ—

'अरे तात सुदिन्न ! वासी कुम्भाप आ रद हो ? क्या तात सुदिन्न ! अपने घर वहाँ चकमा है ?'

'यथा या गृहपति ! तेर घर वहीसे यह वासी कुम्भाप ( मित्र ) है !

तब आपुप्मान् सुदिन्नका पिता हाथसे पकड़कर "यह बोळ—

१ पाराजिका १ ।

२ न क 'मगबाध' ( के सुदाल )के बारहवें वर्षमें सुदिन्न प्रकटित हुये बीसवें वर्ष श्रातिकुम्भमें पिंडक किये प्रकट हुये स्वर्ग प्रजन्ममें आठ वर्षके थे इसलिये उसे यह श्राति-वासी देखकर भी नहीं पहिचानती थी ।'



“आजो तात सुदिच ! भर बरें ।

तब आयुष्मान् सुदिच वहाँ उनके पिताका भर बा वहाँ गये । बाकर विठे आसन-पर बैठे । तब आयुष्मान् सुदिचके पिताके कहा—

‘तात ! सुदिच भोजन करो ।

“बस गृहपति ! आज मैं भोजन कर चुका ।

तात सुदिच ! ककका भोजन स्वीकार करो ।

आयुष्मान् सुदिचने मौनसे स्वीकार किया । तब आयुष्मान् सुदिच आसनसे उठकर चले गये ।

आयुष्मान् सुदिचकी माताके उस रातके बीघनेपर हरे गोबरस पृथिविके किपाकर दो बेर क्यबाके एक दिग्ग (अभयार्थी) का, बाए एक सुवर्ण (अतोबा) का । इतने बड़े पुंज हुए, कि इबेर कदा पुरक, उबेर कड़े पुरकको नहीं देख सकता था, व उबेर कदा पुरक इपर कड़े पुरकको देख सकता था । उब पुंजोंको क्यईसे रकवा बीघमें आसन विठ्या क्यत बिरवा आयुष्मान् सुदिच की पुरानी खीके संबोधित किया—

“तो बहू ! जिस जर्जकारसे अर्जकृत हो तू मरे पुत्र सुदिचके प्रिय-अनाप कमा करती थी उस जर्जकार से अर्जकृत हो ।

‘अच्छा बच्चा !

तब आयुष्मान् सुदिच पुराई समक (बीघर) पहिन्कर पात्र-बीघर के वहाँ उनसे पिताका भर या वहाँ गये । बाकर विठे आसनपर बैठे । तब आयुष्मान् सुदिचका पिता वहाँ आयुष्मान् सुदिच ने वहाँ आया । बाकर उब पुंजोंको क्येक्या कर, आयुष्मान् सुदिचको बोध—

‘तात सुदिच ! वह केवक तेरी माताका खीचन है; पिताका पितामहका अक्य है । तात सुदिच ! गृहक बनकर भोगनी भोगनेको मिक सकता है पुण्यमी करनै को । आजो तात सुदिच ! फिर गृही बनकर भोगोंके भोगो और पुण्योंको करो ।”

‘तात ! (मैं) नहीं चाहता (मैं) नहीं (कर) सकता मैं अभिरत (अभयुक्त) हो पककन पाकन कर रहा हूँ ।

बूधरी बारमी बोध । तीसरी बारमी तात सुदिच ! वह तेरा ।

“गृहपति ! यदि बहुत रंज व हो तो तुझे बोध ।

‘तात सुदिच ! बोको ।”

‘तो तू गृहपति ! बड़े बड़े बोरे बनवा दिग्ग सुवर्ण भरकर, इसे गाकिर्से बुकवा गंगाकी बाराक बीचमें बाक दे । सो किस हेतु ? गृहपति ! जो तुसे इसके कारण मय बड़ता रोमांच रकककी करनी पवती वह इससे व होती ।”

पैसा क्यनै पर आयुष्मान् सुदिचका पिता दुःखी हुआ— पुत्र सुदिच पैसा कैसे करेगा ? आयुष्मान् सुदिचके पिताके आयुष्मान् सुदिच की खीके बुकवा—

“तो बहू, तू मौ क्य, क्या जाने पुत्र सुदिच तेरा बचन ही माने ।”

आयुष्मान् सुदिच की खी आयुष्मान् सुदिचका पैर पकककर आयुष्मान् सुदिच को बोधी—

“आर्षपुत्र ! यह कैसी अप्सरायें हैं बिलकिलिने तुम ब्रह्मचर्य कर रहे हो ?”

“भगिनि ! मैं अप्सराओंकेलिये ब्रह्मचर्य नहीं कर रहा हूँ ।”

तब आयुष्मान् सुविच की स्त्री—“आज आर्षपुत्र सुविच मुझे भगिनि कहकर पुकारते हैं, ( सोच ) वहीं स्मृति हो गिर पड़ी । तब आयुष्मान् सुविचने पिताको कहा—

“गृहपति ! यदि मुझे मोजन देना हो तो दो तक्षकीक मत दो ।

“तात सुविच ! आओ ! तब आयुष्मान् सुविचको माता और पितामे उचम खाद्य-भोज्यसे अपने हाथ संतर्पित-संप्रधारित किया । आयुष्मान् सुविचकी माता आयुष्मान् सुविचके खाकर पात्रसे हाथ इष्ट क्षेत्रपर बोली—

“तात सुविच ! यह आद्य कुल है, तात सुविच ! गृही बनकर भी भोग भोगने तथा पुण्य करनेकी मिला सकता है । आओ तात सुविच ! गृही बन भोग भोगो और पुण्य करो ।

“अम्मा ! मैं नहीं चाहता नहीं सकता, मगिरत हो ब्रह्मचर्य कर रहा हूँ ।”

दूसरी बार भी । तीसरी बार भी मातामे सुविचको कहा—

“तात सुविच ! यह हमारा आद्य कुल है । (अच्छा) तात सुविच ! बीजक (२२ बीपसे उत्पन्न पुत्र) ही दो ऐसा न हो कि हमारी अ-पुत्रक संपति लिच्छवी के जाएँ ।

अम्मा ! ( यह ) सुझम किया जा सकता है ।

“तात सुविच ! कहीं इष्ट बन्ध तुम बिहार करते हो ।”

“अम्मा ! महाचर्म ।” कह आयुष्मान् सुविच आपससे बठ बसे गये ।

आयुष्मान् सुविचकी मातामे आयुष्मान् सुविचकी— स्त्रीको धर्मश्रित किया—

“(अच्छा) तात बहू ! अब प्रसूती होना अब मुझे पुण्य उत्पन्न हो तो मुझे कहना ।”

‘अच्छा अम्मा !’ — ।

तब आयुष्मान् सुविचकी पुराण दुतीपिचर ( २० की ) कतुषी हुई, उसे पुण्य उत्पन्न हुआ, तब माताको कहा—

“मैं कतुषी हूँ अम्मा ! मुझे पुण्य उत्पन्न हुआ है ।

“तो बहू ! जिस अर्ककारसे अर्कहृत हो मेरे पुत्र सुविचको त्रिप-मनाप जगती भी उस अर्ककारसे अर्कहृत होओ ।

“अच्छा अम्मा !”

आयुष्मान् सुविचकी माता सुविचकी स्त्रीको लेकर कहीं महावन या कहीं आयुष्मान् सुविच ये चर्हा गई, जाकर आयुष्मान् सुविचकी बोली—

“तात सुविच ! यह हमारा आद्य कुल है ।”

दूसरीबार भी । तीसरीबार यह बोली—

“तात सुविच ! तात सुविच ! बीजक ही दो ऐसा न हो कि हमारी अ-पुत्रक संपति लिच्छवी के जाएँ ।

१ अर्क “हमकोग लिच्छवी पण-राजाओंके राज्यमें बसते हैं । वह तरे पिताके घरमेपर हम मन्वधि इस महान् विषयको, इसक पुत्र न होनेसे अ-पुत्रक कुरुपनकी अपने राज-अन्त-पुरमे के जाएँगे ।”

“अम्मा ! यह सुद्धमे किबा जा सकता है ।”

(कह कर सुद्धिजने) जी की बाँह पकड़ महाबलके भीतर सुद्धर सिद्धापर (अभिप्राय विषय) के प्रज्ञापित न होनेके समय सुद्धरिणामको न देख जीके साथ तीव्र कर मीथुन धर्म सेवक किया । उसस वह गर्भवती हुई । ।

तब आयुष्मान् सुद्धिजकी चीने उस गर्भके परिपक्व होनेपर पुत्र प्रसव किया । आयुष्मान् सुद्धिजके मित्रोंने उस पुत्रको नाम बीजक रक्ता । आयुष्मान् सुद्धिजकी स्त्रीका नाम बीजक-माता और आयुष्मान् सुद्धिजका नाम बीजक-पिता । पिछले समयमें वह दोबो घरने बेधर प्रप्रवित हो अर्ध-यव (अमुक्ति) को प्राप्त हुये ।

तब जब मिद्धुजोंने आयुष्मान् सुद्धिजको अनेक प्रकारसे पिछारकर, भगवान्को कह बात कही । । तब भयवान्ने उसके अनुष्ठीकिक-उसके अनुष्ठीक धर्म कया कह, मिद्धुजोंको सबोधित किया—

‘अच्छ तो मिद्धुजा ! इस बातोंका क्याकर मिद्धुजोंके किये सिद्धापर (अविषय) प्रज्ञापन करता हूँ—(१) संघर्षी अष्ठाह (असुहुता) क किये (२) संघर्षी कम्पुता (असासी) के किये । (३) अष्ठीक-पुद्धीक निग्रहके किये । (४) अष्ठी (अवेसक) मिद्धुजोंके आसासीसे विहर करनेके किये । (५) इस अम्मक आरवों (अचित्तमज्जों) के विचारणके किये । (६) अम्मन्तर (अर्धपराधिक) के आलवोंक नासके किये । (७) अग्रसर्जों (असमक-विर्जों) क प्रसव (अनिर्मक-विर्ज) होनेके किये । (८) प्रसवोंकी और कर्तृके किये । (९) अर्धर्मकी विररिबधिक किये । (१०) विनय (असंघम) की सहायता (अनुग्रह) के किये । ।’

जो मिद्धु मिद्धुजोंकी शिक्षा (अपराध) और साधीय (अविषय) से कुछ हो सिद्धाको विद्या प्रत्यापन (अपरित्याग) किये सुद्धकताको विना प्रकट किये, अन्तता (अपहर्ष तक कि) पद्धमें मी मीथुन धर्मका सेवन करे, वह पाराधिक होता है (मिद्धुजोंके साथ) सहायसक अबोध्य होता है ।

× × × ×

(१३)

मनुष्य-हत्या (३) पाराधिक । उत्तर-मनुष्य-धर्म (४)-पाराधिक । (ई पू ५०८)

‘उस समय कुछ भगवान् वैशाखीमें महाबलकी कूडागारयाछामें विहर करते थे । भगवान् मिद्धुजोंको अनेक प्रकारसे अ-धुम (अपराधोंकी अवस्थता)-कथा करते थे अ-धुम (भावना करने) की तारीफ करते थे आदि-आदि अ-धुम-समापचिर्षी (ज्वालों) की तारीफ करते थे । तब भयवान्ने मिद्धुजोंको आमंत्रित किया—

‘मिद्धुजो ! मैं आष-अहीना एकाम्त प्वाण (अपरिपक्वता) में रहना चाहता हूँ । विद-यात (अधिष्ठा) कावेबाकेको छोड़कर (और) किसीको (मेरे पास) न जाना चाहिये ।

“उन मिथुनोंने भगवान्‌को अण्ड मन्ते ! कहा । एक पिंड-पात हारक मिथु को छोड़ दूसरा काई नहीं बचा था । मिथुनोंने ( सोचा )—भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे अण्डम की तारीफ की है (इस किसे वह मिथु अनेक) आकर प्रकारकी अण्डम माचनाओंसे बुल हो बिहार करने को । वह आपामें धिगा करते ईरान हाते, लुगुप्सा करते थे; जैसे धिरसे गहापा सीकीव तल्प की वा पुरुप मरे सोंप या मरे कुते या मनुष्य-सबके कंसे लगने पर बिनाता है । ऐसेही वह मिथु अण्डी कपासे वृष्य लुगुप्सा करते अण्डीको अण्डीसे मारते थे, एक दूसरेको भी जानसे मारते थे ; सृगलंडिक समय-कुत्तकके पास आकर भी करते थे—

“आवुस ! अण्ड हो ( यदि ) हमें जानसे मारदो यह पात्र-पीवर तुम्हारा होगा । तब मिगलंडिक समय-कुत्तक पात्र पीवरके डोभमें बहुतसे मिथुओंको जानस मारकर, लगी तलवारको डेकर जहाँ धगुमुदा बरी थी वहाँ गया ।

तब मिगलंडिक समय-कुत्तकको लून-सर्षी तलवार धोते मरमें पभाताप हुआ खेद हुआ—अण्डम है मुझे काम नहीं हुआ मुझे । हुआंम है मुझे तुलाम नहीं हुआ । मैंने कहा ही पाप ( = अ-पुण्य ) कमाया जो मैंने शीलवान् अण्ड्याण धर्मा मिथुओंको प्रायसे मार डाला । तब मार-लोकके किसी देवताने, बिना डूबते पापीपर लड़े होकर समय-कुत्तकको कहा—

‘साधु, साधु सत्युह्य ! काम है तुझे सत्युह्य मुझाम हुआ तुझे सत्युह्य । तुने सत्युह्य ! बहुत पुण्य कमाया जो तुने अ तीणों ( = न उतरों ) को ( पार ) उतार दिया ।’

तब समय-कुत्तकने ( सोचा ) ‘काम है मुझे ’ ( और ) तीव्र तलवार सेकर एक बिहारसे दूसरे बिहार एक परिवेष ( = चौक ) से दूसरे परिवेषमें आकर ऐसा कइता—कीव अतीव है, किसको तारू ? वहाँ जो वह अ-वीर राग मिथु थे उन्हें उस समय भय होता था अडता रोमांच होता था । किन्तु जो मिथु बीतराग थे उन्को उस समय भय अडता रोमांच न होता था । तब समय-कुत्तकने एक दिनमें एक मिथुनको भी जानसे मारा दो मिथुको भी तीन बार पाँच दस बीस , तीस चालीस पचास साठ ।

भगवान्‌ने आप मासके बाठनेपर पहिलसलामसे उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

‘क्या है आनन्द ! मिथुसंघ बहुत कम होगया है ?’

‘भूँकि मन्ते ! भगवान्‌ने मिथुओंको अनेक प्रकारसे अण्डम-माचना की तारीफ की । सो मिथु । । समय-कुत्तकने भी साठ मिथुकोभी एक दिनमें मारा । अण्ड्य हो । मन्ते ! दूसरे पर्याय ( व्यकारान्तर, उपदेश ) को भगवान्‌ कहें जिसमें वह मिथुसंघ ध्याजा ( = वरम ज्ञान ) में स्थित हो ।’

‘तो आनन्द ! जितने मिथु वैशाखीमें बिहार करते हैं उन् सबको उपरवानहालामें पकड़ित करा ।’

‘अण्ड्या मन्ते !’ आयुष्मान् आनन्दने पकड़ित कर आकर, भगवान्‌का कहा—  
‘मन्ते ! मिथु संघ पकड़ित होगया । अण्ड मन्ते ! भगवान्‌ जितका काक समयमें

(बसा करे)।' तब भगवान् वहाँ उपरधान-शाका भी पहुँच गये। जाकर बिठे अक्षय पर बैठे। बैठकर भगवान्ने मिश्रुओंको आमंत्रित किया—

“मिश्रुओ ! वह आन्ध्रपात-सति (=मात्रापाम) समाधि भावना करनेसे ब्रह्मके शान्त-अवधीत आसेचनक (=सुषुप्ति) और मुक्त-विहारवासी होती है पैदा होनेवाले पापक-अनुपपन्न (=सुषुप्ति) धर्मोंको स्थानपर अन्तर्धान करती है उपसन्न करती है। जैसे मिश्रुओ ! धीपके पिछके आसमें उठी बड़ी बूझीको महा-अक्काक-मेघ स्थानही पर (=अंधाही) अन्तर्धान कर देता है उपसन्न कर देता है, ऐसेही मिश्रुओ ! वह प्राणपाम । मिश्रुओ ! जैसे जन्मापाम (=मात्रापाम) सति समाधि भावना करने पर ब्रह्मके पर शान्त ? मिश्रुओ ! मिश्रु अंगकर्मों का ब्रह्मके नीचे का ध्वज आगारमें आसन्न मार शरीरको सीधा रख, सृष्टिके संमुख रखकर बैठता है। वह स्मरण रखते इवास छोड़ता है स्मरण रखते इवास लेता है। कम्बी सांसलेते 'कम्बी सांस लेता हूँ' आस्ता है 'विरागकी अनुपस्थान करते (=विरागात् परसी) , विरोध-अनुपस्थी , 'प्रतिभिस्सर्ग (=परिस्वाग)-अनुपस्थी इवास छोड़ें' सीखता है 'प्रति-भिस्सर्ग-अनुपस्थी इवास हूँ' सीखता है। इस प्रकार मिश्रुओ ! भावना की गई आन्ध्रपात-सति-समाधि इस प्रकार बसाई गई ।”

तब भगवान्ने इसी निदान = इसी प्रकारमें मिश्रुओंको पूछ—

‘मिश्रुओ ! क्या मिश्रुओंने सचमुच अपनेको अपनेसे मारा ?’

“सचमुच भगवान् !

भगवान्ने विचारता । ...।

‘इस प्रकार मिश्रुओ ! इस शिक्षापद्धति उद्भव (=उपाद) कारण) करना चाहिये ।—

“जो पुरुष जानकर मनुष्य-शरीरको धाणस मार वा शास्त्रस मारे वा मरनेकी तारीफ करे मरनेके लिये प्रेरित कर—अरे आदमी ! तुम क्या ( है ) इस पापी दुर्भावसे जीनेने मरना अच्छा है। इस प्रकारके विच-विचारसे इस प्रकारके विच-संकल्पसे अनेक प्रकारसे जो मरनेकी तारीफ कर वा मरनेके लिये प्रेरित करे। यह भी पाराजिक होता है, अ-संघन (होता है)।

### उत्तर मनुष्य धर्म ( ४ ) पाराजिका ।

‘उम समय भगवान् वैशाखीमें महापानकी बूटागार-शासमें विहार करते थे !

उम समय बहुतसे ब्रह्म-अन्ध्रपात मिश्रु धम्ममुत्ता नदीक तीरपर बर्षा-आसके लिये गये। उम समय बर्षामें दुर्भिक्ष था । तब उम मिश्रुओंको वह हुआ—इस समय बर्षामें दुर्भिक्ष है । किम उपायसे ब्रह्म हो... सुन (पूर्वक) बर्षावाप किबा आवे ? किमी किमीने कहा—इत्त आनुमा ! इम गृहस्थोंकी] नेतीकी देण-आल करे, इस प्रकार वह हमें (भीजन) देना बसन्त करिग इस प्रकार इस ब्रह्म हो सुपये बर्षावाप करेंगे। किमी किमीने कहा—वहीं आनुमा ! क्या गृहस्थोंकी पत्नी ( कर्मात्त)की देण आल करण ? आनुमा ! इम गृहस्थोंका दूतका काम करे इस प्रकार क्या गृहस्थोंके दूत-कर्मसे ? इत्त आनुमा ! इम गृहस्थोंके (मम्मण) ब्रह्म दूतके उत्तर-मनुष्य धर्म (अद्विज सति की तारीफ

करें—अमुक मिथु प्रथम-म्यातका कामी (=पानेबाका) है अमुक मिथु द्वितीय-म्यातका  
 तृतीय चतुर्थ । अमुक मिथु खोचभापन है सङ्गदागामी अर्हण है । अमुक  
 मिथु त्रैविद्य है अमुक मिथु बह्-अभिज्ञ (=क. अविशाभोभास्य) । इस प्रकार वह ।  
 आनुसो ! यही सबसे अच्छा है, जो हम एक दूसरेके उत्तर-अनुत्प-धर्मकी तारीफ करे ।

मनुष्य (सोचते—) हमें क्या है हमें सुखम हुआ जो हमारे पास ऐसे हीकबान्  
 मिथु वर्षावासके किये जाये । जैसे यह हीकबान् कम्पाज-धर्म है ऐसे मिथु पहिले हमारे  
 पास वर्षावासके किये न जाये । इसकिये वह बैसा भोजन न अपने खाते न माछ-पिठाको  
 देते न खी बर्षाको देते न दास कर्मकर पुरुषोंको न मित्र जमात्पोंको, न आदि-बिरा  
 हरीको ; बैसा कि मिथुओंको देते थे । वह बैसा पाव न अपने पीते ; बैसा कि मिथुओंको  
 देते । तब वह मिथु कम्पाज् मोटे (=पीन-इन्मिप) प्रसम्ब-मुख-वर्ष विप्रसम्ब-अनिवर्ष  
 (=मुम्बर जमपेक कम्पाके) होयये । वर्षावासकी समाप्तिपर मगवान्के दरानके किये आना  
 मिथुओंका आचार था । तब वह मिथु वर्षावास समाप्त कर तीतमास बाद, शबवासन सँमाछ-  
 पात्र-बीरर के बिपर बैसाकी थी, उबर कये । अमसः जहाँ बैसाकी महावन कूटागार  
 थाक्य थी जहाँ मगवान् थे, वहाँ पहुँचे । पहुँचकर मगवान्को अनिवादन कर एक ओर  
 बैठ गये । उस समय ( और ) विसाभोसे वर्षावास करके जाये मिथु इस एक दुर्बल पीछे  
 धरतीमात्र रह गये थे किन्तु बग्युमुरा तीरकके मिथु कम्पाज्, माटे । बुद्ध मगवान्को  
 आचार है कि आगामुक मिथुओंके साथ प्रतिसम्मोदन (=कुसक-मश्न) करें । तब मगवान्  
 बग्युमुरा तीरके मिथुओंको बोधै—

“मिथुओ ! अमुक (=अमनीष) तो था, धरि-यात्रा-बोम्प (=पापबीष) तो  
 था ? संमोदन करते अ-विचार करते अच्छी तरह एकत्र वर्षावास तो बसे ; और विसासे  
 एकजीव तो नहीं पाय ?”

तब उच मिथुओंने मगवान्को वह बात बतकादी ।

“क्या मिथुओ ! सब था ( हमारा उत्तर-अनुत्प धर्म कइथा ) ?”

“असत्य (=अमूर) मगवान् !”

बुद्ध मगवान्ने बिकारा—

‘मोच-पुरुषो ! ( वह ) अन्-अनुत्प-विक-अन्-अनुकोमिक-अन्-मतिरूप (=अनुचित)  
 अ-भ्रामणक अ-करुण्य = अ-करणीय है । मग-पुरुषो ! तुमने उत्तरके किये गूदलोंसे एक  
 दूसरेके उत्तर-अनुत्प-धर्मकी कैसे तारीफ की ? गाव फरनेके तेज घुरेस ( अपना ) पैर फाद  
 केना अच्छा था किन्तु उत्तरक कारण एक दूसरेकी दिव्य-अधिका कइना (अच्छ) नहीं । सो  
 किस हेतु ? इस ( घुरा मारने )से मोच पुरुषो ! तुम मरत्य पाते, वा मरत्य-समाप्त हुन्कको ।  
 उसके कारण धरि उच मरनेके बाद अपना-दुर्गति नकमें तो न बरत्य होते । ’

बिचार कर धार्मिक कथा कइ मिथुओंको आर्मभित किया—

“मिथुओ ! कोकमें वह नौच महाचार- हैं । क्यमसे पाँच ? मिथुओ ! ( १ )  
 ( जैसे ) एक महाचोरको पैसा होता है—मैं कुदस्यु (= छोटा बाहु ) हूँ सी वा हजारके  
 साथ इत्या करते कनाते काउते कइवाते बकपे पकवाते ग्राम निगम राजधानीको मयन  
 कइ । तब वह दूसरे समय सी हजारके साथ मयन करे । पेसेही मिथुओ ! नहीं किसी

पाप-मिथुको ऐसा होता है—मैं कुदरसु मामक हूँ सो, हजारके साब ग्राम किम्व  
 राजधानीमें गृहस्थों और प्रव्रजितोंसे सत्कृत = गुण कृत = सावित = पृथित = अपथित हो  
 बिचरते थीवर पिंडपात शपनासम म्काम प्रत्यक्ष-संप्रत्य ( = पथ्य औपथ्य )-परिष्कारक  
 पापे बाधा होठ । मिथुको ! लोकमें यह प्रथम महाचोर है । ( २ ) और फिर मिथुको !  
 एक पाप-मिथु ( = सुद मिथु ) लबागत प्रवेरित ( = साक्षात्कृत ) धर्म-विनयको सौचकर  
 अपने पास रक्ता है ( और उसे ) अपना ( साविष्कार ) बतकाता है । यह द्वितीय महा-  
 चोर है । ( ३ ) एक मिथु परिष्कृत महाचर्प पाठ्य करते हुए, ब्रह्मचारीको, ब्रह्मी क-  
 ब्रह्मचर्यका कर्कक ध्याता है । यह तृतीय महाचोर है । ( ४ ) एक मिथु जो वह संके  
 बड़े भाण्ड बड़े परिष्कार ( = सामाज्य ) हैं जैसे कि—आराम ( बाग ) आरामके मध्य  
 ( = आरामबन्धु ) बिहार ( = मठ ) बिहार-बन्धु संघ ( = चारपाई ) पीठ, गद्दा तकिया  
 कोहेक पद्दा कोह-भाण्ड कोह-बारक कोह कद्दा, बैसुका करसा कुम्हाड़ी कुदाक कंठी  
 बस्ती बॉस सूँध बन्धन ( = रसी बटनेक ) गूण, मही ककड़ीकी चीज ( = शक-मद्य ),  
 महीकी चीज ( = सुचिक्र भाण्ड ) हैं उनसे गृहस्थोंको सुत करता है यह  
 चतुर्थ महाचोर है । ( ५ ) मिथुको ! देश-भार-महा सहित लोकमें धर्म-साध्य-देश-मनुष्य  
 ( सहित ) जनतामें वह धर्म ( सर्वोपरि ) महाचोर है जो कि अधिमान, कसल बर-  
 मनुष्य धर्म ( = विष्णु सक्ति ) को बधनता है । सो किस किये ? मिथुको ! चोरीसे ( उससे )  
 राष्ट्र-पिंड ( राष्ट्रके बन्ध ) को खाया ।—

‘अपने दूसरी प्रकार होते ( जो ) अपनेको दूसरी प्रकार प्रकट करे ।

उसका वह सुकारीकी तरह उठाकर चोरीसे खाता हुआ ।

कठमें कापाव उनके बहुतसे ऐसे बर्तवनी पाप-धर्मों हैं,

वह पापी पाप कर्मोंसे बर्तमें उत्पन्न होत हैं ?

जो दुःखीक बर्तवनी ( मनुष्य ) राष्ट्र-पिंडको खाये इससे आगकी जैकी तरह र-  
 क्ते कोहेके गोहेक जाना बन्ध है । तब भगवान् धम्गुमुदा तीरके मिथुधर्मोंको बनेक  
 प्रकारसे पिष्कार कर ।

इस प्रकार मिथुको ! इस सिद्धांतको उहेस ( = पठन चारण ) करवा—

‘जो मिथु अधिमान ( = अन्-अधिमान ) उत्तर-मनुष्य-धर्म = अकम्-आर्थ का-  
 र्धबको अपनेमें कर्तमान करता है—‘पेसा बाधता हूँ’ = ऐसा देखता हूँ । तब दूसरे सम  
 पूछे जाने पर वा व पूछे जाने पर, बन्-विषय ( = सापेक्ष ) हो वा बिष्णुबापेही हो (कर्म)-  
 जानुस ! न बाधत बाधता हूँ कहा व देखते ‘देखता हूँ’ कहा पृथक = सूच ( = ब्रह्म ) में  
 बह । वह पारार्थिक अ-संभाम होता है अधिमानस बधि न (कहा) हो ।

उत्तर-मनुष्य धर्म = ( १ ) ध्याव ( २ ) विमोक्ष ( ३ ) समाधि ( ४ ) समापत्ति ( ५ )  
 ज्ञान-वर्धन ( ६ ) मार्ग-साधना ( ७ ) कर्म-साक्षात्कार ( ८ ) क्लेश प्रहाण ( ९ ) विनीवरणता  
 ( १ ) विष्णु ध्यानागारमें अतिरति ( = अनुशासन ) ; अकम्-आर्थ-ज्ञान-शील विचारों =  
 ध्यान । जो ज्ञान है नहीं ध्यान है जो ध्यान है नहीं ज्ञान है ।

१ बस्तु प्राप्त कर लेने पर ‘मैंने पा लिया’ समझना कहना अधिमान कहा जाता है ।

विद्युद्वापेक्षी=गृही होनेकी इच्छासे, या उपासक होनेकी इच्छासे या अपराधिक  
(= अपराध-सेवक) होनेकी इच्छासे या आमनेर होनेकी इच्छासे ।

पञ्च = (१) प्रथमध्यान (२) द्वितीयध्यान (३) तृतीयध्यान, (४) चतुर्थध्यान ।

विमोक्ष = (१) शून्यता-विमोक्ष (२) अविमिच्छ-विमोक्ष, (३) अ-प्रसिद्धि-विमोक्ष ।

समाधि = (१) शून्यता-समाधि (२) अविमिच्छ (३) अग्रप्रहित ।

समापत्ति = (१) शून्यता-समापत्ति (२) अविमिच्छ (३) अग्रप्रहित ।

ज्ञान = तीन विधाये ।

मार्ग-माध्या = (१) चार स्थिति-मस्थान (२) चार सम्पद् प्रभाव (३) चार अविपार,

(४) पूर्व इन्द्रिय (५) पूर्व कर्क (६) सात शोष्यंग (७) आर्ष-अष्टांगिक मार्ग ।

कर्म-साक्षात्कार = (१) श्रोत आपत्ति कर्मका साक्षात् करना ( २ ) सकृद् अगामी

(३) अनायासी (४) अर्हत् ।

छेद-प्रहाण = (१) रागक प्रहाण (= विनास) (२) द्वेष-प्रहाण (३) मोह-प्रहाण ।

विबीबरणता = (१) रागसे विरक्तकी विबीबरणता (=मुक्ति) (२) द्वेषसे विरक्त-विबीबरणता, (३) मोहसे विरक्त-विबीबरणता ।

शून्यागारमें अजिरति = (१) प्रथमपञ्चाशसे शून्य स्थावमें संतोष (२) द्वितीयपञ्चाशसे  
(३) तृतीयपञ्चाशसे (४) चतुर्थपञ्चाशसे ,





चतुर्थ—खण्ड  
आयु-वर्ष ५५—७५  
( ई पू ४०८-४८८ )



## चतुर्थ खण्ड

( १ )

धीवर विषय । विद्याखा घरित । विद्याखाको आठ घर । ( ई पू ५०८ )

तब वैशाखीमें बपेच्छ बिहारकर भगवान् बिपर धारापसी (=बनारस) की उषर चारिकाके किये बस । क्रमशः चारिका करते जहाँ धारापसी थी, वहाँ पहुँचे । वहाँ धारापसी में भगवान् ज्ञापिपत्तन मृगश्रवमें बिहार करते थे ।

उस समय एक मिश्रुके-जन्तवांसक (= लुगी) में किम्प था । तब उस मिश्रुको वह हुआ—भगवान्ने तीस धीवरोंकी अनुशा ही ई ( १ ) दोहरी सभाठी ( २ ) एकहरा उचरासंग ( ३ ) एकहरा जन्तवांसक । यह भरा जन्तवांसक छेड़वाका है क्यों न मैं वैबद् (= अगक) लगाऊँ चारों ओर दोहरा होगा, बीचमें एकहरा । तब वह मिश्रु वैबद् लगाने लगा । भगवान्ने शपथसाव-चारिका (= मठ देगनैक किये पूजना) करते उस मिश्रुको वैबद् लगाते देखा । देखकर जहाँ वह मिश्रु था वहाँ गये । जाकर उस मिश्रुसे यह बोले—

“मिश्रु ! तू क्या कर रहा है ?

“भगवान् ! वैबद् लगा रहा हूँ ।

“साधु साधु मिश्रु ! अच्छे है मिश्रु ! तू वैबद् लगा रहा है ।”

तब भगवान्ने हमी निदाब-हूसी प्रकारमें चार्मिक-कथा कह मिश्रुको संबोधित किया—

“अनुशा करता हूँ मिश्रुको ! बड़े करदे या बड़े बस करदेकी दोहरी सभाठी एकहरे उचरासंग एकहरे जन्तवांसक की । पुराने करदेकी दोहरी सभाठी दाहरे उचरासंग आर दाहरे जन्तवांसक, दोसुदक (= बेंक बीयवे) में बपेच्छ । बाजरी दुकनोंकी आजाबा चाहिये । मिश्रुको ! बड़े या दुबे पैबद् ( सीबकी) सुंदरी और दर्शकर्म (= बरू) करवेकी अनुशा करता हूँ ।

तब धारापसीमें इच्छानुसार बिहारकर भगवान् जहाँ आवस्ती थी वहाँ चारिकाके किये चले । क्रमशः चारिका करते जहाँ आवस्ती थी वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् आवस्तीमें अनाय-विदकके आराम जेतयजमें बिहार करते थे ।

तब ‘विशाखा मिगारमाता जहाँ भगवान् ने वहाँ जाई, जाकर भगवान्को जमि बादबकर एक भार बँट गई । एक ओर बीस विशाखा मिगार माताका भगवान्ने चार्मिक-

१ अ. नि. अ. क. १. ७. २. ( देखा दिव्यपी पृष्ठ १७१ १७२ ) —

विशाखा घरित “आचर्याम कोयक-राजने बिषसारक पास ( पत्र ) भेजा—‘मर अहावर्ती ब्रह्ममें अमिठ माय-बाहा कुछ नहीं है हमारे किये एक अमित-भोग कुछ भेजा । राजाने अथापोंक साथ सबह की । जनारबोंने महादुकको वही भेजा जा सकता एक

कमाने समुत्कृष्ट संप्रसंसित किया । तब पिशाचा मृगार मातामें भगवान्से  
बद कहा—

अहि-पुत्रको भेजे ।” कह मँडक अहिके पुत्र परब्रज सेठका ( नाम ) किया । राजाने उनके  
बचनको सुनकर उसे ( परब्रज सेठको ) भेजा । तब कोसक-राजाने आबराहीसे साठ बोजनके  
ऊपर, साफैत बगारमें उसे झोड़ीका पर देकर बसा दिया ।

भावस्तीमें मृगार घोड़ोका पुत्र पूर्णचर्यन कुमार बचःप्राप्त ( =जवाब ) कह तब  
बसके पितासे— मेरापुत्र बचःप्राप्त है अथ गृहलोक बंधनम बाँधतका समय है—सोच,  
—‘हमारे समाज काति कुम्हरी कम्पा राजो’—(कह) करन अकारण-ज्ञानमेंमें कुमक पुत्रसेको  
भङ्ग । वह जवस्तीमें जपनी रुचिकी कम्पाको न देख साकल ( = अचोप्या ) पये ।  
उस दिन बिसाका अपनी समबपरका पाँच सौ कुमारिबोंक साथ उसका ममानेक किये एक  
महाबागी पर गई थी । वह पुठप थी बगारके भीतर जपनी रुचिकी कम्पा न देख बगार  
बगारके द्वारपर खड़े थे । उसी समय पाबी बरसना सुक हुआ । तब बिसाकाके साथ गई  
कम्पासे भीगनेके उरसे बेगसे रोइकर बालामें हुस गई । उब पुक्ष्पेमें वन (कम्पाको) में भी  
किसीको जपनी रुचिके अनुसार न देखा । उन सबक पीछे बिसाका, मध बरसनेकी पबाइ न  
कर मन्दागतिसे भीगती हुई साकर्म प्रविष्ट हुई । उन पुक्ष्पेमें उस देल सोच—“तूसरी भी  
इसकी ही रूपवतिर्वाँ होंगी । सुप किसी किसीका पके नारियक ( =करक पक ) की तरह भी  
होता है । बाठ बकाकर जाये कि मजुर-बचना है । वा नहीं” बोले—

“जम्म ! तू बड़ी-बुरी लीकी तरह माकूम होती है ?”

“तातो ! क्या बेशकर ( पैसा ) कहते हो ?”

“तेरे साथ केकनेवाकी दूसरी कुमारिबों भीगनेके मचसे बकनीस आकर आकर्ममें पुस  
पई, और तू बुदिवाकी तरह ककल छोडकर नहीं जाती माई भीगनेकी भी पबाइ नहीं  
करती । यदि हाथी वा घोडा पीछा करे तो भी क्या पैसा ही करेगी ?”

“तातो ! साविर्पो कुकर्म नहीं हैं मेरे कुकर्में साविर्पो सुकर्म हैं । तदन-की ( =बच-  
प्राप्त-मानुप्राप्त ) बिकक बर्तनकी तरह है । हाथ वा पैर हउनेपर, बिकक-बंगवाकी लौले  
( जोग ) कम्पा करते ( हैं ) ( अर ) नहीं प्रकन करते । इसकिये धीरे-धीरे जाई हूँ ।

उन्कोसे—“जम्बूद्वीपमें इसने समाज की नहीं है । रूपमें किसी मजुर अकारणमें भी  
पैसीही है । करन-अकारणको जाबकर कहती है । —( सोच ) उसके ऊपर तुँडिरकर माक  
केंकी । तब बिसाका—“मैं पहिके अपरिगृहीत ( = सगाई बिवा ) की अथ परिगृहीत हूँ”-  
(सोच) बिकक-सहित मूमिपर बँड पई । तब उसे नहीं कवातसे घेर दिया । वह बासीगक-  
सहित बर पई ।

मृगार झोड़ीके जावनी भी उसीके साथ बर्तनक-झोडीके बर गये ।

“तातो ! तुम किस गाँवके रहनेवाके हो ?”

“हम आबराही बगारके मृगार-बाडीके जावनी हैं । तुम्हारे बरमें बचःप्राप्त कम्पा  
है सुनकर हमारे सेठने हमें भेजा है ।

“जम्म तातो ! तुम्हारा क ही बचमें हमसे बोधा ही अकमाव है किन्तु जातिमें

बराबर है। सब तरहसे समाप्त तो मिथ्या मुश्किल है बाबो सेठको हमारी स्वाकृतिकी बात कहो।

उन्होंने उसकी बात सुनकर, धावती का भुगार-भेष्टीको छुट्टि और वृद्धि विवेक कर—ज्यासी ! हमें साकेतमें धर्मरूप ब्रह्मके परमें कम्पा मिठी है—कहा। उसको सुन कर भुगार सेठने—‘महाकुल-धरमें हमें कम्पा मिठी (ज्ञान) संतुष्ट चित्त हो उसी समय धर्मरूप ब्रह्मकी पत्र (स्वात्म) भेजा—“इसी समय हम कम्पाको कार्ष्णे, प्रबन्ध करवा हो सो करें।” उसने भी उत्तर (प्रतिज्ञात्म) भेजा—‘वह हमारे किये मारी बर्ही है जोड़ी बपना प्रबन्ध करवा हो सो करें।”

उस (भुगार सेठ)ने कोसक-राजाके पास जाकर कहा—

‘देव ! मेरे यहाँ एक मंगल काम है। आपके दास पुण्ड्र-वर्षनके किये धर्मरूप-भेष्टी की कम्पा विज्ञाकाको किये जावा है मुझे साकेत नगर जानेकी आज्ञा है।

‘नपका महाभ ही ! क्या हमें भी कम्पा है ?’

“देव ! तुम्हारे बीसोंका जावा कहीं मिल सकता है ?’ राजा महाकुल-पुत्रको संतुष्ट करनेकी इच्छासे बोली ! मैं भी चम्पूगा—स्वीकार कर भुगार सेठके साथ साकेत-नगर गया। धर्मरूप सेठ—‘भुगार सेठ कोसक-राजाको लेकर जाता है’ सुन जगजानी कर राजाको अपने घर ले गया। उसी समय राजा प्रसेनजित् कोसक राज-वक (राजाके लौकर-वाकर भावि) और भुगार सेठके किये दास-स्वात्म और माका गण पत्र भावि उपस्थित किये। ‘वह इसको मिथ्या चाहिये ‘यह इसको मिथ्या चाहिये’ वह भेष्टी सब स्वर्ण जावता था। प्रत्येक बादमी सोचता था—भेष्टी हमाराही सत्कार कर रहा है।

तब एक दिन राजाके धर्मरूप सेठको साक्षन (=पत्र) भेजा—

‘बिरफाक तक भेष्टी हमारा भरण-पोषण नहीं कर सकते कम्पाकी विद्वान्का समय बतकार्ये।

उसने भी राजाको साक्षन भेजा—

“इस समय वर्षाकाल जगजा चार मास कम्पा बर्ही हो सकता। आपके बक-कप (= बोग-बाग) को जो जो चाहिये, वह सब भार मेरे ऊपर है देव ! मेरे भेष्टीपर जाँये।

तबसे साकेत नगर कित् महोत्सवकाकर गाँव जागया। इसी प्रकार तीन मास व्यतीत हुए। धर्मरूप सेठकी कदकीका महाकथा जानूयक तब तक भी तत्पार न हुआ था। उसके कारणदास (=कम्मस्ताविहावक) भाकर बोले—

“भार तो किसी की कमी नहीं है किन्तु बककावके भोजन बनानेके किये कदकी पूरी बर्ही है।

‘ततो ! बाबो इतिहासक जगसाका गोसाका उजादकर भोजन पक्यभो ?’

ऐस पक्यते भी ध्याव महीना बीता। उन्होंने फिर कहा—

“ज्यासी ! कदकी पूरी नहीं बकती।

“ततो ! इस समय कदकी नहीं मिल सकती। कपदेके गोदाम (=दुस्त-कीहागार) लोकर मोठी मोठी सादियों (= सादक)की लेकर बली बना टैकमें मिगो भोजन पकाओ।’

कामे समुत्थित संप्रसंसित किया। तब विद्यावाला मृगार-भाताने मगवाये  
पह कहा—

अहि-पुत्रको मेरे।' कह मेंहक श्रेष्ठिके पुत्र पर्यञ्च सेठका ( नाम ) किया। राजाने उनके  
बचबको सुनकर बसे ( पर्यञ्च सेठको ) भेजा। तब कोसक-राजाके आचरणीस सात बोजबके  
कपर साकेत नगरमें उसे श्रेष्ठिक पर देकर बसा दिया।

आवस्तीमें मृगार श्रेष्ठिका पुत्र पूर्णवर्द्धन कुमार बचःप्राप्त ( =जवान ) था, तब  
उसके पिताने— मेरापुत्र बचःप्राप्त है अब गुरुम्हके बंधमम बाँबनेका समय है—साथ,  
—'हमारे बमान जाति-कुम्हरी कम्हा पाओ'—(कह) करण अकरण-जाननेमें कुमाल पुत्रको  
भेजा। वह आवस्तीमें अपनी इच्छिकी कम्हाके न देक साकत ( = अजीब्या ) गये।  
उस दिन विद्यावा अपनी समबपरका पौत्र ली कुमारियोंके साथ उत्सव मनावेक लिये एक  
महावाणी कर गई थी। वह पुरुष भी नगरक भीतर अपनी इच्छिकी कम्हा न देक बाहर  
नगरके द्वारपर बने थे। उसी समय पानी बरसवा शुरू हुआ। तब विद्यावाके साथ गई  
कम्हाके भीगनेके डरसे वेगसे दौड़कर शास्त्रमें चुम गई। उब पुरुषोंने उन (कम्हाओं) में भी  
किसीको अपनी इच्छिके अनुसार न देखा। उत सबके पीछे विद्यावा, मध बरसनेकी पबई न  
कर सम्मगतिसे मीगती हुई आकामें प्रविष्ट हुई। उन पुरुषोंने उस देक सोचा—'तूतरी भी  
इतनी ही कपवतिर्षी होंगी। तूय किसी किसीका पके नारिपक ( =करक पक ) की तरह भी  
होता है। बात बकाकर कामें कि मयुर-बकन है। वा नहीं" बोले—

'अम्म ! तू बधी-बूढ़ी बीकी तरह मात्तम होती है ?'

"तातो ! क्या देकाकर ( देसा ) कहते हो ?"

"तैर साथ बोकनेवाकी तूसरी कुमारिर्षी भीगनेके मचसे बस्तीसे आकर दरकामें चुम  
गई, बीर तू बुदिपाकी तरह चलना छोडकर वहीं अती साड़ी भीगनेकी भी पचाह नहीं  
करती। बहि हाथी वा बोवा पीछ करे तो भी क्या देसा ही करंगी ?"

"तातो ! साविर्षी तुकम नहीं हैं मेरे कुकमें साविर्षी तुकम हैं। तण्य-की ( =बच-  
प्राप्त-मागृप्राप्त ) विकक बर्तनकी तरह है। हाथ या पैर हूनेपर, विकक-अंगवाकी बीसे  
( बोग ) हुआ करते ( हैं ) ( धार ) वहीं ग्रहम करते। इसकिये बीरे बीर थाई हूँ।

उन्होंने—'अम्हूलीपमें इसक समाज की नहीं है। क्पमें बीसी मयुर-अकापमें भी  
बीसीही है। करण-अकरणकी जाबकर कइती है। —( सोच ) उसके ठपर गुँडेरकर मक  
बेकी। तब विद्यावा—'मैं पहिके अपरिपूरीत ( = सगाई बिना ) की जाब परिपूरीत हूँ—  
( सोच ) विवक-बहित भूमिपर बीड गई। तब उसे वहीं कमातये घेर दिया। वह दासीगल-  
सहित बर गई।

मृगार श्रेष्ठिके आदमी भी उसीके साथ बचबच-भेजीके बर गये।

"तातो ! तुम किस गाँवके रहनेवाक हो ?"

"हम आवस्ती नगरके मृगार-अहीके आदमी हैं। तुम्हारे बरमें बचःप्राप्त कम्हा  
है चुबकर हमारे मेरने हमें भेजा है।"

"अच्छ तातो ! तुम्हारा क ही बरमें हमसे बोवा ही कसमाक है किन्तु जातिमें

क्यों बुझवाया ? ( कइ ) 'बिक-बिक ! से बिकारकर अपने दास-स्वावको बन्धी गई ।  
अप्य अमर्षोने उस देखकर एकबारगी सेठको बिकारा—

“सुहृदपति ! क्या तुझे बूझरी कम्पा नहीं मिली ? अमज चौतम की आबिका (इस)  
महाकुम्भदासा (=महाकर्मकर्त्री) को क्यों इस बरमें प्रविष्ट किया ? इसे इस बरसे कम्पी  
बिकरक ।

तब सेठने—‘इतकी बातसे इसे भरस नहीं बिकरक सकते महाकुम्भकी कम्पा है—  
सोच “आचार्यो ! बचने को जान वा बेबाब करै, तो आप लोग क्षमा करै ।’ कइ पंगोंको  
बिनाकर बड़े आसन पर बैठ, सोनेकी करछी के सोनेकी धाकमें परोसा बाठा निर्रक मसुर  
कीर भोजन करने लगा । उसी समय एक पिंडधारी स्वविर ( मिश्र ) पिंड धार करते मरक  
द्वारपर पहुँचा । विद्यादा उसे देख “असुरको कइना उक्ति बही” सोच, जैम वह स्वविरका  
देख सके वैसे इदकर लकी हो गई । वह बाक (=सूक्त) स्वविरको देखकर भी नहीं बैकता  
हुमा सा हो नीचे मुँहकर पापस जाता रहा । विद्यादाने—मेरा असुर स्वविरको इदकर  
भी हूसारा नहीं करता है—जान स्वविरके पास जा—आगे जाइये भन्ते ! मेरा ससुर  
पुरावा जा रहा है—बोकी ।

सुरार तो ‘निर्तरीं (= अब घामुजों) क कहनेके समयहीसे (जुरा) माय गया  
भा, ‘पुरावा जा रहा है सुनते ही भोजनपरसे हाथ बँधकर ( धृत्योस ) बोका—

इस पापसको पहॉसे के आयो इसे भी इस बरसे बिकाको । वह मुझे ऐसे मंगक  
बरमें अशुचि-आहक बना रही है ।

उस बरमें सभी दास-कर्मकर विद्यादाके अधिकारमें थे हाथ और पैरसे एकबनेकी  
तो बुर सुकसी भी कोई न बोक सकटा था । तब विद्यादा असुरकी बात सुनकर बोकी—

‘तात ! मैं इतने बचकसे नहीं बिकरती । तुम मुझे पनबइसे कुम्भदासी (=पनभरनी  
दासी) की तरह नहीं काये हा । जीते माता-पिताकी कम्पाने इतनेस नहीं निकर्य करतीं ।  
इसी कारण मेरे पिताने बहाँ आनेक दिन आठ कुम्भिकोंको बुझकर—‘बहि मेरी कम्पाका  
अपराध हो तो तुम शोच करना कइकर उनक हाथमें सीपा था । उनको बुझवाकर मेरे  
शोच-शोचकी शोच करो ।

सेठने—‘वह अय्या कइ रही है’—(शोच) बाटों कुम्भिकों (पंगों) को बुझवाकर—  
वह कइकी सातवें दिनके पूरा होनेसे भी पहले मंगक बरमें बैठे मुझे अशुचि-आहक कइती  
है ?—कइ ।

अम ! क्या येमा ( कइ ) ?

“तातो ! मेरा ससुर अशुचि-आहक (होना) चाहता होगा मैंने तो इस प्रकार नहीं  
कइ । एक पिंडपातिक (मसुरी मँगनेबाक) स्वविरक बरके द्वारपर कइ होनेपर (भी) यह  
निर्रक पापस जाते थे, उसका क्याक न करते थे । मैंने इस कारण—मन्त ! आगे जाँय  
मेरा ससुर इस शारीरमें पुन्य नहीं करता पुराने पुन्यको धा रहा है—इतना मात्र कइ ।”

“आह ! वह शोच नहीं है हमारी बेटी कारण बतइवाती है कि तुम क्यों  
कंभक जाते हो ।”



इस प्रकार पन्द्रहें हुये चार मास पूरा हुए। तब धर्मजय सेठने कन्याके महाकृता प्रसाधनको तय्यार आनकर—कह कन्याको भेजूंगा—(सोच) कन्याको पाममें पैदा—‘जन्म पतिकुलमें वास करनेके लिये वह वह आचार सीखना चाहिये—उपदेश देने कष्ट। सुधार सेठ भी धरके मतिर छेड़े धर्मजय सेठके उपदेशको सुनता रहा। धर्मजय सेठ बोला—

“जन्म ! अष्टुर-कुलमें वास करते ( १ ) भीतरकी भाग बाहर न ले जानी चाहिये, (२) बाहरकी भाग भीतर न ले जानी चाहिये। (३) देते हुयेको देना चाहिये (४) न देते हुये को न देना चाहिये। (५) देते हुये न देते हुयेको भी देना चाहिये। (६) सुखसे देना चाहिये। (७) सुखसं कषणा चाहिये। (८) सुखसे छेड़ना चाहिये। (९) जन्म-परिचरम करना चाहिये। (१०) भीतरके देवताओंको प्रमत्तकर करवा चाहिये।”

इस इस प्रकारके उपदेशोंको दे, सभी धर्मियों (= बलिह—समाजों)को जमाकर राजसभाके बीचमें जाद कुटुम्बियों (= पंथों) को आमिल (= प्रतिमोग) छेकर—“बहि पये स्वाध पर मेरी कन्याका अपराध हो तो तुम परिशोध करना”—कह नव करोड़ मूल्यके महाकृता आभूषणके कन्याको आभूषित कर, स्वाम-चूर्णके मूल्यके लिये चौबच सी (= ५२ ) गाड़ी धन दे कन्याके साथ अनुरक्त पाँच सी दासियाँ पाँच सी उत्तम (= आरज्य) रथ और सब सम्पत्ति सी सी दे, कोसक-राज्य और सुगार सेठको विसर्जित (किया)। ।

विद्याभान ( धावसी ) नगरके द्वार पर पहुचनेके समय सोचा—हँके बावमें बैठ कर, नगरमें प्रवेश करूँ, या रथ पर चढ़ी हो कर। तब उसको यह हुआ—हँके बावमें बैठ कर प्रवेश करने पर महाकृता प्रसाधनकी विशेषता न जाय पड़ेगी। इस लिये वह सारे नगर को अपनेको दिखाती रथपर बैठ नगरमें प्रविष्ट हुई। धावसी-वासियोंके विज्ञानको देखकर कहा—

“पहली विज्ञाना है। यह रूप और यह सपत्ति हसीके योग्य है।

इस प्रकार वह महाम् ऐश्वर्यके साथ सुगार सेठके घरमें प्रविष्ट हुई।

आनेके दिवही सारे नगरवासिबाने—‘धर्मजय सेठने अपने नगरमें जानेपर, हमारा क्या सत्कार किया—( सोच ) पचासदि = बचावक मेंद मेरी। विद्याभाने भन्नी हुई सभी मेंदे उसी नगरमें एक दूसरे कुलोंमें बचना ( सर्वाधिक ) दे दिया। तब उसके आकांक्षी राठ के ही भगमें एक आरज्य (= उत्तम खेतकी ) बोड़ीको गर्म-बेदना हुई। तब दासियोंसे बँडवीपिका (= मसाक ) ग्रहण करवा बहाँ जा बोड़ीको गर्म पानीसे नहकवा ठेकसे माकिस करवा अपने बासेमें गई।

सुगार सेठने भी एक सहाह ( एक ) पुत्रका विवाह-सत्कार (= उत्सव) करते पुर-विहार (निरन्तर विहार करनेके स्थान)में बसते हुये लकागतकों मतमें ब कर साठवें दिन सब बरकी मरने की प्रमत्तकोंको बैठकर विद्याभानके पास सासन भेजा—

‘अधे मेरी कन्या जहाँ लु कोगोंकी बन्दना करे।

वह जोत-आपक जार्न-माविका ‘जहाँ लु शम्प सुब इह-नुह हो चन्के बैठनेकी जगह का जन्म है—देखे ही जहाँ लु होते हैं। मर श्वशुरव इन कन्या-सच-निबर्जितोंके पास तुम्हें

मेधवा चाहिच उनके सिप करन योग्य सवा-उद्दक (=जल प्रकृत) करके तब स्वर्ण करना उचित है, यह ब्याज कर कहा।

“अग्नि-परिचरण करवा चाहिच—यह ‘अम्म ! सास-ममुर-स्वामीको अग्नि-युजकी भाँति वाग-राजकी भाँति शैलना चाहिये’—क्याककर कहा।”

यह इनने सब चाहे गुन होयें, इसका पिता ‘मातरक बुद्धताभाँका नमस्कार’ करवाता है, इसका क्या अर्थ है ?

“यूसा अम्म ?”

“हाँ ठाठा ! यह मी मेरे पिताने यही क्पाक करके कहा—‘अम्म ! परम्परागत गृहस्थ (आधम) —वाससे लेकर अपन घर-द्वारपर आवे प्रकृतिको देखकर, ओ घरमें अघ-भाग्य हो, उसमें प्रकृतियों (=सम्रासिर्ण) का द्कर हा जाना चाहिये।’

तब उन्होंने उम (सुगार मठ) को कहा—

“महाशेही ! तुमि मात्सुम होता है प्रकृतिको द्कर न द्वा ही पसन्द है ?”

यह सुनरा उत्तर न देख नीचे मुनकर च रहा। तब कुटुम्बिकोंने द्वा—

“क्या शेही ! आर मी हमारी बेटीका कीह द्वा है ?”

“बापों शरी !”

“तो क्यों हम निर्दोष अ-कारण घरमे विकलवात थे ?”

‘उस समय विद्यालयने कहा—यहिक अपन समुरक कहनेमें मेरा जाना उचित न था। मेरे जानेके दिन मेरे पिताने वाचाशेष शोषनक सिप (मुम) तुम्हार हाथ सीपा था। लेकिन अब मेरा जाना उचित है’ यह वार्ता वार्ताको “सचारिवाँ तम्हार करो” कहा।

तब सरने उम कुटुम्बिकोंको लेकर कहा—‘अम्म ! मीने अजजाने कहा था मुम समा कर।’

“तात ! क्षमा करनी हैं, तुम्हारा शतम्ब (शेष) क्षमा करती हैं। परन्तु मी बुद्ध-अममें अत्तम्ब अमुरक कुककी कम्पा हैं हम भिक्षु-संघ (की सवा) क बिना नहीं रह सकते। यदि जवनी द्धिके अनुमार भिक्षु-संघकी सेवा करन पावें ता रहूँगी।

‘अम्म ! द् बचा-दुधि अरने अमयों की सेवा कर।’

तब विद्यालयने दस-बक (जुद्ध) का निर्मित कर द्दुमरे दिन बरका भरने हुए बुद्ध-अमुम्ब भिक्षु संघको बंधपा। अगोंकी अमात (अज्ज-परिषद्) मी अगवाक सुगार संघके वर जानेकी बात सुन बहाँ अक्कर बरकी बेरकर बीदी। विद्यालयने द्वाक अक (=दक्षिणोक्क) रे द्वासन (=संद्स) भेजा—‘यब अक्कार होगवा मेरे समुर आकर दस-बकको परादी’। उनने—‘विगंठकी बात सुनकर मरी बेदी ‘सम्पक संद्दुक्को परोसी’ कर रही है। विद्यालयने भोजन समाप्त हा जानपर, चिर द्वासन भेजा—‘मेरे समुर आकर द्घ-बकका घम-उपदेश सुर्षे। तब ‘अब न जाना बहुतही अनुचित हागा (माचकर) जान हुए उम अज्ज अमयोंने कहा—अज्ज गातमका अमं उपदेश कजातक बाहरही रहकर सुतम्ब’। पृथारपेट आकर, कजातके बाहरही बँध। तपागतने—‘दु (चाहे) कजातक बाहर बँध (चाहे) मीतकी आवमे वा पहावकी आवमे वा बकवाकके पार बदे, मी बुद्ध हैं तुमि अपन

“आर्यों ! वह द्रोण न सही वह कदकई भयनेके दिन ही मेरे पुत्रका क्याक व कर अपनी कबिके स्थानपर चली गई ।”

“अम्म ! क्या ऐसा है ?”

“तातो ! अपनी कबिके स्थानपर मैं नहीं गई । इसी धरमें आज्ञात्व घोड़ीके बदनका क्याक व कर बंदे रहना अनुचित था इसकिये मत्स्यक किचाकर दासियोंके साथ वहाँ जाकर मैंने घोड़ीका प्रसव-उपचार करवाया ।

“आर्य ! हमारी बेटीने तुम्हारे धरमें दासियोंके भी न करनेका काम किया तुम वहाँ क्या द्रोण देखते हो ?”

“आर्यों ! यह चाहे सुथ हो । इसके पिताने वहाँ भयनेके दिन उपदेश देते ‘बराही भाग बाहर न के जाती चाहिये’ कहा । क्या दोनों ओर पक्षीसियोंके घर बिना भयनेके रह सकते हैं ?

“अम्म ! ऐसा है ?”

“तातो ! मेरे पिताने इस भागको लेकर वहाँ कहा था । कबिक जो घरके भीतर सामु यदि कियोंकी गुप्त बात पैदा होती है वह दास-दासियोंको नहीं कहनी चाहिये । ऐसी बात बड़कर ककह कराती है इसका क्याककर तातो ! मेरे पिताने कहा था ।”

“आर्यों ! वह भी क्या ( द्रोण व ) हो । इसके पिताने—‘बाहरसं जाग भीतर व कानी चाहिये’—कहा क्या भीतर भाग गुप्त जानैपर, बाहरसे भाग काये बिना ( काम ) चक सकता है ?”

“अम्म ! ऐसा ?”

“तातो ! मेरे पिताने इस भागको लेकर वहाँ कहा था । कबिक जो द्रोण दास कर्म कर करते हैं, उसे भीतरके भावसियोंको वहाँ कहना चाहिये ।’

“‘देते हैं उन्हींको देना चाहिये—यह जो कहा वह मँगनीकी बीजका क्याक करके’ कहा ।

“ जो वहाँ देते हैं यह भी मँगनीको लेकर जो वहाँ छीयते उन्हें व देना चाहिये’ क्याककर कहा ।

“देनेवालेको भी व देनेवालेको भी देना चाहिये वह गरीब धमीर जाति-मित्रोंके, चाहे वह प्रतिशत्रु ( अन्धकेमें देना ) कर सकेँ या वहाँ देवाही चाहिये’ इसका क्याक करके कहा ।’

“सुखसे बैठना चाहिये’ वह भी सास-ससुरको देखकर कदनेके स्थानपर बैठना वहाँ चाहिये क्याक करके कहा ।

“सुखसे जाना चाहिये—वह भी सास-ससुर-स्वामीके मौजब कदनेसे पहिले ही मौजब व कर उबको परोसकर सबको मिक्ने व मिक्नेकी बात जानकर, पीछे स्वर्ण मौजब करना चाहिये’ क्याक करके कहा ।

“सुखसं छेदना चाहिये’—यह भी सास-ससुर-स्वामीसे पहिले बिकार पर व

कटना चाहिये उनके सिने करने योग्य सभा-उद्देश (अन्त प्रयत्न) करके तब स्वयं कटना उचित है यह लयाक कर कहा।

'अग्नि-परिचरय करना चाहिये—यह 'अम्म ! सास-ससुर-स्वामीको अग्नि-पुत्रकी भाँति नाग-राजकी भाँति देखना चाहिये'—क्याककर कहा।'

यह इतने सब चाहे गुण हों, इसका पिता 'भीतरके देवताओंको ब्रह्मस्मर' करवाता है, इसका क्या कर्म है ?

'ऐसा अम्म ?'

'हाँ तातो ! यह भी मेरे पिताने बही लयाक करके कहा—अम्म ! परम्परागत गृहस्थ (आजम)—वाससे लेकर अपने घर-द्वारपर जाये प्रव्रजितकी देखकर, जो घरमें जाय भोग्य हो, उसमेंसे प्रव्रजितों (=सम्पासिचों) को लेकर ही जाना चाहिये।

तब उम्होंने उस (सुधार सह) को कहा—

'महाश्रेणी ! तुझे माहूम होता है प्रव्रजितकी देखकर न देना हो पसन्द है ?'

यह दूसरा उत्तर न देकर नीचे मुककर बैठ रहा। तब कुटुम्बिकोंने पूछा—

'क्या श्रेणी ! भार भी हमारी बेटीका कौह् दाप है ?'

'भारों नहीं !'

'तो क्यों इसे बिहोप अ-कारण भरस निकलवाते थे ?'

'उस समय विशाखाने कहा—पहिले अपने ससुरके कहनेस मेरा क्या उचित न था। मेरे जानेके दिन मेरे पिताने दापदोप शोचनेके लिये (मुझे) तुम्हारे हाथ सौंपा था। लेकिन अब मेरा जाना उचित है यह दासी दासोंको "सवारिवाँ तप्पार करो" कहा।

तब सेइने उन कुटुम्बिकोंको लेकर कहा—'अम्म ! मैंने अनजाने कहा था मुझे क्षमा कर।

'तात ! क्षमा करती हूँ, तुम्हारा अंतम (दोष) क्षमा करती हूँ। परन्तु मैं बुद्ध-वर्ममें ब्रह्मन्त अनुरक्त कुम्बकी कन्या हूँ इस मिश्र-संब (की संघा) के विवा नहीं रह सकते। यदि अपनी इच्छिके अनुसार मिश्र-संबकी सेवा करने पाऊँ तो रहूँगी।

'अम्म ! तू क्या-इच्छि अपने अमर्षों की सेवा कर।

तब विशाखाने वस-वक (=बुद्ध) की निर्मजित कर, दूसरे दिन वरको भारते बुधे बुद्ध-मनुज मिश्र संबको बैठाया। बंधोंकी कर्मात (अन्य-परिष्) भी भगवान्के सुगार सेठके घर जावैकी बात सुन बहोँ व्याकर वरको बेरकर बैठी। विशाखाने दावक्य वक (=इक्षिगोवक) से शासन (=संइस) भेजा—'सब सत्कार होगया मेरे ससुर व्याकर वस-वकको परोसी'। उसने—'मिगडोंकी बात सुनकर मेरी बेटी 'सम्पक संबुद्धको परोसी' कह रही है। विशाखाने भोजन समाप्त हो जानेपर फिर शासन भेजा—'मेरे ससुर व्याकर वस-वकका धर्म-उपदेश सुनीं। तब 'अब न जाना बहुतही अनुचित होगा (सोचकर) जाते हुए उस नाम अमर्षोंने कहा—अमर्ष गातमका धर्म उपदेश कनातक बाहरही रहकर सुनना'। सुधारसेड व्याकर कनातके बाहरही बैठा। तथापत्तने—'तू (चाहे) कनातके बाहर बदे (चाहे) भीतकी जाइमें या पहाडकी जाइमें या चकनाकेके पार बदे, मैं बुद्ध हूँ तुझे अपना

“भन्ते ! मिथु सघके साथ भगवान् मेरा ककका मोहन स्वीकार करें ।”

भगवान् ने मौनस स्वीकार किया । तब बिशाखा मृगार माता भगवान् की स्वीकृति-बाल आसनस डठ भगवान् को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चली गई । उस समय उस रातके बीतने पर, चारों द्वीपवाका महामेघ बरना । तब भगवान् ने मिथुओंको धामंजित किया—

‘मिथुओं ! यह बंस जेत-वनमें बरस रहा है जैसेही (पह) चारों द्वीपोंमें बरस रहा है मिथुओं ! बर्षा स्नान करो यह अंतिम चातुर्वर्षिक महामेघ है ।

“अच्छ भन्ते !” कह मिथु भगवान् को उत्तर दे बीबरको अलग कर करीसे बर्षा-स्नान करवे छने । तब बिशाखा मृगार-माता ने उचम व्याघ्र भोज्य तैयार कर दासीको आज्ञा दिया —

‘जे ! जा आराममें जाकर काक स्थित कर—(भोजनका) काक है भन्ते ! भोज्य तैयार होगा ।

‘अच्छ आर्ये ! कह उस दानीने आराममें जा जब मिथुओंको बीबर केंक बर्षा-स्नान-करते देखा । देखकर—‘आराममें मिथु नहीं हैं, आजीबक बर्षा स्नान कर रहे हैं’ (सोच) नहीं बिशाखा मृगार-माता भी नहीं गई; जाकर बिशाखाको कहा—

‘आर्ये ! आराममें मिथु नहीं है आजीबक बर्षा-स्नान कर रहे हैं ।’

तब पंडिता=व्यच्छ मेधाविनी बिशाखाको यह हुआ—‘जितसय आर्य बीबरको छोड़ बर्षा-स्नान कर रहे हैं सो इस बाक (अर्थ)ने समझा—आराममें मिथु नहीं हैं ।’ फिर दासीको कहा—‘जे जा । तब यह मिथु गात्रको ठंडाकर बीबरके अपने अपने बिहारों (=कांडरिपों) में चके गये थे । तब उस दासीने आराममें जा मिथुओंको न देख—‘आराममें मिथु नहीं हैं, आराम सूबा है । (सोच) जाकर बिशाखा को कहा—

‘आर्ये ! आराममें मिथु नहीं हैं आराम शून्य है ।

तब पंडिता=मेधाविनी बिशाखाको यह हुआ—‘जितसय आर्य पात्रको ठंडा कर बीबरके अपने अपने बिहारमें चके गये । सो इस बाकाने समझा—‘आराममें मिथु नहीं हैं’ । फिर दासीको कहा—‘जे ! जा ।

तब भगवान् ने मिथुओंको कहा—

‘मिथुओं ! पात्र-बीबर तय्यार करो भोजनका समय है ।

“अच्छ भन्ते !”

तब भगवान् एर्षाडू समय पहिचकर पात्र-बीबरके असे बकवान् पुछन बटोरी बाँहको कैकावे कैकी बाँहको बटोरे बीसे ही (अमपास) जेतवनमें अन्तर्भाव हो बिशाखा मृगार

सध् सुभा सकता ह (सोच) सुबहक पके फलों वाले आनहुछकी डाकी पकड़ कर दिक्कतेकी मूर्ति धर्म-उपदेश किया । उपदेशके समाप्त होनेपर सैठने आतभ्यापतिचक्रमें स्थित हा कनातको ह्य पाँचों (अंगों)के (मूलकमें) प्रतिष्ठितकर आन्त्रके परोंकी बन्दा कर शास्ताके सामने ही—‘अम्म ! तू आजस मरी माता है कह बिशाखाको माताके स्नावपर प्रतिष्ठित किया । तबने बिशाखा मृगार माता नामवाकी हुई ।

६ ५ ८

माताके छोड़ेपर प्राणुमूठ हुये। मिथु-संघके साथ भगवान् बिडे आसन्नपर बैठे। तब विद्याका सुगारमाताके—'आजर्ष रे ! अनुसुत रे !! तवागतकी मद्वाक्यविमत्ता=महाप्राणवत्ता जो जीधर कमर भर पायीकी बाह होनेपर मी एक मिथुका पैर वा पीर भी नहीं मीगा हे—इह=अद्वय हो बुद्ध प्रमुख मिथुसंघको उचम खाद्य भोग्यसं अपने हाथ सन्त पित संप्रचारित कर भगवान्को भोजन करा, भगवान्के भोजन नकर, पात्रसे हाथ इद्य छोड़ेपर एक जोर बैठ गई। एक जोर बैठी हुई विद्याका सुगार-माताके भगवान्के कथा—

“मन्ते ! मैं भगवान्के ( कुड ) बरोंका मँगती हूँ ।”

“विद्याके ! तवागत बरोंसे परे हैं।

“बा मन्ते ! कल्प है=निर्दोष हैं ।”

“चोक विद्याके !”

“मन्ते ! मैं संघको वाक्-जीवन बर्पाकी लुडी ( =वसिष्ठ-साटी ) देना चाहती हूँ, ध्यागन्तुक (=ववागत) को भोजन देना यात्रा पर जानेवाले ( =गमिक) को भोजन रोगी को भोजन, रोगीपरिचारकको भोजन रोगीको औषध सर्वदा वागु (= विषयी, , और मिथुसंघको उदक-साटी ( =कर्मसती का कपड़ा ) देना ।

“विद्याके ! तू किस कारणसे तवाभवसे आठ वर मँगती है ?”

“मन्ते ! मैंने दासीकी आज्ञा ४/1—‘अ ! जाराम अकर काककी सूचना दे काल है मन्ते ! भोजन तप्यार है । तब मन्ते ! वह अकर मुझसे बोको—‘अर्थ ! जाराममें मिथु नहीं है जाजीवक सरीरसे बर्पा जान कर रहे हैं। मन्ते ! बंगापन गर्वा वृक्षित विरुद्ध (बात) है इस कारणकी देखा मन्ते ! संघको वाक्जीवन वाक्पिक-साटी देना चाहती हूँ । और फिर मन्ते ! ध्यागन्तुक (= ववागत) मिथु गकी और गन्तव्य स्थानसे अपरिचित हो पके-साँदे विरुद्ध करते हैं। वागु मेरा ध्यागन्तुक-भोजन ग्रहणकर पीधि-कुप्राय गीधर-कुप्राय, यक्यवद-रहित हो विरुद्ध करे (ति) । और फिर मन्ते ! गमिक मिथु अपने भोजनकी तप्यारमें मगवान्का साथ छोड़ देते हैं वा वहाँ मंत्रिक करवा दे वहाँ विद्याकेमें पके राग्य जाते हैं। वह मेरा गमिक-साथ भोजनकर भगवान्को न छोड़ेंगे वा वहाँ ठिकान करवा दे वहाँ कारणसे पहुँचेंगे, न-काल हो रास्तेमें जायेंगे । और फिर मन्ते ! रोगीको अनुकूल भोजन न मिलनेसे रोग बढत है वा मरण होता है मेरे अयन-मण्ड ( =ओमि-भोजन) को भोजन करनेसे न उसका रोग बढेगा न मरण होगा । और फिर मन्ते ! रोगीपरिचारक मिथु अपने भोजनके प्रबंधमें रोगीको देखते भाव जाते हैं ( वा ) तप्यार ( =मन्त-प्येत् ) पत्र जाते हैं । और फिर मन्ते ! रोगी मिथुको अनुकूल औषध न पानेसे रोग बढता है वा मरण होता है । और फिर मन्ते ! भगवान्के ध्यागन्तुकविन्दुमें इस गुण देखा ववागु ( =पठली विषयी ) की अनुकूलकी थी। उन गुणोंको देखती हुई, मैं जीवन भर संघको मिरन्तर ( =मूढ ) ववागु देना चाहती हूँ । मन्ते ! ( एक समय ) मिथुमिर्पा अचिरवती वर्धामें देखाजो साव नगी एक बाट ( =तीर्थ ) पर बहती थी। मन्त ! बहवाचें मिथुगिर्पाको बात म राती थी—‘कथा है अथवा ! तप्यारी तप्यारी तुम लोर्गाको ब्रह्मचर्य-सेवकमें । ( अभी )

कर्मोंको भोगो जब सुदृषी हाता तो ब्रह्मचर्य सत्य करना । इस प्रकार तुम्हें (श्रीमों) अर्थ प्राप्त होंगे । सो यह भिक्षुजिबों ईश्याओंक बात मारनम मूक हागइ । बिबोंकी भगवत भान्ते ! भिक्षुजि, सुगुणित और बिरह ( = प्रतिपक्ष ) हैं । "

+ + + +

( १ )

आनन्द-चरित । विद्याकाण्ड । रोगि-सुश्रूषक युद्ध । पूर्वाराम-निर्माण  
( ई पू ५०७ ) ।

( आनन्द ) हमारे बोधिसत्त्वक साथ तुपित ( स्वयं )-पुरमें उत्पन्न हो बहोने च्युत हो अमृतौदन शाक्यक परमें पैदा हुये । सय श्रातिको आनन्दित प्रमुदित करत हुये उत्पन्न होमैसे नाम आनन्द रक्खा गया । यह क्रमसः भगवान्के अभिमिच्छमण (=पुरुषार्थ) कर संबोधि प्राप्त हो पहिसां बार कपिलवस्तु जाकर फिर बहोम चस आनेपर, भगवान्के पास भगवान्क अनुचर होबके किये जब शाक्य राजकुमार लया प्रव्रजित हो रह न, तो महिय आदिके साथ बिकककर भगवान्के पास प्रव्रजित हो आपुण्यान मैत्रायणी-पुत्र (=मलामी-पुत्र) क चर्म-उपदेशको सुन बीबी ही देरमें सोतव्यपत्ति फलमें स्थित हुये । उस समय बुद्धत्व प्राप्ति (=बोधि) के प्रथम बीस वर्षोंमें भगवान्के उपस्थाक (= परिचारक) निवत न थे । कर्मों नागसमाल पात्र-बीबर केकर चरत थे; कर्मों नागित, कर्मों उपवाच, कर्मों सुनसत्र कर्मों पुन्द अमणोइ स कर्मों स्वागत, कर्मों रात्र कर्मों मेधिय । एक समय भगवान् नागसमाल स्वबिरके साथ रास्तेमें जा रहे न । जहाँ ( रास्ते ) हो ( जोर ) कय था; ( बहाँ ) स्वबिर मार्गसे हटकर भगवान्से बोले—“भगवान् ! मैं इस भागसे जाऊँगा ।” तब भगवान्के उन्हे कय—“आ भिक्षु ! इस रास्तेस चर्के । उन्होंने—“हन्त ! भगवान् ! अपवा पात्र-बीबर के मैं इस मार्गसे जाता हूँ ——यह पात्र-बीबर धूमिपर रक्खा जाहा । तब भगवान्—“राजो भिक्षु !” —कइ पात्र-बीबर केकर चले । उपर उबरके रास्तेसे जाते समय जोरोंने स्वबिरके बीबर भी छीन किये और पात्र भी तोड़ दिया । तब—“भगवान् ही जब मेरे अरथ हैं इसरा बहाँ सोच लन बहते भगवान्के पास आवे । ‘यह क्या भिक्षु ! पछनेपर उन्होंने तब हाक कइ दिया । एक समय भगवान् संबिबे स्वबिरके साथ प्राचीन-बंसवावमें बंत्तुग्रामको गये । बहाँ मेधियने बंत्तुग्राममें पिडावार करके बड़ीके ठरपर सुन्दर आन्न-वन देख—“भगवान् ! अपवा पात्र बीबर के मैं उस वनके बागमें अमक-धर्म करूँगा —कइ, भगवान्के तीव बार मना करनपर भी गया, फिर हुये बिचारोंसे तप होवैपर कौरकर उस बातको भगवान्से कय ।— बहो कवरण देखकर मैंने मना किये बा’—कइकर, भगवान् कयशाः आवछी पहुँचे ।

बहाँ भिक्षु-संबसे बिर ( भगवान्के ) गंध-कुटीक परिवेज (=बौक ) में, जिठे उत्तम बुद्धासनपर बैठ भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

'मिथुओं ! जब मैं बूढ़ ( ५१ वर्षका ) हूँ । कोई-कोई मिथु 'इस मार्गमें क्यों' कहनेपर तुमसेमे चाते हैं कोई-काई मेरा पाच-बीरर भूमिपर रख देत हैं । मैं किये एक निवत उपप्राक ( = परिपारक ) मिथु खोजा ।'

( सुननेपर ) मिथुओंको येर हुआ । तब आधुप्यान स्नारिपुत्रने उठकर भगवान् को धम्नाकर कहा—

'भले ! मैंने तुम्हारी ही चारने मादकार कर्णोंमें भी अधिक (ममय तक), अर्धवच पारमितामें पूरी की । एसा महाप्राज्ञ मरक (उपप्राक) मानूँ ई, मैं सेवा करूँगा ।'

उन्हें भगवानन कहा—'वही स्नारिपुत्र ! तिम दिसामें तू बिहरता है बह दिसा मुझसे अ-शुच हाती है । तैरा धर्म उपरका कुञ्जोंके धर्म उपरेशके समान है । इमकिय मुझे मरे उपप्राक ( वनामे ) म काम नहीं है ।

इसी प्रकारम महासमीक्ष्यास्यायन भादि अरमी महाभाषक खदे हुए । मरको भगवानने इ-कार कर दिया । भानम् स्वबिर तुप-बाप ही बडे रहे । तब उन्हें मिथुओंमें कहा—'आधुम ! तिम-मध उपप्राक-वह मॉग रहा है तुम भी मॉगो । आधुमी ! मॉगकर स्थान पाया तो क्या पाया ? क्या भगवान मुझें दन नहीं रहे ई ? बदि दर्षणा ता— भानम् मेरा उपप्यान करे कोबेंगे । भगवानन कहा—'मिथुभा ! भानम्का दूसरा कोई उन्ना हिन मत करे स्वर्ष जानकर बह मरा उपप्राक करूँगा ।' तब मिथुओंमें कहा— उदा आधुम ! भानम् ! दन-वकम उपप्राक-स्थान मॉगो । तब स्वबिर ( भानम् ) ने उठकर, चार प्रतिभेप ( = इ-कार ) और चार पाचकायें—भाद वर मॉगो । चार प्रतिभेप बह ई— बदि भगवान् भयने पाये उलम (१) बीररका मुझ म हें, (२) विटपानका म हें (३) एक रा-घनुहीमें तिसाम त हें (४) निमंघनमें ककर म जायें, ता मैं भगवान्का उपप्यान करूँगा ।'

भानम् ! इनमें तूने क्या शेष देखा ?

भल ! बदि मैं दन कम्पुओंका पाऊँगा ता (इस बातक) कहनेबाप होंगे— भानम् दशावकांमि तिम उलम बीपर परिमाम करता ह । इम प्रकारक कोयक किय ही तनागतकी मरा करता है ।' । चार भगवान्कायें बह ई— बदि मल ! भगवान् (१) मरे स्विकार किय निमंघनमें जायें (२) दूसरे राइ का दूसर जनपदमें भगवान्का वनाका भाई परिप्राका जानेक ममय ही भगवान्का वगैर करा पाऊँ (३) जब मुझे इच्छा ही उमी ममय भगवानक पास आने वाऊँ (४) और जा भगवान् मरे पराभमें धर्म उपरका करे, उम भाकर मुझ भी उपरम कर हें । तब मैं भगवान्का उपप्यान करूँगा ।

भगवानन (इम भयद बरोंको) दिया । इम प्रकार काद बरोंका ककर ( भानम् ) निवत उपप्राक हुए ।

'तिस वच ( भगवान ) अ-निवत ( बर्षा ) काम करत जहाँ जहाँ डीक हुआ वहीं बम । इमम आग वा ही प्रववापन ( = तिसाम स्थान ) अ व-वर्षिभाग ( = मरा रहनेके ) किय । कीजमे हो ? जलधन और पूकाराम ।



## विद्या-कांड

प्रथम क्षणमें (= बोधिके बाद बीस वर्षोंमें ) दश-बन्धों महाकाम सत्कार उत्पन्न हुआ । सूर्योदय होनेपर जुगुन्की भाँति तैलिक लोग काम-सत्कार-विरहित-हुने । "। (तब वह) एकदममें एकत्रित होकर सोचने लगे—अमन गौतमके काम सत्कार किन उपायसे प्राप्त किया जाय ? उस समय ध्यावस्तीमें विद्या मानविका नामक एक पारमार्थिक उत्तम रूपवती सौमन्य प्राणा देवी अप्यराकी भाँति (सी) । उसके शरीरसे किरमें निकलती थी । तब उबने एक तेजने— कहा—'विद्या मानविकाके द्वारा अमन गौतमकी अपकीर्ति कर, काम-सत्कार प्राप्त करवै'। उन्होंने 'यह उपाय है करके स्वीकार किया । उस समय वह ( मानविका ) तैलिक आराममें जाकर बन्धुवाकर लड़ी हुई । तैलिकोंने उसके साथ बल न की । वह—'मरा क्या होय है ? तीन बार अपनों ! बन्धुवा करती हूँ—'कह—'आपों ! मेरा क्या होय है क्यों मेरे साथ नहीं बोलत ?' बोली—'भयिनी ! ( क्या ए ) अमन गौतमकी हमारा काम-सत्कार विद्यासत्कार विचरते नहीं देख रही है ?

"आपों ! नहीं जावती । फिर वहाँ मुझे क्या करवा है ?

बहि मगिनी ! ए हम लोगोंका सुख चाहती है तो अपने कारणसे अमन गौतमकी अपकीर्ति कर अमन गौतमके काम-सत्कारको विद्यासत्कार ।'

"आपों ! अच्छा वह मार सुसपर है विद्या मत करा ।

बोधकर, श्रीमायामें चतुर होनेसे तबस केकर जब ध्यावस्ती-वासी धर्म-कथा सुनकर जेतवन्से निकलने लगते, तब बीर-बहुतीके रंगका बल पहिल गंध माध्य जादि हाथमें के जेतवन्की ओर जाती थी । 'इस समय कहाँ जा रही है ?' पूछनेपर—'तुम्हें मेरे जानेकी जगह से क्या काम ?' कह जेतवन्के समीप तैलिकाराममें वास कर सधेरे प्रथम बन्धुवाकी इच्छासे वधसे निकलते उपासकोंको जेतवन्के भीतर विद्यासत्कारके जाई हुई सी विद्या वधमें प्रवेश करती थी । (रातको) कहाँ रही ?' पूछनेपर—'तुम्हें मेरे (रात्रि) वास क्वावसे क्या काम ?' कहती । मास जाधामास बीत जानेपर पूछनेसे—'जेतवन्में अमन गौतमके साथ एकही गंध-कुटीमें रही' (कह) पृथग्बोधोंमें 'यह साथ है वा नहीं—इस प्रकारका संशय उत्पन्नकर तैलिक-मास चारमास बाद कपड़ेसे पेटको बाँध गमिनी बना दिक्कत रूपरस छाक कपड़ा पहिन—'अमन गौतमसे गर्म उत्पन्न हुआ' जाठ जब मास बाद पंथपर कम्बुकी मंडकिका बाँध रूपरसे कपड़ा कपेट गावके बबबसे हाथ पैर पीठ कुट्याकर, पूछसा बना त्रिभिक-इन्द्रिय हो सार्वकाम चर्मासवधर बैठकर धर्म-उपदेश करते समय धर्म-सधामें जा, तवापठके सामने लड़ी हो—

'महाअमन ! कौयोंको धर्म-उपदेश करते हो ? तुम्हारा जन्म मजुर है । अ इ सुन्दर-स्वर्णबुद्ध है । अब मैं तुमसे गर्ममास हो परिच्य-गर्मा हो गई हूँ । व मुझे प्रसूति-वा बलकन्ते (हो) । व स्वर्ण(ही) भी ठेक जादिका प्रबंध करते हो । उपासकोंमेंसे—कोशाकराज, यनापयिडक वा विद्याका महा-उपासिका कोही बोक देते—इस मानविकाके किप करने योग्य करो । अमिरमन ही जावते ही गर्म-उपचार नहीं जावते ?'—इस प्रकार गूण-पिठ

(अप्राप्तिके दिव) के अंशमंडकको वृष्टि करनेके किये कोसित करती सी उसने, परिपक्वके बीचमें तबागतपर अद्योप किया। तबागतने धर्म-कथाको रोककर सिद्धकी मूर्ति गवते (अभि-  
नंदन करते) — 'भगिनी ! तेरे कहनेकी सचाई छटाईको मैं वा तुही जानते है — क्या । 'हैं  
महात्मन ! तेरे और मेरे जानेको कौन नहीं जानते ?' उसी समय इन्द्रका आसत गर्म जान  
पदा । वह सोचते हुए — 'बिना भागविका तबागतपर छटा होय क्या रही है जब, इस  
बातका शोध करेगे (सोध) चार देवपुत्रोंके साथ क्या । देवपुत्रोंने वृद्धके बचोंका रूप  
धारणकर एकही बेरमें शक-मंडकिकाके बचनेकी रस्तीको बंद दिया जोइमेके कपड़को हवासे  
उड़ा दिया । शक-मंडकिका गिरते तक उसके पैरपर गिरी । दोनों पैरोंके पंजे बंद गये । मनु  
जोंने — 'बिद् ! बिद् ! कम्पुली (कम्पुली), सम्बद्ध संतुद्धपर होय क्या रही भी'  
(कह) गिरपर पूरु देव-वंश हाथमें छ ओतबसे बाहर निकलक दिया । तब तबागतके  
कोचन-पपसे बाहर बाटे ही भरतीने फटकर उसे बगद ही ।

### रोगि-सुधूपक सुख ।

× × × ×

'उस समय एक मिथुको पेटकी बीमारी थी । वह अपने पेशाब पाखानेमें पदा हुआ  
था । तब भगवान् आयुष्मान् आयुष्मको बीछे किये भूमते वहाँ उस मिथुका विहार या बहो  
पहुँचे । 'कहाँ वह मिथु या बहो गये । जाकर उस मिथुको पूछा — 'मिथु ! तुसे क्या  
रोग है ?' पेटकी बीमारी है भगवान् !' 'मिथु तेरा कोई परिचारक है । 'कहाँ भगवान् !'  
'कहीं मेरी सेवा नहीं करते ?' 'मन्ते ! मैं मिथुओंका कुछ न करवेवाका हूँ इसछिये ।  
तब भगवान्के आयुष्मान् आयुष्मको कहा — 'जा आयुष्म ! पानी का इस मिथुको नहका  
बेंगे । आयुष्म शमी कावे । भगवान्ने पानी काय आयुष्मान् आयुष्मके घोया । भगवान्  
गिरसे पकड़ा आयुष्मान् आयुष्मके पैरस । उठाकर चारपाईपर कियाथा । तब भगवान्ने —  
इसी प्रकारमें मिथुओंको इच्छाकर । 'मिथुको ! तुम्हारी माता नहीं पिता नहीं जोकि  
तुम्हारी सेवा करेंगे । यदि तुम एक दूसरेकी सेवा न करोगे, तो कौन सेवा करेगा ? जो  
रोगीकी सेवा करता है वह मेरी सेवा करता है । यदि कवाप्याय हो, उपाप्यायको बीचनभर  
उपस्थान (= सदा) करण चाहिये । ' यदि आचार्य । पिप्प । गुह-माई' यदि न  
उपाप्याय है न आचार्य' तो सधकी सेवा करनी चाहिये । सेवा न करे तो बुद्धकी  
आपधि है ।

### पूर्वोत्तर-निर्माण ।

--एक उल्लसके दिन कोर्गोको मंडित-प्रभावित हो धर्म-अवयके किये विहार काटे  
देव विशाखाने भी विमिश्रित स्थानपर भोजनकर महासता-प्रसाधतसे अर्द्धहृत हो  
कोपोंके साथ विहार का आभरण उतार दासीको दिया । ।

'जम्म ! इन प्रसाधनों (=देवी)को एक आस्थाके पासस काटते समय इन्हें पढ़नीगी ।  
उसको देकर आस्थाके पास जा धर्म-उपदेश लुका । धर्म-अवयके बाद भगवान्को बन्दा

कर उठ कर एक पत्नी । वह उसकी दासी भी मृत्योंको मूक गई । बर्ष सुबहर परिष्कृत के ज्ञानपर जो कुछ सूझ होता उसे आनन्द स्वविर भोग्यते थे । इस प्रकार उन्होंने जम दिन महाकथा प्रसाधनको देव साक्षात्को करा—

“भन्ते ! विशाखाका प्रसाधन हूट गया है ।”

“एक धोर रत दो आनन्द !”

स्वविरने उसे उठाकर सीढ़ीके पास धगाकर रख दिया । विशाखा भी सुमित्र (दासी) के साथ आनन्दक गमिक रोगी आदिके कामको खानेके लिये बिहारके भीतर विचरती रही । दूसरे हारने निकलकर बिहारके पास लगी हो—‘भम्म ! प्रसाधन का पहिर्गो । उस समय वह दासी मूक आनेकी बात आव—‘आये ! मूक गये हैं’—बोली । ‘ता आकर के जा लेकिन यदि मेरे आर्ष आनन्द स्वविरने उठाकर दूसरे स्थावर रख हो तो मत छाना आर्षकीको मैंने उसे दिया । स्वविर भी दासीको देखकर—‘किसाके भार्ष—‘पुकर अपनी आर्षाका जेवर मूक गई हैं’—बोलेपर, ‘मैंने इस सीढ़ीके पास रख दिया है जा उसे केजा बोके । बसते—‘आर्ष ! तुम्हारे हाथके तुनेसे उसे मेरी आर्षके पहिर्गोके भवोग्य बना दिया—‘इकर लकी हाथकी जा भम्म क्या है ?’ विशाखाक पुकरपर उस बातको कह दिया । ‘भम्म ! मैं अपने आर्षकी सुई खीचके लगी पहिर्गो मैंने आर्षको रं दिया । किन्तु व्यर्थको रखवालीमें लकड़ोफ होगी उसका देकर बोव (= कल्प ) भीन धार्षकी । जा उसे के जा । वह आकर क गये ।

विशाखाने उसे न पहिर्गो कर्षो (= सुभारो ) को पुकाकर दाम करवाया । ‘न करव मूकक हुया और बतवाई सी हजार ।—‘इने पर ‘तो इसको बेंच दो’ बोके । उतवा नव देकर कोई खरीद न सकया । तब विशाखाक स्वर्ष उसका दाम दे बकरोने सीहकर पादिको पर करवा, बिहारमें आकर घास्ताक बनना कर—

“भन्ते ! मेरे आर्ष आनन्द स्वविरने मेरा आनन्द हाथसे लू दिया उसके लूनेके समयहीस मैं उसे लगी पहिर्गो सकती थी ‘उसको बेंचकर कल्प (= मिथुओंको प्राण) कर्षो, (मीथा) । उसे बेंचते बच दूसरेको उसके कनेमें प्रमर्ष न देव मैं ही उसका दाम उतवाकर काई हैं । भन्ते ! मिथुनाके चारो प्राणो (= प्राण बलुओं ) मैं से किसको कर्षे ।

“विशाखे ! संवक किये पूर्व र्षाके पर बास स्थाव यववाता पुक है

“भन्ते ! लीक’ (क) सन्तुष्टी विशाखाने नव करारमें भूमिही खरीदा । दूसरे बकरोद से ‘बिहार बनावा आरभ किया ।

तब एक दिन आशा मत्पूय समय ओकाबछोकन करते देवकीकसे प्लुत हो पहिर्ग ( सुँगेर ) नगरमें ओडी-कुर्षमें कल्प हुये, महिय ओडी-पुत्रको ( जगाम ) देव अनाथ-

१. पुकक गया १ । “उस समय विशाखा सुगारमाता संवके किये आर्षिक (= बाराह )-सहित इन्दिबक (= हाथीके बच या कर्षुकेकी आकृतिक) प्रासाद बनवाक गइती थी । तब मिथुओंको यह हुआ—‘नवों मयवाकने प्रासादक परिभोग (= प्रव, संवन ) अनुज्ञात किया है ? भगवान्से इस बातको पूछ ।—‘मिथुओ ! सभी ( प्रकर ) के प्रासादोंके परिभोगकी अनुज्ञा करता हैं ।

विष्णुके घर भावनाकर उचरहारकी ओर हुये । स्वभावतः शाला विद्याकाके घर मिथ्या ग्रहणकर, क्षत्रिणाकारसे निष्कम 'अथवगमें बाम करते ये भगवान्के घर मिथ्या ग्रहण कर, पूर्वैज्ञात्से निष्कमकर पूर्वाश्रममें बाम करते ये । उचर-शरकी ओर भगवान्का गले देखकर ही (योग) जान बाले ( कि ) शरिष्णुके किये जा रह है । विद्याका मी उस दिव 'उचरहारकी ओर गये यह सुनकर अस्त्रीसे जाकर बन्धनाकर बाकी—

मन्ते ! शरिष्णुके किये जाना चाहत है ?

“हाँ विद्याके !

‘मन्ते ! आपके किये इतना धन दकर विहार बनवायी हूँ । मन्ते ! काह कहें ।

‘विद्याके ! यह गमन काहनेका नहीं है ।

‘तो मन्ते ! मेर किये कृत-बहुतकर जाणकार एक भिक्षु काहाकर जावें ?’

‘विद्याके ! उस (भिक्षु) का पात्र ग्रहण कर । उसके दिक्में कुछ तो धानन्द स्वविर

की इच्छा हुई । (चिर) — ‘महामौद्गल्यपायन स्वविर कहिमान् है उनक द्वारा मरा काम बर्षी समाप्त हो जावगा — शोषकर स्वविरक पात्रको ग्रहण किया । स्वविरमे शालाकी ओर देखा । शालाके — धन परिवारक पाँच सा भिक्षु क माग्गखान ! लीट जाओ — कहा उन्होंने देमाही किया । उचरकी महिमाम् पचास साठ योजनपर बृह पा पाप्य क किये गये ( मनुष्य ) बड़े-बड़े बृहों कार पाप्योंका लकर उसी दिन कीट व्यसं ये, गादिषोंपर बृहों कार पाप्योंको रक्षमें लक्ष्मीक नहीं पात थ थ पुरा इटता था । उन्होंने अस्त्री ही हा ललका मासाद यथा हाका । नीचके लसपर पाँच मी गर्भ ( अकोरिपी ) भार ऊपरक लसपर पाँच सा गर्भ — एक इकार यमस मडित ( बह ) मासाद था ।

x

x

x

x

( १ )

### दशमस्कन्ध ( ६ पू ५०७ )

‘यमा मीने सुवा—एक समय भगवान् शाक्य (वरा) में शाक्योंके निगम द्बन्धमें विहार करते ये ।

वहाँ भगवान्ने भिक्षुओंका आर्मजित किया—

‘भिक्षुका ? ‘अपुत्र’ ।—

भगवान्ने कहा—‘भिक्षुभा ! कोह-काई भयम जाहाय हम बाह-इस दृष्टिबाक है—

‘जा’ कुछ मी बह पुत्र = पुत्रक मुत्र दुःख या बहुरक अनुत्र अनुभव करता है वह सब पहिक किये इतुने । हम प्रकार पुरात कर्मोंका उपस्थास जन्म करणस मये कर्मोंक न

१ म नि १ : १ : १ । क क. देव कहत है राजाओं का । वहाँ शाक्य राजाओंकी मुन्दर मंगल-पुत्रकरीमी थी जिय पर पहरा रहता था । वह देवोंका बह (अनुत्करीक) होयक कारण देवदर कही जाती थी । उर्मीको लकर बह निगम (= कस्ता) मी देवदर कहा जाता था । भगवान् उम निगमक सहारे सुम्बिनी बचमें बाम करत ये । २ निर्गड जाव पुत्रक बाह ।

करनेमें भविष्यमें परिष्कार-रहित ( = अन्-अवकाश ) ( होता है ) । परिष्कार-रहित होनेसे कर्मक्षय कर्मक्षयसे दुःख-क्षय दुःख-क्षयसे वेदना-क्षय वेदना-क्षयसे सभी दुःख क्षय हो जाते हैं ।

“मिथुनो ! वह निर्गन्ध मेरे ऐसा पृष्ठमेपर 'हैं' करते हैं । ठाकरो में वह कथन हूँ—'आजुसो निर्गन्धो ! क्या तुम जानते हो— हम पहले थे ही हम नहीं थे थे ? 'वही आजुस ? 'क्या तुम आजुसो निर्गन्धो ! जानते हो—हमने पूर्वमें पाप कर्म किया ही है, नहीं नहीं किया है ? 'वहीं आजुस ! क्या तुम आजुसो निर्गन्धो ! जानते हो ऐसा ऐसा पाप-कर्म किया है ? 'वहीं आजुस ! 'क्या जानते हो—इतना दुःख प्राप्त ही गया इतना दुःख प्राप्त करना है इतना दुःख प्राप्त हो जानेपर सब दुःख नाश हो जावेगा ? 'वहीं आजुस ! 'क्या जानते हो—इसी क्षणमें अकुञ्चल (धुरे) धर्मोक्त प्रहाण (विश्वास) और कुञ्चल धर्मोक्त क्षय (होना है) ? 'वहीं आजुस ! 'हम प्रकार आजुसो निर्गन्धो ! तुम नहीं जानते—हम पहिले थे या नहीं इसी क्षणमें अकुञ्चल धर्मोक्त प्रहाण होता है और कुञ्चल धर्मोक्त क्षय । ऐसा होनेपर आजुप्मान् निर्गन्धोका वह कथन युक्त नहीं—'ओ कुछ भी पर पुष्प-पुष्पक अनुभव करता है । यदि आजुसो निर्गन्धो ! तुम जानते होते—'हम पहिले थे ही ? ऐसा होनेपर आजुप्मान् निर्गन्धोका वह कथन युक्त होता—'ओ कुछ भी वह पुद्गल । आजुसो ! कौन (कोई) पुद्गल विपत्ते उपस्थित गाढ़ सख ( = सारे फल ) से विद्व हो । वह धरुणके कारण दुःखद कष्ट, तीव्र वेदना अनुभव करता ही । उसके मित्र = अन्त्यात्वात्वादि-विराद्वी उस धरुण विक्रिसकके पास से जाई । वह सख-विक्रिसक सखसे बसक बन ( = बाध ) के मुक्तको करते । वह सखसे अन्-पुन कष्टसे भी दुःखद कष्ट तीव्र वेदनाको अनुभव करै । सख-विक्रिसक कोकनेकी सखकसे धरुणको छोडे । वह सखकसे धरुणके कोकनेके कारण भी दुःखद वेदना अनुभव करै । वह सख-विक्रिसक सखसे सखको विक्रमे, वह सखके विक्रमेके कारण भी वेदना अनुभव करै । सख-विक्रिसक उसके अन्-पुनपर दवाई रखे । वह दूसरे समन बाधके भर जानेसे विरोग सुखी लक्ष्मीवती, इच्छानुसार किरनेवाक्य हो जाये । उसको वह हो—'मैं पहिले सखसे विद्व था दवाई रखनेके कारण भी दुःखद वेदना अनुभव करता था । सो मैं अब विरोग सुखी हूँ । इस ही आजुसो निर्गन्धो ! यदि तुम जानते हो—'हम पहिले थे । नहीं नहीं थे । ऐसा होनेपर आजुप्मान् निर्गन्धोका वह कथन युक्त होता—'ओ कुछ भी । कौन आजुसो निर्गन्धो ! तुम नहीं जानते— हम पहिले थे इसलिये आजुप्मान् निर्गन्धोका वह कथन युक्त नहीं—'ओ कुछ भी ।

“ऐसा करने पर मिथुनो ! उन निर्गन्धोने मुझसे कहा—'आजुस ! निर्गन्ध अथवा सर्वज्ञ-असर्वज्ञी, अक्षिक क्षय-दर्शनको जानते हैं । पहले कबे सोते जायते सद्य विरतर (उन्में) क्षय = दर्शन उपस्थित रहता है; वह ऐसा करते हैं—'आजुसो निर्गन्धो ! ओ तुम्हारा पहिलेका किया हुआ कर्म है, उसे इस कष्टही पुष्कर कारिका ( = तपस्वा ) से नाश करो, और ओ इस बात नहीं कल्प-वचन-मयसे रक्षित ( = संरक्षित ) हो वह भविष्यके किये पापका न करना हुआ । इस प्रकार पुराणे कर्मोका तपस्वासे अन्त होनेसे और बने कर्मो न करनेसे भविष्यमें (तुम) अन्-अवकाश ( होंगे ) । भविष्यमें अवकाश न होनेसे कर्मोका क्षय, कर्मोके

अपसं दुःख-अप; दुःख-अपसं वेदना-अप; वेदना-अपसं समी दुःख नह = निर्मोमं हावाचेंगे । यह हमको दखता है = समता है । इससे हम संतुष्ट हैं ।”

“प्रेमा कहतार मिश्रुओ ! मैं उन निर्गदोंको यह कहा जाबुसो निर्गदों ! यह पाँच बर्म इसी जन्ममें हो प्रकारके विपाकवाके हैं । कानसं पाँच ? ( १ ) अज्ञा ( २ ) अवि, ( ३ ) अनुभव ( ४ ) अकार-परिवर्तन ( ५ ) दृष्टि-निष्पान-आमि । जाबुसो निर्गदों ! यह पाँच बर्म इसी जन्ममें हो प्रकारके विपाकवाके हैं । यहाँ जाबुप्मान् निर्गदोंके अतीत बंधा-बाही द्यव्या (अविर्गद नाबपुत्र) में आपकी क्या अज्ञा क्या अवि, क्या अनुभव क्या अकार-परिवर्तन क्या दृष्टि-निष्पान-आमि है ?” मिश्रुओ ! निर्गदोंके पास प्रेमा कहकर मी मैं बर्मसे कोई भी बाह-परिहार ( = उच्छर ) नहीं देखता ।

‘अर फिर मिश्रुओ ! मैं उन निर्गदोंको यह कहता हूँ—तो क्या मानते हो जाबुसो निर्गदों ! किस समय तुम्हारा उपक्रम ( = उच्छरम् ) तीव्र होता है = अघान तीव्र (होता है) । उस समय (उस) उपक्रम-संबन्धी दुःख, तीव्र कटुक वेदना अनुभव करते हो, किस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र नहीं होता = अघान तीव्र नहीं (होता), उस समय वेदना अनुभव नहीं करते ?” किस समय उपक्रम तीव्र नहीं होता है, उस समय तीव्र वेदना अनुभव करते हैं । किस समय उपक्रम तीव्र नहीं होता तीव्र वेदना अनुभव नहीं करते ।

“इस प्रकार जाबुसो निर्गदों ! किस समय तुम्हारा उपक्रम-अघान तीव्र होता है, उस समय तीव्र वेदना अनुभव करते हो; किस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र नहीं होता तीव्र वेदना अनुभव नहीं करते । प्रेमा होनेपर जाबुप्मान् निर्गदोंका यह कथन सुख नहीं—ओ कुछ भी यह सुख = सुख । यदि जाबुसो निर्गदों ! किस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र होता है, उस समय दुःख वेदना रहती है; किस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र नहीं होता उस समय दुःख वेदना नहीं रहता; प्रेमा होनेपर यह कथन सुख नहीं—ओ कुछ भी ।

“अरि जाबुसा ! किस समय तुम्हारा उपक्रम तीव्र होता है उस समय दुःख वेदना अनुभव करते हो; किस समय उपक्रम तीव्र नहीं होता तीव्र वेदना अनुभव नहीं करते; सो तुम स्वर्षही उपक्रम-संबन्धी दुःख वेदना अनुभव करते अविद्यासे अज्ञानसं, मोहसं उच्छय समय रहे हो—ओ कुछ भी । मिश्रुओ ! निर्गदोंके पास प्रेमा कहकर मी मैं बर्मसे कोई भी बाह-परिहार ( = उच्छर ओरस ) नहीं देखता ।

‘अर फिर मिश्रुओ ! मैं उन निर्गदोंको प्रेमा कहता हूँ—तो क्या मानते हो जाबुसो निर्गदों ! ‘ओ यह इसी जन्ममें वेदनीय ( = भोगा जानेवाक्य ) कर्म है यह उपक्रमसे वा प्रधावसे संपराव ( = दूसरे जन्ममें ) वेदनीय किवा का सकता है ?” ‘नहीं, जाबुस ! ‘अर ओ यह जन्मान्तर ( = संपराव )-वेदनीय कर्म है, यह—उपक्रमसं इस जन्ममें वेदनीय—किवा का सकता है ?” ‘नहीं जाबुस ! ‘ता क्या मानते हो जाबुसा ! निर्गदों ! ओ यह सुप-वेदनीय ( = सुप भाग करनेवाक्य ) कर्म है क्या यह उपक्रमसं = वा प्रधावसे दुःख-वेदनीय किवा का सकता है ?” ‘नहीं जाबुस ! ‘ओ यह दुःखवेदनीय कर्म है क्या यह उपक्रमसं सुख-वेदनीय किवा का सकता है ?” ‘नहीं जाबुस ! । ‘ता क्या मानते हो जाबुसो निर्गदों ! ओ यह परिपक ( = अचल = पुत्रा ) में वेदनीय कर्म है क्या

वह उपक्रमस अपरिपक्व-बेदनीय किया जा सकता है ? 'नहीं' आबुस ! जो यह अपरिपक्व (=बौद्ध, अज्ञानी)-बेदनीय कर्म है, क्या वह परिपक्व-बेदनीय किया जा सकता है ? 'नहीं' आबुस ! 'तो क्या मानते हो आबुसो किगटो ! जो यह बहु-बेदनीय कर्म है ?' 'नहीं' आबुस ! 'तो क्या मानते हो आबुसो किगटो ! जो यह बेदनीय (=मोगानेबाका) कर्म है क्या वह उपक्रमसे अ-बेदनीय किया जा सकता है ?' 'नहीं' आबुस ! अ-बेदनीय कर्म बेदनीय किया जा सकता है ? 'नहीं' । 'इस प्रकार आबुसो किगटो ! जो यह इसी अन्तर्में बेदनीय कर्म है । अ-बेदनीय कर्म है वह भी बेदनीय नहीं किया जा सकता । ऐसा होनेपर आबुप्मान् किगटोंका उपक्रम निष्फल हो जाता है प्रथम निष्फल हो जाता है ।

"मिथुजो ! निर्गठ लोग इस वाद (के मानने) पासे हैं । इस वादवाके किगटोंक वाद=अनुवाद धर्मानुसार इस स्थानोंमें निर्दोष (अनुपक) होते हैं । यदि मिथुजो ! प्राणी पहिले किये (कर्मों)के कारण सुख-दुःख भोगते हैं तो मिथुजो ! निर्गठ लोग अक्षय पहिले तुरे काम करनेवाके ने जो इस वक्त इस प्रकार दुःख, तीव्र कष्ट बेदवायें भाग रहे हैं । यदि मिथुजो ! प्राणी ईश्वरक बनानेके कारण (=ईश्वर-विर्माण-हेतु) सुख दुःख भोगते हैं तो अक्षय मिथुजो ! निर्गठ लोग पापी (=तुरे) ईश्वर द्वारा बनाये गये हैं, जोकि इस वक्त दुःखद बेदवायें भोग रहे हैं । यदि मिथुजो ! प्राणी संगति (=भाबी)के कारण सुख दुःख भोगते हैं तो अक्षय मिथुजो ! निर्गठ लोग पाप (=तुरी) संगति (=भाबी) वाले थे, जो इसवक्त । यदि मिथुजो ! प्राणी अभिजातिके कारण । यदि इसी अन्तर्में उपक्रमके कारण सुख दुःख भोगते हैं तो अक्षय मिथुजो ! किगटोंका इस अन्तर्में उपक्रम पुरा(अपव) है जोकि इसवक्त दुःखद बेदवायें भोग रहे हैं ।

"यदि मिथुजो ! प्राणी पूर्व किये (कर्मों)के कारण सुख दुःख भोग रहे हैं तो निर्गठ गर्हनीय हैं यदि ईश्वरके निर्माणके कारण भवितव्यता(=संगति)के कारण अभिजातिके कारण इसी अन्तर्में उपक्रमके कारण सुख दुःख भोगते हैं तो निर्गठ गर्हनीय हैं । मिथुजो ! निर्गठ ऐसा मत (=वाद) रखते हैं । ऐस वादवाके निर्गटोंके वाद=अनुवाद धर्मानुसार इस स्थानोंमें बिन्दनीय होते हैं । इस प्रकार मिथुजो ! (अज्ञान) उपक्रम निष्फल होता है प्रथम निष्फल होता है ।

'मिथुजो ! पाँच उपक्रम सफल हैं प्रथम सफल हैं । मिथुजो ! (१) मिथु दुःखसे अन्-अभिभूत (= अ-पीडित) शरीरको दुःखसे अभिभूत नहीं करता । (२) धार्मिक सुखका परिचाय नहीं करता । (३) उस अन्तर्में अधिक दुःख (=मूर्च्छित) नहीं हो जाता । (४) वह ऐसा आनन्द है—इस दुःख-कारणके संस्कारके अन्वय करनेवाकेको संस्कारके अन्वय से विराग होता है । (५) इस दुःख-निदानके उपेक्षा करनेवाकेको उपेक्षाकी भावना करनेसे विराग होता है । वह जिस दुःख-निदानके संस्कारके अन्वय करनेसे संस्कारके अन्वयसे विराग होता है उस संस्कारको अन्वय करता है । जिस दुःख-निदानके उपेक्षा करनेसे उपेक्षाकी भावना करनेसे विराग होता है उस उपेक्षाकी भावना करता है । उस उस दुःख-निदानके संस्कारके अन्वयसे विराग होता है ; इस प्रकार भी इत्यादि

बह हुआ भीर्न होता है। उस उस दुःख-विश्रामकी उपेक्षाकी भावना करनेवाकको विराग होता है; इस प्रकार भी इसका बह हुआ भीर्न होता है।

‘मिथुभो ! उसे पुरुष ( किसी ) क्षीमें अनुरक्त हो प्रतिबद्धचित्त सीत-राजी-स्त्री प्रपेक्षी हो। वह उस क्षीको दूसरे पुरुषके साथ खाई बात करती अग्रथन करती-हँसती देखे। तो क्या मानते हो मिथुभो ! उस क्षीको दूसरे पुरुषके साथ हँसती देख क्या उस पुरुषको शोक-परिदेव दुःख-प्रार्थन-वत्स-उपावास उत्पन्न नहीं होंगे ?’

‘हाँ मन्ते ?’

‘सो किस किये ?’

‘वह पुरुष मन्ते ! उस क्षीमें अनुरक्त है। इस किये उस क्षीको दूसरे पुरुषके साथ हँसती देख उस पुरुषको शोक उत्पन्न होंगे।

‘तब मिथुभो ! उस पुरुषको ऐसाहो—मैं इस क्षीमें अनुरक्त हूँ। सो इस क्षीको दूसरे पुरुषके साथ हँसत देख शोक उत्पन्न होते हैं। क्यों न मैं जो मेरा इस क्षीमें अग्र-राग है उसको छोड़ दूँ। वह ( फिर ) जो उस क्षीमें उग्रका अग्र-राग है उग्र छोड़ दे। फिर दूसरे समक वह उस क्षीको दूसरे पुरुषके साथ हँसते देखे; ता क्या मानत हा मिथुभो ! क्या उस स्त्रीको दूसरे पुरुषके साथ हँसते देख उस पुरुषको शोक उत्पन्न होंगे ?’

‘नहीं मन्ते !’

‘सो किस किये ?’

‘वह पुरुष मन्ते ! उस स्त्रीसे शीत-राग है इसकिये उस स्त्रीको हँसते देख, उस पुरुषको शोक उत्पन्न नहीं होते।

‘ऐसे ही मिथुभो ! मिथु दुःखसे अन्धमिमूल शरीरको दुःखसे अमिमूल नहीं करता इस प्रकार भी इसका बह हुआ भीर्न होता है। इस प्रकार मिथुभो ! उपक्रम सफल होता है प्रधान सफल होता है।

‘जीर फिर मिथुभो ! मिथु ऐसा सोचता है—सुख-दुःख विहार करते भी भरे अ-कुसल धर्म बरत है कुसल-धर्म क्षीण होते हैं ( केकिय ) अपनेको दुःखमें लगाते अकुसल धर्म क्षीण होते हैं, कुसल-धर्म बरते हैं क्यों न मैं दुःखमें अपनेको लगाऊँ। इस प्रकार वह अपनेको दुःखमें लगाता है दुःखमें अपनेको लगाते हुए उसके अकुसल-धर्म क्षीण होते हैं कुसल-धर्म बरते हैं। वह उसके बाद दुःखमें अपनेको नहीं लगाता। सो किस किये ? मिथुभो ! वह मिथु जिनके किये दुःखमें अपनेको लगाता था वह उसका मत्तक पूरा हो गया, हमकिये दूसरे समक दुःखमें अपनेको नहीं लगाता। जैसे मिथुभो ! हनुकार ( = बाज बनारसेवा कोहार ) दो धंगारों ( = अन्धत ) पर तेजब ( = बाम-कक ) को तपाता है सीबा करता है। अब मिथुभो ! हनुकारका तेजब हा धंगारोंपर आतापित = परितापित ( हो चुका ) हाता है सीबा ( हो गया ) हाता है। सो फिर दूसरी बार वह हनुकार तेजबको हा धंगारोंपर आतापित परितापित नहीं करता सीबा ( नहीं ) करता ---। सो किस किये ? मिथुभो ! जिन मत्तकसे हनुकार आतापित परितापित कर रहा था। वह उसका मत्तक पूरा हो गया। इसजिब दूसरी बार । ऐसे ही मिथुभो ! मिथु ऐसा



सोचता है—मुख-पूर्वक विहार करते मरे अक्षुण्ण-धर्म करते हैं पुण्य-धर्म हीन होते हैं इसलिये दूसरे समय दुःखमें अपनेको नहीं जगाता । इस प्रकार भी मिथुनो ! उपक्रम सफ़क होता है प्रथम सफ़क होता है ।

और फिर मिथुनो ! वहाँ लोकमें तथागत अर्हत सम्बन्ध-संबुद्ध विद्या-आचरण-मुक्त सुगत उत्पन्न होते हैं । धर्म-उपदेश करते हैं । ( जिसे मुन कोई ) पर जोष वेर हो प्रसन्नित होता है । वह इस धार्म-सीक-रूपसे संबुद्ध हो अपनेमें निर्दोष मुख अनुभव करता है । वह इस धार्म-इन्द्रिय-संभारसे मुक्त होता है । वह इस धार्म-सीक-रूपसे मुक्त हो इस धार्म-इन्द्रिय-संभारसे इस धार्म-स्फुटि-सम्बन्धसे मुक्त हो एकान्त-वास-रूप, वृष्टके पीछे पर्यंत कंधरा गिरिगुहा, समझान बन-मलय मैदान पुष्पाङ्कण डेर सेवक करता है । वह मोक्षनके बाद आसन्न मार शरीरको सीखा रख, स्फुटिको संयुक्त उपस्थित कर बैठता है । वह लोकमें क्रोम (अभिमिथ्या) को छोड़ अभिमिथ्या-रहित चित्तसे विहरता है अभिमिथ्यासे चित्तको परिशुद्ध करता है । ध्यापान-अध्यय (हेय) को छोड़ न ध्यापक चित्त हो एव प्राणिर्बोद्ध हित = अनुकम्पक हो विहरता है । स्वाम-सुद्ध छोड़, आङ्गल-कौतुक्य छोड़ विधिक्रिस्ता छोड़ । वह इन पाँच चित्तके नीवारणोंको छोड़ प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विरस्ता है । उसका मिथुनो ! उपक्रम सफ़क होता है ।

‘और फिर मिथुनो ! द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो । उपक्रम सफ़क होता है ।

और फिर । तृतीय ध्यानको प्राप्त हो । इस प्रकार भी ।

‘और फिर । अनुर्ध-ध्यायको प्राप्त हो । इस प्रकार भी ।

‘वह इस प्रकार समाहित चित्त अथक प्रकारके पूर्ण विचारोंको अनुभव करता है । इस प्रकार भी ।

‘वह इस प्रकार समाहित-चित्त विषय-बहुसे प्राणियोंको श्रुत होते उत्पन्न होने जानता है । इस प्रकार भी ।

वह इस प्रकार समाहित चित्त ‘अम्म कतम हो गया जानता है । इस प्रकार भी ।

‘मिथुनो ! तथागत ऐसे बाद ( के मानने ) बाँडे हैं । ऐसे बादवाके तथागतकी धर्मासुसार ( = ध्यावासुसार ) प्रतीक्षाके हम स्थान हाते हैं । (१) यदि मिथुनो ! प्राणी पूर्व क्रिये कर्मोंके कारण मुख-नुत्थ भोगते हैं तो अवश्य मिथुनो ! तथागत पहिलेके पुण्य करवेगामे रहे हैं जो कि हम समय अक्षय ( = मक )-विहीन मुख-वेदनाकी अनुभव करते हैं । (२) यदि मिथुनो ! ईश्वर-विमोघके कारण, तो अवश्य मिथुनो ! तथागत अच्छे ईश्वरसे निर्मित हैं जो कि हम समय । (३) अकितध्वताके कारण ; तथागत उत्तम अकितध्वतावाक हैं । (४) अभिजातिक कारण ; तथागत उत्तम अभिजातिवाके । (५) हमी जन्मके उपक्रमके कारण ; तथागत हम जन्मके सुन्दर उपक्रमवाके । (६) यदि मिथुनो ! प्राणी पूर्वहन ( कर्मों ) के कारण मुख-नुत्थ नहीं अनुभव करते हैं तो तथागत पक्षमधीन हैं । यदि पूर्वहन ( कर्मों ) के कारण मुख-नुत्थ नहीं अनुभव करते तो ( भी )

तथागत प्रसंसतीव हैं । (७) यदि मिथुनो ! श्यामी ईश्वर-निर्माणके कारण , ईश्वर निर्माणके कारण नहीं । (८) भवितव्यताके कारण , भवितव्यताके कारण नहीं । (९) कमिजातिके कारण नहीं । (१०) इस जन्मके उपक्रमके कारण , इस जन्मके उपक्रमके कारण नहीं । मिथुनो ! तथागत इस वाच (के मानने) वाचे हैं ।”

भगवान् ने यह कहा । संतुष्ट हो उन मिथुनोंने भगवान् के भाष्यका अभिवादन किया ।

+ + + +

( ४ )

केसपुत्रिय-सुत । पूर्वाराममें प्रथम वर्षावास । आलम्बक-सुत

( ई पू ५०७-५०६ ) ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् कोसलमें चारिक्र करते वड़े भारी मिथु सबके साथ वहाँ काष्ठामों का कस-पुत्र नामक विगम वा वहाँ पहुँचे ।

केसपुत्रिय (= केसपुत्रीव ) काष्ठामोंने सुना—शाक्य-पुत्र० जमन गौतम केस पुत्रमें प्राप्त हुए हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा मंगल कीर्ति-सम्पद फैला हुआ—<sup>१</sup> । इस प्रकारके धर्मोक्तिका वर्णन अल्प होना है । तब केसपुत्रिय काष्ठम वहाँ भगवान् के वहाँ आये । धाकर कोई कोई भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये कोई कोई भगवान् को समीप कर एक ओर बैठ गये । कोई कोई त्रिपर भगवान् के उपर हाथ जोड़कर । कोई कोई वाम-शोथ सुवाकर एक ओर बैठ गये । कोई कोई सुपचाप एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे केसपुत्रिय काष्ठामोंने भगवान् को यह कहा—

“मन्ते ! कोई कोई जमन प्राकृत केस-पुत्रमें आते हैं अपने ही वाच (= मत्त ) को प्रकल्पित करते हैं चोक्तित करते हैं दूसरेके वाचपर नाराज होते हैं (=सुसमित) विन्दा करते हैं परित्यक्त करते हैं । मन्ते ! दूसर भी कोई कोई जमन प्राकृत केस-पुत्रमें आते हैं वह भी आपने ही वाचको । तब मन्ते ! हमको कांक्षा = विचिकित्सा (= संसय ) होती है—कौन हूँ आप भगवन प्राकृतमें सच कहता है, कौन झूट ?”

‘काष्ठामों ! तुम्हारी कांक्षा = विचिकित्सा ठीक है कांक्षणीय स्थावमें ही तुम्हें सम्यैह उत्पन्न हुआ है । आओ काष्ठमों ! मत्त तुम अनुग्रह (=सुत) सं मत्त परंपरासे मत्त ‘पैसाही है से मत्त पिरक-संप्रदाय (= अपने मान्य शास्त्रकी अनुकूलता ) से मत्त तर्कके कारणसं मत्त नव (= न्याय)-हेतुसे मत्त (बुद्धके) आकारक विचारस मत्त अपने चिर-विचारित मत्तके अनुकूल होवैसे, मत्त (बुद्धके) मध्य रूप होवैसे मत्त जमन हमारा सुद (=वडा) है स (विश्वास करो) । अब काष्ठामों तुम अपने ही आगे—यह धर्म अनुग्रहक यह धर्म सद्गोच यह धर्म विश्व विरित (है) यह डेने, प्रहल करवेपर अहित = दुःखके क्लिप होता है तब काष्ठामों ! तुम (उत्ते) श्रेय रेण । तब तथा मान्ते हो काष्ठामों ! पुत्रके भीतर उत्पन्न हुआ कोम हितके क्लिप होता है वा अहितके क्लिप ? ‘अहितके क्लिप मन्ते !

“काळामो ! यह सुख (=कोममें पहा) पुरुष =पुरुष कोमसे अभिमूल (=विश)  
=परिपूरित-चित्त मान भी मारता है सोरी भी करता है पर-भी-गमन भी करता है इस  
भी बोधता है दूसरेको भी बैसा करनेको प्रेरित करता है। जो कि विरकाक तक उसके अहित =  
दुःखके किय होता है ?” “हाँ मन्ते !”

“तो क्या मानते हो काळामो ! पुरुषके भीतर उत्पन्न दुःख हेतु हितके किय होता  
है वा अहितके किय ?” “अहितके किय मन्ते !”

‘काळामो ! प्रेप-सुख पुरुष । ‘हाँ मन्ते !’

मोह । ‘हाँ मन्ते !’

“तो क्या मानते हो काळामो ! वह धर्म कुशाक है, वा अकुशाक ?”

‘अकुशाक मन्ते !’

‘साधन (=सद्योप) है वा धिरधन (=विशेष) ?’

‘साधन मन्ते !’

विज्ञ-नाहित वा विज्ञ-मसंसित ? विज्ञ-नाहित मन्ते !

मास करनेपर = ग्रहण करनेपर अहितके किय = दुःखके किय है, वा नहीं ?”

“ग्रहण करनेपर मन्ते ! अहित के किय है ऐसा हमें होता है !”

‘इस प्रकार काळामो ! जो वह मैंने कहा—‘आओ काळामो ! मत तुम अनुभवसे ।  
यह जो मैंने कहा वह इसी कारण कहा । इसकिय काळामो ! मत तुम अनुभवसे । जो  
तुम काळामो ! अपन ही समझा — यह धर्म कुशाक (=अच्छे) यह धर्म अविशेष (=विशेष)  
वह धर्म विश्व मसंसित वह धर्म मास करनेपर =ग्रहण करनेपर हित-सुखके किय है’ तब  
तुम काळामो ! (उन्हें) मास कर बिहरो । तो क्या मानते हो काळामो ! पुरुषके भीतर उत्पन्न  
दुःख अ-कोम हितके किय होता है वा अहितके किय ?”

‘हितके किय, मन्ते !’

‘काळामो ! कोम-रहित पुरुष =पुरुष कोमसे अ-अभिमूल = ज-पूरित चित्त हो  
मान नहीं मारता है ?’ “हाँ मन्ते !”

अपान ?’ । । “मोह ?’ । ।

“तो क्या मानते हो काळामो ! यह धर्म कुशाक (=अच्छे) है वा अकुशाक ?” । ।

‘सो काळामो ! धर्म-आवक इस प्रकार अभिप्रा (=आप्त)-रहित अपाव  
(=द्वेष)-रहित अ-संसृष्ट (=मोह-रहित) स्थिति का संमन्वयके साथ मीत्री-सुख चित्तसे  
अपनपुत्र चित्तम मुखिता सुख-चित्तसे अपेक्षा-सुख चित्तसे एक दिशा आवहित कर बिहरता  
है बैसही दूसरी वसही तीसरी चैसही बायीं इसी तरह ऊपर नीचे दक्षिण-पश्चिम  
सबके धर्म समी छोड़के ‘अपेक्षासुख विपुल = महत्त्व = अग्रमाण अ-वीर = अ-व्यापन्न  
चित्तसे आवहित क बिहरता है । काळामो ! (जो) वह धर्म आवक ऐसा अ-वीर-चित्त =  
ऐसा अ-व्यापन्न-चित्त ऐसा अ-संसृष्ट-चित्त = अ-व्यापन्न विपुल-चित्त है उसको हसी अम्ममें बार  
आप्राप्त (=आप्राप्त) मिके हात है ।—(१) यदि पर-आक है यदि सुख सुख अम्ममें

फस = विपाक है तो विषय ही में काया काय भरनक बाद मुगति = स्वर्गलोकमें उतरक होईगा यह उस प्रथम आवास प्राप्त हुआ रहता है । ( २ ) यदि परलोक नहीं है यदि सुख्य सुरकुत कर्मोंका फस = विपाक नहीं है तो हमी जन्ममें इस जन्ममें मर = अत्याय -- सुखपूर्वक अपनेको रकता हूँ यह उसका दूसरा आवास । ( ३ ) यदि ( कर्म ) करते पाप ( पुत्रा ) किया जाने तो भी मैं किसीका पुत्र नहीं चाहता बिना किये फिर पापकर्म मुझ क्यों दुःख पहुँचायेगा ? यह उस तीसरा । ( ४ ) यदि करते हुए पाप न किया जाय ( तो ) इस समय मैं दोनोंस ही सुख अपनेको रकता हूँ यह उस आया । सो कर्मामो ! वह आप-भावक ऐसा भर्त्सर विष है उसको इसी जन्ममें यह चार आश्वास मिळे होते हैं ।”

“यह ऐसाही है भगवान् ! यह ऐसाही है मुगत ! मन्ते ! वह अर्पभावक ऐसा अर्पर-विषय चार आश्वास । प्रथम आश्वास । द्वितीय आश्वास । तृतीय आश्वास । चतुर्थ आश्वास । उसका इसी जन्ममें यह चार आश्वास । आश्चर्य ! मन्त ! ! अद्भुत ! मन्ते ! ! आश्वास मन्ते ! भगवान् ! हमी जन्मसिद्ध शरणागत उपासक भारत करें ।

### पूर्याराममें प्रथम वर्षावास ।

‘भगवान् ( = शारदा ) नव मासमें चरिका करक पुनः आवरती आन । विद्यात्याफे प्रासादक काम भी नव मासमें समाप्त हुआ । “। आस्ता उत्तयन जाते है”-मुनकर भगवानी कर शास्ताको अपने विहारमें स आकर बचन किया—‘मन्त ! भगवान् ! इस चातुर्मासमें मिश्र संघको कजर नहीं पास करें मैं प्रासादका उत्सव कर्हूंगी । शारदान स्वीकार किया । वह ( विद्याका ) तबस बुद्ध प्रमुख मिश्र-संघका विहारमें ही ( मिश्रा ) दान देती थी । तब उसका सघी ( = महादिक ) सहस्रके मूल्यका एक बरत से आकर बोली—“सहायिके ! मैं इस बरतको तैर प्रासादमें -- कर्हूँ विद्याना चाहती हूँ, विद्यानेका ज्ञान मुझे बतल्य ।”

सहायिके ! यदि मैं तुझ कर्हूँ—‘अवकाश नहीं है तो तू ममसोपी—‘तू मुझे अवकाश दना नहीं चाहती ।’ स्वयं ही प्रासादके दोनों तरु आर हजार कोटरियोंको देखकर विद्यनेका रवाना हुई है ।”

वह सहस्र मूल्यके बरतको लेकर वहाँ विचारण करती, उससे अल्प-मूल्यका बरत न देख—‘मैं इस प्रासादमें पुण्य भाग नहीं पा रही हूँ’ ( याच ) दुःखित हो एक जगह रोती लगी थी । तब आत्मन् स्वविरले उसे देख पृष्ट—‘क्यों राती है ? उसन वह बात कइ सी । स्वविरल ‘सोच मठ कर, मैं तुझ विद्यनेका रवाना बताईगा’ कइ सारी और तैर पालेके बीच पाद पोंडनक बनाकर बिजय है मिश्र तैर कोजर पहिले वहाँ पोंडनक भीतर जाईंगे इस प्रकार तुझे महासुक होगा कइ । विद्याज्ञान उस रवानक रपाक न किया जा । विद्याज्ञान चातुर्मास भर विहारके भीतर बुद्ध प्रमुख मिश्र-संघकी दान ( = भाजन ) दिया । अनिम दिव मिश्र-संघको बीबर शारक दिये । सबमें सबन नप मिश्रका दिव बीबर सहस्र मूल्यक थे । सबक पात्रोंको भरकर अत्य ( = र्घी गुह अदि ) दिया । दान देवेमें

करोड़ लक्ष हुए। इस प्रकार बिहारकी भूमि लेनेमें सब करोड़ बिहार बनपानेमें सब करोड़ बिहार-उत्सवमें सब (करोड़), सब सत्ताईस करोड़ उमने शुद्ध-वासियोंमें दान दिने। श्री हां, मिथ्यादृष्टिके बरमें बास करते किन्ही कुमारीका पना दान नहीं है।

### भासयक-सुत

प्रेमा प्रीति सुता—एक समय भगवान् आसलीमें पाबोंक मार्ग = गो-मया) में सिरस-बन (सिसपा-बन) में पत्तके बिछानेपर बिहार करत थे।

तब हस्तक आसतकने अंयाविहार (= बहककदमी) के द्विप दृक्ते बिचले हुये भगवान्को गामाग सिंसपा-बनमें पर्व-संस्तरपर बड़े देखा। देखकर बहों भगवान् थे बहों पहुँचकर भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बिस। एक ओर बड़े हस्तक आसतक भगवान्को कहा—

‘मन्ते ! भगवान् सुतसे तो सोचे ?’

‘हैं कुमार ! सुतस सोचा, जो काकमें सुतस सोते हैं मैं बनमेंसे एक हूँ।’

‘मन्ते ! ( बह ) हैमन्तकी सीतक रात, हिम-पातक समय ‘अन्तराहक है।’

‘गो-कटक-हठ कपी भूमि है पनासन पतक है बृहक पत्र बिचक है कापाय बस सीतक है काबाई बाबु सीतक है तब भी भगवान् प्रेमा कहते थे— हैं कुमार ! सुतसे सोचा ।’

‘तो कुमार ! तुसे ही पूछता हूँ जसा तुसे डीक कमी बिसा मुझे उत्तर दे। तो क्या कुमार ! ( किसी ) गृहपति ( बह ) का गृहपति-पुत्रका बीपा-योग बापु-रहित हारबंद, बिचकी-बन्द कुदागार (= कोडा ) हो बहों चार अंगुक पोस्तीकय बिछा (= गोबकनठ), पही-बिछा काकीम-बिछा उत्तम काहकी गृहचर्म बिछा, दोतों (= सिरहावे-दरहने) ओर काक तकनीबाछा ऊपर बिठानकाक पर्वग हो; ठेक-महीप भी एक रहा हो। चार भाचों सुन्द-सुन्द ( सेबाचों ) के साथ हाजिर हों तो क्या माकते हो कुमार ! बह सुकसे सोचेगा या नहीं; बहों तुम्हें बिसा होछा है ?’

‘मन्ते ! बह सुकसे सोचेगा। जा कोकमें सुकसे सोत है बह उबमेंसे एक होगा ।’

‘तो क्या माकते हो कुमार ! यदि उस गृहपति का गृहपति-पुत्रको रागसे उत्पन्न होकेकाक कापिक या माकसिक परिदाह (= बकन ) उत्पन्न हो; तो उब रागक परिदाहोंसे ककते हुये क्या बह सुकसे सोचेगा ?’

‘हैं मन्ते !’

‘कुमार ! बह गृहपति का गृहपति-पुत्र जिस रागक-परिदाहसे = बकनसे सुकसे सोते हैं, तकागतक बह ( रागक परिदाह ) बह = उचिकक-भूक = मस्तक चिकन ताकनी तरह किना = जमाक मास अचिकनमें व उरपक होने काकक ( हो गया है); इसकिप मैं सुकसे

१ अ नि ३ : ३ : ५ । २ अ क ‘माकके अन्तके चार बिच और कापुके

बादिक चार दिव अन्तराहक कहे जाते हैं। ३. अ क ‘पायी बरसवेपर गाबोंके जाने जानेक प्यजपर सुतोंसे कीचक बमप आता है बह रूप-बनासे सुककर भारेके दौतकी तरह दुःख-स्पर्ष होछा है उसीको क्याककर मोकटक-हठ कहा।

सोपा । ता क्या मानते हो, कुमार ! यदि उस गृहपति को इपसे उत्पन्न (=इपज) ।

। मोह्य उत्पन्न (= मोहज) काविक या मानसिक परिहास उत्पन्न हों ?”

“हाँ मन्ते !”

‘कुमार ! इसकिपु मैं सुखस सोपा ।

परिनिहृ य (= मुक्त) ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है ।

को कि सीतल स्वभाव उपधि (=राग आदि)-रहित, कामोंमें लिप्त नहीं है ।

सब आसक्तियोंको छिन्न कर इपसे अपना हरा कर ।

मनमें क्षांति प्राप्त कर उपशाश्व हो (बह) सुखसे सोता है ।

+

+

+

( ५ )

### रन्ठपाल-सुच ( ई पू ५०६ )

पेसा देने सुना—एक समय भगवान् कुह (रैल) में महाभिक्षुसंघके साथ चारिका करते वहाँ बुद्धकोटित नामक कुहजोंका निगम (=कथा) का वहाँ पहुँचे ।

बुद्धकोटित (= स्तूपकोटित) वासी ब्राह्मण गृहपतिथीसे सुना—आपका पुत्र ‘अमल गौतम बुद्धकोटितमें प्राप्त हुए हैं । इस प्रकारके अर्थोंका दर्शन अच्छा होता है । तब बुद्धकोटितके ब्राह्मण-गृहपति वहाँ भगवान् के वहाँ गये । बाकर कोई कोई अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । कोई कोई चुपचाप एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे बुद्धकोटित-वासी ब्राह्मण-गृहपतिथीको भगवान्ने धार्मिक कथासे संबंधित डेरित समुच्चैरित, समर्पित किया ।

उस समय उसी बुद्धकोटितके आमकुसिक का पुत्र राष्ट्रपाल उस परिष्कमें बैठा था । तब राष्ट्रपालके पेसा हुआ । जैसे भगवान् धर्म उपदेश कर रहे हैं वह अत्यन्त परिष्क संवत्सा बुद्ध ब्रह्मचर्य-पावन गृहमें वास करते सुकर नहीं है । क्यों न मैं बेस-स्मरु मुँडार कापाव बद्ध पहिन कर बरस बेहर हो प्रव्रजित हो जाऊँ । तब बुद्धकीटित वासी ब्राह्मण गृहपति भगवान्ने धार्मिक कथा द्वारा समुच्चैरित समर्पित हो भगवान्के आपनको अभिनन्दन अनुमोदन कर, आसनस उठ, भगवान्को अभिवादन कर प्रव्रजिष्य कर, चले गये । तब राष्ट्रपाल कुहज ब्राह्मणोंक चले-आनेके बोधी ही रैर वाद वहाँ भगवान् के वहाँ गया बाकर भगवान्का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे राष्ट्रपाल कुह-पुत्रने भगवान्को कहा—

‘मन्ते ! उसे कैसे मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको समझता हूँ यह संव-कल्पित ब्रह्मचर्य-पावन गृहमें वास करते सुकर नहीं है । मन्ते ? मैं भगवान्के पास प्रव्रज्या पाऊँ उपसंपदा पाऊँ ?”

‘राष्ट्रपाल ! क्या तुम्हे मातापितासे वरमं बैहर प्रव्रज्याक किपु आज्ञा पाई है ?”

‘मन्ते ! आज्ञा नहीं पाई ।

‘राष्ट्रपाल ! माता-पितासे बिना आज्ञा पावेका तयागत प्रव्रजित नहीं करते ।”

‘भन्ते ! तो मैं बैसा कर्हूँगा जिसमें माता-पिता मुझे प्रबन्धाके लिए आज्ञा दें ।

तब राष्ट्रपाक कुङ्कुम-पुत्र व्यसक्तसे उठकर भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ माता-पिता थे, वहाँ गया । आकर माता पिताको कहा—

‘अम्मा ! तात ! जैसे जैसे मैं भगवान्‌के उपदेश किये जर्मको समझता हूँ वह ब्रह्म-विहित (= किये ब्रह्मकी तरह निर्मल है) प्रबन्ध-पाकन गृहमें बास करते हुए नहीं है । मैं प्रबन्धित होना चाहता हूँ । वरसे बेचर हो प्रबन्धित होनेके लिए मुझे आज्ञा हो ।’

ऐसा कहने पर राष्ट्रपाक कुङ्कुम-पुत्रके माता-पिताने राष्ट्रपाक को कहा—

‘तात राष्ट्रपाक ! तुम हमारे मित्र = मनाप सुखमें बने, सुखमें पके एककीते पुत्र हो । तात राष्ट्रपाक ! तुम दुःख कुङ्कुम भी नहीं आकते । अबको तात राष्ट्रपाक ! आजको पिता विचरो । आजते पीते विचरते कर्मोका परिमोग करते पुण्य करते रमय करो । हम तुम्हें प्रबन्धाके लिए आज्ञा न देंगे । मरने पर भी हम तुमसे के-बाह न होंगे तो फिर कैसे हम तुम्हें बिते भी प्रबन्धित होनेकी आज्ञा देंगे ?

दूसरी बार भी । तीसरी बार भी ।

तब राष्ट्रपाक कुङ्कुम-पुत्र माता-पिताके पास प्रबन्धा ( की आज्ञा ) को न वा नहीं नगी परतीपर पदा गया । —‘वहीं, मौर मरण होगा वा प्रबन्धा’ । तब माता-पिताने राष्ट्रपाक को कहा—

‘तात राष्ट्रपाक ! तुम हमारे मित्र एककीते पुत्र हो ।

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाक कुङ्कुम-पुत्र चुप रहा ।

दूसरी बार भी । तीसरी बार भी राष्ट्रपाक कुङ्कुम-पुत्र चुप रहा ।

तब राष्ट्रपाक-के माता-पिता जहाँ राष्ट्रपाक कुङ्कुम-पुत्रके मित्र के वहाँ गये । आकर कहा—

‘तातो ! वह राष्ट्रपाक कुङ्कुम-पुत्र नगी परतीपर पदा है—‘वहीं मरण होगा वा प्रबन्धा’ । आजको तातो ! जहाँ राष्ट्रपाक है वहाँ आजको । आकर राष्ट्रपाक-को कहे—सीम्ब राष्ट्रपाक ! तुम माता-पिताके मित्र एककीते पुत्र हो ।

तब राष्ट्रपाक के मित्र राष्ट्रपाक के माता-पिता ( की बात )को सुनकर जहाँ राष्ट्रपाक था वहाँ गये, आकर कहा—

‘सीम्ब राष्ट्रपाक ! तुम माता-पिताके मित्र एककीते पुत्र हो ।

ऐसा कहनेपर राष्ट्रपाक चुप रहा । दूसरी बार भी । तीसरी बार भी ।

तब राष्ट्रपाक के मित्र ( = सहायक )ने राष्ट्रपाक के माता-पिताको कहा—

‘अम्मा ! तात ! यह राष्ट्रपाक वहाँ नगी परतीपर पदा है—‘वहीं मौर मरण होगा वा प्रबन्धा’ । यदि तुम राष्ट्रपाक को अनुज्ञा न दोते तो वही उसका मरण होगा । यदि तुम आज्ञा दोगे प्रबन्धित हुये भी उसे देरोगे यदि राष्ट्रपाक प्रबन्धाके मरण न लया

सका तो उसकी और दूसरी क्या गति होगी ? यहाँ कीट जायेगा । ( अतः ) राष्ट्रपाक को प्रमत्ताकी अनुज्ञा हो ।<sup>१</sup>

“तातो ! हम राष्ट्रपाक की प्रमत्ताकी अनुज्ञा ( = स्वीकृति ) देते हैं, लेकिन प्रमत्त हो माता-पिताको दर्शन देना होगा ।

तब राष्ट्रपाल कुल-पुत्रके सहायक जाकर राष्ट्रपाक को बोले —

“सौम्य राष्ट्रपाक ! तू माता-पिताका प्रिय एकलौता पुत्र है । माता-पितासे प्रमत्ता के बिने तू अनुज्ञात है । लेकिन प्रमत्त हो माता-पिताको दर्शन देना होगा ।”

तब राष्ट्रपाक उठ कर एक महल कर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर एक ओर बैठे हुये भगवान्को कहा—

“भन्ते ! मैं माता-पितासे प्रमत्ताके लिए अनुज्ञात हूँ । मुझे भगवान् प्रमत्त करें ।

राष्ट्रपाल०ने भगवान्के पास प्रमत्ता और उपसम्पदा प्राप्त की । तब आधुप्यान् राष्ट्रपाकके उपसम्पन्न ( = मिष्ट ) होनेके बोधी ही बैरके बाद, आशामास उपसम्पन्न होनेपर, भगवान् बुद्धकोटितमें पनेच्छ विहार कर विहर भावन्ती थी उपर चारिकाके लिए एक पक्षे । अमसाः चारिका करते वहाँ भगवती थी वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् भावन्तीमें अनायदिहकके आराम बैठवचमें विहार करत थे । तब आधुप्यान् राष्ट्रपाक आत्म-संपत्ती हो विहरते वन्ती ही जिसके लिए कुल-पुत्र टीकसे बरसे बैर हो प्रमत्त होते हैं उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-ककको इसी अममें अब अभिज्ञान कर छाड्यात्पर कर प्राप्त कर विहरने की । ‘आति ( = अम ) क्षीय हो गई, ब्रह्मचर्य-पाक हो बुद्धा करता वा सो कर किना और वहाँ करनेको नहीं है’—आप किया । आधुप्यान् राष्ट्रपाक वहाँसे पक्ष हुये ।

तब आधुप्यान् राष्ट्रपाक वहाँ भगवान् थे “जा कर, भगवान्को अभिवादन कर” एक ओर बैठे भगवान्को बोले—

“भन्ते ! यदि भगवान् अनुज्ञा दें, तो मैं माता-पिताको दर्शन देना चाहता हूँ ।

तब भगवान्ने मनसे राष्ट्रपाकके मनके विचारका जावा । अब भगवान्ने अब किया राष्ट्रपाक कुल-पुत्र ( मिष्ट ) सिलाकी छोड़ गृहस्थ बननेके अवोम्य है तब भगवान्ने आधुप्यान् राष्ट्रपाकको कहा—

राष्ट्रपाक ! जिसका इस बख समय समसे, ( बीसा कर ) ।

तब आधुप्यान् राष्ट्रपाक आसनेसे उठ भगवान्को अभिवादन कर प्रक्षिप्त कर अबनासन संसाक ( = क्षिमे क्या ) पात्र भीर के विहर बुद्धकोटित वा उपर चारिकाके बिने एक पक्षे । अमसाः चारिका करते वहाँ बुद्ध-कोटित वा वहाँ पहुँचे । वहाँ आधुप्यान् राष्ट्रपाक बुद्धकोटितमें राजा कीरन्वके सिगाधीर ( नामक उद्यान )में विहार करते थे ।

तब आधुप्यान् राष्ट्रपाक पूर्वाह्न-भयप पहन कर पात्र-भीर क, बुद्ध-कोटितमें पिहके लिए प्रविष्ट हुये । बुद्धकोटितमें बिना उदरे पिहचार करते वहाँ अपने पिताका घर वा वहाँ पहुँचे । उस समय आधुप्यान् राष्ट्रपाकका पिता विककी शरघाघाममें बाध बनवा रहा



था। पिताने दूरमे ही आमुष्मान् राष्ट्रपालको आते देखा। बेगकर कहा—‘तब सु बर्षे भ्रमचक्रों मेरे शिव=महाप पर्वकारते पुत्रको प्रमदित कर दिया।’ तब आमुष्मान् राष्ट्रपालने अपने पिताके घरले न दान पाया न प्रत्याश्रयण (= इन्कार) बरिक् चर्कर ही पाई। उस समय आमुष्मान् राष्ट्रपालकी शक्ति-दासी पासी कुम्भाप (= दाक) केंकना चाहती थी। तब आमुष्मान् राष्ट्रपालने उस शक्ति-दासी (= शक्तिपत्नीकी दासी)को कहा—

मरिगी ! बदि पासी कुम्भापको केंकना चाहती है तो वहाँ मेरे पात्रमें जाके दे।

तब शक्ति-दासीने उध वाली कुम्भापको आमुष्मान् राष्ट्रपालके पात्रमें जाके उस समय वहाँ गैरी और स्वरको परिचय किया। तब शक्ति-दासी जहाँ आमुष्मान् राष्ट्रपालकी माता थी वहाँ गई। आकर आमुष्मान् राष्ट्रपालकी माताको बोली—

‘अरे ! जन्मा ॥ जानती हो आर्षपुत्र राष्ट्रपाल जाने हैं ?

‘जै ! बदि सब बोकती है ता अदासी होगी।’

तब आमुष्मान् राष्ट्रपालकी माता जहाँ आमुष्मान् राष्ट्रपालका पिता था वहाँ आकर बोली—

‘अरे ! गृहपति ॥ जाते हो, राष्ट्रपाल कुक-पुत्र आया है ?’

उस समय आमुष्मान् राष्ट्रपाल उस पासी कुम्भापको किसी भीतके सहारे ( बैठ कर ) आ रहे थे। आमुष्मान् राष्ट्रपालका पिता जहाँ आमुष्मान् राष्ट्रपाल थे वहाँ गया, आकर आमुष्मान् राष्ट्रपालको बोला—

‘तात राष्ट्रपाल ! बाली दाक जाती हो। तां तात राष्ट्रपाल ! बर बकना चाहिये।’

‘गृहपति ! बर डोक बेबर हुये हम प्रमदितोंका घर कहीं ? गृहपति ! हम बेबरे हैं। तुम्हारे घर गया था वहाँ न दान पाया न प्रत्याश्रयण बरिक् चर्कर ही पाई।’

‘आओ तात राष्ट्रपाल ! बर कहीं।’

‘बस गृहपति ! आज मैं भोजन कर चुका।’

‘तो तात राष्ट्रपाल ! ककय भोजन स्वीकार करो।’

आमुष्मान् राष्ट्रपालमें भोजन स्वीकार किया।

तब आमुष्मान् राष्ट्रपालका पिता आमुष्मान् राष्ट्रपालकी स्वीकृतिको जाब कर, जहाँ भयग्य घर था वहाँ आकर हिरण्य (= जसकी) सुचर्मकी पक्षी शक्ति करवा आदरते बैठका कर आमुष्मान् राष्ट्रपालकी शिपोंकी प्रमदित किया—

‘आओ बहूमी ! शिव अर्ककारोंसे अर्कृत हो पछिसे राष्ट्रपाल कुक-पुत्रकी तुम शिव = महाप होटी थीं तब अर्ककारोंसे अर्कृत होओ तब आमुष्मान् राष्ट्रपालके पिताने उस रातके भीत अनेपर अपने घरमें अन्तम खाक भोज्य तप्यार कर, आमुष्मान् राष्ट्रपालको कांठ सूक्ति किया—‘अक है तात राष्ट्रपाल ! भोजन तप्यार है। तब आमुष्मान् राष्ट्रपाल पूर्वाह्न-समय पहिन कर बाघ-बीबर के जहाँ उसके पिताका घर था वहाँ गये। आकर शिवे अन्तम पर बैठे। तब आमुष्मान् राष्ट्रपाल का पिता हिरण्य सुचर्मकी शक्तिको खेक कर आमुष्मान् राष्ट्रपालसे बोला—

‘तात राष्ट्रपाल ! यह ठीरी मन्दाय (= मातृक) धन है पिताका विजामदध

अलग है। तात राष्ट्रपाठ ! भोग भी भोग सकते हो पुण्य भी कर सकते हो। भाओ तुम तात राष्ट्रपाठ ! (मिहु) शिक्षा (ज्योश्या) को छोड़ गृहस्थ बन, भोगोंको भोगो और पुण्योंको करो।”

‘यदि गृहपति ! तू मेरी बात करे तो इस हिरण्य-सुवर्ण-सुंजका गादिपोंपर रत्नवा डुकाकर गंगा नदीकी तीरे घाटमें डाल दे। सो किस किए ? गृहपति ! इसके अरुण तुने शोक = परिवेष इः=अशुभवस्तु=अपावास न उत्पन्न होंगे।

तब आमुष्मान् राष्ट्रपाठकी मन्त्रके भार्या पैर पकड़ आमुष्मान् राष्ट्रपाठका बोकी—  
‘भार्यपुत्र ! कैसी यह अप्सराओं हैं, जिनके किए तुम महाचर्य पावन कर रहे हो ?’  
‘बहिनो ! हम अप्सरारामोंके किए महाचर्य वहीं पावन कर रहे हैं।

भगिनी (= बहिन) बहकर हमें भार्य पुत्र राष्ट्रपाठ पुकारते हैं (साथ) यह बर्षी मूर्छित हो गिर पड़ीं। तब आमुष्मान् राष्ट्रपाठने पिताको कहा—

“गृहपति ! यदि भोजन देना है तो दे। हमें क्या मठ दे।  
भोजन करो तात राष्ट्रपाठ ! भोजन उत्पार है।”

तब आमुष्मान् राष्ट्रपाठके पिताने उत्तम खाद्य-भोजनसे अपने हाथ आमुष्मान् राष्ट्रपाठको सतर्पित-संभारित किया। तब आमुष्मान् राष्ट्रपाठने भोजन कर पापसे हाथ हटा लड़े-कड़े यह गाथाये कही—

“देखो (इस) विचित्र बने विव (= अकार) को, ( जो ) अक्षर्य सन्धिय।

धातुर बहु-सकल्प ( है ); जिसकी स्थिति स्थिर (= प्रुव ) नहीं है ॥

देखो विचित्र बने रूपको ( जो ) मणि और कुण्डलके साथ

हृदी-चमकसे बैबा बन्धके साथ भोमता है ॥

सदापर को पैर अर्लक (= वीरर ) पोवा हुई है।

बाकक (= मूर्छ ) को मोहनमें समर्थ है पार गयेपीको नहीं।

बक पड़े केस, अंजन-बंकिव बच।

बाककको मोहनमें समर्थ है पार-गयेपीका नहीं।

वर्ष विचित्र अजन-बाकीकी मौति अर्भकूठ ( वह ) सदा सरीर।

बाककको ।

व्याघात्रे बाक देकाया ( किनु ) युग बाकमें नहीं भाया।

आराको आकर व्यापोंको रोये ( छोड़ ) जा रहा हुई ॥”

तब आमुष्मान् राष्ट्रपाठने कड़े कड़े इन गाथाओंको कह कर, बर्षी अरुणका मिगाधीर ( उजाध ) भा, बर्षी गये। जाकर एक घुसके तीरे जिनके विहारके लिए बेंटे।

तब राज्य कौरव्यम मिशय ( नामक माकी ) को संबोधित किया—

‘सीम्ब मिशय (= युगपु) ! मिगाधीरको साककरी यद्यम-भूमि=भुमि देलनेके लिए बाईंगा।’

मिशयने राज्य कौरव्य को “अप्य रेप ! बहकर मिगाधीरका साक करते एह

बुझके नीचे दिग्गके बिहारके किए बंद आयुष्मान् राष्ट्रपाकको देला । देखकर जहाँ राजा कीरप्य था वहाँ गया; जाकर कीरप्यको बोला—

“देव ! मिगाधीर साक है और वहाँ इसी पुष्ककोदि टाके अमकुकिफय राष्ट्रपाक कामक कुक-पुत्र जिसकी कि भाप हमेशा तारीफ करते रहते हैं, एक बुझके नीचे दिग्गके बिहारक किने पैदा है” ।

“तो सीम्य मिगाथ ! आज अब उदान भूमि जाने दो न न उन्हीं भाप राष्ट्रपाककी बपासना (=सारासंग) करेंगे ।

तब राजा कीरप्य जो कुछ काय माउब तन्कार था सबको ‘ठोकरो ! कह, ज्ये ज्ये नाम तुम्हारा (एक) अच्छे यानपर न न अच्छे अच्छे पानोंके साथ न के राजसी घरमे आयुष्मान् राष्ट्रपाकके दर्शनके किने बुझकुकाद्वितसे निकला । जिसकी वामकी घूमि भी उतना यामसे जा (किर) यामसे उतर पैदक ही छोटी मंडकीके साथ जहाँ आयुष्मान् राष्ट्रपाक थे, वहाँ गया । जाकर आयुष्मान् राष्ट्रपाकके साथ संमोदक किना (और) एक ओर गया हो गया । एक ओर न के हुये राजा कीरप्यने आयुष्मान् राष्ट्रपाकको कहा—

आप राष्ट्रपाक वहाँ गर्बाणे (=इ यत्वर) पर बैठें ।”

नहीं महाराज ! तुम बैठो मैं अपने आसबपर बसा हूँ ।

राजा कीरप्य किठे आसबपर बैठ गया । बैठ कर राजा करप्यने आयुष्मान् राष्ट्रपाकको कहा—

“हे राष्ट्रपाक ! वह चार हाथिचों (= पारितुम्भ) हैं जिन हाथिचों से कुछ कोई कोई पुरुष कंस-कमधु मु कथा कथापय बख पहिब घरमे बेबर हो प्रमजित होते हैं । कौनसे चार ? कर-हाथि, ब्याधि-हाथि भोग-हाथि शक्ति-हाथि ; कौन है हे राष्ट्रपाक बराहाथि ?

( १ ) हे राष्ट्रपाक ! कोई (पुरुष) बीर-वृद्ध-महत्कक = जन्मगत-व्यस-प्राप्त होता है । वह ऐसा सोचता है । मैं इस समय बीर-वृद्ध हूँ अब मेरे किने अयास मोर्गोंक प्राप्त करवा या प्राप्त भोगोंके भोगना सुकर नहीं ह । क्यों न मैं कंस-कमधु मु कथा कथापय बख पहिब प्रमजित हो जाऊँ । वह उस चार हाथिसे कुछ हो प्रमजित होता है । हे राष्ट्रपाक ! वह बराहाथि कही जाती है । लेकिन आप राष्ट्रपाक तथ्य बहुत काके केर्गोंवाके सुन्दर पीचमसे कुछ प्रथम बचसके हैं । सो आप राष्ट्रपाकको बराहाथि नहीं है । आप राष्ट्रपाक क्या अयकर बेककर सुनकर घरस बेबर हो प्रमजित हुये ?

( २ ) हे राष्ट्रपाक ! ब्याधि-हाथि क्या है ? हे राष्ट्रपाक ! कोई (पुरुष) रोगी हुआकी सकल बीमार होता है वह ऐसा सोचता है— मैं अब रोगी हुआकी सकल बीमार हूँ अब मेरे किने अयास भोगोंक प्राप्त । वह ब्याधि-हाथि कही जाती है ; लेकिन आप राष्ट्रपाक इस समय ब्याधि-रहित आतंक-रहित न अतिशील न अति इत्य सम-विपाकपाकी पाचवत्कि (=महती) सं कुछ है । सो आप राष्ट्रपाकको ब्याधि-हाथि नहीं है ?

( ३ ) हे राष्ट्रपाक ! भोग-हाथि क्या है ? हे राष्ट्रपाक ! कोई (पुरुष) आज महानवी महामोगकान् होता है । उसके वह भोग-कमधः सब हो जाते हैं । वह ऐसा सोचता है— मैं पहिडे जाऊँ या सो मेरे वह भोग कमधः अब हो गये; अब

मेरे किये अग्रस भोगोंका प्राप्त करवा । आप राष्ट्रपाठ तो इसी बुद्धकादितमें अग्रकुलिकके पुत्र है । तो आप राष्ट्रपाठको भोग हासि नहीं है ?

(४) हे राष्ट्रपाठ ! शक्ति-हासि क्या है । हे राष्ट्रपाठ ! किसी (पुरुष) के बहुतसे मित्र अमाल्य शक्ति (= शक्ति) साकोहित (= रक्तसंबंधी ) होते हैं । उसके वह शक्तिवाके क्रमसा अन्नको प्राप्त होते हैं । वह पूसा सोचता है—पहिले मेरे बहुतसे मित्र-अमाल्य शक्ति विराद्री की वह मेरी शक्तिवाके क्रमसा अन्न हो गये । अब मेरे किये अग्रस भोगोंका प्राप्त करवा । लेकिन आप राष्ट्रपाठके तो इसी बुद्धकादितमें बहुतसे मित्र-अमाल्य शक्ति विराद्री हैं । तो आप राष्ट्रपाठको शक्ति-हासि नहीं है । आप राष्ट्रपाठ क्या जानकर देखकर सुबकर बरसे बेपर हो प्रमत्तित हुये ? हे राष्ट्रपाठ ! यह बार हासियां हैं, जिन हासियोंसे पुत्र कोई कोई (पुरुष) केश-कमल, मुँहा कापाय-बल पहिन परस बेपर हो प्रमत्तित होते हैं वह आप राष्ट्रपाठको नहीं है । आप राष्ट्रपाठ क्या जानकर देखकर सुबकर बरसे बेपर हो प्रमत्तित हुये ?

“महाराज ! उन मगवान् जाननहार देखनहार अर्थात् सत्यवत्सपुत्रके बार धर्म उद्देश्य कहे हैं जिनको जानकर देखकर सुबकर मैं धरसे बेपर हो प्रमत्तित हुआ । कानसे बार ? (१) यह लोक (असंसार) अशुभ (ई) उपनीत हो रहा है उस मगवान् ने प्रथम धर्म-उद्देश्य कहा है जिसको देखकर मैं प्रमत्तित हुआ । (२) लोक ज्ञान-रहित आस्थासन रहित है । (३) लोक अपना नहीं है सब अज्ञानर काता है । (४) लोक कमतीबाका लुप्यका दास है । वह महाराज ! उन मगवान् ने बार धर्म-उद्देश्य कहे हैं जिनको जान कर मैं प्रमत्तित हुआ ।

उपनीत हो रहा (= छे जाया जा रहा ) है कांक अशुभ है आप राष्ट्रपाठके इस कथनका धर्म कम जानता चाहिये ?

‘तो क्या मानते हो महाराज ! मैं तुम (कमी) बीस वर्षके पचीस-वषके ? ( अब तुम ) सभाममें हाथीकी सभारामें होसिपार घोष का सपारीमें होसिपार रक्की सभारीमें होसिपार धनुषमें होसिपार लकनारमें होसिपार उरसे बकिइ बाहुसे बकिइ ये ?”

“बकि हे राष्ट्रपाठ ! मानो एक समय कदिमान् हो मैं अपने बकके समाज (किसीको), देखता ही न था ।

तो क्या मानते हो महाराज ! आज सभाममें तुम बीसे ही उद-बकी बाहु-बकी सामर्थ्य-बुद्ध हो ?

‘नहीं हे राष्ट्रपाठ ! इस बक्त मैं बीस-बुद्ध हूँ जसि-वर्षकी मेरी उम्र है । बकि एक समय हे राष्ट्रपाठ ! मैं ‘यहां तक पर (= पाह ) रक् ( विचार ) दूसरे ( समय ) जायाई ही (बुर तक) रख सकता हूँ ।”

‘महाराज ! उन मगवान् ने इसीको सोच कर कहा—‘उपनीत हो रहा है लोक अशुभ है जिसको जानकर मैं प्रमत्तित हुआ ।

“जाइवर्ष ! हे राष्ट्रपाठ ! अशुभ ! हे राष्ट्रपाठ ! जो वह उन मगवान् का प्रमत्तित— उपनीत हो रहा है (अन्न खाया जा रहा है) लोक अशुभ है ।’ हे राष्ट्रपाठ !

इस राज-कुक्षमें इस्ति-अप (काच-समुदाय) भी हैं, अथवा आप भी रच-अप भी पदाति-अप भी हो हमारी आपत्तिबोधमें सुदृशके लिए हैं। 'कोक ब्राल-रहित आस्थासन-रहित है' यह (जो) आप राष्ट्रपाकने कहा ? हे राष्ट्रपाक ! इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?

"तो क्या मानते हो महाराज ! हे तुम्हें कोई आनुवायिक (= साथ रहनेवाली) बीमारी ?"

"हे राष्ट्रपाक ! मुझे आनुवायिक वापुरोग है। बल्कि एकबार तो मित्र-अमात्य जाति-बिराद्री घर कर लयी थी — 'अथ राजा कौरव्य मरैगा'। 'अथ राजा कौरव्य मरैगा।

"तो क्या मानते हो महाराज ! क्या तुमने मित्र-अमात्यों जाति-बिराद्रीको पाया— 'आयें आप मेरे मित्र-अमात्य सभी साथ (= साथी) इस पीड़ाकी बॉट में, जिसमें मैं हल्की पीड़ा पाऊँ या तुमने ही उस वैद्यको सहा ?

"राष्ट्रपाक ! उन मित्र अमात्यों को मैंने नहीं पाया बल्कि मैं ही उस वैद्यको सहा था।"

"महाराज ! इसीको सोचकर उन भगवान् ने :

आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाक !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाक !! । हे राष्ट्रपाक ! इस राजकुक्षमें बहुतसा हिरण्य (= स्वर्ण) मुचर्षं भूमि और आकाशमें है। 'कोक अपना नहीं ( अ-सक ) है सब छोड़कर जाना है यह आप राष्ट्रपाकने कहा। हे राष्ट्रपाक ! इस कथनका अर्थ कैसे जानना चाहिये ?

"तो क्या मानते हो महाराज ! जैसे तुम अथकस पाँच कामगुणोंसे पुच्छ = सर्पगी-मूल विचरते हो वाह ( अम्मान्तर ) में भी तुम (उन्हें) पाओगे— 'ऐसेही मैं पाँच काम गुणोंसे पुच्छ विचरूँ' या दूसरे इस भोगको पावेंगे, और तुम अपने कर्मानुसार जाओगे ?

राष्ट्रपाक ! कम मैं इस एक पाँच काम-गुणोंसे पुच्छ विचरता हूँ याप (= अम्मान्तर ) में भी ऐसेही मैं इस काम-गुणोंस पुच्छ विचरने न पाऊँगा। बल्कि दूसरे इस भोगको जेंगे मैं अपने कर्मानुसार पाऊँगा।"

"महाराज इसीको सोचकर उन भगवान् ने ।"

आश्चर्य ! हे राष्ट्रपाक !! अद्भुत ! हे राष्ट्रपाक !! । 'कोक कामतीवाका तुच्छका दास है यह आप राष्ट्रपाकने जो कहा। हे राष्ट्रपाक ! इस कथनका कैसे अर्थ समझना चाहिये ?

"तो क्या मानते हो महाराज ! समृद्ध कुब ( देश ) का स्वामित्व कर रहे हो ?"

"हाँ हे राष्ट्रपाक ! समृद्ध कुब का स्वामित्व कर रहा हूँ।"

"तो क्या मानते हो महाराज ! तुम्हारा एक अद्वेष विधास-यात्र पुण्य पूर्व दिशासे जाये। यह तुम्हारे पास आकर पूसा बोके— 'हे महाराज ! जाते हो मैं पूर्व-दिशासे जा रहा हूँ'। वहाँ मैंने बहुत समृद्ध-रक्षित बहुत जनोंवाका मनुष्योंसे आकीर्ण जनपद (= देश) देना। वहाँ बहुत इतिहास अथकस रथकस पति (= रथक)-काव है। वहाँ बहुत रथ युवाकम है। वहाँ बहुत सा इत्थिम अहत्थिम हिरण्य मुचर्षं है। वहाँ बहुत ही चिर्षा प्राप्त होती है। यह इतनी ही सेनाय औता जा सकता है, जीतिने महाराज ! तो क्या करोगे ?"

“हे राष्ट्रपाल ! उमें भी बतकर में स्वामित्व करूँगा ।

“तो क्या मानते हो महाराज ! विभासपात्र पुरुष पश्चिम-विशास आये ।” ।

“उत्तर विशासे ।” । ‘दक्षिण विशासे । ।

‘महाराज ! इसीको छोट कर उन मगधाब् मे ।’

‘आश्रय ! हे राष्ट्रपाल !! अशुभ ! हे राष्ट्रपाल !!

आशुभ्याम् राष्ट्रपालने यह कहा । यह कहकर फिर वह भी कहा—

‘लोकमें जनबान् मनुष्योंको देखता हूँ (जो) बिल पाकर मोहसे दान नहीं करत ।

ल्येभी ही धनका संघप करते हैं तथा भीर भी अधिक कामों (=भोगों)की चाह करते हैं ॥ १७ ॥

‘राजा बलपूर्वक पृथ्वीको भीत सागर पर्यन्त महीपर शासन करते । समुद्रके इस

पारसे मृत न हो समुद्रक उस पारको भी चाहता है ॥ १ ॥

‘राजाही की मूर्ति दूसरे बहुतसे पुरुष भी तुष्णा-रहित न हो मरण पाते हैं ।

कमतीबाल होकरही शरीर छाड़ते हैं लोकमें (किमार्थ) कामोंस मृति नहीं है ॥ ३ ॥

‘जाति बाल विपरीतकर कम्प करती है और कर्तुा ह ‘हाथ हमारा मर गया

बधस डोंकर उस लज्जाकर भितापर रख कर जजा देते हैं ॥ ७ ॥

‘वह दुःख हूँचा जाता भोगोंका छोड़ एक बखक साम जकापा जाता है ।

मरनेवालेक जाति-मित्र = सहाय रहक नहीं होते ॥ ५ ॥

‘दावान् उनके जनको इरते हैं प्राणी तो नहीं कर्म है (वहाँ) जाता है । मरते

हुएके पीछे पुत्र द्वारा धन धार राज् नहीं व्यता ॥ ६ ॥

‘यव द्वारा समी आयु नहीं पा सकता, भीर व बिल द्वारा जराको नासकर

सकता है । भीरोंन इस जीवनको स्वल्प भ शापठ भगुर कहा है ॥ ७ ॥

‘बही जद द्रिभ्र (काम) - स्वसोंको हूते हैं बाक भीर भीर (=पंडित) भी

बसेही हैं । बाल (=मूर्ख) मूर्खतास विचलित हो पयता है किन्तु भीर दरवा-दृष्ट हो नहीं

विचलित जाता ॥ ८ ॥

‘इमकिये जन्य प्रजाही भेद है जिनसे कि (तरब) विधयको प्राप्त होता है । सुख

न हावेम वह माहृषा आचायमने (पक्षे) पाप कर्मोंको करते हैं ॥ ९ ॥

(बह) लगातार स्वसार (=सधमागर) में पदकर धर्म धार परकोकको पाता है ।

मल्प प्रजावान् कसपर विशास कर गर्भ भीर परकोकको पाता रहता है ॥ १ ॥

सैधक ठपर पकषा गया पापी चोर, जैसे अपने काममें माता जाता है । इमी प्रकार

पापी जनता मर कर दूसरे लोकमें अपने कामसे मारी जाती ह ॥ ११ ॥

‘विभिन्न भगुर मनोरम काम (=भोग) बाबा रूपसे बिलको मयत है । इमकिये

काम भोगोंक दुष्परिणामको देखकर हे राज् ! मैं प्रव्रजिन हुआ हूँ ॥ १२ ॥

‘बुद्धके कण्ठी मूर्ति तदन धार बुद्ध मनुष्य शरीर छाड़कर गिरत हैं । ऐमभी देख

कर प्रव्रजिन हुआ, (जनोंक) न गिरनेबाक्य भिभुपन (=आमण्य) ही भेद है ॥ १३ ॥

× × × ×

( १ )

सुन्दरी-सुच । कृशागौतमी-घरित । ब्राह्मण भम्मिय-सुच ।

( इ पू ५०५-४४७ ) ।

पेसा मैंने सुना— एक समय भगवान् भावस्तीमें अनाथपिंडकके आराम जेतवणमें बिहार करते थे ।

इस समय भगवान् सत्कृत = गुणकृत = माणित = पूजित = अपचित ये चीवर विड पाठ छवनासक अमन-अत्यप भेषणके काशी (= पातेबाड़े) थे । मिथु-संब भी पूजित चीवर का काशी था । दूसरे तीर्थ (= पंच ) बाड़े परित्राजक असत्कृत = अ-गुणकृत = अ-माणित = अ-पूजित = अ-अपचित थे, चीवर के अ-काशी थे । तब वह तैर्बिक भगवान् धीर मिथु सबके सत्कारको न सहनकर वहाँ सुन्दरी परित्राजिका भी वहाँ गये । बाकर सुन्दरी परित्राजिकाकी बोके—

“मगिनी ! क्या शातिकी मज्जाई करना चाहती हो ?”

“आर्यों ! क्या मैं करूँ ? मैं क्या नहीं कर सकती ? शातिके किये मैंने तो जीवण ही से विधा है ।

‘तो मगिनी ! बराबर जेतवण जाया करो ।

“अच्छ आर्यों !” कह सुन्दरी परित्राजिका बराबर जेतवण जाने लगी । अब अब अन्य-तैर्बिक परित्राजकोंके आना—“बहुत कोयोंके सुन्दरी परित्राजिकाकी बराबर जेतवण करते देख किना । तब उसे आरसे मारकर उन्होंने वहाँ जेतवणकी लार्ईमें कुर्जा छोड़कर तथा दिपा, और वहाँ राजा प्रसेनजित् कोसक था वहाँ गये । बाकर प्रसेनजित् कोसकको बोके—

“महाराज ! जो वह सुन्दरी परित्राजिका थी वह इमैं दिखान् नहीं पक रही है ।”

‘तुम्हें कहाँ सम्येह है ?’

‘जेतवणमें महाराज !’

“तो जेतवणमें लजाया करो ।”

तब वह अन्य-तैर्बिक परित्राजक जेतवणमें उसे लजास करते, एरोदे परित्रा-रूपसे विकरककर चारपाईपर रख, भावस्तीमें केडा ( एक ) मज्जम ( नूमरी ) सड़कपर चाराहेरे चाराहेपर बाकर कोगोंको कहने लगे—

‘हेलो आर्यों ! शाक्य-पुत्रीय अममोंका कर्म !! वह शाक्यपुत्रीय अमल निर्बंज बुद्धीक पापी मिथ्या-बारी, अकलबारी हैं । यह अर्म-बारी अम-बारी मत्तबारी धीकवान् पुत्रवामा होनेका दावा करते हैं । इनके आमण्य नहीं बाह्यण्य नहीं । कर्में इन्हें आमण्य कहाँसे इन्हें बाह्यण्य ? वह आमण्य ( अर्मण्यवासीके अर्म )म पतित हैं वह बाह्यण्य ( बाह्यण्य-यम )म पतित हैं । कैम पुत्रप पुत्रक काम करक धीको बावस मार डाडेगा !

उस समय आबस्तीमें लोग मिथुनों को देखकर अ-सम्य पदम (अकरी) बचनोंसे धिक्कारते, चट्कारते कोप करते, पीड़ित करते थे।—

‘यह शाक्यपुत्रीय भगवत् विद्वान् ।

तब बहुतसे मिथु रक्षाई समर्थ पहिचकर पात्र-बीचर के आबस्तीमें विद्वान् मिथे गये। आबस्तीमें विद्वान्-कार करके भोजनके साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। आकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बह बोले—

‘भन्ते ! इस समय आबस्तीमें लोग मिथुनोंको देखकर अ-सम्य पदम बचनोंसे धिक्कारते हैं—‘यह शाक्यपुत्रीय भगवत् विद्वान् ।’

मिथुनों ! यह सप्त रैर तक नहीं रहैगा । सप्ताह ही भर रहगा सप्ताह बीतनेपर अन्तर्धान हो जायगा। तो मिथुनों ! जो लोग मिथुनोंको देखकर अ-सम्य बचनोंसे धिक्कारते हैं उन्हें इस गाथासे तुम ज्ञान हो—

‘अ मूढ (= अ-बुद्ध) -वापी बरकको जाता है, और वह भी जो कि करके ‘वहीं’ किया करता है। दोनों ही बीचकर्मकाके मनुष्य मरकर परकीकर्म ममान होते हैं।

तब मिथु भगवान्के पाससे इस गाथाको सीपकर जो मनुष्य मिथुनोंको देखकर अ-सम्य बचनोंसे धिक्कारते थे उन मनुष्योंको इस गाथासे ज्ञान देते थे—

‘अमूढ-वापी’ ।

योगीकी दुआ—

‘यह शाक्य पुत्रीय भगवत् अ-कारक हैं इन्होंने नहीं किया। यह शाक्यपुत्रीय भगवत् सपन कर रहे हैं।’

यह सप्त रैर तक न रहा सप्ताह भर रहा सप्ताह बीतनेपर अन्तर्धान होगा। तब बहुतसे मिथु जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। आकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बह भगवान्को बोले—

‘आश्चर्य ! भन्ते ! अद्भुत ! भन्ते ! भन्ते ! भगवान्कर सुनायित (अटीक कहा)

१ तुलना करो जागे भी ।

२ अ क ‘राजाने सुन्दरीको मारा उनके पता क्याकेको आरमियोंको दुकूम दिया। तब वह ( मारनेवाला ) बर्मास (= धूर्त ) उन कार्यापजोंमें शतरु भीते जायनेमें शगद बदे। उनमेंस णके एकको कहा—

“तु सुन्दरीको बुर ही प्रहारमे मारकर मान्नाके कूड़ेके भीतर फेंक इसमे मिने पैसेये सुरा पीता है ? हो ! हो ! !”

राज-पुत्रोंने उस मुन उन बर्मासोंको पकड़कर राजाको दिगकथा। राजाने पूछा— “तुमने उसे मारा ?” “हाँ रोप !” “कितने मरवाया ?” “रोप ! तुमने तीर्थकोने” राजाने मिथुनोंको बुझाकर उस बातको स्वीकार करवा आज्ञा दी— “जानो नगरमें वह कदत पूजा—” उन भगवत् गीतमकी बर्मासी करके किन बह सुन्दरी हमने मरवाई गाथम वा गौतम भावकीका साथ नहीं है हमारा ही रोप है।

उन्होंने क्या किया ।



कैसा है—मिथुनो वह शम्भू देर तक वहीं होगा । मन्ते ! वह शम्भू अन्तर्धान हो गया ।

तब भगवान् ने इस बातका ज्ञान उसी समय वह उपान कहा —

“अ-संजमी अब बचनसे बेफले हैं जैसे संग्राममें सजुओं द्वारा कुञ्जर ।  
अ-सुख-विरत मिथुनो कहूँ बाक्य सुनकर मी मर्तमें व काना चाहिये ॥”

कृष्ण गौतमी-चरित ।

‘इस अंतिम अम्ममें ( कृष्ण गौतमी ) दुर्गांत निर्धन मह भद्रि-कुम्भमें उत्पन्न हुई,  
और समय कुम्भमें गई ॥१॥

‘निर्धन ( समस्तकर ) समी मेरा तिरस्कार करते थे ।

अब मैंने ( पुत्र ) प्रसव किया तो समयको भिन्न हुई ॥२॥

वह बच्चा सुन्दर कोमलका सुन्दरमें पका था ।

वह प्राण-समाप्त मुझे भिन्न था तब वह पमकोकको सिंधारा ॥३॥

सो मैं कृष्ण पीत-वस्त्र अमु-नेत्र रोती हुई

मरे मुर्देको देखकर विकल्प करती बूम रही थी ॥४॥

तब एकक कहनसे उत्तम-मिषा ( = पुत्र ) के पास जा ।

कहा—‘पुत्र-संजीवन औपच मुझे हो ॥५॥

‘जिस घरमें मरे वहीं है वहाँसे सिद्धार्थक ( = पीकी सरसों ) का ।

शाकापर कगावैमें चतुर जिव ( पुत्र ) व वह कहा ॥६॥

तब मैंने धावन्तीमें जाकर बैसा कर व पाया ।

कहाँसे फिर सिद्धार्थक ( काटी ) ? तब मुझे होना भाया ॥ ७ ॥

मुर्देको छोड़कर मैं कोक-बाणकक पास गई ।

नूरसे ही मुझे देखकर, मजुर-स्वरबाणे ( भगवान् ) ने कहा ॥८॥

‘हाति-धाम ( = उदय-व्यव ) को न देख जो सी वर्ष जीये ।

( उससे ) हाति-कामको देखकर एक विलका जीवा ही उत्तम दे ॥९॥

( यह ) व प्रामका वम व नियमक धर्म नहीं पुरु कुकका धर्म है ।

देवों सहित सारे कोकक वही धर्म है जो कि वह अकल्पता” ॥१०॥

इस गाथाओंको सुनते ही मेरी चर्मकी धौंक सुक गई ।

तब मैं धर्मको जाकर बैपर हो प्रमथित हुई ॥११॥

इस प्रकार प्रयत्नित हुई जिव ( = पुत्र ) के सासनको पाकक करती ।

न चिरकाक ही मैं अर्हत्पकका प्राप्त हुई ॥१२॥

+

+

+

+

प्राण्यण धर्मिय-सुख

वेसा मैंने सुना—एक समय भगवान् धावन्तीमें विहार करतो थे ।

१ मेरी अज्ञानान मृतीव भावपार । २ सुचरितारा २ : ७ ।

तब बहूतसे 'कोसकवामी शीर्ष' = बृह = महस्कन्ध = अश्वत्थ = वयःप्राप्त ब्राह्मण महासाह ( = महावैभव-सम्पन्न ) बहो भगवान् मे बहो गये । अफर भगवान् के साथ संमोहन कर एक ओर बैठ पाये । एक ओर बटे उन ब्राह्मण महासाहोंमें भगवान् को कहा—

“हे शीतम ! इस समय ब्राह्मण पुराने ब्राह्मणोंके ब्राह्मण-धर्म पर (अरुण) दिखाई पड़ते हैं न ?”

‘ब्राह्मणों ! इस समय ब्राह्मण ब्राह्मण-धर्मपर ( जाकर ) नहीं दिखाई पड़ते ।

“अच्छा हो आप शीतम हमें पुराने ब्राह्मणोंके ब्राह्मण-धर्मपर भाषण कर, यदि आप शीतमको कष्ट न हो ।”

“तो ब्राह्मणों ! सुनो अच्छी तरह मन्त्रों करो कहता हूँ ।”

‘अच्छा भो !”

मन्त्रपाठने यह कहा— ‘पुराने ऋषि संबन्धी ( = संख्यायाम् ) आर तपस्वी होते थे ।

‘पौत्र धर्म-गुणों ( = भोगों ) को छोड़कर ( वह ) अपना धर्म ( = शास्त्रधर्म ) करते थे १५ ( इस समय ) ब्राह्मणोंको पशु न थे न विश्व ( = अश्वत्थ ) न अवाह ।

यह स्वाध्याय ( कर्मा ) ब्रह्म-आत्म वाके थे वह ब्रह्म-विधिमें पाठन करते थे ॥१६॥

उनके किन भी तपवार करके द्वारपर अश्वत्थ मोक्ष रखा रहता था ।

( शपथ कोष ) उसको जोखनेपर देनके योग्य समझते थे ।

बाबा रंगके बस्त्रों धारण और भाषणों ( = अतिवि शक्तार्थों ) से ।

समुद्र जलपद राष्ट्र उन ब्राह्मणोंको नमस्कार करते थे ॥१७॥

ब्राह्मण धर्म-धर्म अ-धर्म धर्मसे रक्षित थे ।

कुल-द्वारोंपर उन्हें कोई कभी नहीं रोकता था ॥१८॥

यह जड़ताकीस वर्ष तक कर्मभार ब्रह्मचर्य पाठन करते थे ।

द्वन्द्वधर्म ब्राह्मण विद्या और अश्वत्थकी जोड़ करते थे ॥१९॥

न ब्राह्मण बृसरी ( स्त्री ) के पास जाते थे न भावां पुरीषते थे ।

परस्पर प्रेमवाकीके साथ ही संगम-सहवास करनेको करते थे ॥२०॥

अनुष्ठाकको छोड़कर, ब्राह्मणोंके विधि ( समय ) में

ब्राह्मण कभी मीथुन धर्म नहीं सेवन करते थे ॥२१॥

( वह ) ब्रह्मचर्य हीके अ-अनुष्ठाका मुहुता तप

सुरति बर्हिसा और शक्ति ( = क्षमा ) की प्रार्थना करते थे ॥२२॥

जो उनमें सर्वोत्तम दृढ-पराक्रमी ब्रह्म था ।

उसने स्वधर्म मी मीथुन-धर्मको सेवन नहीं किया ॥२३॥

उसके ब्रह्मके पीछे चलते हुए पंडितजन ।

ब्रह्मचर्य हीके और सान्निधी प्रार्थना करते थे ॥२४॥

तब तदुक्त शपथ ब्रह्म ही और केवलकी मॉगकर ।

धर्मके साथ निष्ठाकर, तब ब्रह्म करते थे ॥

१ अत्राप्रायः, गौडा बहुराष्ट्र बाराहकीक जिह्व तथा भास पासः विष्णो-कुण्ड भाग ।

पञ्च उपस्थित होनेपर यह गाथको नहीं मारते थे ॥१२॥

ऐसे माता पिता भ्राता और दूसरे बन्धु हैं ।

( बैसही ) गाथें हमारी परम-मित्र हैं विवर्ण कि औप्य उत्पन्न होते हैं ॥१३॥

यह लज-दा दक-दा बर्ण-दा तथा मुच-दा ( हैं ) ।

इस बातको जानकर यह गाथको नहीं मारते थे ॥१४॥

सुकुमार महाकाय 'वर्ण-वान् पशुपती

ब्राह्मण्य इन बर्णोंके साथ, कथञ्च-मकर्णभ्यमें तत्पर हो,

अतक कोकमें वर्तमान थे ततक यह प्रजा सुकसे रही ॥१५॥

धर्मः धर्मः राजाकी सम्पत्ति—समर्णकृत क्षिणों,

उत्तम भोजे लुते सुन्दर रचना-वाकं विचित्र सिद्धार्थयुक्त रवों

अर्णोंमें बँडे मकरों और कोठों—की बेककर उदमें उदकापन आना ॥१६ ॥१७॥

गोमंडकसे आकीर्ण सुन्दर-धी-गल-सहित ।

बड़े सामुख भोगीका ब्राह्मणोंमें कोम किया ॥१८॥

तय यह मंत्रोंको रचकर इन्द्राकु ( = मोहाक ) के पास गये ।

'तु बहुत धन-आम्बनाक्य है, तेरे पास विच बहुत है पञ्च कर ॥१९॥

ब्राह्मणोंसे बैठावे जानेपर तब रचयन राजाने

'अक-मेध' 'पुदप-मेध' 'वाक्येव' 'निरर्यक' ( =सर्वमेध )

एक एक बखको करके ब्राह्मणोंको धन दिया ॥२०॥

गाथें सपन, बख अर्णकृत क्षिणों

उत्तम-भोजे-लुते सुन्दर रचना-वाकं विचित्र सिद्धार्थयुक्त रच अर्णोंमें बँडे मकरों और कोठे,

—नावा बान्धोंसे भरकर ब्राह्मणोंको धन दिया ॥२१ २२॥

अर्णोंमें धन संग्रह करवा पसन्द किया ।

कोममें पड़े उब ( ब्राह्मणों ) की 'गृण्णा' और भी बड़ी ।

यह मंत्र रचकर फिर इन्द्राकुके पास गये ॥२३॥

जसे पायी श्रुतिषी, हिरण्य धन धान्य है ।

ऐसेही गाथें मनुष्योंके किये हैं यह प्राणिषीकी परिष्कार ( =उपमोग-वस्तु ) हैं

तेरे पास बहुत धन है बख कर बहुत विच है बख कर ॥२४॥

तब ब्राह्मणोंसे प्रेरित होकर रचयन राजाने ।

अनेक सौ हजार धानें बखमें हजल की ॥२५॥

( जो ) व पैसे व सींगसे न किसी ( अंग ) से ही मारती है ।

१ अ क "सुवर्ण-वर्ण" ।

२ अ-क- 'इय जाति पाँच घोरस गाथों के स्वादिष्ट हैं इतका मौस मित्रव और भी स्वादिष्ट होगा । इस प्रकार मौसके किये 'गृण्णा' और भी बड़ी । (तय अर्णोंमें) सीखा—'यदि हम मारकर खायेंगे तो बिल्दाके पास होंगे क्यों न मंत्र रचें' । तय फिर देहको तोड़-मरोड़कर उसको अशुक्ल मंत्र बना यह इन्द्राकु राजाने पास फिर गये" ।

( जो ) गावें भेदके समान द्विय और यद्वे मर दूय देवेवासी हैं ।

उन्हें सींगसे पकड़कर राज्याये हाकसे मारा ॥२९॥

तब देवता पितर इन्द्र अमुर राजस

किष्का उठे 'अधर्म ( बुधा ) जो गापके ऊपर सख गिरा ॥२०॥

पहिले तीव ही रोग थे—इष्का धुषा और बरा ।

पशुकी हिंसा ( अस्मार्म ) से अहान्ने हो गये ॥२४॥

यह अधर्म पुराने ( धर्म ) बंधोंसे रहित था ।

पावक ( =तुरोहित ) निर्दोषको मारते हैं धर्मका अर्थस करत हैं ॥२९॥

इस प्रकार यह पुराने विज्ञोंसे विभिन्न बीच कर्म है ।

जोग जहाँ ऐस पावकको पाते हैं, मित्रा करते हैं ॥३ ॥

इस प्रकार धर्मके विगाधनेपर दूध और बदन पूर गये ।

अग्नि भी छिन्न-मिन्न हो गये, भार्वा पतिक्रम अपमान करने लगी ॥३५॥

अग्नि महा-बंधु ( अमाहात्म-जातिके ) और जो दूसरे गोत्रस रक्षित थे ।

जातिवादका नाशकर, ( समी ) स्वेष्टाचारी हो गये ॥२२॥ '

ऐसा कहतेपर ब्राह्मण महासाकोंके भगवान्की यह कहा—

अधर्म ! हे गौतम ! जन्मुत ! हे गातम ! यह इस ज्ञाप गातमकी सरस

बात है धर्म नार भिक्षुसंबकी भी । आजमे ज्ञाप गौतम हमें अंधकि-बद्ध सरलागत  
उपासक समझे ।

+ + + +

( • )

### अंगुलिमान्-सुत ( ई पू ५०४ ) ।

"ऐसा ईषि सुता—एक समय भगवान् भावस्तीमें अमाथापिंडकके ध्यराम  
जेतवनमें बिहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसन्नजित्के राज्यमें द्रम लोहित-वाणि मार-काह-मंछम प्राभि-  
पूतोंम दबा-रहित अंगुलिमान् नामक डाकू ( = चोर ) था । उसने ग्रामोंको भी ज-ग्राम कर  
दिवा था विगमोंको भी अ-विगम जन-पदकोभी ज बचपद । तब भगवान् पूर्वाह्न समय  
पहिलकर पात्र-बीबरके भावस्तीमें पिंडके किए मविह हुए । आचलीमें पिंड-धर करके भोजन  
बाद् शपकासन संभाल, पात्र-बीबर के जहाँ डाकू अंगुलि मान् रहता था उसी रास्त चल ।  
गोपाककों पशुपाककों कुपकों राहर्गारोंम भगवान्को जिवर डाकू अंगुलि-माल या उसी  
रास्तेपर ( जाते ) हुये देखा । देखकर भगवान्का यह कहा—

'मत धम्म ! इस रास्ते जाया । इस मार्गमें अमज ! अंगुलि-माल नामक डाकू  
रहता है । उसने ग्रामोंको भी ज ग्राम । यह अनुष्णोंम मार मारकर अंगुलिपौर्षी माला

१ श्रीबीसर्षी ( ई पू ५ ७ ) वर्षावास पूर्वाशाममें पचीसर्षी ( ई पू ५ ३ )  
जेतवनमें । २ म वि १। ४: ६ ।

पहचता है। इस मार्गपर भ्रमण ! बीस पुरुष तीन पुरुष चालीस पचास पुरुष तक इकट्ठा होकर जाते हैं वह भी अंगुलिमाकके हाथमें पक जाते हैं।”

ऐसा कल्पेपर भगवान् मान धारणकर चलते रहे।

दूसरी बार भी गोपाकक्यों । तीसरी बार भी गोपाकक्यों ।

बल्कि अंगुलिमाकने कुरने ही भगवान्को आते देखा। इतकर उसको यह हुआ—  
‘आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी (= भो) !! इस रास्ते इस पुरुष भी पचास पुरुष भी इकट्ठा होकर चलते हैं, वह भी मेरे हाथमें पक जाते हैं। और वह भ्रमण अकेला = अहितीय मानो मेरा तिरस्कार करता आ रहा है। क्यों व मैं इस भ्रमणको जानसे मार हूँ। तब बल्कि अंगुलि-माक हाल-तक्यार (= अस्ति-व्यस) लेकर तीर प्रनुप क्या भगवान्क पीछे चला। तब भगवान्ने इस प्रकारका बोग-इक प्रकट किया कि डाकू अंगुलिमाक मामूली चाकसे चलते भगवान्को सारे बोगसे दौड़कर मी व पा सकता था। तब डाकू अंगुलिमाकका यह हुआ—  
‘आश्चर्य है जी ! अद्भुत है जी !! मैं पहिलेवांफते हुये हाथीको भी पीछा करके पकड़ लेता था, बाघको भी रक्को भी सुगको भी पीछा करके पकड़ लेता था। किन्तु मामूली चाकसे चलते इस भ्रमणकी सारे बोगसे दौड़कर मी वहीं पा सकता हूँ। तब होकर भगवान्को बोला—

“कहा रह भ्रमण !”

“मैं स्थित (=कहा) हूँ अंगुलिमाक ! तू मी स्थित हो ।”

तब डाकू अंगुलि माकको यह हुआ—‘यह शाक्य-पुत्रीय भ्रमण सत्यवादी सत्य प्रतिष्ठा (होते हैं); किन्तु यह भ्रमण जाते हुये भी ऐसा कहता है—‘मैं स्थित हूँ’। क्यों व मैं इस भ्रमणको हूँ’। तब अंगुलिमाकने गाथाओंमें भगवान्को कहा—

“भ्रमण ! जात हुये स्थित हूँ । कहता है मुझ कपि हुयेको अस्थित कहता है।

भ्रमण ! तुझे वह बात पड़ता हूँ ‘कैसे तू स्थित और मैं अस्थित हूँ ?’ ॥१॥

“अंगुलिमाक ! सारे प्राणियोंके प्रति बंध छोड़नेसे मैं सर्वथा स्थित हूँ।

तू प्राणियोंमें अ-संबन्धी है इसलिये मैं स्थित हूँ और तू अ-स्थित है ॥२॥

मुझे महर्षिक पंडन किये देर हुई वह भ्रमण महाभ्रमणमें मिक गया।

तो मैं धर्मपुत्र गाथाको सुनकर तिरस्कारक पापको छोड़ूँगा’ ॥३॥

इस प्रकार डाकूने तक्यार और हथियार छोड़, प्रयास और जाकेमें बंध दिये।

डाकूने सुगतके पैरोंकी बन्दनकी और वहीं जन्मसे प्रजन्मा मोगी ॥४॥

तुझ कल्याणक महर्षि जो देवोंसहित लोकके शाक्य (= गुरु) हैं।

उसको आ मित्र बोके नहीं उसका संन्यास हुआ ॥५॥

तब भगवान् अनुष्मान् अंगुलिमाकको अनुशामी-भ्रमण बना कहाँ जावली थी वहाँ चारिकाकेकिये चले। क्रमशः चारिक करते वहाँ जावली थी वहाँ पहुँचे। श्यामस्तीमें भगवान् अबाव-दिहकके आराम जेतवनमें बिहार करते थे। उस समय राजा प्रसेनजित् कोसकके

१ नगरके भीतरी मापमें राजाके महक आदि होते थे इसीको अन्तःपुर, वा राजपुर कहा जाता था।

अन्तःपुरक द्वार पर बड़ा जल-समूह एकत्रित था। कोक्याहक (=उस सव् महासम्प) हो रहा था—“देव ! मेरे राज्यमें अंगुलि-माळ नामक डाकू है। उसने ग्रामोंको भी ल-ग्राम। वह मनुष्योंको मारकर अंगुलियोंकी माळा पहनता है। देव ! उसको रोक।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसक पोच सौ घोड़-सवारोंके साथ मध्याह्नको आनलीसे निकला (बीर) बिबर आराम का डबर गया। जितनी यावकी भूमि की उतनी यावय का जानसे डतर पैदल वहाँ मगवान् से वहाँ गया। जाकर मगवानको अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे राजा प्रसेनजित् कोसकको मगवानसे कहा—

“क्या महाराज ! तुझपर राजा मगव अजिक बिबसार बिगड़ा है या वैशाखिक छिच्छुषि का दूसरे विरोधी राजा ?”

“भन्ते ! व सुझपर राजा मागध० बिगड़ा है। भन्ते ! मेरे राज्यमें अंगुलि-माळ नामक डाकू। भन्ते ! मैं उसीको निवारण करने का रहा हूँ।”

“यदि महाराज ! तू अंगुलि-माळको कंश-स्मसु जुँवा कायाप-बन्ध पहिन घरसे बैबर प्रकबित हुआ प्राण हिंसा-विरत अदृचादान-विरत, मृपाबाध-विरत, एकहारी ब्रह्मचारी शिकवान् वर्सात्मा देखे तो उसको क्या करे ?”

“हम भन्ते ! प्रयुष्याय करेंगे आसनके छिप् निर्मजित करेंगे बीबर पिड-पात सचवासन ग्वाज-प्रत्यय भेषजप परिष्कारोंसे निर्मजित करेंगे, बीर डबकी बम धार्मिक रक्षा-आवरण = गुप्ति करेंगे। किन्तु भन्ते ! उस दुःखीक पापीको पूसा हीक-संभम कहींसे हांगा। उस समय आबुष्मात् अंगुलि-माळ मगवान्के अ-बिभूर बैठ ये। तब मगवान्ने रहिनी बौहको पकड़ कर राजा प्रसेनजित् कोसकको कहा—

महाराज ! यह है अंगुलिमाळ

तब राजा प्रसेनजित् कोसकको भव हुआ स्तम्भता हुई, रोमांच हुआ। तब मगवान्ने राजा प्रसेनजित् कोसकको यह कहा—

“मत् करो महाराज ! मत् करो महाराज। (जब) इससे तुझ भय नहीं है।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसकको जो भव था वह विहीन हो गया।

तब राजा प्रसेनजित् कोसक वहाँ अयुष्मात् अंगुलिमाळ से वहाँ गया। जाकर आबुष्मात् अंगुलि-माळको बोका—

“आर्ष अंगुलिमाळ है ?”

“हाँ महाराज !”

“आर्षके पिता किस योत्रके धार माता किस योत्रकी ?”

महाराज ! पिता गार्ग्य माता मैत्रायणी।

“आर्ष गार्ग्य मैत्रायणीपुत्र अनिरमय करें। मैं आर्ष गार्मर् मैत्रायणी-पुत्रकी बीबर पिड-पात शयवासन ग्वाज प्रत्यय-भेषजप परिष्कारोंसे सेवा करूँगा।

उस समय आबुष्मात् अंगुलिमाळ धारम्भक, पिडपातिक पांसु-द्विक सेधीवरिक थे। तब आबुष्मात् अंगुलिमाळने राजा प्रसेनजित् कोसकको कहा—

“महाराज ! मेरे लीको बीबर पूरे है।

तब राजा प्रसेनजित् कोसक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक घोर बैठ। एक घोर बैठ भगवान्‌को यह बोझ—

आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! कैसे भन्ते ? भगवान् भगवान्‌को दमन करते असातोंको दमन करते अ-परिवर्तितोंको परिनिर्वाण कराते हैं। भन्ते ! जिसको हम ईदसे भी शकसे भी दमन न कर सके उसको भन्ते ! भगवान्‌ने बिना ईदके बिना ककड़े दमन कर दिया। अच्छा भन्ते ! हम जन्ते हैं, हम बहुत दुःख = बहुत-करणीय (= बहुत कामवाले) हैं।

“जिसका महाराज ! तु कक समझता है (बैसा कर)।”

तब राजा प्रसेनजित् कोसक आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तब आयुष्मान् अंगुलिमाल पूर्वाङ्क समथ पहिनकर पात्र-बीबर के आबस्तीमें पिडके किए प्रविष्ट हुए। आबस्तीमें बिधा ठहरे पिड चार करते आयुष्मान् अंगुलिमालने एक स्त्रीको मूत्र-गर्भा = बिधात-गर्भा (= मर गर्भवाली) देखा। देखकर उनको यह हुआ—‘हा ! प्राणी दुःख पा रहे हैं ! हा ! प्राणी दुःख पा रहे हैं !’ तब आयुष्मान् अंगुलिमाल आबस्तीमें पिड-चार करके मोक्षोपरान्त जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक घोर बैठ गये। एक घोर बैठे आयुष्मान् अंगुलिमालने भगवान्‌को कहा—

“मैं भन्ते ! पूर्वाङ्क समथ पहिनकर पात्र-बीबर के आबस्तीमें पिडके लिए प्रविष्ट हुआ। आबस्तीमें मैंने एक स्त्रीको मूत्र-गर्भा देखा। हा ! प्राणी दुःख पा रहे हैं !”

“तो अंगुलिमाल ! जहाँ यह स्त्री है वहाँ जा। जाकर उस स्त्रीको कह—भगिनी ! यदि मैं अन्धमत्त जाकर प्राणि-बध करता जहाँ जायता (तो) उस सत्वसे तेरा मंगल हो; गर्भका मंगल हो।”

भन्ते ! यह तो निश्चय मेरा जानकर झूठ बोझा होगा। भन्त ! मैंने जाकर बहुतसे प्राणि-बध किये हैं।

“अंगुलिमाल ! तू जहाँ यह स्त्री है वहाँ जाकर यह कह—‘भगिनी ! यदि मैंने आर्ष-अन्धमत्तमें पैदा हो (कर) जाकर प्राणि-बध करता जहाँ जायता (तो) इस धत्व से।

अच्छ भन्ते !’ आयुष्मान् अंगुलिमालने जाकर उस स्त्रीको कहा—

“मयिनि ! यदि मैंने आर्ष-अन्धमत्तमें पैदा हो जाकर प्राणि-बध।

तब स्त्रीका मंगल होगया गर्भका भी मंगल होगया।

आयुष्मान् अंगुलिमाल पुनःकरी ‘अन्धमत्त=उद्योगी संभसी हो विहार करते अ-धर्ममें हो जिसके लिए कुछ-कुछ मजकित होते हैं उस सर्वोत्तम ब्रह्मधर्म-ककड़को इसी अन्धमत्तमें स्वर्ण जलकर = साक्षात्कारकर = प्राप्तकर विहार करने लगे। ‘अन्धम जल होगया ब्रह्मधर्म-पाक हो बुझा करण या सा कर किया अथ और करकेको जहाँ वहाँ है (हूँ) जाव जिना। आयुष्मान् अंगुलिमाल जहाँतोंमें एक हुए।

आयुष्मान् अंगुलिमाल पूर्वाङ्क समथ पहिनकर पात्र-बीबर के आबस्तीमें पिडके लिए प्रविष्ट हुए। किसी दूसरेका ब्रह्म उका आयुष्मान्‌के शरीरपर लगा, दूसरेका ब्रह्म

रहा । दूसरेका दोषा बर्कण० । तब आयुष्मान् अंगुलिमातृ कहते-एल फटे-धिर हूटे-पाव,  
फटी संघाटीके साथ बर्हो मगवान् से बर्हो गये । मगवान् दूरमें ही जायुष्मान् अंगुलिमातृ-  
को भाते देखा । देखकर आयुष्मान् अंगुलिमातृको कहा—

‘माहात्म्य ! ऐसे कष्ट कर किया । माहात्म्य ! ऐसे कष्ट कर किया । जिस कर्म-कर्मके  
किये मनेक सौ वर्ष अनेक हजार वर्ष कर्ममें पचना पचता, उस कर्म-विपाकको माहात्म्य ! तू  
इसी कर्ममें मोग रहा है ।

तब आयुष्मान् अंगुलिमातृमें एकाम्बमें प्यागावस्थित हो विमुक्ति-सुखको अनुभव  
करते, वही समय वह उदात्त कहा—

‘जो पहिले अर्चित कर पीछे उसे मार्जित करता है ।

वह मेघसे मुक्त पद्ममाकी मूर्ति इस कोकको प्रमानित करता है ॥१॥

जिसका किना पाप-कर्म पुण्य (= कुण्डल ) से बँक जाता है ।

वह मंगस मुक्त० ॥२॥

जो संसारमें एकम विष्णु बुद्ध-शासनमें छुटा है । वह ॥३॥

विद्यामें मेरी धर्म-कथाको सुनें विद्यामें मेरे बुद्ध-शासनमें उर्ष ।

वह संत पुद्गल विद्याओंको लेवन करें जो धर्मके किपु ही प्रेरित करते हैं ॥४॥

विद्यामें मेरे आदि-बाहियों मैत्री-मार्गसर्कोंके धर्मको;

धमपपर सुनें और उसके अनुसार चर्षे ॥५॥

वह मुझे या दूसरे किसीको भी नहीं मारैगा ।

( वह ) परम आदिको पाकर न्यावर अंगमकी रक्षा करैगा ॥६॥

( जैसे ) नाकी बाड़े पानी के बाते हैं, ह्यु-कर धरको सीधा करते हैं ।

बहुई कठकीको सीधा करते हैं ( जैसेही ) पंडित अपनेको दमन करते हैं ॥७॥

कोई बहसे दमन करते हैं ( कोई ) सब और कोदास भी ।

तपागत-द्वारा बिना बंद बिना साधके ही मैं दमन किया गया हू ॥८॥

पहिलेके हिंसक मेरा नाम आज नहिंसक है ।

आज मैं पधार्थ-जाम बाका हूँ किसीकी हिंसा नहीं करता ॥९॥

पहिले मैं ‘अंगुलि-मातृ नामसे प्रसिद्ध चोर था ।

वही था ( = महा भोग ) मैं हूँ बने बुद्ध की धरल भवता ॥१०॥

१ ब क कोसल राजाके पुरीहितकी मैत्रायणी नामक मायाकी कोकमें जन्म  
प्राप्त किया नाम रखते बन्ध अहिंसक नाम रखता । उसको विष्णु (= सिष्य) सीषने  
के समय लक्ष्मिदा भेजा । वह धर्मान्धवासी (= विद्वान्-शिष्य) हो विद्या पढ़ने लगा ।  
वह जन पदक आशाकारी शिष्य-भाषारी शिष्यवादी था । दूसरे मायावक—‘अहिंसक भाव-  
बन्धने आगमनके दिग्मे हम नहीं समझ पाते जैसे हम कोई —बैठकर सहाह करते—‘सबस  
अधिक प्रजावाद् होनेसे वह बुद्ध्यज्ञ नहीं कहा जा सकता, अत-मुक्त होनेसे दुर्जित नहीं कहा  
जा सकता ( सु ) जाति बाका होनेसे कुजात नहीं कहा जा सकता क्या करें ? तब पहले  
सहाहरी— आचार्याजीकी नीकमें बेकर बंध बंध कः ।



पहिले मैं अंगुलिमाख नामसे प्रसिद्ध ब्रह्म-रंगे हाथवाका (= कोहित-यामि) वा ।  
 देखो सरलागति को ? मय आक सिमर गया ॥११॥  
 बहुत दुर्गतिमें क जानेवाके कर्मोंको करके ।  
 कर्म-विपाकसे स्पृह (= कगा) (क) (विष)से उज्ज्व हो मोहन करता हूँ ॥१२॥  
 बाक-बुद्धि कि अब प्रमाद (=माध्यम्य) में लगी रहत है ।

( फिर वह ) तीव्र टुकड़ी होकर ( प्रथम ) पहली एक टुकड़ी बाके आचार्यके पास आकर  
 बन्धनाकर कहे हुए ।—

‘क्या है तातो !’

‘इस बरमें एक कथा सुनाई देती है ।

‘तातो ! क्या

‘हम समझते हैं अहिंसक माध्यमक आपके भीतरको वृत्ति करता है ।’

‘आजो कृष्णो ( = धर्मा ) ! मेरे पुत्र और मुझमें विगाह मत डालो ।

—(क) कहकरा । तब दूसरे उसके बाब तीसरे (इस प्रकार) तीनोंही टुकड़ियोंके  
 आकर बही कहा—‘यदि हमारा विचार नहीं है तो परीक्षा करके देखिये’ । आचार्य स्नेह  
 सहित बात करते ब्या—‘माझ्म होता है ससर्ग है कृष्ण ( मयमें ) सोचने क्या—‘क्या  
 इसे मार्क’ । तब सोचा—‘यदि माक गा’ तो विद्या-ममुक्त आचार्य अपने पास विद्या बहनेके  
 किये जाये माध्यमकोंको दोष कगाकर आपसे मारता है—( आज ) मेरे पास कोई विद्या पढ़नेके  
 किये नहीं आयेगा । इस प्रकार (मेरा) काम गह हो जायगा । तब इसे विद्या-समाप्तिकी  
 वृत्तिना दो—कहकर ‘सहस्रको मारो कर्हूंगा । भवम्ब ही बरमें काई एक बरकर इसे  
 मारैगा । तब उसे कहा—‘आजो तात ! सहस्रको मारो, इस प्रकार तुम्हारी विद्या  
 समाप्तिकी वृत्तिना पूरी होगी ।’

‘आचार्य ! हम अहिंसक-मुझमें उत्पन्न हुने हैं (वह) नहीं कर सकते ॥

तात ! वृत्तिना किये विद्या विद्या एक नहीं देती

(तब) वह पाँच इधिवार के आचार्यको बन्धनाकर अंगकमें बन्ध गया । वह अरबी  
 (=अंगक)में तुम्हारेके स्थानपर, अरबीके मध्यमें धरतीसे निकलनेके स्थानपर कहा होकर,  
 मनुष्योंको मारता वा (किन्तु) बरब वा बेटनको नहीं कता वा । एक हो गिनती मात्र  
 करत आता वा । “कमसः गिनती भी नहीं बाद रख सकता वा । तब एक एक अंगुली  
 काट कर रख डेवता था । रके स्थानपर अंगुलियोंको काटी थी । तब कहकर अंगुलियोंकी  
 माध्यम बचाकर बरब करनै क्या । इसीसे उसका नाम अंगुलिमाख नाम प्रसिद्ध हुआ ।  
 इसने सारे अंगकको निस्संवार कर दिया । कर्कषी जादि जानेके किन्तु अंगकमें जानेमें कोई  
 समर्थ न वा । रातमें राँबमें भी बरकर बरसे मारकर र्वाजा खोक सोपोंही के मार एक  
 एक गिनकर कहा जाता । राँब भागकर कियममें वा कहा हुआ कियम नगरमें । तीव्र  
 बोजब तकके मनुष्य पर अंग स्त्री-बच्चे हासस पकड़े आकर आबस्तीके चारो ओर कैरा  
 क्या राजाके जाँगनमें हकरदे हो बोके र्व ! तेरे राजमें चोर अंगुलिमाख उत्पन्न  
 हुआ है ।”

मेवाजी (पुरुष) ज प्रमादको ब्रेह जनकी भौति रक्षा करते हैं ॥१३॥

मत् प्रमादमें जुषो मत् काम-रतिकर सग करो ।

ज्यमाद-मुक्त हो ज्ञान करते ( मनुष्य ) विपुल सुखको पाता है ॥१४॥

( वहाँ मेरा भावा ) ज्ञागत है अपगत (= दुरागत ) नहीं

यह मरा ( मंत्रणा ) दुर्मन्त्रण नहीं ।

प्रतिज्ञाम(=ज्ञान)होनेवाके जमोंमे जो ब्रेह है उस (निर्वास)को मीमे पा किया ॥१५॥

ज्ञागत है अपगत नहीं वह मेरा दुर्मन्त्रण नहीं ।

तीनों विद्याओंको पा किया जुझके शासनको कर किया ॥१६॥

X

X

X

( 4 )

अटूठक (=पारामर्श) वग्मा (ई पू ५०३) ।

एक 'मंत्र पारंगत' 'ब्राह्मण' को सुखीके रमणीय पुरसे

जाकि जल्प (स्वर्ग)की कामनासे वृक्षिण्यापय गया ॥१॥

१ सुक्त निपात ५. ११६ ।

२ प्रसेनजित्के पिताके पुरोहितके घर (उत्त) आचार्य वैश द्रुम्य । नामसे बाधरी महा-पुरुषके तीव्र कष्टोंसे मुक्त, तीनों बेहींमें पारंगत पिताके मरने पर पुरोहित-पदपर प्रतिष्ठित हुआ । सोकद ब्रेह-अन्तेवासियों (= प्रबाव सिप्यों)ने बाधरीके पास विद्या पढ़ी । कोसक-राजा भी मर गया । तब प्रसेनजित्को ( कोरोंने ) अमिषिष्ठ किया । बाधरी कष्टका भी पुरोहित हुआ । राजाने पिताके दिने तथा और भी भोग बाधरीको दिये । बाक्यपनमें उसने उसके ही पास विद्या पढ़ी थी । तब बाधरीने राजाको कहा—

“मै महाराज ! प्रमथित होईगा ।”

“आचार्य ! तुम्हारी उपस्थितिमें मेरा पिता माबो उपस्थित है । प्रमथित मत हो ।

“महाराज ! नहीं प्रमथित होईगा ।”

राजाने रोकनेमें असमर्थ हो मार्चवाकी—

“सार्ध प्रातः मरै द्वावि कावक स्थान राज-उद्यानमें प्रमथित हों ।

आचार्य सोकद हजार परिवार (= अनुयायी ) वाके सोकद सिप्योंके साथ तापस प्रमथामें प्रमथित हो राज उद्यानमें वास करने लगा ।

राज्य चारों आश्रयकलाओंको अर्पण करता और साथ प्रातः नभामें जाता था । तब एक दिन अन्तेवासियोंने आचार्यको कहा— आचार्य ! नगरोंके समीप वसनेमें क्या विघ्न है निज स्वाममें जले प्रमथितोंके किय वृक्षान्त-अभ्रम-वास क्या उपकारी होता है ।

उसने 'अच्छ' ( कद ) स्वीकारकर राजाको कहा । राजाने तीनवार मना करनेपर भी असमर्थ हो दो कद दे दो अमाल्योंको द्रुमुम विष—“जहाँ अविशाल वास करन्य चाहें वहाँ अभ्रम बनवा दो ।” तब आचार्य सोकद हजार अशियोंके धाम अमाल्योंसे अनुगामी हो उत्तर-देशसे वृक्षिण-देशकी ओर गया ।”

उसने 'अस्सकके राज्जमें अस्सक की सीमापर ।

गोदावरी नदीके तीर उ छ और फलके महारे पास किया ॥ १ ॥

उसीके समीप एक विपुल गाँव था ।

जिससे पैदा हुई जाबस उममे महाबल रथा ॥ ३ ॥

महाबल करके फिर बह आश्रमके भीतर चला गया ।

उसके भीतर चले जानेपर दूसरा माछल आया ॥ ४ ॥

जिसपर खासा दाँतमें-संक-छया भ्रमर-भिर ।

बह उमक पासजा पाँच सौ मोंतने कगा ॥ ५ ॥

उसको बेफकर बावरीने धामनसे निर्मजित किया ।

कुसक आनद, गुण ( और ) बह बाठ कही ॥ ६ ॥—

'जो कुछ मुझे देना था वह सब मैंने दे दिया ।

दे जाऊन ! जानो कि मेरे पास पाँच सौ नहीं हैं ॥ ७ ॥

'यदि माँगते हुये मुझे तुम ब दोगे ।

तो मातर्वे दिन तुम्हारा सिर (= मूर्धा ) साठ टुकड़े हो जावे' ॥ ८ ॥

अजिसंस्कार (= संक्रावधि ) करके उस पाण्डेयने (बह) भीषण कर्म्य कदा ।

उसके उस पचबको सुनकर बावरी दुःखित हुआ ॥ ९ ॥

शोक-सम्भसे पुत्र हा बिराहार सूखने कया ।

तथापि चित्तके ध्यानसे मय रमित हावा था ॥ १ ॥

मयभीत और दुःखित बेच दिवाक्रीड़ी एक बचताने ।

बावरीके पास जाकर बचन कदा ॥ ११ ॥—

'बह पाखंडी घप-बोधी मूर्धा नहीं जानता ।

मूर्धा का मूर्धा पाठके विषयमें उसको ज्ञान नहीं है ॥ १२ ॥'

'तो तुम जानती होयीं तो मुझे इस मूर्धा मूर्धापाठको ।

बताओ, ( मैं ) तुम्हारे इस बचबको सुनना चाहता हूँ । ॥ १३ ॥'

मैं भी उसे नहीं जानती मुझे भी उस विषयका ज्ञान नहीं है ।

मूर्धा और मूर्धा-पाठ वह दुर्दोष ही बर्तन (= ज्ञान ) है ॥ १४ ॥

'तो फिर इस बच इस पृथिवी-संस्कमें ( जो ) मूर्धापाठको

जानता है वे देवता ! उसे मुझे बताओ ?' ॥ १५ ॥

पूर्व समय जो कपिक-वस्तुसे काकनाभक

इक्ष्वाकु-राजाकी संतान प्रमाकर आनक-पुत्र ( प्रव्रजित हुए ) ॥ १६ ॥

१ अ-क. "अस्सक (= अश्वक ) और अश्वक (= आर्यक ) दोनों अश्वक (= आश्रम ) राजाओंके समीपवर्ती राज्योंमें । दोनों राजाओंके बीचमें गोदावरी नदीके तीरपर बहाँ गोदावरी दोपारमें फलकर भीतर तीन बोजकक हीप बवाली है । । बहाँ पहिले प्रारम्भ आदिने पास किया था । । अस्सक अश्वक अश्वक है बराबर राज्योंके औरंगाबाद और भीरके ही जिके तथा आस पासके साथ हो सकते हैं ।

ब्राह्मण ! वही संजुद्ध, सब धर्म-पारंगत,  
 सब अभिशालोक बचको प्राप्त (राग धादि) अपबिक सब होमैस विमुक्त है ॥१०॥  
 वह बह्नु-मान् भगवान् बुद्ध, धर्म-अपदेश करते हैं ।  
 उनके पास जाकर पूछो वह इसे तुम्हें बतलावेंगे ॥ १८ ॥”  
 “बुद्ध” वह बचन सुन बाधरी बहुत हर्षित हुआ ।  
 उसका शोक कम हो गया और (उस) विपुल प्रीति (= मुग्धी) उत्पन्न हुई ॥१९॥  
 वह बाधरी सम्बुद्ध हर्षित प्रफुल्लित हो उस देवताको पूजने लगा ।—  
 “किस शीघ्र किस गिराम ना किस बलपदमें शोकनाथ (वास करते) हैं;  
 वहाँ जाकर हम पुत्रपोत्तम बुद्धको नमस्कार करें ? ॥२१ ॥”  
 “वह जिन बहु-मन्त्र धर-मूर्ति-शेधावान् श्रावणपुत्र;  
 स-संग, अद्-आकष्य तरपम मूर्धा-पालक कोसक-संदिह आदर्शमि (वास करते)

है ॥२१॥

तब मंत्र (= वेद) पारंगतने शिष्य ब्राह्मणोंका संबोधित किया—

आओ माणवको ! कहता हूँ मेरा बचन सुनो ॥२२॥  
 जिसका सदा माधुर्माय लोकमें दुर्लभ है ।  
 वह प्रसिद्ध ‘बुद्ध’ आज लोकमें पैदा हुए हैं ॥  
 तीव्र आधस्ती जाकर पुत्रपोत्तमका वचन करो ॥२३॥  
 हे ब्राह्मण ! तो कैसे हम देखकर धार्ये—वह ‘बुद्ध’ हैं ।  
 न जानते हम जैसे उन्हें धार्ये वह हमें बतलावें ॥२४॥  
 ‘हमारे मंत्रोंमें महापुत्रव-कथन आये हैं ।  
 ( वह ) बचीस कहे गये हैं; चारो ओर क्रमसः ॥२५॥  
 जिसके शरीरमें यह महापुत्रव-कथन हो ।  
 वो ही उत्तरी गतिर्पा है, तीव्ररी नहीं ॥२६॥  
 यदि धरमें वास करता है ( तो ) हम पूजिषीको  
 किन्ना बुद्ध किन्ना सफलके भीतकर धर्मके साथ सासन करता है ॥२७॥  
 यदि वह धरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है ।  
 तो वह-शुका बुद्ध सर्वोत्तम अर्हन् होता है ॥२८॥  
 ( वहाँ जाकर ) जाति यात्र लक्षण मंत्र सिष्य तथा ।  
 मूर्धा और मूर्धापालको मनस ही पूजना ॥२९॥  
 यदि शिष्यको शोककर देखनेवाके बुद्ध होंगे ।  
 तो मनस पूछे मर्माको बचनसे उत्तर देंगे ॥३०॥  
 बाधरीका बचन सुनकर सम्बुद्ध ब्राह्मण सिष्य—  
 अजित, सिष्य मीश्रय पूण और मीश्रगु ॥३१॥  
 धनमक, उपदिश, नन्द और हमक ।  
 ताद्वेयकप्य (= तोद्वेयकप्य ) कृमय भार पंडित जातुकर्षी ॥३२॥

मद्रासुघ, तद्व्य आर माझल पोसाळ ।

आर मेवाबी मोघराज और महाकपि पैम्प ॥३३॥

समी बरमा बरमा गम्भी ( = बमात-बाळे ) सर्वकोकप्रसिद्ध ।

प्याधी-प्याम-रत और पूर्णकासे ( व्याजम ) बासके बासी ॥१७॥  
बावरीको अधिवाहनकर और उसकी महिमाकर ।

समी बर-सुग-बर्म-बारी उत्तरकी और चण्ड ॥३५॥

बसलकासे प्रतिष्ठान, तथा प्रथम 'माहिष्मती ।

'तञ्जविनी और फिर गोनर 'विदिशा 'वनसाह्य ॥३६॥

कौशास्त्री और 'लाकेत, अर पुरीमें बचम 'भावस्ती ।

'सतस्या 'कपिलवस्तु 'कुसीमारा आर मन्दि ॥३७॥

'पावा और मोगनगर वैशास्त्री और मगध-पुर ( = 'राजपुर ) ।

और रमणीय मबोरम पापाजक 'केत ( में पहुँचे ) ॥३८॥

ईसे प्यासा दम्भे पाचीको जैसे बनिषा कामको

रूपमें तथा बस छाबाकी ( बैसेही बह ) बस्तीसे पर्वतपर चढ़ गये ॥३९॥

भगवान् उस समय भिक्षु-संघको सामने किये

भिक्षुओंको धर्म उपदेश कर रहे थे वनमें सिंह जैसे गरज रहे थे ॥ ४ ॥

१ गोदावरीके उत्तर किनारे पर औरहाबादसे थुडार्डस मीक इक्षिम वर्तमान पैम्प  
बिजा औरहाबाद ( हैदराबाद राज्य ) । २ इन्दौरसे आठवीस मीक इक्षिम वर्तमानके उत्तर  
तटपर वर्तमान महेश्वर ।

३ वर्तमान उडुपै ( मध्यभारत ) ।

४ वर्तमान भोपाळके पास कोई स्थान । अ क 'गोबपुरी भी'

५ वर्तमान भिखसा ( म भारत ) ।

६ अ क 'तुम्बलनगर ( प्यबननगर ) बम-भावस्ती थी - - ।

बोसा ( किष्म सागर ? ) ।

इकाहाबादसे प्रायः ३ मीक पश्चिम बसुबाके बायें किनारे वर्तमान कौषम

( बिष्म इकाहाबाद, उत्तर प्रदेश )

७ वर्तमान बबोष्वा ( बिष्म कैलाबाद उ प्र ) ।

८ बकरामपुरसे १ मीक वर्तमान सहेद-महद ( बिष्म गोंड उ प्र ) ।

९ श्वैतान्नी ।

१० लौकेश्वा बाजारसे प्रायः दो मीक उत्तर वर्तमान ठिकौर ( नैपाळ तराई ) ।

११ गोरखपुरसे सैंतीस मीक पूर्व वर्तमान कसबा ( बिष्म गोरखपुर उ प्र ) ।

१२ पडरौना ( कनचामे १२ मीक उत्तर-पूर्व ) पर पासका पपडर गाँव ।

१३ राजपिर ( बिष्म पटना बिहार ) ।

१४ संभवतः गिर्बक पर्वत ( राजपिरसे कः मीक ) ।

अखिलने बुद्धको घट-रश्मि सूर्य वंसा  
 पूर्वता-यास पूजिमाकं कम्पुमा वंसा देला ॥३१॥  
 तब उषके शरीरमें पूरे म्बजनों ( = कल्पों ) को देखकर,  
 हर्षित हो एक ओर लड़े हुए मनसे प्रश्न पूछा ॥३२॥  
 “(हमारे आचार्यके) जन्म आदिको बतलाओ और कल्पके साथ योग बतलाओ ।  
 संज्ञाओं पारंगत-यम बतलाओ, और कितने प्राणियोंको पड़ाता है (इसे मी) ? ॥३३॥  
 एक सी बीस वर्ष मन्मु इं और यह गोत्रसे बाहरि है ।  
 उसके शरीरमें तीन कल्प और तीनों बेहोंमें पारंगत इं ॥३४॥  
 निषण्डु-सहित कैटुम ( = कल्प )-सहित कल्पम इतिहास  
 पाँच सीको पठाता है अपने धर्ममें पारंगत है ॥३५॥  
 “हे बरोचम ! हे तुष्णा-खेदु ! बावरीके कल्पोंका विस्तार  
 करो ( जिसमें ) हम लोगोंको शंका न रह जाये ? ॥३६॥  
 “कृणा ( उसकी ) मीडे बीचमें ( है ) सुँहका मिट्टा जोष खेती है ।  
 कोप्से हँका बन्ध-गुण ( = किंग ) है यह आयो हे माणवक ! ॥३७॥  
 प्रश्न कुछ भी न सुनते और प्रश्नोंका उत्तर देते,  
 ( देख ), भास्वर्गमित हो हाथ जोष जोग मोचते थे ॥३८॥  
 कौन देवता है महा ! पा इन्द्र सुझाम्पति है ।  
 मनसे पूछे प्रश्नोंका ( उत्तर ) किसे मासित हो रहा है ? ॥३९॥  
 ‘बाघरि सूर्या ( = गिर ) और मूषा-यातको पूछता है ।  
 हे मगध ! उसे व्याख्या कर, हे अपि ! हमारे संघको मिटाई ॥४०॥’  
 ‘अविद्याको मूर्धा बाओ और मूर्धा-पाणिनी  
 महा स्फुटि समाधि कम्पु (भीर) भीषके साथ विद्याको (आला) ॥४१॥  
 तब अत्यन्त प्रसन्नतासे स्तमित हो मानवक  
 युगधर्मको एक कम्पेपर कर सिरसे पैरोंमें बध गया ॥४२॥  
 ‘हे मार्य हे बह्म-मात् ! सिन्धी-सहित बाघरि आस्य  
 इह-चित्त सुमन हो आपके पैरोंमें बन्धना करता है ॥४३॥  
 “माल्य ! सिन्धी-सहित बाघरि सुखी होये ।  
 हे मानवक ! तू भी सुली हो चिरंजीवी हो ॥४४॥  
 संबुद्धके अवकाश देनेपर बँदकर हाथ जोष  
 आँ अखिलने तपागतको प्रथम प्रश्न पूछा ॥४५॥

१ अखिल सायन-पुष्पा

(अखिल) — “कोक किससे है का है ? किससे प्रकाशित नहीं जाता ?  
 किसे इसका अभिप्रेत करते हो ? क्या इसका महात्म है ? ॥४६॥  
 (मगध) — ‘अविद्यास काक हँका है प्रमात् ( = व्याकल्प )से नहीं प्रकाशित होता ।  
 तुष्णाको अभिप्रेत करता हूँ, ( जन्म आदि ) बुद्ध इसका महात्म है ॥४७॥’

मद्रायुध, उदय और माझण पोसाळ ।

भार मेबाबी मोघराज और महामपि र्पिंग ॥३३॥

समी अफग अफगा गप्पी ( = बमात-वाले ) सर्वलोकप्रसिद्ध ।

प्याबी=रवान-रत और पूर्वकालसे ( आक्रम ) वासक बामी ॥३४॥  
बाबरीको अभिवादनकर, भार उसकी प्रदक्षिणाकर ।

समी अद्य-युग-वर्षमें घारी उत्तरकी ओर चल ॥३५॥

अन्लकसे प्रतिष्ठाम', तथा प्रथम 'माहिष्मती ।

'उखयिनी भार फिर गोगन्ध विदिशा 'यलसाहय ॥३६॥

कौशाम्बी भार 'लाकेत, न र पुरमें उत्तम 'भायसी ।

'सतध्या 'कपिलयस्तु, 'कुसीमारा भार मन्धिर ॥३७॥

'पावा और भोगनगर वैशाखी और मगध-पुर ( = 'राजगृह ) ।

और रमणीय मनोरम पापाणक 'रुच ( में पहुँचे ) ॥३८॥

कैसे प्यासा उन्हे पायीको उसे बनिपा सामझे

रूपमें तथा बँस छायाकी ( बिसही बह ) बरसासे पर्वतपर बह गये ॥३९॥

भगवान् उस समय मिथु-संबको सामने किने

मिथुजोंको धर्म उपदेश कर रहे थे वनमें सिंह उसे गरज रहे थे ॥४०॥

१ गोदावरीके उत्तर किनारे पर औरद्वाबादसे जहाङ्गम मीक इस्लाम बर्तमान ईदम  
जिका औरद्वाबाद ( ईदराबाद राज्य ) । २ इन्द्रारसे बाकीस मीक इस्लाम बर्तमानके उत्तर  
तटपर बर्तमान महेश्वर ।

३ बर्तमान उर्दूबल ( मध्यभारत ) ।

४ बर्तमान भोपाळके पास कोई स्थान । ज क "गोघपुरी धी"

५ बर्तमान मिक्सा ( म भारत ) ।

६ ज क "तुम्बकवार ( = पंचमवार ) बल-आबन्ती भी -- १"

बासा ( जिका सागर ? ) ।

७ इकाद्वाबादसे प्रायः ३ मीक इस्लाम अमुनाके बर्तमान किनारे बर्तमान कीसम  
( जिका इकाद्वाबाद उत्तर प्रदेश )

८ बर्तमान धबोधा ( जिकम ईकाद्वाबाद, उ म ) ।

९ बकरामपुरसे १ मीक बर्तमान सहैद-महद ( जिकम गोंडा उ म ) ।

१० श्वेताम्बी ।

११ लौकिकवा बाकारसे प्रायः दो मीक उत्तर बर्तमान तिकौरा ( बैपाळ तराई ) ।

१२ गोरखपुरसे तीसस मीक पूर्व बर्तमान कसपा ( जिका पोरखपुर उ म ) ।

१३ पडरीबा ( कम्बासे १२ मीक उत्तर-पूर्व ) का पासकर पपवर गाँव ।

१४ राजगिर ( जिका पटना बिहार ) ।

१५ संभवतः गिरिज् पर्वत ( राजगिरिसे ४० मीक ) ।

अज्ञितने दुबको घट-रश्मि सूर्य बसा

पूर्वता-प्राप्त पूर्वमाके चन्द्रमा बसा देखा ॥२१०

तब उबके घरीरमें पूरे ज्यजनों ( = कर्मजनों ) को देखकर,

हर्षित हां एक धोर कबै हुये मममें प्रसन्न पुछा ॥२२५

"(हमारे अन्धकारके) जन्म आदिको वतकाभी और कर्मके साथ गौत्र वतकाभी ।

मंत्रोंमें पारंगत-यम वतकाभी और कितने माहर्षियोंको पढ़ता है (इसे मी) ?" ॥२३०

एक सा बीस बरं मनु है धोर बह गोत्रसे वावरि है ।

उसके घरीरमें तीन कछन और तीनों देहोंमें पारंगत है ॥२३०

निबन्ध-सहित केदुम ( = कर्म )-सहित कछन इतिहास

पूर्व सौको पढ़ता है अपने धर्ममें पारंगत है ॥२५॥

'हे बरोचम ! हे तुम्हा-केदुम ' वावरीके कर्मोंका विचार

करो ( जितमें ) हम लोगोंको शंका ब रह आवे ? ॥२६॥

"कर्म ( उसकी ) भीके बीचमें ( है ) मुँहका सिद्धा बॉक लेती है ।

कोपसे ईका बन्ध-गुण ( = किंग ) है यह जानो हे माणवक ! ॥२७॥ "

प्रसन्न कुछ भी ब सुनते, धार मन्त्रोंका उतर देते,

( देक ) व्याख्यानम्वित हो हाथ जोड़ लोग सोचते ये ॥२८॥

काब देवता है ब्रह्मा वा इन्द्र सुमान्प्रति है ।

मनसे पूछे मन्त्रोंका ( उतर ) किसे मासित हां रहा है ? ॥२९॥

'वायुरि मूर्धा ( = सिर ) और मूर्धा-पातको पूछता है ।

हे माणव ! उस व्याख्याक करै, हे जगि ! हमारे संशयको मिटावै ॥३०॥

'अविद्याको मूर्धा जानो और मूर्धा-पातनी,

अज्ञा रसुति, समायि छन्द ( और ) बीरके साथ विद्याका ( बाधा ) ॥३१॥

तब अत्यन्त प्रसन्नतासे स्तंभित हो माणवक

मृगाधर्मको एक कर्मपर कर धारसे पिरोंमें पड़ गया ॥३२॥

"हं मार्ग हे बन्धु-माह ! शिर्षोसहित वावरि माणव

इह-विद्य सुमम हो आपके पिरोंमें बन्दना करता है ॥३३॥

'माह्यम ! शिर्षो-सहित वावरि सुली हांवे ।

हे माणवक ! तू भी सुप्री हो चिरंजीवी हो ॥३४॥

उत्पुत्रके अन्धकार देनेपर बँडकर हाथ जोड़

अज्ञो अज्ञितने तन्हागतको प्रथम प्रसन्न पुछा ॥३५॥

## २. अज्ञित माणव-पुण्या

(अज्ञित) — 'कोक किसमें ईका है ? किससे प्रकाशित नहीं होता ?

किते इसका अमिक्षेयन कहते हो ? क्या इसका महामय है ? ॥३६॥

(माणव) — अविद्यासे कोक ईका है म्माह ( = वाक्य ) से नहीं प्रकाशित होता ।

तुम्हाको अमिक्षेयन कहता हूँ, ( जन्म जगि ) दुःख इत्यन्त महामय है ॥३७॥ "



मगवान्—“जिस प्राण्यको तु ज्ञानी अकिंचन (= परिग्रह-रहित) काम सबसे ज-सक जायै । जवह्न ही वह इस मयसागरको पार हो गया है पार हो वह सबसे विरपेक्ष है ॥८९॥ जो नर वहाँ विशाद् = बेरगू भव-अमयमें संयोग छ।दकर विचरता है; वह नृप्या-रहित राग आदि-रहित आरता-रहित है । ‘उमें में जन्म जरा पार हो गया—उहता हूँ ॥८९॥”

### ७ घोटक-भाष्य-पुच्छा

(घोटक)—“हे मगवान् ! तुम्हें यह पछता हूँ महर्षि ! तुम्हारा बचन (सुनना) चाहता हूँ । तुम्हारे विर्षोप (=बचन) को सुनकर अपने निर्वाण (= मुक्ति) को सीकूँगा ॥८९॥”

(मगवान्)—तो तत्पर हो रचित (हो) स्मृति-माग् हो; यहाँसे बचन सुन अपने विर्षोपको सीको ॥८९॥

(घोटक)—“मैं (तुम्हें) र्ब-मनुष्य कोकमें अ-किंचन (= निर्कोम) विहरनवाका प्राण्य देखता हूँ । हे समस्त चक्षु (= चारों ओर आँखवाले) ! ऐसे तुम्हें बमरकर करदा हूँ । हे घक ! मुझे कर्षकपा (बाद-विबाह) ने सुबाओ ॥८९॥”

(मगवान्)—हे घोटक ! कोकमें मैं किसी कर्षकपीको सुबावे नहीं आठेगा । इस प्रकार जेड धर्मको धमकर तुम इस जोष (= मयसागर) को तर जाओ ॥८९॥

(घोटक)—“हे मग ! कदनाकर विरेक-धर्मको मुझे उपदेश करो । जिसे मैं जानूँ । जिसके अनुसार न किस हो यहीं शात न-वज हो विचरण करूँ ॥८९॥”

(मगवान्)—“घोटक ! इसी शरीरमें मयस्य धर्मको बतलता हूँ ; जिसको जानकर (मनुष्य धरन कर धाचरण कर कोकमें अ-सतिकी तर जाये ॥८९॥”

‘जो कुछ ऊपर नीच, बाड़े या बीचमें जानता है; कोकमें इसे ‘सग है समझकर, यह अमयमें नृप्या मठ करो ॥८९॥”

### ८ उपसीध माष्य-पुच्छा

(उपसीध)—“हे शुक्र ! मैं अनेके महात् जोष (= संसारमयह) को विराजित हो ठरकेही विभ्रत नहीं रखता । हे समस्त-चक्षु ! आकम्प बतकाओ जिसका आज्ञा छे मैं इस जोषको तर्क ॥”

(मगवान्)—‘अकिंचन्य (= कुछ नहीं) को देख स्पृतिमाद् ही (कुछ) नहीं है जो आर्हबन कर जोषको पार करो । कामोंको छोड़ कपाओंसे विरत हो रात-दिन नृप्या-धूपकी देखो ॥९०॥”

(उपसीध)—“जो सब कामों (= योगों) में विरागी धीर (सब) छोड़ ‘कुछ नहीं (= अकिंचन्य) का अकम्पन्य किचे (सात) परम संश-विमोक्षोंमें किमुक्त (रहे) न्न वहाँ (= अकिंचन्य) जचक हो उहरीगा न ? ॥९०॥”

(मगवान्)—“जो सब कामोंमें विरागी वह वहाँ जचक हो उहरीगा है ॥९०॥”

(उपसीध)—“हे समस्त-चक्षु ! यदि वह वहाँ जचक (= अन् नमुषापी) हो नमुठ बर्षोवक उहरीगा है, (तो) क्या वह नहीं मुक्त = सीतक हा उहरीगा है या वहाँसे उसका विद्याव (= जीव) स्पुठ होता है ? ॥९०॥”

(मगधान्)—“बायुके बेगसे छिस अर्षि (= कौ) बसे अस्त हो जाती है (और इस विषामें गई जादि) अथवाहारको प्राप्त नहीं होती । इसी प्रकार मुनि काम-काजसे मुक्त हो अस्त हो जाता है अथवाहारको प्राप्त नहीं होता ॥१८॥

(उपसीध)—“बह अस्तगत है, या नहीं है, या बह हमेशाके छिये अरोग है ? हे मुनि ! इसे मुझे अच्छी प्रकार बताओ क्योंकि आपको यह धर्म विहित है ॥१९॥”

(मगधान्)—“अस्तगत (=निर्वाण-प्राप्तके रूप अर्षि) का प्रभाव नहीं है, जिससे इसे कहा जाय, । सभी धर्मोंके बह हो जानेपर, कथन-मार्गस मी सब ( धर्म ) बह हो गये ॥ १ ॥

### ७ मन्द भाष्य-पुच्छा

(मन्द)—“योग लोकमें मुनि हैं” कहते हैं सो बह कैसे ? तत्पत्र शास्त्रको मुनि कहते हैं, वा (अकठिन तपपुत्र) जीवनसे पुच्छको ? ॥ १ ॥

(मगधान्)—“न दृष्टि (=मत्)से, न सुचिते न ज्ञानसे मन्द ! कुप्रक (=परिहित) जन ( किसीको ) ‘मुनि कहते हैं, जो विपसा मानकर कोम-रहित जाया रहित हो विचरते हैं, उन्हें मैं मुनि कहता हूँ ॥ १ ॥ २०

(मन्द)—“कोई कोई धम्म माहाण इह (=मत्) वा सुत (=वेद विद्याध्ययन)से छुदि कहते हैं, शीक और मत्स मी छुदि कहते हैं अनेक रूपसे छुदि कहते हैं । हे मार्प ! मगधान् ! विसा धाचरण करते क्या बह धम्म-अरासे तर गय इते हैं ? मगधान् ! तुम्हें पूछता हूँ, इसे मुझे बतकाओ ॥ १ ॥

(मगधान्)—“जो कोई धम्म माहाण । ‘बह धम्म-अरासे नहीं तरे’ कहता हूँ ॥ १ ॥

(मन्द)—“जो कोई धम्म माहाण अनेक रूपसे छुदि कहते हैं । यदि मुनि ! ( उन्हें ) जोधसे अ-तीर्थ (=न पार हुआ) कहते हैं; तो वैष-अनुत्प-लोकमें कौन धम्म-अराको पार हुआ ?—हे मार्प ! मगधान् ! तुम्हें पूछता हूँ, इसे मुझे बतकाओ ॥ १ ॥ ५३

(मगधान्)—“मैं सभी धम्म माहाणोंको धम्म-अरासे विद्वत् नहीं कहता । जो कि इह, सुत स्पृत शीक मत् सब छोड़; सभी अनेक रूप छोड़ तुम्हाराको त्याग अवाप्तव (त्याग जादि-रहित) हैं मैं अब नहींको ‘जोध पार’ कहता हूँ ॥ १ ॥ १०” ।

(मन्द)—“हे गौतम ! महर्षिके उपधि-रहित सुभाषित इन बच्चोंका मैं अभिबन्दव करता हूँ; जो कि इह सुत स्पृत शीक, मत् सब छोड़; सभी अनेक रूप छोड़ तुम्हाराको त्याग अनाप्तव हैं मैं भी उन्हें जोध-तीर्थ (= मत्सागर पार ) कहता हूँ ॥ १ ॥

### ८ हेमक-माणव पुच्छा

(हेमक)—“वहिलोंने जो मुझे गौतम-उपदेशसे पूछक बतलाया—‘ऐसा था,’ ‘ऐसा हागा बह सब ‘ऐसा ऐसा (=इति इति ह) है बह सब तर्क अज्ञानेवाका है ॥ १ ॥ ८० हे मुनि ! मेरा मन उनमें नहीं रमा है मुनि ! तुम तुम्हारे-विवाद्यक धर्म मुझे बतकाओ जिसको जानकर अरजकर, धाचरणकर लोकमें तुम्हाराको पार होई ॥ १ ॥ ९०

(मगधान्)—“हे हेमक ! नहीं इह धूल स्पृत और विहातमें छन्द-अरागाइ इराया (ही)

- (अज्ञित) — “आरों और सोते बह रह हैं सोतोंका क्या विचारण है ?  
सोतोंका संहर (= बचना) बतकाओ किससे सोते बौद्ध जा सकय हैं ? ॥५४४
- (भगवान्) — “अज्ञितने सोतमें सोत हैं स्थिति उबकी विचारण है ।  
सोतोंका संहर प्रज्ञा है, प्रज्ञासे यह बँडके जाते हैं ॥५५॥
- (अज्ञित) — “हे मार्य ! प्रज्ञा और स्थिति नाम-रूप ही हैं ।  
यह पृच्छता हूँ । बतकाओ कहाँ यह (= नाम-रूप ) निरूप्य होता है ? ॥५६ ॥
- (भगवान्) — अज्ञित ! जो एते यह मत्त पृच्छत उसे तुसे बतकाता हूँ,  
कहाँपर कि साराकूप निरूप्य होता है ।  
विज्ञानके निरोधसे यह निरूप्य हो जाता है ॥५७॥
- (अज्ञित) — “हे मार्य ! जो यहाँ संख्यात (= विज्ञान)-धर्म हैं और जो निम्न संख्य (धर्म) हैं  
पञ्चित ! तुम उनकी प्रतिपत् (मार्ग)का पृच्छनेपर बतकाओ ? ॥५८॥
- (भगवान्) — “आमोंकी सोम न करे मक्ते मक्कित न होवे ।  
सब धर्मोंमें कुशाक हो निम्न प्रमक्कित होने ॥५९॥

### २. तिस्स मेरोदय भावव पुच्छा।

- ( तिस्स ) — “कहाँ काकमें बीज संतुह है, किसको तृप्यार्ये नहीं हैं ?  
बीज होतां अन्तोंको जानकर मध्यमें (स्थित) हा प्रज्ञासे किस नहीं होता ?  
किसको ‘महापुरुष’ कहते ही काव यहाँ बीजमें सीवैवाका है ? ॥६४॥
- (भगवान्) — “(जो) धर्मों या ब्रह्मचर्यमें सदा तृप्या रहित हा  
जो निम्न समझ कर निर्बुध (मुक्त) हुआ है। उसको तृप्यार्ये नहीं होतीं ॥६५॥  
यह जोतां अन्तोंको प्रज्ञासे जानकर मध्य(स्थ हो) तिस नहीं होता ।  
उसको महापुरुष कहता हूँ यह यहाँ बीजमें सीवैवाका है ॥६६॥”

### ३. पुण्यक-भावव-पुच्छा।

- ( पुण्यक ) — तृप्या-रहित मूक-वर्सी ! (आपक पाप) में प्रसक्तके साव भाषा हूँ ।  
त्रिस कारण कृपिणों मनुष्यों अज्ञिणों प्राणियोंने यहाँ लोकमें देवताओंको पूज्य  
पूज्य पञ्च कल्पित किया; यह पृच्छता हूँ भगवान् बतकाओ ॥६७॥
- (भगवान्) — “जिन किन्हीं कृपिणों, मनुष्यों अज्ञिणों, प्राणियोंने यहाँ लोकमें देवताकाके  
किये पूज्य पूज्य वस्तु कल्पित किये उन्होंने इत्य अन्तकी चाह रखते हुयेही बत  
(जाहि) से अ-मुच्छो ही कल्पित किया ॥६८॥
- (पुण्यक) — जिन किन्हींने पञ्च कल्पित किया ।  
भगवान् ! क्या यह पञ्च-पयों अ-वमारी थे ?  
हे मार्य ! (क्या) यह अन्त-उराका पार हुये ?  
हे भगवान् ! तुम्हें यह पृच्छता हूँ बतकाओ ? ॥६९॥
- (भगवान्) — “( यह जो ) आर्यसव करते = स्ताम करते = अमिअप्य करन इवव करते हैं,  
(सा) कामके जिने काजोंकी ही उपजत हैं ।

वह पशुके योगसे भबबके हागसे रख हो, मम्म-बराको नहीं पार हुये, (ऐसा) में कइता हूँ ॥०॥”

(पुण्यव) — “हे मार्य ! बदि पशुके योग (=संबन्ध) से बर्जाशारा बम्म बराको नहीं पार हुये । ठी हे मार्य ! फिर कोकमें कौन देव मनुष्य बम्म-बराको पार हुये ?—तुम्हें पूछता हूँ हे मगवान् ! इसे बतकाओ ॥०१॥

(मगवान्) — “कोकमें पार-पारकी जाबकर जिसको कोकमें नहीं भी तूण्या नहीं (को) बान्त (हुमरित) बूम-रहित रागादि-बिरउ, बादा-रहित (है) वह बम्म-बराको पार हांगया —कइता हूँ ॥०२॥”

### ४ मेत्तगू-माणव-पुण्य

(मेत्तगू) — “हे मगवान् ! मैं तुम्हें पूछता हूँ, मुझे यह बतकाओ तुम्हें मैं जाली (= बेदगू) बीर भविताय्या समझता हूँ, जो भी कोकमें बनेक प्रकारके पुण्य है यह कइसे जाये है ? ॥०३॥”

(मगवान्) — “हुण्णकी इस उत्पत्तिको पूछते हो ? प्रश्नानुसार मैं उसे तुम्हें कइता हूँ (तूण्या बादि) उपधिके कारण जो कोकमें बनेक प्रकारके पुण्य है (वह) उत्पन्न होते है ॥०४॥ जो कि अविद्या उपधिको उत्पन्न करता है वह मम्म (पुरुष) पुनः पुनः पुण्यको प्राप्त होता है । इसकिये जानते हुए हुण्णकी उत्पत्तिका कारण जान उपधि न उत्पन्न करे ॥०५॥

(मेत्तगू) — “मैंने जो तुम्हें पूछा वह हमें बतला दिया; बीर तुम्हें पूछता हूँ उसे बतलाओ । बीर कोग कैसे मोघ (= भवसागर) को बम्म बरा भोक रोने पीटनेको पार करते हैं ? इसे हे मुनि ! मुझे बखरी तरह बतलाओ क्योंकि तुम्हें वह धर्म विदित है ॥०६॥

(मगवान्) — “इसी सरीरमें मत्पन्न धर्मको बतलाता हूँ जिसको जाबकर स्मरण भाषरण कर (पुरुष) कोकमें अ-दांठिको तर जाता है ॥०७॥”

(मेत्तगू) — “हे महर्षि ! उस उत्तम धर्मका मैं अभितन्त्र करता हूँ जिसको जाबने स्मरण करतै (बीर) भाषरण करनेसे (मनुष्य) कोकमें तर जाता है ॥०८॥

(मगवान्) — “जो कुछ ऊपर नीचे बाधे बीचमें (दिखाई देता) है उधमें तूण्या अभिनिबैस (= आग्रह) जा ( = संस्कार ) बिज्ञानको ह्यकर मव (= ससार) में न ठहरै ॥०९॥ ह्य प्रकार स्मरण कर अग्रमाही हो बिहार करते ममता को बिकरण करते, बिहान् (विशु) यही बम्म बरा शोक परिदेवन (= बन्दन) हुण्णको छोड़ देता है ॥१०॥

(मेत्तगू) — “हे गातम ! महर्षिके मुभापित, उपधि-रहित इन बचनोंका मैं अभितन्त्र करता हूँ । भबस्त मगवान् ! हुण्णका बारा करन हीसे यह धम आपको विदित है ॥११॥ बीर अक्षय वह भी हुण्णोंसे छुटैगे, जिसको हे मुनि ! तुम इच्छित धर्मका उपदेश करते हो । हे नाग ! ऐसे तुम्हें मैं जाकर नमस्कार करता हूँ मुझे भी मगवान् ! इच्छित ही का उपदेश करै ॥१२॥”

भगवान्—“जिस ब्राह्मणको तु ज्ञानी अकिंचन (= परिग्रह-रहित) क्षम सबसे अ-सक जायै । अन्वय ही वह इस भवसागरको पार हो गया है पार हो वह सबसे निरपेक्ष है ॥८३॥ जो तर वहाँ विद्वान् = वेदगू भव-अभवमें संगको छाड़कर विचरता है; वह तुष्या-रहित राग आदि-रहित आत्मा-रहित है । ‘उसे मैं जन्म जरा पार हो गया’—कहता हूँ ॥८३॥

#### ५. घोटक माजव-पुच्छा

(घोटक)—“हे भगवान् ! तुम्हें यह प्युछा हूँ महर्षि ! तुम्हारा बचन (सुनता) थाया हूँ । तुम्हारे विधोप (=बचन) को सुनकर अपने निर्वाण (= मुक्ति) को सीखूँगा ॥८५॥”

(भगवान्)—तो उत्तर हो पंथित ( हो ) स्पृति-मान् ही; यहाँसे बचन सुन अपने निर्वाणको सीको ॥८६॥

(घोटक)—“मैं ( तुम्हें ) वैव-मनुष्य लोकमें अ-किंचन (= विर्कोम) विहरनेवाका ब्राह्मण देखता हूँ । हे समन्त चक्षु (= चारों ओर ध्यानबाधे) ! ऐसे तुम्हें बमरकर करता हूँ । हे शक ! मुझे कर्पकथा (बाप-विचार) न सुनाओ ॥८७॥

(भगवान्)—हे घोटक ! लोकमें मैं किसी कर्पकथीको सुवाने नहीं जाऊँगा । इस प्रकार ओह धर्मको जानकर तुम इस ओज (= भवसागर) को तर जाओगे ॥८८॥

(घोटक)—“हे मन् ! कइवाकर विवेक-धर्मको मुझे उपदेश करो । जिसे मैं जानूँ । जिसके अमुसार न किस हो यहीं साठ अ-वज्ज हां विचरण करूँ ॥८९॥”

(भगवान्)—“घोटक ! इसी शरीरमें प्रायश्च धर्मको बतकाता हूँ; जिसको जानकर (मनुष्य धारण कर व्याचरण कर लोकमें अ-प्रातिओ तर जावे ॥९१॥”

‘जो कुछ ऊपर नीच, बाड़े या बीचमें जाबता है; लोकमें इस ‘संग है समझकर, सब अभवमें तुप्पा मत करो ॥९२॥’

#### ६. उपसीव माजव पुच्छा

(उपसीव)—“हे शुक ! मैं अकेले महान् ओज (= संसारप्रवाह) को निराश्रित हो तरनेकी हिम्मत नहीं रखता । हे समन्त-चक्षु ! आकम्ब बतकाओ जिसका आजव छे मैं इस ओजको टर्क ॥

(भगवान्)—“आकिंचन्य (= कुछ नहीं) को देख स्पृतिमान् हो (‘कुछ नहीं है’ को आलंबन कर ओजको पार करो । कामोंको छोड़ कथाओंसे विरत हो राठ-दिन तुप्पा-धर्मको देखो ॥९३॥

(उपसीव)—“जो सब कामों (= भोगों) में विरागी और (सब) छोड़ ‘कुछ नहीं (= अ-किंचन्य) का अयकम्बन किये (साठ) परम संज्ञा-किमोछोंमें विमुक्त ( रहै ) वह वहाँ (= आकिंचन्य) अचक हो डरगा न ?” ॥९५॥

(भगवान्)—“जो सब कामोंमें विरागी वह वहाँ अचक हो ट्हरता है ॥९६॥”

(उपसीव)—“हे समन्त-चक्षु ! यदि वह वहाँ अचक (= अन्ध अनुपायी) हो बहुत बर्षोंतक ट्हरता है; ( तो ) क्या वह वहाँ मुक्त (= सीतक) हो ट्हरता है या वहाँसे उत्तम विज्ञान (= जीव) प्युत होता है ? ॥९७॥

(भगवान्)—“बामुके बेगसे क्षिप्त अर्चि (= की) बीसे बरत हो जाती है (धर इस दिशामें गई भादि) स्वबहारको प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार मुनि नाम-कामने मुक्त हो बरत हो जाता है स्वबहारको प्राप्त नहीं होता ॥१८॥

(अपसीक)—“बह अक्षतगत है, या नहीं है या बह हमेशाके किने बरोग है ? हे मुनि ! इहे मुझे अच्छी प्रकार बताओ क्योंकि आपकी बह धर्म विदित है ॥१९॥”

(भगवान्)—“अक्षतगत (=निर्वाण प्राप्तके रूप भादि) का प्रमाण नहीं है; जिससे इसे कहा जाये। सभी धर्मोंके बह हो जावेपर, कथन-मार्गसं भी सब (धर्म) बह हो गये ॥१९॥

### ७ नन्द-माणव-पुष्पा

(नन्द)—“जोग जोकमें मुनि हैं” कहते हैं तो यह कैसे ? उत्पन्न ज्ञानको मुनि कहते हैं, या (=कठिन तपपुत्र) जीवनसे मुक्तको ? ॥१९॥”

(भगवान्)—“न वीह (=मठ)से, न कुठिम न ज्ञानसे नन्द ! कुतक (=व्यथित) बन (किसीको) ‘मुनि’ कहते हैं; जो विपत्ता मानकर लोग-रहित आसा-रहित हो विचरते हैं उन्हें ही मुनि कहा है ॥१९॥”

(नन्द)—“कोई कोई अमथ माह्यम इह (=मठ) या कुठ (=वेद विद्याध्ययन)सं मुक्ति करते हैं; श्रीक और अतसे भी मुक्ति करते हैं अनेक रूपसे मुक्ति करते हैं। हे मार्य ! भगवान् ! बैसा आचरण करते क्या बह अम्म-अरासं तर गये होते हैं ? भगवान् ! तुम्हें पूछता हूँ इस मुझे बतलाओ ॥१९॥”

(भगवान्)—“जो कोई अमथ माह्यम । ‘बह अम्म-अरासे नहीं तर’ कहा है ॥१९॥

(नन्द)—“जो कोई अमथ माह्यम अनेक रूपसे मुक्ति करते हैं। यदि मुनि ! (उन्हें) जोबसे अ-तीर्थ (=जग पार हुआ) कहते हैं; तो वे-अनुप-कोकमें कौन अम्म-अराको पार हुआ ?—हे मार्य ! भगवान् ! तुम्हें पूछता हूँ इसे मुझे बतलाओ ॥१९॥”

(भगवान्)—“मैं सभी अमथ माह्यमोंको अम्म-अरासे निवृत्त नहीं करता। जो कि इह कुत स्पृष्ट श्रीक मठ सब छोड़; सभी अनेक रूप छोड़ नृप्याको त्याग अनात्म (=व्याग जादि-रहित) हैं मैं अब नहींको ‘भोग पार’ कहा है ॥१९॥”

(नन्द)—“हे गौतम ! महर्षिके उपदि-रहित सुभाषित इन बचमोंका मैं अमिन्मन्त्र करता हूँ; जो कि इह कुत स्पृष्ट श्रीक, मठ सब छोड़ सभी अनेक रूप छोड़ नृप्याको त्याग अनात्म है मैं भी उन्हें भोग-तीर्थ (=मथसागर-पार) कहा है ॥१९॥”

### ८ हेमक-माणव पुष्पा

(हेमक)—“पहिलेने जो मुझ गौतम-अपहससं पृथक बतलाया—‘पेसा वा, पेसा हाण बह सब ‘पेसा पेसा (=इति इति ह) है बह सब तक बजावेवाक है ॥१९॥ हे मुनि ! मेरा मन्त्र उभमें नहीं रमा हे मुनि ! तुम नृप्या-विवासक धर्म मुझे बतलाओ जिसको जानकर, धरतकर आचरणकर, जोकमें नृप्याको पार होई ॥१९॥”

(भगवान्)—“ह हेमक ! बर्दा इह कुत स्पृष्ट और विद्यातमें उम्ह-आणका इच्छा (ही)

भगवान्—“जिस प्राणिको तु ज्ञानी अकिंचन (= परिग्रह-रहित) काम सबसे अ-सक्त जानै। अक्षय ही वह इस भवसागरको पार हो गया है। पार हो वह सबसे निरपेक्ष है ॥८३॥ जो नर वहाँ विद्वान् = वेदगुरु भव-अभवमें संगको छोड़कर विचरता है; वह तुष्णा-रहित राग आदि-रहित आत्मा-रहित है। उसे मैं जन्म जरा पार हो गया” —कहा हूँ ॥८२॥

#### ५. धोतक-माणव-पुच्छा

(धोतक)—“हे भगवान् ! तुम्हें वह पछता हूँ महर्षि ! तुम्हारा वचन (सुवन) बाहता हूँ। तुम्हारे निर्बोध (=बचन) को सुनकर अपने निर्बोध (=मुक्ति) को सीखूँगा ॥८५॥”

(भगवान्)—“तो तपस्व हो पंडित (हो) स्मृति-मान् ही; वहाँसे वचन सुन अपने निर्बोधको सीखो ॥८६॥”

(धोतक)—“मैं (तुम्हें) वैश-मनुष्य लोकमें अ-किंचन (= बिकर्म) विहरनवाला प्राण्य देखता हूँ। हे समस्त ब्रह्म (= चारों ओर घोंकवाले) ! मैं तुम्हें वमस्कर करता हूँ। हे सक्त ! मुझे कर्मकथा (वाद-विवाद) से सुझाओ ॥८७॥”

(भगवान्)—“हे धोतक ! लोकमें मैं किसी कर्मकथीको सुझाने नहीं जानूँगा। इस प्रकार भेद धर्मको जानकर तुम इस ओष (= भवसागर) को तर जाओगे ॥८८॥”

(धोतक)—“हे मछ ! कर्मवाचक विवेक-धर्मको मुझे उपदेश करो। जिस मैं जानूँ। जिसके अनुसार न जिस हो वहाँ सात अ-बद्ध हो विचरन करूँ ॥८९॥”

(भगवान्)—“धोतक ! इसी शरीरमें मायव्य धर्मका बतकाता हूँ; जिसको जानकर (मनुष्य धरन कर आचरण कर लोकमें अ-शांतिको तर जाये ॥९०॥”

‘जो कुछ कपूर, नीचे, धावे या बीचमें जानता है; लोकमें इस ‘संग ई समझकर नर अवधमें तुष्णा मत करो ॥९१॥’

#### ६. अपसीव माधय पुच्छा

(अपसीव)—“हे शुद्ध ! मैं अकळे महात् ओष (= संसारप्रवाह) को विराहित हा तरपेकी हिम्मत नहीं रखता। हे समस्त-ब्रह्म ! आत्म्य बतकाओ जिसका आशय के मैं इस ओषको तर्क ॥”

(भगवान्)—“अकिंचन्य (= कुछ नहीं) को देख स्मृतिमान् हो (कुछ) नहीं है जो आत्म-वद कर ओषको पार करो। कामोंको छोड़ कर्माधीसे विरत हो रात-दिन तुष्णा-स्रवका रेपी ॥९२॥”

(अपसीव)—“जो सब कामों (= भोगों) में विरागी और (सब) छोड़ ‘कुछ नहीं (= अकिंचन्य) का अवलम्बन किये (मात) परम संज्ञा-विमोक्षोंमें विमुक्त (रहे) वह वहाँ (= अकिंचन्य) अक्षय हो उदरगा न ?’ ॥९५॥”

(भगवान्)—“जो सब कामोंमें विरागी वह वहाँ अक्षय हो उदरता है ॥९६॥”

(अपसीव)—“हे समस्त-ब्रह्म ! यदि वह वहाँ अक्षय (= अन्ध अनुयायी) हो बहुत अप्येतक उदरता है; (तो) क्या वह नहीं मुक्त = शीतल हा उदरता है या वहाँसे उतका विगाव (= शीघ्र) प्युन होता है ? ॥९७॥”

(मगवान्)—“वायुके वेगसे जिस जधि (=डी) जैसे बरत हो जाती है (बाँर इस विज्ञानमें गई जादि) व्यवहारको प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार मुनि नाम-कामसे मुक्त हो बस्त हो जाता है व्यवहारको प्राप्त नहीं होता ॥१८॥

(उपसीध)—“बह बरतगत है या नहीं है, या बह हमसाके छिये आगो है ? हे मुनि ! इस मुझे अच्छी प्रकार बतलाओ क्योंकि आपको यह धर्म विदित है ॥१९॥”

(मगवान्)—“बस्तगत (=निर्वाण-प्राप्तके रूप भादि) का प्रमाण नहीं है; जिससे इसे कहा जाये। सभी धर्मोंक बह हो जानपर कथन-मार्गस भी सब (धर्म) बह हो गये ॥१॥

### ७ मन्व माणव-पुच्छा

(मन्व)—“ओग कोकमें मुनि हैं” कहते हैं सो यह कैसे ? उत्पन्न ज्ञानको मुनि कहते हैं, वा (=कठिन तपपुत्र) जीवन्तस मुक्तको ? ॥१॥ १॥

(मगवान्)—“न घटि (=मत्)से, न सुक्तिसे न ज्ञानसे मन्व ! कुसक (=विकृत) क्व (किसीको) ‘मुनि’ कहते हैं; जो विपसा मानकर क्रोध-रहित आशा-रहित हो विचरते हैं, उन्हें मैं मुनि कहता हूँ ॥१॥ २॥”

(मन्व)—“कोई कोई अमण ज्ञाहण इह (=मत्) वा कुत (=वेद विद्याध्ययन)स मुनि कहते हैं, घीक जार बतने भी मुनि कहते हैं अनेक रूपसे मुनि कहते हैं। हे मार्य ! मगवान् ! क्या आचरण करते क्या बह अम्म-अरासे तर गये होते हैं ? मगवान् ! तुम्हें पूछता हूँ इस मुझे बतलाओ ॥१॥ ३॥

(मगवान्)—“जो कोई अमण ज्ञाहण । वह अम्म-अरासे नहीं तर” कहता हूँ ॥१॥ ४॥

(मन्व)—“जो कोई अमण अनेक रूपसे मुनि कहते हैं। यदि मुनि ! (उन्हें) ओघसे अ-तीर्ण (=न पार हुआ) कहते हैं; तो विच-मनुष्य-कोकमें कौन अम्म-अराको पार हुआ ?—हे मार्य ! मगवान् ! तुम्हें पूछता हूँ, इसे मुझे बतलाओ ॥१॥ ५॥

(मगवान्)—“मैं सभी अमण ज्ञाहणोंका अम्म-अरासे निवृत्त नहीं करता। जो कि इह, भुत स्पृत घीक अत सब छोड़; सभी अनेक रूप छोड़ तुम्हाको त्याग अनात्मव (=आय भादि रहित) हैं मैं उन तराको ‘ओघ पार’ कहता हूँ ॥१॥ ६॥”

(मन्व)—“हे गौतम ! महर्षिके उपधि-रहित सुमापित इव बचनोंका मैं अमिजन्म करता हूँ; जो कि इह भुत स्पृत घीक, अत सब छोड़ सभी अनेक रूप छोड़ तुम्हाको त्याग अनात्मव हैं मैं भी उन्हें आध-तीर्ण (=अधसागर-पार) कहता हूँ ॥१॥ ७॥

### ८ हेमक माणव पुच्छा

(हेमक)—“पहिलेने जो मुझ गौतम-उपदेशसे पूढक बतलपा—‘पेसा वा, ‘पेसा होगा वह सब ‘पेसा पेसा (=इष्टि इष्टि ह) है वह सब तर्क बजानेवाका है ॥१॥ ८॥ हे मुनि ! मरा मत्त उबमें नहीं रमा है मुनि ! तुम तुम्हा-विवासाक धर्म मुझे बतलाओ जिसको आचरकर, धारणकर आचरणकर, कोकमें तुम्हाको पार होके ॥१॥ ९॥

(मगवान्)—“हे हेमक ! वहाँ इह भुत स्पृत जार विज्ञानमें उम्ह-उरागका इहवा (ही)



भगवान्— 'जिस ब्राह्मणको तुम्हारी अकिंचन (= परिग्रह-रहित) कर्म सबसे अधिक जानै। अथवा ही वह इस भवसागरको पार हो गया है। पार हो वह सबसे विरहेश है ॥८३॥ जो नर नहीं विद्वान् = वेदगू, भव-अभवमें संशयको छाड़कर विचरता है; वह तृप्ता-रहित राग आवि-रहित आशा-रहित है। 'उसे मैं जन्म जग पार हो गया'—कहता हूँ ॥८४॥

#### ५. धोतक-माणव-पुच्छ

(धोतक)— 'हे भगवान् ! तुम्हें वह पछता हूँ महर्षि ! तुम्हारा वचन (सुवचन) बाधता हूँ। तुम्हारे निर्घोष (=वचन) को सुनकर अपने निर्वाण (= मुक्ति) को सीखूँगा ॥८५॥'

(भगवान्)— 'तो तूपर हो पंडित (हो) स्मृति-मान् हो; यहाँसे वचन सुन अपने निर्वाणको सीखो ॥८६॥

(धोतक)— 'मैं (तुम्हें) देव-अमुष्य लोकमें अ-किंचन (= विघ्न) विहरनेवाका ब्राह्मण देखता हूँ। हे समस्त जगु (= चारों ओर जाँचवाले) ! ऐसे तुम्हें नमस्कार करता हूँ। हे धक ! मुझे कर्कषया (बाध विदाय) से छुड़ाओ ॥८७॥

(भगवान्)— 'हे धोतक ! लोकमें मैं किसी कर्कषयीको छुड़ावे नहीं जाऊँगा। इस प्रकार जोध धर्मको जानकर तूम इस जोध (= भवसागर) को तर जाओगे ॥८८॥

(धोतक)— 'हे ब्रह्म ! कष्टवाकर विवेक-धर्मको मुझे उपदेश करो। जिसे मैं जानूँ। जिसके अनुसार व किस हो वहाँ घाठ अ-बद्ध हो विचरन करूँ ॥८९॥'

(भगवान्)— 'धोतक ! इसी शरीरमें मावद्ध धर्मको बतकाता हूँ; जिसको जानकर (अनुप्य धरण कर अचरण कर लोकमें अ-सांतिको तर जाये ॥९०॥'

'जो कुछ ऊपर, नीचे, बाड़े या बीचमें जानता है; लोकमें इस 'सग ई' समझकर, सब-अभवमें तृप्ता मत करो ॥९१॥'

#### ६. उपसीध-माणव-पुच्छ

(उपसीध)— 'हे ब्रह्म ! मैं अथके महान् जोध (= संसारप्रवाह) को निराश्रित हो तरवैकी हिम्मत नहीं रखता। हे समस्त-जगु ! अकर्म्य बतकाओ जिसका आश्रय के मैं इस जोधको तर्क ॥

(भगवान्)— 'अकिंचन्य (= कुछ नहीं) को देख स्मृतिमान् हो 'कुछ नहीं है' को जाहलन कर जोधको पार करो। धर्मको छोड़ कर्मात्मसे विरत हो रात-दिव मुष्य-अपका देखो ॥९२॥

(उपसीध)— 'जो सब धर्मों (= धर्मों) में विरागी और (सब) छोड़ 'कुछ नहीं' (= अकिंचन्य) का अवकर्म्य बतके (सात) परम संज्ञा-विमोक्षोंमें विमुक्त (रहै) वह वहाँ (= अकिंचन्य) अथक हो उदरगा न ?' ॥९३॥

(भगवान्)— 'जो सब धर्मोंमें विरागी वह वहाँ अथक हो उदरता है ॥९४॥'

(उपसीध)— 'हे समस्त-जगु ! यदि वह वहाँ अथक (= अथ अनुवाची) हो बहुत अर्थिक उदरता है; (तो) क्या वह वहाँ मुक्त = शीतक हो उदरता है या वहाँसे उलका विज्ञान (= धीव) प्युन होता है ? ॥९५॥

(मगधान्)—“बापुके बेगसे छित्त बन्धि (=क) जमे बस्त हो जाती है (बार इस विषयमें गई जादि) ध्वजहारको प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार मुनि नाम-कायसे मुक्त हो बस्त हो जाता है ध्वजहारको प्राप्त नहीं होता ॥५८॥

(उपसीध)—“बह अर्द्धगत है, वा नहीं है, या बह हमेशाके किये बरोग है ? हे मुनि ! इसे मुझे अच्छी प्रकार बताओ क्योंकि आपको यह धर्म विदित है ॥५९॥”

(मगधान्)—“अर्द्धगत (=निर्वाण प्राणके रूप जादि) क्य प्रमाण नहीं है; जिसस इसे कहा जाये । सभी धर्मोंक वह हा ज्ञानपर कबल-मार्गस भी सब (धर्म) गए हा गये ॥ १ ॥

७ नन्द माणव पुच्छा

(नन्द)—“जोग जोकमें मुनि है” कहते हैं सो यह कैस ? उत्पन्न ज्ञानको मुनि कहते हैं, वा (=कठिन तपपुत्र) जीवनसे बुद्धकी ? ॥१०१॥”

(मगधान्)—“न इष्टि (=मठ)से न मुक्तिसे न ज्ञानसे नन्द ! बुद्धक (=रहित) जन (किसीको) ‘मुनि’ कहते हैं; जो विपत्ता मानकर कोम-रहित आशा-रहित हो विचारते हैं, उन्हें ही मुनि कहता हूँ ॥ १ ॥ २०

(नन्द)—“कोई कोई धमज आह्वय इष्ट (=मठ) वा मुठ (=बेग विद्याध्ययन)से मुक्ति करते हैं; पीक बार प्रतस भी मुक्ति करते हैं अनेक रूपस मुक्ति करते हैं। हे मार्प ! मगधान् ! वैसा ध्याकरण करते क्या वह जन्म-जरास तर गये हात हैं ? मगधान् ! तुम्हें बुद्धता हूँ, इस मुझे बतलाओ ॥ १ ॥ २१

(मगधान्)—“जो कोई धमज आह्वय । ‘बह जन्म-जरास नहीं तर’ कहता हूँ ॥ १ ॥ २१”

(नन्द)—“जो कोई धमज आह्वय अनेक रूपस मुक्ति करते हैं। बधि मुनि ! (उम्हें) जोबसे ध-तीर्ण (=न पार हुआ) करते हैं; तो ईश-मनुष्य-जोकमें कीम जन्म जराको पार हुआ ?—हे मार्प ! मगधान् ! तुम्हें बुद्धता हूँ, इसे मुझ बतलाओ ॥ १ ॥ २२

(मगधान्)—“मैं सभी धमज आह्वयोंको जन्म-जरासे निवृत्त नहीं कहता। वा कि इष्ट, मुठ स्पृष्ट सीक प्रत सब छोड़; सभी अनेक रूप छोड़ मुण्याको त्याग बसाजब (=जगत् अवि-रहित) हैं मैं उन नरोंको ‘भोष पार’ कहता हूँ ॥ १ ॥ २३

(नन्द)—“हे गौतम ! महर्षिक उपधि-रहित सुभाषित इन बचनोंका मैं अभिलम्बन करता हूँ, जो कि इष्ट धुत स्पृष्ट सीक, प्रत सब छोड़ सभी अनेक रूप छोड़ मुण्याको त्याग बसाजब हैं मैं भी उन्हें भोष-तीर्ण (= भवसागर-पार) कहता हूँ ॥ १ ॥ २४

८ होमक माणव पुच्छा

(होमक)—“पक्षिमेंले वा मुम गीतम-उपपंसस इषक बतलाया—‘ऐसा था,’ ऐसा हागा यह सब ‘ऐसा ऐसा (=इति इति इ) है यह सब तक बजनेवाक्य है ॥ १ ॥ २५

हे मुनि ! मेरा मन उबमें नहीं रमा इ मुनि ! तुम मुण्या-विवास्तक धर्म मुझ बतलाओ जिसको आवकर धरणकर भावरणकर, जोकमें मुण्याको पार होई ॥ १ ॥ २६

(मगधान्)—“हे होमक ! यहाँ इष्ट धुत स्पृष्ट बार विज्ञानमें छन्द-जराका इरागा (ही)

अधुत निर्वाण पद् ई ०११ ॥ इसे जय, धरमकर साग इसी जन्ममें निर्वाण-प्राप्त, उपसात होते हैं और लोकमें लुप्ताको पार हो गये होते हैं ॥१११॥

९. शत्रुद्वय प्राणय-पुच्छा

(तोद्व) — "त्रिममें काम नहीं समते जिसको लुप्ता नहीं दे, पार विवाहसे जो पार होगया, उसका विमोक्ष कैसा होता है ? ॥११२॥

(भगवान्) — त्रिममें काम नहीं उसका विमोक्ष नहीं ॥११३॥

(तोद्व) — 'यह आभास-रहित है या आह्वामन-रहित ? प्रज्ञावान् है या प्रज्ञा (बाह्) सा है ? इ मुनि ! सक्र ! समस्त चक्षु ! जस में हुये काम सख् बैस पठराभो ॥११४॥

(भगवान्) — "यह आह्वामन-रहित है आभास-रहित नहीं यह प्रज्ञावान् है प्रज्ञा-(बाह्) सा नहीं । हे तोद्व ! जो काम-अप (= कामका भार ससार) में अ-अस्य मेसे मुनिका अ-किंचन जाता ॥११५॥

१०. कप्य प्राणय-पुच्छा

(कप्य) — 'बड़ी भयानक बाइमें सरोबरके बीचमें पड़े मुसे तुम हीप (= शरण-स्थान) बतलाया त्रिममें यह (संसार-मुःग्य) फिर न हो ॥११६॥'

(भगवान्) — 'हे कप्य ! बड़ी भयानक । तुम हीप बतलाता हूँ ॥११७॥

आकिंचन = अन् शान्त (न प्रहण करना) यह सर्वोपम हीप है ।

हुये में जग ग्रा-पु-विनाश (कप्य) निर्वाण करता हूँ ॥११८॥

यह जानकर धरमकर इसी जन्ममें जो निर्वाण-प्राप्त हो गये, यह मारके पछमें नहीं दगा व यह मारके अनुचर (हीत हैं) ॥११९॥'

११. अनुकण्ठिण प्राणय-पुच्छा

(अनुकण्ठि) — 'मभमागर पारंगत कामका-रहित (गुहें) मुनकर में अकाम (= निर्वाण) पूछनेको आया हूँ हे महज-अश ! मुग शास्त्रिन्द बतलाया । हे भगवान् ! हीकमे दगका मुम करा ॥१२॥ भगवान् कामोका तिराकरकर गुर्यकी तरह तेजय तेजयो (तिरुतकर) तुम तुबर्षापर विहरत हा । हे महा प्रज्ञ ! मुग अ-अप मजको पर्य बतलाओ त्रिमको में जानूँ भार यहाँ जन्म अराय विनाश कर') ॥१२१॥

(भगवान्) — काममें लाभका हय मिकामय (=विनाशका) का श्रेय ममरा यह कुज भी मुग प्राय या त्याग न रह जये ॥१२२॥ जा पहिनेका है उगे मुगा है पाउे कुज मय (परा) ही मप्यमें भी परि महज न करे, ता यह उपसात हा विचारा ॥१२३॥ हे अकाम (अ) काम-अ-रमे सर्वथा लाभ-रहित है (उम) अकरय (=वित्त-मय) नहीं हा । त्रिम कारण कि यह मु कुदे कामें अ-अ ॥१२४॥'

१२. मद्रापुष्य =मद्रापुष्य प्राणय पुच्छा

(मद्रापुष्य) — "अ-अ-आगी लुप्ता देरि हय-रहित=अशरी-रहित अ-अ-कारंगत विमुक्त कर-अ-आगी । (अ-अ) मुमय (ग) ब-अ-अ करता हूँ ; मग । (अ-अ) मुनकर (अ-अ) बर्तने अ-अ-अ ॥१२५॥ हे और ! अ-अ-अ अ-अ (अ-अ-अ) ही हय-अ-अ हय आया अ-अ

(नाना) देसोंमें इकट्ठे हुए हैं। उन्हें तुम अच्छी प्रकार व्याख्यान करो क्योंकि तुम्हें यह धर्म बिकित है ॥ १२४ ॥

(भगवान्)—“ऊपर भीचे तिर्यक और मध्यमें सारी संग्रह करकेही नृपणाको छोड़ दो। छाकमें जो संग्रह करना है, उसीस मार जंगुओंका पीछा करता है ॥ १२५ ॥ संग्रह करनेवालोंको ‘सुरसुके हाथमें जैसी प्रभा’ समस्त मारे लोकमें कुछ भी संग्रह न करो ॥ १२६ ॥”

### १३ उदय माणव-पुच्छा

(उदय)—“ध्यानी पिरज (= विमक) कृत-कृत्य, भनाद्यव, मर्य धर्म-वारगत, (भाप)क पास प्रथम छकर भावा हैं, प्रज्ञान अभिधाका विनाश करनपाछे। प्रज्ञा-विमोक्षको बतलाओ ? ॥ १२७ ॥

(भगवान्)—“कामोंमें छम् (= राग) और धीर्मन्मका प्रज्ञान (= विनाश) स्थान (= विधित-आकल्प) का इतना काहरका विचारण, उपकारत मृति परिमुह, सर्व पूरक धर्मको भ्रान्ता-विमोक्ष कहता हैं ॥ १२८ १२९ ॥

(उदय)—“छाकमें संबोजन (= बंधन) क्या है उमकी विचारणा क्या है ? कीमते (धर्म)क प्रज्ञानसे निर्माण है ? ॥ १३ ॥

(भगवान्)—“छाकमें नृपणा संबोजन है बितर्क उमकी विचारणा है। नृपणाका विनाश निर्माण’ कहा जाता है ॥ १३१ ॥

(उदय)—“किय ( क्या ) स्मरणकर विपरत विज्ञान निरुह होता है यह भगवान्की पूछने भाव है सो ( इस ) आपके कथनको सुनि ॥ १३१ ॥”

(भगवान्)—“मीनर धीर बाहरकी देववाओंका न अभिजन्मकर एसा स्मरणकर विपरत इस सुमुमुक्षु विज्ञान निरुह होता है ॥ १३२ ॥

### १४ पोसाळ-माणव पुच्छा

(पोसाळ)—“जो कमीतको कहता है ( जो ) अच्छे संशय-रहित सर्व-धम-वारंगता है, (उसके पास) प्रज्ञान छकर भावा हैं। म्य सदा विगतहुके सर्व कामोंको छोड़ने पाछे ‘मीनर और बाहर कुछ नहीं’ एसा रगनेवाके ज्ञानको दे शक। पूछता हैं। उस प्रकारका ( पुरा ) किये छेजाये जानक (= नव ) है ॥ १३२ १३३ ॥

(भगवान्)—“सारी विज्ञान-व्यतिथियोंको जानते हुए उदरे हुए विमुक्त तथ्यागत ह्ये तम पराजय जानते हैं। अ-किंचित्-अनकक उरपाइक ( अ-परराग ) मन्दि-संबोजन है—वेसा ह्ये जाकर तब वहाँ देखता है। उस चिर अन्वित-वाक माहात्मका यह ज्ञान तत्प (= साव) है ॥ १३३, १३४ ॥”

### १५ मोघराज माणव-पुच्छा

(मोघराज)—“मैंने जो बार शकको प्रथम पूछे परन्तु चतुर्मास्ये मुम व्याख्यान नहीं किया। मैंने मुना है देव-कृति (= पुत्र) तीगरी बारतक व्याकरण (= उत्तर) करन है ॥ १३५ ॥ यह छेक परछोक वृत्त-गहित मछाकोक मुम पसरवी गातमकी रटि (= मत्र )

नहीं जान सकता ॥ १३६ ॥ ऐसे अमर्षियोंके पास प्रश्नके साथ क्या है, जैसे छोड़को देखनेवालेको मृत्यु-राज नहीं देखता ॥ १३० ॥

(भगवान्)—“मोक्षराज ! सदा स्मृति रखते छोड़को मूल्य समझकर देखो । इस प्रकार आत्माकी दृष्टिको छोड़(ने बाधा) मृत्युसे तर जाता है । छोड़को ऐसे देखते हुयेकी ओर मृत्युराज नहीं टाकता ॥ १३८ ॥

### ११. विगिय-भाणव पुण्ड्रा

(विगिय)—“मैं भीषण ज बक विरुध हूँ । ( मेरे ) मेरु छुड़ नहीं भोग डीक नहीं । मैं मोहमें पड़ा भीषण ही न लड होजाऊँ ( इस किये ) धर्मको बतझमो जिससे मैं बहोँ अम्म बराके विवाहको जानूँ ॥ १३९ ॥

(भगवान्)—“स्वोमि (मात्रियोंको) मारे जाते देव प्रमत्तजव पीडित होत हैं । इसकिये विगिय । तू संसारमें न अम्मतेके किये करको छोड़ ॥ १४ ॥’

(विगिय)—“बार दिशावें, तुम्हें अरुध अमृत वा अस्युत नहीं और छोड़में कुछ भी तुम्हें अविज्ञात नहीं है । धर्मको बतझमो किममें मैं अम्म-बराके विवाहको जानूँ ॥ १४१ ॥

(भगवान्)—“तुम्ह-किस मनुजोंको संतप्त करा-पीडित देखत हुये हे विगिय ! तू अ प्रमत्तहो अ-पुत्रमणके किये तुम्हको छोड़ ॥ १४२ ॥

भगवतमें पापापक-वैर्यमें विहार करते भगवान्ने यह कहा । यह पार केजाये वाके ( = पारंगमबीच ) धर्म है इसकिये इस धर्म-पर्यापक नाम ‘पारायण है ।

+ + + +

सुनक-सुच । दोण सुच । सहस्त्रमिकसुनी-सुच । सुन्दरिका भारद्वाज-सुच ।  
अचदीप-सुच । उदान-सुच । मल्लिका सुच । ( ई पू ५०२-५०० ) ।

‘वेसा मीने भुजा—एक समय भगवान् आबस्तीमें अनापयिडके आराम जेत धर्ममें विहार करते थे ।

“मिथुजो ! यह पौष पुराण ब्राह्मण धर्म इस समय कुर्सीमें दिखाई देत है । कीकसे पौष ? पहले मिथुजो ! ब्राह्मण ब्राह्मणिक पास जाते थे अ-ब्राह्मणिके पास नहीं । मिथुजो ! इस समय ब्राह्मण ब्राह्मणिक पास भी जाते हैं; अ-ब्राह्मणिके पास भी । ( किनु ) मिथुजा ! कुछ कुर्षियोंके ही पास जाते हैं अ-कुर्षियोंके पास नहीं । यह मिथुजो ! प्रथम पुराण ब्राह्मण धर्म है जो इस समय कुर्सीमें दिखाई देता है ।

‘वहिके मिथुजो ! ब्राह्मण अनुमती ब्राह्मणिके पास ही जात थे, अ-अनु-मतीके पास नहीं । आब्रह्मण अ अनुमतीके पास भी । ।

‘वहिके मिथुजो ! ब्राह्मण ब्राह्मणिके न चरीरते थे न बैचन थे वरस्वर प्रेमके साथ

१ सत्ताईसवाँ ( ई पू ५१ ) वर्षावास आबजी ( अतचव ) में । २ अ मि.

ही सहवास करते थे। अथवा ब्रह्मण ब्राह्मणीको करीबते भी हैं। वेचते भी हैं परस्पर प्रेमके साथ भी। अथवा मके साथ भी ।।

‘पहिले ब्राह्मण सकिधि—बनका भाग्यका चौकी-सोने (दरबत-कातरुम) का समझ नहीं करते थे। इस समय समझ करते हैं।।

‘पहिले भिक्षुओ! ब्राह्मण सार्वकाणके मोक्षके किंच सायं प्रातःकाणके मोक्षके लिये प्रातः खोज करते थे। इस समय भिक्षुओ! ब्राह्मण इच्छामर, पेरमर या बाकी (वर) के जाते हैं। इस समय भिक्षुओ! कुपे संन्याको संन्याके मोक्षके लिये। यह भिक्षुओ! पौषको पुराण ब्राह्मण धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देता है। ब्राह्मणोंमें नहीं। भिक्षुओ! यह पौष पुराण ब्राह्मण-धर्म इस समय कुत्तोंमें दिखाई देते हैं।’

### दोष-मुक्त

ऐसा मैंने सुना—एक समय मगवान् धायस्तीमें जेतपनमें विहार करत थे। तब प्रोण ब्राह्मण बहो मगवान् थे बहो गया। जाकर मगवान्के साथ (कुवाक-मस्तकर) एक बार बैठकर, मगवान्को बोला—

‘हे गौतम! मैंने सुना है—अमय गौतम धीर्य = बृह = महत्कृत् = अथयत = अथःप्राप्त ब्राह्मणोंको न अभिवादन करता न प्रत्युत्थान करता न आसबसे निर्ममिता करता है। सो हे गौतम! क्या (यह) डीक है? आप गौतम ब्राह्मणोंको अभिवादन नहीं करते?। सो हे गौतम! यह डीक नहीं है।

‘तू भी डीक! ब्राह्मण होनेका दावा करता है?’

‘हे गौतम! ब्राह्मण (यह है जो) दोनों ओरसे सुजात—मातासे भी विष्णुव पितामह-मातामहकी साथ पीछियों तक आतिसे अ-पठित अनिमित्त हो। अथवायी मंत्र (= वेद)-वर तीनों वेदोंका पारंगत। सो यह डीक बोलते हुये मुझे ही (ब्राह्मण) बोलेंगा। हे गौतम! मैं ब्राह्मण हूँ दोनों ओरसे सुजात।

‘प्रोण! जो तेरे पूर्वके अपि मंत्रोंके कर्ता मंत्रोंके प्रवक्ष्य (ये) जिनके पुराने मंत्रपदको इस समय ब्राह्मण पीठके अनुसार पाव करत हैं प्रोचके अनुसार प्रवचन करते हैं। मापिकके अनुसार मापण करते हैं; स्वाप्यामितक अनुसार स्वाप्याव करते हैं। बापिकके अनुसार बाचन करते हैं; जैसे कि—अएक नामक नामवेच विषमिन्न ममदगि अगिरा भरहाव वसिष्ठ, कश्यप मृगु, उन्हींने पांच तरहके ब्राह्मण बतलाने हैं—(१) ब्रह्म-धर्म, (२) वैश्व-धर्म (३) मर्याद (४) समिध-मर्याद (५) पांचवां ब्राह्मण-व्याप्याक। इनमें प्रोण! तू कौन ब्राह्मण है?’

हे गौतम! हम इन पांचो ब्राह्मणोंको नहीं जानते, तब ‘हम ब्राह्मण हैं’ यह जाबते हैं। अथवा हो! आप गौतम मुझे ऐसा धर्म-उपदेश करें जिसमें मैं इन पांचो ब्राह्मणोंको पावूँ।

‘तो ब्राह्मण! सुनो, और अच्छी तरह धारण करो; कहता हूँ।

‘अथवा भो!

“किस ज्ञान ! ब्राह्मण-सम होता है। वही ज्ञान ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है। वाचिवाचसे निर्दिष्ट। वह अक्षताकीस बर्ष (वर्ष) तक मंत्रोंको पढ़ते कौमार ब्राह्मण्य धारण करता है। अक्षताकीस बर्ष तक कामार-ब्रह्मचर्य धारणकर मंत्रोंको पढ़कर आचार्यके शिष्ये आचार्य बन खोजता है। धर्मस ही, अधर्मसे नहीं। ज्ञान ! धर्म क्या है ? कृपिमे नहीं वाणिज्यसे नहीं गोरह्यास नहीं इयु-अक्षसे नहीं राज-पुरुषता (= लक्ष्मी नाक्षरी)स नहीं किसी एक शिष्यसे नहीं, कपाळको न अधिक मावते हुय अथवा मिहाराचार्थसे। वह आचार्यको आचार्य पद (= गुरुशिष्य) देकर, कंध-क्षमभू, मु वा, कावाच-बध धारणकर, घास बेघर हो प्रमज्जित होता है। वह इस प्रकार प्रमज्जित हो (१) मैत्री-युक्त चित्तसे एक शिक्षाको आश्रितकर विहरता है, तथा दूसरी तीसरी, चर्षपी। इसी प्रकार ऊपर भीच तिर्बग् सव बुद्धिस सर्वाथ, सभी लोकको मैत्री-युक्त विदुः=महद्वयत=ध प्रमाण अथर अक्षोभी चित्तसे प्रकृत कर विहरता है। (२) कल्या युक्त चित्तस एक शिक्षा। (३) मुक्ति-युक्त चित्तस (४) उपेक्षा-युक्त चित्तसे अक्षोभी चित्तस विहरता है। वह इन चार ब्रह्म-विहारोंका भावनाकर काया छोड़ मरनेके बाद सुगति ब्रह्मलोकमें उत्पन्न होता है। इस प्रकार ज्ञान ! ब्राह्मण ब्रह्म-सम हाता है।

‘और ज्ञान ! किस ब्राह्मण देव-सम होता है।’ ज्ञान ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात होता है। वह अक्षताकीस बर्ष कौमार-ब्रह्मचर्य धारण करता है। अक्षताकीस बर्ष ब्रह्मचर्य धारणकर मंत्रोंको पढ़ आचार्य-धम खोजता है। आचार्यको आचार्य-पद देकर, मायां (=शारा) खासता है धर्मस अथजस नहीं। ज्ञान ! क्या धर्म है ? न अक्षसे न विद्वयम (केवल) अक्षसहित इत ब्राह्मणी ही को खोजता है। वह ब्राह्मणीहीके पास जाता है, न क्षत्रियार्थके पास न वैश्याणीक पास न क्षत्राणीक पास न चाण्डालीके पास न निषादिक पास न वैश्यके पास न रथकारिके पास न पुत्रसीक पास जाता है। न धर्मिक पास न (बुध) पिलानेशामी न अक्ष-अनुमती। ज्ञान ! ब्राह्मण गर्भिकके पास क्यों नहीं जाता ? विद्यार्थिक पास क्यों नहीं जाता ? यदि ज्ञान ! ब्राह्मण गर्भिकके पास जात ता (पैदा होनाका) भावना न भावना अति-मेदु (अति सुख)स उत्पन्न हाता है। इसमिध ज्ञान ! ब्राह्मण गर्भिकके पास नहीं जाता। ज्ञान ! ब्राह्मण विद्यार्थिक पास क्यों नहीं जाता ? यदि ज्ञान ! ब्राह्मण जाये तो भावना न भावना अक्षुभ-अति-नीत नमक हाता है। अनु-अनुमतीक पास क्यों नहीं जाता ? ब्राह्मण अनुमतीके पास जाता ता वह ब्राह्मणी उनके शिष्य न कामार्थ न इव-अथ (=मद अर्थ) न इति-अथ अदिष्ट प्रजाई ही हाती है। वह मिथुन (= पुत्र वा पुत्री) उत्पन्नकर, कैम इमधु गु वा प्रमज्जित हाता है। वह इस प्रकार प्रमज्जित हो प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान तृतीय ध्यान चतुर्थ ध्यानका प्राप्त हा विहरता है। वह इस चारों ध्यानकी भावना करके धारि छोड़ मरनेके बाद सुगति ब्रह्मलोकमें उत्पन्न हाता है। इस प्रकार ज्ञान ! ब्राह्मण देव-सम हाता है।

क्या ज्ञान ! ब्राह्मण मर्त्य हाता है ? ज्ञान ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुजात हाता

है । वह अद्वितीय बर्ष श्रीमार-अष्टावर्ष पाठनकर, मंत्रोंको पढ़ आचार्यको आचार्य-जन देकर भार्या खोजता है, धर्मसे ही अधर्मसे नहीं । ब्राह्मणीके पासही जाता है । यह मिथुन उपन्यसकर, उसी पुत्र-अगम्यकी हृष्यासे कुटुम्बमें बस रहता है, प्रमत्त नहीं होता । जितनी पुराने ब्राह्मणोंकी मर्णादा है उसमें ही उद्वार रहता है (उसका) अति-क्रमण नहीं करता इसी छिये (बह) ब्राह्मण मर्णाद कहा जाता है ।

‘किये श्रेण ! ब्राह्मण संमिन्न-मर्णाद होता है ? ब्राह्मण दोनों ओरस सुगत होता है । अष्टावर्षीस बर्ष श्रीमार-अष्टावर्ष पाठन करता है । आचार्य-जन देकर भार्या खोजता है । धर्मसे भी अधर्मसे भी कबस भी विद्वत्से भी । वह ब्राह्मणीक पास भी जाता है अत्रियाणीके पास भी जाता है । अन्-स्तुमतीके पास भी जाता है । उसकी ब्राह्मणी कामार्थ भी होती है कीर्त्तार्थ ( = द्वायी ) भी । पुराने ब्राह्मणोंकी जितनी मर्णादा है वह उधमें नहीं उद्वरता; उसको अति-क्रमण करता है; इसकिये (बह) ब्राह्मण संमिन्न-मर्णाद कहा जाता है ।

‘किये श्रेण ! ब्राह्मण ब्राह्मण-चाहाक हाता है ? यहाँ श्रेण ! ब्राह्मण दोनों ओरसे सुवात होता है । अष्टावर्षीस बर्ष श्रीमार-अष्टावर्ष पाठन करता है । आचार्य जन खोजता है, धर्मसे भी अधर्मसे भी कृषिसे भी वागिन्पसे भी किसी एक शिष्यसे भी केवक मिहासे भी । आचार्य-जन देकर, भार्या खोजता है धर्मसे भी अधर्मसे भी । वह ब्राह्मणीके पास भी जाता है । अन्-स्तुमतीके पास भी । उसकी ब्राह्मणी कामार्थ भी होती है । वह सब कामोंसे बीबिका करता है । उसको अब ब्राह्मण ऐसा पछते हैं— भाप ब्राह्मण होनेका दावा करते सब कामोंसे बीबिका क्यों करते हैं ? वह ऐसा उचर देता है—‘जसे भग छुचिको भी अघाती है अघुचिको भी अघाती है, और भाग उससे किस नहीं होती । ऐसे ही भो ! ब्राह्मण सब कामोंसे बीबिका करता है और उससे किस नहीं होता’ । श्रेण ! कृि सब कामोंसे बीबिका करता है इसकिये (बह) ब्राह्मण ब्राह्मण-चाहाक कहा जाता है । इस प्रकार श्रेण ! ब्राह्मण ब्राह्मण-चाहाक होता है । श्रेण ! ब्राह्मणोंके पूर्वज अत्रि अष्टक श्रुत यह पाँच ब्राह्मण वर्णन करते हैं—ब्रह्म-सम पाचर्षी ब्राह्मण-चाहाक । उनमें श्रेण ! तू कौन है ?

‘युवा होनेपर है गौतम ! इस ब्राह्मण-चाहाक भी व उत्तरेंगे। आधर्ष ! है गौतम ! आजसे भाप गौतम मुझे अर्द्धकित्त शरणागत उपासक स्वीकार करें ।

सहस्र-मिथुनी-सुत

‘युवा श्रेण सुना—एक समय भगवान् ब्राह्मणोंमें ‘राजकाराममें विहाय करते थे ।

१ सं वि. ५४:११ ।  
 २ अ क ‘राजकाराम = राजका जनबापा भाराम । किस राजका ? प्रसेमजित् कोसकका । प्रथम-बोधि (बुद्धत्वप्राप्तिसे १ वर्ष ई.पू. ५४८-८ तक)में शास्ताको उत्तम काम पदा प्राप्त वेक शिष्योंमें सेबा—‘धम्म गौतम उत्तम काम पद-प्राप्त इ किसी श्रुतेर टीक समायिके कारण उसे ऐसा नाम-अप्राप्त नहीं है । उसने भूमिका सीस पढ़ाई है । वहि हम भी जेव-वनके पास भाराम बबबा सब्बे वो भारी काम-पदा प्राप्त होंगे । ( भागे भी )



तब एक हजार मिथुनियोंका संघ बहोँ भगवान् के बहोँ जाकर, भगवान्को अभिवादन कर एक ओर चला हुआ । एक ओर चली मिथुनियोंको भगवाने यह कहा—

'मिथुनियो ! चार धर्मोंसे युक्त हो आर्षभ्रातृक श्रोत-आपन्न = व गिरने का एक स्थिर सवोचिकी ओर जानेवाला—होता है । किम चारसे ? आर्ष भ्रातृक युद्धमें अत्यन्त प्रसन्न हो—ऐसे यह भगवान् जहाँ सम्पत् सजुय । धर्ममें । सर्वमें । 'जहाँ कमावीय धार्मिकोंसे युक्त हो । मिथुनियो ! इन चार धर्मोंसे युक्त हो आर्ष भ्रातृक श्रोत-आपन्न होता है ।

### सुन्दरिका भाय्याज-सुत

'पैसा मीने मुना—एक समय भगवान् कोसलमें सुन्दरिका नदीके तीरे विहार करते थे ।

यह अपने अपने सेवकोंको श्रेष्ठकर सौहजार साथ कार्यालय प्राप्तकर, उन्हें के राज्याके पास पधे । राज्याने पूछा—“यह क्या है ?” इस जेत-वमके पासमें तीर्थिकराम बनाये हैं बधि भमण गौतम या भमण गौतमके सिद्ध आकर विचारण करे तो मत्त विचारण करने लगे —(कह) बूस (= कंचा) दिया । राज्याने रिचत थे— ‘जाओ बन्धायो’ कहा । उन्होंने जाकर अपने सेवकोंसे सामान के खम्मा चढ़ा करवा भाङ्ग करते समय उन्हें सन्धसे एक कोकाहल पैदा कर दिया ।

शान्ता (= सुन्दर)ने राघवकुन्दीसे मिथककर प्रसन्न (=देहली) पर लड़े होकर पूछा— “आगन्ध ! यह कौन कौंवाघन्ध-व्यहाराघन्ध (=कर रहे) हैं जैसे कि केवद मङ्गली मार रहे हैं ?”  
‘मन्ते ! तीर्थिक जेतवमके समीपमें तीर्थिकराम बना रह हैं ।

‘आगन्ध ! यह सासलके विरोधी मिथुर्षवके प्रतिवृत्त विहारसे विहरेंगे । राज्याको कहकर कचवायो ।

स्थविर मिथु-संधके साथ जाकर राज-द्वारपर लड़े हुये । ( कोर्गोने ) राज्याको जाकर कहा—“देव ! स्थविर जाये हैं । राज्या रिचत केनेके करण बाहर न निकला । स्थविरने जाकर शास्ताको कह मुनापा । शास्ताने सारिपुत्र मीङ्गकवाचमडो भेजा । राज्याने उन्हें भी पुराण न दिया ।

“ दूसरे दिन ( भगवान् ) स्वर्ग मिथु तंधके साथ या राज-द्वारपर लड़े हुये ? राज्याने ‘शपस्ता लये हैं’ मुन मिङ्गलकर धर्मों के या आसनपर बैठ बचागू-जाय (=आडर लरमई) दिया । शास्ताने भोजनकर भाकर बैठे राज्याको ‘दूधे महाराज ! पैसा किया’ न कहकर अतीत (=बटना) कही

‘मीने मुना है अचिधोँमें पूर वाककर यह ईमचसाकी सुन्दरिका राज्याके साथ उचिध हो गया ।

इस प्रकार इस अतीत ( कथा ) को द्वाविधर राज्याने अपने कामको समस्त... (आगा थी) —‘ज्याओ मज । तर्किकोंको मिङ्गक हो । मिङ्गककर सोचा—‘मरा बचवाघा(कोई) विहार नहीं है उमी स्थानपर विहार बनवाई । (धीर) उनके सामानको भी न लीट, विहार बनवाया । १ संतो बुद्ध ३३ । २ छं वि ७:१ । १ । ( सुउ अन्तरमे मुचविवात १।७ )

उस समय सुन्दरि क भारद्वाज ब्राह्मण सुन्दरिका नदीके तीर अग्नि-इष्टन करता था = अग्नि-परिचरम करता था । तब सुन्दरि क भारद्वाज ब्राह्मणने अग्निमें इष्टनकर अग्नि-होत्र-परिचरम कर जासतस उठकर चारों दिशाओंकी ओर देखा—“कौन इस इष्ट्य-शेषको भोजन करे । सुन्दरि क भारद्वाज ब्राह्मणने एक वृक्षके नीचे सिर ढाँककर बठे हुए भगवान्को देखा । देखकर चारों हाथसे इष्ट्य-शेष और शशिने हाथसे कमण्डलु के चढ़ाई भगवान् पे चढ़ाई गया । तब भगवान्ने सुन्दरि क भारद्वाज के पद्-शम्भुसे सिर उधाड़ दिया । तब सुन्दरि क भारद्वाजने—“बह सु बक है ! बह सु बक है !” —कह फिर चहाँसे खीरला चाहा । तब सुन्दरि क भारद्वाज को हुआ—सु बक भी कोई-कोई ब्राह्मण होते हैं क्योंकि न मैं इसके पास था जाति पूछूँ । तब सुन्दरि क भारद्वाज पास जाकर भगवान्को बह बोला—

(भारद्वाज) —“आप कौन जाति हैं ?

(भगवान्) —“जाति मत पूछ चरण (= आचरण ) पूछ । काइसे आग पत्र होती है । पीच कुम्भ भी (पुरुष) वृत्ति भाम् जानकर पापरहित मुनि होता है ॥१॥ (क) सत्यमे शान्त (= क्लिष्टेभिरप) = दमन-मुक्त, वेद (= ज्ञान ) के अन्तको पहुँचा (वेदन्त्यु) ब्राह्मणवर्षसमाप्त किया है । उस वयमें प्राप्त (= ब्रह्म-उपनीत ) कही बह कसमने वृक्षिणेष (= वृक्षिणाम्नि दान-पात्र ) में होम करता है ॥२॥

(भारद्वाज) —“निश्चय यह मरा (पत्र) सु-इष्ट = सु हुत है जो ऐसे वेद-पाराग (= वेदगुरु)को मैंने देखा । तुम्हारे पसकी न देखनेसे, दूसरे जन इष्ट्य-शेष खात हैं । इ गौतम ! आप माजब करे आप ब्राह्मण है ॥३॥”

(भगवान्) —“मैंने इस (भोजन) के विषयमें गाथा कही है अतः (यह) मरे किये अ-भोजनीय है (पेसा) जाकते हुने ब्राह्मण ! इस ( खाना ) धर्म नहीं है, गाथासे गायेकी बुद्ध लोग स्वागते हैं ।

(भारद्वाज) —“श्रीगणेश (=मुक्त) विगत-संवेद महर्षिकी अक्षम पामसे सेवा करी । क्षेत्रमें रखनेसे पुष्पाकोशीको ( पुष्प ) होता है ॥४॥ तो हे गौतम ! इस इष्ट्य-शेषको मैं किसे हूँ ?”

(भगवान्) —“ब्राह्मण ! मैं ( किसीको ) नहीं देखता जो इस इष्ट्य-शेषको खा टीकसे पका सके; सिखाव तबागत या तबागत-आवकके । तो ब्राह्मण ! इम इष्ट्य-शेषको तुम-रहित स्थानवर छोड़ दे वा प्राणी-रहित पानीमें डाल हूँ ।”

तब सुन्दरि क भारद्वाज ने उम इष्ट्य-शेषको प्राणी-रहित पानीमें डाल दिया । तब पानीमें अक्षय बह इष्ट्य शेष बिद्-बिद्यता था , कौन कि बिलमें टपा कोहा, पानीमें डालनेसे बिद्-बिद्यता है जुर्ना देता है । तब सुन्दरि क भारद्वाज संवेगको प्राप्त हो, रोमांचित हो, चढ़ाई भगवान् पे चढ़ाई गया । जाकर एक ओर खड़ा हुआ । एक ओर खड़े सुन्दरि क भारद्वाज को भगवान्ने गाथामें कहा—

ब्राह्मण ! लक्ष्मी बकाकर शुद्धि मत माना बह बाहरी ( चीज ) है । कुम्भक (= पंडित ) कोय उसे शुद्धि नहीं बतकाले जो कि बाहरस ( भीतरकी ) शुद्धि है ॥५॥ ब्राह्मण मैं दारु-दारु डाँडू भीतर ही अंगेति अकालता हूँ । नित्य आगवाच्य नित्य पक्वत बिद्य-वाक्य हो मैं ब्रह्मचर्य पालन करता हूँ ॥६॥ ब्राह्मण ! ( यह ) ठेरा अग्निमात्र नरिपाका

भार (= बहि-भार) है अथ पुत्रों है मिथ्या मायात्मक मरम है विद्वान् सुखा है और दुःख ज्योतिष्क स्थान है । आत्माके हमन करकेपर पुत्रपुत्रको ज्योति (प्राप्त) होती है ॥८॥ प्राण्य । शीत-शीत (= धार) बाका अंतर्गतसे पर्यसित निर्मल धर्म-द्वार (= सरोवर) है । जिसमें कि वेदगू नहाकर विना भीतो पात्रके पार उतरते हैं ॥९॥ मद्य (= अंड) प्राप्त सत्य धर्म संयम प्रत्यक्षपर आधित है । सो सू (पेसे) हमन समाप्त किशों (मुक्तों)को नमस्कारकर जनको में हृद्य-सारथी (= पातु-मवार) कहता हूँ ॥ १॥

येना कहकेपर मुन्दिरिक भारशास्त्र ने भयवान्को यह कहा—“आश्चर्य ! हे गौतम ! नदुःख ! गौतम ! ! आयुष्यात् भारशास्त्र भारतेमें एक हुये ।

### अन्तर्धीप-सुख

येना मीने मुना—एक समय भगवान् आयसीमें जेतयनमें विहार करते थे ।  
 ‘मिथुओ ! आय-धीप = आय-भारण (= आवाहनी) धर्म-धीप = धर्म-सत्य ज्ञान-अभ्य-अभ्य-विहार करो । आय-धीप अत्यन्त-तरण हो विहारमेवाकोको आयके साथ परिष्ठा करता चाहिये—‘शोक-परिवृत्त दुःख=उपावास किन आतिके हैं, किसमे उत्पन्न होते हैं ? । मिथुओ ! आयोंका अ-दर्शी धर्म धर्ममें अ-परिचित आय-धर्ममें अ-परिचित= सत्युपासकों अदर्शी सत्युपास धर्ममें अ-आविष्ट, सत्युपास-धर्ममें अ-परिचित (= अविनीत) = अविहित पृथग्जन रूपको आयमाके तीरपर या रूपवान्को आयमा; या आत्मा रूप, या रूपमें आयमाको सुगता है । उनका वह रूप विहत होता है विहायता है । उनका वह रूप विपरिप्लत = अत्यन्त होता है । (तब) उमे शोक परिवृत्त उत्पन्न होते हैं । वेदुपाको आयमाके तीरपर । सजाका । संस्कारको । विज्ञानको । मिथुओ ! रूपकी ही तो अविप्लता-विपरिप्लत विराग विरोधको जानकर ‘वृत्त और इस समयके सभी रूप अमित्य दुःख विपरिप्लत धर्म (= विहायवेदाक) हैं’ इमप्रकार इमे टीकटीक अग्नी तरह आयकर वेगत हुये जो साक परिवृत्त हैं वह प्रदीप दाखल हैं । उनके प्रहाय (अविनात) में प्रायःका नहीं प्राप्त होता । अ-परिचित हा वह सुखस विहरता है । मुत्त-पिहारी मिथु इस अत्यन्त मिट्ट त (सुख) कह जाता है । मिथुओ ! वेदुपाकीही तो अमित्यता । संशय संस्कारोंकी । विज्ञानकी ।

### अज्ञान-सुख

येना मीने मुना—एक समय भगवान् आयसीमें जेतयनमें विहार करते थे । वहाँ भगवान् अज्ञान कहा—

‘न हाना ता सुम न हाना न होया ता सुते न ईमण—इमम मुच हो मिथु

१ येना सूट ११५ ।

२ अज्ञान-सुख अज्ञान-सुख अज्ञान-सुख ( = अज्ञान-सुख ) में विनाया तीर्थकी ( जनकमें ) १ नं वि. १११५ १ ।

३ नं वि ११११ १ ।

४ आयुष्यात् भारशास्त्र भारतेमें ।

अधरभागीय संबोधनोंको छेदन करता है। ऐसा कहनपर एक मिथुने मगबापको यह कहा—

‘कैसे मन्ते ! ‘न होता तो मुझे न होता, न होगा तो मुझे न होगा ?’

यहाँ मिथुनो ! ‘असिद्धित प्रथमजन्म रूपको आत्माके तीरपर । बेदनाको । संज्ञाको । संस्कारको । विज्ञानको । आत्माके तीरपर, या विज्ञानबान् को आत्मा या आत्मानमें विज्ञान या विज्ञानमें आत्माको देखता है। यह ‘रूप अनित्य है इस पद्यार्थसे नहीं जानता । बेदना अनित्य है इसे पद्यार्थसे नहीं जानता । संज्ञा अनित्य । संस्कार अनित्य । विज्ञान अनित्य । रूप दुःख है रूप दुःख है’ इसे पद्यार्थसे नहीं जानता । यथा । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । ‘रूप अनात्म (=आत्मा नहीं) है रूप अनात्म है इसे पद्यार्थसे नहीं जानता । बेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान अनात्म है विज्ञान अनात्म है इसे पद्यार्थसे नहीं जानता । रूप संस्कृत (=कृत बनावटी) है रूप संस्कृत है’ इसे पद्यार्थसे नहीं जानता । बेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । रूप बाध हो जायेगा रूप बाध हो जायेगा इसे पद्यार्थसे नहीं जानता । बेदना । संज्ञा । संस्कार । विज्ञान । मिथु ! सूतबान् आर्ष-आवक रूपको आत्माके तीरपर नहीं देखता । न बेदनाको न संज्ञाको । न संस्कारको । न विज्ञानको । यह ‘रूप अनित्य है रूप अनित्य है इस पद्यार्थसे जानता है । ‘रूप दुःख है जानता है । ‘रूप अनात्म है जानता है । ‘रूप संस्कृत है । ‘रूप बाध हो जायेगा । यह रूपके नाशसे, बेदनाके नाशसे संज्ञाके नाशसे संस्कारके नाशसे ‘न होता तो मुझे न होता न होगा तो मुझे न होगा इससे मुक्तहो, मिथु अधर भागीय (=अधरभागीय) संबोधनोंको छेदन करता है ।

‘मन्ते ! इस प्रकार मुक्त मिथु अधरभागीय संबोधनोंका छेदन करता है । क्विन् मन्ते ! कैसे जानने-कैसे देखनेपर आसनों (=चित्त मर्कों) का छेदन होता है ?’

यहाँ मिथु ! असिद्धित प्रथमजन्म अ-प्रासके स्थानमें प्रास (=मध) खाता है । असिद्धित प्रथमजन्मको यह प्रास होता है—‘न होता तो मुझे न होता, न होगा तो मुझे न होगा । सिद्धित आत्मा-आवक अनात्मके स्थानमें प्रास नहीं खाता । सिद्धित आर्ष-आवक को यह प्रास नहीं होता—‘न होता तो मुझे न होता न होगा तो मुझे न होगा । मिथु ! रूपसे मुक्त (=उपगत) रूपके आकस्मिक रूपपर प्रतिष्ठित=उदरते हुए, विज्ञान उदरता है । नृप्याको उपसेवन (= तर्कारी) या बुद्धि = विकृति = विपुलताको प्राप्त होता है । मिथु ! बेदनासे उपगत बेदनापर प्रतिष्ठित हा विज्ञान (= बेदना जीव) उदरता है नृप्या (=नृप्या) को उपसेवन या । संज्ञा । संस्कार । मिथु ! यह ऐसा करी—‘मैं रूपसे अलग बेदनासे अलग संज्ञासे अलग, संस्कारसे अलग विज्ञानके गमन-आगमन व्युत्पत्ति (=मरज)-उत्पाद (=अत्म) बुद्धि=विकृति=विपुलताको वतकता हूँ—इसकी जगह = पुंजाइस नहीं । मिथु ! यदि रूप-प्राप्तमे मिथुअ राग नष्ट हो गया रहता है ( तो ) रागके प्रहाय (=नाश) से आकस्मिक (=स्मित-विषय) छिन्न हो जाता है विज्ञानकी प्रतिष्ठा

(= आघार) नहीं रहती। यदि बरना पातुसे मिथुन राग बह हो गया रहता है। संज्ञा-पातुसे। संस्कार-पातुसे। यदि विज्ञान पातुसे मिथुन का राग बह हो गया रहता है। रागके महानसे आकम्बल (= आघार) छिन्न हो जाता है विज्ञानका आघार (= प्रतिष्ठा) नहीं रहता। यह अप्रतिष्ठित (आघार-रहित) विज्ञान न बनकर संस्कार-रहित (ही) विमुक्त (हो जाता है)। विमुक्त होनेसे चिर होता है। चिर होनेसे संतुष्ट (= संतुष्टि) होता है। संतुष्ट होनेसे ब्रास नहीं जाता। ब्रास न जानेपर प्रत्वारम (= जूमी धारी) में परिवर्तनको प्राप्त होता है। आतिशील हो गई होने जानता है। मिथु इस प्रकार जानने देलनपर आकम्बल क्षय होता है।

### मल्लिका सुक्त

‘पेसा मीने मुना—एक समय भगवान् भावस्ती जेतवनमें विहार करते थे।

तब राजा प्रसेनजित् कोसल जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। तब एक पुरुष (न) जहाँ राजा प्रसेनजित् कोसल था वहाँ जा राजा प्रसेनजित् कोसलके कर्ममें कहा— देव! मल्लिकादेवीने कम्पा प्रसन्न किया। (उसके) पेसा कम्पनेपर राजा प्रसेनजित् कोसल किम्ब हृष्य। तब भगवान् ने राजा प्रसेनजित् कोसलको किम्ब ब्रान उसा ब्रैकमें यह गाथायें कहीं—

“हे जनाधिप! कोई भी पुरुषसे भी श्रेष्ठ होती है (जाकि) मेधाविनी शीकण्ठी, श्वङ्गुर-देवा (= समुद्रको देवदत्त माननेवाली) पतिव्रता होती है ॥१॥ उससे जो पुरुष उत्पन्न होता है वह धूर दिग्गर्भको पति होता है। बँसी सीमाश्वतीका पुत्र राजा पर सासन करता है ॥२॥”

× × × ×

( १ )

सोण-सुक्त। सोणकुटि-करण भगवान् के पास। अटिल-सुक्त

वियजातिक-सुक्त। पुष्प-सुक्त। ( ई पू ४९९-९८ )।

‘पेसा मीने मुना—एक समय भगवान् भावस्तीमें अनाद्यपिच्छकके आराम जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय आबुष्मान् महाकात्यायन भावस्ती ( देव ) में कुररघरके प्रपात ( नामक ) पर्वतपर वास करते थे। उस समय सोण-कुटिकरण (= स्वर्ण कुटिकर्ण ) उपासक आबुष्मान् महाकात्यायनका उपस्थाक (= सेवक) था। एकान्तमें किन्त विचारमें हूये सोण-कुटिकर्ण उपासकके मनमें पेसा विचरत उत्पन्न हुआ—

“किस जैसे जार्ब महाकारवाचन बरमें उचरैया करते हैं (उससे) इस सर्वथा परिपूर्ण सर्वथा परिपूर्ण संकामे तुके ब्रह्मचर्यकी गुरुमें बसते पाठन करना सुकर नहीं है। नरों व मी प्रजित्त जाजाऊँ”।

१ छं वि ३ २ १।

२ उद्दान ५ १। ३. वर्तमान माक्या।

तब सोम-कुटिकरम उपासक बहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन के पहाँ गया बाकर  
अभिवादन कर एक ओर बैठ पढ़ बोका—

मन्ते ! एकांशमें स्थित हो विचारमें हूँ मेरे मनमें ऐसा चित्तकं उत्पन्न हुआ— ।  
मन्ते ! आर्ष महाकात्यायन मुझे प्रयत्नित करें ।'

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् महाकात्यायनने सोम को पढ़ कहा—

'सोम ! श्रीबलमर एकवार, एक चान्धावाका प्रसन्न हूँ । अथवा है, सोम !  
तू दूसर्य रहने ही बुद्धोंके सासन (= उपदेश )का अनुगमन कर; भार काठमुक्त (पर्वदियोंमें)  
एक-बार एक लक्ष्य ( = अकेला रहना ) रख ।'

तब सोम-कुटिकरण उपासकका जो प्रसन्नता उठार पा सो उँहा पढ़ गया ।

दूसरी बार भी मन्ते ऐसा चित्तकं उतरक हुआ— । । तीसरी बार भी ।

मन्ते आर्ष महाकात्यायन मुझे प्रयत्नित करें ।

तब आयुष्मान् महाकात्यायनने सोम-कुटिकरण उपासकको प्रयत्नित किया (= आम  
पैर बनाया) । उस समय अवन्ति-दक्षिणापथमें बहुत थोड़े मिथु थे । तब आयुष्मान् महा-  
कात्यायन ने त म वर्ष बीतनेपर बहुत कठिनाईसे बहाँ-उहाँमें दृष्टवर्ग (= दृष्टमिथुर्ग) का  
मिथु-सम एकत्रित कर आयुष्मान् सायको उपसपन्न किया (= मिथु बनाया) । बवावास  
रथ एकान्तमें स्थित विचारमें हूँ अनुष्मान् सोमके चित्तमें ऐसा परिवर्तक उत्पन्न हुआ—  
'मैंने उन मगवान्को सामने बहाँ देखा बकि मैंने सुनाही है— वह मगवान् ऐसे हैं ऐसे हैं ।  
पवि उपास्याप मुझे आज्ञा दें तो मैं मगवान् आईव सम्यक् सम्युद्धक दर्शनके किये जाऊँ ।

तब आयुष्मान् सोम सायकाल प्दानसे उठ बहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन के  
पहाँ बाकर अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठ आयुष्मान् महाकात्या-  
यनको कहा—

"मन्ते ! एकांश स्थित विचारमें हूँ मेरे चित्तमें ऐसा परिवर्तक उत्पन्न हुआ है—  
बहि उपास्याप मुझे आज्ञा दें तो मैं मगवान् के दर्शनके किये जाऊँ ।'

"साधु ! साधु ॥ सोम ! आज्ञा सोम ! उन मगवान् आईव, सम्यक् संजुद्धके  
दर्शनको । साधु ! उन मगवान्को तुम प्रासादिक (= सुन्दर) प्रसादनाक (= प्रसन्नकर )  
प्राप्तिश्रिय=शान्त-मात्रस उत्तम शस-रुम प्राप्त दास्य गुण, क्लिेश्मिन्न वाग देकोगे । ऐश्वर्य  
मेरे बचनसे मगवान्के बरज्योंको सिरसे बन्दना करना । विरोग सुल-विहार (= कुशल होम)  
पूजना—मन्ते मेरे उपास्याप आयुष्मान् महाकात्यायन मगवान्के बरज्योंको सिरसे बन्दना  
करते हैं ।

'अथ मन्त !' ( कह ) आयुष्मान् सोम आयुष्मान् महाकात्यायनके भाषणको  
अभिर्नन्दन कर आसपसे उठ कर अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर शकवासव संभास पाप  
पीपर के बहाँ आवस्ती थी बहाँ चारिक करते बक । मन्त चारिक करते बहाँ भावन्ती  
जेतपन अनाय-पिडकका भाराम या बहाँ मगवान् के बहाँ गये ।

मगवान्के अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् सोमने  
मगवान्को कहा—

“मन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकारत्यायन भगवान् चरकोंको सिरसे बन्धा करते हैं ।”

“मिथु ! अरुण (=कर्मबीज) तो रहा ? पापबीज (= सरीरकी अनुकूलता) तो रहा ? अल्प कहसे पापा तो हुई ? विद्वन्म कष्ट तो नहीं हुआ ?”

कर्मबीज (रहा) भगवान् ! पापबीज (रहा) भगवान् ! बाबा मन्ते ! अल्प कहसे हुई, विद्वन्म (भोजन) कष्ट कष्ट नहीं हुआ ।”

तब भगवान्ने आयुष्मान् नामस्वको आमंत्रित किया—

‘आनन्द ! इस आगतुक (= नवागत) मिथुको घयनासन दो ।’

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ—‘भगवान् जिसक क्रिये करते हैं— आनन्द ! इस आगतुक मिथुको सवनासन दो । भगवान् उसे एक ही विहारमें सायमें रक्षता करते हैं (बार) जिस विहार (= कोठरी) में भगवान् विहार करते थे उसी विहारमें आयुष्मान् सोपकको घयनासन (=वास विधान) दिया । भगवान्ने बहुत रात लुकी बगहमें बिठाकर पैर भी विहारमें प्रवेश किया । तब रातको भिन्सार (=अल्प) में उठकर भगवान्ने आयुष्मान् सायको कहा—

“मिथु ! धर्म भाष्य करो ।

“अच्छ मन्ते ! कह आयुष्मान् सायने सभी सायह ‘अहुक-वधियोंको खर-सहित भजन किया । तब भगवान्ने आयुष्मान् सोपकको खर-सहित भजन (=अल्प धर्म) के समाप्त होनेपर अनुमोदक किया—

‘साधु ! साधु !! मिथु ! अच्छी तरह सीखा है । मिथु ! तुने सोपह ‘अहुक-वधियों’, अच्छी तरह भजमें किया है अच्छी तरह धारण किया है । कर्मबीज विरपट अर्ध-विद्वान्पत्र बोध्य बार्जस ए पुक्त है । मिथु ! ए कितने धर्म (= उपसंपदाक धर्म) का है ?’

“भगवान् ! एक-धर्म ।

“मिथु ! तुने इतनी देर क्यों लगाई ।

मन्ते ! देरस कर्मोंके दुष्परिणामको एक पापा । और गृहवास बहु-धर्म = बहु कर्मबीज सबाध (=बाधाभुक्त) होता है ।”

भगवान्ने इस अर्थको जाकर उठी समय इस उदाहको कहा—

‘कोकळ दुष्परिणामको देख और उपचि-रहित धर्मको जान कर, अल्प पापमें नहीं रमता छुधि (=अविज्ञान) पापमें नहीं रमता ।

सोपकुकटिकण भगवान्के पास ।

‘उस समय आयुष्मान् महाकारत्यायन अबन्ती (बेध) में कुररधरके प्रपाठ पर्वतपर बास करते थे । उस समय सोपकुकटिकण उपाध्याय था ।—

“साधु ! साधु ! सोप ! जानो सोप भगवान्के चरकोंमें बन्धा करता” ०—“मन्ते ! मेरे उपाध्याय भगवान्के चरकोंमें सिरसे बन्धा करते हैं । बार बहु भी कहा—“मन्ते अबन्ती

दक्षिणपथमें बहुत कम मिथु हैं। तीव्र रूप ध्यतीत कर बड़ी मुश्किलसे जहाँ तहाँसे द्वाचर्ग मिथुर्मथ एकत्रित कर मुझे उपसंपदा मिली। अच्छा हो भगवान् भवगती दक्षिणपथमें (१) जल्पतरगणसे उपसंपदा की अनुज्ञा दें। अयन्ती-दक्षिणापथमें मन्ते ! सूमि क्कवी ( = कल्पतरु ) कवी गोकर्णकोसे भरी है। अच्छा हो भगवान् अवन्ती-दक्षिणापथमें (२) (मिथु) गणको गण वाले उपावह ( = उपवही ) की अनुज्ञा दें। अवन्ती-दक्षिणापथमें मन्ते ! मनुष्य स्वामके प्रेमी उदकसे शुद्धि मानववाके हैं। अच्छा हो मन्ते ! अवन्ती-दक्षिणा-पथमें (३) नित्य स्वावकी अनुज्ञा दें। अवन्ती-दक्षिणापथमें मन्ते ! चर्ममथ आन्तरण ( = विद्यार्थे ) होते हैं, जैसे मेघ-चर्म जल चर्म मृग-चर्म। (४) चर्ममथ आन्तरण की अनुज्ञा दें। मन्ते ! इस समय सीमास बाहर गये मिथुओंको (मनुष्य) चीवर दते हैं—'यह चीवर बहुत कामफली हो। वह जाकर कहेते हैं—'जानुस ! इस गणवाले मनुष्यने तुझे चीवर दिया है। वह सम्बेहमें पक्ष उपसोग नहीं करते, कहीं हमें तिस्सर्गिक ( = छोड़बेका प्रायश्चित ) न होवाय। अच्छा हो भगवान् (५) चीवर-पर्याण कर दें।"

"बन्धा मन्ते !" कर -- सोणकुटिकण्य आयुष्माद् महाकास्यायनको धर्म प्राप्त कर प्रदक्षिण्य कर जहाँ आबती थी वहाँको चले ।" तब भगवान् इन अर्थका जाकर उसी समय इस उदाहको कहा—

"छोकके दुप्परिभाम ।"

तब आयुष्माद् सोण्ये—'भगवान् मेरा अनुमोहन कर रहे हैं यही इसका समय है—' ( सोण ) आसबसे उठ उत्तरार्धग एक कन्धेपर कर भगवान्के चरणोंपर सिरसे पड़कर, भगवान्को कहा—

"मन्ते ! मेरे उपाप्याय आयुष्माद् महाकास्यायन भगवान्के चरणोंसे सिरमें बन्धना करते हैं और यह कहते हैं—

'मन्ते ! अवन्ती-दक्षिणपथमें बहुत कम मिथु हैं' अच्छा हो भगवान् चीवर पर्याण ( = विकल्प ) कर दें ?"

तब भगवान्ने इसी प्रकारमें धार्मिक-कथा कहकर मिथुओंको आमंत्रित किया—

"मिथुओं ! अवन्ति-दक्षिणापथमें बहुत कम मिथु हैं। मिथुओं ! सभी प्रत्यन्त जनपदोंमें विनयवरको लेकर पाँच ( कोरमकाठ ) मिथुओंके गणसे उपसंपदा ( करने ) की अनुज्ञा देता हूँ। यहाँ यह प्रत्यन्त ( = सीमान्त ) जनपद ( = देश ) हैं—पूर्व दिशामें 'कर्मगण नामक विगम ( = कसबा ) है उसका बाद बड़े शाक ( छे चट्टक ) हैं, उसके परे 'द्वारसे बीचमें प्रत्यन्त जनपद है। पूर्व-दक्षिण दिशामें 'सकलवती नामक नदी है उससे परे 'द्वारसे बीचमें ( औरतो मन्ते ) प्रत्यन्त जनपद है। दक्षिण दिशामें 'सेतकण्ठिक नामक विगम है। पश्चिम दिशामें 'पूण नामक ब्राह्मण-ग्राम। उत्तर दिशामें 'उसीरध्वज नामक पर्वत उससे परे प्रत्यन्त जनपद है। मिथुओं ! इस प्रकारके प्रत्यन्त जनपदोंमें अनुज्ञा देता हूँ—विनयपर-सहित पाँच मिथुओंके गणसे उपसंपदा करने

१ देखो पीछे पृष्ठ ३ १ देखो पृष्ठ. ३७ - ७१ २ वर्तमान कर्कशीक (विषय संवाक परांवा विहार) ३ वर्तमान सिद्धई नदी ( जिहा इमरीबाग और बीरभूम )।

४. हजारीबाग जिलेमें कोई स्थान था। ५. धानेद्वार ( करनाठ )।



“भन्ते ! मेरे उपाध्याय आमुष्मान् महाकारवायम भगवान्के चरणोंको सिरसे बन्दूबा करते हैं ।”

“मिथु ! अच्छ ( = बमबीब ) तो रहा ? पापनीप ( = शरीरकी बन्दूकछा ) तो रहा ? भस्व कपस बाबा तो हुई ? पिंडक कप तो नहीं हुआ ?”

बमबीब ( रहा ) भगवान् ! पापनीप ( रहा ) भगवान् ! पात्रा भन्ते ! भस्व कपसे हुई, पिंड ( भोजन )का कप नहीं हुआ ।”

तब भगवान्ने आमुष्मान् आनन्दको आमंत्रित किया—

‘आनन्द ! इस आगतुक ( = भगवान् ) मिथुको सयनासन दो ।

तब आमुष्मान् आनन्दको हुआ—‘भगवान् जिसक किये करते हैं—आनन्द ! इस आगतुक मिथुको सयनासन दो । भगवान् उसे एक ही बिहारमें साधर्म रक्ता करते हैं ( और ) जिस बिहार ( = कोठरी )में भगवान् बिहार करते थे, उसी बिहारमें आमुष्मान् सोप्यको सयनासन ( = बास किञ्चैबा ) दिया । भगवान्ने बहुत रात सुधी बगान्में बिताकर, धर भी बिहारमें प्रवेश किया । तब रातको गिनसार ( = मत्स्य ) में उठकर भगवान्ने आमुष्मान् साधको कहा—

“मिथु ! धर्म माप्य करी ।

“अच्छा भन्ते ! कह आमुष्मान् सोप्ये ‘सभी सोकह ‘अहक-वधिकाँको खर-सहित मजब किया । तब भगवान्ने आमुष्मान् सोप्यके खर-सहित भज्य ( = खर मज्य )के समाप्त होनेपर अनुमोदन किया—

‘साधु ! साधु !! मिथु ! अच्छी तरह सीखा है । मिथु ! दूने सोकह ‘अहक-वधिकाँ’, अच्छी तरह मजमें किया है अच्छी तरह धारम किया है । कस्याभी विस्वह धर्म-विश्रापन योग्य बानीसे ए कुछ है । मिथु ! ए कितने वर्ष ( = बपसपवाक्य वर्ष ) का है ?

भगवान् ! एक-वर्ष ।

“मिथु ! दूने इतनी देर क्यों बगाई ।

“भन्ते ! दूसे कामोंके दुष्परिणामको दूर पाया । और गृहवास बहु-वर्ष = बहु करनीय सबाप ( = बाबायुक्त ) होता है ।

भगवान्ने इस धर्मको जानकर उसी समय इस उद्दानका कहा—

“कोकक दुष्परिणामको दूर और उपधि-रहित धमकी जान कर, धार्प पापमें बर्षी रमता शुचि ( = पवित्रता ) पापमें नहीं रमता ।”

सोणकुटिकण्य भगवान्के पास ।

‘उस समय आमुष्मान् महाकारवायम अवन्ती ( देश ) में कुररघरके प्रपात पर्वतपर बास करते थे । उस समय साणकुटिकण्य ‘उपरबाक था ।—

“साधु ! साधु ! तोय ! जानो संगम भगवान्के चरणोंमें बन्दूबा करवा”०—“भन्ते ! मेरे उपाध्याय भगवान्के चरणोंमें सिरसे बन्दूबा करते हैं । और वह भी कहता—‘मन्त अवन्ती

दक्षिणापथमें बहुत कम मिथु हैं। तीव्र रूप प्यगीत कर बड़ी मुश्किलमें जहाँ तहाँम दानवों मिथुमंडप एकत्रित कर मुझ उपसंपदा मिली। अच्छा हो भगवान् अबन्ती दक्षिणापथमें (१) जलपतरागणस उपसंधा की अनुज्ञा हैं। अद्यती-दक्षिणापथमें मन्ते ! भूमि काडी (अकण्डूतरा) कड़ी गोकंडकोसे मरी है। अच्छा हो भगवान् अबन्ती-दक्षिणापथमें (२) (मिथु) गणको गल बाड़े उपासह (अपनही) की अनुज्ञा हैं। अबन्ती-दक्षिणापथमें मन्ते ! मनुष्य स्नामके प्रेमी उचकने सुदि माननेवाड़े है, अच्छा हो मन्ते ! अबन्ती दक्षिणा-पथमें (३) किल स्नामकी अनुज्ञा हैं। अबन्ती-दक्षिणापथमें मन्ते ! चर्ममय आन्तरण (अकिष्ने) होते हैं, जैसे मेघ-चर्म जब चर्म युग चर्म। (४) चर्ममय आन्तरणकी अनुज्ञा हैं। मन्ते ! इस समय सीमासे बाहर गये मिथुओंको (मनुष्य) चीवर उते हैं—'पह चीवर समुक्त वामकका हो। वह आकर कहते हैं—'आधुस ! इस धामवाड़े मनुष्यने तुझे चीवर दिया है। वह सन्देशमें पद उपभोग नहीं करते कहीं हमें निस्सर्गाव (अछोदनेका प्रापत्रित) न होना। अच्छा हो भगवान् (५) चीवर-पर्याप कर दें।'

“अच्छा मन्ते !” कह सोणकुटिकण्य आधुप्मान् महाकात्यायनको आमि पावन कर प्रदक्षिणा कर जहाँ आचली की बर्होंको चड़े। तब भगवान्ने इस अर्थको आकर उसी समय इस उदाहको कहा—

‘कोकके दुप्परिनाम ०’।’

तब आधुप्मान् सोपने—‘भगवान् मेरा अनुमोदक कर रहे हैं परी इसका समय है— ( सोच ) आसवसे उठ उत्तरार्धग एक कम्पेपर कर भगवान्के चरणोंपर सिरस पककर मागवान्को कहा—

‘मन्ते ! मेरे उपाध्याय आधुप्मान् महाकात्यायन भगवान्क चरणोंमें सिरस बन्ना करते हैं और वह कहते हैं—

‘मन्ते ! अबन्ती-दक्षिणापथमें बहुत कम मिथु हैं’ अरुद्धा ही भगवान् चीवर पर्याप (= विकल्प ) कर दें ?

तब भगवान्ने इसी प्रकारमें आमिक-कथा कहकर मिथुओंको आमंत्रित किया—

‘मिथुओ ! अबन्ति-दक्षिणापथमें बहुत कम मिथु हैं। मिथुओ ! सभी प्रत्यन्त जलपथोंमें विजयधरको लेकर पूर्व (कीरसबाक) मिथुओंके गणस उपसंधा ( करने ) की अनुज्ञा देता हूँ। जहाँ पह प्रत्यन्त (= सीमान्त) जलपद (= देता) है—पूर्व दिशामें ‘कडंगक नामक निगम (= कसबा) है उसका बाढ़ बने साक (के जडक) है, उसके परे ‘द्वारस बीचमें प्रत्यन्त जलपद है। पूर्व-दक्षिण दिशामें ‘सकलवती नामक नदी है कमसे परे, द्वारसे बीचमें ( औरती मग्ने ) प्रत्यन्त जलपद है। दक्षिण दिशामें ‘सेतकम्पिक नामक निगम है। पश्चिम दिशामें ‘धूल नामक ब्राह्मण-ग्राम। उत्तर दिशामें ‘उशीरध्वज नामक पर्वत उससे परे प्रत्यन्त जलपद है। मिथुओ ! इस प्रकारके प्रत्यन्त जलपथोंमें अनुज्ञा देता हूँ—विजयधर-सहित पूर्व मिथुओंके गणसे उपसंधा करने

१. देवी पीठे पृष्ठ ३० २. देवी पृष्ठ. ३० -०१ ३. वर्तमान कंडलीक (जिन्हा संयाक परांग विहार) ४. वर्तमान सिकई नदी ( जिन्हा इजरीबाग भीर बीरमूम )। ५. इजरीबाग जिन्हेमें कोई स्थान था। ६. बानेश्वर ( करवाक )।

की । । सब सीमास्त-वैश्योंमें गणबाबे—उपागह । नित्य-स्वाह ।  
सब चर्म—मैप-चर्म अञ्ज-चर्म मृग-चर्म । अनुज्ञा देता हूँ (बीबर) उपभोग  
करनेकी वह सब तक (तीन बीबरमें) न गिना जाय जब तक कि हाथमें न जायाय ।

### अटिल-सुस्त ।

पूसा सैन सुबा—एक समय भगवान् आधर्त्यामें मृगारमाताक प्रासाद  
पूर्वोराममें शिकार करते थे ।

उस समय भगवान् सायबाबको ध्यानमें उठकर फाटक (=शरकाट्टक) के बाहर बैठे  
थे । तब राजा प्रसेनजित् कोसक बहो भगवान् थे बहो गया । जाकर भगवान्को अभि  
वादन कर एक घोर बैठ गया । उस समय सात अटिल सात बिगंठ सात जकेक सात  
एकसादक भार सात परिभाजक कणक (=काँक)—नख-खोम दहाये खरिया (=शरीर) बहुत  
सी किये भगवान्क 'अबिदूरने जा रही थे । तब राजा प्रसेनजित् कोसकने आसबसे  
उठकर उत्तरासग (=चर)को एक (बापें) कंधपर कर दाहिने बाजु-मडक (=सुरने)  
को मूमिपर टिक गिबर वह सात अटिल सात परिभाजक से उधर अथकि जोड़ तीन बार  
नाम सुनाया—'भाते ! मैं राजा प्रसेनजित् कोसक हूँ । मन्ते । मन्ते ।'

तब उन सात अटिलों के चले जानेके बोधी देर बाद राजा प्रसेनजित् कोसक जाहीं  
भगवान् थे बहो गया । जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक बार पठ भगवान्को बोझ—  
"भन्त ! लोकेमें जो अर्हत् या अर्हत्-मार्गपर जाण्य है वे उनमेंसे हैं ।

"महाराज ! गृही काम भोगो पुत्रोंसे विरे वसत काराकि चम्बका इस छेले भाज्य  
गद्य-विशेषण धारण करत मोषा चोरीकी भोगते तुम्हारे किये वह बुझोव है—'यह अर्हत्  
है या अर्हत् मार्गपर आरुह है' । महाराज ! धीक (=आचरण) सहवासस जाना जाता है ।  
धीर वह चिरकालमें उखी हम नहीं मगमें करनेसे (जाना जाता है) बिना मनमें किये  
नहीं । प्रज्ञाबाधेका (शप है) दुष्प्रज्ञक नहीं । महाराज ! ध्यवहारस (आचरण)-सुखता  
जानी जा सकती है; धीर वह चिरकालमें उखी हम नहीं; मगमें करनेसे । महाराज !  
साक्षात्कारमे प्रज्ञा जानी जा सकती है; धीर वह दीर्घकालमें सुरम्त नहीं मगमें करनेसे  
प्रज्ञावान्का ।

आभर्य ! मन्ते ॥ अर्मुत ! मन्ते ॥ भगवान्का सुमापित बैसा है ॥—'महा  
राज बुझोव है । वह मन्त ! मरे चर अचरक (=गुप्तचर) पुत्रप जकपर (=वीक्षत)में  
(पता लगानेक टिक) बूमकर भात है । उनकी प्रथम प्राजकी मैं फिरसे सजाई करता हूँ ।  
तब मन्त ! वह पुत्र जात्य घोकर सुखत हो सु-बिहित हो वस-मूक (बाईम) डीक करा  
इवैत बधघारी पाँच काम गुणोंम पुक हो बिचरते हैं ।"

१ नं नि १:१ १ उदाह १२। १ अ. क "यह प्रासाद छोहप्रासाद (=अनुवापपुर  
अंज) की भांति चारों ओर चार फाटकेसे पुक पाकारसे घिरा था । उबदेंस एकके फाटके  
बाहर प्रासादकी छत्रामें दूर्ध्व की ओर देखते विठे पुत्रामनपर बैठ थे ।"

१. अ. क. "अविदूर (=ममीप)के मार्गस नगरमें प्रवेश कर रहे थे ।"

तब भगवान्ने हसी बर्बकी जानकर उसी समय यह गायतें कहीं—

‘बर्ब’ (= रंग)-रूपसे भर सुगुप नहीं होता। तुरंत (= इतर) दृष्टान्तसे ही विद्यास  
न कर लेना चाहिये। रूप रंगसे सु-संपत्ती भी (माकस हाते) (वस्तुतः) न-सबमी हो  
इस कोकमें विचारते हैं ॥१॥ नकसी मिट्टीके कुण्डकी तरह या सुनथसे ईके ताँबे (= सोह)के  
आधे मासे (= बर्ब मापक सिद्ध)की तरह सोकमें (बह) परिवार (= जमाठ)से ईके  
भीतरसं बभुइ (किनु) बाहरसं सोमापमान हो विचारते हैं ॥२॥

### विद्ययातिक-सुप्त ।

‘ऐसा मैं न सुना—एक समय भगवान् श्रायस्तीमें अंतयममें विहार करते थे।

उस समय एक गृहपति (= बह्व)का प्रिय = मनाप एकक्रीता पुत्र भर गया था।  
उसके मरपेसे (उसे) न काम (= कर्मान्त) भण्ड्य कगता या न भोजन भण्ड्य कगता  
था—‘कहाँ हो (मेरे) एकक्रीते-पुत्रक ? कहीं हो (मेरे) एकक्रीते-पुत्रक ?’ तब वह  
गृहपति जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। अभिवादन कर एक ओर बैठे उस गृहपतिके  
भगवान्ने कहा—

‘गृहपति ! तेरी इन्द्रियाँ (= चेष्टाएँ ) विद्यमें स्थित नहीं जान पड़तीं; क्या तेरी  
इन्द्रियोंमें कोई क्षराधी (= अन्वयात्त्व ) तो नहीं है ?’

‘माते ! क्यों न मरी इन्द्रियाँ अन्वयात्त्वको प्राप्त होंगी ? मन्ते ! मेरा प्रिय = मनाप  
एकक्रीता-पुत्र भर गया। उसके मरपेसे न काम भण्ड्य कगता है न भोजन भण्ड्य कगता  
है। सो मैं आदान (= पिता)क पास आकर अन्न करता हूँ— कहीं हो एकक्रीते-पुत्रक  
(= पुत्रका) !’

‘ऐसा ही है गृहपति ! प्रिय-जातिक = प्रियसे उत्पन्न होयेवाक ही हैं गृहपति !  
(बह) सोक परिवेष (= क इत) दुःक = दार्मभार उपायास (= परेशानी) ?’

‘मन्ते ! यह ऐसा क्यों होगा—‘प्रिय जातिक है लोक उपायास !’

वह गृहपति भगवान्के मापकके न अभिवादन कर नित्राकर आसन्नस उठकर चला गया।  
उस समय बहुतन सुभारी (= अथ भूर्त) भगवान्के अन्तमें सुभा बोक रह थे। तब  
वह गृहपति जहाँ वह सुभारी थे वहाँ गया आकर उन सुभारीजोंस बोध—

‘अ ! जहाँ अमन गौतम है वहाँ --आकर अभिवादन कर एक ओर बठ मुझे  
अमन गौतमसे कहा—‘गृहपति ! तेरी इन्द्रियाँ (= चेष्टाएँ ) अपने विद्यमें स्थितसी नहीं  
हैं प्रियजातिक लोक है। प्रियजातिक = प्रियसे उत्पन्न तो आदन्व-सामनस्य है।  
तब मैं अमन गौतमके मापकके न अभिवादन कर चला आया।’

‘यह ऐसा ही है गृहपति ! प्रिय-जातिक = प्रियसे उत्पन्न तो हैं गृहपति ! आदन्व =  
सामनस्य ।’

तब वह गृहपति ‘सुभारी भी मुझसे सहमत हैं (सोक) चला गया। यह कथा

बन्धु (= बन्धु) अमनः राज अमन-पुरमें बन्धी गई । तब राजा प्रसेनजित् कोसलके मन्त्रिणा देवीको धर्मवित्त किया—

“मन्त्रिका ! तेरे अमन गौतमने यह भाषण किया है—‘प्रिय-जातिक-प्रिय-उत्पन्न हैं शोक उपायास ।’”

‘यदि महाराज ! भगवान्ने ऐसा भाषण किया है तो वह ऐसा ही है ।

‘ऐसा ही है मन्त्रिका ! जो जो अमन गौतम भाषण करता है, वस उसको ही व बन्धुमोदक करती है—‘यदि महाराज ! भगवान्ने । जैसेकि आचार्य जो जो अन्तेवासीको बध्ता है, उस उसकी ही उसका अन्तेवासी बन्धुमोदक करता है— यह ऐसा ही है आचार्य । आचार्य ? येमे ही व मन्त्रिका ! जो जो अमन । वस परे इत मन्त्रिका !’

तब मन्त्रिणा देवीने माझीअप माझनको धामवित्त किया—

‘अधो तुम माझन ! यहाँ भगवान् हैं यहाँ जाओ । जाकर मेरे बचनस भगवान्के चरणोंमें सिरसे बध्ना करना, ( कुपाछधेम ) पूछना— भन्ते ! मन्त्रिकादेवी भगवान्के चरणोंमें सिरसे बध्ना करती है, ( = कुपाछधेम ) पूछती है । भी वह भी कहना— नया भन्ते ! भगवान्ने यह बचन कहा है—‘प्रियजातिक हैं शोक उपायास । भगवान् हैसा तुम्हें उत्तर दें उस अच्छी तरह सीख कर, मुझे आ कर कहना, तपागत न्यर्ष नहीं बोकते ।’

बध्ना भवती ! माकीअंभ माझन यहाँ भगवान् के यहाँ जाकर, भगवान्के साथ संतोदक कर एक जोर बड गया । एक जोर बँडे माकिअंभ माझनके भगवान्को कहा—

“हे गौतम ! मन्त्रिका देवी ! अप गौतमके चरणोंमें सिरसे बध्ना करती है । और यह पूछती है—नया भन्ते ! भगवान्ने यह बचन कहा है—‘प्रिय जातिक हैं शोक उपायास’ ?”

‘वह ऐसा ही है माझन ! ऐसा ही है माझन ! प्रिय जातिक-प्रिय-उत्पन्न हैं माझन ! शोक उपायास । इसे इस प्रकारसे भी जानना चाहिये कि कैसे—प्रिय जातिक शोक ? पहिले समजमें (= मूलधर्म ) माझन ! इसी आबस्तीकी एक खीकी माता मर गई थी, वह उसकी बन्धुसे अमनत-विद्विस्त-विच हो एक सक्कसे दूसरी सक्कपर एक खीरन्नेसे दूसर खीरलोपर अकर ऐसा कहती थी—‘नया मेरी माको देना, नया मेरी माको देना । इस प्रकारसे भी माझन ! जानना चाहिये कि कैसे । पहिले समजमें माझन ! इसी आबस्तीमें एक खीका पिता मर गया था । माई मर गया था । भयिनी मर गई थी । पुत्र मर गया था । बुद्धिता मर गई थी । स्वामी (= पति ) मर गया था ।

‘पूर्व कालमें एक पुत्रकी माता — माया ।

‘पूर्वकालमें माझन ! इसी आबस्तीकी एक खी पीहर गई । उसके माई-बन्धु उसे उसके पतिले छीन कर दूसरेको देना चाहते थे, और वह नहीं चाहती थी । तब उस खीने पतिको यह कहा—‘आर्यपुत्र ! वह मेरे माई-बन्धु मुझे तुमसे छीनकर दूसरेकी देना चाहते हैं, और मैं नहीं चाहती । तब उस पुत्रने—‘दीनों मरकर इकट्ठा उत्पन्न होंगे’ ( सीख ) उस खीको दो इकट्ठकर अपनेको भी मार डाला । इस प्रकारसे भी माझन ! जानना चाहिये ।’

तब ताकि-बैब ब्राह्मण भगवान्के मायणके धर्मनन्दन कर अनुमोदन कर आसमसे उठ कर बर्हो मस्तिष्कदेवीकी थी, बर्हो गया। बाकर भगवन्क साथ जो क्या सहाय हुआ था, वह सब मस्तिष्कदेवीको कह सुनाया। तब मस्तिष्कदेवी बर्हो राजा प्रसन्नचित्त था, बर्हो गई, बाकर राजा प्रसन्नचित्त कोसकको बोली—

‘तो क्या मायते हो महाराज तुम्हें धजिरा’ (= वज्रा) कुमारी प्रिय है न ?’

‘हो मस्तिष्का ! धजिरा कुमारी मुझे प्रिय है।’

‘तो क्या मायते हो महाराज ! यदि तुम्हारी धजिरा कुमारीको कोई विपरिणाम (= सङ्घट) या भयभाल होवे तो क्या तुम्हें थोक उत्पन्न उत्पन्न होंगे ?’

मस्तिष्का ! धजिरा कुमारीके विपरिणाम-भयभालसे मेरे जीव का भी भयभाल हो सकता है, ‘थोक उत्पन्न होगा भी तो बात ही क्या।’

‘महाराज ! अब भगवान् आश्वत्थार, वेत्थनहार बर्होत् सम्बक सजुबने बही सोचकर कहा है—‘मिष-आतिक । तो क्या मायते हो महाराज ! बासम क्षत्रिया तुम्हें प्रिय है न ?’

‘हो मस्तिष्क ! बासम क्षत्रिया मुझे प्रिय है।’

‘तो क्या मायते हो महाराज ! बासम क्षत्रियाके कोई विपरिणाम = भयभाल हो, तो क्या तुम्हें थोक उत्पन्न होंगे ?’

‘मस्तिष्का ! जीवक भी भयभाल हो सकता है।’

‘महाराज ! बही सोच कर कहा है । तो क्या मायते हो महाराज ! विदुषन शेषापति तुम्हें प्रिय है न ?’ । ।

। तो क्या मायते हो महाराज ! मैं तुम्हें प्रिय हूँ न ?’

‘हो मस्तिष्के ! तू मुझे प्रिय है ?’

‘तो क्या मायते हो महाराज ! मुझे कोई विपरिणाम भयभाल हो तो क्या तुम्हें थोक उत्पन्न होंगे ?’

‘मस्तिष्का ! जीवक भी भयभाल हो सकता है।’

‘महाराज ! बही सोचकर कहा है । तो क्या मायते हो महाराज ! काशी और कोसक (के विवासी) तुम्हें प्रिय है न ?’

‘हो मस्तिष्के ! काशी कोसक मेरे प्रिय हैं। काशी-कोसकोंके अनुभाव (= अवरण) से ही तो हम काशिकबन्धनके भोगते हैं माका गंध विकेपन (= उदरक) बालन करते हैं।’

‘तो महाराज ! काशी-कोसकोंके विपरिणाम-भयभाल (= संघट)से क्या तुम्हें थोक उत्पन्न होंगे ?’

‘जीवक भी भयभाल हो सकता है।’

‘महाराज ! अब भगवान् ये बही सोचकर कहा है—‘मिष-आतिक=मिषसे उत्पन्न है थोक ।’

‘आधर्ष ! मस्तिष्के ! आधर्ष ! मस्तिष्के ! कैसे वह भगवान् हैं ! ! ! माका प्रजाये बंधकर देखते हैं। आको मस्तिष्के ! हम होंगे ।’

। न क ‘धजिरा नामक राजाकी पत्नीकी पुत्री।’

तब राजा प्रसेनजित् कोसलसे आसलसे उठकर उत्तरासंग (=बहर) को एक (बायें) कंध पर रत्न विहार भगवान् से उबर बंझी छोड़ तीव्र बार उद्यान कहा—

“उब भगवान् बहैत सम्पत् संतुद्धको नमस्कार है; कम भगवान् बहैत सम्पत् संतुद्धको नमस्कार है उब भगवान् बहैत, सम्पत् संतुद्धको नमस्कार है।”

पुण्य-सुत्त ।

‘पुसा मीने पुत्त—एक समय भगवान् ध्यायस्ती० जेतवनमें विहार करते थे ।

तब आपुप्पान् ‘पूर्ण’ बहौं भगवान् से पूर्ण गये । आकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ । एक ओर बठ आपुप्पान् पूर्णने भगवान्से कहा—

“अच्छा हो मन्ते । भगवान् मुझे संक्षिप्तसे धर्म-उपदेश करें जिस धर्मको भगवान्से सुन कर मैं एकाकी एकाग्री भ्रमणादी बघोयी संपत्ती हो विहार करूँ ।

“पूर्ण ! बसुसे विज्ञेय रूप इह=आन्त=भवाप विप्ररूप=आमोपसंहित संबर्षण होते हैं । यदि मिथु उन्हें अभिमन्त्र्य करता=आगत करता अप्यवसाव करता है । अभिमन्त्र्य करत अप्यवसाव करते हुये उसको नन्दी (=नृणा) उत्पन्न होती है ।

पूर्ण ! नन्दीकी उत्पत्ति (=समुत्प)से हु-जका समुत्प करता हूँ । पूर्ण ! जिह्वासे विज्ञेय रस इह । पूर्ण ! बसुसे विज्ञेय रूप इह है । यदि मिथु उन्हें अभिमन्त्र्य करती करता । । उसकी नन्दी (एणा) निरुद्ध (=विधीय) हो जाती है । पूर्ण ! नन्दीके निरोधसे हु-जका निरोध करता हूँ । । पूर्ण ! मन्ते विज्ञेय (=ज्ञातव्य) धर्म इह है । ।

पूर्ण ! मेरे इस संक्षिप्तमें कथित भववाद् (=उपदेश)से उपविष्ट हो कौनसे अवपदमें व विहार करेगा ?”

‘मन्ते ! सूतापरान्त नामक जनपद है मैं बहौं विहार करूँगा ।”

“पूर्ण ! सूतापरान्तके मनुष्य बण्ड हैं परप (=कठोर) हैं । जो पूर्ण ! तुझे सूतापरान्तके मनुष्य आक्रोशन=परिग्रहण (=कुशापक) करेंगे तो तुझे क्या होगा ?”

१ “ममो तस्य भगवतो ब्रह्मतो सम्मा संतुद्धस्य । २ सं वि ३३।१६ ।

३ अ क “सूतापरान्त (=वर्तमान याना और सुरतके किले तथा कुछ आस-पासके भाग) राज्यमें एक बधिक धाममें हो माई ( बसते थे ) । उपमें कमी बड़ा पाँच सा गावियाँ के जनपद आकर माछ जाता या कमी छोटा । इस समय कमिष्ट ( माई )को धरपर छोड़ उद्येष्ट जाता पाँच सी गावियाँ के भूमते हुय क्रमधः भावलीमें प्राप्त हा अतवतके नातिवृत्त सकर-सार्ध (=गायीके आरवा)अं उर्राकर; कडेक कर नाकरोक ताप अनुद्व्यन त्यागपर बैठ । उसी समय भावली-पासो कडेककर हुद उत्तरासंग भोजे हायमें गंध-पुष्प किले (धावलीक) दक्षिणद्वार (=महदका पाजार-दरवाजा)से निरुद्धकर जेतवनको उठते थे ।

। (पूर्ण) ने मी जननी मंडलीके साथ उसी परिपदके नंग विहारमें जा ‘धर्म सुन प्राप्त उपाय संकर किया । । (धिर) मंडारीको बुलाकर “यह धम मरे कविष्ट (जाता)को देवा सब समझा साक्षात् पास प्रयक्ति हा योग-अन्वास परावन हुय । तब योग्यास करते बल (मन) डोकस नदी उहरना था । तब सोचा—‘यह जनपद मेरे अनुद्व्यन नहीं है क्यों न मैं आन्तक पासस कर्म-न्याय (=योगविधि) ग्रहण कर अपन धर्ममें ही जाऊँ ।

“यदि मन्ते ! सूतापरान्तके मनुष्य मुझे आकाशमन्-परिभाषण करेंगे तो मुझे ऐसा होगा—सूतापरान्तके मनुष्य भद्र हैं सुभद्र हैं, जोकि वह मुझपर हाथसे प्रहार नहीं करते”—मुझे भगवान् ! ( ऐसा ) होगा सुगत ! ऐसा होगा ।

‘यदि पूर्ण ! सूतापरान्तके मनुष्य तुझपर हाथसे प्रहार करें, तो पूर्ण ! तुझे क्या होगा ?’

“ मन्ते ! मुझे ऐसा होगा— ‘सूतापरान्तके मनुष्य भद्र हैं, सुभद्र हैं, जोकि वह मुझे डबेते नहीं मारते ।

। डबेते नहीं मारते । । शकसे नहीं मारते । । शकसे मरा प्राण नहीं ले लेते ।

“यदि पूर्ण ! सूतापरान्तके मनुष्य तुझे ठीक सजसे मार डालें । तो पूर्ण ! तुझे क्या होगा ?’

“ वहाँ मुझे मन्ते ! ऐसा होगा— ‘उन भगवान्के कोई कोई भावक (शिष्य) हैं जो त्रिन्दीपसे तंग आकर ऊबकर, पूगाकर ( आत्म-हत्याके ) शक-हारक ( = शक उगाटना ) जोड़ते हैं । तो मुझे यह शक-हारक बिना शोक ही मिल गया । भगवान् ! मुझे ऐसा होगा । सुगत ! मुझे ऐसा होगा ।’ ”

‘साधु ! साधु !’ पून ! ! ! पूर्ण ! तू इस प्रकारके शम दमसे कुछ हो सूतापरान्त बनपदमें बास कर सम्या है । विसाख दू काल समसे ( वसा कर ) ।

तब आनुष्मान् पूर्ण भयवाक्यके बचबडी अभिवन्दन कर अनुमोदन कर आसबसे उठ भयवाक्यकी अभिवादन कर प्रशिक्षण कर क्षयनासब संभाक पात्र-बीजर ले, शिबर सूतापरान्त बनपद या उपर चारिकाको चक पड़े । अमघा चारिका करते वहाँ सूतापरान्त बनपद या वहाँ पहुँचे । आनुष्मान् पूर्ण सूतापरान्त बनपदमें विहार करते थे । तब वहाँ आनुष्मान् पूर्ण ने उसी बर्णके भीतर पौचसी उपवासकोंको ज्ञान कराया । उसी बर्णके भीतर उन्हीं ( स्वर्ण ) भी विद्यायें साक्षात् ( = प्रत्यक्ष ) कीं । और उसी बर्णके भीतर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये ।

x

x

+

x

( ११ )

पश्चादेव-सुप्त । सारिपुत्र-सुप्त । यपति सुप्त । विसाखा-सुप्त । पधानीय-सुप्त ।  
धरा-सुप्त । ( ई पू ४६६-९३ ) ।

‘येना ईमे सुता—एक समय भयवान् मिथिलामें महादेव प्राज्ञयज्ञमें विहार करते थे ।

१ आश्रयमवरोहित हो मरणा ।

२ न क “(पूर्णमें) कहीं कहीं विहार किया ? अरु स्थानमें -- अरुण-हृत्थ परंत वहाँमें समुद्रगिरि विहार वहाँमें मातुगिरि वहाँमें प्रबुद्धकारणम नामक विहारको गये । (सूतापरान्तमें स्थान) सख्यपत्र पर्यंत गर्मदा नदीके तीर ‘पद्मस्य’ ।

३. म. नि २।४।३।



एक जगह पर मगवान् मुखुरा उठे । तब जायुष्मान् भानस्यको यह हुआ—  
 'मगवान्के मुखुराबेक क्या कारण है ? क्या बगह है ? तबापत बिना कारके नहीं मुखुरा-  
 राते । तब जायुष्मान् भानस्य पीबरको एक कंधेपर कर बिबर मगवान् ये उबर हाव जोइ  
 मगवान्के बीसे —

“अन्ते ! मगवान्के मुखुराबेक क्या कारण है ?”

“आवन्द् ! पूर्वकाळमें ह्यी मिथिकामें मखादेव नामक धार्मिक धर्म-राजा राज हुक  
 बा । (बह) धर्ममें स्थित महाराजा बाह्यीमें गृहपतिवोंमें सिगमोंमें ( =कस्वों बघों )में  
 बघपदों ( =बीहातों )में धर्मसे कर्तता बा । अतुईसी (=अभावस्था), पंचवत्सी शुक्ला और  
 पद्मकी अहमिर्षीको उपोसव (=उपवासव्रत ) रखा बा ।

“(उसने अपने सिरमें पके बाक देक ) ज्येष्ठ पुत्र कुमारको हुक्या कर कहा—

“तात कुमार ! मेरे देकत प्रकट होगये, सिरमें एक केठ दिखार्ह पद रहे हैं । मेरे  
 मानुष-धाम (=भोग ) धीग किसे अब दिष्य-भोगोंके खोजनेक समय है । जाओ तात  
 कुमार ! इस राज्यके तुम जो । मैं कस्त-समभु मुंदा अपाव-बघ पहिब परसे बेबर हो  
 प्रकृतिय होईगा । सो तात ! अब तुम भी सिरमें पके बाक देकवा इजामको एक गाँव  
 इवाम (= बर) से ज्येष्ठ-पुत्र कुमारको अन्धी मकार राज्यपर अनुसासन कर केधसमभु मुंदा  
 बस्य पहिब प्रकृतिय होवा । जिसमें यह मेरा स्थापित कस्वाकधरम ( कस्वाक-बह ) अनु  
 प्रकृतिय रहे , तुम मेरे अन्धिम पुरुष मत होवा । तात कुमार ! जिस पुरुषपुत्राके धर्मभाव  
 रहते इस प्रकारके कस्वाक-धर्म (=मार्ग)का अन्धेद होता है वह उनक अन्धिम पुरुष  
 होता है ।

“तब आवन्द् ! राजा मखादेव ताईको एक गाँव इवाम व, ज्येष्ठ-पुत्र कुमारको अन्धी  
 तरह राजानुसासन कर, हसी मखादेव-अन्धधर्ममें सिर-दाही मु डा-प्रयत्नित हुआ । वह  
 चार 'महा-बिहारोंकी मावना कर शरीर छोप मरनेके बाद महाकोकके प्राप्त हुआ । --

“आवन्द् ! राजा मखादेवके पुत्रमें भी -- राजा मखादेवकी परम्परामें पुत्र  
 पीत्र अदि हसी मखादेव-अन्धधर्ममें केध-समभु मुंदा प्रयत्नित हुये । ...। किमि  
 उन राजाओंका अन्धिम धार्मिक, धर्म-राजा धर्ममें स्थित महाराजा हुआ । १

“आवन्द् ! पूर्वकाळमें शुभर्मा नामक समामें एकचित हुये आर्त्तियज्य देवोंके बीचमें  
 बह बाव उपरक हुई—‘ताम है अहो ! यिद्दोंके सुन्दर काम हुआ है बिदेहोंको, त्रिबका...  
 किमि जैसा धार्मिक धर्मराजा धर्ममें स्थित महाराजा है -- किमिभी आवन्द् !”  
 हसी मखादेव-अन्ध-धर्ममें 'प्रकृतिय हुआ " ।

आवन्द् ! राजा मिथिक कसार जलक तामक पुत्र हुआ । वह बर छोप बेबर  
 प्रकृतिय नहीं हुआ । उसने उस कस्वाक धर्मको उच्छिन्न कर दिया । वह उनक अन्धिम  
 पुरुष हुआ ।” --

“आवन्द् ! इस समय मैंने भी वह कस्वाक-धर्म स्थापित किया है ( जो कि )

१ मंत्री कस्वा मुदिता अर उपधा नामक चार भावनायें ।  
 २ राजा गणक कासी हिमाकके बीचका प्रदेश ( तिहुत ) ।

पुत्रादिर्विर्वेदके किये विरागके किये निरोधके किये=उपसमके किये धमिज्जाके किये, संबोधि (जुद्धवाप)के किये, विबाजके किये है—(बह) बही जावँ अर्थात् मार्ग है—जैसे कि—सम्बन्ध-दृष्टि सम्बन्ध-सकस्य सम्बन्ध-बाक कर्मान्त, आजीव व्यापाम स्पृति सम्बन्ध-समाधि । यह अवाण् ! मैंने कल्याण-वर्धन स्थापित किया है । सो अणन् ! मैं यह कहता हूँ जिसमें तुम इस मेरे स्थापित कल्याण मार्गको अनुभववर्तित करना (=कहाते रहना), तुम मेरे अन्तिम पुत्र मठ होना ।

भगवान् ने यह कहा सतुष्ट हो अनुष्मान् व्याजश्रुते भगवान् के भाषणका अभिवन्दन किया ।

### सारिपुत्त-सुत्त

‘देसा मैंने सुना—एक समय भगवान् धावस्ती जेतवनमें विहार करते थे ।

तब अनुष्मान् सारिपुत्त वहाँ भगवान् ने वहाँ जाकर अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे अनुष्मान् सारिपुत्तको भगवान् ने यह कहा—

“सारिपुत्त ! ‘ओठ आपत्ति-अंग ओठ-आपत्ति अंग कहा जाता है । सारिपुत्त ! ओठ आपत्ति अंग क्या है ?’

“सत्युदय-सेवा मन्ते ! ओठ-आपत्तिक अंग है । सदर्भ-असम्य ओठ-आपत्ति-अंग है । जोविद्या मसिककर ओठ-आपत्तिक अंग है । बसोनुबर्न प्रतिपत्ति (= बसोनुसार चकवा) ।’

“सारिपुत्त ! ओठ ओठ कहा जाता है । सारिपुत्त ! ओठ क्या है ?”

“मन्ते ! बही आर्ष-अर्थात् मार्ग ओठ है, जैसे—सम्बन्ध दृष्टि ?”

“साडु ! साडु ॥ सारिपुत्त ॥ सारिपुत्त ! वही आर्ष अर्थात् मार्ग ओठ है, जैसे कि । —

“सारिपुत्त ! ‘ओठ-अपच ओठ-अपच’ कहा जाता है । सारिपुत्त ! ओठ-अपच क्या है ?”

“मन्ते ! जो इस आर्ष-अर्थात् मार्गसे जुक्त है वही ओठ-अपच कहा जाता है, वही अनुष्मान् इस नामका इस गोजका है ।’

“साडु ! साडु ॥ सारिपुत्त ॥ जो इस आर्ष अर्थात् मार्गसे जुक्त है ।’

### धपति-सुत्त ।

‘देसा मैंने सुना—एक समय भगवान् धावस्तीमें० जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय बहुतसे मिथु भगवान् का बीवर-कर्म (=बीवर-सीधा) करते थे—बीवर (सीधा) समाप्त हो जानेपर तीव्रमास का भगवान् धारिकाको आर्षंगे । उस समय

१. बचीसर्वा बचावास १९६ ई. पू. आबन्दी (पूर्वारास)में किया छित्रीसर्वा जेतवनमें ।

२. सं. वि. ५४ : १५ ।

३. टीकसे मन्ते करवा ।

४. सं. वि. ५४ : १ : ६ ।

इसिदत्त (= ऋषिदत्त) और पुराण ( दोनों ) स्वपति (= हाथीवान् ) किसी कामसे सायुक ( नामक गाँव ) में वास करते थे । इसिदत्त और पुराण स्वपतियोंने मुना—बहुतसे मिष्ठ भगवान्‌का श्रीर-कर्म कर रहे हैं । तब ऋषिदत्त और पुराण स्वपतियोंने मार्गमें आदमी बेदा दिखा—

‘हे पुरुष ! जब तुम भगवान्‌ बर्हण् सम्पक-समुद्रको आते देखना तो हमें कबना दो-तीन दिन बढनक बाद उस पुत्रप्ने दूरसे ही भगवान्‌को आते देना । देखकर आकर ऋषिदत्त पुराण स्वपतियोंको कहा—

मन्ते ! वह वह भगवान्‌ आ रहे हैं ( धन ) जिसका ( भाव ) काक समी ( वीसा करे ) ।”

तब ऋषिदत्त और पुराण स्वपति बर्हो भगवान्‌ से बर्हो गये, आकर भगवान्‌को अभिवादन कर भगवान्‌के पीछे पीछे चले । तब भगवान्‌ मार्गस हटकर बर्हो एक वृष्ट था बर्हो गये । आकर पिछे भासनपर बडे । ऋषिदत्त पुराण स्वपति भी भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बडे गये । एक ओर पीछे ऋषिदत्त और पुराण से भगवान्‌को यह कहा—

मन्ते ! जब हम सुनते हैं—‘भगवान्‌ आबलीसे कोसलमें पारिका’को जावेंगे । उस समय हमारे मनमें असंतोष होता है दुर्मनसता (=अप्रसन्नता) होती है—‘भगवान्‌ हमसे दूर होजावेंगे । मन्ते जब हम सुनते हैं—‘भगवान्‌ आबलीसे कोसलमें पारिकाके किने चले गये । उस समय हमारे मनमें असंतोष होता है अप्रसन्नता होती है ‘भगवान्‌ हमसे दूर हैं । मन्ते ! जब हम सुनते हैं—‘भगवान्‌ कोसलसे मरु ( देश ) में पारिकाके किने जावेंगे’ उस समय हमारे मनमें अप्रसन्नता होती है—‘भगवान्‌ हमसे दूर होंगे । मन्ते पारिकाके किने चले गये उस समय अप्रसन्नता होती है—‘भगवान्‌ हमसे दूर हैं । मन्ते ! जब हम भगवान्‌ को सुनते हैं—‘भगवान्‌ मरुसे ‘वज्रीमें जावेंगे’ । । मन्तेसे बलीमें चले गये । बलीसे ‘कादी ( देश )में । । अन्तमें ‘मण्ड ( देश ) में चले गये ।

१ अ क भगवान्‌ गाडीक मार्गक बीचसे जात थ दूसरे भगव-भगवसे बीजे पीछ चल रहे थे ”

२ अ. क “भगवान्‌का पारिका करना भरा ( मन्तेमें ) सुबोदक निवत है । वह मन्तेमें ही पारिका करते थ ।

३ कोसलदेश = प्रायः अथवा आर बली बौनपुर जिलोंक विधाने ही भाग ।

४ मन्ते-देश = वतमान देखरिया और छपरा (सारक) जिलोंका संयुक्त प्रदेश ।

५ वज्री देश = बलारम सुजयपुरक सम्पूर्ण जिसे वरभंगा जिलका अधिकाँस और छपरा जिलमें दिवधाराकी महीबर्दी ( = या गण्डबर्दी बहुत पुरानी पार है बलीमें महीक नामक जिला है ) क संयुक्त जिलक पुरान रणम (मही = ऊपरी भागमें घाकाडी ) क दूर ओरका मारा भाग ।

६ कादी देश = बलारम गाडीपुर मिर्जापुर जिलोंक गंगाम उत्तरक भाग तथा आजमगढ़ और जाकपुर जिलोंक अधिकाँस भाग एवं बजिया जिला ।

उस समय बहुत ही असन्तोष होता है बहुत ही अप्रसन्नता । मन्ते ! जब हम सुनते हैं—“मगवान् मगपसे” काशी ( देश ) में चारिकको धायेंगे—उस समय हमें सन्तोष होता है प्रसन्नता होती है “मगवान् हमारे समीप होंगे । काशीमें पड़े जाये । काशी से बन्नीमें जायेंगे । बन्नीसे मरुमें धायेंगे । मरुसे कोसकमें धायेंगे । जब हम मन्ते ! मगवान्को सुनते हैं कोसकसे ध्रावस्तीको चारिकको धायेंगे । उस समय हमें सन्तोष होता है प्रसन्नता होती है—“मगवान् हमारे समीप होंगे” । जब कोसकसे जावस्तीको जब विष उस समय हमें सन्तोष होता है प्रसन्नता होती है । मन्ते ! जब हम सुनते हैं—मगवान् ध्रावस्तीमें बयावपिडक भाराम जेतयतमें बिहार करते हैं । उस समय हमें बहुत ही सन्तोष होता है बहुत ही प्रसन्नता होती है—“मगवान् हमारे पास हैं ।”

“इसकिये स्वपतिवो ! गृह-वास (= गृहस्थमें रहना ) संबाध (= बाधा-पूर्व ) ( रागादि ) मरु-का- ( भागमन ) माग है । प्रमज्जा सुखी जगह है । किन्तु, स्वपतिवो ! तुम्हारे किये अग्रमाद् ( से रहना ) ही सुख है ।

“मन्ते ! हमें इस संबाध (= कठिनाई ) से भी भारी संबाध है ।

“स्वपतिवो ! तुम्हें कौम संबाध है जो इससे भी भारी संबाध है ?”

“मन्ते ! जब राजा प्रसेनजित् कोसक उद्यम भूमिको जाना चाहता है ( तो )

राजा प्रसेनजित् कोसकके सब हाथी अच्छी तरह तन्वार कर राजा की सुन्दर कियोंको एक भागे एक पीछे कर बैठाते हैं । मन्ते ! उन भगिनियोंका इस प्रकारका वप होता है, जैसे कि गांधकी पिछरी सुरम्त छोडी गई हो, बैसी वह धध-विमूर्छित राजकन्यामें ( होती है ) । मन्ते ! उन भगिनियोंका शरीर-स्पर्श ऐसा है जैसे तुक-पिचुका (= कूँके काहेका ) बैठा ही सुखमें पकी उन राजकन्याओंका । उस समय मन्ते ! हमें हाथीकी रक्षा करनी होती है उन भगिनियोंकी भी रक्षा करनी होती है अग्रमाकी (= जलनी ) भी रक्षा करनी होती है । मन्ते ! हम उन भगिनियोंमें बुरा भाव उत्पन्न नहीं करते । वह मन्ते ! हमें इस संबाधसे भी भारी संबाध है ।”

“इसकिये स्वपतिवो ! गृहस्थ संबाध है राजो-मार्ग है । प्रमज्जा सुखी जगह है ।

किन्तु, स्वपतिवो ! तुम्हारे किये अग्रमाद् ही सुख है । स्वपतिवो ! चार जमों (= बातों ) से सुख धार्ब ध्रावक श्रोत-जापक धविबिपाठ धर्म (= ज पतिव होवैधमयक ) नियत-संकीधि पराक्य होता है । किज चारोंसे ? ( १ ) बुद्धमें अल्पत प्रसन्न । धर्ममें । संघर्षमें । मरु-मत्सर्ब रहित बिचसे गृह वास करता है सुख-त्याग-व्ययत-पाधि-दान-रत धापन बोम्ब होता है शान देवमें रत होता है । स्वपतिवो ! इन चार जमोंसे सुख धार्ब ध्रावक श्रोत ध्यपक होता है । तुम स्वपतिवो ! बुद्धमें आबन्त प्रसन्न हो । । जो कुछ भी ( तुम्हारे ) बुद्ध (= धर ) में शतध्व बस्तु है, सभी धीक-वान्, कन्याप-धर्मा (= धर्मात्मा ) ( जनों ) के किये है । तो क्या मानते हो स्वपतिवो ! कोसक ( देश ) में कितने एक मनुष्य हैं जो शान देवमें तुम्हारे समान हैं ।

“मन्ते ! हमें क्या है हमने सुकाम पा किबा, जिन हम जोगोंको मगवान् ऐसा समझते हैं ।”

(विशाखा)-सुप्त ।

'देवा 'मीने सुना—एक समय भगवान् भावस्तीमें मृगारमाताके प्रासाद पूर्वा-  
राममें बिहार करते थे ।

उस समय विशाखा मृगारमाताका प्रिय=मनाप जाती मर गया था । तब  
विशाखा मृगारमाता भीगे-बस, भीगे-केस मध्याह्नमें जहाँ भगवान् थे वहाँ गई । जाकर  
भगवान्को अधिवादन कर एक घोर बँटी । विशाखा मृगारमाताको भगवान्ने कहा—

'हन्त (=हँ) ! विशाखे ! तू भीगे-बस भीगे-केस, मध्याह्नमें कहाँसे आरही है ?'

"मन्ते ! मेरा प्रिय=मनाप जाती मर गया इसकिये मैं भीगे बस भीगे-केस  
मध्याह्नमें आरही हूँ ?"

"विशाखा ! भावस्तीमें कितने मनुष्य हैं तू उठने पुत्र, माती (=पीत्र) चारोगी ?"

'मन्त ! भावस्तीमें कितने मनुष्य हैं मैं उठने बेटे-पोटे चारूंगी ।'

'विशाखे ! भावस्तीमें प्रतिदिन कितने मनुष्य मरा करते हैं ?'

"मन्ते ! भावस्तीमें प्रतिदिन दस मनुष्य भी काक करते हैं । नव भी । अठ भी० ।  
सात भी । छ । पाँच । चार । तीन । दो । एक । मन्ते ! भावस्ती मनुष्योंके  
मरे बिना ( एक प्रिय भी ) नहीं रहती ?"

"तो क्या मावती है विशाखा ! क्या तू बिना-भीगे-बस बिना भीगे-केस रह  
सकती ?"

"नहीं मन्ते ! मरे कितने बेटे-पोटे हैं उठने ही बस

"(हस्यप्रिय) विशाखे ! प्रियक सौ प्रिय होते हैं उनके सौ दुःख होते हैं । प्रियके बच्चे  
प्रिय उनके बच्चे दुःख । जस्सी । सत्तर । साठ । पचास । चासीस ।  
तीस । बीस । दस । नव । अठ । सात । छ । पाँच । चार ।  
तीन । दो । प्रियको एक प्रिय होता है उनके एक दुःख होता है । प्रियको प्रिय  
नहीं होता उनके दुःख नहीं होता । वह शोक-रहित राज (=राज आदि)-रहित उपावास  
(=वरेष्मणी)-रहित है—कहता हूँ ।

तब भगवान्ने इस अर्थकः जाय उसी बेकामें यह कथन कहा—

कोकमें जो शोक परिदेव माना प्रकारके दुःख हैं, वह प्रियके कारण होते हैं, प्रिय  
( बन्धु ) न होनेपर वह नहीं होते ॥१॥

"इसप्रिय नहीं सुन्ती शोक रहित है प्रियको कोकमें कहीं भी प्रिय नहीं । इसकिये  
जो शोक विरक्त होना चाहे वह काकमें कहीं प्रिय न बनाये ॥२॥"

पध्यानीय-सुप्त ।

'देवा 'मीने सुना—एक समय भगवान् भावस्तीमें जेतपत्तमें बिहार करते थे ।

१ चातीनर्षो वर्षावास ३९४ ई पू भगवान्ने धावनी ( पूर्वा राम )में बिताया ।

२ उपास ८६ । ३ वर्णमात्र हनुमन्तर्षो ( महेर महेरक मयीष ) ।

पैनीमर्षो वर्षावास (४९३ ई पू) धावनी जेतपत्तमें बिताया । ५ अ वि

तब भगवान् सार्वभौमके प्रतिप्रकथन (=ध्यान) से उठकर वहाँ उपस्थान-साक्षात् की वहाँ गये; बाहर विछे आसनपर बैठे। आधुष्मात् स्त्रारिपुत्र भी सावकाश ध्यानसे उठ वहाँ उपस्थान-साक्षात् की वहाँ गये; बाहर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। आधुष्मात् मौहस्यायन भी। महाकाश्यप भी महाकारमायन भी। महाकोटिष्ठ महाधुम् । ० महाकपिनः । ० अजुदरः । ० रेवतः । आधुष्मात् मानन् भी । तब भगवान् बहुत रात तक बैठकीमें विरा आसनसे उठ विहारमें चले गये। वह (वृषे) आधुष्मात् भी भगवान्‌के जानेके घोषीही दर बाद, आसनसे उठकर अपने अपने विहार (=वनाविहार) को चले गये। जो कि वहाँ गये मिथु घोषीही दिवके प्रकथित इस धर्म विषय (=धर्ममें) अभी आये थे, वह सूर्योदय तक खरटि के सोते रहे। भगवान्‌के दिव्य विष्णु, अमातुप चतुसे उन मिथुओंको खरटि मार सोते देखा। देखकर वहाँ उपस्थान-साक्षात् की वहाँ गये, बाहर रखे आसनपर बैठे। देखकर भगवान्‌के उन मिथुओंको आमंत्रित किया—

‘मिथुओ! स्त्रारिपुत्र वहाँ है? मानन् वहाँ है? मिथुओ! वह स्थविर जाकर वहाँ गये?’

‘मन्ते! वह भी भगवान्‌के जानेके घोषी ही दर बाद आसनसे उठकर, अपने-अपने विहारमें चले गये।’

‘तो मिथुओ! तुम स्थविर (=वृद्ध)से खेर गये तक सूर्योदय तक खरटि मारकर सोते हो? तो क्या मानते हो मिथुओ! क्या तुमने देखा वा सुना है सूर्याभिषिक्त (=अभिवेक-मास) क्षत्रिय राजाको इच्छानुसार सचन-सुख स्पर्श-सुख, सूख (=आकस)-सुखके साथ विहार करते क्षीयन-वर्ण्य राजा करते, वा देसक प्रिय = मवाप होते?’

‘वहीं मन्ते!’

‘साधु मिथुओ! मिथुओ! मैंने भी नहीं देखा नहीं सुना—राज्य=सूर्योभिषिक्त क्षत्रियकी। तो क्या मानते हो, मिथुओ! क्या तुमने देखा वा सुना है रात्रिक (=रत्रिक) । ०<sup>१</sup> पेलयक । सेनापतिक । भ्राम-भ्रामभिक ० । (=गाम गामिक) । पूग-गामभिकको इच्छानुसार सचन-सुख के साथ विहार करते क्षीयन-वर्ण्य पूग-गामभिक करते वा पूगका प्रिय = मवाप होते?’ ‘वहीं मन्ते!’

‘साधु मिथुओ! मिथुओ! मैंने भी नहीं देखा । तो क्या मानते हो मिथुओ! क्या तुमने देखा वा सुना है सचन-सुख स्पर्श-सुख सूख-सुखसे बुद्ध, इन्द्रियोंके द्वारों-के न रोकनेवाले मोक्षकी मात्राकी व जाननेवाले, आगरधर्म व तत्पर धर्मन आत्मनको इच्छानुसार इच्छक (=अच्छे) धर्मोंकी विपश्यन व करते पूर्वराज (=राजके पहिले भाग) और अपर-राज (=राजके पहिले) में बोधि-यज्ञीय-धर्मोंकी व्यवसाय व करते आत्मनोंके क्षयसे आत्मन-रहित चित्तकी विमुक्ति (=मुक्ति), प्रशा-विमुक्तिको इसी अन्तमें स्वर्ग अभिज्ञान कर, साक्षात्कारकर, मालकर, विद्वारते?’ ‘वहीं मन्ते!’

‘साधु मिथुओ! मैंने भी मिथुओ! नहीं देख । इसलिये मिथुओ! ऐसा

१. यवर्नर-व्यदेशिकारी। २. नगराधिकारी मेवर (?)। ३. ग्रामका अक्षर।

४. एक अनुशासक अक्षर।

ना चाहिये—इन्द्रिव-द्वारको सुरक्षित रखेंगा। भोजनकी मात्रा (परिमाण) का नियंत्रण होईगा। सागनेवाला कुड़बबोका विपर्यय पूर्व-भात्र अवर-रात्रमें बोधि-यज्ञीय धर्मोंकी भावनामें व्यक्त रहकर बिहईगा। मिशुभो! तुम्हें एसा सीखक चाहिये।

### अरा-सुघ

येना 'मिने सुना—एक समय भगवान् ध्यायस्तीमें भृगारमात्राके प्रसाद पूरा राम में बिहार करते थे।

उस समय भगवान् अघरासुघमें (सामान्य समय) ध्यानस बढकर 'पिण्डावे द्युमें बैठे थे। तब आपुष्मान् धार्मिक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। बाहर भगवान्को अभिवादन का भगवान्के सरीरको हाथमें मीजने हुये भगवान्को बोले—

“बाबर्ष ! मस्त ग् अन्मुठ ! मस्ते !! मस्त ! भगवान्क चमकेका रंग उतवा परि सुद उतवा पर्यवदाठ (उत्तरवक) नहीं है। गात्र (धर्म) शिथिल है, सब सुरिधों परी है। शरीर आगेकी ओर लुका (अग्रभात-सामनेकी ओर लुका) है। इन्द्रिमें जो विकर (अभ्ययमान) दिलाइ पवता है—अधु-इन्द्रियमें भोजन प्राण विकर काव-इन्द्रियमें।”

आनन्द ! यह येना ही होता है। पौत्रमें अरा-धर्म (अनुशास) है अथोन्में व्याधिधर्म है जीवधर्म मरण-धर्म है।

भगवान्ने यह कहा। सुगतने यह कहकर फिर साणा (कुड़) न यह भी कहा—

हे सुपय करनवाकी अरे ! सुघ अराको बिहार है। चाह सीधय मी जीवें। सभी अर-वराज हैं। (यह अरा) किसीको नहीं छुटती सभीको मर्दव करती है

X X X X

(१९)

### बोधि-राजकुमार-सुघ (ई पू ४९२)।

येना 'मिने सुना—एक समय भगवान् भगो (देव)में 'सुसुमारगिरिके मेठ कडावत सुगतवावमें बिहार करते थे। उस समय बोधि राजकुमारने अमन या साहज का किसी भी मनुष्यसे न भोगे कीकनन्ध कामक प्रसादको हाकहीमें बबवाया था। तब बोधि-राजकुमारने संशिकापुत्र 'मालवकको सम्बोधित किया—

‘बाबो तुम धीम्य ! संशिकापुत्र ! जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाओ। बाहर मेरे बबवने भगवान्के चरणोंमें सिद्ध बन्धवाकर आरोग्य अन्-आतक कहु उरवाव (सरीरकी अर्ध

१. भगवान्क छपीसर्वा (वि. पू. २१९) बर्षावास कावली (वरांराम) में किया।

२. सं. वि. ३. ५. १. १. १. अ. क. 'प्रसादकी छपासे पूर्व दिशामें ईके होसेसे प्रसादके पच्छिमवाक भागमें रूप की। ३. म. वि. २. ३५ (अच्छवया ५. में भी)।

५. सुघार (वि. मिशुपुर)। ६. साहज-उपन।

कमला) बल, अनुकूल विहार पृष्ठो—'भन्ते ! बोधि-राजकुमार भगवान् के चरणोंमें शिरसे बन्धनाकर धारोम्य पृष्ठ्या है'। और वह भी कह्यो— भन्ते ! भिक्षु-संबसदित भगवान् बोधि-राजकुमारका ककका भोजन स्वीकार करें ।'

अच्छ हो ( = भो )' कह संविक्र-पुत्र मानवक जहाँ भगवान् के बहो गया । आकर भगवान् से (कुसल प्रहल) कुछ एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठकर संविक्र-पुत्र मानवकने भगवान् से कहा—'हे गौतम ! बोधि-राजकुमार आपके चरणोंमें । बोधिराज कुमारका ककका भोजन स्वीकार करें ।'

भगवान् ने मौनद्वारा स्वीकार किया । तब संविक्र-पुत्र मानवक भगवान् की स्वीकृति का आसनसे उठ जहाँ बोधि-राजकुमार या बहो गया । आकर बोधि राजकुमारसे बोला—

'आपके चरणसे मैंने उन गौतमको कहा—'हे गौतम ! बोधि-राजकुमार । जमय गौतमने स्वीकार किया ।'

तब बोधि-राजकुमारने उस रातके बीचपर अपने घरमें उत्तम खाद्यनीय मोक्षनीय ( पदार्थ ) तैयार करवा कोकनद् प्रासादकी सकेद् ( = बबद्वात ) बुस्तोंसे सीढ़ीके गांघे तक विछवा संविक्रपुत्र मानवकको संबोधित किया—

आओ साम्य ! संविक्रपुत्र ! जहाँ भगवान् हैं वहाँ आकर भगवान् को क्या कहा— 'भन्ते ! काक इ मात ( = भोजन ) तद्वार होगया ।

'अच्छ भो ! .. काक कहा ..'

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिलकर पात्रर्षावर ले जहाँ बोधि-राजकुमारका घर ( = निवेशन ) या बहो गया । उस समय बोधि-राजकुमार भगवान् की प्रतीक्षा करता हुआ, शरकोष्ठक ( = नींबूतखाता )के बाहर रुका था । बोधि-राजकुमारने दूरसे भगवान् को जाते देखा । देखते ही भगवाणी कर भगवान् की बन्धा कर, जागे जागे करके जहाँ कोकनद् प्रासाद् या बहो ले गया । तब भगवान् विचली सीढ़ीके पास बड़े होगये । बोधि राजकुमारने भगवान् से कहा—'भन्ते ! भगवान् बुस्तोंपर चर्च, सुगत ! बुस्तोंपर चर्च ताकि ( वह ) चिरकाल तक मेरे हित और धुखके किये हो ।

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे ।

दूसरी बार भी बोधि-राजकुमारने । तीसरी बार भी ।

तब भगवान् ने आबुप्पाम् आमन्की ओर देखा । आबुप्पाम् जानन्ने बोधि-राज कुमारको कहा—

'राजकुमार ! बुस्तोंको समद हो । भगवान् पाँचके ( = चैक-पक्षि ) पर न चढ़ी । तद्वागत जानैवाही जमता का क्याक कर रहे है ।'

बोधि-राजकुमारने बुस्तों को समदवा कर कोकनद् प्रासाद्क ऊपर आसन विछवाने । भगवान् कोकनद् प्रासाद्पर चढ़ संबडे साथ बिठे आसनपर बैठे । तब बोधिराजकुमार ने मुद्-बहुक भिक्षुसंबसके अपने हाथडे उत्तम खाद्यनीय मोक्षनीय ( पदार्थ ) से सतवित किया संतुष्ट किया । भगवान् के भोजन कर पात्रसे हान लीच केनेपर बोधिराजकुमार एक नीचा आसन के एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए बोधिराजकुमारने भगवान् से कहा—

भन्ते ! मुझे ऐसा होता है कि मुझ मुझमें मान्य नहीं मुझ बुद्धमें मान्य है ।'



“राजकुमार ! बोबिते पहिले = शुद्ध न हो बोबि-तल्ल होते समय मुझे भी पही होय  
 या—‘सुख सुखमें प्राण्य नहीं है सुख दुःखमें प्राण्य है। इसकिये राजकुमार ! मैं उस समय  
 रहर (= तब बचकर ) ही बहुत कासे कासे केरायाला सुम्पर (= मज्ज ) बीजन के साथ ही,  
 प्रथम बचसमें माता-पिताके अङ्गुमुप होते घरसे बैबर हो प्रमथित हुआ। इस प्रकार  
 प्रमथित हो नहीं आत्मार-काकाम या नहीं गया। आकर आत्मार काकामसे कहा—‘आयुस  
 काकाम ! इस धर्मबिधयमें मैं अज्ञान-वास करना चाहता हूँ। ऐसा कहनेपर राजकुमार !  
 आत्मार-काकामने मुझे कहा—‘बिहरो अयुप्पमात् ! यह ऐसा धर्म है जियमें बिह (= ज्ञान  
 कर ) पुरुष अस्त् ही अपने आचार्यत्वकी स्वय जाकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर बिहार  
 करेगा। सो मैंने अस्त् ही = क्षिय ही उस धर्म ( धात ) को पूरा कर लिया। तब मैं उतने  
 ही थोठ-सुप मात्र = कहने-कहाने मात्रसे शानबाह भार स्वबिरबाह (= बुद्धोंका सिद्धान्त )  
 कहने लगा—‘मैं जानता हूँ वैजता हूँ । तब भरे मनमें ऐसा हुआ : आत्मार-काकामने  
 ‘इस धर्मको केपय अज्ञानसे स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर मैं बिहरता हूँ यह मुझे  
 नहीं बतलाया। अकर आत्मार-काकाम इस धर्मको जानता वैजता विहरता होगा। तब मैं  
 नहीं आत्मार-काकाम या नहीं गया। आकर आत्मार-काकामसे पूछ—‘आयुस काकाम ! तुम  
 इस धर्मको स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर (= उपसंपन्न ) नहीं पर्यन्त बतलते  
 हो ?’ पूया कहनेपर राजकुमार ! आत्मार काकामने ‘अधिकम्मापतन्न बतलसा।

तब मुझे ऐसा हुआ— आत्मार-काकाम हाँके पास अज्ञा नहीं है मीरे पास भी  
 अज्ञा है। आत्मार-काकाम ही क पास धीर्य नहीं है। रयुति । समाधि । प्रज्ञा ।  
 धर्मों व जिस धर्मको आत्मार-काकाम — ‘स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरता हूँ  
 कहता है; उस धर्मको साक्षात् कर करनेक लिये मैं उद्योग करूँ। सो मैं बिना देर किये =  
 क्षिय ही उस धर्मको स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर विहरने लगा। तब मैंने  
 राजकुमार ! आत्मार काकामको कहा—‘आयुस काकाम ! तुम इतना ही इस धर्मको स्वयं  
 जानकर हमलीगोंको बतलते हो ? — आयुस ! मैं इतना ही इस धर्मको स्वयं जानकर  
 बतलाता हूँ। आयुस ! इतना ही मैं भी हम धर्मका स्वयं जानकर विहरता हूँ।  
 आयुस ! हमें स्वयं है, आयुस ! हमें सुकाम भिला जो हम आयुप्पमात् जम स-अज्ञापारी  
 (= अज्ञ-भारु) को देखने है। — मैं जिस धर्मका स्वयं जान कर बतलाता (= उपदेश करता )  
 हूँ, तुम भी उसी धर्मका स्वयं जान विहरत हो तुम जिस धर्मका स्वयं, मैं भी उसी धर्म  
 को। हम प्रकार मैं जिस धर्मको जानता हूँ उस धर्मको तुम जानते हो; जिस धर्म का  
 तुम जानते हो उस धर्मका मैं जानता हूँ। हम प्रकार जैय तुम ईसा मैं; जैया मैं ईसा  
 तुम हो। आयुस ! भाभा अर हम राजों ही हम गय (= जमान ) को धारण करें।’ हम  
 तब मेरा आचार्य दान दुप् भी आत्मार-काकामने मुझ अज्ञावासी (= क्षिय ) को अपने  
 बराबरके स्वाधर रपापित किया, बरे सङ्कर (= पूजा ) स सङ्कन किया। तब मुझे बों  
 हुआ—‘यह धर्म न निर्दे (= उदासीनता ) के लिये है न ईसावक क्षिय न निरोधके  
 लिये न उपशाम (= शान्ति ) के लिये, न अभिजा (= दिग्ग शान्ति ) के लिये न सङ्कोधि  
 (= परमज्ञान ) के लिये न बिबाण के लिये है; अर्धिकम्मापतन्न तब उद्योग हावे हीके लिये  
 (वय) है। ना मैंने राजकुमार ! उय धर्मको अपाप्त मात्र उय धर्ममें उद्योग हा बन दिया।

“सो राजकुमार ! मैं 'नवा कुसक (= अष्टक ) है' की गणेष्य करता सर्वोत्तम श्रेष्ठ सातिपत्तको जोरता अर्थात् उद्दक राम-पुत्र वा बर्हो गया। आकर उद्दक (= उद्दक ) राम पुत्रसे बोझ — आमुस ! इस धर्म-विलसमें मैं मद्यचय पाठन करना चाहता हूँ। ऐसा करनेपर राजकुमार ! उद्दक राम-पुत्र मुझसे बोझ—

“बिहरो आमुष्मान् ! यह वैसा धर्म है जिसमें चित्र पुरुष अन्त ही अपने आचार्यत्व को स्वयं जानकर = साक्षात् कर = प्राप्त कर बिहार करेगा। सो मैंने पुराण किम ही उस धर्मको पूरा कर किया। सो मैं उतने ही शोठ-युवे-मात्र = अर्थात्-अज्ञानेमात्रसे ज्ञानधर, नीर स्वविर-वाद करने स्था— मैं जानता हूँ देखता हूँ तब मुझे ऐसा हृष्य - रामसे मुझे यह न बतकाया मैं इस धर्मको केवल अज्ञानसे स्वयं जान कर = साक्षात् कर=प्राप्त कर बिहरोता हूँ। अकर राम इस धर्मको जानते देखते बिहरोता होगा। तब उद्दक रामपुत्रसे मैंने पूछा—‘आमुस रामपुत्र ! इस धर्मको स्वयं जान बतकाते हो ?’ ऐसा करनेपर ! उद्दक राम-पुत्रने ‘मैवसंज्ञा-नासंज्ञावतव’ बतकाया। तब मेरे ( मन ) में हुआ—‘उद्दक रामपुत्रके पास ही चक्रा वहीं है मेरे पास भी अज्ञा है। क्यों न। इस तरह मेरा आचार्य हाते हुए उद्दक रामपुत्रने मुझ अन्तेवासीको अपने बराबरक स्थानपर स्थापित किया। सो मैंने उस धर्मसे उदास हो चल दिया।

“राजकुमार ! 'नवा अष्टक है की गणेष्य करता (= किङ्कसक-गणेषी ) सर्वोत्तम श्रेष्ठ सातिपत्तको जोरते हुए, मगधमें अमस पारिक्य करते अर्थात् उद्दकेक सेनावी-निगम (= अस्ता ) वा बर्हो पहुँच। बर्हो मैंने रमणीय भूमि भाग सुन्दर बग-बग पहली नदी श्वेत सुमतिष्ठित चारों ओर रमणीय गोचर-ग्राम देला। तब मुझे राजकुमार ! ऐसा हुआ—‘रमणीय है हो ! यह भूमि भाग। प्रधान-दृष्ट्युक्त कुल पुत्रके 'प्रयागके किने वह बहुत हीक ( अन्त ) है' सो मैं 'प्रयागके किने यह अर्ध (= टीक ) है ( सीच ) वहीं बंद गया। मुझे ( इस समय ) अद्भुत अद्भुत-पूर्व तीन उपमार्य मान हुई। —

‘मैंने ! गीका काह मीने (= सस्नेह ) पानीमें डाल्य जाये। (कोई) पुरुष जाग बनाकेगा 'तेत्र प्राहुर्माप-ककेगा' (सोक) 'उत्तरारणी अकर भाये। तो क्या वह पुरुष गीके पानीमें पड़ी गीके अद्रकी उत्तरारणीको अकर मधर अरित बना सकेगा तेत्र प्राहुर्माप कर सकेगा ?

“वहीं मन्ते !”

“तो किस किने ?” “( एक तो वह ) स्नेह-मुक्त गीका काह है फिर वह पानीमें लय्य है। 'येमा करकेकाका वह पुरुष सिर्फ यकाचर, पीकाका ही मागी होगा।

“येम ही राजकुमार ! जो धाद्यत्र काया द्वारा काम-आग्रवाओंमें अन्त हो बिचरते हैं। जो कुछ भी इनका काम (= वासवाओं ) में काम-रधि = काम स्नेह = काम-मूर्च्छा = काम-विपासा = काम-परिदाह है पद यदि भीतरने वहीं लया है वहीं समिठ हुआ है तो

१ एक प्यास ।

२ मिथारण-बोध्य पार्श्ववर्ती ग्राम । ३ निर्गल-प्राप्य करानेवाली योग-बुद्धि ।

४ रयकर आग निकालेकी अकरी ।

प्रबलशक्ति होनेपर भी वह अमल-माह्यन कुण्ड (-२) तीव्र कटु बेरना ( मात्र ) सह रहे हैं । वह ज्ञान-दर्शन अनुत्तर-संबोध ( = परम ज्ञान ) के अयोग्य हैं ।

“राजकुमार ! वह मुझे पहिचानी अनुसुत न सुत-वर्ष उपमा मान हूँ ।”

“और भी राजकुमार ! मुझे दूसरी अनुसुत न-सुत-वर्ष उपमा मान हूँ । राजकुमार ! जैसे स्नेह-गुण गीष्म काण्ड अङ्कुर के पास स्थलपर फेंका हो और कोई पुण्य उत्तराणी अङ्कुर आये—‘अग्नि बवाङ्कुर’ तेज प्रादुर्भूत करेगा । तो क्या समझते हो राजकुमार ! क्या वह पुण्य अग्नि बना सकेगा तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा ?”

“नहीं भन्ते

तो किस लिये ?”

“( एक तो ) वह काण्ड स्नेह गुण है और पानीके पास स्थलपर फेंका हुआ भी है ।

-- वह पुण्य सिर्फ पत्राण्ड, पीवा ( मात्र ) ही मानी होगी ।

“ऐसे ही राजकुमार ! जो कोई अमल वा ज्ञानवा अयोग्य के द्वारा पासवाओंसे अमल हो विदरते हैं । अयोग्य हैं । राजकुमार ! मुझ वह दूसरी ।

“और भी राजकुमार ! तीसरी अनुसुत न-सुत-वर्ष उपमा मान हूँ ।—जैसे नीरस सुष्क काण्ड अङ्कुर रू स्थलपर फेंका है । और कोई पुण्य उत्तराणी अङ्कुर आये—‘अग्नि बवाङ्कुर’ तेज प्रादुर्भूत करेगा । तो क्या वह पुण्य नीरस-सुष्क अङ्कुरे रू के काण्डके उत्तराणीसे अमल करके अग्नि बना सकेगा तेज प्रादुर्भूत कर सकेगा ?

“हाँ भन्ते !”

“सा किमखिय ?”

“अम्भ ! वह नीरस सुष्क काण्ड है और पानीसे रू स्थलपर फेंका है ।

“ऐसे ही राजकुमार ! जो कोई अमल-माह्यन अयोग्य द्वारा अमल वासवाओंसे अमल हो विदरते हैं । और जो अमल अमल-वासवाओंसे अमल-परिहास है; वह भीतरसे भी सुख-हीन ( = अन्धी तरह एत गवा ) है सुखमित है । ता वह प्रबलशक्ति अमल-माह्यन कुण्ड (-२) तीव्र कटु बेरना नहीं योग्य । वह ज्ञान-दर्शन = अनुत्तर-संबोध के पात्र हैं । यदि वह प्रबलशक्ति अमल-माह्यन कुण्ड तीव्र कटु बेरना का भोग भी (तो भी) वह ज्ञान-दर्शन अनुत्तर संबोध के पात्र हैं । वह राजकुमार तीवरी ।

“तब राजकुमार ! मेरे (अमल) हुआ—‘वशो न मी द्वाँक उगर दौत रण विद्वान् द्वारा तालुका दवा अमल अमलके विग्रह कर’ दवाक, संतापित कर’ । तब मेरे दौत रण दौत रणके विद्वान् तालुका दवा अमल अमलके पददमे ताराभेदे; कौतमे वशीक विद्वान्ता वा; जमे कि राजकुमार ! अमलान् पुण्य सीमल पददकर कंधेमे पददकर दुर्बलता पुण्य का पददे दवाक तपाक । जेमे ही राजकुमार ! मेरे दौत रण दौत कौतमे अमल विद्वान्ता वा । उम अमल मीमे न पदक वाक्य वीर (अच्छात) आराम दिवो हुआ न मरी शक्ति बनी भी दवा भी तप भी ।

“तब मुझ वह हुआ वशो न मी द्वाँक उगर दौत रण विद्वान् ? ता मीन राजकुमार ! मुझ आर कामिका न दवाक अमल अमल दवा दवा । तब राजकुमार ! मेरे मुझ आर कामिका न आराम-अच्छात क क न पद दवाक उम म विद्वान्ता वा ( दवाक) वा उम अमल

सम्भ होने लगा। जैसे कि—कोहारकी बीकनीसे बीकनेसे बहुत अधिक शब्द होता है; ऐसे ही। न बचनेवाका बीर्ये आरम्भ किया हुआ था।”

“तब मुझे यह हुआ—क्यों न मैं इबास-रहित प्याज चर्खें? सो मैंने राजकुमार! सुख से। तब मरे सुख नासा और कर्बसे आइबास-प्रशबासके एक कामसे, मूर्धामें बहुत अधिक घात उभरा। जैसे बकबान् पुष्प तीक्ष्ण सिक्करसे मूर्धा (अक्षिर)को मर्बे ऐसे ही राजकुमार! मेरे।

“तब मुझे यह हुआ—क्यों न इबास-रहित प्याज चर्खें?—सो मैंने सुख नासा कर्ब से आइबास-प्रशबास की रोक दिया। तब सुख नासा कर्बसे आइबास-प्रशबासके एक कामसे मेरे सीसमें बहुत अधिक सीस-वेदना (अक्षिर पर) होती थी। न बचाने बाका।”

“तब राजकुमार! मुझे यह हुआ—क्यों न इबास-रहित हों प्याज चर्खें?—सो मैंने। एक जगहपर बहुत अधिक घात पेट (अक्षिर) को डेरते थे। जैसे कि बड़ (अक्षुर) जो घातक वा गो-घातकका अग्नेवासी वेज गो-विकर्षण (= सुरा)से पट को काटे; ऐसीही। न बचनेवाका।

“तब मुझे यह हुआ ‘क्यों न इबास-रहित ही प्याज (क्षिर) चर्खें। राजकुमार। कर्पायें अल्पधिक शब्द होता था। जैसे कि जो बकबान् पुष्प दुर्बलतर पुष्पको अनेक बाहोंमें पकककर बाँधारोंपर तपायें, ऐसेही। न बचते।

‘वेचता भी मुझे कहते थे—‘अमज गीतम मर गया। कोई कोई वेचता बें कहते थे—‘अमज गीतम नहीं मरा न मरगा; अमज गीतम अर्हत् है। अर्हत्का तो इस प्रकारका विहार हाँवा ही है।

“मुझे यह हुआ—‘क्यों न आहारको बिकमुक ही छोड़ देना स्वीकार चर्खें। तब वेचताओंमें मेरे पास आकर कहा—‘मार्ग! तुम आहारका बिचमुक छोड़ना स्वीकार करो। इस दुम्बारे रोम कूपोंहारा विष-भोज एक रेंगे; उसीसे तुम निर्वाह करो।। तब मुझे यह हुआ—‘मैं (अपनेको) सब तरहसे निराहारी अर्ह्या और यह वेचता रोमकूपों द्वारा विष भोज मेरे रोम-कूपोंके भीतर हाँकेगे; मैं उच्छीसे निर्वाह करूँगा। यह मेरा मूषा (होग) होगा। सो मैंने उस वेचताओंका मत्पाकबान किया—‘रहने दो।

“तब मुझे यह हुआ—‘क्यों न मैं थोड़ा थोड़ा आहार ग्रहण चर्खें—पसर भर मूँग का दूध या कुकपीक दूध वा मटर का दूध वा अर्हकका दूध—। सो मैं थोड़ा थोड़ा पसर पसर मूँगका दूध ग्रहण करने लगा। थोड़ा थोड़ा पसर पसर भर मूँग का दूध ग्रहण करते हुवे मेरा शरीर (बुककटाधी) चरम सीमाको पहुँच गया। जैसे असीतिक (= न सति किरोग) की घाटे जैसेही उस अल्प आहारसे मेरे अंग मर्त्य हो गये। उस अल्प आहारस जैसे उँट का घँट, बँस ही मेरा कूक (अधानिसव) हो गया जैसे सूखोंकी पांती (अबुवाक) जैसे ही उँटके नीचे मेरे पीठके कटि हो गये। जैसे पुरानी साकाकी कटिबों (= टोड़े = घोषावसी) टेनी-मेरी (= अतोत्तम-बिलुगवा) होती है ऐसी ही मेरी पंमुकियाँ हो गई थीं। जैसे घरके कुँ (= उषाण)में पानी का तारा (= उषक-तारा) गहराई में बहुत दूर दिखाई देता है उसी। जैसे कच्छा तोड़ा कचवा अर्धका हवा रूपसे बिभुक (= संपुक्ति) आया है मुसाँ काटा है; ऐसे ही मरे सिरकी आक बिभुक गई थी मुसाँ गई थी।”

राजकुमार ! यदि मैं पेट की खाकको मसकता तो पीठके काँटोंको पकड़ लेता था, पीठके काँटोंको मसकता तो पेटकी खाकको पकड़ लेता । उस अस्वाहाारसे मेरे पीठके काँटों और पेटकी खाक विशुद्ध सह गई थी । यदि मैं पाखागा या मूत्र करता, वहीं महराकर (=उपकुत्र) गिर पड़ता था । जब मैं काबाको सहकाले (= भस्मात्मेयो) हुये हाथ से गात्र को मसकता तो हाथसे गात्र मसकते बल, कापासे सही बच बाले (= एति-मूष) रोम छड़ पड़ते । मनुष्य भी मुझे देखकर कहते थे— भ्रमज गौतम काका है । कोई कोई मनुष्य कहते थे— “भ्रमज गौतम काका नहीं है इयाम है । कोई कोई मनुष्य बों कहते ‘भ्रमज गौतम काका नहीं है व इयाम ही है, मंगुर-वर्ष (=‘मंगुरध्वषि) है । राजकुमार ! मेरा पैसा परि-शुद्ध परि-भक्त्यात (=सक्रेर गोरा) एवि-वर्ष (= चमड़ेका रंग) मट हो गया था ।

“तब मुझे बों हुआ—जतीत काक में जिन किन्हीं भ्रमजों-भाइजोंसे घोर दुःख तीम और कट्ट पेदनायें सहीं इतने ही पबन्त (मही होंगी) इससे अधिक नहीं, मविष्य कर्मों जो कोई भ्रमज प्राइज घोर दुःख तीम और कट्ट बेदनायें सहेगी इतने ही पबन्त इससे अधिक नहीं । आइज भी जो कोई भ्रमज प्राइज घोर दुःख, तीम और कट्ट बेदना सह रहे हैं । केकिन राजकुमार ! मैंने उस दुःखर करिकासे उचर मनुष्य परम ‘भ्रमजार्ण द्याव-वर्षान-विद्यय न पाया । ( मुझे विचार हुआ ) सोचक किये क्या कोई दूसरा मार्ग है ?

“तब राजकुमार ! मुझे बों हुआ— ‘भाइज दी मैंने पिता ( सुखोदन ) शाक्यके केनपर जातुबन्दी टंडी एवाक गीचे पैद काम और अहुइल बसोंको दयाकर प्रथम ध्यान को प्राप्त हो विहार किया था । शाक्य पर मार्ग पोथिका हो । तब राजकुमार ! मुझे वह हुआ-जब मैं उस सुखय करता हूँ जो सुख काम और अहुइल धर्मोंसे मिथर्म है । फिर मुझे राज कुमार पर हुआ— मैं जब सुखसे मही इरतम जो सुख । तब मुझे राजकुमार वह हुआ इस प्रकार आपस कृपा बतल कायामे वह सुख मिळना सुकर नहीं बसों न मैं स्थूल आहार प्राप्त-शक (=पुत्रमाय) प्रदण करूँ । सो मैं राजकुमार ! स्थूल आहार भोइल-कुम्माय प्रदण करन ल्या । उस समय राजकुमार ! मर पास पाँच मिथु ( इस आशासे ) रहा करते थे; कि भ्रमज गौतम जिस धर्मको प्राप्त करंगा उग हम लौगों को (भी) बतकावेगा । केकिन जब मैं स्थूल आहार भोइल कुम्माय प्रदण करने ल्या, तब वह पाँचों मिथु भ्रमज गौतम बाहुकिंक (= बहुल ममद करबशका ) प्रभावसे विमुक्त पातुल्य परावन हो गया (समझ) ब्रामीन-दी चर तर्षे ।

“तब राजकुमार मैं स्थूल आहार प्रदणकर मरक हो काम आर अहुइल-धर्मोंसे परिक्रि विठरूँ तथा विचारवहित पञ्चमाताय उल्लख (= विवेकर) प्रीति-मुगवासे प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहार ल्या । जिगड और विहार क उपसमित होब पर, अशिर संप्रया रण (= प्रमन्या) अविष्य डी पञ्चमाता-मुन, विठर-विचार-वहित समाधिसे उल्लख प्रीति मुग वाड द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहारने ल्या । प्रीति और विरातडी उपसकार १. नि और संप्रव्यद मान कावाग गुणध अनुभव (=प्रतिमवेदन) करणा हुआ विहारसे

१ मंगुर मठम्भी ।

२ वरम गाव ।

३ १५१। समुति राजपत्र-व

क्या । जिसको कि चायजन उपेक्षक रस्युतिमान् भीर मुक्त-विहारी करते हैं, येमे तृतीय प्याज को प्राप्त हो विहार करने क्या । ।

“सुत भीर हुआके विनाश (= प्रहाम) से पहिले ही साममस्य भीर दौर्मनस्वके पहिले ही भरत हो जानेसे हुआ-रहित मुक्त-रहित उपेक्षक हो रस्युतिकी परिमुक्ततासे मुक्त चतुर्थ प्याजको प्राप्त हो विहार करने क्या ।

“तब इस प्रकार चित्तके परिमुक्त=परि-अवदात=अगाधरहित=अपक्वसेर-रहित यदु दूये कास-कापक निवार=अवकृताप्राप्त=समाधिप्राप्त हो जाने पर पूर्वजन्मों की रस्युतिके ज्ञान (=पूर्वनिवासानुरस्युति ज्ञान) के किये चित्तको मैंने मुक्तया । फिर मैं पूर्वहुत जनेक पूर्व विधासों (=जन्मों) को स्मरण करने क्या—जसे एक जन्म भी हो जन्म भी ।

“आकार-रहित उद्देह्य-रहित पूर्वहुत जनेक पूर्व-निधासोंको स्मरण करने क्या । इस प्रकार प्रमाद-रहित तत्पर हो आत्म-संपमपुक्त विहारत दूये मुझे रातके पहिले जाममें प्रथम विद्या प्राप्त हुई, अविद्या गई विद्या आई तम नष्ट हुआ आसोक उत्पन्न हुआ ।

“सो इस प्रकार चित्तके परिमुक्त समाहित होमेपर प्राथमिक जन्म-मरणके ज्ञान (=व्युत्ति-उत्पाद् ज्ञान) क किये मैंने चित्तको मुक्तया । सो अमुष्य (क नेत्रों) स परकी दिव्य विमुक्त चक्षुसे मैं अण्डे-पुरे सुवर्ण-सुवर्ण सु-गत दुर्गत मरते-उत्पन्न होते प्राणिपों को देखने क्या । सो कर्मानुसार जन्म को प्राप्त प्राणिपोंको जानने क्या । रातके चित्तके पहर (=पाम) में वह द्वितीय विद्या उत्पन्न हुई । अविद्या गई ।

“सो इस प्रकार चित्तक । आलसों (=मछ-रीप) के ज्ञानके किये मैंने चित्तको मुक्तया—सो यह 'दुःख है इसे पचायस जान सिधा; 'बह दुःख-समुद्भव है' इस पचायससे जान लिया; 'यह दुःख-विरोध है' इस पचायस जान सिधा; 'यह दुःख-विरोध गामिनी प्रतिपद् है' इसे पचायससे जान लिया । 'बह आकाश है' इन्हें पचायससे जान लिया; 'बह आकाश-समुद्भव है' इस 'बह आकाश-विरोध 'बह आकाश-विरोध = गामिनी-प्रतिपद् है' इसे । सो इस प्रकार जानते, इस प्रकार देखते मेरा चित्त कामालबोंस मुक्त हो गया अचाकर्मसे मुक्त हो गया अविद्यासे भी विमुक्त हो गया । हृद (=विमुक्त) जानेपर 'हृद गया (विमुक्त)' ऐसा जान हुआ । 'जन्म उत्तम हां गया अद्यपर्यं पूरा हां गया करना या सो कर लिया अब बहोंक किये कुछ (करणीय) नहीं इस जाना । राजकुमार ! रातके पिछके पाममें यह तृतीय विद्या प्राप्त हुई । अविद्या चली गई ।' ।

“तब राजकुमार ! पंचमर्गीय विमुक्त सेमे ज्ञाना इम प्रकार उपदेशित हो,=अनुभवसित हो अचिर ही मैं जिसके किये कुछ-युध परसे मेघर हो प्रकथित होते हैं उस उत्तम ब्रह्मचर्य ककड़ी इसी जन्ममें स्वर्ण आचर = साशान् कर = उपवास कर विहारने क्या ।

ऐसा कहनेपर बोधि राजकुमारने भगवान्म कहा—

दुष्पुत्र प्रजावान् । तां ब्रह्मकुमार ! यथा बह पुत्र तरे पास हाथीवाणी अनुस महज सिप्यको सीजेगा ?

“मन्ते ! किन्तु भी देरमें तपागत (को) विनायक (= बैसा) या मिथु विनायक सिने कुक-पुत्र करते बैसा हो प्रकृतित होते हैं उस उत्तम महाकर्षण कर्कको हसी क्षममें स्वर्ण काकर = साक्षात् कर = उपकाम कर विहरने छोया ?”

“राजकुमार ! तुम्हने ही बहोँ चुकता हूँ, बैसा तुसे हीक लो बैसा बतला । हाथी-बागी = अंकुशग्रहणके सिख्य (= कका) में तू चतुर है न ?”

“मन्ते ! हों मैं हाथीबागी में चतुर हूँ ।

“तो राजकुमार ! यदि कोई पुरुष—बोधि-राजकुमार हाथीबागी = अंकुश-ग्रहण सिख्य जानता है उसके पासस हाथीबागी = अंकुश ग्रहण सिख्यको सीखूँगा (सोचकर) आवे । और वह ही अज्ञात (तो क्या) कितना अज्ञा-सहित मनुष्य) द्वारा पाया जा सकता है (उतना वह पायेगा । सठ मायावी, अष्ट मायावी जाहसी विराहस ।

“एक होयसे भी कुछ पुरुष मेरे पास हाथीबागी = अंकुश-ग्रहण सिख्य बहोँ सीख सकता पौँचोँ होयोंसे कुछके किये तो कहवा ही क्या ?”

“तो राजकुमार ! यदि कोई मनुष्य बोधि-राजकुमार हाथीबागी जाकता है सिख्यको सीखूँगा (सोचकर) आवे । वह ही अज्ञात ; अल्प-रोगी ; अष्ट = अमायावी ; विराहस । तो राजकुमार ! क्या वह पुरुष मेरे पास हाथीबागी = अंकुश-ग्रहण सिख्य सीख सकेगा ?”

“मन्ते ! एक बातसे कुछ भी पुरुष मेरे पास ।

“हसी प्रकार राजकुमार ! निबौस साधना (= प्रधान) के भी पौँच अंग हैं । कौनसे पौँच ?—(१) मिथु अज्ञात हो तपागतकी बोधि (= परमज्ञान) पर अज्ञा करता है—कि वह भाषात्, अर्थात् सम्पक-सतुह, विद्या-आचरण-अर्थक, सुगत लोक-विद् अर् उत्तर-पुरुष अल्प-सारकी वेद-मनुष्यके सास्ता पुरु मयवान् हैं । (२) अल्प-रोगी = अल्प आतमी, न बहुत सीत न बहुत उष्ण साधनायोग सम-विपाकवाही मन्त्रम प्रकृति (= ग्रहणी) से कुछ हो ; (३) अ-सद = अ-मायावी हो; सास्ता (= गुह) और विज्ञ स-अज्ञातरिषों में, कुसक धर्मों के उत्पादनमें विराहस हो; कुसक धर्मोंमें अंधेरी तुम्ह व ह्यावेवाका रफ पराक्रमी बकिह हो । (४) अल्प-अज्ञातान् हो अल्प-अज्ञ-नामिनी आर्षिक वैदिक सम्पत् दुःख-अल्प-गामिनी प्रज्ञासे कुछ हो । राजकुमार ! प्रभावके वह पौँच अंग हैं ।

“राजकुमार ! इन पौँच प्रवाचीय अंगोंसे कुछ मिथु तपागतको विनायक (= बैसा) या अनुत्तर महाकर्षण कर्कको हसी क्षममें सात वर्षोंमें स्वर्ण काकर = साक्षात् कर-पास कर विहरिया ।”

“राजकुमार ! छोड़ो सातवर्ष, इन पौँच प्रवाचीय अंगोंसे कुछ मिथु ७ वर्षोंमें । पौँच वर्षोंमें । चार वर्षोंमें । तीन वर्षोंमें । दो वर्षोंमें । एक वर्षोंमें । सात मासमें । छ मासमें । पाँच मासमें । चारमासमें । तीन मासमें । दो मासमें । एक मास में । सात रात-दिनमें । ७ रात-दिनमें । पाँच रात-दिनमें । चार रात दिनमें । ७ रात-दिनमें । एक रात-दिनमें ।

“छोड़ो राजकुमार ! एक रात-दिन, इन पौँच प्रवाचीय अंगोंसे कुछ मिथु तपागतको

विनायक या सार्धकालको अनुसासक किया प्रातःकाल विशेष (अनिर्वाच्य) को प्राप्त कर सकता है प्रातः अनुशासित सार्ध विशेष प्राप्त कर सकता है ।”

ऐसा कहनेपर बोधि-राजकुमार बोध—ब्रह्म ! ब्रह्म ! ब्रह्म ! धर्म ! धर्म ! ब्रह्म ! धर्म का स्वाकपात-यव ! ब्रह्म ! कि सार्ध अनुशासित प्रातः विशेषको या जाने प्रातः अनुशासित साध विशेष या जाने ।”

ऐसा बोलनेपर सञ्जिव-युवने बोधि-राजकुमारको कहा—“ऐसा ही है मयान् बोधि ।—‘ब्रह्म ! ब्रह्म ! ब्रह्म ! धर्म ! धर्म ! ब्रह्म ! धर्मका स्वाकपात-यव ! (बह) तुम कहन हो, तो भी उस धर्म मार मिथु-संघ की सरण नहीं जाते ?

सौम्य ! संज्ञिका-युव ! ऐसा मत कहो । सौम्य ! संज्ञिका-युव ! ऐसा मत कहो । सौम्य संज्ञिका-युव ! मैंने ब्रह्म (अध्यात्म) का सुखमं तुम (उन्हींके) मुक्तसे ग्रहण किया है । सौम्य ! संज्ञिका-युव एकबार भगवान् कौशाम्बीमें बोधिवाराममें विहार करते थे । तब मेरी धर्मवती ब्रह्मा बहो भगवान् से बहो गई, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गई । एक ओर बीठी मेरी भगवाने भगवान् को पों कहा ‘मन्ते ! जो मेरे कोटमें यह कुमार या कुमारी है वह भगवान्की धर्मकी और मिथु-संघकी धारण जाती है । आइसे भगवान् इसे सौम्यिके धारणागत उपासक धारण करें ।

‘सौम्य ! संज्ञिका-युव ! एकबार भगवान् यहीं धर्म (विष) में सुस्तुमार-गिरिके भंसकलावन मृगावायनमें विहरते थे तब मेरी धार्म (ब्रह्मा) मुझे योर्धम केकर बहो भगवान् से बहो गई । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़ी हो गई । एक ओर खड़ी हुई मेरी धार्मने भगवान्की कहा—मन्ते ! यह बोधि-राजकुमार भगवान्की धर्मकी और मिथु-संघकी ।

“सौम्य ! संज्ञिका-युव ! यह मैं तीसरी बार भी भगवान्की धर्मकी और मिथु संघकी धारण जाता हूँ । आइसे भगवान् मुझे सौम्यिके धारणागत उपासक धारण करें ।”

१ उपम धर्म ।

२ भाष

३ म वि ज क १ ३:५ कौशाम्बीनगरमें परमप नामक राजा राज्य करता था । (एक समय) गर्मिनी राज-महिषी आकासके नीचे राजाके साथ हुए कती काक कम्बक छोड़े कैदी थी । एक हार्थीकी सुरत (= इतिपकित्र) का पक्षी (उसे) मांसका टुकड़ा जान केकर आकासमें उड़ गया । ‘कहीं मुने छोड़ न है—इस बरसे वह चुप रही । उसी उसे पर्वतकी जड़में लगे एक बृहत्के ऊपर रख दिया । तब उसने हाथसे ठाकी बजाकर बड़ा हुका किया । पक्षी भाग गया । उसको बड़ा प्रसन्न वेदना छुक हुई (तो भी) ब्रह्मके बरसते तीन कामकी सारी रात कम्बक छोड़े कैदी रही । बहोसे पास हीमें एक तापस रहता था । वह उसका शब्द सुन लपकी उठते (= अज्ञोत्सुगते) हां बृहत्के तीव्र भाषा । जाति पुत्र सीही बांध उसे उतारकर अपने स्थानपर ले जा उस पित्र्या (अध्यात्) विचारपी । बाकक मंग जल तथा पर्वत जलको केकर पैदा हुआ था इसदिने उसका नाम उद्भव रखा । तापसने कम्बक ब्यकर दोर्ध कवाको पोसा । उसने एक दिन तापसके जानेके समय भगवानीकर तापसके ब्रतको मंग कर दिया ।



( ११ )

( ई पू ४९२-८८ ) कण्णत्थलक-सुत्त । संघमेदक स्वघक ! ( देवदत्त )  
सुत्त । सफलक-सुत्त । देवदत्त-विद्रोह । विसाखा-सुत्त । जटिल-सुत्त ।

'पेसा मीने सुवा'—एक समय भगवान् ठहुफा ( <sup>१</sup> = उहुफा = उदुफा ) में  
कण्णत्थलक ( कर्ण-स्वच्छ ) मृग-वाचमें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित् कोसल किसी कामसे उहुफा ( = प्रहुफा ) में आया  
हुआ था राजा प्रसेनजित् कोसलने एक आदमीको आमंत्रित किया—

उसके बहुत कमठक एक साथ रहते रहते परतप राजा मर गया । तापसने रातको  
तहज्ज देकर राजाकी धूलुको जाब पूछा—“तेरा राजा मर गया ( मर ) तेरा पुत्र क्या बर्हो  
बसना चाहता है वा पैतृक राज्यमें उत्तरधारण करना ( चाहता है , ? ) । उसने पुत्रको बर्हिसे  
( जन्त तक ) सब क्या कह्य उसकी उत्तर-धारण करनेकी इच्छा सुन, तापससे कहा । तापस  
हस्ति-ग्रन्थ लिख्य जानता था । ( उसने यह लिख्य ) शूद्रके पाससे ( पाया था ) ।  
पहिले शूद्रने इसके पास जाकर—“क्या बीजकी तकलीक है ?”—पूछा । उसने ‘हाथियोंका  
बीज है’ कहा । उसको शूद्रने हस्ति-ग्रन्थ और बीज दे—“भगवान्के किये बीज क्या इस  
शूद्रके को बोझना तुझसेके किये बीजना क्याकर इस शूद्रके को बोझना’ कहा । तापसने यह  
लिख्य कुमारको दिया । कुमारने बर्गदके वृक्षपर एक हाथियोंके आँसुपर बीज बना शूद्रके  
कहा हाथी करकर भाग गये । उसने सिन्धक माहात्म्यके देख नूसरे दिन तुझसेके लिख्य  
प्रयोग किया । हाथियोंके सर्दारने जाकर कंधेको नचा दिया । वह उसके कंधेपर एक पुत्रके  
कापक तहज्ज हाथियों को पुत्र, कम्बक और भंगूदी के माता पिताको बन्दूका कर निकल  
कमका गाँवमें प्रवेश कर—“मैं राजाका पुत्र हूँ संपत् चाहैबाढे आँसे—इस प्रकार  
आँसुओंको जमाकर नगरको घेरकर—“मैं राजाका पुत्र हूँ, मुझे उधरो’ (कहा) । व  
बिरहस करलैबाळोंको कम्बक और भंगूदी दिख्य छत्र धारण किया । वह हाथीका शीर्षक  
होनेसे—“जमुक रवाचपर मुन्दर हाथी है —कहनेपर जाकर पकड़ता था ।

एण्णद्वर्षीत्त राजाने ‘उसके पाससे लिख्य सीखू गा ( लिखार ) कट्ठक हाथी भेज,  
उसके भीतर बोबाळोंको रीटा उस हाथीका पकड़नेक किये आये हुये ( उद्यम ) को पकड़  
उसके साथ(अवरोध) हो उसी के अपने नगरमें चला गया । उसके पास लिख्य सीखनेके  
किये भयभीत कर्णकीको भेजा । उसीकी कोलसे उत्पन्न इस बोधि राजकुमारने अपने पिताके  
पास ( वह ) लिख्य सीखा था । + + +

१ संतीमर्षी बर्षावाम ( ४९१ ई पू ) भगवान्ने धावन्ती ( जेतवन ) में विठाया,  
और जपतीमर्षी ( ४९ ई पू ) पुरीराममें । २ म वि २:७:१२ । ३ क क “उस  
राहुक और नगरका भी बही नाम ( था ) । ” । उस नगरके बर्हियूर ( = समीप )  
कण्णत्थलक नामक एक समीप भूभाग था ।

“धामो रे पुत्र ! वहाँ भगवान् हैं, वहाँ जाओ । जाकर मेरे बचनसे भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे बन्दना करा । अथवाबाप ( = धारोम ) = अस्पातक कपु-उत्थान ( = सुर्ती ) एक प्राङ्ग-विहार ( = सुख पूर्वक विहारना ) पृथना— मन्ते ! राजा प्रसेनजित् कोसक भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे बन्दना करा है । और यह भी कहना— मन्ते ! ध्यज भोजनोपरांत कण्ठ करनेपर राजा प्रसेनजित् कोसक भगवान्‌के दर्शनार्थ धायेगा ।”

“अथवा देव !”

सोमा और सुकुष्मा ( = दोहों ) बहिनोंने सुना— ध्यज राजा— भगवान्‌के दर्शनार्थ धायेगा । तब सोमा और सुकुष्मा बहिनोंने राजा प्रसेनजित् के पास, परोसनेके समय जाकर कहा—

“ओ महाराज ! हमारे भी बचनसे भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे बन्दना करा । अथवा बाप पृथना— ।

तब राजा प्रसेनजित् कोसक कण्ठ करके भोजनोपरान्त वहाँ भगवान्‌के वहाँ गया, जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ भगवान्‌को बोला—

‘मन्ते ! सोमा और सुकुष्मा ( दोहों ) बहिनें भगवान्‌के चरणोंको सिरसे बन्दना करती हैं ।’

‘नवा महाराज ! सोमा और सुकुष्मा बहिनोंको बसरा बूत नहीं मिला ?’

‘मन्ते ! सोमा और सुकुष्मा बहिनोंने सुना कि आज राजा भगवान्‌के दर्शनार्थ धायेगा । जाकर मुझे यह कह ।’

‘सुखिनी होवें महाराज ! सोमा और सुकुष्मा ( दोहों ) बहिनें ।’

तब राजा प्रसेनजित् कोसकने भगवान्‌को यह कहा—

मन्ते ! मैंने सुना है कि भगवन् गौतम ऐसा कहता है—‘पेसा ( कोई ) भगवन् वा आह्वय नहीं है जो सर्वज्ञ = सर्वदर्शी ( हो ) जित्से ज्ञान दर्शनको जाने यह संभव नहीं है । मन्ते ! जो ऐसा कहते हैं कि भगवन् गौतम ऐसा कहता है—‘पेसा ( कोई ) ।’ नवा मन्ते ! वह भगवान्‌के बारेमें सच करते हैं ? भगवान्‌को जसत्त्व = अमृतसे काँठन ठा नहीं बनाते ? परमके अनुसार कहते हैं कोई परमात्मासारी बचन ( = वादावृत्त ) गार्हपत्य ( = निवृत्त ) ही नहीं होता ।’

‘महाराज ! जो ऐसा कहते हैं कि भगवन् गौतम ऐसा कहता है—‘पेसा ( कोई ) भगवन् वा आह्वय नहीं है जो सर्वज्ञ = सर्वदर्शी ( होगा ) ; जित्से ज्ञान-दर्शनको जानेगा वह संभव नहीं है । वह मेरे बारेमें सच नहीं करते वह ज-सत्त्व = अमृतसे मुझे काँठन बनाते हैं ।

तब राजा प्रसेनजित्० ने बिहूहम सेनापतिके आमंत्रित किया—

‘सेनापति ! आज राजान्तःपुरमें किसमें बात ( = कथावस्तु ) कही थी ?’

‘महाराज ! आकाश-वाच संज्ञय आह्वयसे ।

तब राजा प्रसेनजित्ने एक पुत्रको आमंत्रित किया—

‘धामो रे पुत्र ! मेरे बचनसे संज्ञय आह्वयको कही—‘मन्ते ! तुम्हें राजा प्रसेनजित् बुझाते हैं ।’

“अप्यय देव !”

तब राजा प्रसेनजित् ने भगवान्‌को कहा—

“मन्ते ! आपण् आपने कुछ भार सोच ( यह ) बचन कहा हो आपसी कल्पना”  
ब कहेगा ।

‘तो मन्ते ! जो बचन कहा जैसे भगवान्‌ जाकते हैं । ‘महाराज ! मैं जावता हूँ—  
जो बचन ( मैंने ) कहा ।

‘महाराज ! मैंने जो बचन कहा उसे इस प्रकार ध्याता हूँ—‘येसा भ्रमण प्राण्य  
वहीं जो एक ही बार (= सङ्कल्प यह ) सब जानेगा=सब देखेगा यह संभव नहीं ।’

‘मन्ते ! भगवान्‌ने हेतु-रूप कहा; सहेतु-रूप मन्ते ! भगवान्‌ने कहा—‘येसा भ्रमण  
प्राण्य नहीं जो एक ही बार सब जानेगा=सब देखेगा यह संभव नहीं । मन्ते ! यह  
बार बर्ण है—ध्रुविक, माहाय बस्य ह्यह । मन्ते ! ह्य चारों पक्षोंमें है कोई विमर्, है कोई  
बाबा-कारण ?’

‘महाराज ! ह्य चार बर्णोंमें भूमिवायव-प्राण्युवाय ह्य जोड़ने (= धर्मिक-कर्म)  
= सामीकि-कर्ममें दो बर्ण धर्म (= धेह ) कहे गये हैं—सत्रिक और माहाय ”

‘मन्ते ! मैं भगवान्‌को इस अर्थके सय धर्मको नहीं पृच्छता मैं परकोकके सत्य  
( = सांपराधिक ) मैं पृच्छता हूँ - ।

‘महाराज ! यह पांच प्रथानीय जंग है । कौनसे पांच ? महाराज ! मिथु (१) अर्द्ध  
होता है । सवायतनी बोधि (= बुद्ध ज्ञान ) पर अर्द्ध करता है— ऐसे वह भगवान्‌ बर्ण है ।  
(२) अर्द्धवायव (= भरीग ) होता है । (३) सड = मावाधी नहीं होता । (४) आर्य-  
वीर्य (= बधोगसीक ) होता है । (५) मन्त्रावाय होता है । महाराज ! यह पांच प्रथानीय  
जंग है । तो यह उनके दीर्घ-रात्रि (= चिरकाळ ) तक हित-मुकक किये हांगा ।

‘मन्ते ! चार बर्ण है । और यदि वह प्रथानीय-धर्मोंसे युक्त हों । तो मन्ते ! क्या  
उनमें भेद = वाताकरण नहीं होगा ?’

‘महाराज ! उक्तय प्रथान, वाताय = भेद ) नहीं करता । जैसे कि महाराज !  
हो उमनीय हापी उमनीय धोड़े पैक सु-दान्त=सु विनीत अच्छी प्रकार सिद्धकर्ण  
हों । जो उमनीय हापी धोड़े पैक अदान्त=अ विनीत (= बिना सिद्धाये ) हों । तो  
महाराज ! जो वह सु-दान्त सु-विनीत हैं, क्या वह दान्त दानेस दान्त-वर्द्धको  
पाते हैं=दान्त होनेसे दान्त-भूमिको प्राप्त होत हैं ?’ हाँ मन्ते !

‘और जो महाराज ! अ-दान्त अधिनीत है क्या वह अदान्त (बिना सिद्धाये) ही  
दान्त-वर्द्धको पाते हैं अदान्त हो दान्तभूमिको प्राप्त हो सकगे हैं ? किसेकि वह जो  
सुदान्त=सुविनीत ?’

वहीं मन्ते !

ऐसेही महाराज ! जोकि अदान्त, निरोग अघट=अमापाधी आर्य-वीर्य मन्त्र  
वायु द्वारा प्राप्त (पण्) है उसे अ-धर, बहुरोधी सड=मावाधी आकसी कृप्यज वायोग  
वह संभव नहीं है ।

“मन्ते ! भगवान्मे हेतु-रूप (=टीक) कहा । मन्ते ! चारों बर्ष सत्रिय प्राण्य वीर्य द्युत है और बड़ परि ह्व प्रधानीय भंगोंसे पुक हों=मम्यक् प्रयाववाळे हों । तो मन्ते ! क्या उबमें कुठ ) भेद नहीं होगा=कुठ जानाकरन नहीं होगा ?”

“महाराज ! मैं उबमें कुठ भी वह जोकि विमुक्तिका विमुक्तिसे भेद (=नामाकरण) है नहीं करता । जैसे महाराज ! (एक) पुरुष सूखे शाककी ककड़ी को छंकर अग्नि तैयार करे, तेज प्रादुर्भूत करे और दूसरा पुरुष सूखे शाक (=साखू) काहने भाग तैयार करे ; और दूसरा पुरुष सूखे आमके काहसे और दूसरा पुरुष सूखे गूबर-काहसे ; तो क्या मानते हो महाराज ! क्या उब जाना काहोंसे बनाई कायों का कौसे छीक रंगसे रंगका आमास आमाक कोई भेद होगा ?” “नहीं मन्ते !

“देखेही महाराज ! जिस तेज (=भुक्ति) को बीर्य (=उद्योग) तैयार करता है । उबमें इस विमुक्तिसे दूसरी विमुक्तिमें कुठभी भेद मैं नहीं करता ।

मन्ते ! भगवान्मे हेतुरूप (=टीक) कहा । क्या मन्ते ! देव (=देवता) है ?”

“महाराज ! तु क्या ऐसा कह रहा है—‘मन्त ! क्या देव है ।

“कि मन्ते ! क्या देवता मनुष्यकोकर्म आनेवाळे होते हैं, या मनुष्यकोकर्म आनेवाळे नहीं होते ?”

“महाराज ! जो वह देवता कोम-रहित है वह मनुष्यकाक (=वृत्त) में आनेवाळे होते हैं जो कोम-रहित है वह नहीं आनेवाळे होते हैं ।”

ऐसा कहनेपर विद्वज्जम सेनापतिने भगवान्को कहा—

मन्ते ! जो वह देवता कोम-रहित मनुष्य-कोकर्म न आनेवाळे हैं क्या वह देवता अपने स्वामतं स्तुत होंगे = प्रशंसित होंगे ?”

तब आनुष्मान् भगवान्को यह हुआ— ‘वह विद्वज्जम सेनापति राजा प्रसेनजित् कोसलका पुत्र है मैं भगवान्का पुत्र हूँ । यह समझ ई जब पुत्र पुत्रको निमजित करे ।’ भार आनुष्मान् भगवान्के विद्वज्जम सेनापतिका जामेंदित किया—

‘तो सेनापति ! तुम्हें ही पृथ्वा हूँ जैसा तुम्हें डीक जैसा कहो । तो सेनापति ! जितना राजा प्रसेनजित् कोसलका राज्य ( विजित ) है उदापर कि राजा प्रसेनजित् पृथ्व = आधिपत्य करता है ; राजा प्रसेनजित् अमय वा प्राण्यकी पुष्य-वान् या अपुष्यवान्का महारथवान् वा अमहाराथवान्को क्या उस स्वामते हय या विक्रम सफटा है ?” “ सफटा है ।”

‘तो क्या मानते हो सेनापति ! जितना राजा प्रसेनजित् का अ-विजित (= राज्यस बाहर ) है उदा आधिपत्य नहीं करता है क्या उस स्वामते हय या विक्रम सफटा है ?’

“ नहीं सफटा ।

“तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या तुमने प्रशंसित देवोंको सुना है ?”

हां, भो ! मैंने अर्पित्त्रिण देव सुने हैं भय राजा-प्रसेनजित् कोसलका भी अर्पित्त्रिण देव सुने हैं ।”

“तो क्या मानते हो सेनापति ! क्या राजा प्रसेनजित् कायक अर्पित्त्रिण देवोंका उबदे स्वामतं हय सडे ?

‘पेसे ही सैनापति । जो देवता कोम-सहित है वह मनुष्य-कोकमें जाते हैं जो कोम-रहित हैं वह वहीं जाते । वह देखनेको भी नहीं पावे वा सकवे कदासे उस स्मानसे इतने वा निकरके जायेंगे ?’

तब राजा प्रसेनजित् कांसकके मन्त्रवान्को कहा—

“भन्ते ! यह कौन नामवाचा मिथु है ?”

“आवन्त् वामक महाराज ।”

‘ओहो ! आवन्त् हैं ॥ ओहो ! आवन्त्-रूप हैं ॥ भन्ते ! आनुष्मान् आवन्त् ठीक करते हैं । भन्ते ! क्या प्रज्ञा है ?’

‘तू क्या महाराज । पेसे कहता है—भन्ते ! क्या प्रज्ञा है ?’

‘भन्ते ! क्या वह प्रज्ञा मनुष्यकोकमें श्यता है वा मनुष्य-कोकमें नहीं जाता ?’

‘महाराज । जो प्रज्ञा कोम-सहित है श्यता है, कोम-रहित नहीं श्यता ।

तब एक पुरुषने राजा प्रसेनजित्को कहा—

‘महाराज । आकाश-गोच स्त्रेय्य ब्राह्मण भ्य गय ।’

तब राजा प्रसेनजित् ने संख्य ब्राह्मणको कहा—

“ब्राह्मण ! किससे इस बात (= कथा-वस्तु ) को राजान्यःपुरमें कहा वा ?”

‘महाराज । विह्वलन सैनापतिसे ।’

‘विह्वलन सैनापतिसे कहा— ‘महाराज । आकाश-गोच स्त्रेय्य ब्राह्मणसे ।’

तब एक पुरुषने राजा प्रसेनजित्को कहा—

“आवेका समय है महाराज ।

तब राजा प्रसेनजित् मन्त्रवान्को यह बोला—

‘इमने भन्ते ! मन्त्रवान्को सर्वज्ञता पृथ्वी मन्त्रवान्से सर्वज्ञता बतलाई, वह इमको दृष्टी है पसम् है उससे इम सन्तुष्ट है । चारों कर्णोंकी श्रुति (= वातुवर्णी श्रुति) पृथ्वी । शेषोंके विषयमें पृथ्वी । प्रज्ञाके विषयमें पृथ्वी । वा जो ही भन्ते ! इमसे मन्त्रवान्को पृथ्वी पृथ्वी पृथ्वी मन्त्रवान्से बतलाया; और वह इमको दृष्टता है पसम् है उससे इम सन्तुष्ट है । अध्व्य हो भन्ते ! अब इम जायेंगे इम वस्तु-वस्तु हैं पटु-करणीय हैं ।”

‘किसका महाराज ! तू ( इस समय ) काक समसे ?’

तब राजा प्रसेनजित् मन्त्रवान्को धर्मिकचित्त कर धनुमोहित कर आननसे उठ मन्त्रवान्को अधिवाहन कर प्रवृत्तिया कर कर्म गया ।

× × ×

संयमेदक-सुधक ।

‘वहीं मन्त्रवान् कीर्तिशाम्बीमें ध्यापिताराममें विहार करते थे । उस समय मन्त्रवान्को पञ्चगर्तमें बैठे विचारमें बैठे, चित्तमें एमा विचार उत्पन्न हुआ— ‘किसको ही मन्त्रादित कर्ते’

१ उन्माकीमवा बर्षाधाम ( ई. पू. ४८९ ) मन्त्रवान्से ध्यावर्णी कर्तव्यमें विताका ।  
 २ सुवर्णधाम ( सब भद्रक तपक ) ० ।

विसक प्रसन्न होवेपर मुझे बड़ा काम, सत्कार देना हो। तब देवदत्तको बुझा—बह अज्ञात शत्रु कुमार तबम ई बीर भविष्यमें बड़ा (=मह) होगा क्यों न मैं अज्ञात-शत्रु कुमारको प्रसन्नित करूं उसके प्रसन्न होवेपर मुझे बड़ा काम सत्कार देना होगा। तब देवदत्त शक्यतासम र्भयाङ्कुर पात्र बीबर से जिबर राजगृह का उपर चला। अमसा बहो राजगृह का बहो पहुँचा। तब देवदत्त अपने रूप (=वर्ष)को अन्तर्धान कर कुमार (=बालक) का रूप बना साँकडी मेरुका (=तगापी) पहिन अज्ञात-शत्रु कुमारकी गोदमें प्राकुर्भूत हुआ। अज्ञातशत्रु कुमार भीत = अहिम उत्सुकित = उत्कण्ठ हो गया। तब देवदत्तने अज्ञातशत्रु कुमारको कहा—

‘कुमार ! तू मुझमें भय आता है ?’

‘हाँ भय आता हूँ, तुम काग ही ?’

‘मैं देवदत्त हूँ।’

‘अन्ते ! यदि तुम कार्य देवदत्त हो तो अपने रूप (=वर्ष)में प्रकट होओ ?’

तब देवदत्त कुमारका रूप छोड़ संधाटी पात्र बीबर धारण किये अज्ञातशत्रु कुमारके सामन कहा बुझा। तब अज्ञातशत्रु कुमार देवदत्तके इस दिग्ग-व्यापार (=कृत्रिम-प्राप्ति)से प्रसन्न हो पाँचसी रथोंके साथ साथ प्राठ उसके उपस्थान (=हाजिरी)को जाने लगा। पाँच सा रथाधीपाक भोजनके लिये भेजने लगा।

‘तब भगवान् कीशाम्पीमें इच्छानुसार विहार कर चारिका करते बहो राजगृह ई बहो पहुँचे। बहो भगवान् राजगृहमें कसम्बुकनियामके बेजुबनमें विहार करत थे।’

(देवदत्त)-सुत

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें कसम्बुकनियामके बेजुबनमें विहार करते थे।’

उस समय अज्ञातशत्रु कुमार साथ-प्राठः पाँचसा रथोंके साथ देवदत्तके उपरवाकके आता था। पाँचसी रथाधीपाक भोजनके लिये ८ जाध खाते थे। तब बहुतम्य मिथु बहो भगवान् ये बहो तबे आकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर ईद। एक बार किये उम मिथुकीने भगवान्को कहा—

‘अन्ते ! अज्ञातशत्रु कुमार साथ-प्राठः पाँच सी रथोंके साथ ।’

‘मिथुमा ! देवदत्तक काम सत्कार, इकोक (= तारीक) की मत एट्टा करा। जब तक मिथुकी ! अज्ञातशत्रु कुमार साथ प्राठः उपरवाकके आयागा, बाँचमा रवाली-पाक भोजनक लिये अयोग देवदत्तकी (उससे) कुशाक-बमों (=धमों) में हाजि ही ममझकी चाहिये कृदि बहो। मिथुको ! ईस बह कुक्कुरक नाकपर पित्त के इस प्रकार बह कुक्कुर धार भी पागक ही अधिक बँद हो।’

तब काम सत्कार इकाकस अभिमृत=आदल-चित्त देवदत्तको इस प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—मैं मिथु-संपर्षी (महन्ताई) प्रदण करूँ। बह (विचार) चित्तमें आने ही देवदत्तका (पर) योग-बक (=कृत्रिम) बह हो गया।

+ + +

जस समय राजासहित बर्षा परिष्कृते धरि भगवान् भय-उपदेश कर रहे थे। तब देवदत्त भासने उठ पठ बंधेपर उत्तरासग करके जियर भगवान् से उपर बर्षाके बाप भगवान्से यह बोले—

‘मन्ते ! भगवान् अब बीर्ग=बुद्ध=महामुनि भयवत=यथाऽभयवात है। मन्ते ! अब भगवान् विभ्रित हो इस जन्मके मुग्ध-बिहारके साथ पिहरे। मिथु मयका मुझे रें, मैं मिथु-संधको ग्रहण करूंगा।’

‘अकम (=बस ठीक नहीं) देवदत्त ! मत तुझे मिथुसंधका ग्रहण दब।’

‘तूसरी बार भी देवदत्त न । । तीसरी बार भी दूखदूस्ती ।

‘देवदत्त ! मारियुद्ध मादृशबावनका भी मैं मिथु-संधको नहीं देता तुस मुझे दूकको तो क्या दूंगा !

तब देवदत्तन— राजासहित परिष्कृते मुझे भगवान्ने पेंका दूक कहकर लवमात्रित किया और मारियुद्ध मीइस्पायनको बदाया (सीध) कुवित भयमुद्ध हो भगवान्को लभि वादन कर प्रदक्षिणा कर पका गया। तब भगवान्ने मिथुसंधको धामंत्रित किया—

‘मिथुजो ! संघ राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशतीव-कर्म करें—‘दूर्वमें देवदत्त जन्म प्रकृतिका या अब जन्म प्रकृतिका अब देवदत्त जो (कुड) काव बचनते करेगा उसका पुत्र, धर्म संघ जिम्मेदार नहीं।

तब देवदत्त कहीं अज्ञान-दानु कुमार था पहाँ गया। जाकर अज्ञातपुत्र कुमार को बोला—

‘कुमार ! पहिलक मनुष्य दीर्घायु ( होत थे ) अब जन्यापु। हो सकता है, कि तुम कुमार रहत ही मर जाओ। इसलिये कुमार ! तुम पिताको मारकर राजा हो जाओ; मैं भगवान्को मारकर बुद्ध होऊँगा।

तब अज्ञातपुत्र कुमार जीर्णमें पुरा बाँधकर भीत उद्विग्न संकित बल ( की तरह ) मन्थाहमें सहसा अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ। अन्तःपुरके उपचारक (वरदक) महा मालीने अज्ञातपुत्र कुमारको अन्तःपुरमें प्रविष्ट होते देख किया। देखकर पकड़ किया और कुमारसे कहा—

कुमार ! तुम क्या करवा चाहते थे ?

‘पिताको मारना चाहता था।

‘किसने उल्लासित किया ?’

‘भार्थ देवदत्तने।’

तब वह महामाली अज्ञातपुत्रको से कहीं राजा माग्य क विक विवसार था, क्या पये। जाकर राजा को यह बात कह सुनाई। ? तब राजा से अज्ञात-पुत्र कुमारको कहा—

‘कुमार ! किसलिये तू मुझे मारना चाहता था ?

‘देव ! राज्य चाहता हूँ।

‘कुमार ! यदि राज्य चाहता है तो से वह तैरा राज्य है। —कह अज्ञात-पुत्र कुमारको राज्य दे दिया।

तब वेपदल बहो अज्ञात दानु कुमार या बहो गया। आकर बोका—

“महाराज ! आदिमियोंको हुकुम दो कि अमल गीतमको आनसे मार दें।

तब अज्ञातमनु कुमारने मनुष्योंको कहा—

‘मजे ! सैदा भाय वेपदल कहें बैसा करो।

तब वेबदलने एक पुरुषको हुकुम दिया—

‘आओ आपुस ! अमल गासम अमुक स्थावर विहार करता है। उसको आनसे मारकर, इस रास्तेसे आओ।’

उस रास्तेमें दो आदिमियोंको बैठाया— जो दो पुरुष इस रास्तेसे आवें उन्हें आनसे मारकर इस मार्गसे आओ।’

उस रास्तेमें चार आदिमियोंको बैठाया—“जो दो पुरुष इस रास्तेसं ब्यपें उन्हें आनसे मारकर इस मार्गसे आओ।”

उस मार्गमें आठ आदिमी बैठाये—“जो चार पुरुष ।

उस मार्गमें सोह्र आदिमी बैठाये— ।

तब यह अठ्ठाईस पुरुष बाळ तकवार छे तीर कमाल चम बहो मगवान् से बहो गया। आकर मगवान्के अविदुसमें मीत उद्विग्न दूल्ह-शरीर कहा हुआ। भयवान् उस पुरुषको मीत दूल्ह-शरीर पड़े हुए देखा। देखकर उस पुरुषको कहा—

‘आधो, आधुस ! मठ हरो।

तब यह पुरुष बाळ-तकवार एक बार (रत्न) तीर-कमाल छोड़कर बहो मगवान् से बहो गया। आकर मगवान्के पाथोंमें शिरसे पड़कर मगवान्को बोका—

“मन्ते ! बाळ (=मूर्ख) सा मूढसा अकुशल (=अ-खुर) सा मीने जो अपराध किया है जो कि मैं दुष्टचित्त हो तबचित्त हो पही भया उसे क्षमा करें। मन्ते मगवान् ! अविदुसमें सख (=स वम) के छिब मरे इस अपराध (=अत्यप) को अत्यप (=बीते) के तीरपर स्वीकार करें।”

‘आधुस ! जो एने अपराध किया अघ-चित्त हो पही आया। पूँकि आधुस ! अत्यप (=अपराध) को अत्यपके तीरपर देखकर चर्मानुसार प्रतीत्यर करता है। (इमकिये) उसे हम स्वीकार करते हैं।।’

तब मगवान्ने इस पुरुषको आधुसकी-कथा बही । (घोर) उस पुरुषको उसी आसनपर धर्म-वास उत्पन्न हुआ।।

तब यह पुरुष मगवान्को बोका—

‘आधुस ! मन्ते !! मन्ते ! जाइस मगवान् मुने अज्जकिबद्ध क्षरायागत उवा सक चारण करें।

तब मगवान्ने उस पुरुषको—

‘आधुस ! तुम इस मार्गसे मठ आओ; इस मार्गसे आओ (कह) दूसरे मार्गसं येव दिवा।



तब उन ही पुरुषों से— क्यों वह पुरुष देर कर रहा है (सोच) ऊपरकी ओर जाते, भगवान्को एक वृद्धके नीचे बँडे देगा। देरकर यहाँ भगवान् थे, यहाँ 'जाकर भयवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गये। उन्हें भगवान्से आभुपूर्वी-कृपा बड़ी।। 'वानुसो! मत तुम श्रेय इस मार्गसे जाओ, इस मार्गसे जाओ'।।

तब उन चार पुरुषोंसे।। तब उन जाठ पुरुषोंसे।। तब उन सोलह पुरुषोंसे।। 'आजसे भन्ते! भगवान् हमें अशुचि-बद्ध धरण्यायत उपासक भारतन करें।

तब वह अनेक पुरुष यहाँ देवदत्त या यहाँ गया। जाकर देवदत्तको कहा—

"भन्ते! मैं उन भयवान्को जाकसे यहीं मार सजता। यह भगवान् महा-वैदिक = महासुमाध है।'

'जाने दे वानुस! व भमण गौतमको जाकसे मत मार मैं ही जान से मार्कण्ड।

इस समय भगवान् शुभ्रर परबतकी छायामें टहकते थे। तब देव-वृत्तसे शुभ्रर परबतपर चढ़कर—'इससे भमण गौतमको जानसे मार्कण्ड—( सोच ) एक बड़ी सिखा फेंकी। जो परबत ऊँचसे जाकर उस सिखाको रोक दिया। उससे ( किफली ) पपड़ीके बलकन ( कणसे ) भगवान्के पैरसे खिचर वह किफला।'

+ + + +

सकलिक-सुच।

'येसा मीने सुना—एक समय भयवान् राजगृहमें महकुच्छि (= मयकुच्छि) मृगादायमें विहार करते थे।

उस समय भगवान्के पैर परावर (= सक्कच्छि-परारिका) से झूठ हो गया था। भगवान्को बहुत तीव्र दुःख पर-कुक-सात-मयप शरीरिक बेदवा होती थी। उनको भगवान् बिना शोक करती स्थिति-संभवकसे सहन करते थे। तब भगवान्ने कौपेटी सबाहीको बिख्या दाहिनी बाकसे लैकर पैरके ऊपर पैर दया, स्थिति-संभवकके क्षाम दिग्द सखा की।

देवदत्त-विद्रोह।

'उस समय राजगृहमें माला-गिरि नामक मनुष्य-यातक चंड हाजी था। देवदत्तने राजगृहमें प्रवेश कर इचसारमें वह फीकवान्को कहा—

१ स वि १।४।८।

२ अ क.— देवदत्त बड़ी सिखा फेंकी। जो सिखाओंके टकरासे पावन-सकलिक ( परावरके दुकने ) ने उठकर भगवान्के पैरको सारी पीठको जाकक कर दिया। पैर बने परसेल काहकली मति कोह बहाता काहा-रसदे संवितसा हो गया।। भगवान्को पीड़ा कल्पक हुई। मिसुओंमें सोच—'वह विहार चंगक ( चजंगक ), विषम बहुरसे क्षत्रिण धारि-और प्रवर्तितोंके बहुरे कालक नहीं है। ( और वह ) उचगतको मंच-सिक्कि ( = डोकी ) में बैठ महकुच्छि ले गये।

३ पुरुषार्थ ( संघ-मेदक चंभ )।

“ जब अमज गौतम इस सङ्कपर आये तब तुम नाकागिरि हाथीको कोलकर, इस सङ्कपर कर देना ।

अच्छा मन्ते !”

भगवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पात्रबीर ले बहुतमे मिश्रुओंके साथ राजगृहमें पिंडधारके द्विजे प्रविष्ट हुये । तब भगवान् उसी सङ्कपर आये । पंक्तिवालोंने भगवान्को उम सङ्कपर आते देखा । देखकर नाकागिरि हाथीको छोड़कर, सङ्कपर कर दिया । नाकागिरि हाथीने दूरसे भगवान्को आते देखा । देखकर सूँदको जड़ाकर प्रकृष्ट हो कम चकते जहाँ भगवान् वे उधर दांढा । उन मिश्रुओंने दूरसे नाकागिरि हाथीको आते देखा । देखकर भगवान्को कहा—

“मन्ते ! वह बंड मनुष्य धातक नाकागिरि हाथी इस सङ्कपर आ रहा है इत जाये मन्ते भगवान् ! इत जायें मुगत !”

दूसरी बार भी । तीसरी बार भी ।

उस समय मनुष्य प्रासादोंपर, हर्म्योपर, छत्रोंपर चढ़ गये थे । उनमें जो अमजानु-अमसज, पुत्र दि (अमूर्ध) मनुष्य थे वह देखा करते थे— ‘बहो ! महाअमज अमिकप (अ धो) जागसे मारा जायेगा । और जो मनुष्य अज्ञानसज पंडित थे उन्हींने ऐसा कहा—‘देर तक भी ! जाग जाग (अनुद) से संभाम करेगा !

तब भगवान्ने नाकागिरि हाथीको मीत्री (मावता) कुछ बिलसे व्यापकवित किया । तब नाकागिरि हाथी भगवान्के मीत्री (पूर्व) बिलसे स्पृष्ट हो सूँदको पीचे करके जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर लड़ा हुआ । तब भगवान्ने शहिने हाक्से नाकागिरिके छुम्मके स्पर्श (किया) । तब नाकागिरि हाथीने सूँदसे भगवान्की चरम-पूँकको ले छिरपर खाया । नाकागिरि हाथी हकदारमें जाकर अपने पात्रपर लड़ा हुआ ।

तब द्वेषदत्त जहाँ कोकासिक फटमोर-तिम्सक और खंडवेदी-पुत्र समुद्रदत्त थे वहाँ गया । जाकर बोला—

“जाओ जाबुसो ! इस अमज गौतमका संब-मेघ (अहुर) अचकमेघ करें । जाओ

इस अमज गौतमके पास चककर पाँच बस्तुयें माँगो । —‘अच्छ हो मन्ते ! मिश्रु (१) जिन्दगी भर आरम्भक रहें जा गाँवमें बसे उसे शोप हो । (२) जिन्दगी भर पिंडपाठिक (पंक्तिवा भांगकर जामेबाके) रहें, जो निमज्जण खाये उसे शोप हो । (३) जिन्दगी भर पंजुसुलिक (= फेंके पीयूँ सीकर पहननेबाके) रहें, जो गृहकाके (दिजे) पीवरको उपमोघ करें, उसे शोप हो । (४) जिन्दगी भर बूछ-सुकिक (= बूछके पीचे रहनेबाक) रहें जा कानाके पीचे जाने वह शोपी हो । (५) जिन्दगी भर मछली-मांस न खायें जो मछली-मांस खाने उसे शोप हो । अमज गौतम इसे नहीं स्वीकार करेगा । तब हम इन पाँच बातोंसे लोगोंको समझावेंगे । ”

तब द्वेषदत्त परिपु-रहित जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान्को अधिवादन-कर एक जोर किया । एक जोर होते द्वेषदत्तने भगवान्को कहा—

“अच्छ हो मन्ते ! मिश्रु (१) जिन्दगीभर आरम्भक हों । - ”

'अहम् (वस) देवदत्त ! जो चाह पांसुकुच्छिद्र हो जो चाहे 'ग्राममें रहे । जो चाहे पिंडपाठिक हो जो चाहे निमग्रज पाये । जो चाहे पांसुकुच्छिद्र हो जो चाहे गृहस्थकै (रिबे) भीतरको पहिने । देवदत्त ! आठ मास मैंने पूछके बीचे बात (= वृत्त = सवग्रामन) भी अनुशा दी है । 'अहम्, 'अ-मुत्त 'अ-परिच्छिद्र इस तीन कोटित परिच्छुत्त मांसकौ भी मैंने अनुशा दी है ।

तब देवदत्तने उस दिन 'उपोसयको आसवसे ठटकर 'साल्यका (= बोधकी लक्षणी) पकड़वाई— इमने आनुसी ! अमम-नातमको व्यापर पांच वस्तुमें मांगी— । उन्में अमम गीतमने नहीं स्वीकार किया । सां इम (इत) पांच वस्तुओंको छेकर बर्तेगे । जिस आयुष्मान् को यह पांच बातें पसन्द हों वह सत्काका ग्रहण करें ।<sup>१</sup>

उस समय बैशालीके पांच सौ पत्त्रिपुत्तक बने मिश्रु अस्की पाठको न समझने लगे थे । उन्हींमें— 'यह बर्त है वह विषय इ, यह आत्माका अस्सन (=गुण उपदेश) है— (सोच) सत्काका छे छी । तब देवदत्तने संघको फोड़ (= भङ्ग) कर पांच सौ मिश्रुओंको छे कहा 'गयासीस था, वहाँको चक दिया ।

आयुष्मान् सारियुत्त और मौद्गल्यायन वहाँ मगवान् थे वहाँ गये ।— । आयुष्मान् सारियुत्तने भववाहको कहा—

अम्ते ! देवदत्त सबको फोड़कर पांच सौ मिश्रुओंको छेकर जहाँ गयासीस है वहाँ चका गया ।

"सारियुत्त ! तुम फोगोंको उप बने मिश्रुओंपर क्या भी नहीं आई ? सारियुत्त ! तुम कोग इव मिश्रुओंके आपद्में पड़बेसे पूर्वही आओ ।

'अच्छा अम्ते !"

उस समय बड़ी परिच्छके बीच बैसा देवदत्त बर्त उपदेश कर रहा था । देवदत्तने शुरूसे सारियुत्त मौद्गल्यायनको आते देखा । देखकर मिश्रुओंको आसक्ति किया ।—

"देखो मिश्रुओ ! कितना सु-अच्छात (= सु-उपदिष्ट) मेरा बर्त है । जो अमम गीतमके अग्रजावक सारियुत्त माद्गल्यायन है वह भी मेरे पास था रहे हैं, मेरे धर्मको मानते हैं ।<sup>२</sup>

पसा कबनेपर कोकाठिकने देवदत्तको कहा—

"आहुस देवदत्त ! सारियुत्त मौद्गल्यायनका विश्वास मत करो । सारियुत्त मौद्गल्यायन बर्तनीयत (= पापेच्छ) है पापक (= पुरी) इच्छाओंके बध मैं हैं ।<sup>३</sup>

आहुस ! नहीं उलका स्थापत है क्योंकि वह मेरे धर्म को पसन्द करते हैं ।<sup>४</sup>

तब देवदत्तने आयुष्मान् सारियुत्तको आवा आसव (देवको) निमंत्रित किया—

'आवा आहुस ! सारियुत्त ! यहाँ बैठो ।

१ 'मेरे किये मारा गया'—यह देखा न हो । २ 'मेरे किये मारा गया'—यह सुना न हो । ३ 'मेरे किये मारा गया'—यह धम्मेद न हो । ४ (इच्छा अनुपूर्वी या पूर्वमा) । ५ बोध (= मठ पाकी छत्र) छेवैकी आसावीके किन्तु वसा आसकक पुर्वी (देवदत्त) अन्तरी बैसेरी पूर्वकाकम अन्त-सत्काका चकती थी । ६ महाबोधि-पर्वत (गया) ।

'आहुस ! बही' (बद) आहुप्मान् सारिपुत्र इतरा आसन्न केकर एक ओर बैठ गये । आहुप्मान् महामातृस्वायम भी एक आसन्न केकर पठ गये । तब देवदत्त बहुत रात तक मिथुओंको धार्मिक कथा (कहता) आहुप्मान् सारिपुत्रको बोध—

'आहुस सारिपुत्र ! (इस समय) मिथु आह्वस-प्रमात्-रहित है तुम आहुस सारिपुत्र ! मिथुओंको धर्म-देशना करो मेरी पीठ भगिया रही है सा मैं कम्पा पहुँगा ।

'अच्छा आहुस !

तब देवदत्त चौपैती संधायीको विद्वन्नाकर दाहिनी बगलसे कह गया । स्थिति-रहित संप्रबन्ध-रहित बस मुहूर्तभरमें ही निद्रा आगई । तब आहुप्मान् सारिपुत्रके आदेशना प्राविहार्य (= व्यापनामके जमलकार) आर अनुभासनीय-प्राविहार्यके साथ तथा आहुप्मान् महामातृस्वायमने अहि-प्राविहार्य (= भोग-बन्धके जमलकार) के साथ मिथुओंको धर्म-उपदेश किया आहुष्वासय किया । तब तब मिथुओंको चिरञ्ज = विमल धर्म-अधु उपपन्न हुआ— जो कुछ समुद्रय-धर्म (= उत्पन्न होनेवाला) है वह निरोध-धर्म (= पिनाश होनेवाला) है । आहुप्मान् सारिपुत्रके मिथुओंको निर्मथित किया—

'आहुसो ! बसो भगवान्के पास पछे ओ वस भगवान्के धर्मको पसन्द करता है वह आये ।

तब सारिपुत्र मौद्गल्यायन उन पाँच सौ मिथुओंको केकर बहा घेणुयन का वहाँ कहे गये । तब कीडाकिफने देवदत्तको उठाया—

'आहुस देवदत्त ! उठी मैंने कहा व—आहुस देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्गल्यायनका विभास मत करो । '

तब देवदत्तको वहाँ मुपसे गर्म लूत बिकल पदा । ...

### विसाखा-सुच ।

'पेसा'मिने मुना—एक समय भगवान् आयस्नीमें मृगारमानाक प्रासाद पूयाराममें विहार करते थे ।

उस समय विद्यात्या का 'कोई काम राजा प्रसेनजित्' के साथ हीसा हुआ था । उसे राजा प्रसेनजित् इच्छामुसार मिलाव नहीं करता था । तब विद्यात्या मृगारमाता मन्वाह में वहाँ भगवान् थ बहाँ गई । एक ओर बड़ी विसाखा को भगवान् वद कदा—

'ई ! विसाखे ! तू मन्वाहमें क्योंस जा रही है ?'

'ममै ! मेरा कोई काम राजा प्रसेनजित् ।'

तब भगवान् इस अर्थको जानकर उसी बेकामें पद उठान कदा—

( जो कुछ ) पर-बहा है ( बद ) तब दुःख है ऐश्वर्य (= प्रमुता स्वयम् ) सुप्र

१ आसिस्ता ( १८८ ई. पू. ) अर्थवास भगवान् अपरली ( पूर्वोक्त ) में किया—

२ उदाह १।९ ।

३. अ. क "विसाखाक पीठरन ममिमुद्रयदि रचित पन्नु उसरी मेंके सिधे आई थी । उसके बगर द्वारपर पदु यनेपर, सुक्रीबाक्याव अथिड महसूच के लिया ।"

है। साधारण (बात) में भी (प्राणी) पीड़ित होते हैं, क्योंकि कर्म-भोग आदिके बोनोंके अतिक्रमण करना मुश्किल है।”

### अटिठ-मुक्त

‘पेसा मैंने सुना—एक समय भगवान् श्यामों श्यासीस पर बिहार करते थे।

उस समय बहुतसे अटिठ ‘भारतराष्ट्रक हिम-पात समयबाकी हेमन्तकी ईडी रातोंमें श्यामों हुकतै उतराते थे पानीमें भीगते थे अग्निमें डूबते भी करते थे—‘हस प्रकम् (पाप) छुदि होगी’। भगवान्ने उन बहुतसे अटिठोंको देखा। तब भगवान्ने इस अर्थको जानकर उसी समय वह उद्दान कहा—

‘बहुतसे अब वहाँ बड़ा रहे हैं (किंतु) पानीसे छुदि नहीं होती।

जिसमें सत्व और धर्म है वही छुदि है वही प्राणन है।’

×

×

×

×

पञ्चम-खण्ड  
आयु-वर्ष ७५-८०  
( ई पू ४८८-८३ )



## पंचम-खण्ड ।

( १ )

संगम-सुप्त । कोसल-सुप्त । बाहीतिक-सुप्त । चंक्रम-सुप्त ।

( ई पू ४८८-८७ ) ।

‘वेना मीने सुभा—एक समय भगवान् आयस्ती ०जेसधममें बिहार करते थे ।

तब राजा मागध अजातशत्रु वैदेही-पुत्र<sup>१</sup> अनुरविषी-सेनाको तयार कर राजा प्रसेनजित् कोसलके पुत्रके हिये काशी ( वैस ) को गया । राजा प्रसेनजित् कोसलके सुभा । तब राजा प्रसेनजित् अनुरविषी सेनाको तयार कर काशीकी ओर गया । तब राजा मागध अजातशत्रु और राजा प्रसेनजित् लड़े । उस संघममें राजा अजातशत्रु ने राजा प्रसेनजित् को हरा दिया । पराजित होकर राजा प्रसेनजित् सर्प्रा से राजधानी आबस्तीको और भागा ।

तब बहुतसे मिथुषोने वृक्षांड समय ( बीबर ) पहिनकर पाप-बीबर छे आबस्तीमें पिहन्वार किया । आबस्तीमें पिहन्वार करके नीबपोपरांत ( वह ) वहाँ मगवान् थे वहाँ पड़े । उन मिथुषोने भगवान्को कहा—

“मण्डे ! राजा मागध अजातशत्रु काहीके गया । राजा प्रसेनजित्को हरा दिया । राजा प्रसेनजित् आबस्तीको और गया ।।”

मिथुषो ! राजा अजातशत्रु पाप-मित्र ( = वृरे दोस्तोंबाका ) है, राजा प्रसेनजित् कम्पाण-मित्र ( = मण्डे मित्रोंबाका ) कम्पाण-सहाय है । आज ही रातको राजा प्रसेनजित् पराजित हो दुःख से सोता है—

‘जब बैरको उपपन्न करती है पराजित हुआसे सोता है ।

जातिकी प्राप्त ( पुष्ट ) जब-पराजय छोड़, मुक्तसे सांठा है ॥ १ ॥

तब राजा अजातशत्रु ० अनुरविषी सेना तैयारकर काशीके ओर आया ।। उस संघममें राजा प्रसेनजित् ० ने राजा अजातशत्रु को हरा दिया और उस जीता पकड़

१ एकताहीसर्वा वपांवास ( ४४० ई पू ) भगवान्ने आबस्ती ( जेतवन ) में बिताया ।

२ स वि ३ २ । ३ ।

३. अ क वैदेही—पंडिता । महाकौसल राजा ( ० प्रसेनजित्क पिता ) ने पियसार

को कम्पा देते बन्ध, दोबों राज्योंके बीचका एक कण्ट ध्यायका काशी ग्राम कम्पाको दिया । अजातशत्रुके पिताके मार देनेपर उसकी माता भी राजाके बिचोपमें बन्दी ही मार गई । तब राजा प्रसेनजित्—‘अजात-शत्रुने माता पिताको मार दिया यह मेरे पिताका पांव है ( कह ) उसके रिपे हगदा करने क्या । अजातशत्रुने भी—‘मेरी माताका है । उस गांवके हिये दोबों मामा-भांओंने मुर किया ।



दिया । तब राजा प्रसेनजित् कोसलको देसा हुआ— वद्यपि वह राजा अजातशत्रु० कोष न करनेवाले मुझसे जोड़ करता है; तब भी तो यह मेरा भाग्य है । क्यों न मैं राजा अजातशत्रु के सब इस्तिफाय (= हाथी मुग्ध)को लेकर सब जगह सब रथ, पदाति (= वैद्य सैनिक) कापको लेकर भीताही छोड़ दूँ । तब राजा प्रसेनजित्ने लेकर उसे भीताही छोड़ दिया ।

तब बहुतसे भिक्षु भगवान्को बोले— ।

भगवान्ने इस बातको जानकर उसी समय हृद गाथाओंको कहा—

“जो उसकी सुराई करता है, ( जो पुण्य ) उसे बिलुप्त करता है,  
जब दूसरे बिलुप्त करते हैं तो वह बिलुप्त हो विक्रम ( जो प्राप्त ) होता है ॥२॥  
बाक (= मूर्ख जन ) तब तक नहीं समझता जबतक पापमें नहीं पकता  
जब पापमें पकने लगता है तब बाक ( मनुष्य ) समझता है ॥३॥  
इत्यादि इत्यादि पाठा है जेता जब पाठा है, मित्र्य किन्दा पाठा है;  
और रोप करनेवाका रोप ।

तब कर्मके फेर (= विकर्ष) से वह बिलुप्त हुआ विक्रम ही जाता है ॥४॥

× × × ×

### कोसल-मुक्त ।

‘देसा मैंने मुझा—एक समय भगवान् आयस्ती० जेतवनमें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित् संप्राम कील कर मनीरथ-प्राप्त कर जहाँसे कील कर ।

तब राजा प्रसेनजित्० जहाँ अराम का बहाँ गया । जितना बावक्य राजा का उतना पावसे जाकर पावसे उतर पैदलही अराममें प्रविष्ट हुआ । उस समय बहुतसे भिक्षु मुझी जगहमें रहते थे । तब राजा ने उन भिक्षुओंसे यह कथ—

‘मन्ते ! इस समय वह भगवान् जहाँ सम्पत्-संतुष्ट जहाँ विहार करते हैं ? मन्ते !

इस अब भगवान् का ध्यान करना चाहते हैं ।”

‘महाराज ! वह द्वार-बन्द विहार (= कोठरी) है सुपकेसे धीरे-धीरे जहाँ जाकर बरदि (= बार्क)में प्रवेशकर खासकर जम्बीर (= धरक) कट-कटामो । भगवान् तुम्हारे किने द्वार कोठेमें ।”

— ‘भगवान्ने द्वार खोल दिया । तब राजा प्रसेनजित्० विहारमें प्रविष्ट हो, सिरसे भगवान्के पैरोंमें गिरकर भगवान्के पैरोंको मुझसे चूमता था हावसे ( पैरोंको ) संबाहव (= दबावा) करता था और नाम सुनाता था— मन्ते ! मैं राजा प्रसेनजित् कोसल हूँ ॥”

‘महाराज ! तुम किस बातको देखते इस धरिरीमें इतनी परम सुभूषा करते हो मीनीका उपहार दिखाते हो ?”

‘मन्ते ! कृतज्ञता कृत-वेदिताको देखते हुए मैं भगवान्में इस प्रकारकी परम सुभूषा करता हूँ, मीनी-उपहार दिखाता हूँ । मन्ते ! भगवान् बहुतजनोंके दित, बहुतजनोंके

मुझके किने हैं। मगधाके बहुत बनोंको धार्य-न्याय—जो कि वह कस्याव-धर्मता कुसक धर्मता है—( उसमें ) प्रतिष्ठित किया।

X

X

X

X

### वाङ्मय-सुप्त ।

ऐसा मैंने सुना—एक समय मगधाके आध्यात्मिक-जगतमें विहार करते थे।

तब आयुष्मान् आनन्द् पूर्वाह्न समय (धीकर) पहिनकर पादधीकर के, आनन्दमें विहवार करते। विलके विहारके किये जहाँ सुधार-माताका प्रासाद पूर्वाह्न था वहाँ चले। उस समय राजा प्रसेनजित् एकपु डरीक नाग (= हाथी)पर चढ़कर मगधाके आनन्दके बाहर जा रहा था। राजा प्रसेनजित् ० वै दूरसे आयुष्मान् आनन्दको भाते देखा। देखकर सिरिषह (भीषक) महामात्यको आमंत्रित किया—

“सौम्य सिरिषह ! यह आयुष्मान् आनन्द हैं न ?”

“हाँ महाराज ! ।

तब राजा ने एक आनन्दको आमंत्रित किया—

“आओ, ई पुत्र ! जहाँ आयुष्मान् आनन्द हैं वहाँ जाओ जाकर मेरे बचनसे आयुष्मान् आनन्दके विरोंमें बंधना करवा और वह भी कहना— मन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दको कोई बहुत बहरी काम न हो तो मन्ते ! आयुष्मान् आनन्द कृपाकर एक मिनट ( ० ० ० ) उठर जायें ।

अच्छा देव !

आयुष्मान् आनन्दने मौनसे स्वीकार किया।

तब राजा प्रसेनजित् जितना नागका राज्य था उतना नागसे जाकर नागसे उठर पैरुकी ही जाकर अभिवादन कर एक ओर खड़ा हो, आयुष्मान् आनन्दको बोला—

“मन्ते ! यदि आयुष्मान् आनन्दकी कोई अत्याचरक काम न हो तो अच्छा हो मन्ते ! आयुष्मान् आनन्द जहाँ अधिरथपी नहींका तौर है, कृपा कर वहाँ चले ।”

आयुष्मान् आनन्दने मागसे स्वीकार किया।

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ अधिरथपी नहींका तब था वहाँ गये। जाकर एक वृक्षके नीचे बिछे आसनपर बैठे। तब राजा प्रसेनजित् ० जाकर नागसे उठर पैरुकी जा कर अभिवादन कर एक ओर खड़ा हुआ। एक ओर खड़े हुए राजा ने यह कहा—

“मन्ते ! आयुष्मान् आनन्द जहाँ आधीनपर बैठे ।

“हाँ महाराज ! तुम बैठे मैं अपने आसनपर बैठा हूँ ।

राजा प्रसेनजित् बिछे आसनपर बंध। बैठकर बोला—

मन्ते ! क्या यह मगधाके ऐसा अपिक आचरण कर सकते हैं, जो अधिक आचरण, धर्मको आनन्दों और विश्वोंसे विच्छिन्न ( ० ० ० ) है ?”

“हाँ महाराज ! यह मगधान् !”

“क्या भन्ते ! वाकिक आचरण कर सकते हैं ?” “वहीं महाराज !”

‘आज्ञार्थ ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते ! जो हम (तुम्हारे) अमर्षोंसे वहीं पुरास्कार (जान) सके, वह भन्ते ! आनुष्मान् आनन्दम् मधका उचर दे पूरा कर दिया । भन्ते ! जो वर बाह=अर्थात् (= गुरु) विवा सोचे विवा बाह कगाये तुररोंका वर (=महासा) वा अ-वर्ण भाषण करते हैं वैसे हम सार मानकर नहीं स्वीकार करते । जो वर पंडित=व्यक्त=मेधावी (= पुरुष) सोच कर याह कगा कर तुररोंका वर वा अवर्ण भाषण करते हैं; वैसे हम सार मान कर स्वीकार करते हैं । भन्ते ! अमर्ष ! कौन वाकिक आचरण अमर्ष-प्राज्ञार्थ-विज्ञोस विहित है ?

‘महाराज ! जो वाकिक-आचरण अ-कुसक (=बुरा) है ।’

‘भन्ते ! अकुसक वाकिक आचरण क्या है ?’ ‘महाराज ! जो वाकिक आचरण स-अवयव (=सद्योप) है । “अ-सवयव क्या है ?” “जो स-व्यापाद्य (=हिंसायुक्त) है ।” “स-व्यापाद्य क्या है ?” “जो दुःख विपाद्य (=अमर्षमें दुःख देने वाला) है ।”

“दुःख-विपाद्य क्या है ?”

“महाराज ! जो वाकिक आचरण अपनी पीड़ाके किये होता है पर-पीड़ाके किये होता है, जो-बोधी पीड़ाके किये होता है । उससे अ-कुसक-वर्म (=पाप) बढ़ते हैं, कुसक-वर्म नाश होते हैं । इस प्रकारका वाकिक आचरण महाराज ! विहित है ।”

“भन्ते आनन्द ! कौन वाकिक-आचरण अमर्षों प्राज्ञार्थे विज्ञोसे विहित है ?” ।

“महाराज ! जो वाकिक-आचरण अपनी पीड़ाके किये है ।

कौन मानसिक आचरण ?” ।

“भन्ते आनन्द ! क्या वह भगवान् सभी अकुसक धर्मों (=बुराईयों) का विवाद्य बर्णन करते हैं ?”

‘महाराज ! तथायत सभी अकुसक धर्मोंसे रहित हैं सभी कुसक-धर्मोंसे युक्त हैं ।’

“भन्ते आनन्द ! कौन वाकिक आचरण (=वाप-समाचार) अमर्षों प्राज्ञार्थे-विज्ञोसे अविहित है ?

“महाराज ! जो वाकिक आचरण कुसक है । । अमर्ष । । अ-व्यापाद्य । ।

अ-सुख-विपाद्य । । जो व अपनी पीड़ाके किये होता है व पर-पीड़ाके किये, न जो-बोधी पीड़ाके किये होता है । उससे अकुसक-धर्म नाश होते हैं कुसक-धर्म बढ़ते हैं । ।

वाकिक आचरण कुसक है ? मानसिक आचरण कुसक है ? ।

‘भन्ते आनन्द ! क्या वह भगवान् सभी कुसक धर्मोंकी प्राज्ञिको बर्णन करते हैं ?’

‘महाराज ! तथायत सभी अकुसक-धर्मों से रहित हैं सभी कुसक-धर्मोंसे युक्त हैं ।

आज्ञार्थ ! भन्ते !! अद्भुत !! भन्ते ! कितना सुन्दर कथन (=सुमरिषि) है,

भन्ते आनुष्मान् आनन्दका !!! भन्ते ! आपुष्मान् आनन्दके इस सुमायितसे हम परम प्रसन्न हैं । भन्ते ! आनुष्मान् आनन्दके सुमायितसे इस प्रकार प्रसन्न हुए, हम शाही-रत्न श्री आनुष्मान्को देते यदि वह आनुष्मान् आनन्द को विहित (=प्राज्ञ = कथन) होता कथ-रय (जोह बोधा) थी अथवा गीब भी । किन्तु भन्ते ! आनन्द ! हम इसे

जानते हैं वे आपुष्मान्को प्राण नहीं हैं। मेरे पास राजा मागध अजातदासु बनेरी-सुप्रकी मेरी यह सीकड़ हाथ लम्बी आठ हाथ लंबी 'वाहीतिक' है उसे आपुष्मान् आनन्द कृपा करके स्वीकार करें।" "नहीं महाराज ! मेरे तीनों बीबर पूरे हैं।"

"अन्ते ! यह अस्त्रिचती भरी आपुष्मान् आनन्दमे देखी है और हममे भी। जब ऊपर पर्वत पर महामेघ बरसता है तब यह अस्त्रिचती दोनों तटोंको भरकर बहती है। ऐसे ही अन्ते ! इस वाहीतिकस आपुष्मान् आनन्द अपनी मिचीबर बनावेंगे जो आपुष्मान् आनन्दके बीबर हैं उन्हें समझाचरी बॉट बेंगे। इस प्रकार हमारी दक्षिणा (= दान) माँग भरकर बहती हुई (= सविस्मयन्ती) होगी। अन्ते ! आपुष्मान् आनन्द मेरी वाहीतिकको स्वीकार करें।"

आपुष्मान् आनन्दने वाहीतिकको स्वीकार किया। तब राजा ने कहा—

'अच्छ अन्ते ! जब हम जाते हैं (हम) बहु-कृत्य बहु-करवीर हैं।'

"दिसका महाराज ! तुम काक समझे हो।"

राजा के जानेके घोड़ीही ढेर बाध आपुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। एक और बँट आपुष्मान् आनन्दने जो कुछ राजा प्रसेनजित् के साथ कथा-सकप हुआ था वह सब भगवान्को सुना दिया और वह वाहीतिकभी भगवान्को अपन कर ली। तब भगवान् ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

भिक्षुओ ! राजा प्रसेनजित् को आम है मुजाम मिक है, जो राजा आनन्द का दर्शन-सेवक पाठा है।"

यह भगवान्ने कहा, संतुष्ट हो उन भिक्षुओंने भगवान्के भाषक अमिस्युन किया।

### चक्रम-सुत

'देसा'मिने मुत्त—एक समय भगवान् राजगृहमें गुह्यकूट-पर्वतपर विहार करते थे।

उस समय आपुष्मान् सारिपुत्र बहुवसे भिक्षुओंके साथ भगवान्के अविदूर रहकर रहे थे। महामौद्गल्यायन भी। महाकाश्यपभी। अनुकन्दभी। पूर्व मीश्रायणीपुत्र० आपुष्मान् उपासिनी। आपुष्मान् आनन्दभी। देवदत्त भी बहुवसे भिक्षुओंके साथ। तब भगवान्ने भिक्षुओंको आमंत्रित किया—

'देख रहे हो तुम भिक्षुओ ! सारिपुत्रको, बहुवसे भिक्षुओंके साथ रहते ?' "हाँ अन्ते ! भिक्षुओ ! वह सभी महामश है।" "देख रह दो० माङ्गल्यायनको ?" "हाँ अन्ते ?" भिक्षुओ ! वह सभी भिक्षु महा अश्रिक (= विष्णु-अश्रिकपारी) है।"

"काश्यपको ?" "सभी पुत्रवाही (= अश्वपुत्रगणों पुत्र) है।"

"अनुकन्दको ?" "सभी विष्णुचक्रु है।"

१ अ. क. 'वाहीत' राजमें देहा हीनेवाल पक्षक यह नाम है।" अतएव और प्यामके बीचके पक्षको पालिनीय (३१२ १० । ५१३:११४) ने वाहीक किया है।

२ पयासीमवा बर्ना-कास (४८६ ६ ५) भगवान्के आचरती (पूर्वाम) में किया।

३ सं. वि. १३ २५।

“ पूर्ण मीत्रायणी पुत्रको ? ” । “ सती धर्मकविक । ”

“ उपाशिको ? ” । “ सती विनय (= मिश्रविद्यम )-धर । ”

“ आमन्त्रको ? ” । “ सती बहुश्रुत । ”

“ देस रहे हो तुम मिश्रभो ! देवदत्तको बहुततेमिश्रभोंके साथ रहते ? ” “ हा मन्ते ? ”

“ मिश्रभो ! वह सती मिश्र पापेच्छुक (= बह-वीपत ) हैं । मिश्रभो ! प्राची ब्राह्मण

(= विद्व-वृत्ति = मङ्गल ) के अनुसार ( परस्पर ) मेक करते हैं, साथ पकड़ते हैं । हीन-

व्यभिक्तिक (= नीच-व्यक्तिवाले ) हीनविभक्तिकोंके साथ मेक करते हैं साथ पकड़ते हैं ।

कल्याण (= अच्छे, उत्तम )-व्यभिक्तिक कल्याणविभक्तिकोंके साथ । पूर्वकर्म की

मिश्रभो ! प्राची ब्राह्मण अनुसार मेक करते थे, साथ पकड़ते थे । हीनविभक्तिक ।

कल्याणविभक्तिक । नवायत (= अविप्य )-कर्म भी । । इस समय भी । । ”

### उपालि-सुप्त ( इ पू ४८७ ) ।

‘ऐसा मैंने सुना—एक समय भगवान् नाशान्दामें प्राचारिकके आज्ञाधनमें विहार करते थे ।

उस समय विगंड नाश-पुत्र मिगटों (= बह-साधुओं ) की बड़ी परिष्क (= अमल )

के साथ नाशान्दामें विहार करते थे । उस हीनतपस्वी निर्धन (= अना साधु ) नाशान्दामें

मिच्छाधार कर पिंडपाठ कठमकर, भोजनके पश्चात् वहाँ प्राचारिक-आज्ञा-धन ( मैं ) भयवात्

थे वहाँ गया । आकर भगवान्के साथ संभोजन ( कुम्भकपान पूज ) कर एक ओर जाया हो

गया । एक ओर जाये हुये हीन-तपस्वी निर्धनको भगवान्ने कहा—

“ तपस्वी ! आसन मीनू है बरि ह्पका हो तो बैठ जाओ ? ”

ऐसा कहनेपर हीन-तपस्वी निर्धन एक बोध्य आसनके एक ओर बैठ गया । एक ओर

बैठे हीन-तपस्वी निर्धनसे भयवात् बोले—

“ तपस्वी ! पापकर्मके करनेके किये पाप-कर्मकी प्रवृत्तिके किये निर्धन्य हाण्डपुत्र

कितने कर्मोंका विद्याम करते हैं ? ”

“ आनुस ! गौतम ! ‘कर्म’ ‘कर्म’ विद्याम करना विग्रह हाण्डपुत्रका कर्मना

( = अविद्यम ) वहाँ है । आनुस ! गौतम ! ‘दंड’ ‘दंड’ विद्याम करना विगंड नाश-पुत्रका

कायना है ।

‘तपस्वी ! तो फिर पाप-कर्मके करनेके किये=पाप-कर्मकी प्रवृत्तिके किये विगंड नाश-

पुत्र कितने ‘दंड’ विद्याम करते हैं ? ”

“ आनुस ! गौतम ! पापकर्मके इच्छाके किये विगंड नाश-पुत्र तीन दंडोंका विद्याम

करते हैं । जैसे—‘काप-दंड’ ‘बचन-दंड’ ‘मन-दंड’ । ”

“ तपस्वी ! तो क्या काप-दंड दूसरा है बचन-दंड दूसरा है मन-दंड दूसरा है ? ”

‘आनुस पीतम ! ( हाँ ) ! काप-दंड दूसरा ही है बचन-दंड दूसरा ही मन-दंड

दूसरा ही है ।

‘तपस्वी ! इस प्रकार मेरे किये इस प्रकार विग्रह, इन तीनों दंडोंमें विगंड नाश-

पुत्र पाप कर्मके करनेके लिये पापकर्मकी प्रवृत्तिक लिये किस बंधको महादोष-मुक्त विद्यान करते हैं, काय-बंधको वा बचन-बंधको वा मन-बंधको ?”

“आजुस गौतम ! इस प्रकार भेद किये इस प्रकार विभक्त, हृद तीनों बंधोंमें निर्गंड नात पुत्र पाप कर्मके करनेके लिये काय-बंधका महादोष-मुक्त विद्यान करते हैं; वैसा बचन-बंधको नहीं वैसा मन-बंधको नहीं ।”

“तपस्वी ! काय-बंध कहते हो ?”

“आजुस गौतम ! काय-बंध कहता हूँ ।”

“तपस्वी ! काय-बंध कहते हो ?”

“आजुस गौतम ! काय-बंध कहता हूँ ।”

“तपस्वी ! काय-बंध कहते हो ?”

“आजुस गौतम ! काय-बंध कहता हूँ ।”

इस प्रकार भगवान्ने शीर्ष-तपस्वी निर्गंडको इस कथा-वस्तु ( = नात ) में तावहार प्रतिहापित किया ।

ऐसा कहनेपर शीर्ष-तपस्वी निर्गंडने भगवान्को कहा—

“गुम आजुस ! गौतम ! पाप-कर्मके करनेके लिये कितने दृढ-विद्यान करते हो ?”

“तपस्वी ! ‘बंध’ ‘बंध’ कहना तथापत्तका कायदा नहीं है ‘कर्म’ ‘कर्म’ कहना तथा पत्तका कायदा है ।”

‘आजुस गौतम ! गुम कितने कर्म विद्यान करते हो ?’

‘तपस्वी ! मैं शरीर कर्म बतकाता हूँ — उस काय-कर्म बचन-कर्म मन-कर्म ।’

“आजुस गौतम ! काय-कर्म दूसरा ही है बचन-कर्म दूसरा ही है मन-कर्म दूसरा ही है ।”

‘तपस्वी ! काय-कर्म दूसरा ही है बचन-कर्म दूसरा ही है, मन-कर्म दूसरा ही है ।’

आजुस गौतम ! इस प्रकार विभक्त इन तीनों कर्मोंमें पाप-कर्म करनेके लिये किसको महादोषी बहरते हो—काय-कर्मको वा बचन-कर्मको वा मन-कर्मको ?

“तपस्वी ! इस प्रकार विभक्त हृद तीनों कर्मोंमें मन-कर्मकी मैं महादोषी बतकाता हूँ ।”

“आजुस गौतम ! मन-कर्म बतकाते हो ?”

“तपस्वी ! मन-कर्म बतकाता हूँ ।”

आजुस गौतम ! मन-कर्म बतकाते हो ?”

“तपस्वी ! मन-कर्म बतकाता हूँ ।”

“आजुस गौतम ! मन-कर्म बतकाते हो ?”

“तपस्वी ! मन-कर्म बतकाता हूँ ।”

इस प्रकार शीर्ष-तपस्वी निर्गंड भगवान्को इस कथा-वस्तु ( = विद्या-विषय ) में तावहार प्रतिहापित करा। अत्यन्त उद-बद्ध निर्गंड नात-पुत्र थे नहीं कथा तथा ।

उस समय निर्गंड नात-पुत्र बालक ( = सोपकार ) -विवासी उपाधि आदिही

बकी गृहस्थ परिवन्धुके साथ बैठे थे । तब निर्गन्त नात-पुत्रने दूरसे ही दीर्घ-तपस्वी कियंकी  
आते देख गृह—

“हे ! तपस्वी ! मयाहमें व क्यास ( का रहा है ) ?

मन्त ! भ्रमण गौतमके पासत आ रहा हू ।”

तपस्वी ! क्या तेरा भ्रमण गौतमके साथ कुछ कथा-संकाप हुआ ?

मन्त ! हाँ ! मरा भ्रमण गौतमके साथ कथा-संकाप हुआ ।”

“तपस्वी ! भ्रमण गौतमके साथ तेरा क्या कथा-संकाप हुआ ।”

तब दीर्घ-तपस्वी विगठने भगवान्के साथ जो कुछ कथा-संकाप हुआ था वह सब  
निर्गन्त नात-पुत्रको कह दिया ।

“साधु ! साधु !! तपस्वी ! जसा कि शास्ता ( =गुरु)के सामन ( = उपदेश )को  
अच्छी प्रकार जाननेवाल बहुतसुत आबक दीर्घतपस्वी विगठने भ्रमण गौतमको बतलाया ।  
वह मुया मन्-ईद इम महात् अप-ईदके सामने क्या सोमता है ? पाप-कर्मके करने-पाप  
कर्मकी प्रवृत्तिक क्रिय काब-इद ही महादोषी है चलन-ईद कैसे नहीं ।

ऐसा कहनेपर उपाधि गृहपतिने विगन्त नातपुत्र को यह कहा—

“साधु ! साधु !! मन्ते तपस्वी ! जसा कि शास्ताके सामनक मर्मज्ञ बहुतसुत  
आबक महन्त दीर्घ-तपस्वी किाहने भ्रमण गौतमको बतलाया । वह मुया । तो मन्ते !  
मैं जान्, हसी क्या-बलुमें भ्रमण गौतमके साथ बिबाद् रोहू ? यदि मेरे ( सामने ) भ्रमण  
गौतम बसे ( ही ) उहरा रहा जसा कि महन्त दीर्घ तपस्वीने ( बसे ) उहराया । तो कैसे  
बकनात् पुत्रप लम्बे बाकबाकी मेकको बाहोंस पकड़कर बिक्राक, मुमाने हुल्लभे; उसी प्रकार मैं  
भ्रमण गौतमके बाद्को निकारूंगा हुल्लाऊंगा । ( जबा ) जस कि बकनात्  
शीकिक-कर्मकर ( = श्रावण बबानबास ) महीके बने टोकरे ( = सौदिक-किलंब ) को बहरे  
पानी ( बाक ) लाकाबमें केंककर; काबोंको पकड़के निकारके मुमाने हुल्लावे, ऐसे ही मैं ।  
( अपबा ) जैसे कि साठ बर्षका पहा हाकी पहरी पुष्करिणीमें हुसकर मल-धीबब नामक  
केकको केके, ऐसे ही मैं भ्रमण गौतमको सब घोबन । हाँ ! तो मन्ते ! मैं जान् हूँ ।  
इस कथा-बलुमें भ्रमण गौतमके साथ बाद् रोहूंगा ।

“जा गृहपति जा भ्रमण गौतमके साथ इस कथा-बलुमें बाद् रोप । गृहपति !  
भ्रमण गौतमके साथ मैं बाद् रोहूँ या दीर्घ-तपस्वी निर्गन्त रोपे या हू ।

मुया कहनेपर दीर्घ तपस्वी विगन्तके विगन्त नात-पुत्रको कहा—

‘मन्ते ! ( अपकी ) यह मत लभे कि उपाधि गृहपति भ्रमण गौतमके पास जाकर  
बाद् रोप । मन्ते ! भ्रमण गौतम माबाही है ( मति ) कैरनेबाकी भाषा आबता है  
जिसस दूरे तर्किकी ( = ब्राह्मणों ) के पाबकों ( को अपनी कोर ) कैर लेता है ।’

“तपस्वी ! वह संभव नहीं कि उपाधि गृहपति भ्रमण गौतमका आबक हो जाब ।  
संभव है कि भ्रमण गौतम ( ही ) उपाधि गृहपतिक आबक हो जाब । जा गृहपति ! भ्रमण  
गौतमके साथ इस कथा-बलुमें बाद् रोप । गृहपति ! भ्रमण गौतमके साथ मैं बाद् रोहूँ,  
या दीर्घ-तपस्वी निर्गन्त रोपे या हू ।

दूसरी बार भी दीर्घ-तपस्वी निर्गठने । तीसरी बार भी ।

'अप्यम मन्ते ?' कह, उपाधि गृहपति निगठ मात-पुत्रको अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर, जहाँ प्रावारिक आश्रयन या जहाँ मगवान् ने वहाँ गया । आकर मगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए उपाधि गृहपतिने मगवान्से कहा—

मन्ते ! क्या दीर्घतपस्वी निगठ यहाँ आया था ?

“गृहपति ! दीर्घतपस्वी निगठ यहाँ आया था ।

‘मन्ते ! दीर्घतपस्वी निगठके साथ आपका कुछ कथा-संक्षेप हुआ ?’

‘गृहपति ! दीर्घ-तपस्वी निगठके साथ मेरा कुछ कथा-संक्षेप हुआ ।’

“तो मन्ते ! दीर्घ-तपस्वी निगठके साथ क्या कुछ कथा संक्षेप हुआ ?”

तब मगवान्ने दीर्घतपस्वी निगठके साथ का कुछ कथा-संक्षेप हुआ था उस सबको उपाधि गृहपतिसे कह दिया । ऐसा कहनेपर उपाधि गृहपतिने मगवान्से कहा—

“साधु ! साधु ! मन्त तपस्वी ! असाकि शास्त्रिक सासनके मर्मज्ञ बहुत-बहुत आशु दीर्घतपस्वी निगठके मगवान्को बतलाया !” यह सुनकर मन्त-बुद्ध इस महात्मा-बुद्धक सामने क्या होम्ता है ? पाप-कर्मकी प्रवृत्तिके विषये काय-बुद्धी महा-शोपी है; वैसा बचन-बुद्ध नहीं है वैसा मन्त-बुद्ध नहीं है ।

‘गृहपति ! यदि तू सत्यमें स्थिर हो संश्रय (= विचार) करे तो हम दोनोंका संक्षेप हो ।

‘मन्ते ! मैं सत्यमें स्थिर हो संश्रय करूँगा । हम दोनोंका संक्षेप हो ।’

“क्या माकते हो गृहपति ! ( यदि ) यहाँ एक बीमार-बुद्धित भयकर रोग-ग्रस्त पीत-जल-स्वायी टण्ड-जल-सेवी निगठ— पीत-जल व पापके कारण मर जाने तो निगठ मृत पुत्र उसकी ( पुत्र ) उत्पत्ति कहीं बतलायेंगे ?

‘मन्ते ! ( जहाँ ) मन्त सत्य नामक वेचता है । वह यहाँ उत्पन्न होगा ।’

‘तो किम कारण ?’

‘मन्ते ! वह मन्तसे क्या हुआ मन्त है !’

गृहपति ! गृहपति ! मन्तमें ( मोक्ष ) करके करो । मुन्दारा पूर्व ( पक्ष ) में पश्चिम ( पक्ष ) नहीं मिलता तथा पश्चिमसे पूर्व नहीं कीक खाता । अगर गृहपति ! तुमने यह बात ( भी ) कही है—मन्ते ! मैं सत्यमें स्थिर हो संश्रय करूँगा हम दोनोंका संक्षेप हो ।

“और मन्ते ! मगवान्नेभी ऐसा कहा है । पापकर्म करनेकेलिसे काय-बुद्धी महाशोपी है वैसा बचन-बुद्ध ( और ) मन्त बुद्ध नहीं ?”

“तो क्या माकते हो गृहपति ! यहाँ एक ‘अनुपाम-सवरसे संवृत (= गोपित रहित) सब बारिसे विचारित सब बारि (= बारिओं)को विचारण करनेमें उत्पन्न, सब (पाप) बारिसे हुआ हुआ सब ( पाप ) बारिसे हुआ हुआ निर्ग्रथ (= निर-साधु) है । वह माकते

( १ ) काय-हिंसा व करण व करण व अनुशोचन करण ( २ ) शोरी न । ( ३ ) अक्ष न । ( ४ ) भावित (= काम भोग ) व चाहता यह अनुपामसवर मृतपुत्र का सुख सिद्धांत था, जिसे जब पादुर्बलावत्त समझा जाता है ।

( ५ ) निपिद्ध शक्तिक जल या पापकर्मि अक्ष ।



जाते बहुतसे छोटे-छोटे प्राणि-समुदायको मारता है। गृहपति ! निगड नात-पुत्र इसका क्या विपाक ( = फल ) बतलाते हैं ?”

“मन्ते ! भयङ्करात्मको निगड नात-पुत्र महादोष नहीं कहते ।”

“गृहपति ! यदि बातों हो । “( तब ) मन्त ! महादोष होगा ।

‘गृहपति ! आमतोको निर्गड नात-पुत्र किसमें कहत हैं ? “मन्ते ! मन्-द्वैतमें”

‘गृहपति ! गृहपति ! मन्में ( सोच ) करके कहो ।’

‘और मन्ते ! भगवान्मे भी ।’

तो गृहपति ! क्या है वह यह नासन्दा सुष्ठु-संपत्ति-सुष्ठु, बहुत अनोवासी ( बहुत ) मनुष्योंसे मरी ?” हूँ मन्ते !

“तो गृहपति ! ( यदि ) यहाँ एक पुण्य ( मंती ) तबबार उठावे भावे, और कहे—इस नासन्दामें कितने प्राणी हैं मैं एक क्षणमें एक सुष्ठुमें उन ( सब )का एक मांस का शक्तिवाच एक मांसका डेर कर दूँगा। तो क्या गृहपति ! वह पुण्य एक मांसका डेर कर सकता है ?”

“मन्ते ! इसकी पुण्य बीसती पुण्य तीस चाकीस , पचास भी पुण्य एक मांसका डेर नहीं कर सकते वह एक मुवा क्या है।

“तो गृहपति ! यहाँ एक अदिमान् शिखरके बसमें किया हुआ, अमन वा आह्वान भावे यह ऐसा बोले—मैं इस नासन्दाको एक ही मन्के क्रोपसे भक्षण कर दूँगा। तो क्या गृहपति ! वह अमन वा आह्वान इस नासन्दाको ( अपने ) एक मन्के क्रोपसे भक्षण कर सकता है ?”

“मन्ते ! इस नासन्दाओंको भी पचास नासन्दाओंको भी यह अमन वा आह्वान ( अपने ) एक मन्के क्रोपसे भक्षण कर सकता है। एक मुई नासन्दा क्या है ।’

‘गृहपति ! गृहपति ! मन्में ( सोच ) करके कहो ।’

‘और भगवान्मे भी ।

“तो गृहपति ! क्या तुमने ईश्वरकारण्य कर्त्तव्यकारण्य संस्कारण्य ( = तेजस्करण्य ), मातृकारण्यका कारण्य होगा सुना है ?” हूँ मन्ते !”

‘तो गृहपति ! तुमने सुना है कैसे ईश्वरकारण्य हुआ ?”

‘मन्ते ? मैंने सुना है—कर्त्तव्यके मन्के-क्रोपसे ईश्वरकारण्य हुआ ।’

“गृहपति ! गृहपति ! मन्में ( सोच ) करके कहो । तुम्हारा पूर्वसे पश्चिम नहीं निकला पश्चिमसे पूर्व नहीं निकला। और तुमने गृहपति ! वह बात कही है—‘सत्यमें स्थिर हो मैं मन्ते ! मन्ना ( = वाद ) कर्त्तव्य हमार संक्षय हो ।

“मन्ते ! भगवान्की पहिची अपमासे ही मैं संतुष्ट और अमिरत हो क्या वा। विभिन्न प्रकारके वाक्याच ( = अदिमान् )को और भी सुबकेकी इच्छासे ही मैंने भगवान्को प्रतिवादी बचाना पसन्द किया। आश्चर्य ! मन्ते !! आश्चर्य ! मन्ते !! जैसे जैसेकी सीधाकर वे आजसे भगवान् मुझे सीधक वारवागत अपासक चारन करें ।

१. निगाओ केव 'अपास्यदधा ( सुव ) ।

गृहपति ! सोच-समझकर ( करम ) करो । तुम्हारे जैसे समुज्ज्वल सोच-समझकर ही करवा अच्छा होता है ।

“भन्ते ! भगवान्‌के इस कथनसे मैं और भी प्रसन्न मन समुह और अभिरत हूँ, जो कि भगवान्‌ने मुझे कहा—‘गृहपति ! सोच-समझकर करो ।’ भन्ते ! दूसरे तीर्थिक (अर्थवादी) मुझे भावक पाकर सारे नाकान्‌दोंमें पताका उड़ाते—‘उपाधी गृहपति हमारा भावक (केका) होगा । और भगवान्‌ मुझे कहते हैं— गृहपति ! सोच-समझकर करो । भन्ते ! वह दूसरी बार मैं भगवान्‌की शरण आता हूँ’ बर्न और मित्रु संघकी भी ।”

“गृहपति ! दीध-आफसे तुम्हारा कुछ (अच्छ) निर्गठोंके किये जाउकी तरह रहा है, उनके आगेपर दिव्य नहीं देना चाहिये यह मठ समझना ।”

“भन्ते ! इससे और भी प्रसन्न मन समुह और अभिरत हूँ, जो मुझे भगवान्‌ने कहा—दीध-आफसे तेरा घर । भन्ते ! मैंने सुना था कि अमल गौतम ऐसा कहता है—‘मुझे ही शान देना चाहिये दूसरोंको शान न देना चाहिये । मेरे ही भावकोंको शान देना चाहिये दूसरोंको शान न देना चाहिये । मुझे ही देनेका महा-फल होता है दूसरोंको देनेका महा-फल नहीं होता । मेरे ही भावकोंको देनेका महाफल होता है दूसरोंको भावकोंकी देनेका महाफल नहीं होता । और भगवान्‌ तो मुझे निर्गठोंको भी शान देनेको कहते हैं । भन्ते ! हम भी इसे कुछ समझेंगे । भन्ते ! वह मैं तीसरी बार भगवान्‌की शरण आता हूँ ।

तब भगवान्‌ने उपाधि गृहपतिको आहुर्दो-कथा कही । जैसे काकिमा-रहित छद्म बच अच्छी प्रकार रंगको पकवता है इसी प्रकार उपाधि गृहपतिको उसी व्यसनपर विरक्त-विरक्त धर्म-बहु उपपन्न हुआ—‘ओ कुछ समुह-धर्म है, वह सब विरोध धर्म है । तब उपाधि गृहपतिने उद्यमर्न हो भगवान्‌से कहा—

“भन्ते ! अब हम जाते हैं हम बहुकल्प-अवहृत्करणीय हैं”

“गृहपति ! जैसा तुम आज (अवधि) समझो (जैसा करो) ।”

तब उपाधि गृह-पति भगवान्‌के भावकको अभिवन्द्यकर, अनु-मोहनकर आसकसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रक्षिणाकर जहाँ बसकर घर या जहाँ गया । आकर द्वारपाकको शोक—

‘सौम्य ! दीधारिक ! आजसे मैं निर्गठों और निर्गठियोंके किये द्वार बन्द करता हूँ भगवान्‌के मित्रु मित्रुकी उपासक और उपासिकाओंके किये द्वार खोलता हूँ । यदि भिद्यक जाये तो कहा जा ‘इतरे भन्ते ! आजसे उपाधि गृह-पति अमल गौतमका भावक हुआ । निर्गठों निर्गठियोंके किये द्वार बन्द है भगवान्‌के मित्रु मित्रुकी उपासक उपासिकाओंके किये द्वार खुला है । यदि भन्ते ! तुम्हें विद्व (अभिज्ञा) चाहिये नहीं इतरे (हम) नहीं कर देंगे ।”

भन्ते ! अद्य (कह) दीधारिकने उपाधि गृहपतिको उचर दिया ।

दीध-तपस्वी निर्घण्टे सुत्र—‘उपाधि गृह-पति अमल गौतमका भावक हो गया’ । तब दीधतपस्वी निर्गठ, जहाँ निर्गठ नातपुत्र थे जहाँ गया । आकर निर्गठ नातपुत्रको शोक—

जाते बहुतसे छोटे-छोटे प्राणि-समुदायको मारता है। गृहपति ! निर्गठ नास-युक्त इसका क्या विपाक ( = फल ) बतलाते हैं ?”

“भन्ते ! जबजाकेका निर्गठ नास-युक्त महाहोप नहीं करते ।”

“गृहपति ! यदि जानता हो ।” ( तब ) भन्ते ! महाहोप होगा ।”

‘गृहपति ! जाननेको निर्गठ नास-युक्त किसमें करते हैं ?’ “भन्ते ! मन-ईदमें

‘गृहपति ! गृहपति ! मन्में ( सोच ) करके करो । ।

‘और भन्ते ! मयबान्ने भी ।’

तो गृहपति ! क्या है व वह नासन्वा सुक-संपत्ति-युक्त बहुत जनोवाही ( बहुत ) मनुष्योंसे मरी ?” “हाँ भन्ते !”

‘तो गृहपति ! ( यदि ) यहाँ एक पुरुष ( मनी ) लक्ष्मण उद्यमे ध्याये, और कहे—इस नासन्वामें कितने प्राणी हैं मैं एक क्षणमें एक मुहूर्तमें उन ( सब )का एक मौस कर कठिनाय एक मौसका डेर कर दूँगा । तो क्या गृहपति ! वह पुरुष एक मौसका डेर कर सकता है ?”

“भन्ते ! इसमी पुरुष बीसभी पुरुष तीस चाकोस , पचास भी पुरुष एक मौसका डेर नहीं कर सकते वह एक मुवा क्या है ।

“तो गृहपति ! यहाँ एक क्षत्रिमाह्व चित्तको बसमें किया हुआ, अमल वा ब्राह्मण ध्याये वह ऐसा बोधे—मैं इस नासन्वाको एक ही मन्के अघसे मसाकर दूँगा । तो क्या गृहपति ! वह अमल वा ब्राह्मण इस नासन्वाको ( अपने ) एक मन्के अघसे मसा कर सकता है ?”

“भन्ते ! इस नासन्वामेंको भी पचास नासन्वाओंकी भी वह अमल वा ब्राह्मण ( अपने ) एक मन्के अघसे मसाकर सकता है । एक मुई नासन्वा क्या है ।”

‘गृहपति ! गृहपति ! मन्में ( सोच ) कर करो ।’

‘और भगवान्ने भी ।

“तो गृहपति ! क्या तुमने दंडकारण्य, कर्त्तिसारण्य, मेरुधारण्य ( = मेरु ) राज ) मातङ्गारण्यका अरण्य होना सुना है ?” “हाँ भन्ते ! ।

‘तो गृहपति ! तुमने सुना है कैसे दंडकारण्य हुआ ?’

‘भन्ते ! मैंने सुना है—अपिओंके मन्के-अघसे दंडकारण्य हुआ ।”

“गृहपति ! गृहपति ! मन्में ( सोच ) कर करो । तुम्हारा पूर्वसे बलिम नहीं मिळता पहिलेसे पूर्व नहीं मिळता । और तुमने गृहपति ! वह बात कही है—‘सत्त्वमें स्थिर हो मैं भन्ते ! संशय ( = शक्य ) कर्हेगा हमारा संकाय हो ।

“भन्ते ! भगवान्की पहिली उपमासे ही मैं संतुष्ट और अभिरत हो गया था । विभिन्न प्रभोंके अवात्ताम ( = अविमान )का धार भी सुननेकी इच्छासे ही मैंने भगवान्को प्रतिबारी बबाना पसन् किया । आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते ! मैं अघिको सीपाकर है आजसे भगवान् मुसे सांख्यिक शास्त्रायत उपासक धारण करें ।

गृहपति ! सोच-समझकर ( काम ) करो । तुम्हारे जैसे मनुष्योंका सोच-समझकर ही करना अच्छा होता है ।

“मन्ते ! भगवान्के इस कथनसे मैं और भी प्रसन्न मन सन्तुष्ट और अभिरत हुआ; जो कि भगवान्ने मुझे कहा — गृहपति ! सोच-समझकर करो । मन्ते ! दूसरे ठीकिक (स्वयंही) मुझे आशंक पाकर सारे भावनामें पताका उड़ाते— उपाधी गृहपति हमारा आशंक (बिम्ब) होयगा’ । और भगवान् मुझे कहते हैं—‘गृहपति ! सोच-समझकर करो । मन्ते ! यह दूसरी बार मैं भगवान्की शरण जाता हूँ धर्म और मित्र संभवी भी ।”

“गृहपति ! शीघ्र-कामसे तुम्हारा कुछ (कुछ) निर्गठोंके किने जावकी तरह रहा है, कबके जानेपर ‘पिंड नहीं देना चाहिये यह भव समझना ।”

“मन्ते ! इससे और भी प्रसन्न-मन सन्तुष्ट और अभिरत हुआ जो मुझे भगवान्ने कहा—‘शीघ्र-कामसे तेरा धर । मन्ते ! मैंने सुना था कि अमन्य पौतम ऐसा कहा है— ‘मुझे ही दान देना चाहिये दूसरोंको दान न देना चाहिये । मेरे ही आशंकोंको दान देना चाहिये दूसरोंको दान न देना चाहिये । मुझे ही देनेका महा-पद होता है दूसरोंको देनेका महा-पद नहीं होता । मेरे ही आशंकोंको देनेका महापद होता है, दूसरोंके आशंकोंको देनेका महापद नहीं होता । और भगवान् तो मुझे निर्गठोंको भी दान देनेको कहते हैं । मन्ते ! हम भी इसे कुछ समझेंगे । मन्ते ! यह मैं तीसरी बार भगवान्की शरण जाता हूँ ।”

तब भगवान्ने उपाधि गृहपतिको आपुर्ही-कना कही । जैसे कश्मिमा-रहित कुछ कथ अच्छी प्रकार रंगको पकवता है इसी प्रकार उपाधि गृहपतिको उड़ी आसवपर विरह-विमल धर्म-बहु उत्पन्न हुआ—‘जो कुछ समुद्रक-धर्म है, वह सब विरोध धर्म है’ । तब उपाधि गृहपतिने उहधर्म ‘हो भगवान्से कहा—

“मन्ते ! अब हम मन्ते हैं हम बहुल-बहुकरभी हैं’

“गृहपति ! जिस तुम काक (अशुचित) समझो (बैसा करो) ।”

तब उपाधि गृहपति भगवान्के आशंकको अभिलम्बनकर, जमु-मोहनकर आसवसे उड़, भगवान्का अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर वहाँ उत्तरका तर या वहाँ गया । बाकर शरणपाकको बोध—

‘सौम्य ! शीघरिक ! आशंके मैं निर्गठों और निर्गठियोंके किने द्वार बन्द करता हूँ, भगवान्के मित्र मित्रुभी उपासक और उपासिकोंके किने द्वार खोला हूँ । यदि निर्गठ जाये तो कहना ‘उहरे मन्ते’ । आशंके उपाधि गृहपति अमन्य गौतमका आशंक हुआ । निर्गठों निर्गठियोंके किने द्वार बन्द है; भगवान्के मित्रु मित्रुभी उपासक उपासिकोंके किने द्वार खुला है । यदि मन्ते ! तुम्हें पिंड (अभिधा) चाहिये नहीं उहरे (हम) वहाँ का रोते ।”

मन्ते ! अज (कह) शीघरिकने उपाधि गृहपतिको उत्तर दिया ।

शीघ्र-पत्नी विर्यन्ते सुवा—‘उपाधि गृहपति अमन्य गौतमका आशंक हो गया’ । तब शीघ्र-पत्नी विर्यन्त, वहाँ निर्गठ नातपुत्र थे वहाँ गया । बाकर निर्गठ नातपुत्रको बोध—

“मन्ते ! मैंने सुना है कि उपाधि गृह-पति अमज गौतमका आवक हो गया ।”

“बह स्वाम नहीं यह अवकाश नहीं ( = यह असम्भव ) है कि उपाधि गृह-पति अमज गौतमका आवक हो जाये और यह स्वाम ( = सम्भव ) है कि अमज गौतम ( ही ) उपाधि गृहपतिका आवक ( = स्थित्य ) हो ।”

दूसरी बार भी दीर्घ-तपस्वी निर्गन्धने कहा—० ।

तीसरी बार भी दीर्घ-तपस्वी निर्गन्धने ।

“तो मन्ते ! मैं जाता हूँ, और देखता हूँ, कि उपाधि गृह-पति अमज गौतमका आवक हो गया या नहीं ।”

“आ तपस्वी ! देख कि उपाधि गृहपति अमज गौतमका आवक हो गया या नहीं ।”

तब दीर्घ-तपस्वी निर्गन्धने उपाधि गृहपतिका घर या नहीं गया । द्वार-पाकने दूरसे ही दीर्घ-तपस्वी निर्गन्धको आते देखा । देखकर दीर्घ-तपस्वी निर्गन्धसे कहा—

‘मन्ते ! दूरी, मत प्रवेश करो । आजसे उपाधि गृहपति अमज गौतमका आवक हो गया । यहीं दूरी परी तुम्हें विड के आ देंगे ।

“आयुक्त ! मुझे विडका काम नहीं है ।

यह कह दीर्घ-तपस्वी निर्गन्धने उपाधि गौतमका आवक देखा । द्वार-पाकने पाठ-पुस्तके बोका—

“मन्ते ! सब ही है । उपाधि गृहपति अमज गौतमका आवक हो गया । मन्ते ! मैंने तुमसे पहिले ही ब कहा था कि मुझे यह पसन्द नहीं कि उपाधि गृहपति अमज गौतमके साथ वाच करे । क्योंकि अमज गौतम मन्ते ! मायावी है आर्तनी माया आवता है जिससे दूसरे वैश्विकोंके आवकोंके फेर केता है । मन्ते ! उपाधि गृहपतिको अमज गौतमके आर्तनी-मायासे फेर किया ।

‘तपस्वी ! यह ( सम्भव नहीं ) कि उपाधि गृहपति अमज गौतमका आवक हो जाय ।

दूसरी बार भी दीर्घ-तपस्वी निर्गन्धने निर्गन्धनातपुस्तको यह कहा— । तीसरी बार भी दीर्घ-तपस्वी ।

‘तपस्वी ! यह ( सम्भव नहीं ) । अच्छा तो तपस्वी ! मैं जाता हूँ । स्वाम जाता हूँ कि उपाधि गृह-पति अमज गौतमका आवक हुआ या नहीं ।

तब निर्गन्धनातपुस्तक भी भारी विप्लवकी परिपक्व साथ, उपाधि गृहपतिका घर या नहीं गया । द्वार-पाकने दूरसे आते हुये विडनातपुस्तको देखा । ( और ) कहा—

‘दूरी मन्ते ! मत प्रवेश करो । आजसे उपाधि गृहपति अमज गौतमका उपासक हुआ । यहीं दूरी परी तुम्हें ( विड ) के आ देंगे ।

“तो सौम्य दीर्घाधिक ! उपाधि गृहपति है यहाँ जाओ । आजसे उपाधि गृहपतिको कहो—‘मन्ते ! यही भारी निर्गन्ध-परिपक्व साथ निर्गन्धनातपुस्तकके बाहर जाँ है ( और ) तुम्हें देखना चाहते हैं ।”

“अच्छा मन्ते ।

निगंड नात-पुत्रका कह ( द्वारक ) जहाँ उपाधि गृहपति था, वहाँ गया । जाकर उपाधि गृहपतिको कहा—

“मन्ते ! निगंड नात-पुत्र ।”

“तो सीम्य ! द्वीवारिक ! बिचकी द्वार-साक्य ( = वाक्य ) में आसन विद्यमान ।

मन्ते ! अथ्यम उपाधि गृहपतिको कह, बिचकी द्वार-साक्यमें आसन विद्य—

‘मन्ते ! बिचकी द्वार-साक्यमें आसन विद्य दिधे । अथ ( आप ) जिसअ करक समर्थे ।

तब उपाधि गृह-पति जहाँ बिचकी द्वार-साक्य भी वहाँ गया । जाकर जो वहाँ अथ = अथे, अथम = अथीत आसन था उसपर बैठकर द्वीवारिकको बोला—

“तो सीम्य द्वीवारिक ! जहाँ निगंड नात पुत्र है, वहाँ जाओ, जाकर निपट नात पुत्रको यह कहो—‘मन्ते ! उपाधि गृहपति कहता है—यदि चाहें तो मन्ते ! प्रवेश करें ।’

‘अथ्यम मन्ते !

—( कह ) द्वीवारिकने निगंड नात-पुत्रसे कह—

‘मन्ते ! उपाधि गृहपति कहते हैं—यदि चाहें तो, प्रवेश करें ।’

निगंड नात-पुत्र वही मारी निगंड-परिष्कृके साथ जहाँ बिचकी द्वारघाटा भी वहाँ गये । पहिले जहाँ उपाधि गृहपति वृत्से ही निगंड नात-पुत्रको अथे देखता, देखकर अथवाणी कर वहाँ जो अथ = अथे अथम = अथीत आसन होता, उसे आधरसे पाँउकर उसपर बैठता था । सो आज जो वहाँ अथम आसन था उसपर स्वर्ण बैठकर निगंड नात-पुत्रकी बोला—

‘मन्ते ! आसन मीज्दु है, यदि चाहें तो बैठें ।’

ऐसा कहनेपर निगंड नात-पुत्रने उपाधि गृहपतिको कहा—

“अथमच होगया है गृहपति ! अथ होगया है गृहपति ! ए— मन्ते ! क्या हूँ अमल

पौतमके साथ बाद रोषूया —( कहकर ) जानेके बाद बड़े मारी बाएके संवाद ( = अथ ) में बैठकर बीठा है । मने कि अथ ( = अथमच )-द्वारक विद्याके बँडोंके साथ जाने, अथे कि अथि ( = अथि )-द्वारक पुत्रक विद्याके बँडोंके साथ जाने बथे ही गृहपति ! ए—‘मन्ते ! क्या हूँ अमल पौतमके साथ बाद रोषूया (कहकर) का बड़े मारी बाए संवादमें बैठकर बीठा है । गृहपति ! अमल पौतमके आधरनी-मायास सेरी (अथ) केर की है ।

“सुन्दर है मन्ते ! आधरनी माया । कथ्याणी है मन्ते ! आधरनी माया । (पथि) मेरे

मिय जातिमाई मी इस आधरनी-माया द्वारा केर किये जाये (तो) मेरे मिय जाति माइयोका दीर्घ-आकृतक द्वित-मुष्ट होगा । यदि मन्तेगे सभी अथि इस आधरनी-मायास केर किये जाये तो सभी अथिमाई दीर्घ-आकृतक द्वित-मुष्ट होगा । यदि सभी आकृत । यदि सभी बैरप । यदि सभी धूम । यदि देव मार-मया-सहित सारा लोक अमल-माकृत-रूप-अपुत्र-सहित सारी मया ( = अमला ) इस आधरनी माया द्वारा केर थी अथ, तो (उसका) दीर्घ-आक-

एक हित-मुख होवा । मन्ते ! आपको उपमा कहवा हूँ उपमासे भी कोई कोई बिना पुरा माण्डव्य धर्म समझ जाते हैं—

“पूर्वकामसे मन्ते ! किसी जीवसे—महस्वक ब्राह्मणकी एक बच-बचस्व ( = बह ) माण्डविक्य ( = तदन ब्राह्मणी ) भार्वा गर्मिणी आसन्न-मसवा हुई । तब मन्ते ! उस माण्डविक्यने ब्राह्मणको कहा—माह्वान ! या बाजारसे एक बानरक्य बचा ( खिलीया ) करीब क्य वह मेरे कुमारक्य खिलीया होगा ।”

‘ऐसा कहनेपर, मन्ते ! उस ब्राह्मणने उस माण्डविक्य को कहा—भबती ( = बह ) ! छहरिने यदि आप कुमार बनेगी तो उपके छिने में बाजारसे मर्कट-शाचक ( खिलीया ) करीब कर क्य हूँगा जो आपके कुमारक्य केक होगा । वृषरी बार धी मन्ते ! उस माण्डविक्यने । तीसरी बारसी । तब मन्ते ! उस माण्डविक्यने अति-अनुक्त म प्रतिबद्ध-विष उस ब्राह्मणने बाजारसे मर्कट-शाचक करीबकर काकर उस माण्डविक्य को कहा—भबती ! बाजारसे यह तुम्हारा मर्कट-शाचक करीबकर क्या हूँ वह तुम्हारे कुमारक्य खिलीया होगा । ऐसा कहनेपर मन्ते ! उस माण्डविक्यने उस ब्राह्मणको कहा—‘माह्वान ! इस मर्कट शाचकको केकर वहाँ बाबो वहाँ रक्त-पाणि रजक-पुत्र ( = गरोबक्य बेट ) है । काकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रको कहो—सौम्य ! रक्तपाणि ! मैं इस मर्कट-शाचकको पीलाबकेपन रंगसे रंगा बाबो और पाकिन्न किना हुआ बाहवा हू । तब मन्ते ! उस माण्डविक्यने अति-अनुरक्त = प्रतिबद्ध-विष वह ब्राह्मण उस मर्कट शाचकको केकर वहाँ रक्त-पाणि रजक-पुत्र वा वहाँ गया काकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रसे कहा—साम्य ! रक्तपाणि ! इस । ऐसा कहनेपर रक्त-पाणि रजक-पुत्रने उस ब्राह्मणको कहा—‘मन्ते ! वह तुम्हारा मर्कट शाचक व रंगसे बोम्य है म मन्ते बोम्य है व मन्ते बोम्य है । इसी प्रकार मन्ते ! बाक ( मञ्ज ) मिगंठोका बाह ( सिद्धान्त ) बाबो ( = बह ) की रजक करने काचक है पंक्तिको वहाँ । ( वह ) व परीक्षा ( = अनुयोग ) के बोम्य है व मीमांसके बोम्य है । तब मन्ते ! वह ब्राह्मण दूसरे समय बया तुस्तेक्य बोबा के, वहाँ रक्त-पाणि रजकपुत्र वा वहाँ गया । काकर रक्त-पाणि रजक-पुत्रको कहा—‘सौम्य ! रक्त-पाणि ! तुस्तेका बोबा पीलाबकेपन ( = पीके ) रंगसे रंगा मका बोबो भीरसे मीमा ( = पाकिन्न किना ) हुआ बाहवा हू ।’ ऐसा कहनेपर मन्ते ! रक्त-पाणि रजक-पुत्रने उस ब्राह्मणको कहा—‘मन्ते ! वह तुम्हारा तुस्सा-बोबा रंगसे बोम्य मी है मकने बोम्य मी है, मीमांसे बोम्य मी है । इसी तरह मन्ते ! उस मयवान् वहाँव सम्बक संबुद्धक्य बाह, पंक्तिको रजक करने बोम्य है बाबो ( = बह ) को वहाँ । ( वह ) परीक्षा और मीमांसके बोम्य है ।”

“गृहपति ! राज्ञ-सहित सारी परिषद् जानती है कि उपासि गृह-पति मिगंठ मात-पुत्रक्य काचक है । ( वह ) गृहपति ! तुसे किसक्य काचक समझें ?

ऐसा कहने पर उपासि गृहपति आसन्नसे उठकर उचरारसंग ( = बह ) को ( यदि कन्नेको मीमाकर ) एक कंधेपर कर त्रिपर धगवान् ने उचर हाथ जोड़ निर्गठ मातपुत्रसे बाक्य— ‘मन्ते ! तुबो मैं किसका काचक हूँ ?’

धीर विगत-मोह अंधित-कीक विजित-विजय

विदुःसक सम-चित्त बुद्ध-सीक सुन्दर प्रज्ञ,  
 विश्वके तारक, वि-सक उस भगवान्का मैं आचक हूँ ॥१॥  
 अक्षय-कथ, सतुष्ट, लोक-भोगको वसन करवेपाके सुदित,  
 अमज-बुधै-अनुद बंतिम-सारीर-नर  
 अनुपम वि-रव उस भगवान्का मैं आचक हूँ ॥२॥  
 संक्षय-रहित कुशल विप्र-बुद्ध-भगवेषाके ओष्ठ-सारणी,  
 अनुत्तर (= सर्वोत्तम), स्वधिर-अर्म-वान्, निराकांछी प्रमाकर  
 मान-कैवक बीर, उस भगवान्का मैं आचक हूँ ॥३॥  
 उत्तम (= मिसिम) अ-प्रमेव गम्भीर, मुनित्व प्राप्त  
 होमकर, ज्ञानी धर्मात्म-वान् संवत-अरमा  
 संग-रहित मुक्त उस भगवान्का मैं आचक हूँ ॥४॥  
 भाग एकान्त-आसन-वान् संपोन्नव (= वन्दन)-रहित मुक्त,  
 प्रति-संनक (= वाद-वृत्त) बांठ प्राप्त-व्यक्त भीत-राग  
 दाम्भ निप्यर्पण उस भगवान्का मैं आचक हूँ ॥५॥  
 अवि-सत्तम, अ-पावही वि-विद्या-युक्त, अष्ट (= निर्वाण)-मास,  
 छातक पदक (= अवि) प्रधर्य विदित वैद  
 पुरन्दर, अक उस भगवान्का मैं आचक हूँ ॥६॥  
 अर्थ भाषितारमा प्राप्त-व्य-मास वपाकरव  
 स्मृतिमान्, विपद्ही अन्-अमिमाही अन्-अववत  
 अ-चल जाती, अस्त भगवान्का मैं आचक हूँ ॥७॥  
 सम्पद्-गत स्वामी अ-कर-चित्त (= अन्-अनुवत-अस्वर) बुद्ध ।  
 अ-सित (= अ-कृष्ण) अ-महीन प्रविशैक-प्राप्त, अग्र-मास  
 तीर्थ तारक उस भगवान्का मैं आचक हूँ ॥८॥  
 धात मूर्ति (= बहू)-यज्ञ, महा प्रज्ञ विगत क्रोम,  
 तभागत सुगत अ-मति-युद्गल (= अ-मुक्तनीय) = अ-सम  
 विस्तारव, विदुष उस भगवान्का मैं आचक हूँ ॥९॥  
 सुप्प-रहित, तुद अ-म-रहित अन् उपलित  
 पूजनीय बद्ध उत्तम-युद्गल अ-मुक्त  
 महान् उत्तम-व्यक्त-प्राप्त उक्त भगवान्का मैं आचक हूँ ॥१०॥  
 "शूद्रपति । अमज-गीतमके (दे) शुभ तुसे कवसे धूमै ?"

"अन्ते । जैसे बाबा पुष्पोंकी एक महान् पुष्प-राशि (ले) एक चतुर माछी या  
 माछीका अन्तेवासी (= शिष्य) विचित्र माछा गर्जे ; उसी प्रकार अन्ते । यह भगवान् अनेक  
 अर्थ (= अर्थ) पाके, अनेक-राज-वर्ष रास हैं । अन्ते ! प्रवर्तकीपकी प्रधमा काय न करेगा ?"

निर्गठ मात-युक्तै भगवान्के सत्कारको न सहनकर वही मुँहसे गर्भ कोट्टेकेंक दिवा ।





बचन काय मान्यते भवने हावरी तूट किवा पूर्व किया । तब अमर राजकुमार भगवान्‌के मोक्षकर पात्रसे हाथ दृष्ट कियेपर एक बीजा अमरन के एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुए अमर राजकुमारने भगवान्‌को कहा—

“क्या मन्ते ! तबागत ऐसा बचन बोक सकते हैं जो दूसरेको अ-प्रिय = अ-मनाप हो ।

‘राजकुमार ! वह एकांशसे (=सर्वथा=बिना अपवादके) नहीं कहा जा सकता) ।

“मन्ते ! काय होगये विगठ ।”

“राजकुमार ! क्या तू ऐसे बोक रहा है—‘मन्ते ! काय हो गये विगठ’ ।”

“मन्ते ! मैं जहाँ विगठ बात पुच हैं वहाँ गया था । आकर विगठ बात पुचको अग्निबादकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे मुझे विगठ बात-पुचने कहा— अ राजकुमार ! । इसी प्रकार राजकुमार ! तुम्हारा प्रश्न पूछनेपर अमर यौतम व उरक सकेया, न विगठ सकेया’ ।

उस समय अमर राजकुमारकी गोदमें एक छोटा मन्त्र, उताम सोने कावक (=बहुत ही छोटा) बन्धा बैठा था । तब भगवान्‌ने अमर राजकुमारको कहा—

“तो क्या मानता है राजकुमार ! क्या तैरे या दाईके प्रमाद (= गणकत)से यदि वह कुमार मुझने कठ या उरक शक के तो तू इसके क्या करेया ?”

‘निकाक लूँगा मन्ते ! यदि मन्ते मैं पहिले ही व निकाक सका तो तारे हावसे सीध पकड़कर, दाहिने हावसे बाँगुली देहीकर, स्व-सहित भी निकाक लूँगा ।’

‘तो किस किये ?’

‘मन्ते ! मुझे कुमार (=बच्चे) पर दया है ।’

“ऐसे ही, राजकुमार ! तबागत जिस बचनको अमृत = अ-तप्य, अन्-अर्ध-मुक्त (= अर्ध) जानते हैं और वह दूसरोंको अ-प्रिय अ-मनाप है उस बचनको तबागत नहीं बोलते । तबागत जिस बचनको मृत = तप्य अर्धक जानते हैं और वह दूसरोंको अ-प्रिय = अ-मनाप है, उस बचनको तबागत नहीं बोलते । तबागत जिस बचनको मृत=तप्य सार्धक जानते हैं । ककश तबागत उस बचनको बोलते हैं । तबागत जिस बचनको अमृत = अतप्य तथा अर्धक जानते हैं, और वह दूसरोंको प्रिय और मनाप है उस बचनको भी तबागत नहीं बोलते । जिस बचनको तबागत मृत=तप्य (=तप्य) =सार्धक जानते हैं और वह यदि दूसरोंको प्रिय=मनाप होती है ककश तबागत उस बचनको बोलते हैं । जो कियकिये ? राजकुमार ! तबागतको प्राक्निओपर दया है ।”

“मन्ते ! जो यह अक्षिण-पक्षित, आक्षय-वक्षित गृहवति-वक्षित अमर-वक्षित प्रथम पैयारकर तबागतके पास आकर पड़ते हैं । मन्ते ! क्या भगवान् पहिलेहीसे बिलमें सोच रहते हैं—‘जो मुझे देना आकर पहुँगे उनक देना पड़नपर मैं देना उचर दूँगा ?’

‘तो राजकुमार ! तुसे ही वहाँ पड़ता हूँ कस तुसे बाँचे बैस दूँका उचर दना । तो राजकुमार ! क्या तू रकके अन्-वर्त्यग मैं बनुर है ?’

‘हां मन्ते ! मैं इसके अन्-वर्त्यग मैं बनुर हूँ ।’

'तो राजकुमार ! जो तेरे पास आकर बह पड़े—'बह रक्का कौनसा अंग-प्रत्यङ्ग है ?' तो क्या तू पहिलेहीसे यह सोचे रहता है—जो मुझ आकर ऐसा पड़ेगा उनके ऐसा पड़नेपर, मैं ऐसा उत्तर दूँगा । जयवा मुझ म ही पर बह तुझे भासित होता है ?'

"भन्ते ! मैं रक्षिक हूँ रथके अंग प्रत्यङ्गक मैं प्रसिद्ध ( जानकार ) पत्नर हूँ । रथके सभी अंग प्रत्यङ्ग तुझे सुबिहित हैं । ( अन्तः ) उसी क्षण (= स्वानन्ता ) तुझे यह भासित होगा

'ऐसे ही राजकुमार ! जो बह क्षत्रिय पंडित अमज पंडित प्रहलत्प्यारकर तथागतके पास आकर पड़त हैं । उसी क्षण वह तथागतको भासित होता है । तो किस हेतु ? राजकुमार ! तथागतकी बर्मबानु (=मन्त्रका विपक्ष) बध्नी तरह छत्र गई है; उस बर्म घातुके बन्धी तरह सभी होकेसे उसी क्षण ( वह ) तथागतको भासित होता है ।'

ऐसा कहनेपर अमज राजकुमारने मगवान्को कहा—

'आश्चर्य ! भन्ते ॥ अज्ञुत ! भन्ते ॥ आश्चर्ये मगवान् मुझे अजकि-बह सरकागत उपासक धारण करें ।

x

x

x

x

( ४ )

सामञ्जसल-मुच ( ई पू ४८७ ) ।

'ऐसा मैंने सुना—एक समय मगवान् 'राजगृहमें 'जीविक कौमार-शुत्यके आज बर्मने साढ़े बारहसौ मिथुनोंके महामिथु-स बन्के साथ बिहार करते थे ।

उस समय पंचदशीके उपोसथके दिव चातुर्मासकी श्रीमुषी (=चंद्रप्रकटा) स पूर्व पूर्वमाकी रातको राजा मागध 'अजातशत्रु पैदहीपुत्र राजामालीसे पिरा उत्तम प्रसन्न के ऊपर बैठा हुआ था । तब राजा अजातशत्रु व उस दिव उपोसथ (=पूर्वमा) को उदात्त कहा—

अहो ! कैसी रमणीय चांदनी रात है ! कैसी अचिर्य ( =सुन्दर ) चांदनी रात है ॥ कैसी दुर्भणीय चांदनी रात है ॥ कैसी प्रासादिक चांदनी रात है ॥ कैसी अक्षणीय चांदनी रात है ॥ किस अमज या प्राज्ञलक्षी उपासना कर जो हमसे परि उपासित हा हमारे बिलको

१ ही नि. १: १: १: १: १ अ क "बह बुद्धके समय आर अजबर्तीके समय बवार हाता है बाकी समय शुन्य मूर्खोंके बैरा हो जाता है ।" २ अ क "— जीविकने एक समय मगवान्को विरोध के बिबिक पुत्रासेको बंकर बरा (-दाब) के अनुमीदनके अन्तमें सौत आपत्तिपत्र में प्रतिद्वित हो सोचा—'तुझे दिनमें हो तीन बार बुद्ध-सिधामें जाया पड़ता है । वह बेनुजब जतिनूर है, मरा आज्ञाबन समीपतर है कन्ते न मैं पहों मगवान्क छिबे बिहार बबबाई । ( तब ) वह उस आज्ञाबनमें राधि रथाब दिन-रथाब सबब कुटी, मंडप आदि तैयार करा मगवान्के अनुकूल्य धंज-कुटी बबबा, आज्ञाबनको अडारह हाब र्दंभी तबिके पड़ेके रंशक प्राकरसे पिपाकर चौबर-ओजल दानके साथ बुद्धप्रमुख मिथु-स बके उदरेवसे दाब अक ठोड़ बिहार अर्पित किया ।

प्रसन्न करे ।" किसीने कहा—पूरे काश्यप मकखली गोसान, 'अशित केस कम्बली', पकृष कलबायन, निर्गठ मातपुत्र संजय घेळदुपुत्र ।

जीवक कीमार-भृत्यने (कहा) —

"देव ! भगवान् अर्हत सम्यक्-संयुक्त हमारे जाग्रतवर्गमें विहार करते हैं । उन भगवान् गौतमका ऐसा कवचत्वमीति सत्य कैय हुआ है । देव उस भगवान् की परि उपासना करें ।"

१ अ क. "इस (अज्ञातसत्रु)के पैरमें होते देवीको जोहर उत्पन्न हुआ ।" राजाने देवीको बुझकर सुबहकी छुरीसे (अपनी) बाँह बिरवा सुबर्णके ल्वालेमें जोहूँक पाषीमें मिफाकर दिया दिया । उद्योतिपिबोभे सुनकर कहा—'यह गर्भ राजाका सत्रु होया इससे राजा मारा जायगा । देवीने सुनकर गर्भ गिरानेके छिन्ने कागमें जाकर पैर में उबाया गर्भ न गिरा । । जन्मके समय भी रङ्गक मनुष्य बाककछे हटा के गये । तब बूरे समय होदिपार होनेपर देवीको विक्रमवा । उसको पुत्र-स्वैद उत्पन्न हुआ; इनसे यह मार न सकी । राजाने भी जन्मसा उसे पुत्रराज-यद दिया । राज्य दे दिया । उसने देयदुत्तको कहा । तब उसने उसे कहा—

—'योके ही दिवोंमें राजा तुम्हारे किये अपराधको सोच स्वर्ण राजा बनेगा । । पुत्रकेसे मरवा जाओ ।" 'किन्तु मन्ते ! मेरा पिता है न ? सत्य-व्यय नहीं । 'मूखा एकर मार हो ।" उसने पिताको तापन-नोहमें डफवा दिया । तापनगोह कहते हैं (कोह) कम करकेके किये (गने) पूसबरको । और कह दिया—'मेरी माताको जोकर बूरेको मठ देखने देवा । देवी सुबहके कटोरे ( =सरक ) में भोजन रख अरसंगमें ( छिपा ) प्रवेश करती थी । राजा उसे जाकर निर्बाह करता था । उसने यह हाक सुन—'मेरी माताको उत्सव ( =भोजन ) बर्षके मठ जाने दो । तब जूरेमें जाकर तब सुबर्ण पातुकामें । तब देवी गधोत्रकेसे स्नान किये शरीरपर चार मपुर (रस) मझकर कपडा पहिन कर जाने कभी । राजा उसके शरीरको जाकर निर्बाह करता था । 'जबसे मेरी माताका जावा राक हो । देवी दर्वाजेके पास खड़ी हां कर पोखी—'स्वामि विवसार ! कवचवर्गमें मुझे इसे मारने नहीं दिया अपने सत्रुको अपने ही पाष्य । यह भव अन्तिम दर्शन है । इसके बाद भव न तुम्हें देखने पाईगी । यदि मेरा (कोई) दोष हो तो क्षमा करवा' (और) रोती-कॉन्ती कौर गई ।

उसके पाहसे राजाको आहार नहीं मिला । राजा (धोतधायति)-मागकल ( की मायवा ) के सुखसे टूटते हुए निर्बाह करता था । । 'मेरे पिताके पैरोंको मुरेसे पकड़कर नून ठेकसे छेपकर कीरके भंगारमें बिटबिटाते हुए पकड़ो—( कह ) मापितको भेजा । "पका दिया 'राजा मर गया । उसीदिन राजा (अज्ञातसत्रु) को पुत्र उत्पन्न हुआ । पुत्रके जन्म और पिताके मरणके दो क्षण एक साथ ही विवेक करनेके किये जाये । जमा लाने पहिके पुत्र-जन्मके देखको ही राजाके हाथमें रक्खा । उसी क्षण पुत्र स्वैद राजाको उत्पन्न हो सकक शरीरको व्यासकर, अस्त्रि-मजा तक प्याय गया । उस समय पिताके गुजड़े क्षण—'मेरे पैरा होनेपर भी मेरे पिताको ऐसा ही स्वेद उत्पन्न हुआ होगा । 'जाओ मन्ते ! मेरे पिताको मुक्त करो मुक्त करो' बोझ । 'किमको मुक्त कराते हो वच ! (कहकर) बूरा देख हाथमें रख दिया । यह उस समाचारको सुनकर रोते हुए माताके पास जाकर

‘तो जीवक ! इति-काच ( अदाही-समुदाय ) तैयार कराओ !’

अप्य वेव !’

तब राजा अजातशत्रु पाँच-सी दबिबिबोंपर एक एक धी ज्वाकर, अरोहणीय नागपर ( स्वर्ष ) चक्कर चकते मयाकोंकी ( रोघनीमें ) बड़े राजसी तरहसे राजगृहसे निकक, वहाँ जीवक कीमारमुत्पका आग्रधन था वहाँको चक्य । राजा को मय हुक्य स्तप्यता हुई, कीमहर्ष हुआ । तब राजा ने मीत उद्दिम्य रोमांभित हो, जीवक को कहा—

‘सौम्य जीवक ! कहीं मुझसे बचवा तो नहीं करते हो ? सौम्य जीवक ! कहीं मुझे थोकर ( अयर्कमन ) तो नहीं वे रहे हो ? सौम्य जीवक ! कहीं मुना सजुओंकी तो नहीं वे रहे हो ? कैसे साने बारह सी मिश्रुओंका न खांसनेका कल्प होया न पूकनेका सम्प होया न विषोंप ही होगा ?’

‘महाराज ! उरो मत्त महाराज ! उरो मत्त । वेव ! तुम्हें बचवा नहीं करता हूँ । महाराज ! क्यो महाराज ! क्यो वह मंडक-माक ( मंडप )में हीपक जक रहे हैं ।’

तब राजा जितना नागका रास्ता था नागसे जाकर नागसे उतर, पीक ही ज्यों मंडक माकका द्वार था वहाँ गया । जाकर जीवक को पूछ्य—

‘सौम्य जीवक ! मयावान् कहां हैं ?’

महाराज ! मयावान् वह हैं, महाराज ! मयावान् वह हैं मिश्रुसंबको सामने कजे विचके कम्मके सहारे पूर्वांमिमुक बैठे हैं’

तब राजा कहां मयावान् ने वहाँ गया । जाकर एक ओर कड़ा हुआ । एक ओर कजे राज्य ने स्वर्ष सरोवर समान मीत हुवे मिश्रुसंपको देखकर उदाग कहा—

बोला— अम्मा ! पिताका मेरे ऊपर स्नेह का ? उसने कहा— वाक ( = अज्य ) पुत्र ! क्या कहल्य है ? बचपवर्मे तेरी बंगुकीमें कोड़ा हुआ । तब रोते रोते तुझे व समझ्य सकनेके कारण कच-हरी ( = विनिश्चय-शाखा ) में बँडे तेरे पिताके पास के गये । पिताने तेरी बंगुकी मु ह्म रक्की । थोडा मुकमें ही फूट गया । तब तेरे स्नेहसे बस लून मिथी पीकको न पूककर बोंट गये । इस प्रकारका तेरे पिताका स्नेह था । उसने रो-कईकर पिताकी धरीर किया की ।—

वेव-पर्वे सारिपुत्र मौद्गल्यायनक परिचद् केकर कजे बाबेपर मुँहसे धर्म पूव केंक कच-मास बीमार पड़ा रहकर निच ही ( पूछ्य )— ‘जाचकक कास्ता कहां हैं ?’ ‘जेत बनमें’ कहनेपर ‘मुझे काउपर के चक्कर धास्ताका दर्शन कराओ’ कहकर के कजे बाते हुये दर्शनके अयोग्य क्रम करकेसे जेतवन पुष्करिणीके धर्मीप ही कयी पूरबीमें धँसकर कर्ममें का स्थित हुआ । । वह ( अजातशत्रु ) कोसक-राजाकी पुत्रीका पुत्र था विदेह राजाकी ( का ) बर्ही । वैदेही पंडिताको कहते हैं जैसे वैदेहिका पृथ्वी ‘आर्ष भावन् वैदेह मुनि’ । वेद=ज्ञान उससे ईहन ( = प्रपल ) धगता है=वैदेही ।

१ अ क “राजगृहमें बचीस बड़े द्वार, और चौंसठ छोटे द्वार ( ने ) । जीवकका आग्रधन प्रकार और पृथ्वीके बचीसमें था । वह पूर्व-द्वारसे निकककर, पर्वत-धाममें स्थित हुआ । वहाँ पर्वत कूटसे चंद्र क्षिय गया था ।’

“मेरा ( पुत्र ) उदायिमित्र इस उपधम ( =सांति )में पुत्र हो । मेरा उदायिमित्र इस उपधमसे पुत्र हो; मित्र ( उपधम )में पुत्र इस समय मित्र-संध है।”

“महाराज ! तूने मेमके अनुसार पाया ?

“भग्ने ! मुझे उदायिमित्र कुमार मिय है । भग्ने ! मेरा उदायिमित्र कुमार इस प्रातिसे पुत्र हो मित्र उपधमसे पुत्र कि इस समय मित्र-संध है”

तब राजा भगवान्को अभिवादनकर मित्रसंधको हाथ जोड़ एक ओर बैठ गया ।

भगवान्को यह बोध—

“भ से ! यदि भगवान् प्रश्नोत्तर करनेकी ( =प्रश्न पूछनेकी ) आज्ञा हैं तो भगवान्को कुछ पूछ ?

“तूको महाराज ! जो चाहते हो ।”

“जैसे भग्ने ! यह मित्र मित्र शिष्य-स्याव ( =शिष्या कथा ) है, जैसे कि इति बारोहन ( =वर्षाकी सवारी ) अथवारोहन रथिक धनुर्मांड केक ( =धनुष्यज-धारण ) बक ( = धनुष-रथ ) पिंडवायिक ( =विद्य कानेवाके ), उग्र राजपुत्र ( =वीर राजपुत्र ) महाबाग ( = हाथीसे युद्ध करनेवाके ) धूर चर्म ( =दाक )-बोधी, दासपुत्र अथकारिक ( =आकर्ष ) कल्पक ( = इत्यम ) महापक ( =महाकानेवाके ) सूद ( =पाचक ), माकमकार रथक वेसकार ( = रंगरेज ) बककार, कु मकार गणक मुद्रिक ( = हाथसे गिबनेवाके ) और जो दूसरे भी इस प्रकारके मित्र मित्र शिष्य हैं ( योग ) इसी शरीरमें प्रत्यक्ष ( हथके ) शिष्यकर्मन कीविका करते हैं उससे अपनेको मुखी करते हैं त्त करते हैं । पुत्र स्त्रीको मुखी करते हैं त्त करते हैं । मित्र अमात्सों को । ऊपर डेवानेबाका स्वर्गको डेवानेबाका सुख-विपाकवाका स्वर्ग-मार्गीय अमन्-प्राप्तकोकेविसे धान, स्थापित करते हैं । क्या भग्ने ! इसी प्रकार आमन्व ( = मित्रपत्रका )-कर्मही इसी अमन्में प्रत्यक्ष बतयवाका वा सकता है ?”

“महाराज ! इस प्रश्नको तूने अमन् प्राकनको भी पूछ ( उत्तर ) जाना है ?”

“भग्ने ! जाना है ।”

“परि तूमें भारी न हो तो क्यो महाराज ! कैसे उन्होंने उत्तर दिया था ?”

“भग्ने ! मुझे भारी नहीं है जहां कि भगवान् या भगवान्के अमान कोई बड़ा हो ।”

“तो महाराज ! क्यो ।”

“यक बार मैं भग्ने ! जहां पूर्ण काश्यप ने कहा गया । बाकर पूर्ण काश्यपके साथ मेने संसोद्व किवा एक ओर बैठकर बह चन्द्र—“हे काश्यप ! यह मित्र मित्र शिष्य-रथान है । मेसा चन्द्रनेपर भग्ने ! पूर्ण काश्यपने ! मुझे कहा—“महाराज ! करते करते

१ अ क ‘पुत्र से आर्षिका करके उसके किये उपधम चाहता हुआ ऐसा बाका ।... । (अंतमें) उसके पुत्रने मारा ही । इस बंसमें पित्रुबध पांच पीढ़ी तक गया । अजातशत्रुने बिब धारको मारा । उदयने अजातशत्रुको उसके पुत्र महामुंडने उदयको अनुश्रुने मारा मुंडको । उसक पुत्र मागदासने अनुश्रुको । मागदासको ‘बद बंधा छेदक राजा है इनम क्या ( सोच ) इविध हो राष्ट्रवासिनोंमे मार बाका ।”

छेदन करते, छेदन कराते, पकालते पकवाते शोक करते परेक्षान होते परेक्षानकरते, चकते, चकालते, प्राण मारते, अवृत्त प्रवृत्त करते, सँच काटते गॉँच काटते, चोरी करते चटमारी करते परकीरमम करते छूट बोकते भी पाप नहीं किया जाता । शान, दम सबमसं, सत्य बोकबैमे व पुण्य है व पुण्यव्य जागम है । इस प्रकार भन्ते । पूर्व मे मेरे सांख्यिक (= प्रत्यक्ष) आत्मन्-कण्ड पुण्येपर अक्रिया बर्चस किया । जैसे कि भन्ते । पुठे आम उदार वे कच्छक, पुठे कच्छक अभाव वे आम; ऐसेही भन्ते । पूर्व काश्यपवे मेरे सांख्यिक आत्मन्-कण्ड पुण्येपर अक्रिया (= अक्रिय-वाच ) उचर दिया ।

‘एक बार भन्ते ! मैं बहो मप्यकृति गोसाळ थे बहो गया—०। मेरे ऐसा क्यवे पर मुझे कहा—‘महाराज ! प्राणिबोके कठेस ( भोगे वादि मळ ) के किये ( कोई ) होत नहीं प्रत्यक्ष नहीं । बिना हेतु बिना प्रत्यक्ष ही प्राणी कठेस पाते है । प्राणिबोके ( पाप्ते ) छुदिये कोई हेतु = प्रत्यक्ष नहीं है, बिना प्रत्यक्ष ही प्राणी बिछुद होते है । व अत्यन्त (= अपवा किया पाप पुण्य कर्म ) है व पर-कार है, व पुण्यकार (= नीक ) है, व क है व बीर्य (= पत्न्य ) है व पुण्य-शाम (= पराक्रम ) है व पुण्य-पराक्रम है । समी सत्य = समी प्राण-समी भूत-समी व ( स्र )-पस है वक-बीर्य-रहित है । विपदि (= यकरीर ) स भिमित अकस्वामे परिणत हो, छ ही अमिजातिबोसं मुक दुःख अनुभव करते है । यह चारह सौ हजार प्रमुच योमिर्बो है ( बूसरी ) साठ सौ ( बूसरी ) छ सौ । पाँच सौ कर्म है ( बूसरे ) पाँच कर्म तीर कर्म एक कर्म बीर थावा कर्म । वरुम प्रतिपद्, वासठ अन्तर्कष्य छ अमिजातिपौ वाड पुण्य-भूमिर्बो व वास सौ अष्टौक व वास सौ परिमात्रक व वास सौ आयावास बीस सौ इन्द्रिय तीससौ विरप (= लर्क ), छपीस राजोवात, साठ सँही गर्म साठ अर्सही गर्म साठ बिगंठी गर्म, साठ देव साठ मजुण्य साठ पिस्ताच साठ शर पमुद (= घाँट ) साठ सौ पमुद, साठ प्रपाव, साठ सौ प्रपाव साठ स्वप्न साठ सौ स्वप्न । बाळ भी पंडित भी चौरासी हजार महाकल्प ( इबमें ) भरमकर-आचारगमनमें पढ़कर, दुःखका जन्त करेगे । इस प्रकार संसार छुदि अभाव दिया । ।

“ अजिन कोशकाम्बळीने मुझे यह कहा - ‘महाराज ! इष्ट (= पत्र किया ) कुछ नहीं है इष्ट कुछ नहीं है । उच्छेदवाच अभाव दिया । ।

पकुप कक्षापम । कल्पमे भन्त अभाव दिया । ।

मिगंठ मातपुत । कानुर्वाम-संहर अभाव दिया । ।

० संशय बेछड्दिपुत ० । ( अमर ) विशेष अभाव दिया । ।

“तो भन्ते ! मैं भयवाण्णे भी बुझता हूँ जैसे कि भन्ते ! यह मित्र मित्र किया है ।

“तो क्या मानते हो महाराज ! यहाँ ( एक ) पुण्य तुम्हारा दास कमकर (= नीकर), पूर्व कठनेकाका पीठे कोबैवाक्य ‘कवा-काम’-मुवानेवाका, मित्र-वारी मित्र-वारी सुख-अन्त-कोकक है । उसको ऐसा हो—

“आश्रय है भी ! अस्मृत है भी ! पुण्योंकी गति = पुण्योंका विपाक । यह राजा अज्ञात-सत्य मनुष्य है मैं भी मनुष्य हूँ । यह राजा पाँच कामगुणोंसे ससुक्त मानों देवताकी तरह विचरता है; लेकिन मैं इसका दास हूँ । सो मैं पुण्य करूँ । क्यों व मैं केस इमसु मुँबाकर प्रव्रजित होजाऊँ । वह उस प्रकार प्रव्रजित हो कदासं संसृत ( = अमुरक्षित ) हो बिहरे, बचनसे मानसे । आश्रय-शोकसे मात्रसे संसृत हो, प्रविष्टक ( = पृकृत )में रत हो । यदि तुम्हारे पुरुष तुम्हें ऐसा कर्म—‘बिच ! जानते हो जो पुरुष तुम्हारा दास का वह प्रव्रजित हो प्रविष्टकमें रत है । क्या तुम कहोगे—‘आश्रय वह पुरुष फिर मेरा दास हीचे ?”

“नहीं मन्ते ! बरिष्ठ वसे हम अमिवाद्यम करेंगे प्रत्युत्थान करेंगे ।

“तो क्या मानते हो महाराज ! बरिष्ट ऐसा हो तो यह सांघटिक आमण्य कर्म होता है या नहीं ?”

“अवश्य मन्ते ! ऐसा हो तो सांघटिक ।”

“महाराज ! यह हसी जन्ममें प्रथम प्रत्यक्ष आमण्य-कर्म है ।”

“क्या मन्ते ! जन्म भी हसी जन्ममें प्रत्यक्ष आमण्य कर्म कह जा सकते हैं ?”

“( कहे का ) मन्ते हैं महाराज ! तो महाराज ! तुम्हें ही यहाँ पृथ्वा हूँ, जसा तुम्हें पसन्द हो इसका कदाच हो । तो महाराज ! यहाँ तुम्हारा एक पुरुष रूपक-पृथ्वीपतिक कर्म-कारक राशिबर्द्धक हो । उसको ऐसा हो—‘पुण्योंकी गति पुण्योंका विपाक आश्रय है भी ! अस्मृत है भी ! । क्या तुम कहोगे—‘आश्रय वह पुरुष फिर मेरा कृपक हो ?”

“नहीं मन्ते ! । । ।

‘महाराज ! वह दूसरा प्रत्यक्ष आमण्य-कर्म है ।

अन्व भी ?”

‘महाराज ! कोकमें तयागत अर्धव बल्पक होत है । धर्म उपदेश करते हैं । (कोई) सुनकर प्रव्रजित होता है । सिद्धापदोंमें सीलता है । । परिमुक्त आशीविष्णुवासा ( परिमुक्ताशीव ) शील-संपन्न इन्द्रियोंमें सुसह्यार भोजनमें मात्रा जाननेवाला, संप्रव्रज्यसे पुक्त, संसृत ( हो ) । महाराज ! मित्र कैसे शील-संपन्न होता है ? यहाँ महाराज ! प्राण्य विपाक ( मान-हिंसा ) धर्म प्राण्यविपाकसे विरत होता है निहित ( = बचक )-बुद्ध निहित सख लक्ष्मी इपाहु सर्व प्राणि-भूत-अनुकंपक हो बिहरता है वह भी उसके शीलमें है । अदकालक छेद अदकालक ( = अदोरी ) अ विरत होता है दत्त आदायी दत्त-प्रतिकर्षी होता है । तब इस सुद-भूत आत्मासे विहार करता है, यह भी उसके शीलमें है । अज्ञानपर्यकी छोड़कर मद्राचारी होता है पृकृत चारी मीपुल-आमण्यधर्मसे विरत यह भी । सूचावाद्को छेद सूचावाद्-विरत होता है सत्यवादी-अत्यसंब पेता ( = अज्ञाता वातपर इदरनेवाका ) कोकका प्रत्यक्ष ( = विष्णुसपात्र ) = अविष्णुवाद्क ( होता है ) । यह भी । विष्णुधर्मक



(=पुगडी)को छेद विद्युत्-वलयस विरत । वह भी । परप बचनको छेद० । संवत्सर छेद संवत्सरसे विरत होता है काक-बाही भूत-बाही जर्ज-बाही चर्म-बाही दिवक-बाही (होता है) । काकसे सप्तयोद्धन=पर्वन्तवती जर्जसहित=विषयान्ताही बाहीका बोधनेकाय होता है । यह भी । बीज-ग्राम मूत ग्रामके बाध (हत्या)से विरत होता है । एकद्वारी (= एकमण्डिक) रातको (भोजनसे) विरत विषयक भोजनसे विरत होता है मूल्य गीत, काय विसूकदस्तनसे विरत होता है । माया गंध विद्येयन से चारण संवत्स विमूयन से विरत होता है । उच्यतेसपन महाशयनस विरत होता है । सोना चोरीके स्वीकारसे विरत होता है । कथा भक्त (बाल्य) ग्रहण करनेसे विरत होता है । की-कुमारिकाके । कसी-हासके ग्रहणसे । मेघ-वक्रीके ग्रहणसे । गुर्गा-सुन्दरके । हाथी-गाय घोडा घोड़ीके । केत मकान (=वस्तु)के । इतके कामसे । कन-विद्युत्स । गुणकूट (=काठी लौक), कंस-कूट (= लोठी), प्रमान-कूट (= लोठी नाप) से । ककोरक (=रिचत) बंधना निष्कृति (=इच्छाश्रय), साधि-बोधसे । उद्यम बध बन्धन लुट आच्छेप (=छाप) सहस्रकार (सूत्रादि) से यहभी ।

‘असे कि कोई कोई अमन ब्राह्मण अज्ञासे दिसे भोजनको खाकर, वह इसप्रकारसे बीज-ग्राम मूत ग्रामके विनाशमें अगे विहरते हैं असे कि—मूक-बीज रक्ष-बीज (=छाकी बिसकी बीजका काम देती है) कक-बीज अम-बीज और पाँचवां बीज-बीज । यह वा इस प्रकारके बीज-ग्राम=मूतग्रामके विनाशासे विरत होता है । यहभी ।

जैसे कि कोई कोई अमन ब्राह्मण अज्ञासे दिसे भोजनको खाकर वह इस प्रकारके संविधि-कारक भोगोंको भोग करते विहरते हैं जैसे कि कक-सञ्चिधि (=कक कामा करवा) पाव-सञ्चिधि कक सञ्चिधि पाव-सञ्चिधि सचन-सञ्चिधि गच-सञ्चिधि धामिय (=भोग)-सञ्चिधि यह वा इस प्रकारके ।

‘ यह इस प्रकारके विसूक-दस्तन (=सुरे तमाके)में अगे विहरते हैं जैसे कि—मूल्य गीत वाहित (=आका बजावा) प्रेक्ष्य (=नाटक आदि) आकावा (=कवा) पाणि-म्बर (=ताकी बजावा) बैताक । ।

“ । यह इस प्रकारकी तिरजान विषयकोसे मिथ्या-जीविका करनेसे विरत होता है यहभी उसके सीकमें होता है ।

‘ सो महाराज ! यह विद्यु इसप्रकार कीक-संपन्न श्रीधर्मचर-सुच्छो कहीं भी भव नहीं देखता, जैसे कि महाराज ! लज्जु-पराष्ट-किसे मूर्खामिषित (=अमिषित)अज्ञिष, कहींसे भी लज्जुसे भव नहीं देखता । यह इस कार्य सीक-सर्व (उच्यते श्रीक-समूह) से संयुक्त हो अपने नीतर अचरक (=दिमक)-सुच्छको अत्युत्त करता है । इस प्रकार महाराज ! विद्यु कीक-संपन्न होता है ।

‘कैस महाराज ! विद्यु इन्द्रियोंमें गुण-हार होता है ? यहाँ महाराज ! विद्यु, कच्छ (कोक सं रूप देखकर विमिष-भाही=अनुत्त-अव-भाही नहीं होता । यवसे चर्म

मानकर । इस कार्य इन्द्रिय-संवरसे पुष्ट हो अपने भीतर अभिष्ट सुखको अनुभव करता है । इस प्रकार महाराज ! मिथु इन्द्रियोंमें गुप्तज्ञान होता है ।”

‘महाराज ! मिथु कैसे स्थिति-संभ्रमणसे पुष्ट होता है ? महाराज ! मिथु जगते द्रुपे (अभिष्टवृष्टिको उपर लगाने द्रुप) गमन-आगमन करता है । आलोकन-विकोकनमें संभ्रमण (अभावकर) कारी होता है । समेहने, प्रैकामे । सघाटी पात्र नीबरके धारणमें । असब पात्र खाद्यन आस्वाद्यनमें । पापाना पेसाबके कर्ममें । गमन कहे होते बैठते सोते, आगते भापन करते, सुप रहते में । इस प्रकार महाराज ! मिथु स्थिति-संभ्रमणसे पुष्ट होता है ।

महाराज ! मिथु कैसे संतुष्ट होता है ?

“वह इस कार्य शीक-स्वप्नसे पुष्ट इस कार्य इन्द्रिय-संवरसे पुष्ट इस कार्य स्थिति-संभ्रमणसे पुष्ट, और इस कार्य सन्तुष्टिसे पुष्ट हो एकान्त सपनासक (= निवास) लेखन करता है—अरण्यको, वृद्ध-सूक (= वृद्धके नीचे) को, पर्वत-कंदराको गिरि-गुहाको झरझरको बह-मास्तको जप्पन-आस (= सुकी बगह) को पपाकके पुकडे । वह भोजनको परास्य पिंड-पातसे अन्नय हो आन्नय भारकर शरीरको सीपाकर स्थितिको सामने रजकर बैठता है । वह काकमें अभिष्ठा (= जोम को छोड़ अभिष्ठा-रहित चित्तसे विहरता है अभिष्ठासे चित्तको सोपता है । व्यापाद-अद्वेष (= अद्वेष) को छोड़ अरुपापन्न-चित्त हो सर्व प्राणी-मूर्तों में अनुकम्यक हो विहरता है । व्यापाद-अद्वेषसे चित्तको परिशुद्ध करता है । सत्यान-सूद्ध (अनके आकृत) को छोड़ सत्यान-सूद्ध-रहित हो विहरता है । आलोक-संज्ञी स्थितिसंभ्रमण पुष्ट हो सत्यान-सूद्धसे चित्तको परिशुद्ध करता है । शीतल्य कौकल्य छोड़, अद्-अद्दत हो विहरता है अण्णाद्यमें (= अपने भीतर) शांत-चित्त हो आदत्य-कौकल्यसे चित्तको परिशुद्ध करता है । विचिकित्सा (= संशय) को छोड़ विचिकित्सा-रहित हो विहरता है । कुप्रल (= उत्तम) पदोंमें अकर्मकनी (= निर्विकारी) हो विचिकित्सासे चित्तको परिशुद्ध करता है । कैसे महाराज ! पुरुष कर्म छेकर छेटी (= अर्मास्य) में लगाने उसकी वह छेटी अण्ठी (= सपुद्ध) उतरे । जो पुराने जल है वह उम्हें भी दे बाके और उसको ऊपरसे बच्चोंके पोसनेकेछिपे भी बाकी बच रहे । उसको ऐसा हो—‘मैंने पहिले जल छेकर छेटीमें कण्पा मेरी वह छेटी अण्ठी छतरी । जो पुराने जल ने मैंने उम्हें भी दे बाका और मेरे पास उसके ऊपर बच्चोंको पोसनेकेछिपे बाकी बचा है । वह इसके कारण प्रसन्नता (= आमोघ) पावे सुसी (= सौमनस्य) पावे । महाराज ! कैसे पुरुष आवापिक-बुद्धिसित = बहुत बीमार हो उसकी भोजन अण्ण न छोड़ और उसके शरीरमें बल-मात्रा न हो । वह दूसरे समय उस बीमारीसे मुक्त होवे उसके भोजन (= मक) अण्णा लगे । उसके शरीरमें बल-मात्रा भी होवे । उसको ऐसा हो—‘मैं पहिले आवापिक या शरीरमें बल-मात्रा थी व थी । तो मैं उस बीमारीसे मुक्त हूँ, मुझे भोजन भी अण्ण लगाता है मेरे शरीरमें बल मात्रा भी है । वह इसके कारण आमोघ पावे=सौमनस्य पावे । महाराज ! जैसे पुरुष अण्णवागार (= जैक) में बैठा हो वह दूसरे समय स्वस्थ (= मडक) -पूर्वक बिना हाजिके—उस अण्णवने मुक्त हो, और उसके अण्णोंकी कुट भी हाजि न हा । उसको ऐसा हो—‘मैं पहिले जैकमें ।

सीमबद्ध पावे । जैसे महाराज ! पुरुष दास हो पराधीन न इच्छन्-नामी । वह दूसरे समय बस दासत्वसे मुक्त, स्वाधीन न पराधीन=मुक्तिस्त हो अर्हो तर्हो इच्छन्-नामी (=अममम) हो । महाराज ! बस धन-मदित भोगी पुरुष, दुर्मिष्ट (=बध-दुर्बध) भयपुत्र काँठार (=बबाबाद्) के हास्तेमें पड़ा हो । वह दूसरे समय बस काँठारके पार कर भाये स्वरितके साथ, धेम-पुत्र, भव-मदित किसी प्रथममें पहुँच पावे । उसमें ऐसा हो । ।

इसी प्रकार महाराज ! मित्रु इन पाँच भीवरणोंके न प्रहीन होनेपर अपनेमें कलकी तरह रोषकी तरह बंधनागारकी तरह दासताकी तरह कान्ता-मार्गकी तरह देखता है । और महाराज ! इन पाँच भीवरणोंके प्रहीन (=अह) होने पर मित्रु अपनेमें उन्नत-वन आरोध बंधन-मोक्ष अदासता धेमपुत्र-भूमिसा देखता है । अपने मीतरसे इन पाँच भीवरणोंको प्रहीन देखकर उसे प्रामोद्य (=सुखी) उत्पन्न होता है । प्रमुदित (पुरुष) को प्रीति उत्पन्न होती है । प्रीतिपुत्र मनबाकेकी काया प्रमथ्य (=स्विर) होती है । प्रमथ्य-कमल (=पुरुष) सुख अनुभव करता है । सुखीक्य चित्त समाहित (=एकाग्र) होता है । वह प्रथम प्यासको प्राप्त ही बिहरता है । जैसे महाराज ! बध (=अधुर) स्नापक (=अधुर-वेवाप) वा स्नापकका अन्तेवासी कर्सेके बाकमें छोटकर स्नामीय पूर्वको पानीसे तर करते तर करते धोके । सो वह स्नामीय पिंडी स्नेह (=लसी) -अमुपल स्नेह-वरियत=अंधर बाहर स्नेहसे व्याप्त हो बहती नहीं, इसी प्रकार महाराज ! मित्रु इसी कायाको विवेकसे उत्पन्न प्रीति-सुखसे अप्यवित्त परिप्यवित्त करता है परिपूर्ण करता है । उसके करीरका कोई अंत भी विवेक प्रीति सुखसे अ-व्याप्त नहीं होता । यह भी महाराज ! सांघटिक सामन्य-मन्य पूर्वके सामन्यककोंसे उत्पन्नतर=प्रतीततर है ।

‘और महाराज ! फिर’ द्वितीय प्यासको प्राप्त हो बिहरता है । वह इसी कायाको समाधिज (=समाधिसे उत्पन्न) प्रीति सुरसे । जैसे महाराज ! उन्नत-दध (=पावीका बह) ‘वह भी प्रतीततर है ।

‘और फिर महाराज ! तृतीय प्यास । वह इसी कायाको निष्पीठिक सुखसे । जैसे कि महाराज ! उत्पत्तिनी (=उत्पत्तिको समूह) । वह भी प्रतीततर है ।

‘और फिर महाराज ! चतुर्थ प्यास । वह इसी कायाको परिशुद्ध=परि-अवदात विच्छेते । महाराज जैसे पुरुष सिरतक सकेह (=अवदात) बकस डॉककर बैसा हो वह भी प्रतीततर है ।

‘इस प्रकार चित्तके समाहित (=एकाग्र) परिशुद्ध परि-अवदात=अध-अंगल उपप्लेच रहित सुदुमृत = कर्मवीर स्थित (अच्छ) =आदेअप्राप्त होनेपर, वह चित्तको ज्ञान=अदांके किं हाकता है । जैसे वैतुर्य (=वीरा) मणि । वह भी प्रतीततर ।

इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको मनोमय कवके विर्माजड धिने सुकता है । जैसे ‘मू कमेंसे बड़ा मिच्छे । यह भी ।

‘इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर, वह नागा अद्विषों (=योगवर्षों) के किने

चित्तको सुकृता है । जैसेकि महाराज ! चतुर कु मकर वा कु मकरका अन्तेवासी ( =चित्त) । वह भी ।

“इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर, वह चित्तको दिव्य-ब्रह्म प्राप्त (= अर्थात्से) पूर्ण शक्तिके सुकृता है । जैसेकि महाराज ! पुरुष रास्तेमें आ रहा हो । वह भी ।

‘इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको पर-चित्त शक्तिके किये सुकृता है । जैसे कि महाराज ! कौर्मीन की या पुरुष बाकक या मुपा वह भी ।

“इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर, वह चित्तको पूर्व-विद्यास (= पूर्वजन्म)-ज्ञान-अनुसूतिके किये सुकृता है । जैसे कि महाराज ! पुरुष अपने गाँवसे दूसरे गाँवको जाने इस गाँवसे भी दूसरे गाँवको जाने । यह भी ।

‘इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको प्राणियोंकी रज्जुति (= अरक)-उपाह (= अन्म) के-ज्ञानके किये सुकृता है । जैसे कि महाराज ! आरस्तेके बीचमें प्रसाह हो ! इसपर कहा पुरुष । वह भी ।”

“इस प्रकार चित्तके समाहित होनेपर वह चित्तको आत्म-ज्ञान-ज्ञान (= राग आदि चित्तमूर्च्छके विनाशके ज्ञान ) के किये चित्तको सुकृता है । जैसे कि महाराज ! पर्वतके शीर्षमें एक-एक-विभक्त-अन्म-प्रति-बद्ध-इह (= पानीका वह) हो वहाँ तीरपर कहा अनुमान् (= वापवाका ) पुरुष । यह भी ।”

पुंसा कहनेपर राजा मागध भ्रजालशत्रु धीमेही-पुत्रने भगवान्को कहा

“आश्चर्य ! मन्ते !! अद्भुत ! मन्ते !! मन्ते !! मैं भगवान्की शरण जाता हू धर्म धर मित्र-संघकी भी । आइसे भगवान् मुझे अन्धकि-बद्ध शरणगत उपासक समझें ।

‘मन्ते ! मैंने बाक (= मूर्ख ) की तरह मूर्खी तरह अ-कुलक (= अचतुर ) की तरह अपराध किया, जो मैंने ऐश्वर्यके शरण धार्मिक धर्म-राज्य पिताकी अन्मसे मारा, मन्ते ! भगवान् मरे अपराधको अपराधके तीरपर ग्रहण करें मन्तिष्में ( अपराधके ) संघ (= अन्म करके ) किये ।

“तो महाराज ! जो तुमने अपराध किया जो धर्म-राज्य पिताकी अन्मसे मारा । क्योंकि तुम महाराज ! अपराधकी अपराधके तीरपर देखकर धर्मानुसार प्रतिकार करते हो वह तुम्हारा हम ग्रहण करते हैं । महाराज ! धार्मिक-विनय (= सन्तुष्टिके रीति ) में यह वृत्ति (= काम ) ही है जो कि वह अपराधको अपराधके तीरपर देखकर धर्मानुसार प्रतिकार करना मन्तिष्में संघ (= संयम ) रखना ।”

पुंसा कहनेपर राजा अश्रुतसन्तु ने भगवान्की कहा—

“हृष्ट ! मन्ते ! जब हम अज्ञेयी हम बहु-कृत्य बहु करणीय हैं ।”

महाराज ! जिसका तुम काक समझो ( यह वरा ) ।”

तब राजा भगवान्के भावको अभिनन्दनकर, अनुसोदन कर, आसनसे उठ भगवान्को अभिनन्दनकर प्रदक्षिणाकर फरक गया ।

राजा के जानेके थोड़ी ही देर बाद मगधान्में मिथुओंको संबोधित ( = सम्मंत्रित ) किया—

मिथुओ ! यह राजा ( माय ) हृत है उपहृत है । मिथुओ ! इस राजान पर धार्मिक धर्मराजा पिताको भावसे ब मारा होया तो इसी जासनपर इसे विरज = विमल धर्म चक्र उत्पन्न हुआ होला ।”

मगधान्में यह कहा । समुद्र हो जब मिथुओंके भगवान्के भावका अभिनन्दन किया ।

x                      x                      x                      x  
( ५ )

एतद्दशमस्कन्ध ( ई पू ४८५ )

‘इसा धर्म सुना—एक समय भगवान् आयस्ती ० जेतवनमें विहार करते थे ।

( १ ) मिथुओ ! मेरे रथ ( = अनुरक्ति ) मिथु भावकोंमें यह याज्ञ कौचिहृत्स्यं भग ( भगव ) है ।

( २ ) महामशोंमें यह सारिपुत्र भग है ।

( ३ ) कवि-भानोंमें यह महामौद्रीरुपायन भग है ।

( ४ ) “ बुतवादिपोंमें यह महामादृश्य भग है ।

( ५ ) “ दिव्य चक्रोंमें यह अनुरज्ज भग है ।

( ६ ) “ उच्च-कुशीनोंमें यह महिय कोछिगोधा-पुत्र भग है ।

( ७ ) संतु ( = कोमल ) चर ( से उपरैस करके ) बाकोंमें सवुंठक महिय ० ।

( ८ ) सिंहनादिकोंमें पिंडोळ भारद्वाज ० ।

( ९ ) धर्म-कविओंमें पूर्ण मियापणीपुत्र ० ।

१ संताकीसर्वा वर्षावास ( ४८५ ई पू. ) मगधान्में आयस्ती ( जेतवन ) में विताया । २ धं मि १:१: १-७ ।

( १ ) शास्य देशमें कपिलवस्तु नगरके पास श्रेण-वस्तु ग्राममें प्राह्वण-शुक्रमें जग्य ।

( २ ) मगध-देशमें राजगृह-नगरके कपिलूर उपतिष्ठ ग्राम = वाककग्राम ( = कतमान सारीचक वर्षाणिक = वाकन्त्रके समीप जि परमा ) में प्राह्वण-शुक्रमें जग्य ।

( ३ ) मगध-देशमें राजगृहक कपिलूर कौचित्त ग्राममें प्राह्वण-शुक्रमें जग्य ।

( ४ ) मगध-देशमें महातीर्थ प्राह्वण-ग्राममें प्राह्वण-शुक्रमें जग्य ।

( ५ ) शास्य देशमें कपिलवस्तु-नगरमें भगवान्के पथ अनुसोदन करके पुत्र कपिल-शुक्रमें जग्य ।

( ६ ) शरह-देशमें कपिलवस्तु-नगरमें कपिल-शुक्रमें ।

( ७ ) कोसलदेश आयन्ती-नगरमें धरी ( = महायोग ) शुक्रमें । ( ८ ) मगध

राजगृहमें प्राह्वण-शुक्रमें । ( ९ ) शास्य कपिलवस्तुके समीप श्रेणवस्तु प्राह्वण-ग्राममें प्राह्वण-शुक्रमें ।

- ( १ )--संक्षिप्तसे कश्चिद्द्वारासे अर्थ करनेवालोंमें महाकात्यायन० ।  
 ( ११ ) मनोमय रूप विमान करनेवालोंमें सुहृद् पद्यक० ।  
 -- विच-विचर्त्तं चतुरोंमें सुहृदपद्यक० ।  
 ( १२ )--सज्ञा-विचर्त्त-चतुरोंमें महापद्यक० ।  
 ( १३ )-- अरण-विहारियोंमें सुमूर्ति० ।  
 इक्षियेषोंमें (= दानपत्रों )में सुमूर्ति ।  
 ( १४ ) अरण्यकोंमें रेघत खदिर धमिय ।  
 ( १५ ) प्यामियोंमें कक्षा रेघत० ।  
 ( १६ ) अरण्य-शीर्ष (= परिभ्रमियों ) में स्तोत्र कोटिधीस (= कोटिधिया ) ।  
 ( १७ ) सुवन्द्यों (= कल्याणवाहर्यों ) में सोणकुटिकण ।  
 ( १८ ) कामियों (= पालेवाकों ) में सीधली ।  
 ( १९ )-- अज्ञावाकों (= अज्ञाधिमुक्तों ) में धकडि ।  
 ( २ ) सिद्धा-अर्थों (= निष्ठु निवमके पावनों ) में राहुस ।  
 ( २१ ) अज्ञासे प्रमजितोंमें राष्ट्रपाद ।  
 ( २२ ) प्रथम शकाका ग्रहण करनेवाकोंमें कुण्डपाल ।  
 ( २३ ) प्रतिभाकों (= कवियों )में खंगीस ।  
 ( २४ ) समन्तप्रासादिकों (= सब ओरसे सुन्दरों )में उपसेत र्यगस्तपुत्र ।  
 ( २५ )--अपवासन-प्रज्ञापकों (= गृह-अवश्यकों )में श्रम्य मन्त्रपुत्र ।  
 ( २६ ) रेवताकोंके मियों = मन्त्राणोंमें पिप्पिन्दि वात्स्य ।  
 ( २७ ) क्षिप्रमिथों (= प्रकर-कुम्भियों )में बाह्यिष वाकशीरिय ।  
 ( २८ ) विप्रकथिकों (= विविध वचनों )में कुमार काश्यप ।  
 ( २९ )-- प्रतिसंविष्ट-मत्तोंमें महाकोटित (= महाकोटित ) ।

( १ ) अथर्त्तादेश, उज्ज्विनीमें प्राज्ञानुकर्म । ( ११ ) मगध राजगृह अष्टि कम्पापुत्र । ( १२ ) मगध राजगृह अष्टि-कम्पापुत्र । ( १३ ) कोसल, भावली वैश्वकुर्म ।

( १४ ) मगध अष्टक प्राज्ञान-ग्राममें ( सारिपुत्रके अनुज ) । ( १५ ) कोसल भावली महायोगकुर्म । ( १६ ) अज्ञादेश कम्पावागर्में अष्टिकुर्म । ( १७ ) अथर्त्तादेश कुरारपरमें वैश्यकुर्म । ( १८ ) सात्यक कुटिया ( कोटिक-कुटिता सुवन्दासाका पुत्र ) अत्रिय कुर्म । ( १९ ) कोसल भावली प्राज्ञानकुर्म । ( २ ) अथर्व कथिकवस्तु, ( सिद्धा-कुमारके पुत्र ) अत्रियकुर्म । ( २१ ) कुन्दरा सुककोटित वैश्यकुर्म । ( २२ ) कोसल भावली प्राज्ञानकुर्म । ( २३ ) कोसल भावली, प्राज्ञानकुर्म । ( २४ ) मगध अष्टक प्राज्ञानग्राम ( सारिपुत्रके अनुज ) प्राज्ञानकुर्म । ( २५ ) मगधदेश अम्पिका नगर, अत्रिय कुर्म । ( २६ ) कोसल भावली प्राज्ञानकुर्म । ( २७ ) बाह्यिष राज (= सतकत्र-प्रासादा हावा उज्ज्वर, द्वेष्टिवापुरके जिडे भार कर्त्तवका राज्य )में कुर्म-पुत्र । ( २८ ) मगध राजगृह, ( २९ ) कोसल भावली प्राज्ञान-कुर्म ।

- (३) बहूबुधोंमें आनन्द । गतिमात्रोंमें आनन्द । स्थितिमात्रोंमें आनन्द । उपस्थात्रोंमें आनन्द ।
- (३१) महापरिवर्ष ( = वर्षी जमात ) शकोंमें उरुघोष कादयप ।
- (३२) कुक्ष प्रसादकों ( = कुक्षोंको प्रसन्न करनेवालों )में काष्ठा उदायी ।
- (३३) जट्टावालों ( = मित्रों )में वक्कुल ।
- (३४) पूर्वजन्म धरण करनेवालोंमें शोभित ।
- (३५) विषयधारियोंमें उपाधि ।
- (३६) मिथुनियोंके उपदेशकोंमें नन्दक ।
- (३७) श्लोमियोंमें नन्द ।
- (३८) मिथुनोंके उपदेशकोंमें महाकपित ।
- (३९) तेज वात-कुक्षकोंमें स्वागत ।
- (४) प्रतिमात्राक्षियों ( = प्रतिमानेयक )में राघ ।
- (४१) रक्ष शीवर-धारियोंमें शोचराज ।
- (४२) मिथुनो ! मेरी रक्ष मिथुनी आधिकारियोंमें महाप्रजापती गौतमी जप दे ।
- (४३) महाप्रजात्रोंमें श्रेया ।
- (४४) ऋद्धि-मतित्रोंमें उत्पलवर्णा ।
- (४५) विषयत्रोंमें पटाधारा ।
- (४६) जमंकवित्रोंमें धम्मविद्या ।
- (४७) प्वात्रियोंमें नन्दा ।
- (४८) धरण-वीत्रोंमें शोभा ।
- (५) शिवाभिजात्रोंमें मद्रा कुङ्कुलपेणा ।
- (५१) पृथ जन्म-अनुस्मृति-वास्त्रियोंमें मद्रा कापिलायत्री ।

( ३ ) शाक्य कपिलवस्तु जयुतावन-पुर अधिप-कुक्ष । ( ३१ ) काशीदेव शारावती नगर माक्ष्यकुक्ष । ( ३२ ) धारण कपिलवस्तु, भमात्पगाहमें । ( ३३ ) बल्लदेव कौशात्री वैश्वकुक्ष । ( ३४ ) कोसक भावर्ती माक्ष्यकुक्षमें ।

( ३५ ) शाक्य कपिलवस्तु नार्ड-कुक्ष । ( ३६ ) कोसक, भावर्ती कुक्ष गैह । ( ३७ ) धारण कपिलवस्तु ( महाप्रजापतीपुर ) अधिप कुमार ( ३८ ) सीमान्त ( = प्रत्यंत ) देश कुङ्कुलवर्ती नगर राजवशा । ( ३९ ) कोसक भावर्ती माक्ष्यकुक्ष । ( ४ ) मगध राजगृह माक्ष्यकुक्ष । ( ४१ ) कोसक भावर्ती ( काशी सिन्ध ) माक्ष्यकुक्ष । ( ४२ ) धारण कपिलवस्तु, सुश्रीपुत्रमार्या अधिपकुक्ष । ( ४३ ) मद्रदस सायक ( = स्वाच्छकोट ) नगर राजपुत्री मगधराज विजसारकी भार्या ( ४४ ) कोसक भावर्ती अधिपकुक्ष । ( ४५ ) काशाळ भावर्ती अधिपकुक्ष । ( ४६ ) मगध राजगृह विद्याय घेहीकी भार्या । ( ४७ ) शाक्य कपिलवस्तु, महाप्रजापती गातर्तीकी पुत्री । ( ४८ ) कोसक, धारणी कुम्भोद । ( ४९ ) कोसक भावर्ती, कुम्भोद । ( ५ ) मगध राजगृह अधिपकुक्ष । ( ५१ ) मद्रदस सायक-नगर माक्ष्यकुक्ष ( महाधरण भार्या ) ।

- (५२) महा-अभिशा-प्राप्तोमें मन्ना कात्यायनी ।  
 (५३) इन्द्र-जीवर-वारिभियोमें कृशा गौतमी ।  
 (५४) अन्ना-मुष्णोमें ऋगाल माता ।  
 (५५, ५६) मिश्रुषो ! मेरी उपासक आबक्योंमें प्रथम कारण आनेवाक्योंमें तपस्तु और  
 मस्तुक बन्धि अम है ।  
 (५७) शयकोमें अनाद्यपिच्छक सुदृष्ट गृहपति ।  
 (५८) धर्मधिकोमें मन्थिकापण्ड्यामी शिष्य गृहपति ।  
 (५९) कार संग्रह-बस्तुओंसे परिपूर्ण (= अमात )को मिक्यकर रणनेवाकोंमें इस्तक  
 आलपक ।  
 (६०) उचम (= प्रचीत ) शयकोमें महानाम शाक्य ।  
 (६१) मन्नाप (= शिव ) वाक्योंमें बसाहीका उग्र गृहपति ।  
 (६२) ..संघ-सेवकोंमें उमात (= उग्रत) गृहपति ।  
 (६३) अल्पम प्रसन्नोमें शूर अम्यप ।  
 (६४) पुत्रक (= व्यक्तिगत )-प्रसन्नोमें जीपक कौमारभृत्य ।  
 (६५) .. विश्वासकोंमें मकुल-पिता गृहपति ।  
 (६६) मिश्रुषो ! मेरी उपासिका आबिक्योंमें प्रथम कारण आनेवाक्योंमें सेनानी  
 दुहिता सुजाता अम है ।  
 (६७) ..शायिक्योंमें विशाखा मुगारमाता ।  
 (६८) बभ्रु-शाकोंमें शुद्ध (= कुम्भ) उत्तरा ।  
 (६९) मैत्री बिहार प्राप्तिमें सामाधनी ।  
 (७०) .. ध्यानिकोंमें उत्तरा नन्वमाता ।

(५२) शान्त कपिलवस्तु राजकुमाता (देवदहन्ती सुप्रसन्न शायिकी पुत्री)  
 अत्रि । (५३) कोसल आबली ( बँस ) । (५४) मगध राजगृह अद्रिपुत्र ।  
 (५५, ५६) अस्तिर्बना नगर कुम्भिक रोहमें । (५७) कोसल आबली सुमन अद्रि-पुत्र ।  
 (५८) मगध, मन्थिकासह अद्रिपुत्र । (५९) पञ्चाक देस, आबली (= अर्बक  
 मि कलकावार ) राजकुमार । (६०) शान्त कपिलवस्तु ( अगुदहका उद्येष्ट जाता )  
 अत्रि । (६१) बजाईदेस बँसाही अद्रिपुत्र । (६२) बजाईदेस इतिग्राम अद्रिपुत्र ।  
 (६३) कोसल आबली अद्रि-पुत्र । (६४) मगध राजगृह अमन-कुमारसं साकवतिपर  
 र्गनिकामें अल्पक । (६५) मगध (= भारी देस ) धनुमारगिरी अद्रिपुत्र । (६६) मगध  
 उदयैकाके सेनानी-ग्राम संवाही कुम्भिककी पुत्री । (६७) कोसल आबली ( बँस ) ।  
 (६८) नग्न कौशाम्बी शोपक अद्रिपुत्री बार्ही पुत्री ।

- (६९) मन्थलीराज मन्थिका (= मन्थिका) नगर पञ्चविक अद्रि-पुत्री, (पञ्चात् नत्स,  
 कौशाम्बी शोपित अद्रिपुत्री अर्धपुत्री) नत्स-राज उदयनकी महिषी ।  
 (७०) मगध राजगृह सुमनस्य हीक आधीन पूर्वसिद्धी पुत्री ।



- (७१) प्रणीत-नायिकाओंमें सुप्रयासा कालिय बुद्धिवा ।  
 (७२) रोगी-सुहृद्विद्याओंमें सुप्रिया उपायिका ।  
 (७३) भतीज प्रसन्नोंमें कार्यायनी (= कर्तव्यानी ) ।  
 (७४) विद्यासिद्धाओंमें नकुल माता गृहपत्नी ( गृहपतानी ) ।  
 (७५) .. जगुधर प्रसन्नोंमें कुररपरवाही काली उपायिका ।

( ९ )

घम्मचेतिय-सुच ( ३ पू ४८५ ) ।

'देवा मैंने सुना—एक समय मगवान् शाफय ( देव )में मंतलूप (=मंतलुम्प ) नामक शाफयोंक निपममें विहार करते थे ।

उस समय राजा प्रसेनजित् कोसल किसी समय नगरकमें आया हुआ था । तब राजा प्रसेनजित् कोसलके 'वीर्य कुरारायणको आमंत्रित किया—

- (७१) दाम्ब, कुँहिया सौवलीमाता छत्रियकुल ।  
 (७२) काशीदेव, बाराणसी कुङ्गोह ( वैश्वकुल ) ।  
 (७३) भवन्ती कुररपर ( बस्यकुल ) सामकुटकुण्ड्री माता ।  
 (७४) भगवैरा संसुमारगिरि, बकुलपिता गृहपतिकी माया ।  
 (७५) मगध राजगृह कुङ्गोहमें पैदाहुई, भवन्ती कुररपरमें प्यारी ।

१ म वि २:२: ५

२ घम्मपद अ. क ( ३:३ )—भावन्तीके महाकोसल राजाका पुत्र प्रसेनजित्

कुमार बराणसीके किष्कंधी कुमार महाकी कुंधीनाराका मन्क-राजपुत्र बंधुके वह तीनों ही विद्या प्रमोदप आचार्यके पास शिष्य (=विद्या) ग्रहण करनेके लिये लक्षित्य ( गये ) । ( वहाँ ) नगरके बाहर ( बर्ग ) साधर्म में रह हुई । एक दूसरेके अनेक कारण एक और नाम गृहकर, मित्र वच एक साथ ही आचार्यके पास का शीत्र ही विद्या समाप्तकर, आचार्यसे आजा से एक साथ ही निकलकर अपने अपने स्वयंको गये । उनमें प्रसेनजित् कुमारने पिताको विद्या विद्या प्रसन्नकर पितासे राज् अभियेक पाया, लक्षित्विर्षाको अपनी विद्या विद्याते समय बहुत उत्साह ( ज्वल )के साथ विद्यानेके कारण महाकी कुमारकी अर्धे कुटकर निकल गई । किष्कंधी राजाओं (अश्रावण-समासरो)ने—'बोहो ! हमारे आचार्यकी अर्धे पूर गई हुई नहीं त्यागता चाहिये हुकी सेवा करनी चाहिये' ( सोच ) ( सुझाते ) एक अथ आचाराय एक (नगर) द्वार देविवा । वह वहीं रह पाँचसौ किष्कंधी-राजकुमारोंको विद्या ग्रहण कराते रहने लगा ।

बंधुके राजकुमारको मन्कराज-कुम्हने प्रत्येक बर्समें कोहेकी शकरका हाक करवाकर साठ-साठ बर्सोंके साठ ककराओंको ( तलवारसे ) काहनेको कहा । वह जाकरसमें जल्दी हाथ उठकर तलवारसे काहने लगा, अन्तिम ककरापमें उसमें कोहेकी शकरकाके ककरावारेका पत्त झूता । गृहमेपर सभी ककराओंमें कोह-शकरका रची होवेकी बात सुन तलवारको फेंक, रोते हुये ( बोका )—'मेरे इतने जाति-सुहृद्वीमेंसे एकने भी स्नेहपुत्र हो इस बातको ब

“सौम्य कार्यापण ! सुम्पर पानोंको बुद्धबाबा सुभूमि देखनेके किये उपायभूमि  
करेंगे ।”

बहकथा । पत्रि में आनता तो लोह-बासाकके शम्भु हुये विवा ही काटता । फिर जब ‘हुन  
सबको मारकर राज्य करेगा’—मातापितासे कहा । उन्होंने—‘ठाठ ! वह प्रवेणी ( =बांछा  
पुगत ) राज्य है यहाँ ऐसा करनेको नहीं मिकगा—कह विचारित किया । तब—‘तो मैं  
अपने मित्रके पास जाऊँगा’ ( कह ) आचरणी गया । प्रसेनजित् कोसक-राजाके उसके अग्र-  
मन्त्री बाठ सुन जगदानीकर बड़े छत्करसे नगरमें प्रवेश करा उस सेनापतिके पदपर  
स्थापित किया । बंधुका माता-पिताको बुद्धबाबर वहीं बस गया ।’

तबागतके सारिपुत्र महाभारतवापण स्वभिर दो अग्रभाषक ( =अग्रान सिप्य ) ;  
धेमा ( = जेमा ) उत्पलबर्जा दो अग्रभाषिकर्ये; उपासकोंमें चित्र गृहपति और इत्तक  
आकक दो अग्र भाषक उपासक; उपासिकार्थोंमें वेत्तु-कंदली ( नगर-वासिनी ) नन्माता  
और सुत्र-उत्तरा दो अग्रभाषिका उपासिकर्ये यह जगद बने थे

राजा ( प्रसेनजित् )के—मित्र संधके साथ मुझे विधास ( समीपता ) पैदा करना  
चाहिये ( सोच ) एक कथा मुझे दो’ ( ऐसा ) तद्वैरा शाक्योंके पास भेजा । उन्होंने  
एकत्रित हो—‘राजा प्रबल है यदि न वेगे तो हमारा नाश कर देगा कुम्में हमारे समान नहीं  
है किन्तु क्या करना चाहिये ?’—सोचा । तब महानामके—‘मेरी वार्ताके कोलसे उत्पल  
वासमकथिना ( =वापभक्षत्रिया ) नामक अग्रमन्त्र सुम्परी कथा है उसे देंगे । ‘तूतोसे  
कहाया—अपना राजाको कथा देंगे’ । ‘वह किसकी कथा है ?’ सम्पक-संबुद्धके छोटे  
बाधाके पुत्र महानाम शाक्यकी वासमकथिना नामक पुत्री है । उन्होंने जाकर राजासे  
कहा । राजाके—‘यदि ऐसा है तो जल्दा जल्दी के जाओ । इच्छिय बड़े छत्की ( =माताकी )  
होते हैं शासी-काम्बा भी मेज सकते हैं पिताके साथ एक मोठममें छाटी देखकर जाना’  
( कहका ) भेजा । । महानामके उसे अलंकृत करा अपने भोजनके समय बुद्धबाबर  
उसके साथ एक बगह भोजन करते सा दिखका तूतोको प्रदान किया । उन्होंने उसे केकर  
आचरणी का यह बात राजासे कही । राजाके सतुष्ट हो उसे पाँचसौ क्षिणोंकी प्रदाना बना  
अग्रमन्त्रिके पदपर अभिषिक्त किया । उसने थोड़े ही दिनोंमें सुवर्ण-वर्ष्य पुत्र प्रसव किया ।  
। राजाके बिहूडम नाम रक्का और ( उस ) छोटी उमरमें ही सेनापतिका पद  
दिया ।

साकक वर्षकी अवस्थामें ( बिहूडम ) पितासे कहकर बड़े कींग-बागके साथ  
मिकका । । शाक्य बिहूडमके अग्रमन्त्रको जाकर ( बिहूडमसे ) छोटी उमरके बालकोंके  
देहात भेज उसके कपिलपुरमें पहुँचनपर संस्थागारमें एकत्रित हुए । कुमार वहाँ आकर  
कहा हुआ । तब उसे—‘ठाठ ! यह तेरा मातामह है वह मातुके ई बोके । अपने उन  
सबकी बन्दा करती भूमते हुये एकको भी अपनी बन्दा करत न देख पूजा—‘क्या है  
एक मी मुझे बन्दा नहीं करता’ । ‘तुमसे छोटे कुमार देहात गये हुये हैं—(कह) शाक्योंके  
बहुत सारकर किया । वह कुछ दिन बासकर बड़े परिवारके साथ निवसता । तब एक शामी  
संस्थागारमें उसके ईदनेक ककक ( =तकत )की दूध-पार्थम पार्थी—‘यह वासम-कथिना

“अपना हव ।

दार्मीके पुत्रक पत्रक-पत्रक ह'—रह निरा कर रही थी । ( विद्वहमम ) एक आदमी भवना हथियार मूम गया वह उस सबक मिय साटा । उस एते समय विद्वहम कुमारकी मित्राक से साधु मुन उमस पर यात गुठर ( उममे ) सममे प्यार कह रिवा— पासम-पतिवा महालाम साकपकी दार्मीय उत्पन्न पुत्रुं ई' । क्या कोलाहक मया । उसे मुनकर ( विद्वहमम ) पित्तमें टाल लिया,— यह मरे परमक तागतको धीरोदरमे बाते ई मैं राज-गदीपर र्द उमक गलेक रण्ड ल भवन तागतका पुत्रगार्इगा' । उसके घाबकी अपपर अमालोमे वह यात राजास कही । राजाप साकपोंसे खुद हो बागम-प्रतिवा विद्वहम, दोषो माता पुषको विवा सामान उमकर ( उहें ) वास-दासीके योग्य स्थान मिलवापा । कुछ दिन बाद साभा राज-महलमे जाकर र्द । राजान भाकर पम्ना कर ( सब बात ) कह रिवा । सामाने कहा— 'महाराज ! साकपोंन भबुण्ड किया । महाराज ! मैं मुमसे कहता हूँ—वासम-प्रतिवा राज-दुहिता ई सप्रिय-राजाके गेहमें उरामे अभिरेक पापा है । विद्वहम भी यथिव राजास ही उत्पन्न हुआ ई । माताना गात्र क्या करेगा ( पिताक गोत्र ) काफ़ी ( अग्रमान ) ई । । मुनर ( राजान ) संतुष्ट हो किरसे माता पिताको ( उलका ) प्रकृत परिहार (= संमान ) ई रिवा ।

बंजुल सभापतिकी भाषा मडिककाको बरतक सतान म हूई । ( किर ) पर्य होनेपर मुसे बोहव ( अगमिनीकी किमी पीककी इच्छा ) उत्पन्न हुआ ई—कहा । 'क्या बोहव ई ? 'पिशाकी बगारमें गत्र ( अग्रजंत) राज-कुलकी अभिपक-पुष्करिणीमें उतरकर बहाकर पाबी पीना चाहती हूँ, स्वामी ! बंजुल 'अप्या कह सहस्र (—मनुष्य )-बच (—सं बमन )वाला मनुष ल उसे रचपर चढ़ा यावनीसे निकल । रच हॉकते महाकी छिच्छकीको दिने हारस र्दराकीमें प्रविष्ट हुआ । । पुष्करिणीके भीतर और बाहर बवर्हंत पहरा या कपर छोड़ेका बाक बिडा हुआ या र्दकीके भी बावैका स्थान न थ । बंजुल सेनापतिने रचसे उतरकर बेंतस पहरेपाकोंको बाहर भगा छोड़बाकको काटकर पुष्करिणीके भीतर भाषाको गहकया और स्वर्ध मी बहा, किर उसी रचपर चढ़ बगरस निकलकर, आनेके रास्तेसे ही चप रिवा । पहरेबाकोंमे छिच्छविषोष कहा । छिच्छवी राजा कुछ होकर पॉबकी रजोपर आकर हो—'बंजुलमरकको पकवेंगे —( वह ) निकल । ( कीर्तने ) वह समाचार महाकीसे कहा । महाकीने कहा— मत बाको वह तुम सबको मार खमेगा' । किं उहोंने कहा—'हम बावेंगे ही' वह सभी मारे गये ! बंजुल मडिककाको छेकर आकती गया ; उसने सोकह बार कमुसे पुत्र बने । वह सभी पूर बकबाह हुये सभी विद्या ( अक्षिप्य ) में विख्यात ये । एक दिव मनुष्योंमे बंजुलको बाते देपडर बपी दोहार्इ दे स्वावाधीयोंके रिदवत ककर कैसक करवैकी बात कही । उसने अनाकतमें वा उस छगरेका कैसककर, जामी ही की स्वामी बनाया । कंगान बड़ जोरसे साडुबाह रिवा । राजाने पूककर उस बातका सुब संदूह हो उस सभी अमाल्योंको हय बंजुलको ही विविधप ( अन्वाधिमामा ) ई रिवा । वह तबछे पीक पीक लय करवै कगा । पुराने न्वापापीधों (= विविधविधों ) मे रिदवत ( अर्ज ) व पानेस 'बंजुल राज्य छे केन चाहता ई' ( कहर ) राजकुलमें ह

“देव ! सुन्दर सुन्दर पाव लुन गये अर जिनका देव काक समझते हों ।”

बाक थी । राजा ठगरी पाव मानकर अपन मनको ब रोक-सका । ‘इसको यहीं मानते बकी विन्दा होगी — सोच ‘सीमाश्रम’ बकबा हो गया अपने पुर्णोंके साथ जाकर बसबाहुवी (= चार)की पकड़ो’ बहके जेब दिवा । छारने बन्ध नगरमे अविनूर(म्पाबमें) (राजाके सेने) घोषाधोने पुत्रके साथ ( बंधुम्पम्प )का शिर काट किया ।

( पंछे ) राजाके अर पुत्रोंमे राजाको उनडे (=बंधु) और उसडे पुर्णोंके) मिश्रण होनेकी बात बकी । राजाने संविग्न हा बसक पर का मस्तिष्क और उसकी बहूओसे झमा मंगी । ( मस्तिष्क ) कुसीबारामें अपने कुकुरको बपी गई । राजाने बंधुबमस्तके मोये शीर्ष अरायत्रका सेनापतिकर पद दिया । यह ‘इसने मरे मामाको मारा है’ (सोच) मौजा हुई रहा बा । राजा भी मिरपराप बंधुबंध मार जानेके समझते ही विच हो न थीन पाठा बा न राज्य-सुख ही अनुभव करता बा । उस समय शास्ता साधनोंके उस्तुम्य नामक निगम (=कस्ते) में विहार करते थे । राजा बही बा बारामके अविनूर छपनी (=कंधंभावार) बाक बोहसे परिवारके साथ विहारमें बा पांच राज-ककुप भांड (=उप ब्यहन उज्जीप बरुा और पाहुका) शीर्षकारायणको से भंडकाही रांध-नुडीमें गया । उसके राधकुटीमें काठरी कारापथ उन राज-ककुप-भाण्डोंको क विहूडमको राजा बना राजाके तिम एक घोडा और एक सेबिका छोड आबस्ती बस्य गया । राजा ने शास्ताके साथ मिय-कमा बह, मिकय-कर समझते न देख, स्त्रीसे पूछा । सब बात सुन भौंरे (=मजातवाजु) की संकर विहूडमको पकड़नेकी बात सोच राधगूढ नगरको काठ संघ्यकाकमें नगरशरक बन्ध हो जानेपर एक (पने- श्यास्यमें उहरा । बुर-इचामें यका (हानेस) रातको बकी मर गया । मोरको ‘बोधकरगु अनाथ हागये’ कह चिन्काती उस स्त्रीक हात्पुको सुनकर (स्नेहमें) राजाको सूचित किया । उसने बड़े सत्कारसे मामा की शरीर-किया की ।

विहूडम भी राज्यनासकर उस बरका हमरणकर सभी साधनोंके मारनेके किये बकी सवा के साथ बिकका । उस दिन मगधात् कपिधवस्तुके पास बा एक कवरी छपाबाके बूछके नीचे बेटे थे । बहा ( पास हीम ) विहूडमकी राज्यसीमामें बकी यकी छपाबाका बग्युका बूछ पा । विहूडमने शास्ताका देल का बन्धनाकर बहा —

‘अन्ते ! देवे गर्मीके समय इम कवरी-छपाबाके बूछके नीचे बेटे हैं ? इम यकी छपाबाके बगहडे नीचे बेटे ।

‘ठीक है महाराज ! जातकी (=भाई बन्धु) की छाबा बंडी होती ह । कवरीपर- ‘शास्ता जातकीके बचावक लिये कये है —साथ शास्ताको बन्धनाकर बंड गया । राजा बूसरी धारमी उसी प्रकार शास्ताको बंधन बंड गया । तीसरावार भी । बापी बार शास्ता ब गये । विहूडम शास्त्रोंक मारनेके लिय बकी सवाक साथ बिकया ।’ (चार) बोका—‘बो बड़े हम पावन है उनका मारा किन्तु मरे बाबा महाबामक पाव पड़े कुओंको बोधन-दाव दो । पावकी ( में ) कोई हाठमें तिमरा द्वाकर कये हो गये कोई कोई नक (आकंड) पकड़कर कये हो गये । ‘तुम बाधप हा’ पउने पर तिमका द्वापये हुये बोके— ‘एक बही नक है’ । उनमेंम महाबामके बाप पड़े हुये बाव बका पावे । उनमें

एक समय राजा प्रसेनजित् ० मग्न (= सुन्दर) पानपर आकृष्ट हो मग्न भ्रू बावोंके साथ बड़े राजनी छत्रमें नगरकस विच्छन्न-कर, जहाँ आराम था वहाँ गया। कितनी बावकी भूमि थी बतना पावसे था, पावसे उतर पदच्छद्दी आराममें प्रविष्ट हुआ। राजा प्रसेनजित्ने दृष्टक्ये हुए आराममें अस्पृश-रहित धोप-रहित निर्जन प्यान-वाग्य मनोहर वृक्ष-मूषोंके देखा। देखकर भगवान्की ही स्मृति उत्पन्न हुई—यह वैसेही मनोहर वृक्षमूक हैं जहाँ पर हम भगवान् सम्बन्धक समुद्रकी उपासना (= सत्संग) करते थे। तब राजा ने दीर्घ कान्तायणको बुद्ध—

‘सौम्य कारायण ! यह मनोहर वृक्षमूक हैं जहाँपर । सौम्य कारायण ! इस समय वह भगवान् जहाँ बिहरत हैं ?’

‘महाराज ! शाक्योंका मत्तल्लप नामक निगम (= कस्ता) है वह भगवान् वहाँ पर बिहर रहे हैं।’

‘सौम्य कारायण ! नगरकसे कितनी दूरपर शाक्योंका वह मत्तल्लप निगम है ?’

‘महाराज ! दूर नहीं तीन बोझल है। बाकी बचे दिनमें पहुँचा जा सकता है।’

‘तो सौम्य कारायण ! तुझका भद्रवाचों को हम भगवान् के दर्शनके किये वहाँ क्योंगे। अन्धक देख।’

तब राजा प्रसेनजित् सुन्दर पानपर आकृष्ट हो नगरमें विच्छन्नकर उसी हीके दिनमें शाक्योंके निगम मत्तल्लपमें पहुँच जहाँ आराम था वहाँ गया। कितनी बावकी भूमि थी उतनी बावसे था पावसे उतर कर पदच्छद्दी आराममें प्रविष्ट हुआ।

उस समय बहुलधे मिहु सुकी अगहमें उरक रहे थे। राजा प्रसेनजित्ने वहाँ का और उन्मीय दीर्घ करायणको दे दिया। दीर्घकरायणने सोचा—‘मुझे राजा वहाँ उररा रहा है इसकिये मुझे वहाँ खड़ा रहना होगा। तब राजा वहाँ वह द्वारपद विहार था गया। भगवान्ने दर्शाना सोच दिया। राजा बिहार ( रमकुन्दी ) में प्रविष्ट हो भगवान्के चरणों में किरसे पड़कर’।

क्या है महाराज ! क्या बात बोलकर महाराज ! इस शरीरमें इतना गौरव दिखक्ये हो विचित्र उपहार (= समान) प्रदर्शन कर रहे हो ?’

भण्ठे ! भगवान्ने मेरा धर्म अन्धक (= धर्म संबंध) है—भगवान् सम्बन्धक संवृद्ध हैं भगवान्का धर्म स्वाक्यात है धर्म सुमार्ग पर आकृष्ट है। भण्ठे ! किन्हीं किन्हीं समय ब्राह्मणोंको मैं स्वल्प क्रांति (= पर्वतक) ब्राह्मणों पाठ्य करते देखता हूँ—दृष्टवर्ष बीस

तिक्का बचाकर कड़े पीछे तुल-वाचय कदम्बके, लक पकड़कर कड़े लक-वाचय कदम्बके। बाकी वृष पीनेवाले वचों लकको बिना-लोच मरवाकर लककी नदी बहवा (विह्वलमने) कबड़े मकड़े लकसे लकको चुकवाया। इस प्रकार अन्धकधर्मको विह्वलमने उच्छिन्न किया। रातके समय उसने ध्विरबत्ती लकके तटपर पहुँच छावनी बाकी। कोई कोई नदीके भीतर बाहुम पुच्छि पर केने कोई कोई बाहर लकपर। उसी समय मंजने उच्छर बना धोका बरसाया। और नदीमें धाई बाढ़ने सेना-सहित उस समुद्रमें पहुँचा दिया।

वर्ष तीस वर्ष वालीस वर्षमी । वह दूसरे समय सु-स्तात सु-बिकित वेद्य-मम सु बबवा ( = कल्पित कर ) पाँच कामगुणोंसे समर्पित = सम्-भंगीमूत हो विचरण करते हैं । मन्ते ! मिथुनोंको मैं देखता हूँ जीवन्मर परिपूर्ण परिपुत्र ब्रह्मचर्य पासम करत हैं । मन्ते ! यहाँसे बाहर दूसरा इतना परिपूर्ण परिपुत्र ब्रह्मचर्य नहीं देखता । मन्ते ! यह मी (कारण है) कि भगवान् मुझे बर्म दर्शन ( = धर्म-भ्रमण ) होता है—'भगवान् सम्बक संपुत्र हैं भगवान्का बर्म स्वाक्यात है संघ सु-मतिपत्र ( = सुमार्गाक ) है ।

“भार फिर मन्ते ! राजामी राजाओंसे विद्या करतें हैं अत्रिप सत्रिपके साथ विद्या करते हैं ब्राह्मणमी गृहपति ( = ईश्व ) मी मातामी पुत्रके साथ पुत्रमी माताके साथ पिता मी पुत्रके साथ पुत्र मी पिताके साथ भाई मी भाईके साथ भाई मी बहिनके साथ बहिन मी भाईके साथ मित्र मी मित्रके साथ । किन्तु महा मन्ते ! मैं मिथुनोंको समग्र ( = पुराण ) संमोदमात्र ( = एक दूसरेसे मुद्रित ) विद्या-रहित बृह-अक-वने एक दूसरेको मिय-बहुध देखता विहार करता रहता हूँ । मन्ते ! यहाँसे बाहर मैं ( नहीं ) ऐसी पुराण परिपुत्र नहीं देखता । यह मी मन्ते ! ।

“भार फिर मन्ते ! मैं ( एक ) आरामस ( दूसरे ) आरामसे ( एक ) उद्यानसे ( दूसरे ) उद्यानसे उदकता हूँ विचरता हूँ यहाँ मैं किन्हीं किन्हीं समय माहलोंको कुछ पत्र बुर्बर्न पीठ-पीठके बाही-बैरे गात्रबाडे ( रहता हूँ ) भागों लोणोंक दर्शन करैसे भाँकोंको बंध कर रहे हैं । तब मन्ते ! मुझे ऐसा होता है—'निश्चय यह आयुष्मान् वा तो वेमन ( = अन्वमिरत ) हो ब्रह्मचर्य कर रहे हैं या इन्होंने कोई किया हुआ पापकर्म किया है जिससे कि यह आयुष्मान् कुछ । उसके पास आकर मैं ऐसे पठता हूँ—'आयुष्मानो ! तब कुछ ! वह मुझे कहते हैं—'महाराज ! हमें बंधु-रोग ( = कुल-रोग ) है । किन्तु मन्ते ! मैं यहाँ मिथुनोंका इष्ट = प्रहृष्ट = उदम अभिरत = प्रसन्न-इन्द्रिय उत्पुङ्गता-रहित, रोमांच-रहित -- सुधु चित्तसे विहार करते देखता हूँ । यह मी मन्ते ! ।

“भार फिर मन्ते ! मैं मूर्धाभिपिच्छ अत्रिप राजा हूँ मारने पापको मारना सक्षता हूँ निर्वासन योगको निर्वासन कर सकता हूँ । ऐसा होत मी मन्ते ! मरे (राज ) कर्ममें बडे बन्ध, ( जोग ) बीच बीचमें बात डाक देते हैं । उनको मैं ( कहता हूँ )—'मैं ( काम करने ) नहीं पाता आप लोग कार्य करनेके किये बैठ बन्ध बीच बीचमें बात मत डालें, बात समाप्त हो जाने तक प्रतीक्षा करें । तो ( मी ) बीच बीचमें बात डाक ही देते हैं । किन्तु यहाँ मन्ते ! मैं मिथुनोंको देखता हूँ जिस समय भगवान् अनेक घातकी परिपुत्रको बर्म-उपदेश करते हैं, उस समय भगवान्के आचक्रोंक बूढ़ने काँसनेका मी शब्द नहीं होता । मन्ते ! पहिले एक समय भगवान् अनेक घात परिपुत्रको धर्म-उपदेश कर रह थे उस समय भगवान्के एक ब्राह्मण ( = शिष्य ) मे खाँसा । तब उसे एक सत्रहचारीण सुदने को दबाकर दयाया किया—आयुष्मान् निरासन्न हो आयुष्मान् सन्न जत करे शास्त्र भगवान् हमें धर्म उपदेश कर रहे हैं । तब मुझे ऐसा हुआ—'अधर्य है जी ! अद्भुत है जी !! जो विद्या बूढ़के ही बिना सरत्रके ही इस प्रकारकी चिन्त-सुक्त ( = विधीत ) परिपुत्र !!! यहाँसे बाहर मन्ते ! मैं दूसरी इस प्रकारकी सु-बिकीत बरिपुत्र नहीं देखता । यह मी ।



वर्षे तीस वर्षे चाकीस वर्षेभी । यह दूसरे समय सु-स्वात सु-विक्रित केय-दममु बगवा  
( = कथित कर ) पाँच कामगुर्जोसे समर्पित = सम्-भंगीमूल हो, विचारण करते हैं । भन्ते !  
मिथुओंको मैं देखता हूँ, बीषणभर परिपूर्ण परिष्कृत मण्डलार्थ पाठन करते हैं । भन्ते !  
यहाँसे बाहर दूसरा इतना परिपूर्ण परिष्कृत मण्डलार्थ नहीं देखता । भन्ते ! यह भी (कारण है)  
कि भगवान् मुझे धर्म-दर्शन ( = धर्म-आत्मन ) होता है—'भगवान् सम्यक संतुष्ट हैं भग  
वान् धर्म स्वाक्यात है संघ सु प्रतिपद्य ( = सुमार्गात् ) है ।

“और फिर भन्ते ! राजाजी राजाओंसे विचार करते हैं इन्द्रिय इन्द्रियके साथ विचार  
करते हैं ब्राह्मणजी गृहपति ( = र्षप ) भी , माताजी पुत्रके साथ पुत्रभी माताके  
साथ पिता भी पुत्रके साथ पुत्र भी पिताके साथ भाई भी भाईके साथ भाई भी  
बहिके साथ बहिन भी भाईके साथ मित्र भी मित्रके साथ । किन्तु यहाँ भन्ते !  
मैं मिथुओंको समग्र ( = पकराय ) समोदमाव ( = एक दूसरेसे मुदित ) विचार-रहित  
दृष्ट-दृष्ट-बने, एक दूसरेको मित्र-बन्धुसे देखता विहार करता देखता हूँ । भन्ते ! यहाँसे बाहर  
मैं ( कहीं ) पत्नी पकराय परिपद् नहीं देखता । यह भी भन्ते ! ।

“और फिर भन्ते ! मैं ( एक ) बारासस ( दूसरे ) बारासमें ( एक ) उद्यानसे  
( दूसरे ) उद्यानमें दृष्टता हूँ विचारता हूँ ; यहाँ मैं किन्हीं किन्हीं समय मण्डलोंको कुछ  
एक दुर्बल पीके-पीके बाकी-बैबे गात्रवाले ( दृष्टता हूँ ) मार्गों कोयोंके दर्शन करनेसे  
बाकोंको बंध कर रह है । तब भन्ते ! मुझे ऐसा होता है—विश्व यह आधुप्मान् पा तो  
वेमन ( = अन्मिरत ) हो मण्डलार्थ कर रहे हैं या इन्हींको कोरे छिपा हुआ पापकर्म किया  
है जिससे कि यह आधुप्मान् छुप । उसके पास जाकर मैं ऐसे पूछता हूँ—'आधुप्मानो !  
तुम छुल ! यह मुझे करते हैं—'महाराज ! हमें संतुष्ट-रोग ( = कुष्ठ-रोग ) है । किन्तु  
भन्ते ! मैं यहाँ मिथुओंको दृष्ट = महार = बरम अमिरत = प्रसन्न-इन्द्रिय उत्सुकता-रहित,  
रोमांच-रहित दृष्ट विचसे विहार करते देखता हूँ । यह भी भन्ते ! ।

“और फिर भन्ते ! मैं मूर्खामिषित इन्द्रिय राजा हूँ मारने योग्यको मारना सकता  
हूँ विचारित बोधको निर्वासन कर सकता हूँ । ऐसा होते भी भन्ते ! मेरे (राज-) कर्षमें  
बड़े बल ( कोर ) बीच बीचमें बात बाक देते हैं । उनको मैं ( कहता हूँ )—'मैं ( काम  
करने ) नहीं पाता जाय कोर कार्य करनेके किये बड़े बल बीच बीचमें बात मत बाकें,  
बात समाप्त हो जाने तक प्रतीक्षा करें । तो ( मैं ) बीच बीचमें बात बाक ही देते हैं ।  
किन्तु यहाँ भन्ते ! मैं मिथुओंको देखता हूँ जिस समय भगवान् जनेक हातकी परिपद्को  
धर्म-उपदेश करते हैं, उस समय भगवान्के आचर्यके पूढने कर्तव्यभी भी धण्ड नहीं होता ।  
भन्ते ! पहिले एक समय भगवान् जनेक हात परिपद्को धर्म-उपदेश कर रहे थे उस समय  
भगवान्के एक आचक ( = सिप्य ) ने कर्ता । तब उसने एक सत्रहवारिने सुटने को द्वाकर  
इत्यरा किया—आधुप्मान् विनाद्व हों, आधुप्मान् धण्ड मत करें धाला भगवान् हमें धर्म  
उपदेश कर रहे हैं । तब मुझे ऐसा हुआ—'आचर्य ही बी ! धण्डुसुत ही बी !! जो विना दृष्टके  
ही विना धण्डके ही, इस प्रकारकी विचक-पुष्ट ( = विचरित ) परिपद् !! यहाँसे बाहर  
भन्ते ! मैं दूसरी इस प्रकारकी सु-विनीत बरिपद् नहीं देखता । यह भी ।



और फिर मन्ते ! मैं किन्हीं किन्हीं निपुण कृतपरमबाद् (= मीठ सास्त्रार्थी) बाक-बैबी क्षत्रिय-वंशितोंको खेरता हूँ; ( जो ) माबो ( मपनी ) प्रज्ञा-गत ( पुच्छिम ) ( तूतरेके ) छि-पत (= मतविषयक पातों) को टुकड़े टुकड़े करे डालते हैं । वह मुन्ते हैं—  
 अमन गीतम अमुक ग्राम या निगममें जावेगा । वह प्रस उपपार करते हैं—इस प्रघमें हम अमन गीतमके पाम बाकर पछेंगे; ऐसा पछनेपर यदि ऐसा उचर देगा तो हम हम प्रभर उससे वाद रोपेंगे । वह मुन्ते हैं—अमन गीतम अमुक ग्राम या निगममें जावेगा ।  
 वह बाहूँ भगवान् ( होते हैं ) बाहूँ बाते हैं । वह भगवान्की धार्मिक-कथा द्वारा संदर्शित हो, प्रेरित हो समुत्त कित हो संप्रदर्शित हो भगवान्में प्रस भी नहीं पछते बाद् कर्हते रोपेंगे ? बरिह भगवान्के भावक ही बन जाते हैं । वह भी ।

आर फिर मन्ते ! मैं किन्हीं किन्हीं माहान पंडितों ।

“ गृहपति पंडितों ।

अमन पंडितों । भगवान्में प्रघ भी नहीं पछत, बाद् कर्हते रोपेंगे, बरिह भगवान्के ही घरसे बैधर हो प्रकम्पा मोंगते हैं । उन्हें भगवान् प्रकथित करते हैं । वह इस प्रकार प्रकथित हो एककी आत्म-संयमी हो बिहरते बरिह ही जिसके जिने कुम्पुव प्रकथित होतें हैं उस अनुचर (= नबोचम) प्रकथने-कथनी इसी प्यममें स्वर्न अमिमान्कर साझात्कारकर प्राप्तकर बिहरते हैं । वह ऐसा करते हैं—हम नघ ये हम प्र-वह ये, हम पहिके अ अमन होते ही अमन ही का बाबा करते ये; अ माहान होते 'माहान हैं' का बाबा करते ये । मर्हत् न होते मर्हत् है' का बाबा करते ये । अब हैं हम अमन माहान्, मर्हत् । वह भी ।

“और फिर मन्ते ! वह ऋषिदत्त आर पुराण स्वपति (= फीकबाद् ) मेरे ही ( मोहनवाले ) मोहनवाले मेरे ही ( पानने ) पानवाले हैं मैं ही उनके जीवनका प्रज्ञा उनके बसका प्रज्ञा हूँ । तो भी ( वह ) मेरा उतवा सम्मान नहीं करते जितवा कि धान्-वान्का । पहिके पद आर मन्त ! मैं बघाहूँके किये जावा था । ऋषिदत्त आर पुराण स्वपतिपै खोजकर एक । मीषवाले आबसव (= सराव )में बास किया । तब मन्ते ! वह ऋषिदत्त और पुराण बहुत रात धर्म कथामें बिठा जिस विद्यामें भगवान्के होनेको सुना था उचर फिरकर मुसे पैरभी बोर करके केड गये । तब मुसे एसा हुआ 'आबर्प है जी ! अद्मुत्त है जी !' वह ऋषिदत्त और पुराण स्वपति मेरे ही मोहनसे मोहनवाले । वह धान्नुमान् अब भगवान्के सासबमें (= अज्ञात) हो पहिकेसे आबसव कोई बिसेप देखते होंगे । वह भी ।

और फिर मन्ते ! भगवान् भी क्षत्रिय हैं मैं भी क्षत्रिय हूँ भगवान् भी कोस-सुक- (= कोसकवासी कोसक-गोचर) हैं मैं भी कोसक हूँ । भगवान् भी बरिह बर्पके मैं भी बरिह बर्पके । मन्ते ! जो भगवान् भी क्षत्रिय इससे भी मन्ते ! मुमें बोन ही है, भगवान्का परम सम्मान करना, बिबिन्न गीरब प्रदर्शित करना ] मन्त ! मन्ते ! अब हम बाबेंगे हम बहुतक बनु-करबीप हैं ।

“महाराज ! जिसका तुम काक समझते हो ( रीसा करो )”

तब राजा प्रसेनजित् आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रशिक्षण कर  
बद्ध गया ।

राजा के आयेके बाईसी दिन भगवान्ने मिश्रुओंको कहा—

मिश्रुभो ! यह राजा प्रसेनजित् धर्म चैत्योंका मापकर आसनसे उठकर बद्ध  
गया । मिश्रुभो ! धर्मचैत्योंकी सीढ़ी धर्मचैत्योंको पूरा करो धर्मचैत्योंका धारण करो ।  
मिश्रुभो ! धर्म चैत्य सार्थक और आदि (समुद्र ) ब्रह्मचर्यके हैं ।<sup>१</sup>

भगवान्ने यह कहा । समुद्र हो जब मिश्रुओंने भगवान्का मापनका अभिनन्दन किया ।

× × ×

( • )

सामगाम-सुच ( ई पू ४८५ ) ।

ऐसा<sup>१</sup> मैंने सुना—एक समय भगवान् शाक्य (शैल) में सामगाम में विहार  
करत थे ।

उस समय शिरांड नाशयुज (= जय तीर्थहर महावीर) भर्मा भर्मा पाषाणमें मर<sup>२</sup> थे ।  
उनके मरने पर शिरांड (=जल साधु) श्लोक दो भाग दो मंडन=कस्तूर=निवाह करत एक  
हृदयेको मुखरूपी शक्तिसे छेदते विहार रह गये— ए इस धर्म-विनय (=धर्म) को नहीं जानता,  
मैं इस धर्म-विनयको जानता हूँ । ए क्या इस धर्म-विनयको जायेगा ए मिथ्यात्व है मैं  
सत्ताक हूँ । मेरा (कथन धर्म) सहित है तब भ सहित है । 'ए पूर्व बोलने (की बात)  
को पीछे बोका, पीछे बोलने (की बात) को पहिले बोका । 'तब (बाह) विना-विचारकर  
बद्ध हूँ । 'ए ये बाह रोपा ए मित्रह-स्वात्म का गया' । का बाहसे दुर्ग के किये फिरता  
फिर । 'यदि सज्जता है तब समर । नाश-पुच्छीय शिरांडमें मातो पुत्र (=वध) ही हो  
रहा था ।

शिरांडके आशक (= शिष्य) को गृही श्वेत बज्रकारी (ये) वह भी नाश-गुनीय शिरांडमें  
(ईश्वरी) शिरांडके विरक्त=प्रतिबाल-कथ ये ईसे कि (नाश-मुक्तके) तुम्हें आगदात (=ईकस  
न कहे गये) दुष् प्रवैदित (= ईकसे न साक्षात्कार किये गये) धर्मप्राप्तिक (=पार न लगाने

१ अ क. राजगृह काठ हुए राखत कु-जघ्न भोजन किया और बहुत पानी पिना ।  
सुष्मार स्वभाव होनेसे भोजन अच्छी तरह नहीं पचा । यह राजगृहक द्वारोंके चंद्रहाङ्गानेपर संख्या  
(= विकार)को नहीं पहुँचा । । नगरके बाहर (धम) शालामें छेद । उस रातके समय  
रक्त (= बुझान) लगने शुरू हुए । कुछ बार वह पाहर गया । फिर ईसे बरकनेमें असमर्थ  
हो उध रानीके र्भकमें पढ़कर बड़े मोर ही मर गया । । राजा (जगतसयु)ने विह्वलमक  
विग्रहके किये भरी बजाकर सभा जमा की । अमात्योंने ईरोपर पढ़कर रोका ।<sup>२</sup>

२ अ कि ३ १ ४ ।

३ अ क 'वह नाश-युज तब माछम्हाबासी था वह ईस और कौं पाषाण मरा ।  
छाप काभी उपाकि गृहपतिके दण गाथाओंसे मापित पुत्र-नाशका मुनकर उसन गर्म लून  
केक दिना । तब अश्वरवही उस पाषा क गये । वह वहाँ मरा ।

बाके) अन्-उपशान्त-सर्वतोविह ( = अ-सांति-गामी); अ सम्पन्न-संपुद्ग-अभेदित ( = किन्ती सुदृषे अ जाने गये ) प्रतिष्ठा ( = शीघ्र )-रहित = मिश्र-रूप आश्रय-रहित अर्थात् विषयमें (ये) ।

तब 'सुन्द समपुद्ग'स पाषाणों बर्षावास कर वहाँ सामगाम वा वहाँ अनुष्मात् आनन्द के वहाँ गया । आकर अनुष्मात् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे सुन्द अमणोरेशने अनुष्मात् आनन्दको कहा—

'मन्ते ! निर्गन्ध नाद्यपुत्र अभी अभी पाषाणों मरे हैं । उसके मरनेपर नाद्य-पुत्रीर्त्त किर्गन्धोंमें भावों सुद ही हो रहा है । आश्रय-रहित अर्थात्-विषयमें (ये) ।

ऐसा कहनेपर अनुष्मात् आनन्दने सुन्द अमणोरेशको कहा—

'आपुत्र सुन्द ! भगवान् के दर्शनके किये यह बात मैं ही हूँ । आओ आपुत्र सुन्द ! वहाँ भगवान् हैं वहाँ चले । अन्तर यह बात भगवान् को कहें ।' "अन्त मन्ते !

तब अनुष्मात् आनन्द और सुन्द अमणोरेश वहाँ भगवान् के वहाँ गये अन्त भगवान् को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये अनुष्मात् आनन्दने भगवान् को कहा—

'मन्ते ! यह सुन्द समपुद्गसे ऐसा कह रहे हैं— मन्ते ! निर्गन्ध नाद्यपुत्र अभी अभी पाषाणों मरे हैं । तब मन्ते ! मुझे ऐसा होता है भगवान् के बाद भी (कहीं) सबमें ऐसा ही विवाद मत उत्पन्न हो । वह विवाद बहुत-जनोंके अहितके किये बहुत-जनोंके अनुष्मके किये बहुत-जनोंके अर्थके किये, वैश्व-समुष्मोंके अहित और सुन्दके किये (होगा) ।

"तो क्या मानते हो अनुष्म ! मैंने साक्षात्कार कर विद्वत्-जनोंके उपदेश किन्ना कैसे कि—(१) चार स्युति प्रस्थान, (२) चार सम्पन्न प्रस्थान (३) चार अहिपात्र (४) पाँच इन्द्रियाँ (५) पाँच बह (६) सात बोध्यांग (७) आर्ये अष्टांगिक मार्ग । अनुष्म ! क्या इन अर्थोंमें ही मिश्र-जनोंका भी अनेक मत (दीक्षता) है ?'

'मन्ते ! भगवान् ने जो यह अर्थ साक्षात्कारकर उपदेश किये हैं जैसे कि—(१) चार स्युति प्रस्थान । इन अर्थोंमें मन्त ! मैं ही मिश्र-जनोंका भी अनेक मत नहीं दीक्षता । लेकिन मन्ते ! जो पुद्गल भगवान् के आश्रयसे विहरते हैं वह भगवान् के न रहनेके बाद, संघमें अश्रीव ( = अश्रीव )के विषयमें प्रातिमात्र ( = मिश्र निवस )के विषयमें विवाद पैदा कर सकते हैं वह विवाद बहुत-जनोंके अहितके किये बहुत-जनोंके अनुष्मके किये, बहुत-जनोंके अर्थके = अहितके किये वैश्व-समुष्मोंके सुन्दके किये होया ।'

'अन्त ! जो वह अश्रीवके विषयमें वा प्रातिमात्रके विषयमें विवाद है वह अल्प मात्र ( = छोटा ) है । मार्ग वा प्रतिपत्के विषयमें यदि संघमें विवाद उत्पन्न हो, वह विवाद अहितके किये । अनुष्म ! विवादके वह छ मूक हैं । जैसे छ ? अनुष्म ! मिश्र (१) कोषी पालाही ( = उपवाही ) होता है । जो मिश्र अनुष्म ! कोषी उपवाही हीने

१ अ क "वह स्वधिर अर्थसेवापत्त ( = सारिपुत्र )के छोटे भाई थे । उनकी इन सम्पन्न व होनेके समय मिश्र सुन्द समपुद्गसे कहा करते थे स्वधिर ही आनेपर भी वही करते रहे ।

है वह शास्ता (= गुरु) में गौरव-रहित, आश्रय रहित हो बिहरना है, धर्म में भी संघर्ष में भी सिद्धा (= मिथु-विषय) में त्रुटि करनेवाला होता है, वही सधर्म विवाह पैदा करता है। यह विवाह बहुतजगोंके अधिकक किये होता है। इसकिये आनन्द ! इस प्रकारके विवाह-मूकके यदि तुम जपनेमें या वृत्तरेमें बैठना तो आनन्द ! तुम इस पापी विवाह मूकके विनाशके किये प्रयत्न करना। यदि देवता, तो आनन्द ! तुम इस पापी विवाह मूकके अधिकमें न होने देनेके किये उपाय करवा इस प्रकार इस पापी विवाह-मूककी अधिकमें अनुत्पत्ति होगी। (२) और फिर आनन्द ! मिथु मर्षी पकामी होता है जो मिथु आनन्द ! मर्षी । (१) ईर्ष्यालु मरती । (२) शठ, मायावी । (३) पापघ्नु (= बध्-नीयत) सिन्धु-रहि । (४) छवि-परामर्श भाषा-मन्त्री । आनन्द ! यदि अपनेमें या वृत्तरेमें इस प्रकारके विवाह-मूकको बंधना बहो आनन्द ! तुम इस पापी विवाह मूकके विनाशके किये प्रयत्न करना इस पापी विवाह-मूककी अधिकमें अनुत्पत्तिके किये उपाय करवा; हम प्रकार इस पापी (= बुद्ध) विवाह-मूकका प्रहाण (= विनाश) होता है इस प्रकार इस पापी विवाह-मूककी अधिकमें अनुत्पत्ति जाती है। आनन्द ! यह है विवाह मूक है।

आनन्द ! यह चार अधिकरण हैं। आनन्दे चार ? (१) विवाह अधिकरण (२) अनुवाह-अधिकरण (३) आपत्ति अधिकरण (४) कृप्य-अधिकरण।

आनन्द ! यह सात अधिकरण समझ है किन्हे एक एक (= समय-समय पर) उत्पन्न हुये अधिकरण (आगर्ष) के शमन = उपशम (= शांति) के लिये बना चाहिये (१) संमुख विनय देना चाहिये (२) स्मृति-विनय (३) भ-मूक विनय । (४) प्रकृति शान्त-करण, (५) 'यद्-भूपसिक (६) दत्तापीयसिक, (७) तिग्मवत्कारक।

आनन्द ! संमुख विनय कमे होता है ? आनन्द ! मिथु विवाह करते हैं—धर्म है या अधर्म विनय है या अधिकरण। आनन्द ! उन सभी मिथुओंका एक जगह एकत्रित होना चाहिये। एकत्रित हो धर्म (रूपी) रहतीका (जगत) परीक्षण करना चाहिये अन्य यह बात हो रसे उस अधिकरण (= आगर्ष)को शांत करना चाहिये। इस प्रकार आनन्द ! समुत्पन्न-विनय होता है इस प्रकार संमुख-विनयमें भी किन्हीं किन्हीं अधिकरणोंका शमन होता है।

कैसे आनन्द ! स्मृति-विनय जाता है ? यहाँ आनन्द ! मिथु मिथुपर पाराजिका वा पाराजिका-समाज (= सामन्तिक) आपत्ति (= दोष)का धाराप करत है—समय करो आनन्द ! तुम पाराजिका वा पाराजिका-समाज पैसी बड़ी (= गुण्ड) आपत्तिस आपन्न हुये। वह ऐसा उत्तर दता है—आनन्द ! गुण्ड बाह (= स्मृति) नहीं कि मैं पैसी गुण्ड-आपत्तिस आपन्न हूँ। उस मिथुको आनन्द ! स्मृति विनय देना चाहिये। इस प्रकार

१. बुद्धवर्गा ४ (समय संघक) " वना है विवाह अधिकरण ? मिथु विवाह करते हैं—धर्म है या अधर्म विनय है या अधिकरण, तथागतका भाषित है या अधभाषित तथागतके वृत्ताधिकरण किया या नहीं; तथागतके प्रयत्न किया या नहीं; आपत्ति है या अधभाषित (अ-शौच); अनु आपत्ति है या गुण्ड आपत्ति; न अधभाषण (= बाकी रहकर)

सामान्य ! स्मृति-विषय होता है । इस स्मृति विषयसे भी किन्हीं किन्हीं झगड़ोंका निपटारा होता है ।

भाषति है या अनु-अवज्ञाप भाषति, सुदृष्टान् भाषति इ, वा अनुदृष्टान् भाषति । जो वहाँ मंडव=ककड़=विप्राह=विवाह, नाशावाह अन्वधावाह है वही विवाहाधिकरण कहा जाता है । क्या है अनुवाद-अधिकरण ? मिथु मिथुको काष्ठ-विपत्ति (= सीकर्सर्वधी बाप ) से वा आचार विपत्तिसे वा दष्टि (= सिद्धांत)-विपत्तिसे वा आजीव-विपत्तिसे अनुवाद (= दोषारोप ) करते हैं । अनुवाद=अनु-वदता = अनुस्मयना । क्या है भाषति-अधिकरण ? जो स पक्ष कृत्य करणीय (है वैसे सपदा) अवशोकन-वर्त्म शसि (=संपन्नो सूचना)-कर्म शसि द्वितीयकर्म शसि कतुर्धर्म—वह कृत्याधिकरण कहा जाता है । १ कुम्भकर्म ( ७ )— अनुज्ञा करता है मिथुको ! इस प्रकारके अधिकरणका वर्णनसिद्धसे उपपन्न करता । पाँच अङ्गी (=गुणों)से कुछ मिथुको प्रकाश (=बोडकी सम्मन्ध जो वैश्वकी कहा व्यवहृत होती थी)-प्रहापक (=सकाका बँटनेवाला) मानता चाहिये—( १ ) जो भवती स्थिके रास्ते न जाने ( २ ) न दृष्टके रास्ते जाने ( ३ ) न माहके रास्ते जाने ( ४ ) न अयके रास्ते जाने ( ५ ) न ( पहिलेसे ) पकड़े रास्ते जाय । । वर्णनसिद्ध क्या है ? ( पह ) जो बहुमतके अनुसार (=वर्णनसिद्ध) कर्मका करण ( कर्मका) स्वीकार करना इस प्रकार अवका शीत हो जाय फिर ( धारी ) उसका उत्कोटव (=अमान्य, विरोध) करे तो उसे उत्कोटव-प्रवर्धित ( करना होया ), अनु-वायक (=बोडर मतदाता) बरि अस्तोप प्रकट करे (=स्वीकृति), तां स्वीकृत-भाषति । । अनुज्ञा करता है मिथुको ! तीन प्रकारके सत्काक-प्रहण (=Voting)को—( १ ) गुरुक ( २ ) स कर्ण-अल्पक धार ( ३ ) विवृतक । मिथुको ! गुरु सत्काक प्राह कैसे जाता है ? उस सत्काकप्रहापक मिथुको शस्यकार्थे रद्दीन बेरनीन बनाकर एक एक मिथुके पास जाकर यह कहना चाहिये—‘यह ऐसे पक्षवालेकी शाकाका है यह ऐसे पक्षकी जिसे जाहा क को । (सत्काकार्थे) प्रहणकर देनेपर बोसना चाहिये—‘किस्तीकी मत निश्चयको । यदि जाने कि अधर्म-धारी (=उच्छा कर्मवाह) अधिक है तो दुर्मह (अधिकसे न प्रहम) है; (सोच) छोटा केना चाहिये । यदि जाने कि धर्म धारी अधिक है तो सुप्रह (अधिकसे प्रहम) है बोचना चाहिये । इम प्रकार मिथुको ! गुरुक सत्काक-प्राह होता है । कैसे मिथुको ! स-कर्ण-अल्पक सत्काक-प्राह होता है ? शस्यका प्रहापक मिथुको जा के एक एक मिथुके पास जाकर यह कहना चाहिये—‘यह ऐसे पक्षकी सत्काक है ऐसे पक्षकी शाकाका है जिस चाहो क का । स देनेपर जाचना चाहिये—‘किस्तीका मत मतकाको । यदि जाने कि अधर्म-धारी (=उच्छाकर्मवाह) अधिक है तो ‘दुर्मह है (सोच) सत्काक) छोटा केनी चाहिये । मिथुको ! विवृतक सत्काक-प्राह कस होता है ? यदि जाने धर्म-धारी बहुत है तो विवास पूर्वक विवृत (=सुखी सम्मन्ध) प्रहण करानी चाहिये ।

१ अ क ‘वहाँ पाराजिह्य-आपत्ति-रुद्ध्य संघादिद्येय एषू-आवय प्रतिदेश नीच, सुदृष्टान् सुमीयित भाषति-स्वैव इवमे पूर्व-पूर्ववालेके पीछेजाने सामान्यक दात है ।

‘आत्मन् ! अमूर्क-विनय कस होता है ? वहाँ आत्मन् ! मिथु मिथुपर गुल्फ-आपत्तिक आरोप करता है ! वह ऐसा उचर देता है—आबुस ! मुझे स्मरण नहीं कि मैं आपत्तिसे आपन्न हूँ । तब वह छोड़ते हुये को कपेटता है—‘तो आमुप्मात् ! अर्ध्नी तरह बूझो क्या तुम स्मरण करते हो कि तुम ऐसी ऐसी गुल्फ आपत्तिसे आपन्न हुये ? वह ऐसा उचर देवे—‘मैं आबुस ! पागल हो गया था मति-भ्रम ( हो गया था ) उन्मत्त हो मैंने बहुतसा अमूर्क-विन्द आचरण किया आपन्न किया; मुझे वह स्मरण नहीं होता ! मूठ ( = बेहोस ) हो मैंने वह किया । उस मिथुको आत्मन् ! अमूर्क-विनय देना चाहिये । इस अमूर्क-विनयसे भी किन्हीं किन्हीं शगर्षोंका निवृत्तारा होता है ।

‘आत्मन् ! प्रतिज्ञात-करण कैसे होता है ? आत्मन् ! मिथु आरोप करनेपर या आरोप न करण पर भी आपत्ति ( = रोप ) को करण करता है, बोलता है । उस मिथुको ( अर्धनेसे ) इत्तर मिथुक पास जाकर, चीवरको एक ( बाँधे ) कंधेपर करके पार्श्व-प्राकार उकड़-बैठ हाथ जोड़ ऐसा कहना चाहिये—मन्ते ! मैं इस नामकी आपत्तिसे आपन्न हुआ हूँ इसकी मैं प्रतिवेदन ( = निवेदन ) करता हूँ । वह ( इतरा मिथु ) ऐसा कहे—‘देखते हो ( उस रोपको ) ? देखता हूँ । अगोसे ( इच्छिय ) रक्षा करना । ‘रक्षा करेगा’ । इस प्रकार आत्मन् ! प्रतिज्ञात-करण ( = स्वीकार = Confession ) होता । ।

‘आत्मन् ! अमूर्कसिक कैसे होता है ? आत्मन् ! यदि वह मिथु इस अधिकरणको उस आवास ( = मठ )में सात न कर सके । तो आत्मन् ! उन समी मिथुओंको जिस आवास में अधिक मिथु है उसमें जाना चाहिये । वहाँ सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये । एकत्रित हो धर्म-नेत्री ( = धर्मरूपी रस्ती )का समनुमार्जन ( = परीक्षण ) करना चाहिये । धर्म-नेत्रीका समनुमार्जन कर ।

‘आत्मन् ! तपायी-पत्तिसिक ( = तपसा पापीपत्तिसिक ) कैसे होती है ? वहाँ आत्मन् ! मिथु मिथुकी ऐसी गुल्फ-आपत्ति आरोप करते हैं—आमुप्मात् स्मरण करो तुम ऐसी गुल्फ-आपत्ति आपन्न हुए ?’ वह ऐसा उचर देता है—‘आबुस ! मुझे स्मरण नहीं कि मैं ऐसी गुल्फ-आपत्तिसे आपन्न हुआ । उसका छोड़ते हुयेको वह कपेटता है—आमुप्मात् अर्ध्नी तरह बूझो—क्या तुम्हें स्मरण है कि तुम ऐसी गुल्फ आपत्तिसे आपन्न हुये ? वह ऐसा उचर दे—‘आबुस ! मैं स्मरण नहीं करता कि मैं ऐसी गुल्फ आपत्तिसे आपन्न हुआ । स्मरण करता हूँ आबुस ! कि मैं इस प्रकारकी छोटी ( = अल्पमात्र ) आपत्तिसे आपन्न हुआ । सोचते हुये उसको वह फिर कपेटता है—‘आमुप्मात् अर्ध्नी तरह बूझो ?’ वह ऐसा उचर दे—‘आबुस ! मैं इस प्रकार की ( = अमुक ) छोटी आपत्ति आपन्न हुआ बिना पृच्छी स्वीकार करता हूँ ; तो क्या मैं ऐसी गुल्फ आपत्ति आपन्न हा पृच्छेपर न स्वीकार करूँगा ?’ वह ऐसा कहता है—‘आबुस ! तुम इस छोटी आपत्तिको भी बिना पृछे वही स्वीकार करत तो क्या तुम एसी गुल्फ-आपत्ति आपन्नको पृच्छेपर स्वीकार करोगे ? तो आमुप्मात् ! अर्ध्नी तरह बूझो । वह यदि बोले—‘आबुस ! स्मरण करता हूँ मैं ऐसी गुल्फ आपत्ति आपन्न हुआ हूँ । एक ( = मठसा ) से एक ( = प्रमाण ) न मैंने वह कहा—‘मैं स्मरण नहीं करता कि मैं ऐसी’ ।

इस प्रकार जानम् । 'तस्स पापीयसिका (=उसकी और भी कहीं जापत्ति) होती है । ऐसे भी वहाँ किन्हीं किन्हीं अधिकरणोंका निबध्ना होता है ।

“आत्मन् । 'विण-आधारक' कैम होता है ? आत्मन् ! वहाँ भवन्=कसह=विचारमे पुण हो विहरते(समय) मिथु बहुतसे भ्रमण-विस्मय आधारण भाषण किये होते हैं । इन सभी मिथुओं को एकराज हो एकत्रित होना चाहिये । एकत्र हो एक पक्षबाकोंमेंसे चतुर मिथुको आसन से उठकर नीचेको एक कंधेपर कर क्षयबोध संभको श्रापित करना चाहिये—

‘मन्ते ! संघ सुमे भवन् = कसह = विचारमे पुणहो विहरते ( समय ) इनमे बहुतसे भ्रमण-विस्मय आधारण किये हैं यदि मघ उक्ति समझ तो जो इन आत्मानोंका शेष इ और जो मेरा शेष है इन आत्मानोंके किये भी और अपने कियेमी में तिजबत्तारक (=व्यासस डाँकना जैसा) म बवान कर (सेकिन) स्पृह-वच (= बड़ा शेष ) गृही-वृत्तिम पुण (=गृहस्थ-संबंधी) छोड़कर । तब (कूमरे) पक्षबाकोंमेंसे चतुर मिथुको आसनेसे उठकर । । इस प्रकार जानम् ! तिजबत्तारक (= तूजस डाँकन जैसा) होता है ।

आत्मन् ! वह छ धर्म साराणीय विध-करण, गुण करण है; समग्र अ विचार, सामग्री (=० कता) =एकीभावक किये हैं । कीमते छ ? (१) जानम् ! मिथुका सप्रज्ञाचारियोंमें गुप्त भी प्रकट भी मत्रीभाव-पुण फाँवक धर्म हो; वह भी धर्म साराणीय । (२) और फिर जानम् ! मत्रीभाव-पुण वाचिक धर्म । (३) मत्रीभावपुण भावस धर्म । (४) और फिर जानम् ! जो कुछ मिथुका धार्मिक लाभ धर्मसे कस्य होते हैं अन्तमें वाच सुपदने माघ भी कैमे छाओंको बिना बाने उपभोग न करमेवाक्य हो सीमवान् स-प्रज्ञाचारियोंके साथ सह भोगी हो यह भी धर्म । (५) और फिर जानम् ! जो वह कौक (= आचार) कि अर्थह=अ-उत्त अ-कसह = न-कसम सेवनीय पंडितोंस प्रसंसित अ-निहित, समाधि-सहायक है कैस छीकोंमें कीस-धमज-भाषणपुण हो, गुप्त भी और प्रकट भी सप्रज्ञाचारियोंके साथ विहार करता हो यह भी धर्म । (६) और फिर जानम् ! जो वह दधि (= सिद्धांत) जाये है निर्वाचिक =उसक (जबुमार) करनवालेको हुःक-क्षयको सेक्यती है कैसी दधिम दधि भ्रमण भाष (= विचारोंके भ्रमण-पन)से पुण हो गुप्त भी और प्रकट भी सप्रज्ञाचारियोंके साथ विहार करता हो; यह भी धर्म । जानम् ! यह छ धर्म साराणीय है ।

भगवान्ने यह कहा; मनुष्य हो आत्मान् आत्मन्ने मगवान्के भाषनका अमिषन्त क्रिया ।

( ८ )

### मगीति-परिघाय सुण ( ३० पू० ४८५ )

‘ज्या मीमे सुवा—एक समय पाँच-मी मिथुओंके महामिथु-संघके साथ भगवान् इह ( देश)में जाविदा करत जहाँ पाया नामक मक्खोंका नगर है वहाँ पहुँचे । वहाँ पागामे मगवान् शुम्भ कम्मार्-पुणक आश्रयमें विहार करत थ ।

उस समय पाया-वामी मण्डोंका उँचा बना सुस्थानार (= मगर  
१ श्री सि ३ १ । २ परिघाँ (बिना देपरिवा) ।

मवन) अभी-अभी बना था; (जहाँ अभी) किसी समय या ब्राह्मण या किसी मनुष्य ने नाम नहीं दिया था। पाषाण-वासी मस्कोंने सुना— भगवान् मस्कोंमें चारिका करते पाषाणमें पहुँचे हैं और पाषाणमें कुछ कर्मार (सोमार) -पुत्रके आश्रयमें विहार करते हैं। तब पाषाणवासी मस्क जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँच। पहुँचकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे पाषाणवासी मस्कोंने भगवान्को कहा—

‘मन्ते ! जहाँ पाषाण-वासी मस्कोंका ठाँवा (अभ्यस्तक) बना संस्थागार किसी भी समय या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न बना अभी ही बना है। मन्ते ! भगवान् उसको प्रथम परिभोग करें। भगवान्के पहिले परिभोग कर कनेपर पीछे पाषाण-वासी मस्क परिभोग करेंगे वह पाषाण-वासी मस्कोंक किये शीघ्रराज (अचिरकाल) तक हित मुखड़े लिखे होगा।’ भगवान्ने मात्र यह स्वीकार किया।

तब पाषाणके मस्क भगवान्की स्वीकृति ज्ञान आसन्न उठकर भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ संस्थागार था वहाँ गये। आकर संस्थागारमें सब ओर कम बिछा आसन्नको स्थापितकर पानीके मटके एक टेकक शीपक आरोपित कर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खड़े हो बोले—

मन्त ! संस्थागार सब ओर बिछा हुआ है, धामन स्थापित किये हुए हैं पानीके मटके रखे हुए हैं। एक प्रशीप रये हुये हैं। मन्ते ! अब भगवान् जिसका काल समयमें (बना करें)।

तब भगवान् पहिलकर पात्र चौकर के मिथु-संघके साथ जहाँ संस्थागार था वहाँ गये। आकर पैर पजार संस्थागारमें प्रवेशकर पूर्वकी ओर मुँहकर, पच्छिमकी भीतक सहारे भगवान्को आगे कर बैठे। पाषाणवासी मस्कमी पर पजार संस्थागारमें प्रवेशकर पच्छिमकी ओर मुँहकर पूर्वकी भीतक सहारे भगवान्को सामने करके बैठे। तब भगवान् पाषाणवासी मस्कोंको बहुत राततक आत्मिक कषामे संक्षिप्त व समाहित समुत्तेजित संप्रक्षिप्त कर विसर्जित किया—

‘घाशिष्ट ! रात तुम्हारी बीत गई अब तुम जिसका काल समयमें (बना करो)। अथवा मन्त ! पाषाण-वासी मस्क आसन्नसे बैठ भगवान्को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चले गये।

तब मस्कोंके आनेके पोषीही बेर बाद, भगवान्ने घात (= तुष्मीमूत) मिथु संघका संघ भावुष्मान् सारिपुत्रका आसन्नित किया—

‘सारिपुत्र ! मिथु संघ स्थान-सुख रहित है। सारिपुत्र ! मिथुओंको धर्म-कषा कहे मेरी पीठ अगिला रही है सो मैं सम्भा पहुँगा।’

भावुष्मान् सारिपुत्र भगवान्को अथवा मन्त ! कह उत्तर दिया। तब भगवान्ने पाषाणी संभारी बिछवा सहिर्नी करबन्धने पैरपर पैर रख स्मृति-संघकषाक साथ अथवा-संघा मनन कर सिंह-शब्दा कगाई। उस समय निर्गद ज्ञान-सुख अभी अभी पाषाणमें

१ अ क क्यों अतिपाती थी ? भगवान्के छ बर्षतक महातपस्या करन बन्ध शरीरको बड़ा दुःख हुआ। पीछे बुद्धागमें उन्हें पीठमें घात-सोण उत्पन्न हुआ।



काक किये थे। उनके काल करनेसे निगठ फूटकर दो भाग हो मंडन = कलह = विषयमें पड़े, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्तिम चीरते हुए बिहर रहे थे। माओ नात-पुक्ति किमि में एक मुख (= बच) ही बक रहा था। जो भी निगंड नातपुक्त इतै बकबारी पुरत भावक थे।

आमुष्मान् सारिपुत्रने मिश्रुओंको आमंत्रित किया—

आमुसो ! निगंड नात-पुक्तबै पाषामें जमी जमी काक किया है। उबक काल करनेसे निगंड फूटकर दो भागमें हो, मंडन=कलह=विवाद करत एक दूसरेको मुख-शक्तिमें डेप्टे बिहर रहे हैं—'दृश्य धर्म-विषयको नहीं जानता। निगंड नातपुक्तके जो इतै बक-पारी गूड़ी भावक हैं वह भी नातपुक्तिब निगंडों में (कैसही) विविध्य = विरक्त = प्रति-बन्ध रूप हैं किमेकि वह (नातपुक्तके) बुराक्यात दुष्प्रवेदित अ-नर्पायिक अन्-उपसम-संबर्तनिक अ-सम्बन्ध-अनुद्-प्रवेदित प्रतिश-रहित, आश्रय-रहित धर्म-विषयमें। किंतु आमुसो ! हमसे भगवाद्का यह धर्म सु-आठवात (= डीकमे कहा गया), सु प्रवेदित (= डीकमे साक्षात्कार किया गया) नैर्पायिक (= दुष्प्रसे पार करने बाध्य) उपसम-संबर्तनिक (=जाति प्रापक) सम्बन्ध-अनुद् प्रवेदित (=पूर्व शक्तीद्वारा जाया गया) है। तहाँ सबको ही अ-विद्वद् बचनबाध होना चाहिये। विवाद नहीं करना चाहिये जिससे कि वह महात्त्व अल्पनिक = (विर-स्वायी) हो और वह बहुजन-मुत्पार्थ सौक्यके अनुकम्पाके किये देव-अनुपार्थके धर्म = हित = सुलके किये हो। आमुसो ! कैसे हमारे भगवाद्का धर्म देव अनुपार्थके धर्म = हित = सुलके लिए होय ?

१ आमुसो ! उन भगवाद् माननहार बखानहार, अर्हंत, सम्बन्ध संसुहने एक धर्म डीकमे बतकाया है। उसमें सबको ही अविरोध-बचनबाध होना चाहिये, विवाद न करना चाहिये, जिसमें कि वह महात्त्व अल्पनिक = (विरस्वायी) हो। कौन-सा एक धर्म ? सब प्राणी आहार पर विवत (= निभर) हैं। आमुसो ! उन भगवाद्क यह एक धर्म बचाव बतकाया। इसमें सबको ही।

२ "आमुसो ! उन भगवाद् ने 'दो धर्म बचार्थ कह हैं।। कौनसे दो ? धाम अर रूप। अविद्या और मय (= भावागमबन्धी) -गुण्य। मय (= निवृत्ता) दृष्टि और विमय (= इच्छेद्) दृष्टि। अदोक्ता (= अज्ञारहितता), और अन्-अवज्ञान (= मयारहितता)। ही (= कथा) और अवपरा (= मय)। दुर्बलता और पाप (= दुष्टकी) -मित्रता। सुपचनता और कस्याप (= अनु) -मित्रता। आपत्ति (= शोच) -कुसलता (= चतुराई) और आपत्ति-अनुवाच (= इच्छा) -कुसलता। समापत्ति (= अपाव) -कुसलता, और समापत्ति-अनुवाच-कुसलता। 'आतु-कुसलता और मनसिचार-कुसलता। 'आवतव-कुसलता और 'प्रमत्त्य-समुत्पार्थ-कुसलता। स्वाध (= धारण) -कुसलता और अ-स्वाध-कुसलता। आर्ध (= स्वीयापन) और धार्ध (= कामकता)। शक्ति (= क्षमा) और सौरध (= अक्षर

१ अ क "पानु अरारह है—अधु आप्र प्रात त्रिद्व काय मन रूप सप्त, गंध रम स्पष्टय धर्म अनुविज्ञान आत विज्ञान, प्राय विज्ञान त्रिद्वविज्ञान कावदिज्ञान, प्रमाविज्ञान।" २ "उन पानुओंको प्रजाग जावनेही विगुलता। ३ 'आवतव वारह है—अधु आत प्रात त्रिद्व काय मन रूप सप्त गंध रम स्पष्टय धर्म। ४ देवें वृह १२।

बुद्ध्या) साक्षिण्य (=अभुर-बचनता) और प्रति-संनार (=बस्तु या धमका किम् विमान) । अभिहिंसा (=अभिहिंसा) और शौचेव (=अभ्रीमाचना) । सुपित-रस्युतिता (=स्युति-शोप) और अ-संप्रकल्प (=अविद्या) । स्युति चार संप्रकल्प (=ज्ञान, विद्या) । इन्द्रिय अगुस-द्वारता (=अ-चित्तेन्द्रियता) और मौजबमें-अ मात्रज्ञता (मोजबमें अपने किंच मात्रा न ज्ञानता) । इन्द्रिय-गुस-द्वारता और मोजन-मात्रज्ञता । पतिसंख्यान (=अकंपन ज्ञान)-बळ और भावना बळ । स्युति बळ और समाधि-बळ । समय (=समाधि) और विपश्यना (=प्रज्ञा) । समय-निमित्त चार विपश्यना-निमित्त । प्रमद (=चित्त-निग्रह) और अ-विज्ञेय । शीक-विपत्ति (=आचारशोप) और दृष्टि-विपत्ति (=सिद्धांत शोप) । शीक-सम्पदा (=आचारकी सत्त्वता) और दृष्टि-विद्युद्धि कइत है सम्यकदृष्टिक निरंतर भव्यास (=प्रधान)को । अंबेग कइते है संबेजनीय (=उद्वेगकरदीबाळ) म्बाबोंमें सचिय (=विचिता) का कारण-गूळ किरंतर भव्यास । कुशाक (=अक्षय) धर्मीमें अ-संतुष्टिता चार प्रधान (=निरंतर भव्यास) में अ प्रतिवाधिता (=निराकृष्टता) । विद्या (=तीन विद्याओं) स विमुक्ति (=आत्मबौस विचकी विमुक्ति) चार निर्वाण । धाबुसो ! उम भगवान् ने इन दो (=कोई) धर्मीको ठीकसे कहा है ।

- ३ "अधुसो ! उम भगवान् ने यह तीन धर्म बघाव कइते हैं ।
- काम से तीन ? तीन अकुशाक-मूळ (=बुराईकी बह) हैं । काम से तीन ?
- कोम अकुशाक-मूळ होय अकुशाक-मूळ मोह अकुशाक मूळ ।
- तीन कुशाक-मूळ हैं—अकोम और अ-द्वेष चार अ-मोह-अकुशाक-मूळ ।
- तीन सुखरित हैं—अप-सुखरित, बचन-सुखरित और मन-सुखरित ।
- तीन सुखरित हैं—अप-सुखरित बचन-सुखरित और मन-सुखरित ।
- तीन अकुशाक (=बुरे) बितर्क—काम-बितर्क ध्यापाद् (=श्रोह) बिहिंसा ।
- तीन कुशाक (=अच्छे)-बितर्क—वैकल्यम (=विष्णुमता) अ-ध्यापाद् अ-बिहिंसा ।
- तीन अकुशाक-संकल्प (= बितर्क)—काम ध्यापाद् बिहिंसा ।
- तीन कुशाक संकल्प—वैकल्यम अध्यापाद् अभिहिंसा ।
- तीन अकुशाक संज्ञाएँ—काम ध्यापाद् बिहिंसा ।
- तीन कुशाक संज्ञाएँ—वैकल्यम अध्यापाद् अ-बिहिंसा ।
- तीन अकुशाक वातु (=तर्क बितर्क)—काम ध्यापाद् बिहिंसा ।
- तीन कुशाक वातु—विष्णुमता अध्यापाद् अ-बिहिंसा ।
- दूसरे भी तीन वातु (=कोक)—कामवातु, क्य-वातु, अ-क्य-वातु ।
- दूसरे भी तीन वातु (=चित्त)—हीन वातु मध्यम वातु प्रतीत वातु ।
- तीन मूष्यएँ—काम मय (=आवागमन) विमय ।
- दूसरी भी तीन मूष्यएँ—काम क्य अ-क्य ।
- दूसरी भी तीन मूष्यएँ—क्य अ-क्य विराय ।
- तीन संवाजन (=बंधव)—सत्यव-दृष्टि बिधिकलना (=सर्वह) धीकमत परामर्श ।
- तीन आकव (=बित्तमळ)—काम मय अविद्या ।

तीन भव (= आवागमन) — काम, (-आगुमें) रूप मरूप ।

तीन प्यगार्थे (= राय) — काम भव ब्रह्मचर्ये ।

तीन विध (= प्रकार) — मैं सर्वोत्तम हूँ मैं समान हूँ मैं हीन हूँ ।

तीन अण्व (= अक्षर) — जतीत (= भूत) , अनागत (= अभिष्य) प्रत्युत्पद्य

(= वर्तमान) ।

तीन अन्त — सत्काय सत्काय-समुत्पन्न (= उत्पत्ति) , सत्काय-निरोध ।

तीन वेद्वार्ये (= अनुभव) — सुखा दुःखा अन्तु न-असुखा ।

तीन बुद्धता — बुद्ध-बुद्धता संस्कार विपरिणाम ।

तीन राक्षिवां — मिथ्यात्व-नियत मन्वकत्व-नियत अनियत ।

तीन कर्माद्ये — जतीतकाक्यो केकर कोहा = विधिकिया करता है नहीं कृष्टा नहीं प्रसन्न

होता है । अनागत काक्यो छकर । प्रत्युत्पद्य काक्यो ।

तीन तपागतक भरक्षणीय — अन्तुसो । तपागतक काचिक आचरण परिशुद्ध है तपागतको काय

बुद्धरित नहीं है बिसकी कि तपागत कारहा (= तोपन) करें — 'मत बूसरा कोइ इस

आन से । जानुसां । तपागतका वाचिक आचार परिशुद्ध है । तपागतक मानमिध

आचार परिशुद्ध है ।

तीन किंचव (= अतिबंध) — राग द्वेष मोह ।

तीन अग्निर्वां — राय द्वेष मोह ।

आर भी तीन अग्निर्वां — आह्वयवीय गाहपन्थ वृक्षिण ।

तीन प्रकारसे रूपोका संप्रह — सनिर्दान (= स्व पिजाव-सहित दर्शन) अनतिध (= अ-

पीडाकर) रूप अनिर्दान समतिध ।

तीन संस्कार — पुण्य-अभिसंस्कार, अ पुण्य-अभिमंस्कार भाविम्य (= जानन) अभिसंस्कार ।

तीन पुत्रगण (= पुत्र्य) — धर्य (= जमुक्त) अनर्तय (= मुक्त) न-सत्त्व न अनर्तय ।

तीन स्वधिर (= बृद्ध) — जाति (= ब्रह्मस) धर्म सम्प्रति-स्वधिर ।

तीन पुण्य-विवावस्तु — दानमय-पुण्यविद्या वस्तु, शोकमय भावनामय ।

तीन शोपाराण (= शोपना)-वस्तु — वेद्ये ( शोप)स मुने ( शोप)म संका क्रिय ( शोप)ने ।

तीन काम (= मोर्गोकी) -उपपत्ति (= उत्पत्ति प्राप्ति) — आनुमा । कुछ प्राणी वक्तमान

कामउपपत्तिवाले हैं वह वच मान कामोंके वसवर्ती होत हैं जैसेकिमनुष्य कुछ देवता

आर कुछ विनिपातिक (= अक्षमयोनिवाक) ; वह प्रथम काम उपपत्ति है । आनुमो ।

कुछ प्राणी निर्मितकाम हैं वह ( स्वयं अपने द्विध ) निर्माणकर कामाक वसवर्ती होत हैं

जैसे कि निर्माण-रति-देव आग वह दूमा काम उपपत्ति है । आनुमो ! कुछ प्राणी पर

निर्मित-काम हैं वह दूयतोंक निर्मित कामोंक वसवर्ती होत हैं ; जम कि पर-निर्मित-

वसवर्ती दूध काम । वह तीसरी काम उपपत्ति है ।

तीन सुग उपपत्तिने — आनुमा । कुछ प्राणी सुग उन्नत कर सुग पूरक निहरत हैं ; जैसे कि

महाकायिक देव आग । वह प्रथम सुग-उपपत्ति है । आनुमा ! कुछ प्राणी सुग

अभिरुग्ग-अभिरुग्ग = परिपूर्ण = परिशुद्ध हैं । वह कमी कमी उदान (= किरावक-

ससे विकल्प वाक्य ) कहते हैं—'अहो सुख ! 'अहो सुख !!' जैसेकि आमास्वर देव ।  
आजुसो ! कुछ प्राण्य सुखसे परिपूर्ण है, वह उत्तम ( सुखमें ) संतुष्ट हो विच-  
सुखको अनुभव करते हैं, जैसे सुम-कृत्स्न देव लोग । यह तीसरी सुख उपपत्ति है ।

तीस प्रज्ञावै—दीप्त्य ( =असुख-सुखपक्षी)-प्रज्ञा अ-दीप्त्य अदीप्त्य-अ-अदीप्त्य प्रज्ञा ।

और भी तीस प्रज्ञावै—चिन्ता-मयी प्रज्ञा श्रुतमयी भाववामयी ।

तीस आधुप—सुत ( पदा ) प्रविशैक ( =विशैक ) ; प्रज्ञाविशैक ।

तीस इन्द्रिवर्ग—अन्-आज्ञात-आज्ञास्वामि ( =व जाबैको जाम्गा )-इन्द्रिय आशा आशा-  
तापी ( =अहर्त-ज्ञान ) ।

तीस चक्षु ( =नेत्र )—मांसचक्षु, दिव्यचक्षु प्रज्ञाचक्षु ।

तीस सिद्धावै—अविशैक ( =सीकविपपक )-सिद्धा अवि-विच ( =विचविपपक )  
अवि-मल ( =प्रज्ञाविपपक ) ।

तीस भावनावै—अव-भावना विच भावना प्रज्ञा-भावना ।

तीस अनुचरीप ( = उत्तम कोड )—इसंब ( = विपश्चना साक्षात्कार )-अनुचरीप प्रतिपद्  
( = मार्ग ) विमुक्ति ( = अहर्त विर्वाण ) अनुचरीप ।

तीस समाधि—स-वितर्क-सविचार-समाधि अवितर्क-विचार-भाव-समाधि अवितर्क-अविचार  
समाधि ।

और भी तीस समाधि—शून्यता-समाधि अ-निमित्त अ-अभिहित-समाधि ।

तीस सीनेव ( = पक्षिप्रता )—अप वाक मन-सीनेव ।

तीस मौनेव ( = मौन )—अप वाक् मन-मौनेव ।

तीस कौशल्य—अप अपाव ( =विनाश ) अपाव-कौशल्य ।

तीस मद्—आरोग्य-मद् बीजनमद् जाति-मद् ।

तीस आधिपत्य ( स्वामित्व )—अध्याधिपत्य लोक धर्म ।

तीस कथावस्तु ( = कथा विषय )—अतीत कालको क कथा कहे 'अतीतकाल ऐसा था' ।  
अनागत कालको क कथा कहे—'अनागतकाल ऐसा होगा' । अचक प्रस्तुत्यकाल-  
का क कथा कहे—इस समय प्रस्तुत्यकाल ऐसा है' ।

तीस विद्या—द्वै विद्यास अनुस्यूतिज्ञान विद्या ( =द्वैअसू-रमरव ) प्राविर्षिके प्युति  
( =सूत्यु )-उत्पाद ( =अगम ) का ज्ञान आत्मबोध छपक ज्ञान ।

तीस विहार—विषय-विहार, मद् विहार आप-विहार ।

तीस प्रातिहार्य ( = चमत्कार )—अदि आदेशना अनुशासनी-प्रातिहार्य । यह आजुसो !  
उप समयवाक् ।

“आजुसो ! उप भगवान् न (यह) चार धर्म बयार्थ कहे हैं । कौनस चार ?

चार' रस्युतिपरवाच—आजुसो ! भिक्षु कथामें कथानुपस्थी विहरता है । वेदवाच्यमें ।  
लोकमें । धर्ममें धर्मानुपस्थी ।

चार सत्रक प्रदान—भिक्षु अनुपस्थ पापक ( = धुरे ) = अकुसल धर्मोक्ती अनुपस्थिक छिपे

दृष्टि उत्पन्न करता है परिग्रह करता है प्रकल्प करता है चित्तको विग्रह = प्रधारण करता है । (१) उत्पन्न पापक = अकुसल धर्मोंके विनाशके लिये । अनुत्पन्न कुशल धर्मोंकी उत्पत्तिके लिये । उत्पन्न कुसल धर्मोंकी स्थिति, अविनाश वृद्धि विपुलता भावनासे पूर्ति करनेके लिये ।

चार ऋद्धिपाद—आयुसो ! मिथु (१) छन्द (अक्षरसे उत्पन्न)-समाधि (के)-प्रधान संस्कार से युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है । (२) चित्त-समाधि-महात्म-संस्कारसे । (३) बीर्ष (अपत्य)-समाधि प्रधान-संस्कार । (४) विमर्श-समाधि प्रधान संस्कार ।

चार ध्याव—आयुसो ! मिथु (१) प्रथमध्यानको प्राप्त हो विहरता है । (२) द्वितीय-ध्याव । (३) तृतीय ध्याव । (४) चतुर्थ ध्याव ।

चार समाधि-भावना—(१) आयुसो ! (ऐसी) समाधि-भावना है जो भावित होनेपर वृद्धि-प्राप्त होनेपर, इसी क्षणमें सुख-विहारके लिये होती है । (२) आयुसो ! (ऐसी) समाधि भावना है जो भावित होनेपर, वृद्धि प्राप्त होनेपर, ज्ञान-वर्धन (=साक्षात्कार)के कामके लिये होती है । (३) आयुसो ! रम्यति सम्पन्नत्वके लिये होती है । (४) अलर्षोन्ने क्षयके लिये होती है । आयुसो ! कीमती समाधि-भावना है जो भावित होनेपर, वहुकी-कृत (=वृद्धि-प्राप्त) होनेपर इसी क्षणमें सुख-विहारके लिये होती है ? आयुसो ! मिथु प्रथम ध्याव द्वितीय ध्याव तृतीय ध्याव

चतुर्थ ध्यावको प्राप्त हो विहरता है । आयुसो ! यह समाधि-भावना भावित होनेपर । आयुसो ! कीमती या भावित होनेपर ज्ञान-वर्धनके क्षणके लिये होती है ? आयुसो ! मिथु आठोके (=प्रकाश)-संज्ञा (=ज्ञान) मगमें करता है दिन-संज्ञा अविद्यमान (=अविचार) करता है—'ऐसे दिन बीसी रात बीसी रात बीसा दिन' । इस प्रकार लुके बन्धन-रहित मन से प्रमा-सहित चित्तकी भावना करता है । आयुसो ! यह समाधि-भावना भावित होनेपर । आयुसो ! कान्ती जो रम्यति संप्रजन्य के लिये होती है ? आयुसो ! मिथुको विदित (=ज्ञानमें आई) वेदना (=अनुभव) उत्पन्न होती है चिरित (ही) उदरती है चिरित (ही) अस्तको प्राप्त होती है । विदित संज्ञा उत्पन्न होती है उदरती अस्त होती है । चिरित वितर्क उत्पन्न उदरते अस्त होते हैं । आयुसो ! यह समाधि-भावना रम्यति संप्रजन्यके लिये होती है । आयुसो ! कीमती है जो आत्म-अवक किम होती है ? आयुसो ! मिथु पौष वपादान-स्वर्धोमें उदय (=वेदवेदाका) हो विहरता है—'ऐसा क्षण है ऐसा रूपका समुदय (=उत्पत्ति) ऐमा रूपका अस्तव्यमन (=अस्त होना) ; ऐसी वेदना है ऐसी संज्ञा संस्कार विज्ञान । यह आयुसो ।

चार अपामान्य (=अ-सीम)—बहो आयुसो ! मिथु (१) मीचीयुक्त चित्तसे विहरता है । (२) करण्य-युक्त । (३) मुदिता-युक्त । (४) उदय-युक्त ।

चार आरुण्य (=रूप रहित-ता)—आयुसो ! (१) रूप-संज्ञाओंके सर्वथा अतिक्रमणसे,

मतिव ( = अतिहिंसा ) संज्ञाके अस्त होनेसे आमात्व ( = आकापन ) संज्ञाके मर्ममें व करनेसे, 'आकास अमन्त है इस आकाश-आमन्त ( = आकाशकी अमन्तता )-आमन्त ( = स्थापन ) को प्राप्त हो विहार करता है । आकाशामन्तव्यवहनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे 'विज्ञान अमन्त है' इस विज्ञान आमन्त-आमन्तको प्राप्त हो विहार करता है । विज्ञानामन्तव्यवहनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे 'कुछ नहीं ( = अरिबि क्विचि ) इस आकिंचन्त-आमन्तको प्राप्त हो विहार करता है । आकिंचन्तव्यवहनको सर्वथा अतिक्रमण करनेसे 'नैवसंज्ञा ( = न होय ही है )-न-असंज्ञा आमन्तको प्राप्त हो विहार करता है ।

धर अपाशयन ( = अकर्मण )—आयुसो ! मिथु ( १ ) संख्या ( = अज्ञान ) कर किसीको सेवन करता है । ( २ ) संख्याकर किसी ( = एक ) को स्वीकार करता है । ( ३ ) संख्या कर किसीको परिचय ( = अस्वीकार ) करता है । ( ४ ) संख्या कर किसीको हटाता है ( = विबोधेति ) ।

धर धार्य-वस—आयुसो ! मिथु ( १ ) जैसे जैसे धीवरसे सन्तुष्ट होता है । जैसे जैसे धीवरसे संतुष्ट होवे-अ प्राप्त होता है । धीवरके किये अनुचित अन्वेषण नहीं करता । धीवरको व पाकर हुआ नहीं होता धीवरको पाकर अन्वेषी अक्सि ( = अन्वेषित ) धमासक्त, बुद्धिपरिवाम-वर्षी = विस्तरमज्ञाचक्रा हा परिमोघ ( = उपभोग ) करता है । ( अपने ) उक्त जिस जिस धीवरके सन्तोषसे, अपनेको बड़ा नहीं मानता दूसरे को नीच नहीं समझता । जो कि वह दृष्ट विराहस संशय ( = आनवैवाक्य ) प्रतिस्मृत ( = पाद रखनेवाला ) होता है । यह कहा जाता है आयुसो ! मिथु पुराने धारण्य ( = अर्थात्तम ) धार्य-वसमें स्थित है । ( २ ) और फिर आयुसो ! मिथु जैसे जैसे पिङ्गाल ( = मिथु ) से सन्तुष्ट होता है । ( ३ ) जैसे जैसे सचवासव ( = विवास ) सं । ( ४ ) धीर फिर आयुसो ! महात्मा ( = स्थाप ) में समय करवैवाक्य महात्मा-वत् होता है । महात्माराम-अपवहारत होता है । उस महात्मारामतासे महात्मा-वत्तसे भावना-रामतासे भावना-वत्तसे व अपने को बड़ा मानता है न दूसरेको नीच मानता है ।

धर प्रथम ( अन्वेषण योग )—संवर ( = सचम )-प्रथम महात्मा, भावना अनुरक्षण-प्रथम । आयुसो ! संवर-प्रथम कौन है ? आयुसो ! मिथु चतु ( = अक्ष )से कम देक निमित्त ( = अंग अक्षर आदि )-प्राही नहीं होता अनुप्यवक प्राही नहीं होता । जिसमें कि चतु-इन्द्रिय-अधिकरणको न-सहृत ( न-रहित ) रण विहाते समय अमिथ्या ( = अज्ञान ) दौर्मनस्य पापक अ-शुभाक-वर्मे उसे मकिन न करें इसके किये संवर ( सचम रक्षा ) के किये यत्न करता है । चतु-इन्द्रियकी रक्षा करता है । चतु इन्द्रियमें समय-सीक होता है । ओरसे अप्प मुचर । प्रथमसे गर्भ पूर्वकर । विहाते रस चक्रकर । काव ( = अक्ष ) से स्वर्ण लुचर । मनसे धर्मको आनकर । यह कहा जाता है, आयुसो ! संवर प्रथम । क्या है आयुसो ! महात्मा-प्रथम ? आयुसो ! मिथु अत्यन्त काम-वितर्कको बड़ी पसन्द करता

अस्वीकार (=प्रहाज) करता है इरादा है जन्म करता है पापको पहुँचाता है।  
 उत्पन्न व्यापाद् (=द्रोह)-वितर्कको। उत्पन्न विहिंसा-वितर्कका। तब तब  
 उत्पन्न हुये पापक अकुसल धर्मोंको। जानुसो! यह प्रहाज प्रकाश कहा जाता है।  
 क्या है जानुसो! धावना प्रहाज? जानुसो! मिथु विवेक-निमित्त (=अधर्मित),  
 विराग निमित्त विरोध निमित्त ध्यवसर्प (=व्याग)-परिष्कारवाले 'स्युति-संबो-  
 र्धगम्भी भावना करता है धर्मविषय-संबोधगम्भी भावना करता है। धर्म-संबो-  
 र्धय। प्रीति सं। प्रकटित संबोधय। धर्माधि संबोधय। अपेक्षा संबो-  
 र्धय। यह कहा जाता है जानुसो! भावना प्रहाज। क्या है जानुसो! अनुरक्त-  
 प्रहाज? जानुसो! मिथु उत्पन्न हुये अस्विक-संज्ञा पुण्यवत्संज्ञा विधीक-संज्ञा  
 विधिक-संज्ञा अनुमातक संज्ञा (रूपी) उत्तम (=मद्रक) समाधि-निमित्तोंकी  
 रक्षा करता है। यह जानुसो! अनुरक्त-प्रहाज है।

धार ज्ञान—धर्म-विषयक-ज्ञान अल्प ज्ञान परिच्छेद ज्ञान संमति ज्ञान।

धार धी धार ज्ञान—दुःख ज्ञान दुःखसमुच्चय ज्ञान दुःख विरोध-ज्ञान दुःख विरोध-धर्मिकी  
 प्रतिष्ठा का ज्ञान।

धार श्रोत-ध्यापक के अर्थ—सत्यरूप-सेवन सद्गुरु-प्रवच धार्मिक-भावसिद्धि (प्रवचन-करक-  
 पूर्वक विचार)। जमानुधर्म-मतिपति।

धार श्रोत-ध्यापक के अर्थ—जानुसो! धर्म-आधक (१) बुद्धिमें अत्यन्त प्रकाश  
 (=प्रकाश) से प्रसन्न होता है—यह भगवान् अर्थात्। (२) धर्ममें अर्थात्  
 प्रसादसे प्रसन्न होता है। (३) संभर्षे। (४) धर्म-अर्थ-अर्थिक अ-सर्वक  
 = अ-कर्मक धर्म = विज्ञ-अर्थसित अपराधुत् (=धर्मित) समाधि-धामी  
 धर्म-अर्थिक (=अर्थ) धीधर्मसे बुद्ध होता है।

धार धामन् (=मिथुपवके) फल—श्रोत-ध्यापक-फल सद्गुरुरागामी-फल अर्थागामि-फल,  
 अर्थात्-फल।

धार धातु (= महाभूत) —धूमिली धातु, ध्यापकानु, वैश धातु वायु धातु।

धार आहार—(१) औद्योगिक (=रूपक) वा एवम कर्मकीकार आहार। (२) स्वर्ण।  
 (३) मन्-संवेतया। (४) विज्ञान।

धार विज्ञान (= चेतन धीव)-रिधितिया—(१) जानुसो! रूप प्राप्त कर उद्धरे, कर्ममें  
 रमण करते कर्ममें प्रतिष्ठित हो, विज्ञान स्थित होता है जन्मी (=तृष्णा) के  
 सेवकसे बुद्धि=विकृतताका प्राप्त होता है। (२) वेदवा प्राप्तकर। (३) धर्म  
 प्राप्तकर। (४) सर्वकर प्राप्तकर।

धार अर्थ-गमन—अर्थ (=स्वीर)-गति जाता है। इय-गति मोह-गति मन्-गति।

धार तृष्णा उत्पाद (=उत्पत्ति)—(१) जानुसो! मिथुकी धीवरक किसे तृष्णा उत्पाद  
 होती है। (२) विद्वत्ताके किसे। (३) सर्वगमन (=निगम)।  
 (४) अमुक अर्थ-अर्थ (=भयानक) के किसे।

चार प्रतिपद् (= मार्ग) — (१) सुखवाची प्रतिपद् और शेरसे ज्ञान । (२) सुखवाची प्रतिपद् और छिन्न (= बहरी) ज्ञान । (३) सुखवाची (= सहक) प्रतिपद् और शेरसे ज्ञान । (४) सुखवाची प्रतिपद् और बहरी ज्ञान ।

और मी चार प्रतिपद् — अ-अमा-प्रतिपद् । अमाप्रतिपद् । अमकी प्रतिपद् । अमकी ।

चार धर्म-पद् — अद् अमिष्या धर्मपद् । अ-म्यापाद् । अम्यक-स्युति । अम्यक समाधि ।

चार धर्म-समादान — (१) आबुसो । ईसा धर्म-समादान (= स्वीकार) जो वर्तमानमें भी सुख-अप अविष्यमें मी सुख-विपाकमय (२) वर्तमानमें सुख-अप अविष्यमें सुख-विपाकी । (३) वर्तमानमें सुख-अप अविष्यमें सुख-विपाकी । (४) वर्तमानमें सुख-अप और अविष्यमें सुख-विपाकी ।

चार धर्म-स्कन्ध — शीक-स्कन्ध (= आचार-समूह) समाधि-स्कन्ध । प्रज्ञा-स्कन्ध । विमुक्ति-स्कन्ध ।

चार बह — बीर्य-बह । स्युतिबह । समाधि-बह । प्रज्ञाबह ।

चार अधिष्ठान (= संकल्प) — प्रज्ञा । सत्य । स्वाय । उपसम अधिष्ठान ।

चार प्रज्ञ-व्याकरण (= सवाकका अबाह) — एकैप्र- (= ई या नहीं एकमें) -व्याकरण करने कापक प्रज्ञ । प्रतिपृच्छ ( = सवाकके रूपमें ) व्याकरणीय प्रज्ञ । विप्रज्ञ (= एक अंस ही मी दूसरा अंस नहीं मी करके) व्याकरणीय प्रज्ञ । व्यापणीय (= व उत्तर देने कापक) प्रज्ञ ।

चार कर्म — आबुसो । कृष्ण (= काका सुरा) कम और कृष्ण-विपाक (= सुरे परिधाम वाक्य) । (२) सुहकर्म सुह-विपाक । (३) सुह-कृष्ण-कर्म सुह-कृष्ण-विपाक । (४) अकृष्ण-अ-सुहकर्म अकृष्ण-असुह-विपाक ।

चार साक्षात्करणीय धर्म — (१) पूर्व-विद्यस (= पूर्व-अम्य)स्युति से साक्षात्करणीय । (२) प्राक्सिद्धा अम-अरण (= स्युति-वत्याद्) अबुसे साक्षात्करणीय । (३) आद विमोक्ष कापासे । (४) आलसोका क्षम प्रज्ञासे ।

चार बोध (= वाद्) — अम-बोध । मय (= अम्य) । एहि (मत्वाद्) = अविद्या ।

चार बोध (= मिथ्याता) — अम-बोध । मय । एहि । अविद्या ।

चार विसंयोग (= विभोग) — अम-बोध-विसंयोग । अमयोग । एहिविभोग । अविद्यावियोग ।

चार यन्त्र — अमिष्या (= अम्य) काव यन्त्र । स्वापाद् (= प्रोह) कावयन्त्र-।

शीक अत-परामर्श । यही सत्य है' पक्षपात ।

चार उपादान — काम उपादान । एहि । शीक-अत-परामर्श । आत्म-वाद् ।

चार बोधि — अहङ्गबोधि । अरायुक्त बोधि । संस्वङ्ग । भीषपातिक (= अपोवित्र) ।

चार धर्म-अवकान्ति (= गर्भकारण) — (१) आबुसो । कोई कोई (मार्ग) ज्ञान (= होस) बिना माताकी कोकमें जाता है ज्ञान-विद्या मातृ-कुक्षिमें उदरता है ज्ञानविद्या मातृ कुक्षिमें निकलता है, यह पहिची गर्भावकान्ति है । (२) और फिर अबुसो ! कोई कोई ज्ञान-सहित मातृ-कुक्षिमें जाता है ज्ञान-विद्या उदरता है, ज्ञान-विद्या निकलता है । (३) ज्ञान-सहित जाता है ज्ञान-सहित उदरता है ज्ञान-विद्या



निकम्पता है । (७) ज्ञान-सहित जाटा है ज्ञान-सहित उदरता है ज्ञान-सहित विकम्पता है ।

आर धारम-भाव प्रतिष्ठापन (= उरीर-धारम) — (१) आनुसो ! (२) आत्म-भाव प्रतिष्ठापन, जिस आत्म-भाव-प्रतिष्ठापनमें आत्म-संश्लेषा (अपनेको धारणा) ही पाटा (= कर्मता) है पर-संश्लेषता नहीं पाटा । (२) पर ही संश्लेषताको पाटा है आत्म संश्लेषताको नहीं । (३) आत्म-संश्लेषता भी पर-संश्लेषताभी (७) । व धारम-संश्लेषता व पर-संश्लेषता ।

आर वृद्धि-विक्षुद्धि (= दावक्षुद्धि) — (१) आनुसो ! वृद्धिना ( व्याप ) दावकसे मुक्त किन्तु प्रतिप्राहकसे नहीं । (२) प्रतिप्राहकसे मुक्त किन्तु दावकसे नहीं । (३) व दावकसे व प्रतिप्राहकसे । (४) दावकसे भी प्रतिप्राहकसे भी ।

आर' संग्रह-वस्तु — दाव वैवाच्य (= सेवा ) अर्थ अर्था धर्मावस्था ।

आर अकार्य-व्यवहार — सुप्यवाद् (= अहम् ) विद्युत-वचन (= सुवर्णी ) संग्रहाप (= वक्ष्याद् ), पदप-वचन ।

आर आर्य-व्यवहार — सुप्य-वाद्-विरतता विद्युत-वचन-विरतता, संग्रहाप-विरतता पदप-वचन-विरतता ।

आर अकार्य-व्यवहार — अहम्में अहम्-वादी बनना अ-सुखमें सुख-वादिता अ-सुखमें सुख-वादिता अ-विज्ञातमें विज्ञात-वादिता ।

और भी आर अकार्य-व्यवहार — अहम्में अहम्-वादिता सुखमें असुख-वादिता । सुखमें असुख-वादिता विज्ञातमें अ-विज्ञात-वादिता ।

और भी आर आर्य-व्यवहार — अहम्में अहम्-वादिता सुखमें सुख-वादिता सुखमें सुख-वादिता विज्ञातमें विज्ञात-वादिता ।

आर पुत्रक (= सुख) — (१) आनुसो ! कोई कोई पुत्रक आत्म-तप अपनेको संताप देनेमें क्या होता है । (२) कोई कोई पुत्रक परमत्प पर (= दूसरे ) को संताप देनेमें क्या होता है । (३) आत्म तप भी होता है परमत्प, भी । (४) व आत्म-तप व परमत्प ; वह अकार्यतप अपरंतप हो इसी अहम्में सोकरहित सुखित शीतल-मूल, सुधामुमभी मद्यभूत आत्मको साव विहार करता है ।

और भी आर पुत्रक — (१) आनुसो ! कोई कोई पुत्रक आत्म-हितमें क्या होता व परहितमें नहीं । (२) परहितमें क्या होता है आत्महितमें नहीं । (३) व आत्म-हितमें क्या होता है व परहितमें । (४) आत्महितमें भी क्या होता है पर-हितमें भी ।

और भी आर पुत्रक — (१) तम तम-परावण । (२) तम ज्योति-परावण । (३) ज्योति तम-परावण (४) ज्योति ज्योति परावण ।

और भी आर पुत्रक — (१) अमन अकम् । (२) अमन पद ( अरु अकम् ) । (३) अमन-पुंस्त्रीक (= श्वेतकमल ) । (४) अमनमें अमन-मुकुमार ।

वह आनुसो ! उन महाबाह ।

“आबुसो ! उक्त भगवान् ने पाँच धम धर्मार्थ कहे हैं । कौनसे पाँच ?—

पाँच स्कंध—रूप वेदना, संज्ञा संस्कार विज्ञान-स्कन्ध ।

पाँच उपादान-स्कन्ध—रूप उपादान स्कन्ध वेदना संज्ञा, संस्कार विज्ञान ।

पाँच काम पुत्र—(१) बभ्रुसे विशेष इष्ट=आन्त=मन्त्राप, मिय-रूप काम सहित रंजनीय (=चित्तको रंजन करनेवाले) रूप । (२) ओम-विशेष शब्द । (३) प्राण-विशेष गन्ध । (४) विद्धा विशेष रस । (५) काम विशेष स्पर्श ।

पाँच गति—गिरव (=जल) तिरक (=पट्ट, पक्षी आदि) बोमि, प्रेत्य-विषय (=मृत प्रेत आदि) । मनुष्य । देव ।

पाँच मासर्ष (=इसद) =आधासमसर्ष कुल, काम, धर्म धर्म ।

पाँच बीवरज—कामच्छन्द (=काम-राग) । व्यापाद् । स्थान सूत्र० । औदत्य-श्री कृत्य । विचिकित्सा ।

पाँच अक्षर भाषीय सचोक्त—सक्याप दधि विचिकित्सा शीक-अत-परामर्श कामच्छन्द व्यापाद् ।

पाँच कर्ष्य मागीय संघोजन—रूप-नाय अक्षय-नाग मान औदत्य, अविद्या ।

पाँच शिखरपद्—प्राणातिपाठ (=प्राण बध)-विरति अन्तादान-विरति काम-सिध्याचार विरति श्रुत्यादा-विरति सुरा-मेरु-अथ-प्रमादस्याव विरति ।

पाँच अमन्त्र (=अधोग) रवान—(१) आबुसो ! क्षीपाणव (=अर्द्ध) भिभ्रु कामकर प्राण-हिता करनेके अधोग्य है । (२) अर्द्धादान (=चोरी)=स्तेप करने के अधोग्य है । (३) मीधुन-भर्म सेवन करनेके अधोग्य है । (४) कामकर श्रुता वाद् (=इष्ट बोलने) के । (५) सच्चिदि कारक हो (=कामकर) कामोंको योगकरनेके अंतर कि पहिले गृह्यते होते बल था ।

पाँच प्यसव (आसक्ति)—ज्ञातिप्यसव प्रीय रोग शीक दधि । आबुसो ! प्राणी ज्ञातिप्यसवके कारण या भोग्यसवके कारण या शोयप्यसवके कारण काया छोट मरनेके बाद अथाव “दुर्गति विनिपाठ विरव (=जल) को प्राप्त होत है । आबुसो ! शीकप्यसवके कारण वा दधिप्यसवके कारण प्राणी ।

पाँच सम्पद् (=भोग) —ज्ञाति-सम्पद्, भोग, आरोग्य, शीक, दधि । आबुसो ! प्राणी ज्ञाति सम्पद्के कारण भोग-सम्पद् आरोग्य-सम्पद्के कारण काया छोट मरनेके बाद सुगति—अगकोर्मे धर्मी उत्पन्न होते । आबुसो ! शीकसम्पद्के कारण वा दधिसम्पद्के कारण प्राणी ।

पाँच अधिनव (=दुष्परिणाम) हैं दुःखीक (पुढर) को शीक-विपत्ति (=आचार-शोच) के कारण—(१) आबुसो ! शीक-विपत्ति=दुःखीक (=दुराचारी) प्रमादमे बड़ी भोग हाकिने प्राप्त होता है शीक विपत्ति दुःखीकके किये यह प्रथम दुष्परिणाम है । (२) और फिर आबुसो ! शीक-विपत्ति=दुःखीकके किये तुरे विन्दा-वात्स उत्पन्न होते हैं यह दूसरा दुष्परिणाम है । (३) और फिर आबुसो ! शीक-विपत्ति=दुःखीक आदे दधिप्य-परिपद्, आदे प्राण्य-परिपद्, आदे गृहपति-परिपद्, आदे

अथम परिपद् पादे त्रिस परिपद् (= समा) में जाता है अ-विसारद् होकर सूक्ष्म होकर जाता है। यह तीसरा । (४) और फिर आनुसो ! शीक-विपद्=दुरीक संसूद् (= मोहमास) होकर कास करता है यह चौथा । (५) और फिर आनुसो ! शीक-विपद् कथा छोड़ मरनेके बाद, अपाप = दुर्मति = विनिपात विरप (= बर्ष) में उत्पन्न होता है यह पाँचवाँ ।

पाँच गुण (= प्राणवर्ष) हैं शीकवाक्के शीक-सम्पदासे—[१] आनुसो ! शीक-सम्पद् शीकवाक्के अथमाक्के अरण बड़ी मोघ-नासिकी मास होती है; शीकवाक्की शीक-संपद्से यह प्रथम गुण है। [२] सुन्दर कर्ति शब्द उत्पन्न होते हैं [३] त्रिस त्रिस परिपद्में जाता है विषारद् होकर अ-सूक्ष्म होकर जाता है । [४] अ-संसूक्ष्म होकर करता है । [५] कथा छोड़ मरनेके बाद सुगति = स्वर्गलोकमें उत्पन्न होता है ।

पाँच धर्मोंको अपनेमें आविष्टकर आनुसो ! आरोपी [= दूसरेपर दोषारोप करनेवाले] मिथुको दूसरेपर आरोप करना चाहिये—[१] काकस कहु गा अकाकसे नहीं । [२] भूद् [= अपावर्ष]से कहुँगा अभूतसे नहीं । (३) मजुरसे कहुँगा कजुरसे नहीं [४] अर्ष-संहित [= स-अपोजन]से कहुँगा अअर्ष-संहितसे नहीं । [५] मीश्री मजसे कहुँगा श्रोह-विपद्ये नहीं । ।

पाँच प्रधानीय [= प्रधानके] अंग—[१] यहाँ आनुसो ! मिथु अद्वाल होता है तद्यप्यतर्षी बोधि (= परमज्ञान)पर अद्वार रखता है—ऐसे वह भगवान् अर्हत् सम्पद् उंडुद् । आवाधा (= रोग)-रहित ( रोग ) अर्षक-रहित होता है । व बहुत दौलत, व बहुत धन्य, सम-विपाकवाकी प्रधान (= योग्यान्वास)के योग्य प्रह्वी (= पाचकसक्ति)से युक्त होता है । (२) शक्यके पास वा विद्योके पास वा स-अज्ञाचारिणोंके पास अपनको बचावत (= बैसा है बैसा) प्रकट कर अघट=अ-भाषाही होता है । (३) अजुलक धर्मोंके विचारके किये कुसक धर्मोंकी प्राप्तिके किंच अरण्य बीर (पक्ष शीक) हो विहरता है; कुसक धर्मोंमें स्वाम-वान् = दृढ पराक्रम = बुरा ( कंबेसे ) व सैकनेवाक्य (होता है) । (४) विवेचिक (= अन्तकक एक पदुँकनेवाकी) सम्पद् बुलक-अनकी और छे आवैवाकी उत्प-अन-गामिनी, आर्ष प्रज्ञासे संयुक्त प्रधानीय होता है ।

पाँच अजागामी—अन्तरापरिवर्षापी उपहृत्-परिनिर्वापी अरसंस्कार स-संस्कार कर्ष जोस अकविह-यामी ।

पाँच वेतो-शिक (= चित्तके कीड़े)—(१) आनुसो ! मिथु कास्ता (= अर्षाचार)में कांका = विचिकित्सा ( संदेह ) करता है (= संदेह)-मुक्त नहीं होता प्रसन्न नहीं होता । इसका चित्त बसोगके किये अनुधीयके किये साधत्य (= निरन्तर जपन) के किये प्रधानके किये नहीं छुटता; जो यह इसका चित्त नहीं छुटता वह प्रथम वेतो-शिक ( चित्त-कीक ) है । (२) और फिर आनुसो ! मिथु धर्ममें कांका = विकित्सा करता है । (३) अंघमें कांका = विचिकित्सा करता है । (४)

समग्रचारियोंमें कुछ-बिच असन्तुष्ट-मन, कीड-पमान (२) कुपित होता है, जो वह आनुसो ! मिथु समग्रचारियोंमें कुपित होता है (इसक्रिये) उसका चित प्रभाव के क्रिये नहीं झुकता यह पॉचर्वाँ चेतो टिख है ।

**पॉच बिच-विनिर्वाच** - ( १ ) आनुसो ! मिथु कामों ( =अमवासनाओं ) में अशीतराग अ-शीत-उन्मद अविगत-मेम अविगत-पिवासा अविगत-परिदाह अविगत-गृष्णा ( = गृष्णा-रहित नहीं ) होता; उसका चित प्रभावके क्रिये नहीं झुकता । जो उसका चित नहीं झुकता, वह प्रथम बिच विनिर्वाच है । ( २ ) और आनुसो ! कापामें अविगत-गृष्णा होता । ( ३ ) रूपमें अ-शीत-राग होता है । ( ४ ) और फिर आनुसो ! मिथु पपेच्छ पेदमार प्याकर शष्वा-मुख, रथ-मुख मूढ ( =माकस्य ) मुख छत विहरता है । ( ५ ) और फिर आनुसो ! मिथु किसी एक देव विरुध ( = देव-कोक ) की हृष्णासे मद्राचर्ष-पाकन करता है—'इस शीक मत तप मद्राचर्षसे मैं ( अमुक ) देव 'होऊँगा' । जो आनुसो ! वह मिथु किसी एक देव-निकरवकी हृष्णासे मद्राचर्ष पाकन करता है उसका चित प्रभावके क्रिये नहीं झुकता ; यह पॉचर्वाँ बिच-विनिर्वाच है ।

**पॉच इम्त्रिय**—असु-इम्त्रिय भोज , मान जिह्वा कषा ( =त्वक ) ।

**और भी पॉच इम्त्रिय**—मुख इम्त्रिय कु-प्य सौमनस्य शर्मवस्य उपेक्षा ।

**और भी पॉच इम्त्रिय**—धर्या इम्त्रिय शीर्षं स्मृति समाधि प्रज्ञा ।

**पॉच बिचरणीव-यानु**—( १ ) आनुसो ! मिथुको काममें मन करते काममें बिच नहीं शौकता, प्रसन्न नहीं हाता स्थित नहीं होता बिमुक्त नहीं होता । किन्तु नैष्काम्यको मनमें करते बिच शकता प्रसन्न होता स्थित होता बिमुक्त होता है । उसका वह बिच सुगत सुभाषित, सु उचित सु बिमुक्त, कामोंस बिमुक्त होता है; और कामोंके कारण जो आकाश विधात परिदाह ( =अल्प ) उत्पन्न हाते हैं उनस वह मुक्त है; उस वेदना को वह नहीं श्रेकता; वह कामों का बिःसरण कहा गया है । ( २ ) और फिर आनुसो ! मिथुको स्वापाह ( = ज्ञोह ) मनमें करते स्वापाहमें बिच नहीं शकता ; किन्तु अस्वापाह ( = अज्ञोह ) को मनमें करते ; वह स्वापाहका निस्सरण कहा गया है । ( ३ ) मिथुको बिर्हिसा ( = विहिसा ) मनमें करते ; किन्तु अ-बिर्हिसाको मनमें करत ; यह बिर्हिसा-बिस्सरण कहा गया है । ( ४ ) कर्णोंको मनमें करते ; किन्तु अ-कर्णको मनमें करते वह कर्णोंका बिस्सरण कहा गया है । ( ५ ) और फिर आनुसो ! मिथुको सरदय मनमें करत ; किन्तु सत्कथ-विरोपको मनमें करते ; वह सत्कथका बिस्सरण कहा गया है ।

**पॉच बिमुक्ति-अवयतन**—( १ ) आनुसो ! मिथुको सास्ता ( = गुरु ) वा दूसरा कोई पृथ ( = गुरु स्वामीय ) स-मद्राचारी धर्म उपदेश करता है; जैसे जैसे आनुसो ! मिथुका घास्ता वा दूसरा कोई गुरु-स्वामीय स मद्राचारी धर्म उपदेश करता है जैसे जैसे वह उस धर्ममें अर्थ समझता है धर्म समझता है; अर्थ सचेदी ( = मतकक समझनेवाका ) धर्म-वतिर्धर्षो हो उसको प्रमोद ( = प्रामोद्य ) होता है; प्रमुदित ( प्ररुप ) का पीति

देता होती है प्रीतिभाङ्गी कथा प्रसन्न ( = खिर ) होती है; प्रसन्न-भाव ( प्रसन्न ) सुखको अनुभव करता है सुखीय चित्त एकत्र होता है; वह प्रथम विमुक्त्यापत्तय है । (२) और फिर आनुसो ! मिथुको न झास्ता धर्म उपदेक्ष करता है न वृत्ता कोई गुरुत्वाधीन सुमहाधारी; बहिक बया सुत ( = सुयेके अनुसार ), यथा-पर्याप्त ( = धर्म-सात्वके अनुसार ) ( जैसे-बैसे ) वृत्तोंको धर्म-उपदेक्ष करता है । (३) बहिक यथासुत, यथा-पर्याप्त धर्मको विचारसे स्वाध्याय करता है । (४) बहिक यथासुत यथा पर्याप्त धर्मको विचारसे अनुचितक करता है अनुविचार करता है मन्से सोचता है । (५) बहिक उसको कोई एक समाधि-विमित सुगुह्यीय = सुमन्सीकृत = सु प्रचारित ( = अच्छी तरह समझा ) ( और ) मन्से सु-प्रतिबिन्द ( = मूलक भावा ) होता है; जैसे जैसे आनुसो ! मिथुको कोई एक समाधि-विमित ।

प्राथ विमुक्ति-परिपाचनोप संज्ञा—अभित्व-संज्ञा अभित्वमें दुःख-संज्ञा दुःखमें अकारम-संज्ञा महान-संज्ञा विराम-संज्ञा ।

पह आनुसो ! अब प्रयत्न ले ।

आनुसो ! अब भागवान् है छ धर्म पर्याप्त करे है । कीचस छ ?

छ संश्लेष-भाव—रूप संश्लेषता सवद्, गन्ध रस स्पृश्य धर्म ।

छनुकाय-भाव—रूप तुच्छा अक्षद् गन्ध रस स्पृश्य धर्म तुच्छा ।

छम-गारव—(१) यहाँ आनुसो ! मिथु धारणामें अ-गौरव ( = स्तकार रहित ) अ-प्रतिधर ( = भाव-रहित ) हो बिहरता है । (२) धर्ममें अगौरव । (३) संभमें अगौरव । (४) सिद्धामें अगौरव । (५) अयमाधमें अ-गौरव । (६) स्वागत ( = प्रति संस्कार )में अगौरव । ... ..

छ सुखावास ( = वेदलोक विचार )—अविद् अतुष्य ( = अतुष्य ) सुदस्त ( = सुदसी ) सुदस्ती ( = सुदसी ), अकमिह ।

छ अकारम ( = आरि में ) भाषतम—अनु आमतम भोज प्राण जिह्वा, काय मन आपतम ।

छ बाध आमतम—रूप आमतम सवद् गन्ध रस स्पृश्य ( = रस ) धर्म आमतम ।

छ विज्ञान भाव ( = सुगुह्य )—अनु संस्वर्त अक्ष प्राण जिह्वा भाव, मनो-विज्ञान ।

छ रस-काय—अनु-संस्वर्त अक्ष, प्राण जिह्वा भाव मना-संस्वर्त ।

छ वैदवा-भाव—अनु-संस्वर्त वैदवा अक्ष-संस्वर्त, प्राण-संस्वर्त जिह्वा संस्वर्त, काय संस्वर्त मन-संस्वर्त वदना ।

छ संज्ञा-भाव—रूप-संज्ञा सवद् गन्ध रस, स्पृश्य धर्म ।

छ गौरव—(१) आत्मामें समीरव समतिधर हो बिहरता है, (२) धर्ममें, (३) संभ में (४) सिद्धामें (५) अयमाधमें (६) प्रतिफलामें ।

छ सौमनस्य रूप-विचार—(१) अनुसो रूप देखकर मीमन्स्य ( = प्रसन्नता ) स्वाधीन रूपोंका उपविचार ( = विचार ) करता है । (२) अक्षमें सवद् सुखक ; (३) प्राणमें गन्ध

सूत्रकर । (४) सिद्धासे रस बचकर । (५) अयासे स्पष्टम्प तु कर । (६) मय से बर्म बानकर \* ।

४ शीमबन्ध उप-विचार—(१) बभ्रुसे रूप देवकर शीमबन्ध (अभ्यसत्ता)-स्वामीय रूपों का उपविचार करता है । (२) श्रोत्रसे शब्द । (३) ज्ञानसे गन्ध । (४) सिद्धा से रस । (५) कायासे स्पष्टम्प तुकर । (६) मयसे बर्म ।

५ उपेक्षा-उपविचार—(१) बभ्रुसे रूपको देवकर उपेक्षा-स्वामीय रूपोंका उपविचार करता है । (२) श्रोत्रसे शब्द । (३) ज्ञानसे गन्ध । (४) सिद्धासे रस । (५) काया से स्पष्टम्प । (६) मयसे बर्म ।

६ साराणीय धर्म—(१) यहाँ आबुसो ! सिद्धको सप्तछारिषोंमें गुप्त या मकर शीमबन्ध पुत्र करणिक धर्म उपस्थित होता है वह भी धर्म साराणीय = प्रियकरव = पुत्रकरव है; संभ्रह, अ-विचार, एकपाके किये है । (२) और फिर आबुसो ! सिद्धको शीमबन्ध बाधिक-धर्म उपस्थित होता है । (३) \* शीमबन्ध-पुत्र-मातृ-धर्म । (४) सिद्धको जो धार्मिक धर्म-कर्म काम है—अन्ततः पाश्चिमी सुपुत्रने शीमबन्ध, उस प्रकारके कार्योंको बंदकर शीमबन्ध होता है; शीमबन्ध सप्तछारिषों सहित शोपनेबाध होता है; यह भी । (५) जो अर्थद्वय-पिद्ध अ-साधक-अ-कर्मण्य इच्छित (= अनुमिस्त) विज्ञ-महाद्वित, अ परासुष्ट (= अनिदित) समाधि पायी शीम है, बस शीमोंमें सप्तछारिषोंके साथ गुप्त अथ मकर शीम-श्रीमन्धको प्राप्त हो विहरता है यह भी । (६) जो वह अर्थ शैवांगिक दृष्टि है, (जो कि) बस करनेबाधको अर्थात् मकर दुःख-सुखकी जोर क जाती है, बसती दृष्टिसे सप्तछारिषोंके साथ गुप्त और मकर दृष्टि श्रीमन्धको प्राप्त हो विहरता है, यह भी ।

७ विवाह-सूत्र—(१) यहाँ आबुसो ! सिद्ध कोधी उपनहरी (= पावडी) होता है जो वह आबुसो ! सिद्ध कोधी उपनहरी होता है वह शास्तामें भी अगौरव-अभ्य विभव हो विहरता है धर्ममें भी सर्वमें भी सिद्धा (= सिद्ध-निवम) को भी पूजा करनेबाध नहीं होता है । आबुसो ! जो वह सिद्ध शास्तामें भी अगौरव होता है वह सर्वमें विवाह उत्पन्न करता है; जो विवाह कि बहुत लोगोंके अहितक किये = बहुमयके अनुभवके किये देव-अनुपूर्विके अर्थ अहित दुःखके किये होता है । आबुसो ! यदि तुम इस प्रकारके विवाह-सूत्रको अर्थमें या बाहर देखना (तो) यहाँ आबुसो ! तुम उस दुष्ट विवाह-सूत्रके भासके किये प्रयास करवा । यदि आबुसो ! तुम इस प्रकारके विवाह सूत्रको अर्थमें या बाहर देखना जो तुम उस दुष्ट विवाह-सूत्रके अर्थमें न उत्पन्न होने देखके किये उपाय करवा । इस प्रकार इस दुष्ट (= पापक) विवाह सूत्रका प्रहास हाता है इस प्रकार इस दुष्ट विवाह-सूत्रकी अर्थमें उपरति नहीं होती । (२) और फिर आबुसो ! सिद्ध मर्षी पञ्चसी (= उपरसी) होता है (३) ईर्ष्यासु मन्वरी होता है । [ ४ ] सर मावाधी होता है । [ ५ ]

पेश होती है प्रीतिमान्की कथा प्रकथ्य (= खिर ) होती है; प्रकथ्य-कथ्य ( पुरुष ) सुखको अनुभव करता है ; सुखीकम चित्त पकथ्य होता है; वह प्रथम विमुक्तावतन है । (१) और फिर आहुतो ! मिथुको न ज्ञास्ता धर्म उपदेश करता है न दूसरा कोई गुरुस्वामीय समझाचारी; बरिक् पथा सुत (= सुनेके अनुसार ), पथा-पथांस (= धर्म ज्ञास्त्रके अनुसार ) ( कस-बैद्ये ) वृसरोको धर्म-उपदेश करता है । ( १ ) बरिक् पथासुत पथा-पथांस धर्मको विचारसे स्वाध्याय करता है । ( २ ) बरिक् पथासुत पथा-पथांस धर्मको चित्तसे अनु चितक करता है अनुविचार करता है सबसे सोचता है । ( ५ ) बरिक् कसको कोई एक समाधि-विमित्त, सुगृहीत = सुमनसीकृत = सु प्रचारित (= अच्छी तरह समझा ) ( और ) प्रकथ्ये सु-व्यवित्त ( = मूलतक ज्ञान ) होता है; जैसे जैसे आहुतो ! मिथुको कोई एक समाधि-विमित्त ।

प्राथ विमुक्ति-परिपात्रीय संज्ञा—अमित्य-संज्ञा अमित्यमें हुआ संज्ञा हुआमें ज्ञानाम-संज्ञा प्रहाय-संज्ञा विराम-संज्ञा ।

पह आहुतो ! अब भवमान् मे ।

आहुतो ! अब भवमान् मे छ धर्म बवाब कई हैं \* । कौसे उ ?  
 छ संवतना-कथ—कथ संवैतना सुकथ , गण्य रस स्पष्टय्य धर्म ।  
 छगृथा-कथ—कथ गृथा, कथ गण्य रस स्पष्टय्य धर्म गृथा ।  
 छन-गौरव—(१) वहाँ आहुतो ! मिथु ज्ञास्तामें न-गौरव (= स्तुकार रहित ) न-व्यतिज्य (= अकथ-रहित ) हो विहरता है । (२) धर्ममें अगौरव । (३) संवमें अगौरव । ( ४ ) सिद्धामें अगौरव । ( ५ ) ज्ञप्रमाधमें अ-गौरव । ( ६ ) स्वागत ( व्यति संस्तार )में अगौरव \* ।

छ सुखावास (= वैकल्यके विरौप)—अविह अतर्प्य (= अतप्य ) सुदस्त (= सुदर्श ) सुदस्ती (= सुदर्शी ) अकथिह ।

छ अथवम (= धारी में)-आपतन—अधु जावतन ओत्र प्राज जिह्य काव मत् आपतन ।

छ बाह्य भावतन—कथ जावतन कथ गण्य रस स्पष्टय्य (= स्वरस ) , धर्म जावतन ।  
 छ विज्ञान कथ (= संसुदाय)—अधु-संस्पर्स ओत्र प्राज जिह्य काव \* मनो-विज्ञान ।  
 छ स्पर्श-काव—अधु-संस्पर्स ओत्र प्राज जिह्य , काव मनःसंस्पर्स ।  
 छ वेदना-कथ—अधु-संस्पर्स वेदना ओत्र-संस्पर्स प्राक्संस्पर्स जिह्य संस्पर्स , काय-संस्पर्स मन-संस्पर्स-वेदना ।

छ संज्ञा-कथ—कथ-संज्ञा कथ गण्य रस स्पष्टय्य धर्म ।  
 छ गौरव—(१) ज्ञानामें सगौरव सप्रतिज्य हो विहरता है; (२) धर्ममें , (३) संव में ( ४ ) सिद्धामें , ( ५ ) ज्ञप्रमाधमें ( ६ ) प्रतिसंस्तारमें ।  
 छ गौरवस्व-उप-विचार—(१) अधुस कथ सुकथ सीमनस्व (= असकथ )-स्वामीय स्पर्शका उपविचार (= विचार ) करता है । (२) ओत्रसे कथ सुकथ । (३) प्राकमें कथ

सूत्रकर । (४) सिद्धसे रस बचकर । (५) अवासे स्पष्टप्य सूत्र कर । (६) मग से धर्म बानकर ।

४ शैर्मस्य उप-विचार—(१) बभ्रुसे रूप देखकर शैर्मस्य (अधमसकता)-स्वाधीन रूपों का उपविचार करता है । (२) ओषसे शब्द । (३) प्राक्ससे गन्ध । (४) सिद्ध से रस । (५) अवासे स्पष्टप्य सूत्र । (६) मगसे धर्म ।

५ उपेक्षा-उपविचार—(१) बभ्रुसे रूपको देखकर उपेक्षा-स्वाधीन रूपोंका उपविचार करता है । (२) ओषसे शब्द । (३) प्राक्ससे गन्ध । (४) सिद्धसे रस । (५) अवा से स्पष्टप्य । (६) मगसे धर्म ।

६ सारणीय धर्म—(१) यहाँ आबुसो ! सिद्धको समझचारियोंमें गुप्त वा प्रकट मैत्रीभाव बुद्ध कायिक धर्म उपस्थित होता है; यह भी धर्म सारणीय = मिथकरण = सुपुत्रक है; संमह, अ-विवाद, पकताके छिने है । (२) और फिर आबुसो ! सिद्धको मैत्री याव-बुद्ध कायिक-धर्म उपस्थित होता है । (३) मैत्रीभाव-बुद्धभावस-धर्म । (४) सिद्धके जो धार्मिक धर्म-धर्म काम हैं—अतथा पात्रमें सुपुत्रके मात्रमी; इस प्रकारके कामोंको बोटकर आवेवाक्य होता है; अकिकवाद् स-मह-चारियों सहित भोगवेवाक्य होता है; यह भी । (५) जो अखंड-अ-छिद्र अ-सक्य-अ-कल्प उचित (=मुक्ति) सिद्ध-प्रसंसित, अ परायुष्य (= अकिंचित), समाधि यामी शीक है; जैसे शीकमें स-मह-चारियोंके साथ गुप्त और प्रकट अक-आमन्वको प्राप्त हो विहरता है यह भी । (६) \* का यह धर्म वैशेषिक छिद्र है; (जो कि) वैसा करवेवाकेको अच्छी प्रकार दुःख-सपकी ओर ले जाती है, वैसी छिद्रसे स-मह-चारियोंके साथ गुप्त और प्रकट छिद्र-आमन्वको प्राप्त हो विहरता है; यह भी ।

७ विवाद-मूक—(१) यहाँ आबुसो ! सिद्ध अक्षी, उपवाही (उपाखंडी) होता है, जो यह आबुसो ! सिद्ध अक्षी उपवाही होता है यह सास्तामें भी अपौरव-अप्र विभव हो विहरता है धर्ममें भी सर्वमें भी सिद्धा (असिद्ध निवम) को भी पूरा आवेवाक्य नहीं होता है । आबुसो ! जो यह सिद्ध सास्तामें भी ध्यारण होता है पर धर्ममें विवाद उत्पन्न करता है; जो विवाद कि बहुत लोगोंके अहितके छिने = बभ्रुवके अनुभवके छिने वैव-अनुभवोंके अवर्ष अहित दुःखके छिने होता है । आबुसो ! यदि तुम इस प्रकारके विवाद-मूकको अपनेमें वा बाहर देखना (तो) यहाँ आबुसो ! तुम उस दुःख विवाद-मूकके माझके छिने प्रयत्न करना । यदि आबुसो ! तुम इस प्रकारके विवाद मूकको अपनेमें वा बाहर न देखना जो तुम उस दुःख विवाद-मूकके अहितमें न उत्पन्न होवे हेनेके छिने उपाय करना । इस प्रकार इस दुःख (= पापक) विवाद-मूकना प्रहाण होता है इस प्रकार इस दुःख विवाद-मूककी अहितमें उपवि नहीं होती । (२) और फिर आबुसो ! सिद्ध मर्षी पक्षसी (=पदासी) होक है (३) ईर्ष्या, मासरी होता है । [ ४ ] अह मावाधी होता है । [ ५ ]



पापेषु मित्रादृष्टि होता है । [ १ ] संदृष्टि-परामर्शी आधान-प्राही सुप्रति  
निस्सर्गी होता है ।

छ वातु—पृथिवी वातु, वायु, तेज, वायु, आकाश विज्ञान ।

७ निस्सरणीय वातु—( १ ) आनुसो ! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मीठी चिच-विमुक्ति, भावित बहुलीकृत (=वर्ण) पापीकृत वस्तु कृत अनुहित परिचित सु-समारण्य किवा; किन्तु ध्यावाह (= द्रोह) मेरे चित्तको पकड़कर उधरा हुआ है उसको ऐसा कहना चाहिये—आमुष्माप् ऐसा मत करें भयपास्की भिक्षा (= अन्धाकार) मत करें भयान्तर्य अन्धकार करना जरूर नहीं है । भगवाह् ऐसा नहीं करते । आनुसो ! यह सुमकिन नहीं इसका भयकर नहीं कि मीठी चिच विमुक्ति सुप्र-मारण्यकी गई हो; और तो भी व्यापाह उसके चित्तको पकड़कर उधरा रहे । यह संभव नहीं । आनुसो ! मीठी चिच-विमुक्ति व्यापाहकर निस्सरण है । ( २ ) यदि आनुसो ! भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने करुण्य चिच-विमुक्तिको भावित किवा तो भी बिहिंसा मेरे चित्तको पकड़कर उधरी हुई है । । ( ३ ) आनुसो ! यदि भिक्षु ऐसा बोले—'मैंने मुद्रिता चिच विमुक्तिको भावित किवा; तो भी अ-रति (= चित्त न लगाना) मेरे चित्तको पकड़कर उधरी हुई है' । । ( ४ ) अपेक्षा चिच-विमुक्तिको भावित किवा; तो भी राग मेरे चित्तको पकड़े हुये है; । ( ५ ) अतिमितता चिच-विमुक्तिको भावित किवा; तो भी वह तिमिचानुसारी विज्ञान मुझे होता है । । ( ६ ) अधि (=मैं हूँ) मेरा अन्धकारा 'वह मैं हूँ नहीं देखता; तो भी बिचिक्रिता (= संदेह) वाह-विवाह-कपी अन्ध चित्तको पकड़े ही हुये हैं ।

७ अनुरत्तरं प—दर्शन अथवा अथ सिद्धा परिचयों अनुरत्युति ।

७ अनुस्युति-रथाव—सुद्ध अनुस्युति, चर्म संव सौक त्याग देवता अनुस्युति ।

७ आश्रित विहार—[ १ ] आनुसो ! भिक्षु अन्तस रूपको देखकर न सुमन होता है न दुर्मन होता है । धरण करते आते अपेक्षक हो विहार करता है । [ २ ] जोरसे अन्ध सुपकर । ( १ ) आन्तस रंथ सूँवकर ( २ ) जिह्वासे रस चककर । ( ३ ) अन्तसे स्पर्शन ककर । ( ४ ) मन्तसे चर्मको जानकर ।

७ अमिजाति (= जाति अन्त) —( १ ) नहीं आनुसो ! कोई कोई कृष्ण-अमिजातिक (= बीचकृष्णमें पैदा) हो कृष्ण (= काके-रुने) चर्म करता है । ( १ ) कृष्णमिजातिक हो कृष्ण-चर्म करता है । ( २ ) कृष्णमिजातिक हो ल-कृष्ण-अमिजातिके पैदा करता है । ( ३ ) कृष्णमिजातिक (= जैसे कृष्णमें अन्ध) हो कृष्ण-चर्म (= पुष्ण) करता है । ( ४ ) कृष्ण-अमिजातिक हो कृष्ण-चर्म (= वाप ) करता है । ( ५ ) कृष्णमिजातिक हो अकृष्ण-अमिजातिके पैदा करता है ।

७ विवेक-भागीय संज्ञा—( १ ) अनाथ संज्ञा । ( २ ) अविश्वमें दुःखात्सज्ञा । ( ३ ) दुःखमें अकारण-संज्ञा । ( ४ ) महात्त-संज्ञा । ( ५ ) विराय-संज्ञा । ( ६ ) विरोध-संज्ञा । आनुसो ! अब भयवान्ने यह ।

“आनुसो ! अब भगवाह् ने ( यह ) सात चर्म बनावं कहे हैं ।

- सात अर्ध-वचन—अर्ध-वचन, सीछ ही ( = अर्ध ), अपवचन ( = अर्ध ) सुत  
 त्वाग प्रश्न ।
- सात चोर्ध्वग—स्युति-संशोर्ध्वग धर्म विषय वीर्य धीति प्रथमिय समाधि,  
 उपेक्षा ।
- सात समाधि-परिष्कार—सम्पक-दृष्टि, सम्पक संकल्प सम्पक-वाक सम्पक-कर्मांत  
 सम्पक-जाज्ञीय सम्पक-ध्यायाम सम्पक-स्युति ।
- सात अ-सद्वर्ग—मिथु अ-अज्ञ होता है अ हीक ( = अविश्वस्य ) अन् अपवचनी ( = अपवचन  
 रहित ) अन्वयुत कुसीठ ( = भाकसी ), गृह-स्युति दुप्यत ।
- सात सद्वर्ग—अज्ञात होता है हीमान् अपवचनी बहुभुत । आरत्य-वीर्य ( = निराकसी )  
 उपस्थित-स्युति प्रज्ञावान् ।
- सात सत्युद्व चर्म— धर्मज्ञ अर्थज्ञ, धारमज्ञ, मात्रज्ञ, काकज्ञ परिपद् ज  
 पुद्गलज्ञ ।
- सात विद्वत्-वस्तु—(१) आबुसो ! मिथु सिद्धा ( = मिथु-नियम ) प्रहय करनेमें तीव्र-अन्व  
 ( = बहुत अनुशासनात्म ) हाता है मविषममें मी सिद्धा प्रहय करनेमें प्रम रहित  
 नहीं होता । (२) धर्म-निष्ठाति ( = विपक्षता, में तीव्र-अन्व होता है मविषममें  
 मी धर्म-निष्ठातिमें प्रम-रहित नहीं होता । (३) इच्छम-विषय ( = लुब्धा-त्याग )  
 में । (४) प्रतिसम्बन्धन ( = एकतवाच )में । (५) वीर्यरम ( = उद्योग )  
 में । (६) स्युतिके विप्याक ( = परिपाक )में । (७) दृष्टि प्रतिबोध  
 ( = सम्मार्ग-दर्शन )में ।
- सात संज्ञा—अनित्य-संज्ञा अनात्म अक्षुभ आदीनव प्रज्ञा० विराग निरोध ।
- सात वक—अज्ञावक, वीर्य स्युति समाधि प्रज्ञा ही अपवचन्य ।
- सात विज्ञान-स्विति—(१) आबुसो ! ( कोई कोई ) सत्य ( = प्राप्ती ) वाताकाय वातास द्या  
 ( = वात )वासे है; अस्तिके मनुष्य कोई कोई देव कोई कोई विनिपातिक ( = पाप  
 योग), वह प्रथम विज्ञान-स्विति है । (२) वाता-काय किन्तु एक-संज्ञावासे; जैसेकि  
 प्रथम उत्पन्न ब्रह्माकायिक इव० । (३) एक-काया नाता-संज्ञावासे जैसे कि वाता  
 कर इवता । (४) एक-काया एक-संज्ञावासे जैसे कि शुभहस्त इवता ।

१ अ क शैबिक लोग इस वर्षके समझमें नरे निर्यठ ( = जैन सायु )को विप्रेषा  
 करते हैं । वह (मरा निर्यठ) फिर दस वर्ष तक नहीं होता । इसी प्रकार बीस वर्ष आदि  
 वर्षमें मरेको विभिन्न विभिन्न मित्रजार्जित निर्यथाय कहते हैं । अपुष्मान् आनन्दके  
 पात्रमें विष्णव करते इस बातको शुभकर बिहारमें वा भगवान्से कहा । भगवान्ने कहा—  
 'आनन्द ! वह शैबिकोंका ही बचन नहीं है मेरे शासनमें भी यह शीघ्रलक्षों को कहा जाता है ।  
 शीघ्रलक्ष ( = अर्धेत् सूत्र ) दस वर्षके समय परिनिर्वाण प्राप्त हो फिर दस वर्ष नहीं होता  
 मित्र दस वर्ष ही नहीं नव वर्ष एक वर्ष एक मासका भी एक दिनका भी एक मुहूर्तका  
 भी नहीं होता । किसविध ? ( पुन ) जन्मके व हावैत ।

( १ ) आनुसो ! कोई कोई सत्य रूपसंज्ञाको सर्वथा अतिक्रमण कर प्रतिष्ठा (प्रतिष्ठा) संज्ञाके लक्ष्य होते से, भाषा संज्ञाके सर्वमें न करकेसे 'आकाश अक्षय है इस आकाश भावतत्त्व-आपत्तको प्राप्त है यह पाँचवीं विज्ञानस्थिति है । ( १ ) आकाशप्रत्यक्षभावतत्त्वको सर्वथा अतिक्रमण कर विज्ञान अक्षय है इस विज्ञान भावतत्त्व-आपत्तको प्राप्त है यह छठी विज्ञान स्थिति है, ( ७ ) विज्ञानप्रत्यक्षभावतत्त्वको सर्वथा अतिक्रमणकर 'कुछ नहीं इस आकिंचन्य-आपत्तको प्राप्त है । यह सातवीं विज्ञान स्थिति है ।

सात इतिशेष ( = हाक-पात्र ) पुत्रक है—अभयतोभाग-विमुक्त, मञ्जा-विमुक्त, कब-साक्षी दृष्टिमात्र, अज्ञाविमुक्त परमानुसारी यज्ञानुसारी ।

सात अनुसय—काम-राग अनुसय, प्रतिष्ठा दृष्टि विधिद्विष्टा माय यथायथ अविद्या ।

सात संबोजन—अनुसय-संबोजन प्रतिष्ठा, दृष्टि विधिद्विष्टा माय यथायथ अविद्या ।

सात 'अधिकार-कामध ठक ठक उत्पन्न हुये अधिकारको ( = शक्तियों ) के काम के लिये—( १ ) संमुख-विषय देना चाहिये ( २ ) रसुतिविषय ( ३ ) अमृत विषय ( ४ ) प्रतिशतकरण । ( ५ ) परभूषणिक ( ६ ) तत्प्राप्तिकामिक ( ७ ) तिजबहारक ।

यह आनुसो ! अब भगवाद् ने ।

'आनुसो ! अब भगवाद् ने बाद वर्म यथार्थ कहे हैं ।

आठ मिथ्यात्व ( = अज्ञान )—मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासंज्ञक मिथ्याचक्र मिथ्या कर्मान्त, मिथ्या-रथायाम मिथ्यारसुति मिथ्यासमाधि ।

आठ सम्बन्ध ( = अज्ञान )—सम्बन्ध-दृष्टि सम्बन्ध-वाक सम्बन्ध, कर्मान्त सम्बन्ध-आशीष, सम्बन्ध-रथायाम सम्बन्ध-रसुति सम्बन्ध-समाधि ।

आठ इतिशेष पुत्रक—सोतभाषण, सोतभाषणिक चक्र साक्षात्कार करनेमें तत्पर, सकृदायामी सकृदायामी-चक्र साक्षात्कार तत्पर अनायामी अनायामि-चक्र-साक्षात्कार-तत्पर अर्हण अर्हण-साक्षात्कार-तत्पर ।

आठ कुतूहल ( = अज्ञान ) बन्धु—यहाँ आनुसो ! मिसुम ( जय ) कर्म करवा होता है उमके ( सर्वमें ) पेसा होता है—कर्म सुस करना है किन्तु कर्म करते हुये मीरा शरीर लक्ष्मीक पारोष, यहाँ न मैं बेद ( = भुव ) रहूँ । यह कठका है अनासरी प्राणिक किये-अभयपिपत्तके अधिगमके लिये अ-साक्षात्कारके साक्षात्कारके लिये यथोक्त नहीं करता । यह यथम कुतूहल-बन्धु है । ( १ ) और फिर आनुसो ! मिसु, कर्म किये होता है उससे अज्ञान जाता है अज्ञान काम कर दिया, काम करते मार शरीर यह गया नहीं न मैं यह रहूँ । यह यह रहता है उद्योग नहीं करता । ( १ )

मिथुको मार्ग जाना होता है। उसको यह होता है—'मुझे मार्ग जाना होगा मार्ग जानेमें मेरा शरीर लकड़ीक पावेगा, क्यों न मैं पढ़ रहूँ'। यह पढ़ रहता है उद्योग नहीं करता। (४) मिथु मार्ग चक चुका होता है। उसको यह होता है—'मैं मार्ग चक चुका मार्ग चकनेमें मेरे शरीरको बहुत लकड़ीक हुई। (५) मिथुको ग्राम या विगममें पिडधार करते सूखा मक्य भोजन भी पूरा नहीं मिळता। उसको ऐसा होता है—'मैं ग्राम या विगममें पिडधार करते सूखा मक्य भोजन भी पूरा नहीं पाता सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ (हो गया) क्यों न मैं ब्रेट रहूँ'। (६) पिडधार करते सूखा-सूखा भोजन पपेण्ड पा खेता है। उसको ऐसा होता है—'मैं पिडधार करते सूखा-सूखा पाता हूँ, सो मेरा शरीर भारी है अस्वस्थ है माथो मांस डेर है क्यों न पढ़ जाऊँ'। (७) मिथुको बोधी सी (= अल्पमात्र) बीमारी उत्पन्न होती है उसको यह होता है—'यह मुझे अल्पमात्र बीमारी उत्पन्न हुई है; पढ़ा रहना उचित है क्यों न मैं पढ़ जाऊँ'। (८) मिथु बीमारीसे उच्च होता है उसको ऐसा होता है सो मेरा शरीर दुर्बल असमर्थ है।

भाठ आरम्भ वस्तु—'वहाँ जातुसो ! मिथुको कर्म करना होता है। उसको यह होता है—काम मुझे करना है काम न करते हुये तुझोंके सासन (= धर्म) को मजमें क्या मुझे सुकर नहीं, क्यों न मैं अप्राप्तकी प्राप्तिके लिये=अरुणितके अधिवमके लिये, अ-साक्षात्कृतके साक्षात्कारके लिये उद्योग करूँ। सो उद्योग करता है यह प्रथम आरम्भ-वस्तु है। (१) मिथु काम कर चुका होता है, उसको ऐसा होता है—'मैं काम कर चुका हूँ कर्म करते हुये मैं तुझोंके सासनको मजमें न कर सका; क्यों न मैं उद्योग करूँ'। (२) मिथुको मार्ग जाना होता है। उसको ऐसा होता है। (३) मिथु मार्ग चक चुका होता है। (४) मिथु ग्राम या विगममें पिडधार करते सूखा-मक्य भोजन भी पूरा नहीं पाता, सो मेरा शरीर दुर्बल कर्मण्य (= काम काचक) है। (५) सूखा-कटा भोजन पूरा पाता है सो मेरा शरीर बलवान्, कर्मण्य है। (६) मिथुको अल्पमात्र रोग उत्पन्न होता है हो सकता है मेरी बीमारी यह काच क्यों न मैं। (८) मिथु बीमारीसे उच्च होता है हा सकता है मेरी बीमारी फिर कौट जाने क्यों न मैं।

भाठ दान-वस्तु—(१) आसक्त हो दान देता है। (२) मजम। (३) 'मुझको उससे दिवा है - (सोच) दान (भोजन) देता है। (४) 'देगा' (सोच)। (५) 'दान करना अच्छ है (सोच)। (६) 'मैं पकाता हू यह नहीं पकाते पकाते हुयेक न पकानेवालोंको न देना अच्छ नहीं' (सोच) देता है। (७) 'बहु दान दे मेरा अर्थलक्ष्मीति सम्पद कर्मेया (सोच) देता है। (८) बिचके अर्ककार बिचके परिवारके लिये दान देता है।

भाठ दान उपपत्ति (= उत्पत्ति)—(१) जातुसो ! कोई कोई उपपत्त प्रथम वा ब्राह्मणको अल्प दान चक दान मात्रा र्थ विवेकन उपपत्त जावसक (= विवास) प्रदीप दान देता है। यह, जो देता है उसको भी तारीक करता है। यह अत्रिय महाशाक



(=ब्रह्म)के मनमें न करनेसे, 'आकाश भवन्त ई' इस आकाश-आत्मत्व-आवृत्तको प्राप्त हो विहरता है० (५) सर्वथा आकाशात्मत्वापन्नको अतिक्रमण कर 'विज्ञान भवन्त ई' इस विज्ञान-आत्मत्व-आवृत्तको प्राप्त हो विहरता है । (६) सर्वथा विज्ञानात्मत्वापन्नको अतिक्रमण कर 'किंचित् (=कुछ भी) नहीं' इस अकिंचन्य-आवृत्तको प्राप्त हो विहरता है । (७) सर्वथा अकिंचन्य-आवृत्तको अतिक्रमण कर 'नहीं संज्ञा है न असंज्ञा' इस निवर्त-संज्ञा-असंज्ञा-आवृत्तको । (८) सर्वथा निवर्त-संज्ञा-असंज्ञा-आवृत्तको अतिक्रमण कर संज्ञा-वैधित्यनिरोध (=नहीं होना) कथा ही लुप्त हो जाता है)को प्राप्त हो विहरता है ।

आयुसो ! उन मगधान् मे यह ।

'आयुसो ! उन मगधान्'मे यह नव धर्म धर्माय कहे हैं ।

नव आवात-वस्तु—(१) 'मेरा अनर्थ (=बिगाड़) किया' इसकिये आघात (=बदला) रचता है । (२) 'मेरा अनर्थ कर रहा है । (३) मेरा अनर्थ करेगा । (४) मेरे मिय=महापन्न अनर्थ किया । (५) अनर्थ करता है । (६) अनर्थ करेगा । (७) मेरे अ-मिय-अमनापके अनर्थ (=प्रयोजन)को किया । (८) करता है । (९) करेगा ।

नव आवात प्रतिविधय (=दुःखा) —(१) 'मेरा अनर्थ किया तो (बदलमें अनर्थ करनेमें मुझे) क्या मिकबैबाका है' इससे आवातको दुःखा है । (२) 'मेरा अनर्थ करता है, तो क्या मिकबैबाका है' इससे । (३) करेगा । (४) मेरे मिय-महापन्न अनर्थ किया तो क्या मिकबैबाका है । (५) अनर्थ करता है । (६) अनर्थ करेगा । (७) मेरे अ-मिय-अमनापके अनर्थको किया है । (८) करता है । (९) करेगा ।

नव सत्त्वावास (=जीवको) —(१) आयुसो ! कोई सत्त्व आत्माकाय (=शरीर) और वावा संज्ञा (=नाम) हैं जैसे कि मनुष्य कोई कोई देव कोई कोई विभिवातिक (=पापबोधि) वह प्रथम सत्त्वावास है । (२) अनावा-काय एक सत्त्वावाके जैसे प्रथम उत्पन्न महाकायिक देव । (३) एककाया नाम-संज्ञावाके जैसे अनावा-श्वर देवको । (४) एक-काया एक-सत्त्वा वाके जैसे शुभ-दुःख देवको । (५) संज्ञा-रहित प्रतिवैधित्य (=दोष) रहित जैसे कि असंज्ञी सत्त्व देवको । (६) क्य-संज्ञाको सर्वथा अतिक्रमण कर प्रतिव-संज्ञा (=प्रतिहिंसाके कथा)के अस्त होने वावापवकी संज्ञाको मनमें न करनेसे, 'आकाश भवन्त ई' इस आकाश-आत्मत्व-आवृत्तको प्राप्त है । (७) आकाशात्मत्वापन्नको सर्वथा अतिक्रमण कर 'विज्ञान भवन्त ई' इस विज्ञान-आत्मत्व-आवृत्तको प्राप्त है । (८) विज्ञानात्मत्वापन्नको सर्वथा अतिक्रमण कर 'किंचित् नहीं' इस अकिंचन्य-आवृत्तको प्राप्त है । (९) आयुसो ! ऐसे सत्त्व हैं (कोकि) अकिंचन्य-आवृत्तको सर्वथा अतिक्रमण कर, निवर्त-संज्ञा-असंज्ञा (=न होना न बेहोना)-आवृत्तको प्राप्त हैं वह नवम सत्त्वावास है ।

मम अक्षय=असमय (ई) मङ्गलार्थ-वासक किये—(१) भावुसो ! लोकमें तयागत नहीं सम्पत् सञ्चल उत्पन्न होत है और उपसम=परिविवाहके किये संबोधिताम्नी, सुवत् (=सुन्दर गतिकी प्राप्त=पुत्र) द्वारा प्रवेदित (=साक्षात्कार किये) बर्ष का उपदेश करते हैं ( उस समय ) यह पुत्रगण (=पुत्रव) विरय (=बर्ष) में उत्पन्न रहता है यह प्रथम अक्षय है । (२) और फिर वह तिर्बन्-योनि (=पह पक्षी यादि) में उत्पन्न रहता है । (३) प्रोत्प-विषय (=प्रोत्-योनि) में उत्पन्न हुआ होता है । (४) असुर-काय (=असुर-समुदाय) । (५) वीरानु-वेध-विकार (=वेध-समुदाय) में । (६) मत्कन्त (=मन्त्ररक्षके बाहरके) श्रेष्ठोंमें अ-संदिग्ध श्रेष्ठोंमें उत्पन्न हुआ होता है जहाँपर कि मिथुनश्री गति (=जाय) नहीं, न मिथुनश्री न वृषासश्री न उपासिधश्री । (७) मन्त्ररक्ष (=मन्त्रिमन्त्रणपर) में उत्पन्न होता है किन्तु वह मिथुनारि (=उच्छी मत्) (=विपरीत वर्सवत्) है—दाय दिया (=कुष्ठ) नहीं है बल किया हवन किया सुकृत सुकृत कर्मोंका फल=विपाक नहीं, यह श्लोक नहीं परलोक नहीं माता नहीं पिता नहीं औपपातिक (=अपौत्रिक) सत्त्व नहीं लोकमें सम्पत्-गत (=श्रीक रास्ते पर) सम्पत्-व्यतिपन्न असम माक्षय नहीं आ कि इस लोक और परलोकके स्वयं साक्षात्कर अनुभवकर ज्ञाने । (८) मन्त्र-वेधमें होता है किन्तु वह है सुप्यञ्ज अक्ष = एक-गूक (=भेदसा गूणा) सुभाषित सुभाषितके अर्थको ज्ञानमें असमर्थ वह जाडवों अक्षय है । (९) मन्त्र-वैशमें उत्पन्न होता है और वह मन्त्राद्यान् अक्षय = अवेद गूक होता है सुभाषित सुभाषितके अर्थको ज्ञानमें लभ्य होता है ।

अथ अनुपूर्व (=कमलाः)-विहार—(१) भावुसो ! मिथु काम और अनुपूर्व परमसे अक्षय हो विदुर्ब-विचार सहित विवेकव प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यावको प्राप्त हो विहरता है । (२) द्वितीय ध्याव । (३) तृतीय ध्याव । (४) अनुर्व ध्याव । (५) आकाशानन्त्यावतनको प्राप्त हो विहरता है । (६) विश्वाकाव न्यावत् । (७) अकिंचन्यावतन । (८) ईश-संज्ञावाचंशावतन । (९) संज्ञा वेदपिठ विरोध ।

अथ अनुपूर्व-विरोध—(१) प्रथम ध्याव प्राप्तकी काम-संज्ञा (=वासोपभोग्य अक्षय) विच्छेद (=सुप्त) होती है । (२) द्वितीय ध्याववाकंका विदुर्ब-विचार विच्छेद होता है । (३) तृतीय ध्याववाकंकी प्रीति विच्छेद होती है (४) अनुर्व ध्याव प्राप्त का आकाश-मन्त्राक्ष (=सौंस ज्ञान) विच्छेद होता है । (५) आकाशानन्त्यावतन प्राप्तकी रूप-संज्ञा विच्छेद होती है । (६) विश्वाकावन्त्यावतन-प्राप्तकी आकाशानन्त्यावतन-संज्ञा । (७) अकिंचन्यावतन-प्राप्तकी विश्वाकावन्त्यावतन संज्ञा । (८) ईश-संज्ञा वाचंशा वतन प्राप्तकी अकिंचन्यावतन संज्ञा । (९) संज्ञा-वेदपिठ विरोध-प्राप्तकी संज्ञा (=ज्ञान) और वेदवा (=अनुपय) विच्छेद होती है ।

आनुसो ! उव मगवान् मे यह ।

“आनुसो ! उव मगवान् मे वस वसं यथार्थं कर्हं । कौनसे द्वा ?—

एव नाच-करण वसं—(१) आनुसो ! मिश्रु शीकवान् प्रातिमोक्ष (= मिश्रुमिषम) -संवर (= कवच) से संवृत (= धाव्यमदित) होता है । बोधी सी बुराह्मणों (= वध) में भी मय-वर्षा आचार घोबर-मुक्त हो बिहरता है (शिक्षापदोंकी) ग्रहणकर शिक्षापदों को सीकता है । जो यह आनुसो ! मिश्रु शीकवान् यह भी वसं नाच-करण (= न बनान करनेवाका) है । (२) मिश्रु बहु भुत भुत भर भुत-संनय-नाम् होता है । जो यह धर्म आदिद्वयान् मध्यकस्याम पर्ववसान-कस्याम सार्थक = सार्थकन है, (जिसे) केवळ परिपूर्ण परिष्कृत ब्रह्मचर्यं कहते हैं । जैसे धर्म (मिश्रु) को बहुत सुने ग्रहण किये वालीसे परिचित मनसे अनुपेक्षित दृष्टिसे सुप्रतिबिम्ब (= अंततक तक देखे) होते हैं; वह भी धर्म नाच-करण होता है । (३) मिश्रु कस्याम-मिश्र = कस्याम-सहाय = कस्याम-संपर्क होता है । जो यह मिश्रु कस्याम मिश्र होता है यह भी । (४) मिश्रु सुवच सौवच्य (= मयुर-भाषिता) बाके धर्मोंस युक्त होता है । अनुसासनी (= धर्म उपदेश) में प्रवृत्तिगामाही = समर्थ (= धर्म) (होता है) यह भी । (५) मिश्रु महाचारिणोंके जो नाचा प्रकारके कर्तव्य होते हैं उनमें दक्ष = भावकरहित होता है उनमें उपाय = विमर्शसे युक्त करनेमें समर्थ = विचारमें समर्थ होता है । यह भी । (६) मिश्रु अमिषम (= अमिषम), अमि-विनय (= मिश्रु-विषमोंमें) धर्म काम (= धर्मेषु) मिय-समुदाहार (= दूसरे के उपदेशके सारकारपूर्वक सुननेवाका स्वयं उपदेश करनेमें उतासाही) बड़ा प्रसूचित होता है यह भी । (७) मिश्रु जसे ठीसे शीघ्र पिबपात सबनासम, ग्वाभ मध्य भयव्य-परिष्कारसे सतृप्त होता है । (८) मिश्रु अनुसक्त-धर्मोंके विचारक किये, कुसक्त-धर्मोंकी प्राप्तिके किये उद्योगी (= आरम्भ-वीर्य) स्वामयान् = स्वपराक्रम होता है । कुसक्त-धर्मोंमें अनिश्चित भुर (= मगोवा नहीं) होता । (९) मिश्रु रघुविमान् अत्युत्तम रघुति परिपाक मे युक्त होता है; बहुत पुराने किये बहुत पुराने माप्य करनेके भी धरन करनेवाका अनुस्मरण करनेवाका होता है । (१०) मिश्रु महावान् उद्व-अल गामिनी वार्थ निर्बेधिक (= अंततक तक पहुँचनेवाकी), सम्पद्-दुःख-द्वय-वार्थिनी प्रशास युक्त होता है ।

एव ह्यावतन—(१) वृक (पुरुष) ऊपर नीचे दृष्ट अद्वितीय (= एक मात्र) अप्रमाण (= अतिमहान्) पृथिवी-कृत्य (= सब पृथिवी) कावता है । (२) वाप-कृत्य । (३) तेज-कृत्य । (४) वायु-कृत्य । (५) नील-कृत्य । (६) पीत-कृत्य । (७) ओहित-कृत्य । (८) अवशात-कृत्य । (९) आकाश-कृत्य । (१०) विज्ञान-कृत्य ।

एव अनुसक्त-धर्म-वच (= वृत्तम) —(१) प्राणातिपात (= ईश्या) । (२) अनुसासन (= बोधी) । (३) काम-मिषाचार (= धर्मिचार) । (४) सूतावाद (= वृत्त) । (५) विष्णु-वचन (= सुगोत्री) । (६) परम-वचन (= कटुवचन) । (७) सर्वकाप



(=वक्रवास) । (८) अमिष्या (= कोम) । (९) श्यापाद् (= प्रोह) । (१) मिष्या-रष्टि (= उस्तामत) ।

एव कुक्-कर्म-यव (= सुकर्म)—(१) प्राजातिपात-विरति । (२) जन्तादान-विरति । (३) काम-मिष्याचार विरति । (४) श्यापाद्-विरति । (५) पिशुनवचन-विरति । (६) पदप-वचन-विरति । (७) संप्रकाप-विरति । (८) जन्-अमिष्या । (९) जन्नापाद् । (१) सम्पग्-रष्टि ।

एव कार्य वास—(१) आनुसो । मिथु पाँच अंगों (=वातों) से हीन (=वक्राङ्ग-विपरीण) होता है । (२) छ अंगोंस पुक्त (= पदग-युक्त) होता है । (३) एक आरक्षा बाक्य होता है । (४) जयभजन (= अग्रय) बाका होता है । (५) पनुच पर्येक-सत्त्व होता है । (६) समवय सगठसन । (७) जन्-आविक (=जमदिक)-संकल्प । (८) प्रभय-काय-संस्कार । (९) सुविमुक्त-चित्त । (१) सुविमुक्त मज्ज । (१) आनुसो । मिथु पाँच अंगोंस हीन कैसे होता है ? वहाँ आनुसो । मिथुका कामधन्व (=काम-राग) प्रहीण (=नह) होता है श्यापाद् प्रदाय स्वाम-सूद जौद्व्य-कौद्व्य विचिचिरसा । इस प्रकार आनुसो । मिथु पञ्चभू-विपरीण होता है । (२) कैसे आनुसो मिथु पदग-युक्त होता है ? आनुसो । मिथु च्युसे कपको रैक न सु-मन होता है म कुर्मन, स्थिति-संप्रख्य-युक्त उपेक्षक हो विहरता है । भोजसे भय् सुक्कर । प्राणसे गध सूँपकर । विद्वसे रस च्चकर वाचसे स्पष्टण सुकर मनसे बर्म जावकर । (३) आनुसो ! प्रकारक कैसे होता है ? आनुसो ! मिथु स्थितिकी रसासे युक्त होता है । (४) आनुसो ! मिथु कैसे चतुरापजपन होता है ? आनुसो ! मिथु सप्याकर (= समसकर) एकको सेवक करता है सगवानवर एकको स्वीकार करता है सप्याकर एकको हटाता है, संज्वानकर एकको बर्जित करता है । (५) आनुसो ! मिथु कैसे पनुच-पर्येक-सत्त्व होता है ? आनुसो ! जो वह पृथक (=उक्ये) जमन-जाद्व्यके पृथक् (= उक्ये) प्रयेक (= एक एक) साव (=सिद्धांत) होते हैं वह सभी (बसके) पनुच-सत्त्व =वात्त=युक्त=प्रहीण, प्रतिप्रभय (= शमित) होते हैं । (६) आनुसो ! कैसे 'जमवचसगठसन (=सम्पक् विद्युद्वैपन) होता है ? आनुसो ! मिथुकी काम पृथ्या प्रहीण (=वक्त) होती है मन-नृपया प्रक्षचर्न-वृष्य प्रसमित होती है, । (७) आनुसो ! मिथु कैसे जवाविक-संकल्प होता है ? आनुसो ! मिथुका काम संकल्प प्रहीण होता है श्यापाद्-संकल्प विंसा-संकल्प । इस प्रकार आनुसो ! मिथु जवाविक (=विर्मक)-संकल्प होता है । (८) आनुसो ! मिथु कैसे मज्ज-काय होता है ? मिथु 'जनुर्न' श्यापको मास हो विहरता है । (९) आनुसो ! मिथु कैसे विमुक्त-चित्त होता है ? आनुसो ! मिथुका चित्त शयसे विमुक्त होता है होसे विमुक्त हाता है =मोहसे विमुक्त होता है इस प्रकार । (१) कैसे सुविमुक्ति-मज्ज होता है ? आनुसो ! मिथु जावता है—'मेरा राय प्रहीण हो यव

उपिष्ठ-मूक-अस्तकथिष्ठ-शाक्यी तरह जनाब-माप्त मधिष्वर्मे उपपन्न होनेके बबोम्प, हो गया है।' मेरा ड्रेप । •मेरा मोह । ।

एष असीत्य ( = बहर्ण ) -वर्म—(१) असीत्य सम्बन्ध-रुष्टि । (२) सम्बन्ध-संक्रय । (३) सम्बन्ध-वाक् । (४) सम्बन्ध-कर्मोन्त । (५) •सम्बन्ध-आशीव । (६) सम्बन्ध-आपास । (७) •सम्बन्ध-स्मृति । (८) सम्बन्ध-समाधि । (९) सम्बन्ध-ज्ञान । (१०) असीत्य सम्बन्ध-विमुक्ति ।

“आबुसी ! इन मगवान् ने ।

तब मगवान् ने बठकर आबुप्मान् सारिपुत्रको धामन्त्रित किया—

“साबु साबु, सारिपुत्र ! सारिपुत्र एने मिथुनोंके बन्धन सहीति-वर्षाव (= पकटा का रंग) उपवेश किया।”

आबुप्मान् सारिपुत्रने ( जो ) यह कहा थास्ता (= बुद्ध) इसमें सहमत हुये । सन्तुष्ट हो तब मिथुनोंने ( नी ) आबुप्मान् सारिपुत्रके मादककर्म अभिवन्दन किया ।

×

×

×

( ९ )

शुन्द-सुप्त । सारिपुत्रमोगलान-परिनिवाण । उक्ताचेल-सुप्त । (ई पू ४८५ ८४)

‘वेसा’ मीने सुना—एक समय मगवान् श्रावस्तीमें बनाय-पिंडकके अराम जेत पनमें बिहार करते थे ।

उस समय आबुप्मान् सारिपुत्र मगधमें ‘नालक-ग्राममें’ रोग-मस्त = दुःखित सप्त बीमार हो बिहार करते थे ।

१ श्रीबालीसर्वा वर्षावास ( ४५ ई पू ) को मगवान् ने आबस्ती ( एराराम ) में विजाया वैलासीसर्वा ( ४६४ ई पू ) आबस्ती ( अंतवम ) में । २ सं. वि ४५:१:३. ।

२ अक ‘मगवान्’ने क्रमशः आबस्ती था, अंतवममें प्रवेश किया । ‘माताको मिल्वा-दर्शन (= छूटे मठ)से छुटाकर अम्म डेमेके कोठे (= श्रीचरक)में ही परिनिर्वाण प्राप्त कर या यह निश्चयकर ( सारिपुत्रने ) शुन्द स्वधिरसे कहा—आबुस शुन्द ! हमारे पांच मी मिथुनोंको सूचित करो—आबुसी ! पांचवीचर, प्रयत्न करो धर्म-सेवापति बाळकप्रम ( बळक्या ) जाया चाहते हैं । स्वधिरसे वेसाही किया । मिथु अयनासन सभाक पांचवीचर के स्वधिरके सामने गये ।

स्वधिर ( सारिपुत्र ) ने अयनासन संभाक, दिवास्थान (= दिनक विद्यामके स्थान) को साफ कर दिवास्थानके द्वारपर लड़े हो दिवास्थानकी ओर अचक्रोचन करके कहा—‘यह अग्निम ( अपचिह्न ) दर्शन है । फिर जाया नहीं है । ( फिर ) पांचसौ मिथुनोंके साथ मगवान् के पास आ बम्बवाकर मगवान् से बोले—

“अन्ते ! मगवान् अनुशा से सुगत अनुशा से मेरा परिनिर्वाण-काळ है आबु-सरस्वर ( श्रीचरक ) अन्तम हो बुद्ध ।

‘कहाँ परिनिर्वाण करोमि ?’

“माझे ! मगध (बेरा)में बाळकप्राममें (मेरा) जन्मग्रह दे, वहाँ परिनिर्वाण करूँ।”  
सारियुव ! जैसा तू काल समझता है।”

स्वधिरने रुद्रचर्चा हाथोंको फैला कर सास्ताके सुवर्ण-कण्ठ्य सदस चरनोंके गुणोंको पकड़के कहा—

माझे ! इन परमोंकी बन्धना के किने सी हजार कल्पोंसे अधिक काळराज मीने जन्म कब पारमिताये पूर्व की। वह मेरा मगधेय सिरतक पहुँच गया। अब (आपके साथ) फिर जन्म के एकस्वभावमें एकत्रित न समापन होना नहीं है। अब यह विश्वास छिन्न होचुका। अब मैं जनेक शत-सहस्र युद्धोंके प्रवेश स्वाव अजर, अमर क्षेम सुख शान्तिज भयव विर्वाण-पुर जाऊँ। यदि मेरा कोई काविक वा वाक्विक (कर्म) मयबावको न दबा हो तो मयबाव क्षमा करें मेरा वह प्रयागज समय है।”

‘सारियुव ! तुझे क्षमा करता हूँ; तेरा कुछ भी काविक वा वाक्विक (कर्म) वैसा नहीं जो मुझे नापसंद हो। अब तू सारियुव ! जिसका काक समझे (उसे कर)।”

मयबावकी अनुज्ञा पावके बाद अनुष्मान् सारियुवके पादपर्वनाकर उठते समय—  
शरताभी धर्मसेनापतिके सम्मानके किने जर्नासकसे उठकर रथकुटीके सामने यज्ञिककण पर आ खड़े हुये।

स्वधिर तीव्र बार वृक्षिया कर बार ल्पानों (अर्जों) से बन्धना कर बोले—

“मगधम् ! अजसे जस कब सी हजार कल्पसे अधिक समय पूर्व जन्मोमवर्षी समय संजुद्धके पादमूकमें बड़कर मीने तुम्हारे बसवकी प्रार्थना की। वह मरी प्रार्थना पूरी हुई तुम्हें देक दिया। वह तुम्हारा प्रथम दर्शन था और वह अन्तिम दर्शन (अब) फिर तुम्हारा दर्शन नहीं होगा।

फिर जब बल-संजुद्ध समुम्भक रथकिको छोड़के अरतक (मगधान्) अजरके सामने ये, (विवा पीठ दिखाये) सामने मुक्त रखतेही चककर बन्धना कर चक दिने। मयबावके पैरकर खड़ेहुये मिथुजोंसे कहा—

“मिथुजो ! अपने इयेह प्राताका अनुगमन करो।

जस समय एक समय-संजुद्धको अवेकर सभी मिथु-मिथुनी उपासक-उपासिका चारों परिष्क अंतवमसे विकली। आबली-बगरवासिनीने सी ‘सारियुव स्वधिर सम्पन्नहुड से गुड परिनिर्वाणकी इच्छासे निकले हैं। उनका दर्शन करें—छोच बगरहारीकी अवेका-रहित बनासे विकल रंभ-भाका हाथमें के केनोंको कियोरे—‘कहाँ महा-मश दिने हैं ? कहाँ जससेनापति दिने हैं ?—‘गुठते हम किसके पास खबेंये। ‘स्वधिर किसके हाथमें सास्ताको सीप कर वा रहे हो हम प्रकरसे रोते कीवते स्वधिरका अनुगमन किया।

स्वधिर महा-याज्ञने रिक्त होकेसे धवको ही वह रंभण (= कल्प-अतिव्रतनीच) मार्ग है जोगोंको उपदेशकर ‘तुम भी आनुसी ! इतने बसवक (अनुद्ध)के विचयमें वेवर्वाही मत करवा’ (कह) मिथु-संबको भी कीटाकर अपनी परिष्कके साथ चक दिने। तब अनुष्मान् सारियुव धर्म एक एक रात्रिवासकर मार्गमें एक सप्ताह मनुष्योंको उपदेश करते, धार्मिक-ककी बाळकप्राम पहुँचे और प्राप्तहारपर बर्गके बुद्धके बीच कब हुये। तब स्वधिरका धाति

बैठ उपरोक्त गाँवसे बाहर जाते बन्धु स्वविरको देखकर पास जा बन्दना कर कहा हुआ ।  
स्वविरने इसे कहा—“ब्रह्म-गृह ( = नानी ) है ?”

‘धम्मे ! है’

“आओ हमारे यहाँ आबैकी बात कहो । किसलिये जाये पृथ्वीपर— आज एक रात  
गाँवके भीतर बसो । ब्रह्म-गृह ( = बातीवरक ) को साफ करो और पाँच सौ मिथुनोंके रहने  
का स्थान ठीक करो ।

उसने जाकर— ‘नानी ! मेरे मामा भाये हैं ।’

‘हस समय कहाँ है ?’ ‘माम द्वारपर ।’

‘जकड़ेही या और भी कोई है ?’ ‘पाँच सौ मिथु हैं ।’

किस कारण से भाये ?

उसने यह ( सच ) हाक कह सुनाया । प्राज्ञापी न— इतनोंके लिये क्या  
बासस्थान साफ करा रहे हैं ? अनामीमें प्रकलित हो अब भुङ्गपेमें क्या गृहस्थ होना चाहते  
हैं ?— सोचते अन्न-बरको साफ करवा पाँचसौके बसनेका स्थान बनवा, मसाक  
( = बंध-दीपिका ) बकवाकर स्वविरके लिये आदमी भेजा । स्वविर, मिथुनोंके साथ प्रसाह  
( = कोठे ) पर नव ब्रह्मघरमें जा के बैठे । बैठकर मिथुनोंको उनके आसनपर भेज दिया ।  
उनके जाने मगसेही स्वविरको वह गिरबेकी सख्त बीमारी उत्पन्न हुई, मरणान्तक पीड़ा  
होने लगी । प्राज्ञापी—‘पुत्रकी बात मुझे लक्ष्मी नहीं लगती — ( सोच ), अपने बास-गृहके  
द्वारपर लक्ष्मी रही ।’

चारों महाराजा ( देवता ) धर्म-सेवापति कहाँ बिहरते हैं जोड़ी जोड़ते—‘नासक-  
धर्ममें अन्नघरमें परिनिर्वाण-मंचपर पड़े हैं जन्मिन्न दर्शनके लिये लकें ( सोच ) जाकर  
बंदवा-कर लक्ष्मी हुये । ( स्वविरने पृथ्वी ) “तुम कौन हो ?” “महाराजा भन्ते !” “किसलिये  
आये ?” “रोगी-सेवा होगी ( तो ) करेंगे ।” “हो गया यह रोगी-सुखरूप है तुमकोय  
आजो — कह कर भेज दिया । उनके जानेके बाद उसी प्रकारसे देवताओंका इन्द्र ( नाराज )  
राज ( आना ) । उसके जानेपर महामहाराजा जाये । उनको भी स्वविरने भेज दिया । प्राज्ञापी  
देवताओंके गमन भ्राम्यमानको देखकर—‘वह अन्न मरे पुत्रको बन्दवा कर कर जा रहे हैं’  
( सोचती ) स्वविरक कमरेके द्वारपर जाकर—‘तात सुन्द ! क्या बात है ?’ पृथ्वी । उन्होंने  
यह बात कह दी और ( स्वविर से ) कहा—“भन्ते महा-उपासिका आई है ।” अ-समयमें  
किसलिये आई है ? ‘तात ! तुम्हें देवताके लिये कहकर—‘तात ! पश्चिम अन्न भाये थे ?’  
पृथ्वी । “उपासिके ! चारों महाराजा” “तात ! तुम चारों महाराजोंसे भी बड़े हो ?” “उपा-  
सिके ! वह हमारे माकी जैसे हैं ?” “तात ! उनके आनेके बाद कौन आना ?” “देवोंका  
इन्द्र जाक” “उसके जानेपर तात ! प्रकथ करते से कौन कौन आये ?” “उपासिके !  
वह तुम्हारे ( प्राज्ञापीके ) मयवाग्, साक्षा महामहाराजे” । “तात ! तुम मेरे मयवाग्  
महामहाराजे भी बच कर हो ?” “हाँ उपासिके !”

तब प्राज्ञापीको—‘मेरे पुत्रकी ऐसी सामर्थ्य है तो मेरे पुत्रके भयवाग् साम्राज्य  
की सामर्थ्य होगी ?’—सोचते समय पृथ्वी पाँच प्रकार ( = धर्म ) की मीठि उत्पन्न हो

सकल शरीरमें व्याप्त हो गई। स्वधिरने 'मेरी माताको प्रीति-सीमबद्ध उत्पन्न हो गया, जब यह धर्म-उपदेशका काक है—सोचकर—'क्या सोच रही है महाउपासिने ?'—  
 पुत्र । उसने कहा—'तात ! यह सोच रही हूँ—'मरे पुत्रमें यह गुण है तो उसका वाक्यमें  
 कैसा गुण होगा ?' 'महाउपासिने ! मरे शाकाके समाप्त पाक, समाधि प्रहा विमुक्ति-  
 ज्ञान-दानमें कोई नहीं है।' (और) विचार करके 'धर्म-देशना की। माइलीने प्रिय  
 पुत्रकी धर्म-उपदेशके अन्तमें शोक-आपत्ति-कर्ममें रिक्त हो, पुत्र से कहा—'तात उपतिष्ठ !  
 तुमने क्यों ऐसा किया ? ऐसा अमृत मुझे इतने समय तक नहीं दिया ?' स्वधिरने—'मैंने  
 जब माता क्यसारी माइलीको पोसनेका काम शुरू दिया इतनेसे (यह) निर्वाह कर  
 लेगी—सोचकर 'जा महाउपासिने !' (कह) माइलीको भेजकर 'सुन्द ! क्या समय  
 है ? 'भन्ते ! यज्ञे भोरकी बैठा है' 'मिथु-सपको जमा करो।' 'भन्ते ! मिथु-संघ जमा  
 है। 'सुन्द ! मुझे बड़ाकर बैठाओ ? उमरकर बैठा दिया।

स्वधिरने मिथुओंको आर्म्पित किया—

'आहुतो ! तुम्हें मरे पात्र विचरते बीचाकीस वर्ष हो गये, जो कोई मेरा काविक  
 काविक (कर्म) तुम्हें अदत्तकर हुआ हो आहुतो ! उसे क्षमा करो।

'भन्ते ! इतने समय तक आपको छपाकी मूर्ति बिना छोड़े विचरते हमने अर्पि-  
 कर (पुरा) कुछ भी नहीं देखा। किंतु, आप हमारे (घोषोंको) क्षमा करें।

तब स्वधिर महाबीरको भींचकर मुक्तको डॉक दाहिनी करबद डेदे। सातको  
 मूर्ति जमासे बब समापत्तियों (= व्याप्तों) में अनुक्रमेण प्रतिक्रियासत् पूर्वपक्षर फिर प्रथम  
 प्याससे डेकर अनुर्ध-आवाज पर्यन्त प्यान लगाया। उस (अनुर्ध-आवाज) से उदनेक वाग् ही  
 (बह) निर्वाजने प्राप्त हुये। उपासिक मेरा पुत्र क्यों कुछ नहीं बोळता है'—सोच,  
 पीठ पाद मककर 'परिवर्त्तन प्राप्त हो गये' काव निष्का उठी पैरोंमें धिरने—'तात ! पहिले  
 हमने तुम्हारे गुणोंको नहीं जाना 'कह रोने लगी।

तब सातका महार्मउप कबवा मंडपके बीचमें महाकृतकारको स्थापितकर,  
 (उसमें शरीर रख), क्या उत्सव किया। (उस समय) देवोंके भीतर मनुष्य मनुष्योंके  
 भीतर देवता (मीच लगा रहे) ने। तबमें यह उपासिक भी बूम रही थी। मोठी होके  
 नरज एक ओर व हर एककेसे मनुष्योंके बीचमें गिर पड़ी। मनुष्य तसे व देव हुएकते  
 चले गये। यह नहीं मरकर प्राक्खिस (देव) भवनके कनक-विमानमें जाकर पैदा हुई।

कोबोने सहाइमर उत्सव मया सब गंधोंसे फिनी फिता सजाई। स्वधिरके  
 शरीरको फितामें रख कसके पुकोंसे कियवा दिया। हाह-स्थाधमें सब रात धर्म उपदेश होता  
 रहा। अनुपक्ष स्वधिरने सर्वगंधोदकने स्वधिरकी फिता छड़ाई। सुन्द स्वधिर काहुओं  
 (= अस्त्रियों) को परिकारण (कलकल) में रख—'जब मैं यहाँ नहीं उबर सकता  
 चकके अपने स्पैह छाता धर्म-सेवापति सासिपुत्र स्वधिरके परिनिर्वाण होनेकी बात सयक  
 संतुष्टको कहूँ—(साच) काहु परिकारण और स्वधिरके पात्र बीरको डेकर प्राक्खी कने।  
 एक स्थानमें दो रात भी व बसकर 'भावस्ती पूर्वक गये। (काकर) जहाँ उन्के उपावाच  
 धर्म मंडारी आहुप्मान् आवाग् ने नहीं गये। 'जेठवन महाविहारकी पुष्करिणीमें बहान

सुन्द भ्रमजोहेह भापुप्मान् सारिपुत्रके पात्र-बीबरको से वहाँ भावस्ती अनाय विहकक्य माराम जेतवन या वहाँ भापुप्मान् मानम् मे वहाँ गये । आकर भापुप्मान् भावम्को अभिवादन कर बोले—

“मन्ते । भापुप्मान् सारिपुत्र परिनिवृत्त (=निर्वाण-प्राप्त) हो गये वह वक्त्र पात्र-बीबर है वह उमत्र धातु-परिष्ठावन है ।”

धातुस सुम् । यह कथ्य (=वात) रूपी मेट है वको वल्ले धातुस सुम् । वहाँ भगवान् है । यह भ्रमजोहेह यह वात कहें ।

‘अथवा मन्ते ।’—

तब भापुप्मान् भावम् और सुम् भ्रमजोहेह व वहाँ भगवान् मे पहुँ गये; आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे भापुप्मान् मानम्के भगवान्को कहा—

“मेरे उपास्याय धर्म माण्डगायिक बोटे माई स्वधिरके वड़े मित्र है पहिले वमके पास जाके “( फिर ) सास्ताके पास जाऊँगा” ( सोचकर वहाँ गये ) । ( वहाँसे ) भगवान्के धर्मके किये । एक एकको विदवाकर—“वह उम (= सारिपुत्र ) का पात्र-बीबर है, और वह धातु-परिष्ठावन है ।”

सास्ताने हाथ सैका धातु-परिष्ठावनका से हवेबीपर रख मित्रुधोंको धामप्रित किया—

“मित्रुधो ! तिस मित्रुधे पहिले (एक) दिन अनेकसौ प्रातिहार्य करके निर्वाण होनेक किये अनुज्ञा मोगी उलकी ही यह भात्र होख हने-समान धातुधे (= इन्द्रियो) दिपाई पत्र रही है । मित्रुधो ! सौ हजार कल्पसे अधिक समयतक पारमिता (= शान आदि ) पूर्वकिया हुआ वह मित्रु धा । मेरे प्रवर्तित (= सुभाषे ) धर्म चक्र (= धर्मके चक्के ) को अनु प्रवतन करवैवाक्य यह मित्रु धा । महाप्रज्ञावान् यह मित्रु धा । । अस्पेष्ठ (= अल्पानी ) यह मित्रु धा । वह अंतुष्ट प्रविबिष्ट (= अल्पान्तुष्टेमी) धा = अर्धचंद्र धा, उधोरी पाप-निहक यह मित्रु धा । प्राण-महात्-संपरिषोको पौष धा अर्धो (तक) छोड़कर, यह मित्रु धमकित होवा रह ।” । वुँको मित्रुधो ! महाप्रज्ञी धातुधोंको ।—

को पौष सौ अर्धो तक मगौरम सोयीको छाड़ प्रवकित होता रह । उस चौतनाग विनिवृत्त निर्वाण प्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो ॥ १ ॥

धाम्ति (= धामा)-वल्ले म पुष्पीके समान (वह) कुपित वहाँ होता था व हृष्याओंके वसवती होता था (यह) अनुकल्पक आदिक निर्वाणकी गथा; निर्वाणप्राप्त सारिपुत्रकी वन्दना करो ॥ २ ॥

जैसे धातुधक-सुत्र नगरमें प्रविष्ट हो मन मीचा किये कपाल हाथमें किये विचरता है वैसेही वह सारिपुत्र विचरता था; निर्वाणप्राप्त ॥ ३ ॥

जैसे हूरे सीवों बाका सौंड नगरक भीतर दिना किमीको मारते विचरता है । वैसेही वह सारिपुत्र विचरता था; निर्वाण प्राप्त ॥ ४ ॥

इस प्रकार भगवान्के— स्वधिरक गुणको वर्णन किया । जैसे जैसे भगवान् स्वधिरके गुणको वर्णन करते थे वैसे वैसे भावम् अपनेको संभाव न प्रकते थे ।

“मन्ते ! यह कुम्भ भ्रमजोद वा वेमा कह रहा है— ‘मन्ते ! आयुष्मान् सारियुत्र परिनिवृत्त हो गये यह उभय पात्र-वीर है । मन्ते ! आयुष्मान् सारियुत्र परिनिवृत्त हो गये” सुनकर मेरा धीर-बीका यह घटा ( = मजुरकमतो ), मुझे दिखायें नहीं सुखी बात भी नहीं सुस पकती ।

“आत्मन् ! क्या सारियुत्र शीघ्रस्कन्धको लेकर परिनिवृत्त हुये या समाधि-स्कन्ध को लेकर या प्रशा-स्कन्धको या विमुक्ति-स्कन्धको लेकर या विमुक्ति-ज्ञान-वर्द्धक-स्कन्धको के परिनिवृत्त हुये ?

“मन्ते ! आयुष्मान् सारियुत्र व शीघ्रस्कन्धको लेकर परिनिवृत्त हुये न विमुक्ति-ज्ञान-वर्द्धक-स्कन्धको लेकर परिनिवृत्त हुये । अकिञ्च मन्ते ! आयुष्मान् सारियुत्र मेरे अथवादक ( = उपदेशक ) ज्ञान-अज्ञान-वस्तुओंके विशापक ( = वक्तव्यवादी ) संदर्शक = प्रक समुपेक्षक, संप्रदासक थे । अर्थवेदान्तके अभिजापी सप्तद्वारियोंके अनुप्रादक थे । वह आयुष्मान् सारियुत्रका धर्म ( = रचयिता ) था । इष्ट धर्म-भोगको = धर्मानुपग्रहको इस धारण करते हैं ।

‘क्यों आत्मन् ! मैंने इसे पहिने नहीं कह दिया है— सभी शिष्यों = मन्त्रार्थोंस वाया याव ( = सुधाई ) = विनायाव = अन्वयाभाव ( होना है ), वह आत्मन् ! कहीं मिलेया । जो कुछ बल्य है = हुआ है = संस्कृत है वह सब वाद्य होमेवाका है । ‘हाथ वह न बाध हो’ वह संभव नहीं है । इस प्रकार आत्मन् ! महाभिन्नु-अर्थके रहनेपर भी सारवाक्य सारियुत्र परिनिवृत्त हो गया । आत्मन् ! वह अथ कहीं मिलेवाका है । जो कुछ बल्य ( = जात ) है = हुआ है ( = मूल ) संस्कृत है वह सब वाद्य होमेवाका है । ‘हाथ वह न बाध हो वह संभव नहीं है । इसलिये अथवा ! आत्म-दीप ( = अपने अपने मार्ग-मार्गांक दीपक ) = आत्म-धारण ( = स्वावकम्भी ) अथ-अन्व-धारण ( = अपरावकम्भी ) होकर विहरो, धर्म-दीप = धर्म-धारण = ( = स्वावकम्भी ) अथ-अन्व-धारण ( = अपरावकम्भी ) होकर विहरो धर्म-दीप = धर्म-धारण = अथ-अन्व-धारण होकर ( विहरो ) । आत्मन् ! कैसे मिन्नु आत्म-धारण होता है ? आत्मन् ! नहीं मिन्नु कावार्थ अथानुपकृती हो विहारता है । वेदवाचींमें । चित्तमें । धर्मोंमें । इस प्रकार आत्मन् ! मिन्नु अन्व-धारण होता है । आत्मन् ! जो कोई इस अर्थ वा मेरे त रहवे ( = अन्व ) के वाद आत्म-धारण हो विहार करेगी ( सब इसी तरह ) ।

### मोगसानका परिनिर्वाण ( ई पू ४८४ ) ।

‘एक समय तैर्यिक लोग एकत्रित हो सन्वाद करने लगे— ‘जाते हो जानुसी ! किसकारण से किसलिये अमन-धीतमक बहुत काम-सत्कार हो गया है ?’ ‘एक महामौहकवाचनके कारण हुआ है । वह देवकोकम्भी आकर देवताओंके धर्मको पूज्य आकर मनुष्योंको कृता है धर्ममें बल्य हुआंके भी धर्मको पूज्य आकर मनुष्यों को कृता है । मनुष्य इसकी बात को सुनकर बड़ा अमन-सत्कार प्रदान करते हैं । यदि उसे मार सकें तो वह अमन-सत्कार हमें

होने कोणा । तब (उन्होंने) अपने लोचकोंको बंदकर एक इन्द्र कर्पापत्र पाकर मनुष्य मारनेवाले गुहोंको बुझाकर—'महामीन्द्रस्वायत्न स्वविर काक-सिक्कर्म वास करता है वहाँ काकर उसे मारो' (कह) उन्हें कर्पापत्र दे दिये । गुहों ( = चोरोँ)ने सबके छोमसे उसे स्वीकार कर स्वविरको मारबैठे किये जाकर, उनके वास-स्थानकी घेर किया । स्वविर उनके घेरनेकी बात जानकर कुन्धीके छिद्रसे (बाहर) निकल गये । उन्होंने स्वविरको न देख फिर वृक्षरे दिव काकर घेरा । स्वविर जाकर छत छोड़कर आकाशमें चले गये । इन्द्रका वह ५ प्रथम मास में न वृक्षरे मासमेंही स्वविरको पकड़ धके । अन्तिम मास प्राप्त होनेपर स्वविर अपने किये कर्मका परिष्कार जाकर स्वायसे महीं हटे । बातचीमें नामकर स्वविरको पकड़कर उनकी हृत्तीको तंहुक-कण बैसा करने मार जाकर । तब उन्हें मरा जानकर एक झाड़ीके पीछे धाककर रक गये । स्वविरने 'घास्ता को देखकर ही मरूँगा' (सोच) शरीरको प्यवकणी बेहवसे बेधितकर, विहारकर आकाश-भागसे घास्ताके पास जा, घास्ताको बंधाकर "मग्ने । परिमिह त होऊँगा" —कहा ।

'परिमिह त होओगे, मीन्द्रस्वायत्न ! 'मग्ने हौं" ।

'कहाँ आकर ?' 'मग्ने ! काल-दिशा-प्रवेशम् ।

( मीन्द्रगन्धायन ) सायनाको बंधाकर काक-सिक्क वा परिमिह त हुए ।

### उपनिषद्-सुक्त

'वेना मीने भुता—एक समय भगवान् सारिपुत्र मीन्द्रस्वायत्नके परिनिर्वाणके जोषी ही वेर वाग् बड़े मारो मिश्र-संघके साथ वज्री ( बैल ) में गंगा बरीके तीरपर उद्गायेक ( = उक्तायेक ) में विहार करते थे ।

वस समय भगवान् मिश्र संघके साथ वृक्षी जगहमें बैठे हुए थे । तब भगवान्ने मिश्र-संघकी मौख वेषकर मिश्रोंको आमंत्रित किया—

"मिश्रभो ! मुझे यह परिपद् शून्य सी जान पवती है । सारिपुत्र मीन्द्रस्वायत्नके परिनिर्वाण न हुए समय मिश्रभो ! मुझे यह परिपद् न शून्य मालूम होती थी । जिस विषामें सारिपुत्र मीन्द्रस्वायत्न विहरते थे वह विषा अवेसा-रहित ( = अरकी अवेसा न करनेवाली ) होती थी । मिश्रभो ! अतीतकर्ममें मी जो कोई अर्हत् सम्पक सज्जुह हुए, उन भगवानोंकी भी हतनी ही उचम ( = अम ) आककोंकी जोषी थी जैसे कि मेरे सारिपुत्र मीन्द्रगन्धायन । जो भी मिश्रभो ! अन्तिम काक में अर्हत् सम्पक संजुह होंगे, उन भगवानों की भी हतनी ही उचम ( = अम ) आककोंकी जोषी होती जैसे कि मेरे सारिपुत्र मीन्द्रस्वायत्न । आश्रय है मिश्रभो ! आककोंको ! अर्मुत्त है मिश्रभो ! आककोंको ओ साक्षा ( = गुह ) के घासन-कर

१ सं. नि. ४५. २. ४ । २ न क "अर्मसेनावति ( = सारिपुत्र ) अर्तिक्रमासकी पुत्रिमाको परिमिह त हुये; महामीन्द्रगन्धायन उचमे १५ दिव बाद कुष्णपक्षके उपोसथ ( अमावास्या ) को । शाखा दोनों अमघावकोंके परिनिर्वाण हो जानेपर महामिश्र-संघके साथ महामर्मिकमें प्यरिक्क करते अमसा उद्गायेक-नगर ( = हाजीपुर विजय-मुजफ्फरपुर ? ) को प्राप्त हो वहाँ विरहाकर र्गपाधी रीतीमें विहार कर रहे थे ।



(= धर्म प्रचारक ) हों, उपदेशक हों, और चारों ( पाठशाली ) परिपक्वोंके प्रिय = मनाप और पौरुषास्पद हों । आदर्श ही मिथुनो ! तपागतको, भ्रू-मुक्त ही मिथुनो ! तपागतको, इस प्रकारके आदर्शकी बोधीके परिनिर्भूत हो जायेपर भी तपागतको सोच=परिदेव नहीं है । तो मिथुनो ! यह कहाँसे निकले ! जो कुछ जात = मृत = संसृष्ट है वह सब बाध होमेवाका है । हाव ! वह न नाश हो इसकी गुंजाइश नहीं । मिथुनो ! अंते महान् कृतके पढ़े रहते भी (असके) सारवाके महाकर्म ( असाधारण ) दूर जायें; इसी प्रकार मिथुनो ! तपागतके किने, मिथु-संबंधके रहते भी सारवाके सारिपुत्र मौख्यध्यापनका परिनिर्वाण है । तो यह मिथुनो ! कहाँसे निकले ? जो कुछ जात = मृत = संसृष्ट है, यह सब बाध होमेवाका है । इसकिने मिथुनो ! आत्म दीप = आत्म शरण = अन्तम्य शरण होकर पिटरो ।

( १० )

### महापरिनिष्पान-सुघ ( ई पू ४८४ ८३ ) ।

'पेसा मैंने सुना—एक समय भगवान् राजगृहमें शूद्रकूट-पर्वतपर विहार करते थे । उस समय राजा मगध अजातशत्रु वैशेषीपुत्र 'बज्जीपर बझई (= व्यधिकार ) करना चाहता था । वह पेसा करता था—'मैं इस पेसे महत्तिक (स्वैरम-शाकी) = ऐसे महापुण्य बज्जियों को अधिक बझैगा बज्जियों का विनाश बझैगा प्रथम बझाऊँगा ।

तब अजातशत्रु से सवंधके महामात्य (=महामंत्री) बर्षकार माह्यज को कहा—  
'आओ माह्यज ! जहाँ भगवान् हैं वहाँ जाओ । जाकर भेरे बचनसे मगधपण्डे पैरिमें शिरसे बन्दा करो । धारोम्य = अथ धार्तक कपु उत्थाव (= पुराणी ) सुकविहार पुत्र—'भन्ते ! राजा बन्दा करता है धारोम्य पुत्रता है । और वह कही—'भन्ते ! राजा बज्जियों पर बझई करना चाहता है वह पेसा करता है—'मैं इन बज्जियोंकी अधिक बझैगा । भगवान् असा तुम्हें उत्तर दें उसे समझकर ( अथक ) बुझे करो तपापत अथवाच (= विपण ) नहीं बोका करते ।'

बन्दा हो ! कहाँ बर्षकार माह्यज अच्छे अच्छे बालोंको लुपवाकर बहुत अच्छे भावपर बाकन हों अच्छे बालोंके साथ राजगृह से बिकका, (और) जहाँ शूद्रकूट-पर्वत का बहुरे बज्ज । जितनी बामकी भूमि थी उतनी बामसे बाकर बामसे उत्तर पैरक ही जहाँ

२ ही वि. २।३ (१९) । २ थ क 'यंघाके बादके पास आया बोधक अजात शत्रुका राज्य था और जाया बोधक विष्याजियों का । । बहुरे पर्वतके पाद (= जल ) से बहुमूल्य सुगंध-वासना गंध उतरता था । उसको सुनकर अजात-शत्रुके 'आज जहाँ बझाई' करते ही विष्याजि प्रकार एकमत ही पहिके ही जाकर सब के बेते थे । अजातशत्रु पीछे जाकर उस समाचारको पा खुद हो चका जाता था । वह दूसरे वर्ष भी दीया ही करते थे । तब उसने अत्यन्त क्रुपित हो सोचा—'राज (अथमार्तक) के साथ कुछ सुशिक्षक है (अथक) एक भी प्रहार बेकर नहीं आता । किसी एक पंडितके साथ संघना करके काम करना अच्छा होगा । (सोच) उसने बर्षकार माह्यजकी भेजा ।

मयवात् ये, बहो ववा । आकर भगवान्को साथ समोद्व कर एक ओर बैठ, एक ओर बैठकर भगवान्को बोध—

“गौतम ! ‘राज्य आप गौतमके पैरोंमें धिरसे बंधवा करता है । बज्रियोंको उच्छिन्न कहूँगा ’ ।

उस समय आमुष्मान् आमन्द् भगवान्को पीछे (उपे) भगवान्को पंजा सह रहे थे । तब भगवान्ने आमुष्मान् आमन्द्को आमन्त्रित किया—

आमन्द् ! क्या तुने सुना है, (१) बज्री बराबर ( बैठकमें ) इकट्ठा (= सन्निपात ) होबैशके हैं = सन्निपात-बहुक हैं ?”

“सुना है भन्ते ! बज्री बराबर ।

“आमन्द् ! अब तक पत्नी ( बैठकमें ) इकट्ठा होनेवाके रहेंगे = सन्निपात बहुक रहेंगे; (तब तक) आमन्द् ! बज्रियोंकी वृद्धि ही समस्तता हाणि यहीं । (२) क्या आमन्द् ! तुने सुना है, बज्री एक हो बैठक करते हैं, एक हो उत्थाव करते हैं; बज्री एक हो करणीव (= कर्तव्य) को करते हैं ?

‘सुना है भन्ते ! ।

“आमन्द् ! अब तक । (३) क्या सुना है बज्री व प्रज्ञस (= गीरकावृत्ती) को प्रज्ञस (= विहित) नहीं करते प्रज्ञस (= विहित) का उच्छेद नहीं करते । जैसे प्रज्ञस है, वैसे ही पुराने बज्रि धर्म (= बज्रि नियम) को प्रहस्यकर, बर्तान करते हैं ?

“भन्ते ! मैंने वह सुना है ।’

“आमन्द् ! अब तक कि । (४) क्या आमन्द् ! ऐसे सुना है—बज्रियोंके जो महसुक (पुत्र) हैं, उनका (वह) सत्कार करते हैं न्युक्कार करते हैं मानते हैं पूजते हैं, उनकी (बात) सुनने बोध मानते हैं ।” “भन्ते ! सुना है ।

१ अ. क ‘आमन्द्क बैठकके विगुह (= सन्निपात-शेरी) के अर्थके सुबते ही धाते हुवे भी आमूष्म पहिलते भी एक पहिलते भी अथ-आये ही अथ धूपित ही अथ पहिलते हुवे ही एक (= समन) हो जमा होते हैं जमा हो सोचकर मंत्रणकर कर्तव्य करते हैं ।

२ अ. क. “ पहिले व किये गये, सुषक वा पकि (= कर) वा ईशको अन्वामे व प्रज्ञस करते हैं । । पुराना बज्रि-धर्म वा पहिले बज्रि राजा कीय ‘यह ओर है = अथ राधी है (कह) आकर दिखानेसे इस ओरको योंही व कह, विनिश्चय-महामात्र (= म्यावापीस)को देते हैं यह विचारकर अओर होबैपर छोड़ देते यदि ओर होता तो अपने कुछ व कहकर ‘व्यवहारिक’को दे देते । वह भी विचार कर अओर होबैपर छोड़ देते, यदि ओर होता तो ‘सुसचार’को दे देते । वह भी विचारकर अओर होबैपर छोड़ देते, यदि ओर होता तो ‘अहकुकिक’को दे देते । वह भी बैसाही कर सेनापतिके सेनापति उपराज को उपरान्त राजा (= राष्ट्रपति)को राजा विचारकर यदि अओर होता तो छोड़ देता, यदि ओर होता तो प्रबेकी-नुसुक (कामूव विताव) बैचवाता । उसमें— जिससे यह किया उसको ऐसा ईश हो किया रहता । राजा उसकी क्रियाको उससे निकाकर, उसके अनुसार ईश करता ।

आमन्द् ! अब तक कि । (५) क्या सुना है—जो वह कुक-खिवाँ है, कुम्भ-कुमारियाँ हैं उन्हें (वह) धीमकर, बचपुंस्ती नहीं बसाते ? 'मन्ते सुना है ?'

“आमन्द् ! अब तक । (६) क्या सुना है—यज्ञियोंके (नगरके) धीतर वा बाहरके जो शैल (= चौरा = देव-स्थान ) हैं उनका सम्भार करते हैं, पूजते हैं । उनके किये पहिले किये गये शानको, पहिलेकी गई धर्मानुसार बकि (= वृत्ति)के कोप नहीं करते ?”

“मन्ते ! सुना है ?”

‘अब तक । (७) क्या सुना है—बन्धीकोग अर्हतों (= वृत्तों)की अन्धी तरह धार्मिक (= धर्मानुसार) रक्षा = आचरण = गुणित करते हैं । किसकिय ? धर्मिकके अर्हत राज्योंमें आने आने अर्हत राज्योंमें मुञ्चते बिहार करें ।” “सुना है मन्ते !”

“अब तक ।

तब भगवान्ने सर्वकार प्राज्ञानको धर्मभित्त किया—

‘प्राज्ञान ! एक समय मैं वैशाखीमें सारम्भ-शैलमें बिहार करता था । वहाँ मैंने यज्ञियोंको यह सात अपरिहाणीय-धर्म (= न-पतनके निबन्ध) कहे । अबतक प्राज्ञान ! यह सात अपरिहाणीय धर्म यज्ञियोंमें रहेंगे; इस सात अपरिहाणीय धर्मोंमें बन्धी (कोप) दिखलाई पड़ेंगे; (तबतक) प्राज्ञान ! यज्ञियोंकी वृद्धि ही समझना परि हानि नहीं ।

येसा कहने पर सर्वकार प्राज्ञान भयवान्को बोला—

“हे गाँठम ! बुझनी अपरिहाणीय-धर्मस यज्ञियोंकी वृद्धि ही समझनी होगी सात न-परिहाणीय धर्मोंकी तो बातही क्या ? हे गाँठम ! राजा के उपकाय (= रिक्त देवा), वा आपसमें फूटको कोप पुत्र करना डीक नहीं । इन्त ! हे गाँठम ! अब हम बातें हैं, हम बहुत इन्त = बहु-करणीय (= बहुतकम वाले) हैं”

‘प्राज्ञान ! जिसका तू शक समझता है”

तब भगवान् महाभारत सर्वकार प्राज्ञान भयवान्के आपसकी अभिवन्धनकर बहुत मोदकर भासवसे उठकर ‘बका गया । तब भगवान्ने सर्वकार प्राज्ञानके आनेके जोड़ीही देर बाद आपुष्मान् आमन्दको धर्मभित्त किया—

१ अ. क “राजाके पास गया । राजाने उससे पूछा— आचार्य ! भगवान्ने क्या कहा ?” उसने कहा—“मो ! जमान के कर्षवसे तो यज्ञियोंके किसी प्रकार भी किना नहीं जा सकता । हाँ उपकायन और आपसमें फूट होनेसे किना जा सकता है । तब राजाने कहा—‘उपकायनसे हमारे हाथी बोधे बर्ष होंगे मेव (= फूट)से ही पकड़ना चाहिये । (किर) क्या करेंगे ?”

“तो महाराज ! यज्ञियोंके डेकर तुम परिष्कर्मों पाठ उठाओ । तब मैं—‘महाराज ! तुम्हें उनसे क्या है ? अपनी कृपि बाधित करने वह राजा (= महाभारतके सम्भार ) कीये —कहकर बका आऊँगा । तब तुम बोला—‘नयीनी ! यह प्राज्ञान यज्ञियोंके सम्भारमें होती बातको रोक्ता है । उसी दिव मैं उन (= यज्ञियों)के किये मेव (= सर्वकार) सेऊँगा, उसे भी पकड़कर भरे ऊपर दोषरोपण कर बन्धन तापन आदि न कर सुरसे मुञ्चन

“जाओ जाना! तुम कितने भिन्न राजगृहके भासपास विहरते हैं; उन सबको उपरभावसाक्षमें एकत्रित करो।”

“अच्छा मन्ते !” ‘मन्ते ! मिश्रसंप्रको एकत्रित कर दिया, अब भयवान् किसका समन समझें ।

तब भगवान् भासवस उठकर वहाँ उपरभावसाक्षा थी—वहाँ जा विठे आसनपर

करा मुझे बगरसे बिकाक देना । तब मैं कहूँगा—मैंने तेरा बघर (= माफार) धार परिल्ला (= छाई) बनवाई है मैं दुर्बल तथा धमीर स्थानोंको जानता हूँ अब अपनी (तुसे) सीधा कहूँगा । ऐसा सुनकर बोलना— तुम जाओ’ ।

“राजाये सब (बैसा ही) किया । किच्छिविषोने उसके बिकाकने (=विष्णुसम)को सुनकर कहा—‘ब्राह्मण भावाबी (=सठ) है उसे गंगा न उतरने दो । तब किन्हीं किन्हीं के ‘हमारे किए कइसेस तो वह (राज्य) ऐसा करता है कइसेपर—‘तो भय ! जाने दो । उसने जाकर किच्छिविषो द्वारा—‘किसकिए आये ?’ ५४ जानैपर (सब) हाल कह दिया । किच्छिविषोने—‘योर्षसी नाथके किए इतना भारी बंध करवा चुक नहीं या कहकर— वहाँ तुम्हारा क्या पद (=रक्षावाँतर) या’—पुछा । ‘मैं विविध-प्रहामात्य वा— (कइसेपर)—‘वहाँ भी (तुम्हारा) वही पद रहे’—कहा । वह सुन कर तीरसे विविध ( = इत्साक) करता था । राजकुमार उसके पास बिधा (=विशेष) ग्रहण करते थे । अपने गुणों से प्रतिष्ठित हो जानेपर उसने एक दिन एक किच्छिविको एक ओर से जाकर—‘खेत (=पदार = नवारी) खेतते हैं ?’ हँ, खेतते हैं । ‘दो बैक खेतकर ?’ हँ, दो बैक खेतकर’—कहकर खैर आया । तब उसको दूसरेई—‘आचार्य ! (उसने) क्या कहा ?’—पुछनेपर उसने कह दिया । (तब) ‘मेरा बिधास न कर यह ठीक ठीक नहीं बतलाता (सोच) उसने बिगाड़ कर किया । ब्राह्मण दूसरे दिन भी एक किच्छिविको एक ओर के जाकर किस अर्थन (= संमन-अंतरकारी) से भोजन किया?’ पुछकर खैरनेपर, उससे भी दूसरे ने पुछकर न बिधासकर बैसेही बिगाड़ कर किया । ब्राह्मण किसी दूसरे दिन एक किच्छिविको एकान्तमें से जाकर—‘बने गरीब हो न ?’—पुछा । ‘किसने ऐसा कहा ?’ अमुक किच्छिवि ने । दूसरेको भी एक ओर के जाकर—‘तुम आपर हो क्या ?’ किसने ऐसा कहा अमुक किच्छिवि ने’ । इस प्रकार दूसरेके न कइे हुएको कहते तीव बर्ष (५८९-८ ई. पू.) में जब राजाओंमें परस्पर वैसी फूट हाल थी कि दो एक रास्तेसे भी न जाते थे । बैसा करक जमा होनेका मगारा (=सहिपाठ-भेरी) बजवाया ।

किच्छिवि—‘मात्रिक (= ईश्वर) कोय जमा हों— कहकर नहीं जमा हुए । तब उस ब्राह्मणने राजाको अपनी आनेके किए जब (=आसन) भेरी । राजा सुनकर सविक मगारा (= बकमेरी) बजाके निकल । बैसाकीबाकोंने सुनकर भेरी बजवाई— (जाओ खैरे) राजा को गंगा न उतरने दो’ । उसको भी सुनकर ‘देव-राज कोय जाँवे’ आदि कहकर लोग नहीं जमा हुए । (तब) भेरी बजवाई—‘बगरमें सुसम न द ( नपर ) द्वार बन्द करके रहें । एक भी नहीं जमा हुआ । (राजा अजात शत्रु) मुझे द्वारोंसे ही सुसकर सबको उबाहकर (=नवव अस्त्रम पापंत्वा) चपन गया ।

देते। बैठकर भयपान्ने मिश्रणोंको आमंत्रित किया—“मिश्रणो ! तुम्हें सात अपरि-  
हासीय-धर्म उपदेश करता हूँ, उन्हें सुनो कहता हूँ।”

“अथप्र मन्ते !”

(१) मिश्रणो ! जब तक मिश्रु धार धार ( = अमीत्यर्थ ) इकट्ठा होनेवाले = सक्षिपन्व  
बहुक रहेंगे, ( तब तक ) मिश्रणो ! मिश्रणोंकी पृथि समझना, हासि नहीं। (२) जब तक  
मिश्रणो ! मिश्रु एक हो बैठक करेंगे एक हो उर्याय करेंगे; एक हो मघके करणीय (धर्मों)  
को करेंगे; ( तब तक ) मिश्रणो ! मिश्रणोंकी बुद्धिही समझना हासि नहीं। (३) जब तक  
अप्रशुओं ( = अविहितों ) को प्रशु नहीं करेगे प्रशुत्पर लच्छेद नहीं करेंगे; प्रशु सिद्धा-  
पशों ( = विहित मिश्रु-निपमों )के अनुसर बढेंगे । (४) जब तक जो यह रत्न ( = धर्म  
नुरागी ) अिप्रमक्षित संघके पिता घनके वापक रूपरि मिश्रु है उबका सखार करेंगे  
सुखकर करेंगे, मारेंगे, पूरेंगे उब (की बात) को सुबध बोम्ब मारेंगे । (५) जब तक पुनः  
पुनः उर्याक होबेवाकी गृप्ताके धर्ममें नहीं पढ़ेंगे । (६) जब तक मिश्रु अरन्वक  
अवनासक ( = अपकी कुटियों ) की इच्छावाले रहेंगे । ( ) जब तक मिश्रणो ! हर एक  
मिश्रु यह वाक् रत्नैग कि अनागत ( = अविष्य )में सुम्बर सज्जधारी जायें, जाने हुए  
( = आयत ) सुम्बर सज्जधारी सुखके विहरे, ( तब तक ) । मिश्रणो ! जब तक यह सात  
अ-परिहासीय धर्म ( मिश्रणोंमें ) रहेंगे, ( जब तक ) मिश्रु इन सात अ-परिहासीय धर्मोंमें  
दिखाई देंगे, ( तब तक ) ।

‘मिश्रणो ! और भी सात अ-परिहासीय धर्मोंको कहता हूँ । उसे सुनो ।’

(१) मिश्रणो ! जबतक मिश्रु ( धारे दिव नीबर जादिके ) धर्ममें लगे रहने वाले ( = धर्म-  
राम ) = धर्मरत = धर्मरामता-युक्त नहीं होंगे । ( तबतक ) । (२) जबतक मिश्रु अक-  
वाधमें लगे रहने वाले ( = मस्धाराम ) = मस्धारय = मस्धारामता-युक्त नहीं होंगे । (३)  
विद्वाराम = विद्वार-रत = विद्वाररामता-युक्त नहीं होंगे । (४) संगमिधराम ( = धीकके वस्त्र  
करबेवाके ) = संगमिध-रत = संगमिधरामता युक्त नहीं होंगे । (५) पापेच्छ ( = अक्षीक्य ) =  
पाप-इच्छाओंके धर्ममें नहीं होंगे । (६) पाप-मित्र ( = अुरे मित्रोंवाले ) = पाप सहाय  
दुराईकी नीर इच्छावाले न होंगे । (७, बोबेसे विज्ञेय ( = बोय-साकल्य )को पाकर भीधर्म  
न छोड़ देंगे । ।

‘मिश्रणो ! और भी सात अ-परिहासीय धर्मोंको कहता हूँ । । (१) मिश्रणो !  
जबतक मिश्रु अज्ञानु होंगे । (२) ( पापसे ) अज्ञासीक ( = धीमान् ) होंगे । (३)  
( पापसे ) मय जानैवाके ( = अयप्रपी ) होंगे । (४) बहुसुत (५) अतोमी ( = अरन्व-  
वीथ ) । (६) वाद रत्नकेवाके ( = अरन्वित स्युति ) । (७) प्रज्ञावाह होंगे । ।

‘मिश्रणो ! और भी सात अ-परिहासीय धर्मोंको । (१) मिश्रणो ! जबतक मिश्रु  
स्युति-संबोधगती भाषना करेंगे । (२) धर्म-निश्चय संबोधकी । (३) बीर्ध-सं ।  
(४) धीतिसं (५) प्रकटिध सं (६) अमाधि-सं । (७) उपेक्षा-संबोधगती । ।

‘मिश्रणो ! और भी सात अ-परिहासीय धर्मोंको कहता हूँ । । (१) मिश्रणो !  
जबतक मिश्रु अचित्-संज्ञाकी भाषना करेंगे (२) अथापसंज्ञा । (३) अहुमसंज्ञा ।

- (४) आदिनव (= बुधपरिष्काम)-संज्ञा । (५) महाप- (= त्याग) । (६) विरागासंज्ञा
- (७) निरोधसंज्ञा । ।

“मिथुभो ! और भी छ अ परिहाणीय धर्मोंको कहता हूँ । (१) जबतक मिथु सप्तद्व्यारिणों (= गुरुभाइयों) में गुप्त और प्रकट, सैत्रीपूर्ण कायिक कर्म उपस्थित रहेंगे १ । (२) मैत्रीपूर्ण वाचिक-कर्म उपस्थित रहेंगे । (३) जबतक मिथु धार्मिक धर्मसे प्राप्त ध्ये काम हैं—अन्तमें पापमें बुपबधे मात्र भी—वैसे कामोंको (मी) क्षीकषान् सप्तद्व्यारिणों मिथुधर्मोंमें बौद्धकर मोग करनेवाके होंगे (५) जबतक मिथु जो वह अर्थात्=अ-छिद्र<sup>१</sup> अ-कर्मण्य=मुक्तिस विद्यामोंस प्रशंसित, अ-निवृत्त समाधिही और (६) काये बाके क्षीक ई वैसे क्षीकसे क्षीक-धामन्य-मुक्त हो सप्तद्व्यारिणोंके साथ गुप्तमी प्रकट भी बिहरेंगे । (६) जो वह कार्य (=इष्टम) मैत्रीणिक (=पार करानेवाली) वैया करनेवाकेको अर्था प्रकार बु:कक्षपकी और केकानेवाकी दृष्टि है वैसी दृष्टिसे दृष्टि कामन्य-मुक्त हो सप्तद्व्यारिणों के साथ गुप्त भी प्रकट भी बिहरेंगे । मिथुभो ! जबतक यह छ अ-परिहाणीय धर्म ।

वहाँ राजपूहमें गूधकूट-पर्वतपर विहार करते वृषे भगवान् बहुत करक मिथुधर्मोंको बही धर्मक्या कहते थे—ऐसा क्षीक है ऐसी समाधि है ऐसी प्रज्ञा है । क्षीकसे परिभाषित धमाधि महा अक्षवाकी = महा-आमृत्ससवाकी होती है ; समाधिसे परिभाषित प्रज्ञा महाकक्ष-वाकी=महामृत्ससवाकी होती है । प्रज्ञासे परिभाषित चित्त अर्था तरह 'आकषों,—कामाकष यथाकष दधि-नाकष से मुक्त होता है ।

( अम्ब-छट्टिकामें ) ।

तब भगवान्ने राजपूहमें इच्छन्नुसार विहारकर आसुप्मान् आकन्नुको ध्याप्रित किया—

‘बको ध्यानम् । वहाँ अम्बछट्टिका है वहाँ वरुं ।’

“अध्या मन्ते ।”

भगवान् महाम् मिथु-सबके साथ वहाँ अम्बछट्टिका भी वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् अम्बछट्टिकामें राजागारकमें विहार करते थे । वहाँ राजागारकमें भी भगवान् मिथुधर्मोंको बहुत करके बही धर्म-क्या कहते थे—० ।

भगवान्ने अम्बछट्टिकामें बधेष्ट विहार करके आसुप्मान् आकन्नुको ध्याप्रित किया—

‘बको ध्यानम् । वहाँ नामन्ना है, वहाँ वरुं ।’

“अध्या मन्ते ।”

वहाँसे मिथु-धर्मके साथ तब भगवान् वहाँ नाकन्ना भी वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् नाकन्नामें प्राथारिक-आश्रयममें विहार करते थे । तब आसुप्मान् सारियुध वहाँ भगवान्

१ इत्यो आकष । २ वर्तमान सिद्धाव (१) जि परता । ३ मिथुधर्मो सं जि. ३५५ ३१ । ४ सारियुधका निर्वाण पहिक ही हो बुकनेस यह पाठ भावकोंक प्रमादसे वहाँ ध्या मन्त्य होता है ।

वे बहोँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आनुष्माने सारिपुत्रके भगवान्‌को कहा—

‘मन्ते ! मैं ऐसा प्रसन्न (अविचारवाला) हूँ—‘संशोधि (अपरम ज्ञान) में भगवान् से बड़कर वा मूढकर कोई दूसरा अमन ब्राह्मण न हुआ न होगा, न इस समय है।

“सारिपुत्र ! तुने यह बहुत उदार (अपनी) अवर्षमी वाली कही : दुर्बल सिंहनाए किया— मैं प्रसन्न हूँ०। सारिपुत्र ! जो वह अतीतकालमें आईए सम्बन्ध-संशुद्ध हुए, क्या (तुने) उन सब भयव लोंके (अपने) चित्तसे ज्ञान किया, कि यह भगवान् ऐसे लौक वाके, ऐसी प्रज्ञा वाके ऐसे विहार वाके, ऐसी विमुक्ति वाके थे ?’

‘वहीं मन्ते !

“सारिपुत्र ! जो वह सविश्वकालमें आईए सम्बन्ध संशुद्ध होंगे क्या उच सब भगवान्‌को चित्तसे ज्ञान किया ? नहीं मन्ते !’

“सारिपुत्र ! इस समय मैं आईए सम्बन्ध संशुद्ध हूँ क्या चित्तसे ज्ञान किया, (कि मैं) ऐसी प्रज्ञावाला हूँ ?’ “वहीं मन्ते !

“(अब) सारिपुत्र ! तेरा अतीत भवावत (अभविष्य) प्रत्युत्पन्न (अवर्तमान) आईए सम्बन्ध-संशुद्धों के विषयमें चेतः-परिज्ञान (अपर चित्तज्ञान) बहोँ है; तो सारिपुत्र ! तुने क्यों यह बहुत उदार अवर्षमी वाली कही ?’

मन्ते ! अतीत-भवावत प्रत्युत्पन्न आईए सम्बन्ध संशुद्धोंमें मुझे चेतः-परिज्ञान नहीं है; किंतु (सचकी) अर्ध-अन्वय (अवर्ण-समानता) विदित है। जैसे कि मन्ते ! राजा का सीमान्त-नगर एक लौकवाला एक-भकारवाला, एक द्वारवाला हो। वहाँ अज्ञातों (अपरिचितों)को विचारन करनैवाला ज्ञातों (अपरिचितों)को प्रवेश करानेवाला पबिडठ-आण, मेवाही द्वारपाक हो। वहाँ नगरके चारों ओर अनुपर्पाव (अचारी चारीसे) मार्गपर घूमते हुये (अनुभव) प्रकटमें अन्ततो विपकीके निकटमे मर की सी संधि-विचार व पावे;। इसको ऐसा हो—‘जो कोई बड़े बड़े प्राणी इस नगर में प्रवेश करते हैं, सभी इसी द्वारसे। ऐसीही मन्ते ! मैंने अर्ध-अन्वय ज्ञान किया—“जो वह अतीतकालमें आईए सम्बन्ध-संशुद्ध हुये वह सब भगवान् भी चित्तके उपलब्ध (अमक) प्रज्ञाको दुर्बल करनैवाके पौर्षी शीघरकोंको छोड़ चारों स्थिति-अस्वागोंमें चित्तके सु प्रतिष्ठित कर, प्राप्त बोधनोंको वचार्थसे भावना कर, सर्वज्जेड (अनुपार) सम्बन्ध-संशोधि (अपरमज्ञान)को अभिसंबोधन किये थे (अज्ञान का)। और मन्ते ! भवावतमें भी जो आईए सम्बन्ध संशुद्ध हागे; वह सब भी भगवान्। मन्ते ! इस समय भगवान् आईए सम्बन्ध संशुद्धने भी चित्तके उपलब्ध ल।”

वहाँ मास्त्रामे प्राकारिक-आज्ञावने विहार करते भगवान् मिशुकोंके बहुत करते वही करते थे।

(पाटलि-ग्राम में)।

एक भगवान्‌के वाक्यामें इच्छानुसार विहार कर, आनुष्मान् भामन्‌को अभिवादन किया—

“आवन्तु ! चलो जहाँ पाटलिग्राम है वहाँ चले ।

“भन्ते ! भयम्”

तब मिथुसंघके साथ भयवान् जहाँ पाटलिग्राम था, वहाँ गये । उपासकोंने सुना कि भयवान् पाटलिग्राम आये हैं । तब उपासक जहाँ भयवान् थे, वहाँ गये । आकर भयवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुए उपासकोंने भयवान्को यह कहा—

“भन्ते ! भयवान् हमारे आशसथागार’ (= अतिथिसाहा) को स्वीकार करें ।”

भयवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब उपासक भयवान्की स्वीकृतिको जान आसन्ते उठ, भयवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर जहाँ आशसथागार था वहाँ गये । तब भयवान् सार्वभूमिको पहिन कर पात्र पीवर के मिथुसंघके साथ आशसथागारमें प्रविष्ट हो बीचके कमरेके पास पूर्वा मिथुके बैठे । तब भयवान्ने उपासकोंको आमंत्रित किया—

“गृहपतिवो ! दुराचारसे शुभीक (= दुराचारी) के यह पर्व हृत्परिणाम हैं ।

कीनसे पात्र ? १ ।

तब भयवान्ने बहुत रात तक उपासकोंको आमंत्रिक-रूपसे उद्देशित समुपेक्षित कर उद्योक्षित किया—

“गृहपतिवो रात कीन हो गई, जिसका तुम समथ समझते हो ( बैसा करो ) ।

‘अथ भन्ते ! पाटलिग्राम-वासी उपासक आसन्ते उठकर भयवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चले गये । तब पाटलिग्रामिक उपासकोंके चले जानेके बोधी ही देर बाद भयवान् प्लव-आधारमें चले गये ।

उस समय सुनीच (= सुनीच) और धर्मकार भयवान्के महामाल्य पाटलिग्राममें बस्त्रियोंको रोकनेके किये बगर बसाते थे । भयवान्ने रातके प्रप्लव-समथ (= सिन्धार) को उठकर आयुष्मान् आसन्तुको आमंत्रित किया—

“आवन्तु ! पाटलिग्राममें कीन बगर बसा रहा है ?”

‘भन्ते ! सुनीच और धर्मकार भयवान्के महामाल्य बस्त्रियोंके रोकनेके किये बगर बसा रहे हैं ।

१ उद्दान अ क ८। १ ‘भयवान् कम पाटलिग्राममें गये ? आशसथीमें धर्म सेवापति (= सारियुक्त) का चैत्य बनवा वहाँसे निकककर राजगृहमें वास करते वहाँ आयुष्मान् महामौड्यक्याबनका चैत्य बनवाकर वहाँसे निकककर अश्वकृष्णमें वासकर, अत्परित चारिक्रमसे जनपद चारिच्य करते; वहाँ वहाँ एक रात वास करते कोकानुग्रह करते कमकः पाटलिग्राम पहुँचे । पाटलिग्राममें अज्ञातशत्रु और किष्पचि राजाओंके आनुमी समय समथ पर आकर वरके माकिर्को वरसे बिकककर, भास भी आया भास भी बस रहते थे । इससे पाटलिग्राम-वासियोंने तिरप परिहित हो—‘उसके आनेपर यह ( हमारा ) वास स्वाध होगा’—( धोषकर ) बगरके बीचमें महाराजक बनवाई । उदीका वास था अथ पथपाथार’ । यह उसी दिन समाप्त हुआ था । १ देखो पृष्ठ ४५३ । २ देखो पृष्ठ ४९४ ।



आवन् ! जैसे ब्रह्मचर्याके देवताओंके साथ संकल्प करके मगधके महामात्य सुनीय बर्षकार, वज्रियोंके लोककेके छिय नगर बना रहे हैं। आवन् ! जैसे दिव्य अमानुष देवसे देखा—बहु-सहस्र देवता वहाँ पाटलिप्राममें वास्तु (= घर निवास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशमें महाब्रह्मि-शाब्दी (= महासकल ) देवता वास ग्रहण कर रहे हैं वहाँ महाब्रह्मि शाब्दी राजाओं और राज-महामात्योंकर चित्त, घर वधानेको करेगा। जिस प्रदेशमें मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे हैं वहाँ मध्यम राजाओं और राज-महामात्योंका चित्त घर बनानेको करेगा। जिस प्रदेशमें नीच देवता वहाँ नीच राजाओं। आवन् ! जितने ( मी ) धर्म-आपस ( = धर्मोंके निवास ) हैं जितने ( मी ) बन्धु-पुत्र ( = धर्म-पुत्र ) हैं ( बन्धु ) वह पाटलिपुत्र पुत्र मेघन ( = माकली गाँव वहाँ लोही बाघ ) अप ( = मध्या )-नगर होगा। पाटलिपुत्रके तीन अन्तराज (= दिव्य ) हैं: ध्या पाबी और आपसकी वृद्ध।

तब मगध महामात्य सुनीय और बर्षकार वहाँ भगवान् से, वहाँ गये जाकर भगवान्के साथ संमोदनकर एक ओर बड़े भगवान्को बोले—

‘मिथु-संघके साथ आप गौतम हमारा जाबक भात स्वीकर करें।’

भगवान्से मौखसे स्वीकर किया।

तब सुनीय बर्षकारने भगवान्की स्वीकृति जाबक वहाँ उनका जाबस ( = देत ) का वहाँ गये। जाकर अपने आपसके उन्म काष्ठ-भोज्य छेपार बरा (उन्म) भगवान्को मगधकी सूचना दी।

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिचकर, पात्र पीकर छ मिथु-संघके साथ वहाँ मगध महामात्य सुनीय और बर्षकारकर जाबस का वहाँ गये; जाकर जिसे जाबसपर ईडे। तब सुनीय बर्षकारने बुद्ध-मनुष्य मिथु-संघकी अपन हायसे उन्म काष्ठ-भोज्यसे सतर्पित संभारित किया। तब सुनीय बर्षकार भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ इटा छेपार, दूसरा नीचा जासन छकर एक ओर ईड गये। एक ओर बड़े हुए मगध-महामात्य सुनीय बर्षकारको भगवान्ने इन गाथाओंसे ( दान ) अनुमोदन किया—

‘जिस प्रदेश ( मी ) पंडित पुरुष सीकवाक् सपनी

महाचारिणोंको भोजन कराकर वास करता है ॥ १ ॥

वहाँ जो देवता हैं उन्हें ब्रह्मिणा (= दान-भाव ) देनी चाहिये।

वह देवता इच्छित हो पूजा करती हैं भागित हो मानती हैं ॥ २ ॥

तब ( वह ) औरस पुत्रकी भाँति इच्छपर अनुकम्पा करती हैं।

देवताओंसे अनुकम्पित हा पुरुष सदा मंगल देप्रका है ॥ ३ ॥

तब भगवान् सुनीय और बर्षकारको इन गाथाओंसे अनुमोदन कर जासने उड कर गये।

उस समय सुनीय बर्षकार भगवान्के पीछे पीछे चल रहे थे— ‘अज्ञान गौतम जात्र जिस द्वारसे निकलेंगे वह गौतम छार होगा। जिन् तीर्थ (= धार ) से गंगावरी पार होंगे वह शीतम-तीर्थ होगा। तब भगवान् जिन् द्वारसे निकले वह गौतम-द्वार हुआ। भगवान् वहाँ गंगा बरी है, वहाँ गये। उस समय गंगा करारों बराबर मरी करारार

हैं वे कोरेके पीके योग्य थी । कोई आदमी बाब खोजते थे कोई बेवा (=इसुम्य) खोजते थे, कोई बेवा (= कुकुक) खोजते थे । तब भगवान् जैसे कि बकवान् पुण्य समेटी बाँहको (महादही) देखा वे, देखाई बाँहको समेत के पेटेही मिश्रसंबके साथ गंगा नदीके इस पारसे अंतर्धान हो परके तीरपर जा कड़े हुए । भगवान्ने उन भद्रुषोंको देखा कोई कोई नाम खोज रहे थे । तब भगवान्ने इस जगत्को जाकर उसी समय यह उद्गान कहा—

(पंडित) छोटे जन्मसपों (= पस्वकों) को छोड़ समुद्र और नदियोंको सेगुने तरते हैं । (जबतक) लोग कुकुक खोजते रहते हैं (तबतक) मेघानी जब तर गये रहते हैं ।”

(कोटिग्राममें) ।

तब भगवान्ने आनुष्मान् आनंदको आमंत्रित किया—

आओ आनंद ! जहाँ कोटिग्राम है वहाँ चले ।” अथ्य मन्ते ।”

तब भगवान् महामिश्र-संबके साथ वहाँ कोटिग्राम जा वहाँ गये । वहाँ भगवान् कोटि-ग्राममें विहार करते थे । भगवान्ने मिश्रकोंको आमंत्रित किया—

मिश्रको ! चारों 'आर्ष-सत्वोंके अनुबोध (= बोध) = प्रतिबोध न होन से इस प्रकार शीर्षककरते (बह) शीघ्रता = ससरव (= आवायान) 'मेरा और तुम्हारा हो रहा है । कौनसे चारों ? मिश्रको ! कुछ आर्ष-सत्वके बोध = प्रतिबोध न होनसे । दुःखविरोध । दुःख-विरोध-गामिनी प्रतिबन्ध । मिश्रको ! तौ इस दुःख आर्ष-सत्वको अनुबोध = प्रतिबोध किया (तौ) धनतृप्य उच्छिन्न होगई, मन्वैत्री (=तृप्या) क्षीण हो गई” —

भगवान्ने यह कहा ।

वहाँ कोटिग्राममें विहार करते भी भगवान् मिश्रकोंको बहुत करके पही चर्मकथा करते थे । ।

(नादिकामें) ।

तब भगवान्ने कोटिग्राममें इच्छानुसार विहारकर, आनुष्मान् आनंदको आमंत्रित किया—

आओ आनंद ! जहाँ 'नादिका (=नादिक) है वहाँ चले ।”

“अथ्य मन्ते ।”

तब भगवान् महा मिश्रसंबके साथ वहाँ नादिका है वहाँ गये । वहाँ नादिकामें भगवान् गिरिकतावसथमें विहार करते थे । वहाँ नादिकामें विहार करते भी भगवान्ने मिश्रकोंको पही चर्मकथा ।

(बैशाहीमें) ।

तब भगवान् महामिश्र-संबके साथ वहाँ बैशाही की वहाँ गये । वहाँ बैशाहीमें अम्बपाळी वनमें विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने मिश्रकोंको आमंत्रित किया—

१ वैको पृष्ठ ११९९ ।

२ “एक आदमी (=आदि=आनू=आवर=आवर=अतरिया=अपरिया=अवरिया) के गौवमें ।” नादिक=आनूक=अदिका=अदिक=अदिका=अदी जिसके वायसे वर्तमान रती, वरगता ( कि मुकणकरपुर ) है ।

- मिश्रधो ! स्मृति और संप्रबन्धके साथ विहार करो यही हमारा अनुशासन है । ५

अम्बपाळी गणिकाने सुना—भगवान् बैशाळीमें जाये हैं; और बैशाळीमें मेरे आज्ञाबलमें विहार करते हैं । अम्बपाळी गणिका सुहर-सुंहर ( =भद्र ) पाबोंको लुचकाय, सु हर बानपर चढ़ सु हर बानोंके साथ बैशाळीसे निकली; और जहाँ बसका बाराम वा जहाँ चली । जितनी बावकी भूमि थी बतनी बावसे बाकर बावसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् से जहाँ गईं । बाकर भगवान्को अग्निबावकर एक ओर बैठे गईं । एक ओर बैठे अम्बपाळी गणिकाको भगवान्ने धार्मिक कथासे संवर्धित समुत्प्रेक्षित किया । तब अम्बपाळी गणिका भगवान्को यह बोली—

मन्ने ! मिश्र स बने साथ भगवान् मेरा ककका भोजन स्वीकार करें ।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब अम्बपाळी गणिका भगवान्की स्वीकृतिको जान व्यासभसे उठ भगवान्को अग्नि बावकर प्रदक्षिणा कर ली गई ।

बैशाळीके छिच्छरियोंने सुना—‘भगवान् बैशाळीमें जाये हैं । तब वह छिच्छरी सुहर पाबोंपर बाकर हो बैशाळीसे निकले । उभमें कोई कोई छिच्छरि लीके=बीक-बन बीक-बक बीक-बाईकर-बाके थे । कोई-कोई छिच्छरि पीके=पीतबन थे । छोरित ( =कक ) । ककदाठ ( =सफेद ) । अम्बपाळी गणिकाने तदन्य तदन्य छिच्छरियोंके घुरोंसे घुरा ककोंसे कक जूके जूना दशराथा । उभ छिच्छरियोंने अम्बपाळी गणिकाको कहा—

व ! अम्बपाळी ! नहीं तदन्य-तदन्य ( =दहर ) छिच्छरियोंके घुरोंसे घुरा उकराती है ।

‘‘आर्षपुत्रो ! नहींकि मैंने मिश्रसंघके साथ भगवान्को ककके भोजनके किद् विमं त्रित किया है ।’’

‘‘ने अम्बपाळी ! सी हजारसे भी इस भात ( =भोजन ) भी ( हमें करनेके लिए ) दे दे ।

‘‘आर्षपुत्रो ! यदि बैशाळी ककपत् यी हो तो यी इस महान् मातको न हूँगी ।’’ तब उभ छिच्छरियोंने अंगुकिर्षो कोदी—

अरे ! हमें अग्निकरने क्षित किया जरे ! हमें अग्निका ने अक्षित कर दिया ।’’

तब वह छिच्छरि जहाँ अम्बपाळी बन जा जहाँ गये । भगवान्ने घुरसे ही छिच्छरियोंको आठे देखा । देखकर मिश्रधोको आनन्दित किया—

‘‘अबकोकन करो मिश्रधो ! छिच्छरियोंकी परिचरुको । अबकोकन करो मिश्रधो ! छिच्छरियोंकी परिचरुको । मिश्रधो ! छिच्छरि-परिचरुको आयस्त्रिदा ( देव )-परिचरु कककी ( = उपसंहार ) ।

तब वह छिच्छरी रूपसे उतरकर पैदलही जहाँ भगवान् से, जहाँ उतर भगवान्को अग्निबावकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे छिच्छरियोंको भगवान्ने धार्मिक-कथासे समुत्प्रेक्षित किया । तब वह छिच्छरी भगवान्को बोले—

‘मन्ते ! भिक्षु संघके साथ भगवान् हमारा कठका भोजन स्वीकार करें ।’

‘किष्कंधियो ! कक तो स्वीकार कर लिया है मैंने अम्बपाळी-गणिकाका भोजन ।’  
तब उन किष्कंधियोंने अंगुठिचौं फोड़ीं—

‘भरे ! हमें अम्बिकामे जीत दिया । भरे ! हमें अम्बिकामे बंघित कर दिया ।’

तब वह किष्कंधी भगवान्के भाग्यको अभिमन्त्रितकर अबुमोदितक आसबसे उठकर भगवान्को अभिवाहनकर प्रदक्षिण कर चले गये ।

अम्बपाळी गणिकामे उस रातके बीतनेपर अपने अपराममें उत्तम खाद्य-भोज्य तय्यार कर, भगवान्को समप सूचित किया । भगवान् पूर्वाह्न समप पहिनकर पात्र पीवरके भिक्षु संघके साथ वहाँ अम्बपाळीका परोसनेका स्थान जा वहाँ गये । जाकर प्रसुप्त ( स्वच्छे ) आसबपर बैठे । तब अम्बपाळी गणिकामे कुछ प्रमुख भिक्षुसंघकी अपन हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सतर्पित = संप्रचारित किया । तब अम्बपाळी गणिक भगवान्के भोजनकर खेने पर एक पीचा आसन लेकर एक ओर बैठी । एक ओर बैठी अम्बपाळी गणिक भगवान्को बोली—

मन्त ! मैं इस आरामको कुछ प्रमुख भिक्षुसंघको देती हूँ ।

भगवान्ने अपरामको स्वीकार किया । तब भगवान् अम्बपाळी को धार्मिक कथासे समुत्तेजित कर आसनस उठकर चले गये ।

वहाँ वैशाखीमें विहार करते भी भगवान् भिक्षुओंको बहुत करक पही धर्म-कथा करते थे ।

( बेलुव-ग्राम में ) ।

तब भगवान् महाभिक्षुघणके साथ वहाँ बेलुव-ग्रामक ( =बेलु ग्राम ) जा, वहाँ गये । वहाँ भगवान् बेलुव-ग्राममें विहारते थे । भगवान्ने वहाँ भिक्षुओंको आर्म्भित किया—

‘आलो भिक्षुओ ! तुम वैशाखीके चारों ओर निज परिचित देकर बर्षावास करो । मैं वहाँ बेलुवग्राममें बर्षावास करूँगा ।’

‘अच्छा मन्ते !

बर्षावासमें भगवान्को कहीं बीमारी करपक हुई, भारी मरणांतक बीका होने लगी । उसे भगवान्ने स्पृष्टि-संमन्त्रणके साथ बिना दुःख करते स्वीकार(=सहण) किया । उस समय भगवान्को ऐसा हुआ—‘मैंने किये यह उचित नहीं कि मैं उपस्याओं ( =सपत्तों )के बिना छूँ भिक्षुसंघको बिना अक्षकोकन किये परिविर्षाण करूँ । क्यों वहीँ इस आवाधा(=व्याधि) को हटाकर जीवन-अस्कारका अधिहता बन विहार करूँ । भगवान् उस स्पृष्टिको शीर्ष ( =मनोवक)से हटाकर जीवन-अस्कार ( प्राण छक्ति)के अधिहता बन, विहार करने लगे । तब भगवान्की वह बीमारी शांत हो गई ।

भगवान् बीमारीसे उठ हागत अभी अभी मुक्त हो विहारस ( बाहर ) निकल कर

बिहारकी छावमें बिठे आसबपर बँडे । तब धानुप्मान् आनन्दु बहाँ भगवान ये बहाँ गये । जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बँडे । एक ओर बँडे धानुप्मान् आनन्दुभे भगवान्को बह कहा—

“मन्ते ! भगवान्को सुप्री देख ! मन्ते ! मैंने भगवान्को अच्छा हुआ देखा ! मन्ते ! मेरा करीर शुन्य हो गया था ! मुझे दिशाओं में सूछे व पवती थीं । भगवान्की बीमारीस (सुछे) बर्मे (= वात) भी नहीं मान होते थे । मन्ते ! कुछ आघातन मात्र रह गया था—भगवान् तबतक परिबिर्बाय नहीं करेंगे; जब तक मिश्रु सबको कुछ कह म छोये ।

‘आनन्द ! मिश्रु-संघ क्या चाहता है ? आनन्द ! मैंने व-अन्तर व-बाहर करके बर्मे-उपदेश कर दिये । आनन्द ! धर्मोंमें तपागतकी (कोई) आचार्य-मुधि (अहरव) नहीं है । आनन्द ! जिसको ऐसा हो कि मैं मिश्रु-संघको धारम करता हूँ मिश्रु-संघ मेरे उदरेवस है वह कहकर आनन्द ! मिश्रु-संघके किये कुछ करे । आनन्द ! तपागतको ऐसा नहीं है । आनन्द ! तपागत मिश्रु-संघके किये क्या कहेंगे ? आनन्द ! मैं बीर्म=बृह=मह स्कन्ध=अध्यागत=अवभास हूँ । जस्ती बर्पकी मेरी उग्र है । आनन्द ! जसे बीर्म-सकट बॉब बूँबकर चकता है ऐसे ही आनन्द ! मार्गों तपागतका शरीर बॉब बूँबकर चक रहा है । आनन्द ! जिस समय तपागत सारे विमिर्त्तोंके मर्ममें व करनेसे किन्हीं-किन्हीं देवताओंके निकल होनेसे विमिर्त्त-रहित विचकी समाधि (अवकाशता) को प्राप्त हो बिहारेते हैं वच समय तपागतका शरीर अच्छ (अकायुक्तर) होता है । इसकिये आनन्द ! आनन्दीप=आनन्दतरण = अवन्त-अरण धर्मशीप=धर्म-सरण=अनन्त-सरण हो बिहारेते । ।

तब भगवान् शूर्वाह समय पहिनकर शव-बीबर के वैशाखीमें पिंढक किये अविह हुन् । वैशाखीमें पिंढकर कर भोजनोपरांत धानुप्मान् आनन्दुको बोले—

‘आनन्द ! आसनी बढाको बहाँ खापाळ-शैत्य है बहाँ दितके बिहारक किये कहेंगे ।

‘अच्छ मन्ते !’ कह धानुप्मान् आनन्द आसनी के भगवान्के पीछे-पीछे चले । तब धानुप्मान् बहाँ खापाळ-शैत्य का बहाँ गये । जाकर बिठे आसबपर बँडे । धानुप्मान् आनन्दु की अभिवादन कर । एक ओर बँडे धानुप्मान् आनन्दुको भगवान्भे बह कहा—

‘आनन्द ! रमणीय है वैशाखी । रमणीय है अय्यन शैत्य । शोतमक-शैत्य; सप्तमक (= सप्त-आजक)शैत्य = बहू-पुत्रक-शैत्य सारण्य-शैत्य ; रमणीय है खापाळ-शैत्य । । रमणीय है आनन्द ! (राजगृह में) शुभकूट । (कपिलवस्तुमें) म्प्रीषाराम ; खोरप्यात । वैमार (-यिरी)की वणकमें काळशिछा । सीतबनमें सर्प-शीशिक (= सप्य-शोभिक) पहाव (अप्यार) ; तपोवपाराम । वेणुपन कण्ठक-निषाप । शीबकम्ब-बन । मद्रकुसि (=महकुसि) मृग-दाव ।

‘आनन्द ! मैंने पहिले ही कह दिया है—सभीं त्रिपों=मन्त्रोंसे सुराई होती है । तपागतभे बह वात कही—कस्की ही तपागतका परिबिर्बाय होगा; जाजसे तबिमास

बाद तथाप्यत परिनिर्वाण प्राप्त होंगे । आओ भगवन् ! जहाँ महायम कूटागार-शाला है, वहाँ चलो ।

“अच्छा मन्ते !”

भगवान् आयुष्मान् आनन्दक साथ जहाँ महायम कूटागार-शाला थी, वहाँ गये । बाकर आयुष्मान् आनन्दको बोले—“आनन्द ! आओ वैशाखीके पास जितने मिथु विहार करते हैं उन सबको उपस्थावस्यक्रममें एकत्रित करो ।”

तब भगवान् जहाँ उपस्थाव-शाला थी वहाँ गये । बाकर बिठे भयसनपर बैठे । भगवन् भगवान्ने मिथुओंको आमंत्रित किया—

“इच्छिक्ये मिथुनो ! मीने जो धर्म उपदेश किया है उसे तुम अच्छी तौरसे सीखकर सेवन करना भावना करना, ब्रह्मना, जिसमें यह ब्रह्मधर्म अश्वनीय-चिरस्थायी हो; यह (ब्रह्मधर्म) बहुबन्ध-हितार्थ बहुबन्ध-मुक्तार्थ लोकानुर्कषार्थ देव-मनुष्योंके धर्म हित सुकले किये हो । मिथुनो ! मीने वह कालसे धर्म अधिष्ठात कर, उपदेश किये हैं, जिन्हें अच्छी तरह सीखकर ? जैसे कि (१) चार स्मृति प्रस्थान (२) चार सम्मक प्रधान (३) चार आदिपाद, (४) पाँच इन्द्रिय (५) पाँचवक (६) सात बोधभंग (८) आर्ष अष्टांगिक-मार्ग ।

। इत्थ ! मिथुनो ! तुम्हें कहता हूँ—सत्कार (=कृतवस्तु) वाता होनेवाले (=वपवग्मा) हैं प्रमादरहित हो सम्पादन करो । अचिरकालमें ही तथागतका परिनिर्वाण होगा । भगवन्ने जीवमास बाद तथागत परिनिर्वाण पावेंगे ।

( कुसीनाटाकी ओर ४८३ ई. पू )

तब भगवान् पूर्वाह्न समय पहिल कर पात्र नीबरले वैशाखीमें विहसर कर भोजनोपरान्त आगावकोकम् (=हाथीकी तरह सारे शरीरको तुमाकर दृष्टिपाठ) से वैशाखीको देख कर आयुष्मान् आनन्दको कहा—

‘आनन्द ! तथागतका वह अन्तिम वैशाखी-वर्षान होगा । आओ आनन्द ! जहाँ मण्डगाम है वहाँ चलो ।’

“अच्छा मन्ते !”

तब महा मिथुसंबके साथ भगवान् जहाँ मण्डगाम था वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् मण्डगाममें विहार करते थे । वहाँ मण्डगाममें विहार करते ही भगवान् ।

जहाँ अन्वगाम (=आजगाम) । जहाँ अन्वगाम (=अन्वगाम) । जहाँ भोगनगर ।

( भोगनगरमें ) ।

जहाँ भोगनगरमें भगवान् आनन्द-सैर्यमें विहार करते थे । वहाँ भगवान्ने मिथुओंको आमंत्रित किया—

मिथुनो ! चार महाप्रदेश तुम्हें उपदेश करता हूँ उन्हें तुमने अच्छी तरह सबमें करो धारण करता हूँ ।” “मन्ते ! अजम् !”

(१) मिथुनो ! यदि (कोई) मिथु देता है—आयुसी ! मीने इसे भगवान्के मुखसे सुना सुनसे ग्रहण किया है, वह धर्म है यह विलय है वह शास्ताका धारण है ।

मिथुनो ! उस मिथुने भाषणको न अभिलम्बन करना न निन्दा करना । अभिलम्बन न कर निन्दा न कर; उक्त पदार्थजनोंको अरुची तरह सीखकर सूत्रसे तुच्छता करना, विषयमें देखना । यदि वह सूत्रसे तुच्छता करने पर विलयमें देखने पर न सूत्रमें उतरते हैं व विलयमें दिखाई पड़ते हैं; तो विश्वास करना कि अथर्वण यह भगवान्का पक्ष नही है, इस मिथुनका ही सुरहीत है । ऐसा ( होवेपर ) मिथुनो ! उसका छोड़ देना । यदि वह सूत्रसे तुच्छता करनेपर, विलयक देखनेपर सूत्रमें भी उतरता है विषयमें भी दिखाई देता है; तो विश्वास करना कि अथर्वण वह भगवान्का पक्ष है; इस मिथुनका यह सुरहीत है । मिथुनो ! इसे प्रथम महाप्रवेश धारण करना ।

“(१) मिथुनो ! यदि ( कोई ) मिथु ऐसा कहे—‘आजुसो ! अमुक आवासमें स्थिर-मुक्त-अमुक-मुक्त संघ विहार करता है । वह उस सघके मुखसे सुना मुखसे प्रत्यक्ष किया । यह धर्म है यह विषय है यह सारताका वासन है । । तो विश्वास करना कि अथर्वण उक्त भगवान्का पक्ष है इसे सजने सुरहीत किया । मिथुनो ! यह दूसरा महाप्रवेश धारण करना ।

( १ ) मिथु ऐसा कहे—‘आजुसो ! अमुक आवासमें बहुतसे बहुभुत आगत आगम (=आगमश्च) धर्म-धर, विलय धर मायिकापर स्थिर मिथु विहार करते हैं । वह उक्त स्थिरिणीके मुखसे सुना मुखसे प्रत्यक्ष किया । यह धर्म है । ।

“(२) मिथुनो ! (यदि) मिथु ऐसा कहे— अमुक आवासमें एक बहुभुत स्थिर मिथु विहार करता है । वह मैंने उस स्थिरिके मुखसे सुना है मुखसे प्रत्यक्ष किया है । यह धर्म है यह वह विषय । मिथुनो ! इसे अमुक महाप्रवेश धारण करना । मिथुनो ! इस धर महाप्रवेशोंको धारण करना ।

वहाँ भोग-नशरमें विहार करते भी भगवान् मिथुनोंको बहुत करके वही धर्म कक्ष करते थे ।

( पायामें ) ।

अथ पञ्चान् महामिथु-संघके साथ जहाँ पाया वी वहाँ गये । वहाँ पायामें ‘मयवाल् कुम्भ कर्मार ( =सौभार )-पुत्रके आश्रयमें विहार करते थे ।

कुम्भ कर्मारपुत्रने सुना—मगवान् पायामें आये हैं; पायामें मेरे आश्रयमें विहार करते हैं । तब कुम्भ कर्मार-पुत्र वहाँ भगवान् के वहाँ आकर मयवाल्को अभिवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे कुम्भ कर्मार पुत्रको भगवान्ने वार्मिक कथासे समुच्चैरित किया । तब कुम्भने मयवाल्की वार्मिक कथासे समुच्चैरित हो मयवाल्का यह कहा—

“मन्ते ! मिथुसंघके साथ मगवान् भरा कक्षक्य मौखन स्वीकार करें ।”

मगवान्ने मौखसे स्वीकार किया ।

तब कुम्भ कर्मार-पुत्रने उस रातके भीतनपर उत्तम साध भोजन (धौर) बहुत सा ‘शुकर मार्तण्ड ( = शुकर मरुच ) तन्नार करवा मयवाल्को कक्षकी सूचना दी । तब

१ मिथुनो वक्षत ८ : ५ : ९ अ. क 'न बहुत तत्त्व न बहुत दूरे ( = वीर्य )

एक (वर्ष) बड़े सूत्रका बना मांस; वह सूत्र नी, स्थिर भी होता है । कोई कोई करते

मगधान् ब्रह्म सम्यक् पदिनकर पात्र-धीवर के सिद्ध-संधके साथ, जहाँ बुद्ध कर्मार-पुत्रका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। १ ( भोजनकर ) एक धोर बैठे बुद्ध कर्मार पुत्रको मगधान् धार्मिक कथासे समुत्थित कर आसनसे उठकर एक द्विपे।

तब बुद्ध कर्मार पुत्रका मठ (=मौजक) जाकर मगधान्को ब्रह्म धारिनेकी कभी बीमारी उत्पन्न हुई, मरणांतक संकट पीका होने लगी। उसे मगधान्ने स्मृति-संग्रहणबुद्ध हो बिना हतचित्त हुए स्वीकार (=सहन) किया। तब मगधान्ने आमुष्मान् ध्यानकी धार्मिकता किया—

‘आमो आनन्द ! जहाँ कुसीलारा’ है वहाँ चले। अच्छा मन्ते।’

तब मगधान् मार्गसे उठकर एक वृक्षके नीचे गये। जाकर आमुष्मान् धार्मिकको कहा—

‘आनन्द ! मेरे द्विपे चौपेठी संवाठी विष्णु थे, मैं एक गया हूँ पैरूँगा।

‘अच्छा मन्ते !’ आमुष्मान् कर्मारने चौपेठी संवाठी विष्णु ही, मगधान् बिछे आसनपर बैठे। १ उस समय आकार काकामका सिद्ध पुस्तकस मध्य-पुत्र कुसीलारा और पाषाणके बीच शालेमें था रहा था। पुस्तकस मध्य-पुत्रने मगधान्को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ मगधान् ने वहाँ जाकर मगधान्को अभिवादनकर एक धोर बैठ गया। पुस्तकसे मगधान्को कहा—

आश्चर्य मन्ते ! अद्भुत मन्ते ! प्रमदित (क्रोध) लाततर विहारसे विहरते हैं।

“१” जाऊते मन्ते ! मुझे संवदितकर सरनागत उपासक धारण करें।’

तब पुस्तकस० मगधान्के धार्मिक-कथासे समुत्थित हो आसनसे उठकर मगधान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

(मगधान्ने आनन्दको कहा) —

‘आज आनन्द शालके पिऊके पहर (= पास) कुसीलाराके ‘उपघसत सङ्घ-कर्ममें कोड़े शाक (शाक) वृक्षोंके बीच तथ्यत निर्वाणको प्राप्त होंगे। आमो आनन्द ! जहाँ ककुत्था (= ककुत्था) नरी है वहाँ चले।’

‘अच्छा मन्ते !’

तब महासिद्ध-संधके साथ मगधान् जहाँ ककुत्था नरी थी वहाँ गये। जाकर ककुत्था नरीको अभिवादन कर स्नानकर पात्रकर उतरकर जहाँ ‘अग्गधम (= आग्रवण) था वहाँ गये। जाकर आमुष्मान् बुद्धको बोले—

ई—जर्म जाबल (=ओइच) को पॉय गोरससे शून्य ब्रह्मके विधानका नाम है, उसे घोषण (आवधान) पाकर नाम है। कोई कहते हैं—शुकर भार्गव नामक रसायन विधि है वह रसायन-शास्त्रमें आती है। उसे बुद्धने मगधान्का परिनिर्वाण व हो इसके किये हीनार कराया था।’

१ उदात्त अ क (८ : ५) पावासे कुसीलारा १ गच्छति ( १ भोजन ) है। इस बीचमें पच्छीस पच्छीस श्वाओंमें रैद कर, बड़ी दिग्मय करके छाते दुने (सम्पादसे अच्छे) पूर्ण-समय मगधान् कुसीलारा पहुँचे।

१ कुसीलपर विष्णु-देवरिया। २. अ क “उसी नरीके तीर आग्रवण।



भिष्णुओ ! उस भिष्णुके भाष्यको न अभिबन्धन करवा न मिश्रण करवा । अभिबन्धन न । मिश्रण न कर; अब पदार्थजनोंको जप्यी तरह सीखकर सूत्रसे तुकना करना, विषयमें देखना यदि वह सूत्रसे तुकना करे पर विषयमें देखना पर न सूत्रमें उतरते हैं न विषयमें रिक्त पड़ते हैं; तो विश्वास करना कि अवश्य यह भगवान्का वचन नहीं है, इस भिष्णुका सुगुहीत है । ऐसा ( होनेपर ) भिष्णुओ ! उसको छोड़ देना । यदि वह सूत्रसे तुकना करे पर विषयके देखनेपर सूत्रमें भी उतरता है विषयमें भी दिखाई देता है; तो विश्वास करना : अवश्य यह भगवान्का वचन है; इस भिष्णुका वह सुगुहीत है । भिष्णुओ ! इस पर महाप्रवेश धारण करना ।

'(२) भिष्णुओ ! यदि ( कोई ) भिष्णु ऐसा कहे—'आहुसो ! अमुक अवासरपरिबि-भुक्-अमुप-युक्त संघ विहार करता है । यह उस सभके मुखसे सुना मुखसे प्रकिया । यह धर्म है यह विषय है यह शास्ताका आसन्न इ । । तो विस्वास करना अवश्य अब भगवान्का वचन है इसे सभके सुगुहीत किया । भिष्णुओ ! यह दूसरा महाप्रवेश धारण करवा ।

( ३ ) भिष्णु ऐसा कहे—'आहुसो ! अमुक आवासमें बहुतसे बहुभुत अणु आगम (=अणुगमज्ज) धर्म कर, विषय पर, मात्रिकापर परिबि भिष्णु विहार करते हैं । उन स्वविरोक मुखसे सुना सुप्यसे ग्रहण किया । यह धर्म है । ।

"(४) भिष्णुओ ! (यदि) भिष्णु ऐसा कहे—'अमुक आवासमें एक बहुभुत रथ भिष्णु विहार करता है । वह मैंने उस रथविरके मुखसे सुना है, मुखसे ग्रहण किया है । धर्म है वह वह विषय । भिष्णुओ ! इसे अमुक महाप्रवेश धारण करना । भिष्णुओ ! इस महाप्रवेशोंको धारण करवा ।'

वहाँ भोग-अगारमें विहार करत भी भगवान् भिष्णुओंको बहुत करके वही धर्म व कहते थे ।

( पायामें ) ।

अब भगवान् महाभिष्णु-संघके साथ जहाँ पाया भी वहाँ गये । वहाँ पाव 'भगवान् पुन्द कर्मार ( =सीमार )-पुण्डके आश्रममें विहार करते थे ।

पुन्द कर्मारपुत्रके सुजा—भगवान् पावामें आये हैं, पावामें मेरे आश्रममें विहार करते हैं । तब पुन्द कर्मार-पुत्र वहाँ भगवान् व वहाँ आकर भगवान्को अभिवादन वृक आर बँध । एक आर बँधे पुन्द कर्मार पुत्रको भगवान्के धार्मिक कथास समुत्तजित किया । तब पुन्दने भगवान्की धार्मिक कथास समुत्तजित हो भगवान्को यह कहा—

"मन्ते ! भिष्णुसंघके साथ भगवान् मरा कसका भोजन स्वीकार करें ।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया ।

तब पुन्द कर्मार पुत्रके उस रातक शीतलपर कसम राघ भोजन (अपर) बहुत । 'शूबर मादय ( = शूकर मरण ) तथ्यार करवा भगवान्को कालकी सूचना दी । ।

१. भिष्णुओ उदान ८ : ५ । २. अ. क. 'न बहुत तरल न बहुत पुरे ( = धर्म वृक (अर) वरे शूबरका वचा मीस, वह शूद्र भी रिक्तप भी होता है । कोई कोई का

भयवान् पूर्वाह्न समय पहिनकर पत्न-बीबर के मिश्र-संधके साथ, जहाँ लुम्ब कर्मार-पुत्रका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसबनर बैठे। । (मोक्षकर) एक ओर बटे लुम्ब कर्मार पुत्रको भयवान् धार्मिक कथासे समुत्तेजित कर आसबनर उठकर चला दिये।

तब लुम्ब कर्मार पुत्रका भात (=मोक्षन) छाकर भगवान्को ज्ञान पिरबेधी कही बीमारी बरपक हुई, अरुणातक सक्त पीड़ा होने लगी। उसे भगवान्ने रघुति-संप्रकम्पमुक्त हो बिना मुद्रित हुप, स्वीकार (=ग्रहण) किया। तब भयवान्ने ज्ञापुष्पान् ज्ञानरक्षी धार्मिकत किया—

‘जानो भानम् ! जहाँ कुसीनारा’ है वहाँ चले ।’ अथ्य मन्ते ।’

तब भगवान् मार्गसे हटकर एक वृक्षके नीचे गये। जाकर ज्ञापुष्पान् भानरक्षीकहा—  
‘जान् ! मेरे किए बीपेती संवासी बिछा दे मैं एक गथा हूँ बँटूँगा।

अथ्य मन्ते ।’ ज्ञापुष्पान् ज्ञानरक्ष बीपेती संवासी बिछा दी, भगवान् बिछे आसबनर बैठे। । उद्य समय आकार काकामका सिप्य पुष्कस मन्क-पुत्र कुसीनारा बीर पाषाके बीच रास्तेमें था रहा था। पुष्कस महा-पुत्रने भयवापूको एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। पुष्कसने भगवान्को कहा—

‘धार्पर’ मन्ते ! अनुमुक्त मन्ते ! प्रप्रकित (योग) छाततर विहारसे विहरते हैं ।

‘’ । आरुते मन्ते ! मुझे अंशकियन्त सरवागत उपासक बालन करे ।

तब पुष्कस० भयवान्के धार्मिक-कथासे समुत्तेजित हो आसबनर उठकर, भयवान्को अभिवादनकर प्रवृत्तिजाकर पला गया।

(भयवान्ने आनन्दको कहा) —

‘जान् भानम् रातके पिच्छे पहर (= पाम) कुसीनाराके ‘उपयत्तम धाक-वन्ते जोड़े साक (धाक) वृक्षोंके बीच तत्रायत निर्वाणको प्राप्त होंगे। जानो भानम् ! जहाँ कनुत्था (= ककुत्था) बरी है वहाँ चले ।

‘अथ्य मन्ते ।

तब महामिश्र-संधके साथ भगवान् जहाँ ककुत्था बरी थी, वहाँ गये। जाकर ककुत्था बरीको धरवाहक कर, रत्नकर पापकर उतरकर जहाँ ‘अश्वघन (= आश्रय) था वहाँ गये। जाकर ज्ञापुष्पान् पुन्तकको बोले—

ई—वर्न जाकक (=मोक्षन) का पौष गोरससे ज्ञान पकानेके विधानका नाम है जैसे घोषाव (=अश्वघन) पाकका नाम है। कोई कहते हैं—एक मार्गक नामक रसायन विधि है वह रसायन-आधर्ममें आती है। उसे लुम्ब भगवान्का परिवर्तन न हो इसके किए सेवार कराया जा ।’

१ उदाह क क (८ : ५) पाषासे कुसीनारा र रघुति (= टू मोक्षन) है। इस बीषमें परधीस बरधीस रत्नानोंमें देह कर बही दिम्मत करके जाते दुबै (मन्वाटमें चकके) पूर्वाह्न-समय भगवान् कुष्पीवारा पहुँचे ।”

२ कुष्पीवारा जिन-देवता। ३ अ क “उसी बरीके तीर अश्वघन ।”

“सुन्दर ! मेरे किये खीपेती सभाटी बिछा दे । सुन्दर बक गवा हूँ , सेहूँया ।”

“अच्छा मन्ते ।”

तब भगवान् पिरपर पिर रखकर, स्पृष्टिसंप्रजन्यके साथ उल्पाव-संज्ञा मगमें करके, दहिनी करबट सिंह सारवासे छेदे । आयुष्मान् सुन्दर वहीं भयबाएके सामने बंटे ।<sup>१०</sup>

तब भगवान्‌ले आयुष्मान् आनन्तुको कहा—

“आनन् ! आपन् कौहूँ सुन्दर कम्मर-पुत्रको धुक्क करे ( = विपरिसार उपरदेव )

(भीर कहै)— आनुस सुन् ! अक्षम है तुझे, तबे दुर्कर्म कमाया, जो कि तबायत तेरे विरुपातकी भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये आनंद । सुन् कम्मर-पुत्रकी इम किंताको दुर करवा (भीर कहना)—आनुस ! अक्षम है तुझे तबे सुक्षम कमाया, जो कि तबायत तेरे विरुपातकी भोजनकर परिनिर्वाणको प्राप्त हुये । आनुस सुन् ! मिते वह मयबाएके मुखसे सुखा मुखसे प्रहज किया—“वह हो विरुपात समाज अरुपाके=समान विपाकबाके हैं इमसे विरुपातसे बहुत ही महाअक-मन् = महानुसंसतर हैं । कौसे हो ? ( १ ) जिस विरुपात ( = शिक्षा ) को भोजनकर तबायत अनुत्तर सम्यक्-संयोधि ( = बुद्धराज ) को प्राप्त हुये ( २ ) भीर जिस विरुपातको भोजनकर तबायत अन् उपाधिसेप निर्वाणबातु ( = दुःख करन-रहित निर्वाण ) को प्राप्त हुये ।

तब भगवान्‌ले आयुष्मान् आनन्तुको आनन्तु किया—

आओ आनन् ! जहाँ ‘दिरन्धवती बरीका परका तीर है जहाँ कुसीमाय ‘उप वस्तन मरुत्तक घाकवन है वहाँ कहे । अच्छा मन्ते ।”

तब भगवान् महासिन्धु-संबके साथ जहाँ दिरन्धवती मरुत्तक शाक्यन था वहाँ गये । आकर आयुष्मान् आनन्तुको बोले—

आनन् ! वनक ( = ठहरने ) शाक्यके बीचमें उचरकी ओर सिरहाकर आरपाई ( = मरुत्तक ) बिछा दे । थका हूँ आनन् ! सेहूँया ।” “अच्छा मन्ते !

तब भगवान् दहिनी करबट हो सिंहसारवासे छेदे ।<sup>१०</sup>

‘आनन् ! अहास कुक-पुत्रके किए वह चार स्थान दर्सीवीव सबेजनीव ( = वराम-मन् ) हैं । कौसे चार ? ( १ ) ‘जहाँ तबायत उत्पन्न हुये ( = अनुनिर्वाण ) यह स्थान अहास । ( २ ) जहाँ तबायतने अनुत्तर सम्यक्-संयोधिको प्राप्त किया’ ( = बुद्धराजा ) । ( ३ ) ‘जहाँ तबायत अनुपाधि-सेप निर्वाण-बातुको प्राप्त हुये ( = कुसीतारा ) । वह चार स्थान इसवीव हैं । आनन् ! अहास सिन्धु सिन्धुनिर्वाण उपासक उपाधिकार्ये ( = मरिच्यमें ) आयेती, ‘जहाँ तबायत उत्पन्न हुये ‘जहाँ तबायत निर्वाण का प्राप्त हुये ।

१ अ क ‘जसे ( अजुतापुर लज्जमें ) कम्म-मरीके तीरने राजमाया-विहार-इरजे पूवाराम आना होता है जसे ही दिरन्धवतीक परके [तीरने शाक्यन उपाव ( है ) ] जसे अनुत्तरपुत्रका पूवाराम है जैसे ही वह कुसीताराका है । जैसे पूवारामसे दहिन्-इर हो नगरमें प्रवेश करकेका मार्ग पूर्वमुँह हो आक उत्तरकी ओर मुहता है ; जसे ही अक्षयनम अक-पंकि पूर्व-मुँह आकर उत्तरकी ओर मुहरी है । इसीकिन् वह उपवस्तन कहा जाता है ।”

“मन्ते ! हम छिपोंके साथ कैसे बर्ताव करेंगे ?”

“अ-वर्त्तन (= न देखना), आवन्त् !”

“वर्त्तन होनेपर भयवान् कैसे बर्ताव करेंगे ?”

“आच्छाप (= बात न करना) आवन्त् !”

“बात करनेवालेको कैसे बर्ताव चाहिये ?”

“स्मृति (= मन) को रसमाक रक्षता चाहिये ?”

“मन्ते ! तपागतके शरीरको हम कैसे करेंगे ?”

“आनन्त् ! तपागतकी शरीर-वृद्धसे तुम पर्वाह न करना । तुम आनन्त् सब्धे पद्मार्थ (=अन्वय)के छिपू प्रयत्न करना सत्-मर्षके छिपू उद्योग करना । सत्-अर्षमें अग्रमात्री उद्योगी अग्रमर्षवनी हो बिहलता । हे आनन्त् ! तपागतमें आनन्त् अनुरक्त अतिव पंडित भी माह्वय पंडित भी गृहपति पंडितभी, वह तपागतकी शरीर पूजा करेंगे ।”

“मन्ते ! तपागतके शरीरको कैसे करना चाहिये ?”

“कैसे आवन्त् ! राजा अक्षवर्तीके शरीरके साथ करना होता है वैसे तपागतके शरीरको करना चाहिये ।

“मन्ते ! राजा अक्षवर्तीके शरीरके साथ कैसे किया जाता है ?”

“अनन्त् ! राजा अक्षवर्तीके शरीरको गने बक्षसे कपेटते हैं; वये बक्षसे कपेटकर जुबी कईसे कपेटते हैं । जुबी कईसे कपेटकर वये बक्षसे कपेटते हैं ।” । इस प्रकार कपेटकर...  
तेकड़ी कोहद्रीणी (=श्रीव)में रक्षकर दूसरी कोह द्रीणीसे रक्षकर सभी गर्बी (बाके काह)की बिता बकाकर राजा अक्षवर्तीके शरीरको अकपते हैं; अकाकर वये औरस्तर पर राजा अक्षवर्तीका स्तूप बनाते हैं । १”

तब आयुष्माक् आनन्त् बिहारमें जाकर कपिसीस (=छोटी)को बक्षकर रोते कड़े हुए—“हाय ! मैं सीद्व-अक्षकरणीय हूँ । और जो मेरे अनुकंपक आस्ता है उनका परिधिर्वाण हो रहा है !”

अयवाक्वै मिथुओंको आमंत्रित किया—“मिथुन्ने ! आवन्त् कहाँ है ?”

“वह मन्ते ! आयुष्माक् आनन्त् बिहार (=कोरती)में जाकर राते कड़े है ।”

“आ ! मिथु ! मेरे बचवत त् आवन्त्को कह—‘आहुत आवन्त् ! आस्ता तुम्हें कुछ रहे है । “अप्य मन्ते !”

आयुष्माक् आनन्त्... कहाँ आगवान् ने कहाँ आकर” अभिवादन कर एक ओर बंटे ।

“आयुष्माक् आवन्त्को अयवाक्वै कह—

“वहाँ आवन्त् ! मत शोक करो मत रोओ ! मैंने तो आवन्त् ! पहिले ही कह दिया है—सभी मित्रों = महापोंसे तुम्हें ही छोड़ी है सो वह आवन्त् ! कहाँ निकलेवाक्य है । जो कुछ आत (=अपक्ष) =मूल-संस्कृत है सो वाता होनेवाक्य है ; ‘हाय ! वह वाता न हो । -- यह अंभव नहीं । आवन्त् तुम रीर्वात्र (=अधिराज) तक हित-सुख अग्रमान मंत्रोर्ष कायिक-कर्मस तपागतकी समा भी है । मंत्रोर्ष कायिक कर्मसे । मंत्रोर्ष

मानसिक क्रमसे । आनन्द ! तू इतनुष्य है । मगधान (निर्वाण-साधक)में क्या कन्दरी भ्रमासक (=मुक्त) होजा ।”

आपुष्मान् आनन्दने भगवान्को यह कहा—

‘मन्ते ! मत इस क्षुद्र मगधे (=मगध) में, जंगली मगधेमें साया-मगरकमें परि निर्वाणको प्राप्त होने । मन्ते ! और भी महाधर है; जैसे कि चम्पा राजगृह, आवली सायेण कौशाम्बी वाराणसी । वही मगधान् परिनिर्वाण करें । यहाँ बहुतसे क्षत्रिय महापाक (= महापत्नी) माण्डव-महासाक गृहपति महासाक तपागतके मन्त हैं; यह तपागतके धरिरीष्टी पूजा करेंगे ।’

‘मत आनन्द ! ऐसा कह; मत आनन्द ! ऐसा कह— इस क्षुद्र मगध । पूर्वककमें आनन्द ! यह कुसीनारा राजा सुदर्शनकी कुसावती नामक राजपात्री थी । । आनन्द ! कुसीनारामें जाकर कुसीनारापासी मन्कोंको कह—‘वासिहो ! आज रातके पिछके पहर तक गतका परिनिर्वाण होया । क्यों वासिहो ! यको वासिहो ! पीछे अरुसोन मत करवा ‘हमारे ग्रामक्षेत्रमें तपागतका परिनिर्वाण हुआ धकिन हम अंतिम ककमें तपागतका दर्शन न कर पाय ।

अपत्र मन्ते !’ आपुष्मान् आनन्द पीवर पद्मिनकर पातपीवर के धकेके ही कुसीनारामें मविष्ट हुए । उस समय कुसीनारावासी मन्स किन्ही क्रमसे संस्थागारमें जमा हुये थे । तब आपुष्मान् आनन्द जहाँ कुसीनाराके मन्कोंका संस्थागार था वहाँ गये । जाकर कुसीनारावासी मन्कोंको यह बोले—‘वासिहो ! ।

आपुष्मान् आनन्दसे यह सुनकर मन्स मन्स-पुत्र मन्स बन्ने मन्स-भाववि बुद्धित बुमवा बुल्य-समपित-विच हो कोई कोई बाकोंको बिघेर राये थे बाह पकड़कर कंध करते थे कटे (वेद) से गिरते थे (मुमिपर) कोछत थे-बहुत कन्दरी मगधान् निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं बहुत कन्दरी सुगत निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं । बहुत कन्दरी कोक-पानु अन्त पांग हो रह हैं । तब मन्स बुद्धित हो जहाँ उपवसन मन्कोंका शाकसन था वहाँ गये ।

तब आपुष्मान् आनन्दको यह हुआ—‘पदि मैं कुसीनाराके मन्कोंको एक एक करके मगधान्की बन्ना करवाऊँगा, ता मगधान् (समी) कुसीनाराके मन्कोंसे अवन्तित ही होंगे और यह रात भीत अवन्तित । क्यों न मैं कुसीनाराके मन्कोंको एक एक ककके क्रमसे मगधान्की पन्ना करवाऊँ—‘मन्त ! अमुक नामक मन्स स-पुत्र स-मावा स-वरी पद् स अमाय मगधान्के पारकोंको धिरस पन्ना करवा है । तब आपुष्मान् आनन्दने कुसीनाराके मन्कोंको एक एक ककके क्रमसे मगधान्की बन्ना करवायी— । इस उवावसे आपुष्मान् आनन्दने प्रथम पाम में (=उ म दम बने रावक) कुसीनाराके मन्कोंसे भय

धम्म) उत्पन्न है। इस प्रकार मैं भ्रमण गौतममें प्रसन्न (= भद्रावात्) हूँ। भ्रमण गौतम मुझे बैसा धर्म उपदेश कर सकते हैं; जिससे मेरा यह सक्षय हट जाये।

तब सुमत्त परित्राजक वहाँ उपबन्धन महोत्सव शाळ-वन या वहाँ अयुष्मान् आनन्द के वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

“हे आनन्द ! मैंने कुछ महत्त्वक परित्राजकोंके यह करते सुना है। तो मैं भ्रमण गौतमक दर्शन पाई ?”

देना कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुमत्त परित्राजकको कहा—

“वहीं आयुष ! सुमत्त ! तपागतको तकलीफ मत दो। मगवान् बक हुये ई।”

दूसरी बार भी सुमत्त परित्राजके ।। तिसरी बार भी ।।

मगवान्ने आयुष्मान् आनन्दके सुमत्त परित्राजकके साथमा कथा सक्षय मुन किया।

तब मगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“वहीं आनन्द ! मत सुमत्तको मग करो। सुमत्तको तकगतका दर्शन पाई हो।

जो कुछ सुमत्त पुछेगा वह आज्ञा (= परम ज्ञान) की चाहसे ही पुछेगा तकलीफ देनेकी चाहसे नहीं। पुछनेपर जो मैं उस कहूँगा उस वह अपनी ही जान लेगा।

तब आयुष्मान् आनन्दने सुमत्त परित्राजकका कहा—

“आमो आयुष सुमत्त ! मगवान् तुम्हें आज्ञा देते हैं।

तब सुमत्त परित्राजक वहाँ मगवान् के, वहाँ गया। जाकर मगवान्के साथ संसो-दनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे बोला।

“हे गौतम ! जो भ्रमण ब्राह्मण संघी = गजी = तमाधर्म प्रतिज्ञ तदास्वी स्वीकर बहुत जोरों द्वारा उत्तम माने जानेवाले हैं उस कि—पूज काश्यप मकलालि गास्तास अस्तित बोशकम्यल पकुभ कथायन संक्षय वेलेट्टिपुल निर्गठ माधपुल। (कथा) यह सभी अपन दावा (= प्रतिज्ञा) की (बैसा) आबते (या) सभी (बैसा) वहीं आबते; (या) कोई कोई बैसा आबते कोई कोई बैसा नहीं आबत !।”

“वहीं सुमत्त ! जान दो— यह सभी अपन दावाको । सुमत्त ! तुम्हें धम्म उप देश करता हूँ; उसे सुनो अच्छी तरह मनमें करो भाग्य करता हूँ।

“अप्य धम्ते !” सुमत्त परित्राजकने मगवान्को कहा। मगवान् यह कहा —

“सुमत्त ! जिस धर्म-विशयमें अप्य अर्थांगिक माग उपलक्ष्य नहीं होता, वहाँ (धम्म) धम्म ( भोग जायक ) भी उपलक्ष्य नहीं होता; द्वितीय धम्म (= सकृदागामी ) भी उपलक्ष्य नहीं होता; तृतीय धम्म (=अध्यागामी ) भी उपलक्ष्य नहीं होता; चतुर्थ धम्म (=अर्हत्) भी उपलक्ष्य नहीं होता। सुमत्त ! जिस धर्म-विशयमें आर्य अर्थांगिक-माग उप लक्ष्य होता है, वहाँ धम्म भी होता है । सुमत्त ! इस धर्म-विशयमें आर्य अर्थांगिक-माग उपलक्ष्य होता है; सुमत्त ! यहाँ धम्म भी यहाँ द्वितीय धम्म भी यहाँ तृतीय

१ अ. क. ‘पहिल पहरमें महम्मके धम्म-दीधमाकर विच्छ पहर सुमत्तका पिच्छ पहर निष्प-संघको उपदेश के बहुत मोरे ही परिनिर्वाण—।”

भावमिक कर्मसे । आत्मन् । ए कृतपुण्य है । प्रधान (निर्वाण सायब)में क्या जन्मी भवाराय (=मुक्त) होजा ।”

आनुष्मान् आत्मन्ने भयवान्को बंद कहा—

“मन्ते ! मत्त इस सुदृच नगळे (=नगरक) में, अंगळी मगळेमें शास्त्र-मगरकमें परि निर्वाणको प्राप्त होवें । मन्ते ! थीर भी महानगर है; जैसे कि चम्पा राजगृह, धावस्ती सायबत श्रीधाम्नी बाराजसी । बदां मगवान् परिविर्वाण करें । वहाँ बहुतसे क्षत्रिय महाशाक (= महाप्रथी) शास्त्र-महाशाक गृहपति मदाशाक तपागतके भक्त हैं; वह तबामतके शरीरकी पूजा करेंगे ।”

“मत्त आत्मन् ! ऐसा कह; मत्त आत्मन् ! ऐसा कह—‘इस सुदृच नगळे । पूर्वकर्ममें आपन्न् ! बंद कुसीवारा राजा सुदृचान्की कुसापती नामक राजधानी थी । । आत्मन् ! कुसीवारामें जाकर कुसीवारावासी मन्कोंको कह—‘वासिहो ! आज रातके पिछके पहर तथा यत्न परिनिर्वाण होगा । कबो वाशिहो ! कबो वाशिहो ! पीछ अप्सोस मत्त करवा ‘हमारे प्रामाण्यमें तपागतका परिनिर्वाण हुआ लेकिन हम अतिम काकर्म तपागतका दर्शन व कर पावे ।

‘अच्छा मन्ते !’ आनुष्मान् आत्मन् बीबर पहिनकर, पात्रबीबर के अकेले ही कुसीवारामें मविष्ट हुए । उस समय कुसीवारावासी मन्क किंसी कामस संस्थागारमें जमा हुये थे । तब आनुष्मान् आत्मन् बदां कुसीवाराके मन्कोंका संस्थागार जा पहां गये । अन्तर कुसीवारावासी मन्कोंको यह बोले—‘वाशिहो ! ।

आनुष्मान् आत्मन्से यह सुनकर मन्क मन्क-पुत्र मन्क-बनुषें मन्क-भावनिं दुःखित हुमवा बुद्ध-ममपित्त-विष्ट हो कोई कोई बाकोंको विखेर रोते थे बांह पकड़कर कंदव करते थे कटे (पेड़) से गिरते थे (स्मिपर) बीडते थे—बहुत जल्दी भगवान् निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं बहुत जल्दी सुगत निर्वाण प्राप्त हो रहे हैं । बहुत जल्दी लोक-बन्धु भक्त पान हो रहे हैं । तब मन्क दुःखित हो जहाँ उपवचन मन्कोंका शाकवचन था वहाँ गये ।

तब आनुष्मान् आत्मन्को यह हुआ—‘बदि मैं कुसीवाराके मन्कोंको एक एक करके भगवान्की बन्दा करवाऊंगा, तो भयवान् (धमी) कुसीवाराके मन्कोंसे अवशिष्ट ही होंगे और वह रात नीच जावेगी । वनों व मैं कुसीवाराके मन्कोंको एक एक कुकके क्रमसे भगवान्की बन्दा करवाऊँ—‘मन्ते ! अमुक नामक मन्क स पुत्र स-भार्या स-परि पन्, स-जमाव भगवान्के चरकोंको सिरसे बन्दा करता है । तब आनुष्मान् आत्मन्ने कुसीवाराके मन्कोंको एक एक कुकके क्रमसे भगवान्की बन्दा करवावी— । इस उपायसे आनुष्मान् आत्मन्ने प्रथम पाम में (=क)से इस बने राततक ) कुसीवाराके मन्कोंसे भगवान्की बन्दा करवा दी ।

उस समय कुसीवारामें सुमद्र नामक परियात्रक आस करता था । सुधर परि जाकने सुवा आज रातको पिछके पहर अमय पीठमका परिनिर्वाण होगा । तब सुधर परिजात्रकको ऐसा हुआ—‘मिंने बुद्ध-मदरकक आचार्य-माचार्य परिजात्रकोंको यह कही सुना है—‘क्याकिर कभी ही तबामत आईए सम्क अन्वुद्ध बन्पक हुआ करते हैं । जैसे आज रातके पिछके पहर अमय पीठमका परिनिर्वाण होगा और सुसे यह संतक (= क)का

धर्म) उल्लङ्घ है, इस प्रकार मैं धर्मय गौतममें प्रसन्न (= प्रत्याधान) हूँ ! धर्मय गौतम मुझे बीना, धर्म उपदेश कर सकते हैं; जिससे मेरा यह सक्षय हर जाये ।

तब सुभद्र परिव्राजक बहों उपबन्धन महसूँक शाल-वन वा बहों आयुष्मान् आनन्द के बहों गया । जाकर आयुष्मान् आनन्दको बोला—

“हे आनन्द ! मैंने तुम्हें महसूँक परिव्राजकोंके यह कहते सुन्य है । तो मैं धर्मय गौतमका दर्शन पाऊँ ?”

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकको कहा—

‘महों आयुष ! सुभद्र ! तवागतको ठकलीक मत दो । भगवान् यक हुये हैं ।’

दूसरी बार भी सुभद्र परिव्राजकने । । तीसरी बार भी । ।

भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दका सुभद्र परिव्राजकके साथक कथा-संकाप सुन किया ।

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको कहा—

“महों आनन्द ! मत सुभद्रको मना करो । सुभद्रको तवागतका इशान-पाने दो ।

जो कुछ सुभद्र पूछेगा वह भाशा (= परम ज्ञान) की चाहत ही पूछेगा ठकलीक देखेकी चाहते बहों । पूछनेपर जो मैं उस कहूँगा उसे वह अपनी ही शान लेगा ।

तब आयुष्मान् आनन्दने सुभद्र परिव्राजकको कहा—

‘जाओ आयुष सुभद्र ! भगवान् तुम्हें आज्ञा देते हैं ।’

तब सुभद्र परिव्राजक बहों भगवान् के, बहों गया । जाकर भगवान्क साथ संभा-दनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे बोला ।

“हे गौतम ! जो धर्मय प्राज्ञान सर्वी = गणी = गमाचार्य प्रसिद्ध पधरवी तीर्थकर, बहुत लोगो द्वारा उत्तम माने जानेवाक है वैसे कि—पूर्ण काश्यप मङ्गललि गासाल् अखिल शेशकम्बल पशुघ्न कथापन संज्ञय बरुडिपुत्र जिगंठ नाथपुत्र । ( क्या ) यह समी अपने दावा (= प्रतिज्ञा) की ( बीसा ) जावते ( पा ) समी ( बीसा ) नहीं जावते, ( वा ) कीई कोई बीसा जावते कोई कोई बीसा नहीं जावते ! ।— ।”

‘महों सुभद्र ! जाने दो—‘यह समी अपने दावाका । सुभद्र ! तुम्हें धर्म उप-देश करता हूँ, उस मुझे अच्छी तरह मनमें करो भाषण करता हूँ ।’

“अच्छा मन्ते ! सुभद्र परिव्राजकने भगवान्को कहा । भगवान्क यह कहा —

“सुभद्र ! जिस धर्म-विभवमें आर्य अष्टांगिक मार्ग उपलब्ध नहीं होता, बहों (धर्म) धर्मय ( शोन आपन्न ) भी उपलब्ध नहीं हाता, द्वितीय धर्मय (= सकृदागामी ) भी उपलब्ध नहीं होता, तृतीय धर्मय (= अनागामी ) भी उपलब्ध नहीं हाता, अनुप धर्मय (= अर्हत् ) भी उपलब्ध नहीं होता । सुभद्र ! जिस धर्म-विभवमें आर्य अष्टांगिक-भाव उप-लब्ध होता है बहों धर्मय भी होता है । सुभद्र ! इस धर्म-विभवमें आर्य अष्टांगिक-मार्ग उपलब्ध होता है, सुभद्र ! बहों धर्मय भी, बहों द्वितीय धर्मय भी बहों तृतीय

१ अ क. ‘पहिले पहरमें महसूँकके धर्म-वैद्यकाकर बिचके पहर सुभद्रको पिछक पहर मिश्र-संघको उपदेश दे बहुत मोरे ही परिविषय’—।



अमय भी बहोँ क्युर्थ अमय भी है। दूसरे बाद (अमय) अमयोंसे धूम्य है। सुमय। बहोँ ( यदि ) मिथु डीकसे बिहार करे ( तो ) कोक जईतोंसे धूम्य न होवे ।”

‘सुमय ! उन्नीस वर्षकी अवस्थामें कुम्भक (अमयक) का श्लेषी हो, मैं प्रमत्त हुआ। सुमय ! जब मैं प्रमत्त हुआ तबसे इच्छान्वय वर्ष हुये। आश्व-वर्ष (आश्व-वर्ष=सत्य-वर्ष) के एक वैद्यको भी देखनीवाला बहोँसे बादर कोहूँ बहोँ है ० १ २ ३” ।

ऐसा कहकर सुमय परिग्राहकके मन्त्रवाक्यकी कथा—

“आश्व-वर्ष मन्ते ! अद्भुत मन्ते ! मैं मगवाककी शरण जाता हूँ बर्ष और मिथु-सबकी भी। मन्त ! मुझे मगवाकके पाससे प्रमत्ता मिक, उपसंपदा मिले ।”

‘सुमय ! जो कोहूँ मृत पूर्व अम्य-सैबिक (असुरे पंचक) इस बर्ष मैं प्रमत्ता उपसंपदा चाहता है। वह चार मास परिवास (अपरीक्षार्थ वास) करता है। चार मासके बाद आश्व-वर्ष मिथु प्रमत्तिते करते हैं मिथु होनके किये उपसंपदा करते हैं ।”

“मन्ते ! यदि मृत पूर्व अम्य-सैबिक इस बर्ष विनयमें प्रमत्ता • उपसंपदा चाहने पर, चार मास परिवास करता है । तो मन्ते ! मैं चार वर्ष परिवास करूँगा। चार वर्षके बाद आश्व-वर्ष मिथु मुझे प्रमत्तित करे ।

तब मगवाकने आयुष्मान् आनन्दको कहा—“तो आनन्द ! सुमयको प्रमत्तित करो ।”

“अच्छ मन्त !”

तब सुमय परिग्राहकको आयुष्मान् आनन्दकी कथा—

आनन्द ! काय है तुम्हें सुखम हुआ तुम्हें, जो बहोँ धान्याक संमुख अंतेवाली (अशिव) के अभियेकसे अभिपिठ हुये ।”

सुमय परिग्राहकने मगवाकके पास प्रमत्ता पाई, उपसंपदा पाई। उपसंपदा होनेके अभिरहीमें आयुष्मान् सुमय आत्मसंतोषी हो विहार करते अग्रही शिखके सिप कुकपुत्र प्रमत्तित होते हैं। उस अनुत्तर अग्रवर्ष फलको इसी अम्यमें स्वयं आनन्द साक्षात्कार का प्राप्तकर बिहारने कये। सुमय जईतोंसे एक हुए। वह मगवाकके अंतिम अशिव हुए।

तब मगवाकने आयुष्मान् आनन्दकी कथा—

‘आनन्द ! आश्व तुमको पत्ता हो—(१) अतीत धान्य (अ फल गये गुरु) का (बह) प्रवचन (अपदेश) है (अब) हमारा धान्य नहीं है। आनन्द ! इस ऐसा मत देनका। मैंने जो धर्म आर विनय उपदेश किये हैं, मन्त (अविहित) किये हैं; मेरे बाद यही तुम्हारा धान्य (अ गुरु) है।—(२) आनन्द ! जैसे आश्वक मिथु एक दूसरेकी अनुत्तर करकर पुकारते हैं मेरे बाद ऐसा करकर न पुकारें। आनन्द ! स्ववितर (अउपसंपदा प्रमत्तामें अधिक दिनका) मिथु नवक-तर (अअभिये कत्र समयके) मिथुको नामसे वा गायक वा आयुष करकर पुकारें। नवकतर मिथु स्ववितरको मन्ते वा आयुष्मान् करकर पुकारें। (३) इच्छा होनेपर संघ मेरे बाद शुद्ध-अनुत्तर (अपारे छोट) शिखापत्ते (अमिथुविनयमें) को छान दे। (४) आनन्द ! मेरे बाद छत्र मिथुको प्रमत्तित करना चाहिये ।”

“मन्ते ! मद्यर्षद क्या है ?”

“आनन्द ! कुछ मिश्रणोंको जो चाहे सो कहे मिश्रणोंको उससे न बोलना चाहिये न उपदेश = अनुज्ञासन करना चाहिये ।

तब मगधान्ने मिश्रणोंको धर्मजित किया—

मिश्रण ! (परि) बुद्ध, धर्म संभ्रमों एक मिश्रणको भी कुछ संकष हा (तो) पृष्ट से । मिश्रणो ! पीछे अफसोस मत करना—‘शास्त्रा हमारे सम्युक्त ये (किन्तु) हम मगधान्क सामने कुछ न पृष्ट सके ।’

पूसा करनेपर वह मिश्रण सुप रह । दूसरी बार भी मगधान् । । तीसरी बार भी । ।

तब मगधान्ने मिश्रणोंको धर्मजित किया—

‘इत्थं मिश्रणो ! अथ तुम्हें क्यता हूँ—“संस्कार (=कृतवस्तु) प्यथ धर्मो (=बाध धान्) है; अथमात्क साध (=आकस न कर) (जीवनके कर्मको) संपादन करो । —यह उपागतक्य अहितम बचव है ।

तब मगधान् प्रथम ध्यावको प्राप्त हुये । प्रथम ध्यावम उदकर त्रितीय ध्यावको प्राप्त हुये । तृतीयध्यावको । चतुर्थध्यावको । आकसमानत्पापतनको । विज्ञानानत्पापतनको । आकिकम्पापतनको । नैव-संज्ञानासंज्ञापतनको । संज्ञावैदिततिरोधको प्राप्त हुए । तब आपुप्मान् ध्यावन्ने आपुप्मान् अनुदत्तको कहा—“मन्ते ! अनुदत्त ! क्या मगधान् परिनिर्हृत हो गये ?”

“आनुस आनन्द ! मगधान् परिनिर्हृत नहीं हुये । संज्ञावैदिततिरोधको प्राप्त हुये है ।”

तब मगधान् संज्ञावैदिततिरोध-समापत्ति (=चार ध्यावोंके रूपरक्षी समाधि) सं उदकर नैवसंज्ञा-वासंज्ञापतनको प्राप्त हुए । । त्रितीय ध्यावसे उदकर प्रथम ध्यावको प्राप्त हुए । प्रथम ध्यावम उदकर त्रितीय ध्यावको प्राप्त हुए । । चतुर्थ ध्यावम उदकेक अर्नतर मगधान् परिनिर्वाणको प्राप्त हुये ।”

मगधान्के परिनिर्वाण हो जाभपर जो वह जहीत-राग (=अ-चिरार्गी) मिश्रण से (उभयों) कोई कोई पकड़कर बन्धन करत थे; कहे पेइक सहसा गिरत थे (बातीपर) छाटत थे—‘मगधान् बहुत बन्दी परिनिर्हृत हो गए । किन्तु जो जीत-राग मिश्रण से वह स्मृति-संभ्रमको साथ स्वीकार (=महम) करते थे—‘संस्कार अतिथ है वह कहाँ मिलेगा ?’

तब आपुप्मान् अनुदत्त ने मिश्रणोंको कहा—

“नहीं आपुप्मो ! शोक मत करो रोदन मत करो । मगधान् ता आपुप्मो ! यह पहिले ही कह दिया है—‘समी मियों स उरार्ह होगी ।

आपुप्मान् अनुदत्त अथ आपुप्मान् आनन्दके बाकी राग धर्म-क्यामें जितान् । तब आपुप्मान् अनुदत्तने आपुप्मान् आनन्दको कहा—

‘आमो ! आपुप्म आनन्द ! कुस्तीनागमें जाकर कुपीनराक मस्त्रोंको कहा—‘बापिसे ! मगधान् परिनिर्हृत हो गये । अथ किन्तुम तुम काक समझो (बद करा) ।’

अस्य भी यहाँ 'सुम' अमल भी है। दूसरे वाद (=मत) अमलसे शून्य है। सुम ! यहाँ ( यदि ) मिथुन जीको विहार करें ( तो ) लोक अर्हतासे शून्य न होवे ।"

'सुमद्र ! उन्नीस वर्षकी अवरयामें कुत्तक (=संयक) का खोजी हो मैं प्रकृत हुआ। सुमद्र ! जब मैं प्रकृत हुआ तबसे इन्द्रायन वर्ष हुये। अश्व-धर्म (=आर्क-धर्म=सत्य-धर्म) के एक दैतको भी देखनेवाला यहाँस बाहर कोई यहाँ है ॥ १ २ ॥—'

ऐसा कहनेपर सुमद्र परित्रासकने अयवापुकी कहा—

"आश्चर्य मन्ते ! अस्मृत मन्ते ! मैं मगधानकी शरण जाता हूँ धर्म और मिथु-सबकी भी। मन्त ! मुझे मगधानके पाससे प्रकृत्या निकले, उपसंपदा निकले।

"सुमद्र ! जो कोई मृत पूर्व अन्व-सैबिक (=दूसरे पंचका) इस धर्म में प्रकृत्या उपसंपदा चाहता है। वह चार मास परिवास (=परीक्षार्थ वास) करता है। चार मासके बाद आरप्य-चित मिथु प्रकृतिके करते हैं मिथु होनेके किये उपसंपदा करते हैं।"—

"मन्ते ! यदि मृत पूर्व अन्व-सैबिक इस धर्म-विनयमें प्रकृत्या उपसंपदा चाहते पर, चार मास परिवास करता है। तो मन्ते ! मैं चार वर्ष परिवास करूँगा। चार वर्षके बाद आरप्य चित मिथु मुझे प्रकृतिके करें।

तब मगधानने आपुष्मान् आनन्दको कहा—"तो आनन्द ! सुमद्रको प्रकृतिके करो।

"अच्छा मन्ते !"

तब सुमद्र परित्रासकको आपुष्मान् आनन्दने कहा—

आनन्द ! काम है मुझे सुकम हुआ मुझे, जो यहाँ साक्षात् समुच्च अंतेवामी (=सिप्य) के अभियेकस अभिषिक्त हुए।

सुमद्र परित्रासकने मगधानके पास प्रकृत्या पाई, उपसंपदा पाई। उपसंपदा होनेके अतिरिक्त आपुष्मान् सुमद्र आनन्दसंभवी हो विहार करते अर्हताही जिसके लिए कुत्तक प्रकृतिके होत है। अब अनुत्तर अर्हत्वं ककको इसी अन्वमें स्वर्ग आनन्द साक्षात्कार कर प्राप्तकर विहारने को। सुमद्र अर्हतामें एक हुए। वह मगधानके अंतिम सिप्य हुए।

तब मगधान आपुष्मान् आनन्दका कहा—

"आनन्द ! आश्चर्य सुमद्रको ऐसा हो—(१) अतीत-साक्षात् (=अने गये हुए) का (वह) प्रकृतिके (=उपसंपदा) है (जब) इसारा साक्षात् नहीं है। आनन्द ! इस देसा मत देवदा। मैंने जो धर्म और विनय उपसंपदा किये हैं, प्रकृतिके (=विहित) किये हैं मेरे बाद यही तुम्हारा साक्षात् (=गुरु) है।—(२) आनन्द ! जैसे आनन्दस मिथु एक वृत्तके 'आनन्द' कहकर पुकारते हैं मेरे बाद केमा कहकर व पुकारें। आनन्द ! अतिरिक्त (=उपसंपदा) प्रकृत्यामें अधिक दिनका) मिथु अर्हत्-तर (=अपने कम समयके) मिथुको वापसे का गोत्रने का 'आनन्द' कहकर पुकारें। अर्हत्तर मिथु अतिरिक्तके 'मन्ते वा आपुष्मान्' कहकर पुकारें। (३) इच्छा होनेपर तब मेरे बाद शुद्ध-अनुभूत (=अपने छोटे) विधावर्ती (=मिथुनिधर्मों) को छोड़ दे। (४) आनन्द ! मेरे बाद छत्र मिथुको अर्हत्वं करण चाहिये।"

“मन्ते ! मगधान् क्वा दे ?”

“आमन् । उच्च मिश्रुओंको जो चाहे सो कहे मिश्रुओंको उससे न बोलना चाहिये न उपदेश = अनुशासन करना चाहिए ।

तब मगधान्ने मिश्रुओंको आमंत्रित किया—

मिश्रुओ ! (बन्धि) कुड, धर्म संधर्म एक मिश्रुको मी कुड संघ हा (तो) पूछ क । मिश्रुओ ! पीछे अफसोस मत करना—‘साखा हमारे सम्मुख ये (किन्तु) हम मगधान्के सामने कुड न पूछ सके ।’

ऐसा कहनेपर वह मिश्रु चुप रहे । दूसरी बार मी मगधान् । । तीसरी बार मी । ।

तब मगधान्ने मिश्रुओंको आमंत्रित किया—

इतत मिश्रुओ ! अब तुम्हें कहता हूँ—“सस्कार (ऽकृतवस्तु) ध्वय धर्मा (ऽमाघ धाम्) ई; अघमाहक साय (ऽअकस न कर) (जीवनक कल्पको) संपादन करो ।—वह तन्मागतक जगित्तम बचन है ।

तब मगधान् प्रथम ध्यावको प्राप्त हुये । प्रथम ध्यावसे उठकर द्वितीय ध्यावको प्राप्त हुये । ०-तृतीयध्यावकी । अनुर्थध्यावकी । आकाशावन्त्वापत्तको । विज्ञानावन्त्वावत्तको । आकिष्मत्वापत्तको । नैव-संज्ञावासंज्ञापत्तको । ०-संज्ञाबैद्यित्तनिरोधको प्राप्त हुए । तब आधुप्मान् आनन्दने आधुप्मान् अनुद्वन्द्वको कहा—“मन्ते ! अनुद्वन्द्व ! क्या मगधान् परिनिर्हृत हो गये ?”

“आधुस आमन् ! मगधान् परिनिर्हृत नहीं हुये । संज्ञाबैद्यित्तनिरोधको प्राप्त हुये हैं ।”

तब मगधान् संज्ञाबैद्यित्तनिरोध-समापत्ति (ऽचार ध्यावोंके ऊपरकी समाधि) से उठकर नैवसंज्ञा वासंज्ञापत्तको प्राप्त हुए । । द्वितीय ध्यावसे उठकर प्रथम ध्यावको प्राप्त हुये । प्रथम ध्यावसे उठकर द्वितीय ध्यावको प्राप्त हुए । । अनुर्थ ध्यावसे उठके धर्मतर मगधान् परिनिर्वाणको प्राप्त हुये ।—

मगधान्के परिनिर्वाण हो जानेपर जो वह अशीत-राग (ऽअ-दिरागी) मिश्रु थे (उन्में) कोई कोई एकद्वन्द्व मन्त्र करत थे, कई पेड़के सच्छ विरल थे (धरतीपर) कोठण थे—‘मगधान् बहुत अन्धी परिनिर्हृत हो गये । किन्तु मी अशीत-राग मिश्रु थे वह स्मृति-मन्त्रमन्त्रके साथ स्वीकार (ऽमहन) करते थे—‘सस्कार जगित्त ई वह कहीं मिथेगा ?’

तब आधुप्मान् अनुद्वन्द्व ने मिश्रुओंको कहा—

“नहीं आधुसो ! धोक मत करो रोदन मत करा । मगधान् तू आधुसा ! वह पहिल ही कह दिया है—‘समी मिषों से उतराई होनी है ।

आधुप्मान् अनुद्वन्द्व ध्यर आधुप्मान् आनन्दने बाकी रात धर्म-कथामें बिताई । तब आधुप्मान् अनुद्वन्द्वने आधुप्मान् आनन्दको कहा—

आओ ! आधुस आमन् ! कुन्तीमारामें आकर कुपीनाराक मन्त्रोंको कहा—‘वर्षाहो ! मगधान् परिनिर्हृत हो गये । अब किमिच्छ तुम काक समजा (वह कर) ।’

‘अच्छ मन्ते !’ कह ‘आयुष्मान् आनन्द पश्चिमकर पाप-बीचर के बड़े-बड़े कुसीनारामें प्रविष्ट हुए । उस समय किसी कामसे कुसीनारामके मन्त्र संस्थागार (=गणराज्य समा मन्त्रमै) जमा थे । तब आयुष्मान् आनन्द वहाँ मन्त्रोंका संस्थागार या वहाँ गये । जाकर कुसीनारामके मन्त्रोंको बोधे—

“वाशिष्ठो ! भगवान् परिनिवृत्त होगये जब जिसका तुम एक समझो ( ईसा करो ) ।

आयुष्मान् आनन्दमें यह सुनकर मन्त्र मन्त्र-पुत्र मन्त्र-बन्धु, मन्त्र-आर्षों हुएवित हा कोई केसोंको विरारकर मन्त्र करती थी ।

तब कुसीनारामके मन्त्रोंमें पुष्पोंका जाया थी—

तो मन्ते ! कुसीनारामकी सभी गंध माका और सभी बाघोंको जमा करो ।

तब कुसीनारामके मन्त्रोंमें सभी गंध माका सभी बाघों और पौधे हजार बान (=दुस्त)-बाघोंका लेकर वहाँ उपवसन था, जहाँ भगवान्का शरीर था, वहाँ गये । जाकर भगवान्के शरीरको मृत्यु गीत पाप माघ गंधस सत्कार करत =गुद्वार करते =मानते =पूजते उपवेश्य विताष (=वैश्या) परत मंडप बनाते वहाँमें उस दिनको विठा दिया । तब कुसीनारामके मन्त्रोंको बुधा—‘भगवान्के शरीरके दाह करनको आज बहुत विघ्नक हो गया । अथ एक भगवान्के शरीरका दाह करेंगे । तब कुसीनारामके मन्त्रोंमें भगवान्के शरीरको मृत्यु गीत पाप, माका गंधसे सत्कार करते =गुद्वार करते = मानते =पूजते वैश्या तावते मंडप बनाते दूसरा दिन भी विठा दिया । तीसरा दिन भी । चामा दिन भी । पाँचवाँ दिन भी । छठे दिन भी । तब सातवें दिन कुसीनारामके मन्त्रोंको यह बुधा—‘हम भगवान्के शरीरको मृत्यु गंधसे सत्कार करते नगरक दक्षिणस क जाकर बाहरसे बाहर नगरक दक्षिण भगवान्के शरीरका दाह करें । उस समय मन्त्रोंके भाड प्रमुख (=मुद्रिया) सिरसे बहाकर बने एक पश्चिम भगवान्के शरीरको उठवा चाहत थे; लेकिन वह वहाँ उठ्य सके । तब कुसीनारामके मन्त्रोंमें आयुष्मान् अनुदत्तका पद्य—

मन्ते ! अनुदत्त ! क्या हेतु ई =नया कारण है; जो कि हम बाड मन्त्र-प्रमुख वहाँ बसा सकते ?

“वाशिष्ठो ! तुम्हारा अभिप्राय दूसरा है और दक्षताओंका अभिप्राय दूसरा है ।

‘मन्ते ! दक्षताओंका अभिप्राय क्या है ?

वाशिष्ठो ! तुम्हारा अभिप्राय है हम भगवान्के शरीरको मृत्यु स सत्कार करत नगरक दक्षिण दक्षिण क जाकर बाहरसे बाहर नगरक दक्षिण भगवान्के शरीरका दाह करें । दक्षताओंका अभिप्राय है—हम भगवान्के शरीरको दिय मृत्यु स सत्कार करते नगरक उत्तर उत्तर क जाकर उत्तर छारसे नगरमें प्रथमकर नगरके बीचसे क जा पूष छारसे निररु नगरक पूर्व धार (जहाँ) मुकुट-रथभक्त कामक मन्त्रात्मक वैश्या (=द्वेष्यात्म) है वहाँ भगवान्के शरीरका दाह करें ।

१ वैश्या पूढ ३९३ । २ वचनमात्र माका-पुत्र कसवा ( वि. वैश्या ) ।

३ शमाभार (कमया) का मन्त्र ।

“मन्ते ! वैसे देवताओंका अभिप्राय है—बसा ही हो ।”

उस समय कुसीनाराजों बाँबमर मन्दारब ( = एक दिव्य पुत्र )-पुत्र करते हुए थे । तब देवताओं और कुसीनाराजों मन्तोंने भगवान्‌के शरीरको दिव्य और मनुष्य रूप के साथ सत्कार करते नगरसे उत्तर उत्तरसे ल बाकर (वहाँ) मुकुन्द-बंधन नामक मन्तोंका पैल था वहाँ भगवान्‌का शरीर रक्त्वा । तब कुसीनाराजों मन्तोंने आनुष्मान् बालान्‌को कहा—

“मन्ते आबन् ! हम तभागतके शरीरको कसे करें ?”

“वासिष्ठो ! वैसे बडबर्ती राजाके शरीरको करते हैं वैसे ही तथागतके शरीरको करवा चाहिये ।”

“मन्ते ! कैसे बडबर्ती राजाके शरीरको करते हैं ।

“वासिष्ठो ! बडबर्ती राजाके शरीरको कसे कपड़ेसे सपेटेते हैं । (दाहकर) कसे घोरसे पर तथापतका स्त्र बचवाना चाहिये । ”

तब कुसीनाराजों मन्तोंने पुत्रोंको आज्ञा की—

‘तो यजे ! मन्तोंका पुना कपड़ा बना करो ।

तब कुसीनाराजों मन्तोंने भगवान्‌के शरीरको कसे बस्त्रसे भेषित किया सब तीर्थोंकी किता बना भगवान्‌के शरीरको किता पर रखा ।

उस समय पाँचसौ मिश्रुओंके महाभिष्णुमयके साथ आनुष्मान् महाकादपप पाषा और कुसीनाराजोंके बीचमें शान्तेपर जा रहे थे । तब आनुष्मान् महाकादपप मागसे इच्छा कर एक वृक्षके नीचे बडे । उस समय एक आजीवक कुसीनाराजों मन्तार का पुत्र के पाषाके पक्षेपर जा रहा था । आनुष्मान् महाकादपपने उस आजीवक को वृत्से आते देखा । देखकर उस आजीवकको यह कहा—

“आनुस ! क्या हमारा शान्ताको भी आते हो ?”

“हाँ आनुस ! आता हूँ, भयम गौतमको परिमिह उ हुये थात्र एक सप्ताह होगया; मैंने यह मंदार पुत्र वहाँसे पाया ।”

यह सुन वहाँ जो आजीवराग मिश्रु थे ( उनमें ) कोई कोई बौद्ध पक्षकर होते । उस समय सुनार नामक ( एक ) बृह प्रकथित ( = बुद्धायेमें साधु हुआ ) उस परिवर्त्तमें गया था । तब बृह-प्रकथित सुनारने उन मिश्रुओंको यह कहा—

“मत् आनुसो ! मत् शोक करो मत् रोओ । हम मुमुक्षु होगये । उस महाभयम से विभित छा करते थे—‘यह तुम्हें विहित है यह तुम्हें विहित नहीं है । अब हम जो चाहो सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे सो नहीं करेंगे ।

तब आनुष्मान् महाकादपपने मिश्रुओंको आमंत्रित किया—

आनुसो ! मत् सोओ मत् रोओ । आनुसो ! भगवान्‌ने तो यह पक्षि ही कह दिया है—‘जमी मिश्रों-मनापोंसे बुझाई होमी है सो वह आनुसो ! कहां निकनेबास्य है ? जो जात्र ( = उत्पन्न ) = मृत है वह जात्र होमेवात्ता है । हाव ! वह नशा मत् हा’— यह शान्त नहीं ।”

उस समय चार मन्त्र-मनुष्य सिरसे नहाकर बसा बस्त्र पहिन भगवान्की चिताकी क्षीपना चाहते थे किन्तु नहीं (क्षीप) सकते थे। तब कुसीनाराके मन्त्रोंने आयुष्मान् धनुषको रूखा—

‘मन्ते धनुष् । क्या हेतु है—क्या प्रयत्न है जिससे कि चार मन्त्र-मनुष्य नहीं (क्षीप) सकते हैं।’

बाधिहो ! देवताओंका वृक्षराही अभिप्राय है। पाँच सौ मिश्रुओंके महामिश्रुसंघके साथ या महाकाश्यप पाधा भीर कुसीनाराके बीच राक्षसमें ध्वंस है। भगवान्की चिता तब तक न जलेगी जबतक आयुष्मान् महाकाश्यप स्वयं भगवान्के चरणोंकी चारसे बन्दा न कर देंगे।’

‘मन्ते ! क्या देवताओंका अभिप्राय है वैसा हो।’

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने जहाँ मन्त्रोंका मुकुटवज्रजल नामक वैद्य वा जहाँ भगवान्की चिता थी वहाँ पहुँचकर भीबरको एक कन्धेपर कर जगदी बोध तीन बार चिताकी परिक्रमाकर, चाप छोड़कर सिरसे बन्दा की। उन पाँच सौ मिश्रुयोंने भी एक कन्धेपर भीबरकर हाथ जोड़ तीन बार चिताकी प्रवृत्तिवाकर, भगवान्के चरणोंमें सिरसे बन्दा की। आयुष्मान् महाकाश्यप भीर उन पाँच सौ मिश्रुओंके बन्दा करके ही भगवान्की चिता स्वयं जल गयी। भगवान्के शरीरमें जो छवि (= छिन्नी) वा धर्म प्राप्त मन वा लसिका की उनकी न राख जान पड़ी न कोमल्य सिर्फ अस्थिर्वा ही बाकी रह गई। जैसे कि कहते हुये भी या लेककी न राख (अस्थिका) बाध पकटी है न कोमल्य (अमसी)। भगवान्के शरीरके दृग् हो जानेपर आकाशसं मेषने माहुभूत हो भगवान्की चिताको डंका किया। कुसीनाराके मन्त्रोंने भी सर्व-गन्ध (अभिधित) जहसे भगवान्की चिताको डंका किया।

तब कुसीनाराके मन्त्रोंने भगवान्की अस्थियों (अस्थिराशि)को सप्तप्र भर संका शारमें सक्ति (—इस पुष्पोंके बेरेका) पंजर बनवा, धनुष (—इस पुष्पोंके बेरेका)—मकार बनवा मूल गीत बाध माका पंखसे सत्कार किया—अनुकार किया माना—रूखा।

राजा मागाव अज्ञातशत्रु बीदेही पुत्रने सुना—‘भगवान् कुसीनारामें परिनिर्वाणको प्राप्त हुये। तब राजा अज्ञातशत्रु ने कुसीनाराके मन्त्रोंके पास दूत भेजा—‘भगवान् मी अत्रिप (वे) मी मी अत्रिप (हूँ)। भगवान्के शरीरों (अस्थियों) में मेरा भाव मी बाधित है। मी मी भगवान्के शरीरोंका स्तूप बनवाऊँ या और पूजा करूँगा?’

शिशान्कीके छिच्छयियोंने सुना।

अपिच्छयस्तुके शाक्योंने सुना।—भगवान् हमारे शक्ति (वे) ५।

अस्त्रकप्यके बुद्धियोंने सुना। रामभ्रामके कोसियोंने सुना।

येठ-वीपके ब्राह्मणोंने सुना भगवान् मी अत्रिप वे, हम ब्राह्मण। पाबाके मन्त्रोंने भी सुना।

पूजा करनेपर कुसीनाराके मन्त्रोंने उन सर्वों और राज्योंको कहा—‘भगवान् हमारे भ्राम क्षेत्रमें परिनिर्वाण हुये हम भगवान्के शरीरों (अस्थियों) का भाग नहीं देंगे।’

वैसा करनेपर द्रौण्य ब्राह्मणने उन सर्वों और राज्योंको यह कहा—

‘आप सब मेरी एक बात सुनें हमारे बुद्ध होंति ( = अमा )-बाड़ी ये ।

वह ठीक नहीं कि ( उस ) उत्तम पुद्गलकी भस्वि बौद्धोंमें मारपीट हो ॥१॥

आप सभी सहित ( = एक साथ ) समग्र ( = एक साथ ) संमोहन करते जाठ माग करें । ( जिससे ) दिसाओंमें स्तूपोंका बिकार हो बहुदस छाग बहुमाप् ( = बुद्ध ) में प्रसन्न ( = अदावान् ) हो ॥२॥

‘तो माह्वण ! गृही भगवान्के शरीरोंको जाठ समान भागोंमें सुविभक्त कर ।’

अच्छ भो ! श्रेष्ठ ब्राह्मणमें भगवान्के शरीरोंको जाठ समान भागोंमें सुविभक्त ( = बँट ) कर उन सबों गणोंको कहा—

‘आप सब इस कु मको मुझे दें मैं कुम्भका स्तूप बनाऊँगा भार पूजा करूँगा ।’

उन्होंने श्रेष्ठ ब्राह्मणको कुम्भ दे दिया ।

पिप्पलीवनके मोरियों ( = मोरों ) ने सुन्न भगवान् की छत्रिय हम भी छत्रिय ।’

‘भगवान्के शरीरोंका भाग नहीं है भगवान्के शरीर बँट चुके । यहाँसे कोपला ( = अंगार ) के भागों । वह यहाँस अंगार के गये ।

तब ( १ ) राजा अजातशत्रु ने राजगृहमें भगवान्के भविष्योंका स्तूप ( बनाया ) और पूजा ( = मह ) की । ( २ ) वैशाखीके छिन्नद्विषोंमें भी । ( ३ ) कपिलवस्तुके शाप्योंमें भी । ( ४ ) अस्तकप्यके बुद्धियोंमें भी । ( ५ ) गम्भारामके कोष्ठियोंमें भी । घेठदीपके ब्राह्मणमें भी । ( ६ ) पायाके मस्सोंमें भी । ( ८ ) कुसीनाराके

१ अ क कुसीनारासे राजगृह पधीस योजन ई । इस बीचमें जाठ रूपम थीका समतक मना बनवा भक्त राजाओंमें सुकुट-अंधण और संस्वाभारमें बीसी पूजा की थी, बीसी ही पूजा (अजात शत्रुमें) पधीस योजन मार्गमें थी । (उसमें) अपने पाँच स्रा योजन परिमं दक ( = धरेबाक ), राज्के मनुष्योंको एकत्रित करबाबा । उब धातुओंको से कुमीनारास धातु ( = विमिक्त )-भीडाकरते मिक्ककर (कोग) यहाँ सुन्दर पुष्योंको दकते यहीं पूजा करते थे । इस प्रकार धातु केकर जाते दूबे साठ वर्ष साठ मास साठ दिन बीठ गये । काई गई धातुओंको केकर (अजातशत्रुमें) राजगृहमें स्तूप बनबाबा पूजा कराई ।...

इस प्रकार स्तूपोंके प्रतिष्ठित होजावैपर महाकाह्यपर स्वबिरव धातुओंके अन्तराव ( = विष्ण ) की देकर राजा अजात-शत्रुके पास जाकर कहा— ‘महाराज ! एक धातु विभाव ( = अरिक्-धातु रत्नकैक चहवका ) बनावा चाहिये ? अच्छ मन्ते ।’...

स्वबिर उब उब राज कुष्मेंको पूजा करतै मात्रकी धातु छोड़कर बाकी धातुओंको के जाये । रामग्राममें धातुओंके नागोंके ग्रहण करवैसे अन्तराव य था, ‘मविष्णमें कंका-दीपमें इस महाविहारके महासैन्यमें स्थापित करेंगे — ( क प्याकसे भी ) न के जाये । बाकी सातों नगरोसे के जाकर राजगृहके पूर्व-दक्षिण भागमें ( को स्थाप ई ); राजाने उस स्थानको तुष्टाकर उससे निकली मिहूसे ईदें बनवाई । ‘यहाँ राजा क्या बनबाता ई बुद्धने धातुओंको भी ‘महाधातुकोका रत्न बनबाता ई यही करते थे कोई भी धातु-निधानकी बात न बनता था ।



मस्सोने भी । ( ९ ) त्रोगेण माहात्म्ये भी कुम्भका । ( १ ) विष्णुमीयगने मायोने भी अंगारोका ।

इस प्रकार भाठ शरीर ( = शक्ति ) के रूप और एक कुम्भ-रूप पूर्वका ( = मृतपूर्व ) में थे ।

'अभु-माम् ( = पुत्र ) का शरीर ( = शक्ति ) भाठ त्रोगेण वा । ( त्रिसमेंस ) नाम त्रोगेण अन्वहीयमें पृथित होते हैं । ( शर ) पुत्रपोत्तमका एक त्रोगेण राम-ग्राममें बायोसे पूजा जाता है ॥१॥

एक वाड ( = वाड ) स्वर्ग-सोकमें पृथित है और एक गंधारपुरमें पृथी जाती है । एक फलिग-राजाके देशमें है; और एकको नागराज पूजते हैं ॥२॥



उस स्थानके अस्सी हाथ गहरा हो जानेपर नीचे छोड़ेका पत्थर बिछाकर वहाँ 'धूप राम के शैत्य परके बराबरका तपि ( = ताप-कोह ) छ पर बनवा, भाठ भाठ हरिचंदन अतिके करवी ( = पिठारी ) और स्तूपोंको बनवाया । तब भगवान्की धातुको हरिचंदनके करण्ड ( = पेठारी विष्णु ) में रखवा उस को दूसरे हरिचंदनके करण्डोंमें इसे भी दूसरमें इस प्रकार भाठ हरिचंदनके करण्डोंमें एकमें एक रखकर भाठ हरिचंदन-स्तूपोंमें भाठ कोहित ( = छाक )-अन्वयके स्तूपोंमें ( अन्व ) भाठ ( हाथी ) ईत-करण्डमें भाठ ईत-करण्डोंको भाठ अन्वस्तूपोंमें सर्बरक-करण्डोंमें सर्बरक-स्तूपोंमें भाठ सुवर्ण करण्डोंमें भाठ सुवर्ण-स्तूपोंमें - भाठ रजत ( = चांदी )-करण्डोंमें - भाठ रजत-स्तूपोंमें भाठ मणि-करण्डोंमें भाठ मणि-स्तूपोंमें - कोहितक-करण्डोंमें, = कोहितक ( = पचराग मणि ) स्तूपोंमें मसार-नाक ( = कबर-मणि ) करण्डोंमें मसारनाक-स्तूपोंमें भाठ स्फटिक-करण्डोंमें - भाठ स्फटिक-स्तूपोंमें रखकर सबसे ऊपर धूपारामके शैत्यके बराबरका स्फटिक शैत्य बनवाया । उसके ऊपर सर्बरलमब गेह बनवाया । उसके ऊपर सुवर्णमय, रजतमय, उसके ऊपर तापकोह ( = ताँबा ) मय गेह बनवाया । वहाँ सर्बरलमब बाहुक विकोरकर अकम स्तकम सहस्रों पुष्पोंको विकोरकर साठे पाँच सी जातक, अस्सी महारथिद, छुडोद्व महाराज महामावादेवी ( सिद्धार्थक ) साथ उत्पन्न हुए मज्ज-समी ( की मूर्तियों ) को सुवर्णमय बनवाया । पाँच-सी सुवर्ण-रजतमय कर स्थापित किये; पाँच-सी सुवर्ण-जब अश्राये पाँच-सी सुवर्ण-शीप पाँच-सी रजत-शीप बनवाकर मुगंब-तैक भरकर, जलमें डुबूक ( = बडुसूख बख ) की बधिपाँ बखवाई । तब धातुधाम् महाकाव्यपत्नी—'माज्ज मत्त पुर अर्थे गंघ व गह हो मदीय व तुसे—'वह अविद्याव ( = दिव्य सबल ) करके सुवर्ण-जब पर अकर सुवर्ण—

'अभिव्यमें विषदास ( = विषदासी = विषदासी ) नामक कुमार छत्र बाराजकर असीक अर्धराज्य होगा । वह इस धातुकोके अकथंगा ।

राजाने सब धातुकोसे पूजाकर अतिके ही ( एक एक ) द्वारको बंदकर बंदीमें डुबी दे ( = कु विकमुदिय बंधित्वा ) वहाँ वही मणिपीकी पत्ति स्थापित की— मणिधर्म

( ११ )

( 'प्रथम-संगीति ई पू ४८३ )

तब धातुप्मान् महाकाश्यपने मिथुओंको संबोधित किया। धातुसो ! एक समय मैं 'पौंचसा मिथुओंके साथ पाया और कुसीनाराक बीच रास्तेमें था। तब धातुसो ! मार्गसे हटकर मैं एक वृक्षके नीचे बटा। उस समय एक आजीवक कुसीनारास मंदारका पुष्प छेकर पाबाके रास्तेमें ब्यरहा था। धातुसो ! मैंने दूरसे ही आजीवकके आते देखा। देखकर उस आजीवकको यह कहा— 'धातुस ! हमारे साक्षात्को जानते हो ?'

हाँ धातुस ! जानता हूँ आज सप्ताह हुआ प्रथम शौतम परिनिर्वाणको प्राप्त हुए। मैंने यह मन्दास्युष्य बर्षिस किया है।" धातुसो ! वहाँको मिथु ज्वीत-राग (= वैराग्यवाले नहीं) ने ( उनमें ) कोई-काहूँ बौद्ध पकड़कर रोते थे ।

उस समय धातुसो ! सुमत्र<sup>१</sup> वृद्ध-मज्जितन कहा— जो वहाँ जाहेंगे उसे न करेंगे। अज्ज धातुसो ! हम धर्म (सूत्रपिटक) भीर बिलव(पिटक)अ संगान (= साथ पाठ) कर सामने अधम प्रकट हो रहा है धर्म हटाया ब्यरहा है अविनय प्रकट हो रहा है बिलव हटाया ब्यरहा है। अधर्मबादी बलवान् हो रहे हैं, धर्मबादी दुर्बल हो रहे हैं विनयबादी हीन हो रहे हैं।

'तो मन्ते ! ( ध्याप ) स्वविर मिथुओंको चुने।" तब धातुप्मान् महाकाश्यपने एक कम पौंचसी बर्हन् चुने। मिथुओंने धातुप्मान् महाकाश्यपको यह कहा—

मन्ते ! यह आनन्द बघपि क्षत्र ( जन बर्हत् ) ई ( तो भी ) अण्ड ( अ राग ) द्वेष, मोह मय, अगति (=दुरे मार्ग) पर जानेके अपोम्य है। इन्होंने भगवान्के पास बहुत धर्म (=सूत्र) ब्यर विनय प्राप्त किया है; इसलिये मन्ते ! स्वविर धातुप्मान्को भी चुन लें।

तब धातुप्मान् महाकाश्यपन धातुप्मान् आनन्दको भी चुन किया। तब स्वविर

( होनेवाले ) इति राजा मज्जिओंको प्रहणकर धातुओंकी पूजा करें—अच्छर सुद्धा विधं। एक देशराजने विषयकर्माका बुझाकर—“ठात ! अजातसयुने धातुविधान कर दिया वहाँ पहरा विभुक्त करो —कह मेजा। उसने धातु बाल-सपाट-बन्ध लगा दिया। ( जिससे ) उस धातु धर्म ( अथातुके अहवन्ने )में काष्ठकी मूर्तिका स्वरिकके बपक लट्टोंको छेकर पवन-वैगासे धूमती थीं। पंचमे जोड़कर एक ही आजीमें बांधकर, चारों ओर गूर्मीक रहनके स्यामकी धाँति सिद्ध-परिष्कार करवा ऊपर एक ( शिखा )न बद्धकरवा मिट्टी बकवा मूमि समतलकर उसके ऊपर पाण्डव-स्वयं स्थापित करवा दिया।

इस प्रकार धातु विधान समाप्त हो जानपर स्वविर धातुधर रहकर विधानको बडे गणे राजा भी कर्मानुसार गया वह मनुष्य भी मर गये।

पौंच विषयहास ( १ विषयुष्मी ) नामक कुमारने छत्र बारणकर अघांक नामक धर्म राज्य हो तब धातुओंको छकर बद्धहीनमें कैलाशा। ५

मिथुनोंको यह हुआ— कहीं धर्म और विनयका संगायन करें ?' तब स्वधिर मिथुनोंको यह हुआ—

'राजगृह महागांधर (=समीपमें बहुत बलीबाका) बहुत शयवासन (=वासस्थान)-वाला है क्यों न राजगृहमें बर्षावास करते हम धर्म और विनयका संगायन करें। (केवल) दूसरे मिथु राजगृह मत जायें। तब आपुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

"आहुतो ! संघ सुने यदि संघको पसंद है तो संघ इस पौषसी मिथुनोंको राजगृहमें बर्षावास करते धर्म और विनय संगायन करनेकी संमति दे और दूसरे मिथुनोंको राजगृहमें न बसनेकी। यह शक्ति (=वृत्त) है। "मन्ते ! संघ सुने यदि संघको पसंद है।' किस आपुष्मान्को इन पौषसी मिथुनोंका संगायन करना और दूसरे मिथुनोंका राजगृहमें बर्षावास न करना पसंद हो वह चुप रहे, जिसको नहीं पसंद हो, वह बोले। दूसरी बार भी। तीसरी बार भी। 'संघ इस पौषसी मिथुनोंका तथा दूसरे मिथुनोंके राजगृहमें वास न करनेसे महान्त है संघको पसंद है इसलिये चुप है—यह धारण करता हूँ।

तब स्वधिर मिथु ! धर्म और विनयके संगायन करनेके लिये राजगृह गय। तब स्वधिर मिथुनोंको हुआ—

'आहुतो ! भगवान्ने दृढे-दृढेकी मरम्मठ करनेको कहा है। अप्य आहुतो ! हम प्रथम मासमें दृढे-दृढेकी मरम्मठ करें दूसरे मासमें एकत्रित हो धर्म और विनयका संगायन करें। तब स्वधिर मिथुनीने प्रथम मासमें दृढे दृढेकी मरम्मठ की।

आपुष्मान् आनन्दे— 'बैठक (=सञ्चिपाठ) होगी वह मेरे लिये उचित नहीं कि मैं शौच (धनु-महीव) रहते ही बैठकमें जाऊँ (सोच) बहुत रात तक काय स्थितिमें बिठाकर रातक मितसारको केरनेकी दृष्टसे शरीरको कैसावा भूमिसे पैर उठ गये और फिर लक्ष्मिपर न पहुँच सका। इसी बीचमें विष आतकों (=विषमकों)से बचक हो मुक्त होगया। तब आपुष्मान् आनन्दे जाह्व होकर ही बैठकमें गये।

आपुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

'आहुतो ! संघ सुने यदि संघको पसन्द है तो मैं उपासीसे विनय पूछूँ ?'

आपुष्मान् उपासीने भी संघका ज्ञापित किया—

"मन्ते संघ ! सुने यदि संघको पसन्द है तो मैं आपुष्मान् महाकाश्यपने पूछे पवै विनयका उत्तर हूँ ?'

तब आपुष्मान् महाकाश्यपने आपुष्मान् उपासीसे कहा—

आहुत ! उपासी ! प्रथम-पाराजिक कहीं प्रव्रतकी गई ?' 'राजगृहमें मन्त !

किसको बकर ?' सुविश्र फलान्-पुस्तको बकर ?'

किस बातमें ?' "मीथुन धर्ममें।"

१ उस संघमें सभी महाकाश्यपसे पीछेके बने मिथु थे, इसलिये आहुत' कहा गया। २ यहाँ उस संघमें महाकाश्यप उपासीसे बने थे इसलिये 'मन्त ! कहा। ३ देखो पृष्ठ २१३।

तब आपुष्मान् महाकाश्यपने आपुष्मान् उपासीको प्रथम पाराशिकाकी बस्तु ( = कथा ) भी पृथी निदान ( = अरुण ) भी पृथी पुत्रक ( = अश्वि ) भी पृथी प्रवृत्ति ( = विधान ) भी पृथी अनु प्रवृत्ति ( = संशोधन ) भी पृथी आपत्ति ( = शोष-रुह ) भी पृथी बन्-आपत्ति भी पृथी ।

“आपुस उपासी ! द्वितीय-पाराशिका कहाँ प्रवृत्त हुई ? “राजपुत्रमें, मन्ते ।”

“किसको लेकर ? “घनिय पुंसकार-पुत्रको ।”

“किस बस्तुमें ? “अज्ञात ( चोरी )में ।”

तब आपुष्मान् महाकाश्यपने आपुष्मान् उपासीको द्वितीय पाराशिकाकी बस्तु ( = वात विषय ) भी पृथी निदान भी अवापत्ति भी पृथी ।—

“आपुस उपासी ! तृतीय पाराशिका कहाँ प्रवृत्त हुई ? “वैशाखीमें मन्ते ।”

“किसको लेकर ? “बहुतसे मिथुनोंको लेकर ।”

“किस बस्तुमें ?

“मनुष्य-विषय ( = वर-इत्या )के विषयमें ।

तब आपुष्मान् महाकाश्यपने ।—

“आपुस उपासी ! चतुर्थ-पाराशिका कहाँ प्रवृत्त हुई ? “वैशाखीमें मन्ते ।”

“किसको लेकर ? “पद्ममुदा-तीरवासी मिथुनोंको लेकर ।

“किस बस्तुमें ? “उत्तर मनुष्य बन् ( = विषय कथि )में ।

तब आपुष्मान् काश्यपने । इसी प्रकारसे दोषों ( मिथु मिथुनी )के विषयोंको पृथी । आपुष्मान् उपासी पृथेक उत्तर देते थे ।

तब आपुष्मान् महाकाश्यपने संघको श्रापित किया—

“आपुसो ! सब मुझे सुने । यदि संघको वसन्द् हो तो मैं आपुष्मान् आनन्दने बर्न ( = बन् ) पढ़ूँ ?”

तब आपुष्मान् आनन्दने संघको श्रापित किया—

“मन्ते ! संघ मुझे सुने । यदि संघको वसन्द् हो तो मैं आपुष्मान् महाकाश्यपसे

पृथी पने बर्नका उत्तर दूँ ?”

तब आपुष्मान् महाकाश्यपने आपुष्मान् आनन्दको कहे—

“आपुस आनन्द ! महाकाश ( शूद्र )को कहाँ भाषित किया ?”

“राजपुत्र भार नासन्दाके बीचमें अम्बकद्विकके राजागारमें ।”

“किसको लेकर ?”

“सुप्रिय बरिमात्रक भार शङ्खान्त माणवकको लेकर ।”

तब आपुष्मान् महाकाश्यपने “महाकाश”के निदानकी भी पृथी पुत्रककी भी पृथी—

“आपुस आनन्द ! “सामन्थ ( = सामन्थ ) कल को कहाँ भाषित किया ?”

“मन्ते ! राजपुत्रमें बीषकन्ध-बन्में ।

१. देखो पृष्ठ २८८ ।

२. देखो पृष्ठ २९८ ।

३. देखो पृष्ठ २९९ ।

४. देखो पृष्ठ ३२९ ।

मिथुनोंको यह हुआ— कहां धर्म और विनयका संगायन करें ? तब स्वविर मिथुनोंका यह हुआ—

“राजगृह महाकाशर (समीपमें बहुत बर्लीबाक्य) बहुत शयवासन (बसस्थान)-वाला है क्यों न राजगृहमें बर्लीबास करते हम धर्म और विनयका संगायन करें । (केवल) दूसरे मिथु राजगृह मत जायें । तब आपुष्मान् महाकाशरपने सबको ज्ञापित किया—

“आबुसो ! सब सुने यदि सबको पसन्द है तो सब इस पौचसी मिथुनोंको राजगृहमें बर्लीबास करते धर्म और विनय संगायन करवैकी संमति दे और दूसरे मिथुनोंको राजगृहमें न बसनेकी । यह ज्ञप्ति (बुचका) है । ‘मन्ते ! सब सुने यदि सबको पसन्द है ।’ जिस आपुष्मान्को इन पौचसी मिथुनोंका संगायन करना और दूसरे मिथुनोंका राजगृहमें बर्लीबास न करना पसन्द हो वह चुप रहे, जिसको नहीं पसन्द हो, वह बोळ । दूसरी बार भी । तीसरी बार भी । ‘सब इस पौचसी मिथुनोंके तथा दूसरे मिथुनोंके राजगृहमें बास न करनेम महमत है सबको पसन्द है इसकिये चुप है—यह वारण करता हूँ ।’

तब स्वविर मिथु ! धर्म और विनयके संगायन करवैक सिव राजगृह गये । तब स्वविर मिथुनोंको हुआ—

‘आबुसो ! महाकाशर दूरे-दूरेकी मरम्मत करनेको कहा है । जप्य आबुसो ! हम प्रथम मासमें दूरे-दूरेकी मरम्मत करें दूसरे मासमें एकजित हा धर्म और विनयका संगायन करें । तब स्वविर मिथुनोंके प्रथम मासमें दूरे दूरेकी मरम्मत की ।

आपुष्म न् धामन्त्रे — वैदक (=सधिपाठ) होगी वह मेरे किये बचित नहीं कि मैं शत्रु (अन् आईए) रहते ही वैदकमें जाऊँ (मोच) बहुत रात तक काय-व्युक्तिमें बिठाकर रातके मिनसारको देखवैकी इच्छाके शरीरको प्रेम्बा मूमिसे पीर उठ गये और सिर तकियापर न पहुँच सका । इसी बीचमें चित्त धामनों (बचितमको) तै धकय हो मुक्त होगक । तब आपुष्मान् धामन्त्र आईए होऊर ही वैदकमें गये ।

आबुष्मान् महाकाशरपने सबको ज्ञापित किया—

‘आबुसो ! सब सुन यदि सबको पसन्द है तो मैं उपासीसे विनय पूछूँ ?

आबुष्मान् उपासीसे भी सबको ज्ञापित किया—

‘मन्ते सब ! सुने यदि सबको पसन्द है तो मैं आपुष्मान् महाकाशरपने पूछे गये विनयका उत्तर हूँ ?”

तब आपुष्मान् महाकाशरपने आपुष्मान् उपासीसे कहा—

आबुस ! उपासी ! प्रथम-पाराजिक कहां मज्जकी गई ? ‘राजगृहमें मन्ते !

किसको केकर ? ‘सुविद्य कसल्य-पुणको केकर’

किस बातमें ?” “मैजुन-धर्ममें ।”

१ उस संवमें सभी महाकाशरपसे पीछेक बने मिथु ये; इसकिये ‘आबुस’ कहा गया । २ वहाँ उस संवमें महाकाशरप उपासीसे बड़े थे इसकिये मन्ते ! कहा । ३ वैको पृष्ठ २१३ ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपेन आयुष्मान् उपाखीको प्रथम पारात्रिकाको बस्तु ( = रुबा ) मी पूछी विद्वाह ( = कारण ) मी पूछ्य पुत्रक ( = स्वक ) मी पूछ्य प्रज्ञसि ( = विद्या ) मी पूछी अनु प्रज्ञसि ( = संबोधन ) मी पूछी आपत्ति ( = दोष-दंड ) मी पूछी मन्-आपत्ति मी पूछी ।

“आयुस उपाखी ! पृथ्वीय-पारात्रिका कहाँ प्रशापित हुई ?” “राजपूहमें मन्ते !”

“किसको डेकर ?” “धर्मिय पुंभकार-पुत्रको ।”

“किस बस्तुमें ?” “अदृष्टादान ( खोरी )में ।”

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपाखीको द्वितीय पारात्रिकाकी बस्तु ( = वात, विषय ) मी पूछी विद्वाह धी अपापत्ति मी पूछी —

“आयुस उपाखी ! तृतीय पारात्रिका कहाँ प्रशापित हुई ?” “यैशाखीमें मन्ते ।”

“किसको डेकर ?” “बहुतसे मिश्रुभोंको डेकर ।”

“किस बस्तुमें ?”

“मनुष्य-विग्रह ( = नर-इत्ना )के विषयमें ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने । —

“आयुस उपाखी ! चतुर्थ-पारात्रिका कहाँ प्रशापित हुई ?” “यैशाखीमें मन्ते !”

“किसको डेकर ?” “यग्यमुद्रा-तीरयासी मिश्रुभोंको डेकर ।

“किस बस्तुमें ?” “उत्तर मनुष्य धर्म ( = दिव्य शक्ति )में ।

तब आयुष्मान् काश्यपेन । इष्टी प्रकारसे दीवों ( मिश्रु मिश्रुकी )के विषयोंको पूछ्य । आयुष्मान् उपाखी पूछेका उत्तर देते थे ।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया —

“आयुसो ! सब गुसे सुने । यदि संघको पसन्द हो तो मैं आयुष्मान् ध्यानम्भ धर्म ( = धर्म ) पूछूँ ?”

तब आयुष्मान् ध्यानम्भ संघको ज्ञापित किया —

“मन्ते ! संघ गुसे सुन । यदि संघको पसन्द हो तो मैं आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये धर्मका उत्तर दूँ ?”

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् ध्यानम्भको कहा —

“आयुस ध्यानम्भ ! ‘महाकाश’ ( रूप )को कहाँ भाषित किया ?”

“राजपूह अथ नालम्नाक बीचमें अन्धकट्टिकके राजागारमें ।”

“किसको डेकर ?”

“सुप्रिय परिमात्रक नीर प्रत्यन्त माणविकको डेकर ।”

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने महाकाशके विद्वाहको मी पूछ्य पुत्रकको धी पूछ्य —

“आयुस ध्यानम्भ ! सामम्भ ( = धामभय ) कक को कहाँ भाषित किया ?”

“मन्ते ! राजपूहमें शीबकम्भ-वहनमें ।

“किसके साथ ?”

भगवान्‌पुत्रु वरेदिपुत्रक साथ ।”

तब आबुध्मान् महाकाश्यपने ‘सामन्त्र-कक-मुत्तके विद्यापकी भी पूछा पुत्रकअ भी पूछा । इसी प्रकारसे (दीपविद्याप आदि) पौत्रों विद्यापकी पूछा; पूछा पूछेना आबुध्मान् आत्मन्‌ने उत्तर दिया—

तब आबुध्मान् आत्मन्‌ने स्वविर सिद्धुओंको कहा—

“मन्ते ! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय ऐसा कहा था— जाबन्द् ! हृष्य होनेपर संघ मेरे व रहनेके बाद सुत्र-अनुसुत्र ( =उपदे छोटे ) शिक्षापदों ( =मिथु-निषमों )को हटा दे ।

“अनुस जाबन्द् ! ‘तुने भगवान्‌को पूछा ?’— मन्ते ! किन सुत्र-अनुसुत्र शिक्षा पदों को ?”

‘ मन्ते ! मैंने भगवान्‌को नहीं पूछा ।’

किन्हीं किन्हीं स्वविरोंने कहा—चार पाराजिकाओंको छोड़कर बाकी शिक्षापद सुत्र अनुसुत्र हैं । किन्हीं किन्हीं स्वविरोंने कहा—चार पाराजिकायें चार तरह संघादिसेवोंकी छोड़कर बाकी । चार पाराजिकायें और तरह संघादिसेवों जार दो व्यक्तियोंको छोड़कर बाकी । पाराजिक संघादिसेव अभिवत और तीस नसर्गिक-प्राथद्विचिकोंको छोड़कर । पाराजिका संघादिसेव अभिवत नैसर्गिक प्राथद्विचिक और बाबने प्राथद्विचिकोंको छोड़कर । और चार प्राति-वेत्तवीनोंको छोड़कर ।

तब आबुध्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

आबुध्मान् ! संघ सुने सुने । हमारे शिक्षापद चुही-गत भी हैं ( =गृहण भी जाके, हि ) —“यह तुम आबुध्मान्‌की भयमेंकी विहित ( =कल्प्य ) है, वह नहीं विहित है ।” यदि हम सुत्र-अनुसुत्र शिक्षापदोंकी हटावें तो कहनेवाले होंगे— भगवान्‌ वीतमने पूसके कल्पित जैसा शिक्षापद प्रकृत किया जबतक इनका सास्ता रहा तब तक वह शिक्षापद पाऊने रहे जब हृष्यक सास्ता परिनिहृत हो गया, तब यह शिक्षापदोंको नहीं पाऊते P यदि संघको पदंद् हो तो संघ अ-प्रकृत ( =अविहित ) को व प्रकृत ( =विद्याप ) करे प्रकृतका व छेद करे । प्रकृतिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते—यह शक्ति ( =सुचवा ) है— ‘आबुध्मान् ! संघ सुने प्रकृतिके अनुसार शिक्षापदोंमें बर्ते । जिस आबुध्मान्‌को अ प्रकृत व प्रकृतक प्रकृतक व छेद प्रकृतिके अनुसार शिक्षापदोंको प्रकृत कर बर्तवा पसन्द हो वह चुप रहे जिसको नहीं पसन्द हो वह बोले । संघ व अ-प्रकृतको प्रकृतक करता है व प्रकृतक छेदक करता है । प्रकृतिके अनुसारही शिक्षापदोंमें प्रकृत कर बर्तता है—(वह) संघको पसन्द है इसकिये मीच है—ऐसा कारण करता है ।”

तब स्वविर सिद्धुओंन आबुध्मान् आत्मन्‌को कहा—

आबुध्मान् आत्मन् ! यह ऐसे तारा किना ( =नुकद ) की भयवान्‌का नहीं पूछा— ‘मन्ते ! कीचते है वह सुत्र-अनुसुत्र शिक्षापद । कता जब व अनुसुत्रकी वैद्याना कर ।”

“मन्ते ! मैंने बाद न होनेसे भगवान्‌को नहीं पूछा—‘संघ ! कीचते है । इसे मैं

हुकूमत नहीं समझता । किन्तु आबुप्पामोंके क्याकसे देशना ( = अज्ञान-प्रार्थना ) करता हूँ ।”

“यह मी आबुस आनन्द ! तेरा हुकूमत है जो तूने भगवान्की बर्षाघाटी ( = अज्ञान-प्रार्थना ) कहानेके कपड़े ( = पैरसे ) अकमल कर सिखा इस हुकूमतकी देशना कर ।”

“मन्ते ! मैंने भयौरवके क्याकसे भगवान्की लुट्टीको अकमल कर नहीं सिखा इसे मैं हुकूमत नहीं समझता; किन्तु आबुप्पामोंके क्याकसे देशना ( = अज्ञान-प्रार्थना ) करता हूँ ।”

“यह मी आबुस आनन्द ! तेरा हुकूमत है जो तूने भगवान्के शरीरको खीसे प्रथम बर्षना करवाया रोठी हुई उन खिचोंके धातुओंसे भगवान्के शरीर छिप होयवा इस हुकूमतकी देशना कर ।”

“मन्ते ! यह बि ( = अति ) -अकमल न हो—इस ( = अज्ञान ) ने मैंने भगवान्के शरीर को प्रथम खीसे बर्षना करवाया मैं उस हुकूमत नहीं समझता ।

“यह मी आबुस आनन्द ! तेरा हुकूमत है जो तूने भगवान्के उदार निमित्त करनेपर अज्ञानके उदार ( = अधोकारिक ) अज्ञानस करनेपर, भगवान्के नहीं प्रार्थना की— मन्ते ! बहुजन-हिताय बहुजन-सुखार्थ कोकानुसंधानार्थ देव मनुष्योंके अथ = शिव = सुखके किये भगवान् कल्प भर उदरें सुगत कल्प भर उदरें । इस हुकूमतकी देशना कर ।”

“मैंने मन्ते ! मारसे परि-उत्थित-चित्त ( = अज्ञानमें पडा ) होनेसे भगवान्के प्रार्थना नहीं की । इसमें हुकूमत नहीं समझता ।”

“यह मी आबुस आनन्द ! तेरा हुकूमत है जो तूने तत्वागत के अज्ञानके धर्म ( = धर्म विनय ) में खिचोंकी अज्ञानके किये अज्ञानता परा की । इस हुकूमतकी देशना कर ।

“मन्ते ! मैंने— यह महाप्रजापती गौतमी<sup>१</sup> भगवान्की मौसी आचारिका पोषिका, शीरविका है जननीके मरनेपर एतव विकारका ( = अज्ञान कर ) तत्वागत प्रवेदित धर्ममें खिचों की अज्ञानके किये अज्ञानता परा की । मैं इसे हुकूमत नहीं समझता किन्तु ।”

उस समय पांचसी मिथुओंके महामिथु-सक माव आबुप्पान् पुराण दक्षिणागिरिमें आरिका कर रहे थे । आबुप्पान् पुराण स्वविर-मिथुओंके धर्म और विनयके संवाचन समाप्त होयनेपर, दक्षिणागिरिमें इच्छामुसार विहर कर उहाँ राजगृहमें कर्षक-निवाणका योग्यन था उहाँ पर स्वविर मिथु से उहाँ गये । आकर स्वविर मिथुओंके साथ प्रतिमोदक कर, एक कोर बन । एक और बड़े हुए आबुप्पान् पुराणको स्वविर मिथुओंके कहा—

“आबुस पुराण ! स्वविरोंमें धर्म और विनयका संवाचन किया है । अज्ञानो गुम ( = मी ) संघीतिको मन्ते ।”

“आबुस ! स्वविरोंमें धर्म और विनयको सु हर तीरसे संवाचन किया है; तो मी मैंसा मैंने भगवान्के सुँदने सुखा है सुपसे प्रथम किया है मैंसा ही मैं पारण कहूँगा ।”

तब आबुप्पान् आनन्दने स्वविर-मिथुओंका यह कहा—

“मन्ते ! भगवान्के परिनिवाणके समय यह कहा— आनन्द ! मैं न रहनेके बाद संघ उदर ( = उदर ) का प्रकाशकी भाशा है ।”

“आबुस ! पृथ तुमने प्रकाशक क्या है ?”



“मन्ते ! मैंने पूछा ।—‘आत्मन् ! कुछ मित्रु जैसा चाहे वैसा बोके, मित्रु, इच्छे व बोके व उपदेश करें, व अनुशासन करें ।

“तो आहुस आत्मन् ! तूही कुछ मित्रुको महान्तकी आज्ञा दे ।

“मन्ते ! मैं कुछको महान्तकी आज्ञा करूँगा लेकिन वह मित्रु बंद पद ( = बंद साथी ) है ।”

“तो आहुस आत्मन् ! तुम बहुतसे मित्रु बोके साथ जाओ ।

‘अच्छ मन्ते !’ कहकर अमुष्मान् आत्मन् पौंसती मित्रुबोके महामिदृष्टबने साथ नाकपर कीशाम्बी गये । बाबसे उतर कर राजा उदयनके उद्यानके समीप एक वृक्षके नीचे बैठे । इस समय राजा उदयन शमिवास ( = अशरोष ) के साथ यागकी मर कर रहा था । राजा उदयनके अशरोषने सुधा—‘हमारे आचार्य आर्य आत्मन् उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं । तब अशरोषने राजा उदयनको कहा—

“देव ! हमारे आचार्य आर्य आत्मन् उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं, देव ! हम आर्य आत्मन्का दत्त करवा चाहती हैं ।

“तो तुम अमम आत्मन्का दत्त करो ।

तब अशरोष वहाँ आमुष्मान् आत्मन् के, वहाँ जाकर अग्निवादनकर एक ओर बैठा । एक ओर बैठे हुए शमिवासको आमुष्मान् आत्मन्के धार्मिक कथसे संक्षिप्त-व्योक्त-अनुसूचित-संग्रहित किया । तब राजा उदयनके अशरोषने आमुष्मान् आत्मन्को पौंसती वहाँ ( = उदयनके ) महान्त की । तब अशरोष आमुष्मान् आत्मन्को भाषणको अग्निवदित कर अनुमोदित कर, आसनसे उठ आमुष्मान् आत्मन्को अग्निवादन कर प्रदक्षिणकर वहाँ राजा उदयन का वहाँ गया । राजा उदयनने वृत्त ही अशरोषको आते देखा देखकर अशरोषको कहा—

“क्या तुमने अमम आत्मन्का दत्त किया ? दत्त विया देव ! हमने—आत्मन्का ।”

“क्या तुमने अमम आत्मन्को कुछ दिया ?” “देव ! हमने पौंस सी— वहाँ ही ।

राजा उदयन हैराव होता या क्षिण होता या-विपाचित होता था—‘क्यों अमम आत्मन्के दत्तने अधिक शीघ्रको किया क्या अमम आत्मन् कपड़का व्यापार ( अनुसूत शमिज ) करेगा या वृक्ष व बोकेगा । तब राजा उदयन वहाँ आमुष्मान् आत्मन् के वहाँ गया जाकर अमुष्मान् आत्मन्के साथ सम्मोदक कर ‘एक ओर बंद गया । एक ओर बैठे राजा उदयनने आमुष्मान् आत्मन्को यह कहा—

“हे आत्मन् ! क्या हमारा अशरोष वहाँ आया था ?” “आया था महाराज ! वहाँ तेरा अशरोष ।”

“क्या आर्य आत्मन्को कुछ दिया ?” महाराज ! पौंस था वहाँ ही ।”

‘आप आत्मन् ! दत्तने अधिक शीघ्र क्या करेंगे ?’ ‘महाराज ! जो कहे शीघ्रवाके मित्रु है उन्हें कहेंगे ।”

“और” जो वह पुराने शीघ्र है उन्हें क्या करेंगे ?” “ महाराज ! विभीषेयी वहाँ वहाँ ही ।”

“...जो यह पुराने विछोवैकी चारों हैं उन्हें क्या करेंगे ?” “...उससे गदके गिफ्तक बनावेंगे ।”

“...जो यह पुराने गदके गिफ्तक हैं उन्हें क्या करेंगे ?” “...उनका महाराज ! कस बनावेंगे ।”

“...जो यह पुराने फध हैं उनका क्या करेंगे ?” “...उनका महाराज ! पार्षदाज बनावेंगे ।”

“...जो यह पुराने पर्वदाज हैं उनका क्या करेंगे ?” “...उनका महाराज ! शासन बनावेंगे ।”

“...जो यह पुराने शासन हैं ?” “...उनको चूरकर कीचफके साथ मर्दबकर पकलर करेंगे ।”

तब राजा उदयमने—‘यह सभी शाप्यपुत्रीय अमल कर्षकारजसे काम करते हैं पर्व नहीं जाने हैते’—(कह) आयुष्मान् आनम्को पर्व-सौ और चारों प्रदाज कीं । यह आयुष्मान् आनम्को एक हजार जीवरोंकी मजम जीवर मिस्रा प्राप्त हुई ।

तब आयुष्मान् आनम् जहाँ घोषिताराम था वहाँ गये जाकर विछे आसकपर बैठे । आयुष्मान् उछ जहाँ आयुष्मान् आनम् ने बर्हो गये जाकर आयुष्मान् आनम्को अमिवाचक कर एक ओर बडे । एक ओर बडे आयुष्मान् उछको आयुष्मान् आनम्ने कहा—

“आयुस ! उछ ! संघने तुम्हें मझपंडकी आज्ञा की है ।”

‘बया है मन्ते आनम् ! मझपंड ?’

‘तुम आयुस उछ ! मिधुओंको जो चारवा सो बोळना किन्तु मिधुओंको तुमसे नहीं बोळना होगा, वहाँ अनुयासन करना होगा

“मन्ते आनम् ! मैं तो इतबैसे मारा गया जो कि मिधुओंको मुझसे नहीं बोळना होया । —(कह उछ) वहाँ मूर्छित होकर गिर पडे । तब आयुष्मान् उछ मझपंडसे धेधित पीदित सुगुप्तित हो एककी विस्तरंग अममल उद्योगी आनमसपमी हो विहार करते बपरी ही जिसके धिये कुछपुत्र प्रकथित होते हैं, उस सर्वोत्तम मझपर्व-ककक हसी अममम स्वर्ष जावकर=भाझाकारकर=प्राप्तकर विहरमे अगे और आयुष्मान् उछ बर्होमें एक हुये ।

तब आयुष्मान् उछ बर्हो-पर्वको प्राप्त हो जहाँ आयुष्मान् आनम् ने बर्हो गये जाकर आयुष्मान् आनम्को बोले—

“मन्ते आनम् ! अब मुझसे मझपंड इत है ।”

‘आयुस उछ ! जिस समय एवे बर्होच साझाकार किया उसी समय मझपंड हर गया ।’

इस विभव-संगीतिमें पर्वमती मिधु—ब कम म बैधी ने । इसठिये यह विभव-संगीति ‘पर्व-शक्ति’ कही जाती है ।

“मन्ते ! मैंने पूछा ।—‘आत्मन् ! कब मिश्रु बीसा चाहे बीसा बोधे, मिश्रु, इकठ्ठे व बोधे व उपरोस करे, व अनुसासन करे ।”

“तो आनुस आत्मन् ! तूही तब मिश्रुको प्रहर्षवकी आज्ञा दे ।

“मन्ते ! मैं छन्दको महर्षवकी आज्ञा कर्षेया अकिम वह मिश्रु र्षव परव (= कट्टु प्यापी ) है ।

‘तो आनुस आत्मन् ! तुम बहुतसे मिश्रुओंके साथ जाओ ।”

‘अध्या मन्ते !” कहकर आनुष्मान् आत्मन् पाँचसी मिश्रुओंके महामिश्रुसंघके साथ बाबपर कौशाम्बी गये । बाबसे उतर कर राजा उत्पन्नके उद्यानके समीप एक वृक्षके नीचे बैठे । उस समय राजा उद्वपव रमिवास (= अक्षरोप) के साथ बापकी सैर कर रहा था । राजा उद्वपवके अक्षरोपमे सुबा—हमारे आचार्य आर्य आत्मन् उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं । तब अक्षरोपमे राजा उद्वपवको कहा—

“देव ! हमारे आचार्य आर्य आत्मन् उद्यानके समीप एक पेड़के नीचे बैठे हैं, देव ! हम आर्य आत्मन्का दर्शन करना चाहती हैं ।”

“तो तुम अमन आत्मन्का दर्शन करो ।”

तब अक्षरोप जहाँ आनुष्मान् आत्मन् थे, वहाँ जाकर अभिवादनकर एक ओर बैसा । एक ओर बैठे हुये— रमिवासको आनुष्मान् आत्मन्के धार्मिक कथासँ दर्शितअरेत असमुचेकित संप्रदर्शित किया । तब राजा उद्वपनके अक्षरोपमे आनुष्मान् आत्मन्को पाँचसी चारुँ (= उचारासंग ) प्रदान कीं । तब अक्षरोप आनुष्मान् आत्मन्के मापनको अभिर्वाचित कर अनुमोदित कर आसमसे उठ आनुष्मान् आत्मन्को अभिवादन कर प्रदक्षिणाकर, जहाँ राजा उद्वपन था वहाँ अध्य गया । राजा उद्वपनने तूरसे ही अक्षरोपको आते देखा देखकर अक्षरोपको कहा—

“क्या तुमने अमन आत्मन्का दर्शन किया ?” दर्शन किया देव ! हमने— आत्मन्का ।

“नवा तुमने अमन आत्मन्की कुछ दिया ?” “देव ! हमने पाँच सी— चारुँ दी ।”

राजा उत्पन्न बीरान होता था किन्तु होता पाअपिपाचित होता था—‘नहीं अमन आत्मन्के इतने अधिक चीषोंको दिया नवा अमन आत्मन् कपड़ेका व्यापार ( अनुस-वजिज ) करेगा था वृक्षम बोधेगा । तब राजा उद्वपन जहाँ आनुष्मान् आत्मन् थे वहाँ गया आकर आनुष्मान् आत्मन्के साथ सम्मोदन कर ‘एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे राजा उद्वपनने आनुष्मान् आत्मन्को यह कहा—

“दे आत्मन् ! क्या हमारा अक्षरोप यहाँ जाया था ?” जाया था महाराज ! यहाँ तेरा अक्षरोप ।”

“नवा आप आत्मन्को कुछ दिया ?” महाराज ! पाँच सी चारुँ दीं ।”

‘आप आत्मन् ! इतने अधिक चीषर क्या करोगे ?” महाराज ! जो कटे चीषरवाले मिश्रु हैं उन्हें बँटेंगे ।

“और— ओ वह पुराने चीषर हैं इन्हें क्या करोगे ?” महाराज ! विनीवेनी चारु वनार्ये ।”

“...जो वह पुराने विज्ञानेकी चापूर है उन्हें क्या करेंगे ?” “ उससे गहरेका गिफाफ बनायेंगे ।”

“...जो वह पुराने गहरेके गिफाफ हैं उन्हें क्या करेंगे ?” “ उनका महाराज ! फस बनायेंगे ।

“...जो वह पुराने फस हैं उनका क्या करेंगे ?” “ उनका महाराज ! पर्वशज बनायेंगे ।”

“...जो वह पुराने पर्वशज हैं उनका क्या करेंगे ?” “ उनका महाराज ! श्रादन बनायेंगे ।”

“...जो वह पुराने श्रादन हैं ?” “ उनको चूरकर कीचदके साथ मर्दनकर पककार करेंगे ।”

तब राजा उद्यमने—‘वह सभी शाक्यपुत्रीय अमन कर्यकारणसे काम करते हैं एष्य वहीं जाने देते’—( कइ ) अयुष्मान् आत्मन्को पर्व-सी और चापूर प्रदाव की । वह अयुष्मान् आत्मन्को एक इकार बीबरोकी प्रथम बीबर-भिष्ठा प्राप्त हुई ।

तब अयुष्मान् आत्मन् जहाँ घोपितायम का वहीं गये आकर किछे अयुष्मपर बैठे । अयुष्मान् एक जहाँ अयुष्मान् आत्मन् थे वहीं गये आकर अयुष्मान् आत्मन्को अभिवादन कर एक ओर बडे । एक ओर बैठे अयुष्मान् एकको अयुष्मान् आत्मन्ने कहा—

‘आयुस ! तब ! संघने तुम्हें प्रहर्षकी भागा ही है ।’

‘क्या है मन्ते आत्मन् ! प्रहर्ष ?’

‘तुम आयुस कइ ! मिशुओंको जो चाहना सो बोक्ना किन्तु मिशुओंको तुमसे नहीं बोक्ना होगा, नहीं अनुग्रहसक करना होगा ”

“मन्ते आत्मन् ! मैं तो इतनेस मारा गया जो कि मिशुओंको मुझसे नहीं बोक्ना होता । —( कइ कइ ) वहीं मूर्खित होकर गिर पड़े । तब अयुष्मान् एक प्रहर्षकइसे देखित पीदित अगुपित हो एककी विस्संग अग्रमच उघोपी आत्मसंघमी हो विहार करते कइनी ही जिसके किछे कुकपुत्र प्रमजित होते हैं; उस सचोचम प्रहर्षकइको हनी अग्रममें एवर्ष आनकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर विहार कये और अयुष्मान् एक अर्धसोमें एक हुए ।

तब अयुष्मान् एक अर्धकइको प्राप्त हो जहाँ अयुष्मान् आत्मन् थे वहीं गये, आकर अयुष्मान् आत्मन्को बोले—

“मन्ते आत्मन् ! अब मुझसे प्रहर्षक इरा हैं ।”

‘आयुस एक ! जिस अमन एने अर्धक साक्षात्कार किया उसी समय प्रहर्षक इरा गया ।’

इस वित्त-संघीतिमें पर्वशजा मिशु—य कम न देदी थे । इसविषय वह वित्त-संघीति पर्व-गतिका कही जाओ है ।

'सुप्तपिण्डमें पांच विक्रय हैं—(१) वीच-विक्रय (२) मस्त्रिम-विक्रय (३) संसुप्त-विक्रय (४) अंगुत्तर-विक्रय और (५) सुदृक-विक्रय । (१) वीच-विक्रय में ब्रह्मब्राह्म आदि ३२ सूत्र और तीन वग हैं । सूत्रोंके वीच (= कर्म) होनेके कारण वीच-विक्रय कहा जाता है । ऐसेही औरोंको भी समझना चाहिये ।" (२) मस्त्रिम विक्रयमें मन्त्रम परिमाणके पंद्रह वर्ग और 'मूत्र-परिवाह' आदि पुरुषों तिरपत रूप हैं ।" (३) संसुप्त विक्रयमें 'वेदवा-संसुप्त आदि (५२ संसुप्त) और 'ओष-तरण' आदि सात हजार सात सौ बासठ रूप हैं । (४) अंगुत्तर विक्रयमें (स्मारह निपात और) 'विच-परिवाहान आदि नौहजार पांचसौ सत्तावन रूप हैं । ।

वीच-विक्रय आदि चार विक्रयोंको छोड़कर बाकी पुत्र-वचन सुदृक ( विक्रय ) कहा जाता है । यह सभी सुदृ-वचन हैं—

पुत्रसे ८२ हजार ( इकोक-ममान वचन ) गृहीत हुये हैं और मिथुओंमें दो हजार । यह चौरासीहजार भेरे बर्ग हैं; किन्तु कि मैंने प्रवर्तित किया ।" ।

x

x

x

### द्वितीय-संगीति ( ई पू ३८३ )

'उस समय भगवान्के परिनिर्वाणके सौ वर्ष बीतनेपर, वैशाखी-बिवासी पञ्चि-पुत्रक (= इन्द्र-पुत्र ) मिथु पस पशुओंका प्रचार करत थे—

मिथुओ ! (१) श्रद्धि-प्रवचन-कल्प विहित है । (२) द्वि-अंगुक-कल्प । (३) प्रामाण्य-कल्प । (४) आपास-कल्प । (५) अनुमति-कल्प । (६) आशीर्ष-कल्प । (७) भ्रमचित-कल्प । (८) ब्रह्मोपाय । (९) अ-वस्तक । (१०) अतकल्प-वचन ।'

उस समय आयुष्मान् पस अकण्डक-पुत्र पञ्चिमें चारिका करते वहाँ वैशाखी भी पहुँचे । आयुष्मान् वस वैशाखीमें महापनकी दृष्ट्यार-साकामें विहार करते थे । उस समय बैशाखीके पञ्चि-पुत्रक मिथु उपासकके दिन कौसेकी पाकीको पानीसे घर मिथु संबन्ध पीचमें रखकर अपने आपे पाके बैशाखीके उपासकोंको श्रुते थे—

आनुसा ! संघने कापापज दो अवेडा (= बर्ह-कापापज ) दो पापछी (= बार् कल्पिज ) दो मासा (= मासक रूप ) भी दो । संघके परिष्कार (= सासाव ) का काम बापा ।

पसा कहनेपर आयुष्मान् पस ने वैशाखीके उपासकोंको कहा—“मत आनुसा ! संघको कापापज (= पसा ) दो साकवपुत्रीय प्रमणोंको जातरूप (= सीता ) रजत (= चोरी) विहित बही है, साकवपुत्रीय प्रमण जात रूप रजत उपायोग नहीं करते जात रूप-वस्तव स्वीकार नहीं करते । साकवपुत्रीय प्रमण आपरुम-वस्तव लागे-हुये हैं । । अयु

१. पारश्विद्ध (समन्वयपामादिक्य विनय-अदृकवा) पदमसंगीति ।

२. सुदृकवचन ( विनय पिण्ड ) १२ ।

प्लान् यस्त०के पेसा कहनेपर मी उपासकोंने संधको कार्यापन दिया ही । तब वैशाखिक बलि-पुस्तक मिश्रुओंने आनुष्मान् बर बरकण्ड-पुस्तको कहा—

‘आनुस बस ! यह हिरण्यक भाग तुम्हारा है ।’

‘आनुसो ! मेरा हिरण्यक भाग नहीं मैं हिरण्यको उपभोग नहीं करता ।’

तब वैशाखिक यज्ञि-पुस्तक मिश्रुओंने ‘यह यज्ञ काकण्डपुस्तक ब्रह्मन् प्रसन्न उपासकोंको विन्दता है कर्करता है अ-भसन्न करता है; अच्छा हम इसका प्रतिस्तरणीय कर्म करें । उन्होंने उक्तका प्रतिस्तरणीय कर्म किया । तब आनुष्मान् पस मे वैशाखिक बलिपुस्तक मिश्रुओंको कहा—

‘आनुसो ! भगवान्ने आज्ञा दी है कि प्रतिस्तरणीय कर्म किये गये मिश्रुको अनुवृत्त र्था चाहिये । आनुसो ! मुझे ( एक ) अनुवृत्त मिश्रु दो ।

तब वैशाखिक यज्ञिपुस्तक मिश्रुओंने सहाइकर बस को एक अनुवृत्त (= साथ जानबोझ ) दिया । तब आनुष्मान् यज्ञ न अनुवृत्त मिश्रुके साथ बैसाछीमें प्रविष्ट हो वैशाखिक उपासकोंको कहा—

आनुष्मानो ! मैं अद्यात्, प्रसन्न उपासकोंको विन्दता हूँ, कर्करता हूँ, अग्रसन्न करता हूँ जो कि मैं अधमको अधर्म करता हूँ, धर्मको धर्म करता हूँ अविनयको अविनय करता हूँ, विनयको विनय करता हूँ ? आनुसो ! एक समय भगवान् धामर्त्तमें अत्राय पिबकक धाराम जेतबनमें विहार करते थे । वहाँ आनुसो ! भगवान्ने मिश्रुओंको आमंत्रित किया—‘मिश्रुओ ! चंद्र-सूर्यको चार उपकलेस (= गज ) हैं जिन उपकलेसोंन उपरिसेट ( मक्षिण ) होवैपर, चंद्र-सूर्य न तपते हैं = न भासत हैं न प्रकाशते हैं । कौनस चार ? मिश्रुओ ! वायुक चंद्र-सूर्यका उपकलेस है जिस उपकलेसासे । मिश्रुओ ! महिका (= कुहरा ) । प्मरज (= भूमकम् ) । राहु असुरेन्द्र (= महाप ) । इसी प्रकार मिश्रुओ ! समज ब्राह्मणके भी चार उपकलेस हैं जिन उपकलेसोंस उपरिसेट हो अमज ब्राह्मण नहीं तपते । अजमे चार ? मिश्रुओ ! ( १ ) कोई कोई अमज ब्राह्मण सुरा पीते हैं मरप (= कधी करार ) पीते हैं सुरा-मेरप-पावसे बिरत नहीं होते । मिश्रुओ ! यह प्रथम उपकलेस है । ( २ ) मिश्रुओ ! कोई कोई अमज ब्राह्मण मीशुनबर्म सेवन करते हैं मीशुन बर्मसे बिरत नहीं होते । वह दूसरा । ( ३ ) आठरूप-रजत उपभोग करते हैं आठरूप रजतके ग्रहसे बिरत नहीं होते । ( ४ ) मिथ्या आजीविका करते हैं मिथ्या-आजीवसे बिरत नहीं होते । मिश्रुओ ! यह चार अमर्त्तोंके उपकलेसा हैं । ।

‘पेसा कहनेबाछा मैं अद्यात् प्रसन्न आनुष्मान् उपासकोंको विन्दता हूँ ? सो मैं अधर्मको अधर्म करता हूँ । एक समय आनुसो ! भगवान् राजगृहमें ककम्बुक निवापके बेशुचनमें विहार करते थे । उस समय आनुसो ! राजगृहापुर (= राज-द्वार)में राज-सभामें एकत्रित हुएमें वह बात बडी—‘शाप्यपुत्रीय अमज सोका-बौदी (= आठरूप-रजत ) उपभोग करते हैं स्वीकार करते हैं । उस समय मणिपूरक प्रामची उस परिपद्में धैर्य था । तब मणिपूरक प्रामचीने उस परिपद्को कहा— मत भावों ! पेसा कहो चाक्षपुत्रीय अमर्त्तों को आठरूप-रजत नहीं कल्पित (= बिहित हकाक ) है । वह मणि-शुचर्म ल्वागे हुए हैं शाप्यपुत्रीय अमज, आठरूप रजत छोड़े हुए हैं । आनुसो ! मणिपूरक प्रामची उम परि

क्यूँके समझ सका। तब आबुसो! मणिचूडुक प्रामर्षी बस परिष्कृतको समझकर वहाँ भगवान् के वहाँ गया। बाबर भगवान्को अभिवादनकर एक बार बैठ भगवान्को यह बोला—

‘मन्ते! राजान्तपुरमें राजसभामें बात बड़ी। मैं उस परिष्कृतको समझ सक। क्या मन्ते! ऐसा करते हुये मैं भगवान्के कथितका ही कहनेवाला होता हूँ? जसलसे भगवान् का अभ्यासवाक (मन्त्र) तो वहाँ करता? बर्नामुसार कथित कोई धर्म वाद विनिवृत्त तो वहाँ होता?’

‘विश्व प्रामर्षी! ऐसा कहनेसे तू मेरे कथितका कहनेवाला है कोई धर्मवाद विनिवृत्त वहाँ होता। प्रामर्षी! साक्षरपुत्रीय धर्मकोको सातक्य-रक्त विहित नहीं है। प्रामर्षी! जिसको सातक्य रक्त कथित (विहित) है उसे पाँच काम-गुणभी कथित है, जिसको पाँच काम-गुण (= काम-भाग) कथित है प्रामर्षी! तुम उसको विष्कृष्टही अ-धर्म-धर्मी अ-साक्षरपुत्रीय धर्मी समझना। और मैं प्रामर्षी! ऐसा करता हूँ, ठिकका चाहनेवाले (=गुणार्थी)के लक्ष जोडना होता है, सक्तार्थको सक्त पुस्तार्थको पुस्त, किन्तु प्रामर्षी! किसी प्रकारभी मैं सातक्य-रक्तको स्वादितम्प पर्वितम्प (=अन्वेषणीय) नहीं मानता। ऐसा कहनेवाला मैं आयुष्मान् उपासकोंको विन्वृत्ता हूँ।’

‘आबुसो! एक समय उसी राजगृहमें भगवान्ने आयुष्मान् उपसन्त् श्राप्यपुत्रको केन्द्र सातक्य-रक्तका विषेय किया और सिद्धापद (=निष्क-विषय) बनाया। ऐसा कहनेवाला मैं।’

ऐसा कहनेपर बैसाधीके उपासकोंने आयुष्मान् बस काकण्डपुत्रको कहा—

‘मन्ते! एक बार बस ही साक्षरपुत्रीय धर्म है यह सभी अ-धर्म है असाक्षर पुत्रीय है। धर्म बस बसाकीमें बास करें। हम धर्म बस के भीतर विद्वपात, धर्मवासन मन्त्र-रूप सैकन परिष्कृतोंका प्रबन्ध करेंगे।’

तब आयुष्मान् यश वैशाखीके उपासकोंको समझकर अनुवृत्त मित्रुके साथ धारामको गये। तब वैशाखिक बन्धुपुत्रक मित्रुकोने अनुवृत्त मित्रुको पूछ—

‘आबुस! क्या बस काकण्डपुत्रने वैशाखिक उपासकोंका धमा मारी?’

‘आबुसो! उपासकोंने हमारी निन्दाकी—एक बार बस ही धर्म है साक्षर-पुत्रीय है। हम सभी अधर्म असाक्षर-पुत्रीय बना दिने गये।

तब वैशाखिक बन्धुपुत्रक मित्रुकोने (विचार)—आबुसो! वह यश काकण्डपुत्र हमारी अस्मत् (बात)की गृहस्थोंमें प्रकाशित करता है, अच्छ तो हम इसका उच्छेपनीय धर्म करें। वह उच्छेप उच्छेपनीय-धर्म करवेके दिने एकत्रित हुये। तब आयुष्मान् बस आकासमें होकर आबाम्नी का पद हुये।

तब आयुष्मान् यश काकण्ड-पुत्रने पावावासी और अयस्ती-वृक्षिजायब-वासी मित्रुकोके पास वृत्त भेजा—‘आयुष्मानो! आजो वृत्त छागैका मित्रुको सामने अधर्म प्रकट हो रहा है धर्म हटाया जा रहा है अविषय प्रकट हो रहा है।’

इस समय अयुष्मान् संभूत साजबासी अहोरात्र-पर्यंत पर बास करते थे। तब आयुष्मान् बड़ा बहो अहोरात्र-पर्यंत था बहो आ संभूत थे बहो गये। अकर आयुष्मान् संभूत साजबासीको अमिबादनकर एक ओर बैठ आयुष्मान् संभूत साजबासीको बोले—

“मन्ते ! यह वैशाखिक वस्त्रियुक्त मिश्रु बस्ताकीमें दण बस्तुओंका प्रचार कर रहे हैं । अच्छा हो मन्ते ! हम इस सगरे ( = अधिकरण )को मिटाये ।”

‘अच्छा आयुस !’

तब साठ पायाबासी मिश्रु—समी आरम्भक समी पिंडपातिक समी पौंसुकिक समी त्रिचीवरिक समी आईव, अहोरात्र-पर्यंत पर एकत्रित हुये। अघन्ती-दक्षिणापथके अहासी मिश्रु—कोई आरम्भक कोई पिंडपातिक, कोई पौंसुकिक कोई त्रिचीवरिक समी आईव अहोरात्र-पर्यंतपर एकत्रित हुये। तब संबन्ध करते हुये स्पष्टि मिश्रुओंको यह हुआ—‘बह सगरे ( = अधिकरण ) कठिन आर मारी है; हम कैसे ( ऐसा ) पछ ( = सहायक ) पावें जिससे कि हम इस अधिकरणमें अधिक बचवान् होवें ।’

इस समय बहुभूत आगतापम अर्मघर बिबुवर मात्रिकावर ( = अमिबर्मंड ) पंडित अथक संवाची कड़ी काह्यक ( = संकोची ) शिक्षाकाम आयुष्मान् रेवत सोरेटपमें बास करते थे,— यदि हम आयुष्मान् रेवतको पछमें पावें तो हम इस अधिकरणमें अधिक बचवान् होंगे। आयुष्मान् रेवतने अमानुष विम्वद दिव्य मोत्र-बातुमें स्पष्टि मिश्रुओंकी संबन्ध सुबसी। सुनकर उन्में पैमा हुआ— यह अधिकरण कठिन और भारी है मेरे सिब अच्छा नहीं कि मैं ऐस अधिकरण ( = विवाद ) में न पड़ूँ; अब यह मिश्रु आर्थे उबसे बिरा मैं सुबसे नहीं आसकूँगा वश व मैं जागे ही जाऊँ। तब आयुष्मान् रेवत सोरेटपसे संकाश्य गये। स्पष्टि मिश्रुओंने सोरेटप अकर पूछ— आयुष्मान् रेवत कहाँ है ? उन्में कहा—आयुष्मान् रेवत संकाश्य गये। तब आयुष्मान् रेवत संकाश्यसे कसकुउय ( = काम्बकुउय, कधीय ) गये। स्पष्टि मिश्रुओंने संकाश्य अकर पूछ—‘आयुष्मान् रेवत कहाँ है ?’ उन्में कहा—‘आयुष्मान् रेवत काम्बकुउय गये। आयुष्मान् रेवत काम्बकुउयसे उतुम्बर गये। उतुम्बरस अगलपुर गये। अगल-पुरसे सहाजाति गये। तब स्पष्टि मिश्रु आयुष्मान् रेवतसे महजठिमें आ मिळ ।’

आयुष्मान् संभूत साजबासीने अयुष्मान् बड़ा की कहा—‘आयुस बरा ! यह अयुष्मान् रेवत बहुभूत शिक्षाकामी हैं। यदि हम आयुष्मान् रेवतको प्रसन्न पूछें, तो आयुष्मान् रेवत एकही प्रसन्नमें सारी रात बिता सड़ते हैं। अब आयुष्मान् रेवत अन्तबासी स्वरमाणक ( = स्वरसहित सूकोंको पकनेबाळे ) मिश्रुको (सस्वर पाठके किने) कहेंगे। स्वर प्रसन्न समाप्त होनेपर, आयुष्मान् रेवतके पास आकर हम दण बस्तुओंको पूछो ।’

‘अच्छा मन्ते !’

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तबासी ( = सिव ) स्वरमाणकमिश्रुको आज्ञा ( = अर्थ-कथ ) की। तब आयुष्मान् पछ इस मिश्रुके स्वरमाणन समाप्त होन पर बहो अयुष्मान्

१ सोरों ( त्रिका, पृ. ) । २ भीट, मि इकाहावा ।



रेवत जे बहो गये । आकर रेवतको अभिवादन कर एक ओर बडे । एक ओर बैठे आमुष्मान् वस ने आमुष्मान् रेवतको कहा—

(१) “मन्ते ! श्रृंगि-कवच-कवच विहित है ?”

“क्या है आमुस ! यह श्रृंगि-कवच कवच ?”

“मन्ते ! ( क्या इस विचारसे ) सींगमें लमक रखकर पास रखना क्या सकता है, कि बहो जलोना होगा, छेकर जायेंगे ? क्या यह विहित है ?” “आमुस ! नहीं विहित है” ।

(२) “मन्ते ! बृम्भगुल-कवच विहित है ?” “क्या है आमुस ! बृम्भगुल-कवच ?”

“मन्ते ! (दोपहरको) दो बंगुल छायाको बिठाकर भी विद्यासमें मौज्ज करना क्या विहित है ?” “आमुस नहीं विहित है ।”

(३) “मन्ते ! क्या प्रामान्तर-कवच विहित है ?” “क्या है आमुस ! प्रामान्तर-कवच ?”

“मन्ते ! मौज्ज कर चुकनेपर, एक कनेपर गाँवके भीतर मौज्ज करने जाया जा सकता है ?” “आमुस ! नहीं है ।

(४) “मन्ते ! क्या आवास कवच विहित है ?” “क्या है आमुस ! आवास-कवच ?”

“मन्ते ! ‘एक सीमाके भीतर बहुतसे आवासोंमें उपोसथको कवच’ क्या विहित है ?” “आमुस ! नहीं विहित है ।”

(५) “मन्ते ! क्या अनुमति-कवच विहित है ?” “क्या है आमुस ! अनुमति-कवच ?”

“मन्ते ! (एक) बार्के संवका (विनय) कर्म करना यह कवाक करके कि जो मिथु (पीछे) आचेंगे उनको स्वीकृति दे देंगे क्या यह विहित है ?”

“आमुस ! नहीं विहित है ।”

(६) “मन्ते ! क्या आचीर्ण-कवच विहित है ?” “क्या है आमुस ! आचीर्ण-कवच ?”

“मन्ते ! यह मेरे उपाध्यायने आचरण किया है, यह मेरे आचारने आचरण किया है (दिना समझकर) किसी बातका आचरण करना, क्या विहित है ?”

“आमुस ! कोई कोई आचीर्ण-कवच विहित है कोई कोई अविहित है ।

(७) “मन्ते ! अमन्त्रित-कवच विहित है ?” “क्या है आमुस ! अमन्त्रित-कवच ?”

“मन्ते ! जो दूध दूध-पनको छोड़ चुका है, दहीपनको नहीं प्राप्त हुआ है उसे आज्ञा कर चुकनेपर, एक कनेपर अधिक पीना क्या विहित है ?” “आमुस ! नहीं विहित है ।

(८) मन्ते ! अजोगी-वाच विहित है ?” “क्या है आमुस ! अजोगी ?”

“मन्ते ! जो सुरा अमी चुकाई नहीं गई है जो सुरापनको अमी प्राप्त नहीं हुई है, उसका पीना क्या विहित है ?” “आमुस ! विहित नहीं है ।”

(९) “मन्ते ! अदकक विचंदन (= विना किनारोका भासन) विहित है ?”

“आमुस ! नहीं विहित है ।”

(१०) “मन्ते ! आतकप-रजत (= सोना चाँदी) विहित है ?” “आमुस ! नहीं विहित है ।

“मन्ते वैशाकिन् अत्रिपुत्तक मिथु वैशाकीमें इन वस वस्तुओंका प्रचार करत है । अच्छा हो मन्ते ! हम हम अधिकारणको मिश्रण ।

“अथप्र आबुस !” (कह) आबुप्मान् रेवतसे आबुप्मान् पक्ष को उत्तर दिया ।

वैशाखीके पश्चिपुच्छक मिथुनोंके सुना यश काकपट्टपुच्छ इस अधिकरणकी मिताने के दिने पक्ष ईँड रहा है । तब वैशाखिक पश्चिपुच्छक मिथुनोंको यह हुआ—“यह अधिकरण कटिब है मारी है, कैसा पक्ष पावें कि इस अधिकरणमें हम अधिक बकबाद हों । तब वैशाखिक-पश्चिपुच्छक मिथुनोंको यह हुआ—यह आबुप्मान् रेवत बहुभुत हैं, यदि हम आबुप्मान् रेवतको पक्ष ( मी ) पावें, तो हम इस अधिकरणमें अधिक बकबाद हो सकेंगे ।

तब वैशाखीवासी पश्चिपुच्छक मिथुनोंके अमणोंके योग्य बहुत सा परिष्कार (=साम्राज) सम्पादित किया—पात्र भी खीबर मी निपीहन (=अपसव विह्वला) मी, सूखीबर (=सूर्यका बर) मी क्यपत्रबब (=कमर-वंद) मी परिलाबल (=उकककक) मी, धर्मकरक (=ताइवा) मी । तब पश्चिपुच्छक मिथु उम अमण-बोम्य परिष्कारोंको लेकर नाबसे सहज्जातिको बोधे । नाबसे उत्तरकर एक हृद्यके बोधे भीजनसे निपटने को ।

तब एकान्तमें स्थित प्पानमें बैठे आबुप्मान साइके पित्तमें इस प्रकारका पित्तर्ष बलब्र हुआ—“कौन मिथु धर्मवादी है ? पायेयक (=पक्षि बाके) वा प्राचीनक (=एव बाके) ?” तब धर्म और विवबकी प्रत्यवेहासे आबुप्मान् साइको ऐसा हुआ—

“प्राचीनक मिथु धर्मवादी है पायेयक मिथु धर्मवादी है ।” ।

तब वैशाखिक पश्चिपुच्छक मिथु उस अमण परिष्कारको लेकर उहाँ आबुप्मान् रेवत से बहों” आरु आबुप्मान् रेवतको बोधे—

“अन्ते ! स्वविर अमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र मी ।

“नहीं आबुसो ! मेरे पात्र-खीबर पूरे हैं ।

इस समय बीच बबक्य उत्तर नामक मिथु, आबुप्मान् रेवतका उपस्थाक (=उपेवक) वा । तब पश्चिपुच्छक मिथु उहाँ आबुप्मान् उत्तर से बहों गये आकर आबुप्मान् उत्तरको बोधे—

“आबुप्मान् उत्तर अमण-परिष्कार ग्रहण करें—पात्र मी ।

“बहों आबुसो ! मेरे पात्र-खीबर पूरे हैं ।”

“आबुस उत्तर ! लोग भगवान्के पास अमण-परिष्कार के आवा करते थे यदि भगवान् ग्रहण करते थे तो तससे वह अनुब्र होते थे; यदि भगवान् नहीं ग्रहण करते थे तो आबुप्मान् अमणके पास के आते थे—अन्ते ! स्वविर अमण-परिष्कार ग्रहण करें जैसे भगवान्ने ग्रहण किया वैसा ही ( आपक्य ग्रहण ) होगा । आबुप्मान् उत्तर अमण-परिष्कार ग्रहण करें वह स्वविर ( रेवत ) के ग्रहण करने जसा ही होगा ।”

तब आबुप्मान् उत्तरने पश्चिपुच्छक मिथुओंसे दबाये जानेपर एक खीबर ग्रहण किया—

“कहो आबुसो ! क्या काम है कदो ?”

“आबुप्मान् उत्तर स्वविरको हतवा ही बहें—“अन्ते ! स्वविर ( अय ) मंथक खीबरने हतवा ही कहें—प्राचीन ( =पूर्वज ) देवों ( =अथपत्तों ) में तुह भगवान् उत्पन्न

होते हैं प्राचीनक (= पूर्वीय) मिथु धर्मवादी हैं पाश्चिमक मिथु धर्मवादी हैं ।”

“अच्छ भ्रातृसो !” कह आमुष्मान् उतर चहाँ आमुष्मान् रेवत से, यहाँ यसे ।  
बाकर आमुष्मान् रेवतको बोले—

मन्ते ! ( आप ) स्वविर संघके बीचमें इतना ही कहें—प्राचीन वैशामें उर  
भयवान् बलवत् होते हैं प्राचीनक मिथु धर्मवादी हैं पाश्चिमक मिथु धर्मवादी हैं ।”

“मिथु ! तू मुझे अधर्म में विचोदित कर रहा है” ( कहकर ) स्वविरने आमुष्मान्  
उतरको हटा दिया । तब बलिपुत्रकोमै आमुष्मान् उतरको कहा—

‘आमुस उतर ! स्वविरक क्या कहा ?’

‘आमुस ! हमने बुरा किया । मिथु ! तू मुझे अधर्ममें विचोदित कर रहा है’—  
( कहकर ) स्वविरने मुझे हटा दिया ।”

‘आमुस ! क्या तुम बुरा भीस-बर्ष ( के मिथु ) नहीं हो ?’ ‘हूँ आमुस !’

‘तो हम ( तुम्हें अपना ) क्या मानकर ग्रहण करते हैं ?’

उस अधिकरणक विर्वाच करकेकी इच्छासं सभ प्रकटित हुआ । तब आमुष्मान्  
रेवतने संबको ज्ञापित किया—

‘आमुस ! सभ मुझे सुने—यदि हम इस अधिकरण ( = विवाद ) को यहाँ समक  
करेंगे तो शापद् मूल्यापक (= प्रतिवादी) मिथु धर्म (= म्याय ) के किये उरकोल  
( = धमाम्य ) करेंगे । यदि संबको परम्प हो तो यहाँ यह विवाद उत्पन्न हुआ है,  
संब यहाँ इस विवादको घात करे । तब स्वविर मिथु उस विवादके विर्वाचके किये  
विज्ञाकी चक ।

बस समक पृथिवीपर आ आनन्दके शिष्य सर्वकामी नामक संब-स्वविर, उप-  
संपदा (= मिथुदीक्षा) होकर एकसी बीच वर्षके, वैशाखीमें वास करते थे । तब आमु-  
ष्मान् रेवतने आ संभूत सापवासी (= स्मद्यानवासी सभ-बक पारी) को कहा—

‘आमुस ! जिस विहारमें सर्वकामी स्वविर रहते हैं मैं यहाँ आऊँगा सो तुम समक  
वर आमुष्मान् सचकामीके पास आकर इस इस वस्तुओंको पूछना ।’ “अच्छ मन्ते !”

तब आमुष्मान् रेवत जिस विहारमें आमुष्मान् सर्वकामी रहते थे; उस विहारमें यसे ।  
कोटरी (= गार्म) के नीतर आमुष्मान् सर्वकामीका आसन विद्य हुआ था कोटरीके बाहर  
आमुष्मान् रेवतका । तब आमुष्मान् रेवत—यह स्वविर बुरा ( तोवर मी) नहीं बेट रई  
हैं—( सोचकर ) नहीं छेरे । तब आमुष्मान् सर्वकामीने रातके मत्पूव (= भिनछर) के  
समक आमुष्मान् रेवतको यह कहा—

‘तुम आजकक किस विहारस अधिक विहरते हो ?’

‘मन्ते ! मीत्री विहारस मैं इस समय अधिक विहरता हूँ ।’

कुम्भक विहारस तुम इस समय अधिक विहरते हो यह जो मीत्री है वही  
कुम्भक विहार है ।

“मन्ते ! पहिले पुरक्य होनेके समय भी मैं मीत्री ( भावना ) करता था, इसकिये

जब भी मैं अधिकतर मंत्री विहारसे विहरता हूँ यद्यपि मुझे कई व पत्र पाये फिर हुआ । मन्ते ! स्वविर आञ्जक किस विहारसे अधिक विहरते हैं । ?”

“मुम्न ! मैं हूँ इस समय अधिकतर द्युम्पता विहारसे विहरता हूँ ।”

“मन्ते ! इस समय स्वविर अधिकतर महापुरुष-विहारसे विहरते हैं । मन्ते ! यह ‘द्युम्पता’ महापुरुष-विहार है ।

‘मुम्न ! पहिले गृही होवेक समय मैं द्युम्पता विहारसे विहरा करता था इसकिये इस समय द्युम्पता विहारसेही अधिक विहरता हूँ यद्यपि मुझे कई व पाये फिर हुआ ।”

( अब ) इस प्रकार स्वविरोंकी आपसमें बात हो रही थी, उस समय आपुष्मान् साणवासी पहुँच गये । उस आपुष्मान् संभूत साणवासी कहीं आपुष्मान् सबकामी थे वहाँ गये । आकर आपुष्मान् सबकामीको कमिवाहनकर एक बार बँड बह बोले—

“मन्ते ! यह वैसाकिक कमिपुत्रक मिभु बसाहीमें इस बस्तुका प्रचार कर रहे हैं । स्वविरके ( अपने ) उपाध्याय ( = आत्मन् )के चरणमें बहुत धर्म और विषय प्रवृत्त किया है । स्वविरको धर्म और विषय देखकर कैसा मात्स्य होता है ? काय धर्मवादी हैं, प्राचीनक मिभु, वा पावेयक ?”

“तुम भी आपुस ! उपाध्यायक चरणमें बहुत धर्म और विषय सीखा है । तुम आपुस ! धर्म और विषयको देखकर कसा मात्स्य होता है ? कौन धर्मवादी हैं प्राचीनक मिभु वा पावेयक ?”

मन्ते ! मुझे धर्म और विषयको अवकोकन करनेसे ऐसा होता है—“प्राचीनक मिभु धर्मवादी हैं पावेयक मिभु धर्मवादी हैं । ।’

“तुम भी आपुस ! ऐसा होता है—प्राचीनक मिभु धर्मवादी हैं पावेयक धर्मवादी ।” ।

उस इस विचारके निर्वय करके किये सय दूकप्रित हुए । उस अधिकतरके दिवि सब ( सर्वसका ) करते समय अवार्कक बकवाद उत्पन्न होते थे एक भी कथनका धर्म मात्स्य नहीं पठा था । उस आपुष्मान् रक्षतने संघको ज्ञापित किया—

“मन्ते ! सब मुझे सुनै—हमार इस विचारके निर्वय करते समय अवार्कक बकवाद उत्पन्न होते हैं । यदि संघको पसन्द हो तो सब इस अधिकतरको उद्गाहिका (अकमीठी) से सात करे ।

चार प्राचीनक मिभु और चार पावेयक मिभु सुनै धये । प्राचीनक मिभुओंमें आपुष्मान् सबकामी आपुष्मान् साङ् आपुष्मान् सुत्र शोमित ( सुत्र बोधित ) और आपुष्मान् धार्यम-ग्रामिक ( = वासमगामिक ) । पावेयक मिभुओंमें आपुष्मान् रेवत आपुष्मान् संभूत साणवासी आपुष्मान् पग काकोडपुत्र और आपुष्मान् सुमन । उस आपुष्मान् रेवतने संघको ज्ञापित किया—

“मन्ते ! सब मुझे सुनै—हमार इस विचारके निर्वय करते समय अवार्कक बकवाद उत्पन्न होते हैं । यदि संघको पसन्द हो तो सब चार प्राचीनक ( और ) चार पावेयक मिभुओंकी उद्गाहिका इस विचारको धन्य करके किये माने ।—बह शक्ति है ।—मन्ते !

संब मुझे मुझे—हमारे इस विवाहके निर्णय करते समय । संब चार प्राचीनक और चार पारिविक मिथुनोंकी उद्घाटिकासे इस विवाहको शांत करना मांगता है । जिस आधुप्यान्के चार प्राचीनक चार पारिविक मिथुनोंकी उद्घाटिकासे इस विवाहका शांत करना बसन्त है वह चुप रहे जिसको नहीं पसन्द है वह बोले । । संबने मान किया संबको पसन्द है, इसकिये चुप है—पेसा मैं समझता हूँ ।

इस समय अजित नामक दसवर्षीय मिथु संबका प्रातिमोहोदकक ( अश्वोत्सवके दिन मिथु विनमोकी आरुति करनेवाला ) था । संबने आधुप्यान् अजितको ही स्वयिर मिथुनों का आसन-विश्रापक ( अश्वसन विश्रापेवाला ) स्वीकार किया । तब स्वयिर मिथुनों को यह हुआ—'बह बालुकाराम रमणीय सप्तरहित=धोच-रहित है क्यों हम बालुकाराममें ( ही ) इस अधिकरणको शांत करें ।' तब स्वयिर मिथु इस विवाहके निर्णय करनेके किये बालुकाराम गये । आधुप्यान् देखतने संबको ज्ञापित किया—

'मन्ते संब ! मुझे सुनै—यदि संबको पसन्द हो, तो मैं आधुप्यान् सार्यकामीको विनय रूजूँ !'

आधुप्यान् सार्यकामीने संबको ज्ञापित किया—

'आधुस संब ! मुझे मुझे—यदि संबको पसन्द हो तो मैं आधुप्यान् देखतद्वारा तुझे विनयको कहूँ ।'

आधुप्यान् देखतने आधुप्यान् सार्यकामीको कहा—

( १ ) 'मन्ते ! शृंगि-कवच कस्य विहित है ? 'आधुस ! शृंगि-कवच-कस्य क्या है ?' मन्ते ! सीधमें ।'

'आधुस ! विहित नहीं है ।'

'कहाँ निषेध किया है ?' 'आयस्तीमें 'मुचविमड' में ।

'क्या आपत्ति ( व्योप ) होती है ?'

'सक्तिविकारक ( असमहीत वस्तु)के भोजन करनेमें 'प्रायश्चित्त' ।'

'मन्ते ! संब मुझे मुझे—बह प्रथम वस्तु संबने विनय किया । इस प्रकार वह वस्तु धर्म-विरह, विनय-विरह आस्ताके सासबसे आहरणी है । वह प्रथम लकाकाको छोड़ता हूँ ।'

( २ ) 'मन्ते ! शृंगि-कवच कस्य विहित है ?' । 'आधुस ! नहीं विहित है ।'

'कहाँ निषेध किया ?' 'राज्यरुद्धमें 'मुचविमड' में ।'

'क्या आपत्ति होती है ?' 'विनाश भोजन-विषयक 'प्रायश्चित्तक की ।'

मन्ते संब ! मुझे सुनै—बह द्वितीय वस्तु संबने विनय किया । वह चुपरी 'शास्त्रका छोड़ता हूँ ।'

( ३ ) 'मन्ते ! 'प्रासातर-कस्य विहित है ?' । 'आधुस नहीं विहित है ।

'कहाँ निषेध किया ?' 'आयस्तीमें 'मुचविमड' में ।'

'क्या आपत्ति होती है ?' 'अतिरिक्त भोजन विषयक प्रायश्चित्त ।'

'मन्ते ! संब मुझे मुझे—० ।'

- (४) "मन्ते ! 'आवास-कल्प' विहित है ?" । "आबुस ! नहीं विहित है ।"  
 "कहाँ विप्रेष किया ?" "राजगृहमें 'उपोसम-संपुत्र' में ।"  
 "क्या आपत्ति होती है ?" "विनय ( =मिश्रविषय )के अतिप्रमत्तसे 'दुष्कृत' ।"  
 "मन्ते ! संघ मुझे सुने ।"
- (५) "मन्ते ! 'अनुमति-कल्प' विहित है ?" । । "आबुस ! नहीं विहित है ।"  
 "कहाँ विप्रेष किया ?" "आम्पेयक विनय-वस्तुमें ।"  
 "क्या आपत्ति होती है ?" "विनय-अतिप्रमत्तसे 'दुष्कृत' ।"  
 "मन्ते ! संघ मुझे सुने ।"
- (६) "मन्ते ! 'अधीर्न-कल्प' विहित है ?" । । "आबुस ! कोई कोई आधीर्न-  
 कल्प विहित है, कोई कोई नहीं ।"  
 "मन्ते ! संघ मुझे सुने ।"
- (७) "मन्ते ! 'अमर्षित-कल्प' विहित है ?" । । "आबुस ! नहीं विहित है ।"  
 "कहाँ विप्रेष किया ?" "आयस्तीमें 'सुप्त-विभाग'में ।"  
 "क्या आपत्ति है ?" "अतिरिक्त मोक्षण करनेमें 'प्रापञ्चितिक' ।"  
 "मन्ते ! संघ मुझे सुने ।"
- (८) "मन्ते ! 'अकोपी-पात्र' विहित है ?" । । "आबुस ! नहीं विहित है ।"  
 "कहाँ विप्रेष किया ?" "कौशाग्र्यीमें 'सुप्त-विभाग'में ।"  
 "क्या आपत्ति होती है ?" "सुर-भरण पात्रमें 'प्रापञ्चितिक' ।"  
 "मन्ते ! संघ मुझे सुने ।"
- (९) "मन्ते ! 'अदृष्टक-विधीर्न' ( =विना किनारीका विधीर्न ) विहित है ?"  
 "आबुस ! नहीं विहित है ।"  
 "कहाँ विप्रेष किया ?" "आयस्तीमें 'सुप्त-विभाग'में ।"  
 "क्या आपत्ति होती है ?" "द्वेष करनेका प्रापञ्चितिक ।"  
 "मन्ते ! संघ मुझे सुने ।"
- (१०) "मन्ते ! 'आतकप-रजत' ( =पाना चोरी ) विहित है ?" "आबुस ! नहीं विहित है"  
 "कहाँ विप्रेष किया ?" "राजगृहमें 'सुप्त-विभाग' में ।"  
 "क्या आपत्ति है ?" "आत-कप-रजत प्रतिग्रहण विषयक 'प्रापञ्चितिक' ।"  
 "मन्ते ! संघ मुझे सुने—यह दसवीं वस्तु संघन विषय की । इस प्रकार यह वस्तु  
 ( =आत ) धर्म विन्दक विनय विन्दक शास्त्रक शासनसे बाहरकी है । यह दसवीं वस्तुका  
 अर्थ है ।"
- "मन्ते ! संघ मुझे सुने—यह दस वस्तु संघने विनय की । इस प्रकार यह वस्तु  
 धर्म-विन्दक, विनय-विन्दक शास्त्रके शासनसे बाहरकी है ।"
- ( सर्वाभ्यमी )— आबुस ! यह विवाद विदित हो गया सोल, उपर्युक्त सु-उपस्थात  
 हो गया । आबुस ! उन मिश्रणोंकी आवश्यकता विषय ( मद्र ) संघके बीचमें ही मुझे इन  
 दस वस्तुओंको पृथक् ।

तत्र आयुष्मान् रेवतये संभके बीकर्मे धी आयुष्मान् सर्वकामीको मह इव वस्तुने  
पुत्री । पुत्रेणैव आयुष्मान् सर्वकामीने ज्यत्स्वाम किवा ।

इस बिनय-संगीतिमें न कम, न बेसी सात सी मिथु थे । इसकिये वह विषय  
संगीति 'सप्त शातिका कही जाती है ।

( १३ )

अशोक राजा (ई० पू० २६९)। तृतीय-संगीति (ई० पू० २४८)

'इस प्रकार द्वितीय संघीतको संगायन कर, उन स्वबिरोंये -- मन्दिपकी ओर धक्का  
कर करते हुये वह राजा -- 'बचसे एकसी बठारह (ई० पू० २६५) वर्ष बाद पान्डीपुत्रमें  
धमाशोक नामक राजा धारे अम्बुवृष्टी पर राज्य करेगा । वह बुद्धसासन (= बुद्धधर्म) में  
मदगु हो बहुत काम-सरकार प्रदान करेगा । तब काम-सत्कारकी इच्छासे सैयिक कीय सासन  
(= धर्म) में प्रमत्तित हो अपने अपने मतका प्रचार करेंगे । इस प्रकार सासनमें बड़ा मक उत्पन्न  
होगा । कौन उस अधिकारण (= विवाद) को सात करनेमें समर्थ होगा ? -- वह सोचते)  
सकल मनुष्यकोकर्म अवलोकन करते किसीको न देख महाकोकर्म तिप्य कामक महाको  
अवगानु तथा-ऊपर महाकोकर्म उत्पन्न होनेसे ( निर्वाण) मार्गकी भाषणमें रह देखा । ऐक-  
कर उन्हें यह हुआ -- 'यदि हम इस महामहाको मनुष्य काकर्म उत्पन्न होवैकी प्रणय करें  
तो वह अवश्य मौषुकि (= मोघाकि) महाकमे सुद्धमें जन्म लेगा, फिर संभके कोयसे निक  
अन्तर प्रमत्तित होया । इस प्रकार प्रमत्तित हो सकल बुद्धचरणको पक्षर (= महाकर्म )  
प्रतिस्वित् प्राप्त हो सैयिकोंको मर्दान्तर उस विवादका निवचनकर सासनको रण करेया ।  
(यह सोच उन्होंने) महाकोकर्म का तिप्य महामहाको कहा । 'निप्य महामहाको' 'हर्षित हो  
अच्छा कहकर बचन दिया । । उद्य समच सिमाय स्वविर और अम्बुवृष्टी स्वविर दोनों  
तद्वन त्रिपिटकपर प्रतिस्वित् प्राप्त कीकामच (= अर्हत्) बने मिथु थे । वह उस अधिक  
रण (= विवाद) में नहीं जाने थे । स्वबिरोंमें -- आयुसो ! तुम इस अधिकारणमें हमारे सहा  
बक नहीं हुये इसकिये तुम्हें वह रूढ़ है -- 'तिप्यनामक महा योगाकि महाकमे धर काम  
कया । तुममें से एक उसे बेकर प्रमत्तित करें और एक बुद्ध-वचन पढ़ाये । कहकर वह सभी  
आयु चर्यन जीवित रहकर ( निर्वाण प्राप्त हुये ) ।

तिप्य महामहा धी महाकोकर्म प्युत हो मायासि महाकमे कर गर्भमें आया । सिमाय  
स्वविर भी उमक गर्भमें जाकेन लेकर सात बचनक, उस प्रणयके धरमें विहके तिने जाते  
रहे एक दिनभी पुस्तुपर बचागू वा कण्ठीमर भाठ उन्होंने बदी पाया । सात बचनक बीत  
बैर एकदिन मोक करे भण्ट" -- हुना बचन भाष पाया । उसदिन बाहर कोई आचरक  
काम करके आरन बन् महाकमे नामन स्वविरको देखकर कहा --

१ समग्र पापारिहा परात्रिच-अहकषा तृतीय संगीति ।

२ महाक-राज्यमासि ई० पू० २६९ (निर्वाण १३४), धमिपक १३५ (१३४),

बीड २६९ (२६२) अशाकाराज्य मासि २५८ (२५५) संगीति २२८ (नि १३५) ।

'हे प्रमत्त ! हमारे घर गये थे ?' "हाँ ब्राह्मण ! गया था  
"क्या कुछ मिला ?" "हाँ ब्राह्मण ! मिला ।"

उसने घरमें जाकर पूछा—"उस साधुको कुछ दिया ?"  
'कुछ नहीं दिया ।

ब्राह्मण दूसरे दिन गृह-द्वार परही बैठा । स्वधिर दूसरे दिन ब्राह्मणके गृहद्वारपर  
गये । ब्राह्मणने स्वधिरको देखकर कहा—

'तुम हमारे घरमें बार बार आकर भी कुछ न पा 'मिला है बोले (क्या) वह  
तुम्हारी बात झूठी नहीं है ?

"ब्राह्मण ! हमने तुम्हारे घर सातवर्ष तक आकर 'माफ़ करो यह बचन मात्रमी न  
पा फिर 'माफ़ करो यह बचन पाया इसी बातको लेकर हमने 'मिला है' कहा ।

ब्राह्मणने सोचा—'वह बचनमात्रको पाकर 'मिला है' (कहकर) प्रसंसा करते हैं तो  
कुछ आद्य-भोज्य पाकर क्यों न प्रसंसा करेंगे । (सोच) प्रसन्न हो, अपने किन बने मातसे  
ककड़ीभर और उसके बोग प्यंजन ( न्योमन ) दिखवाकर, यह मिथ्या तुम सदा पाओगे'  
कहा । फिर स्वधिरकी शीतवृत्ति देख प्रसन्न हो उसने अपने घरमें बिल्व भोजन  
करकेही प्रार्थना की । स्वधिरने स्वीकार कर (किया) ।

वह माणवक ( = ब्राह्मणपुत्र ) भी सोचने लगे कि उसमें ही त्रिवेद-पारंगत हो गया ।"  
अब वह आचार्यके घर जाता था तो ( बरबाके ) उसके मंच-पीठको स्वेत बलसे आच्छादि  
तकर लटक रहते थे । स्वधिरने सोचा—'अब माणवकको प्रमत्त करनेका समय आ  
गया ।" ( एक दिन ) घरबाकोंने दूसरा आसन न देखकर (स्वधिरकेकिये ) माणवकका  
आसन बिठा दिया । स्वधिर आसनपर बैठे । माणवकने भी उसी समय आचार्यके घरसे  
आकर स्वधिरको अपने आसनपर बैठे देखकर, कुपित हो कहा—'मेरा आसन समयको  
किसने दे दिया ? स्वधिरने भोजन समाप्त कर "माणवककी चंडताके किने कहा—

"क्या तुम माणवक ! कुछ ( वेद ) मंत्र जानते हो ?"

"हे प्रमत्त ! इस समय मेरे मंत्र न जाने पर ( तुमसे ) कौन जानेगा ? —कह  
स्वधिरको पूछा—"क्या तुम मंत्र जानते हो ? ;

"माणवक ? तुमसे पूछकर जान सकते हो ?"

तब माणवकने शिक्षा ( = अक्षर प्रमेद ) कल्प विषद्वृ इतिहास-सहित तीनों वेदोंमें  
जिनने जितने कठिन खान के शिबक मतककको न अपने जानता था न उसका आचार्य ही  
जानता था उन्हें स्वधिरको पूछा । स्वधिर जैसे भी तीनों वेदोंमें पारंगत ने अब तो  
मतिस्वधिर प्राप्त भी थे इसकिये उन्हें उन प्रश्नोंके उत्तर देनेमें कोई कठिनाई न थी । उसी  
समय उत्तर दे माणवकको बोले—

"माणवक ! तुमने मुझे बहुत पूछा मैं भी एक प्रश्न पूछता हूँ क्या तुम मुझे  
उत्तर दोगे ?"

"हाँ प्रमत्त ! तुमसे उत्तर दूँगा ।



एकदिवसे 'चित्त बमक' मेंसे यह प्रश्न पूछा—

“जिसका चित्त उत्पन्न होता है, बिन्दु नहीं होता उसका चित्त बिन्दु होगा उत्पन्न नहीं होगा; किन्तु जिसका चित्त मिद्वन्द्व होगा और उत्पन्न नहीं होगा उसका चित्त उत्पन्न होता है मिद्वन्द्व नहीं होता।

‘हे प्रमदित ! इस मन्त्रका क्या नाम है ?’ “भाष्यक ! यह तुम्ह-मंत्र है।”

क्या इसे सुसे भी दे सकते हो ?’ “भाष्यक ! हमारी प्रहण की हुई प्रमदितको प्रहण करतेसे दे सकते हैं।”

तब भाष्यकने माता पिताके पास जाकर कहा—

‘यह प्रमदित तुम्ह मंत्र जायता है किन्तु अपने पास न प्रमदित हुयेको नहीं देता; मैं इसका पास प्रमदित हो मंत्र प्रहण करूँगा।’

तब उसके माता पिताके—1 मंत्र प्रहणकर फिर खीट जायेगा क्याकर ‘पुत्र ! प्रहण करो (कहकर) आज्ञा दे ही।

एकदिवसे बुधकको प्रमदितकर पहिले बचीस प्रकारके (=घोष) बतकाये। यह उबका अन्वय करते बड़ी ही श्रोत-अपत्ति फलमें प्रतिष्ठित हो गया। तब एकदिवसे सोचा—“आमनेर (जब) श्रोत-अपत्तिफलमें स्थित है जब आसक्तसे खीटने योग्य नहीं है, यदि मैं इसे बचकर कमकाल करूँगा तो अर्द्धरथको प्राप्त हो जायेगा और तुम्ह-बचन प्रहण करनेमें उत्साह हीन हो जायेगा; जब खंडयस्त्री एकदिवसे पास भेदनेका समय है।” तब उसे कहा

“आजो आमनेर ! तुम एकदिवसे पास जाकर तुम्ह-बचन प्रहण करो। मरे बचनमें (=बन्ध) रात्रीसुधी (=आरोग्य) पूछना (और) वह भी कहा—भन्ते ! उपाध्यायने सुसे तुम्हारे पास भेजा है। तुम्हारे उपाध्यायका क्या नाम है पूछनेपर—‘भन्ते ! सिगाय एकदिवसे कहा। ‘मेरा नाम क्या है पूछनेपर “भन्ते ! मेरे उपाध्याय तुम्हारा नाम आन्ते हैं।”

अथवा भन्ते !’ कह तिप्य आमनेर खंडयस्त्री एकदिवसे पास (या)।

“किस किये जाने हो ?” “भन्ते ! तुम्ह-बचन प्रहण करनेके किये।

“ प्रहण करो आमनेर !”

तिप्यके आमनेर होते समय ही (२ वर्षकी अवस्था तक) किंचित् पिच्छकी छोड़ अङ्कपाके साथ सभी तुम्ह-बचनको प्रहण (=वाच करवा) कर किया था। उक्त-संपन्न प्राप्त (=भिन्नुपन) हो वह एक वर्ष न पूरा होते ही क्षिपिद्वन्द्व हो गये। अथवा और उपाध्याय मोमाक्षिपुत्र-तिस्स (=मौद्गक्षिपुत्र तिप्य) एकदिवसे हाथमें सकल तुम्ह-बचनको स्थापितकर आधुपर भीकर विद्या-प्राप्त हुये। मोमाक्षिपुत्र तिस्स एकदिवसे भी पीछे कर्मस्थान बड़ाकर अर्द्ध-पद प्राप्त हो बहुरोंको धर्म और विद्या पढ़ाया।

उस समय विदुस्तार राजाके एक सौ पुत्र थे। अपने और अपने सहोदर तिप्य-कुमारकी छोड़ (भिन्नुस्तार-पुत्र) अशोकने जब सबको (ई. पू. ११९ में) मार डाला।

मारकर चार वर्ष तक बिना अभियेकके ही राज्य करके चार वर्षोंके बाद लक्षणाके निर्वाचके बाद २१८ वें (ई. पू. २१५) वर्षमें सारे जम्बूद्वीपका एक-एक राज्याभियेक पाया । राज्याभे अभियेककी प्राप्त हो तीन वर्ष ही तक बाह्य-पाण्डव (= वृषसे मत ) को ग्रहण किया । चौथे वर्ष ( ई. पू. २११ ) वह कुछ वर्षमें प्रसन्न (= अदाचार ) हुआ । उसका पिता विष्णुसार माह्यज-सन्न था ।

इस प्रकार समग्र बीतते बीतते एक दिन राजाने सिंहपञ्जर (= सिंहाली ) में अपने राज्य गुप्त साम्प्रदायिक ईर्ष्यापवपुत्र स्वप्रोच भ्राम्भेरको राज-भोगवसे ज्ञाते देखा । वह स्वप्रोच कौन था ? विष्णुसार राजाके ज्येष्ठ-पुत्र सुमन राजकुमारका पुत्र था । विष्णुसार राजाकी बुर्ख-अपत्ता (= रोगावस्था ) में अशोककुमारने अपने ठ-प्रीतके राज्यको छोड़कर सारे नगरको अपने हाथमें करके सुमन राजकुमारको पकड़ किया । उसी दिन सुमन राजकुमारकी सुमना नामक बेबी परिवर्त-मर्मा थी । वह अज्ञात रूपमें निकलकर पासके एक घाँटाल-भ्राम्भेरी ओर एक मुखिया बाँडाक (= ज्येष्ठ-बाँडाक ) के गृहके पास एक बर्ष (= स्वप्रोच ) के बीचे पहुँची । उसी दिन उसे पुत्र उत्पन्न हुआ । उस (बाँडाक भी) नाम स्वप्रोच रखा । ज्येष्ठक-बाँडाक देखनेके दिनसे ही उसे अपने स्वामी की पुत्री समझ सेवा करने लगा । राजकन्या सात वर्ष तक वहाँ बसी । स्वप्रोच-कुमार भी सात वर्षका हो गया । तब महाबाह्य स्वभिर नामक एक अर्हत्वे राजकन्याको बहकाकर स्वप्रोच-कुमारको प्रसन्नित किया । कुमार हुरेकी भार ( के वेसमें ढगवे ) के साथ ही अर्हत्वेको प्राप्त हो गया । एक दिन मातः ही शरीर-कुरवसे निवृत्त हो वह अचानक-उपाप्यावके अंत (= सेवा ) को दूरकर पाक-बीर के माता-उपासिकाके द्वारपर जाके ( दृष्टसे ) बिकका । उसकी माताके घरको दक्षिण-द्वारसे नगरमें प्रविष्ट हो नगरके बीचसे आकर पूर्व द्वारसे निकलकर अन्त होता था । उस समय अशोक बर्मराजा पूर्वकी ओर मुँहकर सिंहपञ्जरमें रहता था । उसी समय स्वप्रोच राज-भोगमें पहुँचा ।

‘देखनेके साथ ही (अशोकका) भ्राम्भेरमें चित्त प्रसन्न हो गया । तब राजाने कहा इस भ्राम्भेरको तुझको ? । भ्राम्भेर स्वभाविक चाकसे आया । राजाने कहा—

“अपने कपक वासवपर बैठिबे ।

उसने इधर कपर देखकर—‘कोई वृत्तरा मित्र नहीं ह (बातकर) श्वेत-यत्र प्रचारित राज-सिंहासनके पास जाकर राजाके ( मित्रा ) पात्र देने बीसा जाकर बिककाया । राजा उस वासवके पास जाते देखकर ही सोचने लगा—‘जात्र ही यह भ्राम्भेर इस घरका स्वामी होगा । भ्राम्भेर राजाके हाथमें पात्र दे वासवपर चढ़कर बैठ । राजाने अपने किये बन्धर किया सभी पाणु-काजक माता भोजन पास भेजवाया । भ्राम्भेरने अपने प्रसन्नता न ही ग्रहण किया । भोजन समाप्त हो जानेपर राजाने कहा—

“क्षस्ता (गुप्त)ने तुम्हें को उपदेश दिया ( ई ) उसे क्याने हो ?”

“महाराज ! एक देसना ज्ञानता हूँ ।

‘तव ! मुझे भी उसे पतज्ययो ।’

“अच्छा महाराज !” ( वह ) राजाके अनुक्य ही ‘अम्मपत्’ के ‘अप्यमात्-वर्षा’ को सुनाया ।

‘अप्यमात्’ (=आजकलक समाज) अमृतपत् है और ममात् मृतपत् । ( वह ) सुनते ही राजाके कड़ा-‘तात ! आत गया, पूरा करो । ( शान ) अनुमोदन ( देतवा ) के अंतमें ‘तात ! तुम्हें आठ किले भोजन देता हूँ ।—कड़ा । आमजेरने ‘महाराज ! मैं वह उपाध्यायको देता हूँ ।

‘तात ! यह उपाध्याय कौन है ?’ “महाराज ! अच्छा बुरा देखकर जो प्रेरणा करता है अरुण कराता है ।

‘तात ! और भी आठ किले-भोजन देता हूँ ।

“महाराज ! यह आचार्यको देता हूँ ।

‘तात ! वह आचार्य कौन है ?’ “महाराज ! इस शासन (= धर्म ) में हो अपने कावक धर्मोंमें जो स्थापित करता है ।”

“अच्छा तात ! तुम्हें और भी आठ देता हूँ ।

‘महाराज ! यह मिथुसंबको देता हूँ ।

‘तात ! वह मिथु-संब कौन है ?

“महाराज ! जिसके अर्द्धवसे मेरे अर्द्ध उपाध्याय तथा मेरी मन्त्रणा और अर्द्धपदा है ।”

“तात ! तुम्हें और भी आठ देता हूँ ।

आमजेरने ‘साहु (= अच्छा ) कह स्वीकार कर दूसरे दिन बचीस मिथुनोंको लेकर राजाका पुरमें प्रवेशकर, भोजन किया । । स्याप्रोष के परिपक्व-सहित राजाको तीव्र शरणों और पौष कीकोंमें प्रतिष्ठित किया । । फिर राजाके ‘अशोकाराम नामक महा विहार बनवा कर, साठ हजार मिथुनोंका किले-संभाव किया । सारे अम्मूद्दीपके चौरासी हजार नगरोंमें चौरासी हजार पैलोंस संकित चौरासी हजार विहार बनवाये ।

( राजाके ) अशोकाराम विहार बनवायेका काम कयनावा संघमें इच्छुगुप्त स्वविरको विरीक्षक नियत किया । । तीव्र धर्ममें ( २५६ ई. पू. ) विहारका काम समाप्त हुआ । “। तब ( राजा ) सु-अर्द्धकृत हो नगरसे होते (विहार-प्रतिष्ठाके किन्) विहारमें जा सर्वके बीच में बैठा हुआ ।— फिर मिथुसंबको पूज्य —

‘क्या मन्ते ! मैं शासन (= धर्म ) का शापाह हूँ वा नहीं ?’

तब मोभासिपुत्र तिस्स स्वविरके कहा—

“महाराज ! इतनेसे शासनका शापाह नहीं कहा जाता बल्कि मत्स्य-शापाह वा उप-शापाह कहा जाता है । महाराज ! जो पृथिवीसे लेकर महाकोक तककी मत्स्य (= मिथुनोंकी) अपेक्षित चार बस्तुके-राधि भी देवे वह भी शापाह नहीं कहा जाता ।”

“तो मन्ते ! शासनका शापाह कैस होता है ?”

‘महाराज ! जो धनी वा धनीय अपय औरय पुत्रकी मन्त्रित कराता है वह शासन का शापाह कहा जाता है ।”

तब अशोक राजाके शासनमें शापाह होयेकी इच्छासे इधर उधर देखते पावमें पावे

महेन्द्रकुमारको देखकर—“बचपि मैं तिप्यकुमारके प्रभावित हो जानेके बादसे ही, इसे पुषराज-यद्वर प्रतिष्ठित करना चाहता हूँ” किन्तु पुषराजपतिसे प्रवृत्ता ही बचपी है” (सोच) कुमारको कहा—

“ताव । प्रभावित हो सकते हो ?” (हाँ हाँ ! ) प्रभावित होऊँगा । मुझे प्रभावित कर तुम शासनके शायद बनो ।”

उस समय राजपुत्री संघमित्रा भी उसी स्थानमें खड़ी थी । उसका भी पति कमि-  
श्या तिप्यकुमारके साथ प्रभावित हो गया था । राजाने उसे देखकर कहा—

“अम् ! तू भी प्रभावित हो सकती है ?” “हाँ हाँ ! हाँ सकती हूँ ।”

राजाने पुत्रोत्पी कामना जाकर मिथुसंघको कहा—

मन्ते ! हम दोनों बच्चोंको प्रभावित कर मुझे शासन-शायद बनाओ ।

राजाके बचपनके स्वीकार करने कुमारको मांमालिपुत्र तिस्स स्वविरक उपाध्याय  
बल और महादेव स्वविरके आचार्यत्वमें प्रभावित (= आमने) किया; और मध्यामिक  
(= मध्यमिक) स्वविरके आचार्यत्वमें उपसपन्न (= मिथु) किया । उस समय कुमार  
पूरी बीस वर्षका था । उसी उपसपन्न-मंडकमें उसने प्रतिसंविद्-सहित अर्हत्-यद्वको पाया ।  
संघमित्रा राजपुत्रीकी आचार्या आयुषाद्या बेरी, और उपाध्याय धर्मपाद्या बेरी थी । उस  
समय संघमित्रा अठारह वर्षकी थी । दोनोंके प्रभावित होनेके समय राजाका अभियेक  
होने ४ वर्ष हो चुके थे ।

महेन्द्र स्वविर उपसपन्न होनेके बादसे अपने उपाध्यायके पास बस और विषयको  
पढ़ा करते दोनों संगीतियोंमें संगृहीत अद्रुकथा सहित विविदक और सभी स्वविर-बाद्  
(= बेरबाद्) को तीन वर्षके भीतर (ई. पू. १५५ तक) प्रह्वकर अपने उपाध्यायके एक  
द्वार मिथु सिध्दोंमें प्रभाव हुये । उस समय अशोक चर्मराजके अभियेकको नव वर्ष हो  
चुके थे ।

(उस समय) सैयिक (= र्वाहू) काम-सत्कार रहित जाने-डोकैके भी मुहताज  
हो काम सत्कारके बिना शासनमें प्रभावित हो, अपने अपने मतका प्रचार करते थे । प्रवृत्ता  
व पासेपर अपने ही सु बचकर कृपाण वस्त्र पहिन विद्वारोंमें विचरते उपोसधमें भी प्रवा  
रत्वमें भी संघकर्ममें भी घनकर्ममें भी प्रह्व हो जाते थे । मिथु उनके साथ उपोसध  
करी करते थे । तब मोमालिपुत्र स्वविरके—“अब वह विबाद् (= अधिकार) उत्पन्न हो  
गा, योकीही देरमें वह कठिन हो जायेगा, इसके बीचमें बाध करते इसे समय बड़ी किया  
या सकता — (सोचकर) महेन्द्र स्वविरको घन (= जमात) सपुद् कर रत्न सुखसे विह  
रनेकी इच्छासे ‘अहोरात्र-पर्यंतपर चले गये ।” उस समय अशोकाराममें छठ वर्ष  
(११८ ई. पू.) तक उपोसध नहीं हुआ ।

राजाने एक अमाल्यको आज्ञा दी—

“विद्वारमें जाकर अधिकार्य (= विबाद्) को प्राप्तकर, उपोसध करवाओ ।”

“तब वह अमाल्य विद्वारमें जाकर मिथु-संघको इकट्ठा करके बोका—

१ संघकता: इतिहासक पासका कोई पद्य ।

‘मन्ते ! मुझे राजाने उपोसथ करानेके किये भेजा है; जब उपोसथ करो।’

मिथुओंके कहा— ‘हम सैबिकोंके साथ उपोसथ नहीं करेंगे।’

अमात्यने स्वधिरासब ( = समापतिके आसब ) से लेकर सिर झरका शुरू किया।

तिप्य स्वधिरने अमात्यको बैसा करते देखा। तिप्य स्वधिर जैसे ठैसे नहीं थे। वह राजाके

एक मातासे जन्मे भाई तिप्य कुमार थे। राजाने अपना अभियेक करनेके बाद उन्हें बुधराज

पदपर स्थापित किया (था)। कुमार राजाके अभियेकके लीये वप (ई ९ १६१)

प्रमदित हुए थे। ‘‘ वह अमात्यको ऐसा करते देख स्वर्ष इसके समीपवाड़े आसनपर आकर

पैठ पड़े। उसने स्वधिरको पहिचानकर राज छोड़नेमें असमर्थ हो आकर राजाको कहा।’

राजाने उसी समय वद्वर्षमें आगकगी बैसा (हो) बिहारमें आकर स्वधिर मिथुओंको पूछ—

‘मन्ते ! इस अमात्यने बिना मेरी आज्ञाके ऐसा किया है वह पाप किसको कयोगा ?’

किन्हीं स्वधिरोंने कहा—

‘इसने तेरे बचनसे किया इसकिये पाप तुझेही कयोगा।’

किन्हींके कहा— ‘तुम दोनोंको यह पाप है।’

किन्हींने ऐसा कहा— ‘महाराज ! क्या तेरे चित्तमें था कि वह आकर मिथुओंको मारे ?’

वहीं मन्ते ! मैंने कुछ मनसे भेजा था कि मिथुसंब प्रकमत हो उपोसथ करे।’

‘वदि महाराज ! छत्र सबसे ( भेजा था ) तो तुझे पाप नहीं है अमात्य ( = अक्षर ) हीको है।’

राजा बुविष्यमें पढ़कर बोझ—

‘मन्ते ! हे कोई मिथु जो मेरी इस बुविष्याको छिन्नकर सासब ( = धर्म ) को

सँभाकनेमें समर्थ हो ?’

‘महाराज ! मोग्गळिपुत्र विस स्वधिर है वह तेरी बुविष्याको झरकर सासबको सँभाक सकते हैं।’

राजाने उसी दिन चार धर्म-कथिक ( मिथुओं ) को ‘‘ और चार अमात्योंको

( यह कहकर ) भेजा— ‘स्वधिरको लेकर जाओ। उन्होंने आकर कहा— ‘राज बुझता है।’

स्वधिर नहीं आये।

दूसरी बार राजाने आठ धर्म-कथिकों- और आठ अमात्योंको भेजा : ‘मन्ते !

राजा बुझता है’ कहकर कियाकाको। उन्होंने आकर बैसही कहा। दूसरी बार भी स्वधिर

नहीं आये। राजाने स्वधिरोंको पूछ— ‘मन्ते ! मैंने दो बार ( अधारी ) भेज स्वधिर क्यों

नहीं आते हैं ?’

‘महाराज ! राजा बुझता है कहनेसे नहीं आते। ऐसा कहनेसे आँगे— ‘मन्ते !

सासब ( = धर्म ) गिर रहा है सासबके सँभाकनेके किये हमारे सहायक हों।’

तब राजाने बैसाही कहकर सोझ धर्म-कथिकों और सोझ अमात्योंको भेजा।

मिथुओंको पूछ—

‘मन्ते ! स्वधिर महदपक है या नहीं उलके ?’ ‘मदपक ( = बुर ) है महाराज।’

‘मन्ते ! बाब या पाकड़ीमें चरेंगे ?’ ‘महाराज ! नहीं चरेंगे।’

“भन्ते ! स्वविर कहीं बास करते हैं ? ” महाराज ! तपाके ऊपरकी ओर ।”

राजाने ( बाँकरों को ) कहा—“तो भये ! नाकका बेड़ा बाँपकर उसपर स्वविरको बैठाकर दोनों तीरपर पहा रखा स्वविरको के बाजो ।” मिथुनों और जमातोंने स्वविर के पास जाकर राजाका संदेश कहा स्वविर चर्म-संज्ञ ( = चर्मपेकी जासनी ) केकर जाने हो गये । तब राजाने ‘देव ! स्वविर जा गये । सुनकर गंगातीर पर जा नहींमें उतर, बाँप भर पानीमें जाकर स्वविरकी ओर हाथ बढ़ाया । स्वविरने राजाको दाहिने हाथसे पकड़ा । राजाने स्वविरको अपने कंधाके ऊपर ले जा स्वर्गही स्वविरके पैर धो (तेकसे) मल पासमें बैठ अपनी दुबिधा कही—

“भन्ते ! मैंने एक आमात्वके मेजा कि बिहारमें जाकर बिबादको छाँटकर उपोसण करवाओ । उसमें बिहारमें जाकर इतने मिथुनोंको जानसे मार दिया । इसका पाप किते होगा ?”

“नया महाराज ! तेरे चितमें ऐसा या कि यह बिहारमें जाकर मिथुनोंको मारे ?

“नहीं भन्ते ? ” यदि महाराज ! तेरे चितमें ऐसा नहीं या तो तुझे पाप नहीं है ।

इस प्रकार स्वविरने राजाको समझाकर नहीं राजाघातमें साठ दिन बासकर राजाको (बुद्ध)-समथ ( = सिद्धान्त ) सिखाया । राजाने साठवें दिन अज्ञाकाराममें मिथु-सभके एकत्रित कर कन्धकी बहारदीवारी बिराकर कन्धके भीतर एक एक मतवाले मिथुनोंको एक एक बगह करवाकर एक एक मिथुसमूहके पुकारकर पूछ— ‘सम्बन्ध सजुद्ध किस बाद ( = मत ) के माननेवाले थे ?’

तब शाश्वतवादिने ‘शाश्वतवादी ( = निश्चयवादी ) कहा आत्मावन्तिकोंने आत्मावन्तिक जमराबिद्येपिक १ पहिलेकीसे सिद्धान्त जाननेसे राजाने—‘यह मिथु नहीं है अन्य तैन्निक ( = दूसरे पंथवाले ) हैं’ जानकर उन्हें सचेद बपड़े ( = सेतक ) देकर अ-मज्जित कर दिया । वह सभी साठ हजार थे । तब दूसरे मिथुनोंको पुकारकर पूछ—

‘भन्ते ! सम्बन्ध सजुद्ध किस बादको माननेवाले थे ?’

“ ‘विमज्जघादी’ महाराज ! ”

ऐसा कहनेपर स्वविरको पूछ—

‘भन्ते ! सम्बन्ध सजुद्ध ‘विमज्जघादी’ क्या ?’

‘हैं महाराज !’

‘भन्ते ! अब सासन सुद्ध है मिथु सर्व उपोसण करे । —कह राजाका प्रबन्ध कर गगामें चका गया ।

संघमें एकत्रित हो उपोसण किया । उस समाधममें मोगासिपुत्त तिस्स स्वविरके दूसरे बाहोंको मर्दब करते हुए “कथावस्थुप्यकरण्य” मापन किया । तब ( मोगा सिपुत्त स्वविरने ) मिथुनोंमेंसे एक हजार त्रिपिटक-निष्पन्न प्रतिसंविद्-भाण्ड बरिध

१ देखो पृष्ठ ३६१ व्याकरण चार प्रश्नोंमें ।

२ विमज्ज-पिटकके साठ प्रश्नोंमें एक ।

मन्ते ! मुझे राजाने उपोसथ करानेके लिये भेजा है, यह उपोसथ करो ।

मिथुओंने कहा—“हम लीकियोंके साथ उपोसथ नहीं करेंगे ।

अमात्यने स्वविरासन ( =सभापथिके आसन ) से डेकर सिर काटना शुरू किया । तिष्य स्वविरने अमात्यको बैसा करते देखा । तिष्य स्वविर जैसे ठैसे नहीं ये । वह राजाके एक मातासे बान्ने धाई तिष्य कुमार ये । राजाने अपना अधिपेक करपेके बाद उन्हे बुधराज पक्षपर स्थापित किया (या) । कुमार राजाके अधिपेकके चौथे वप ( ई ५ २११ ) प्रमथित हुए थे । वह अमात्यको ऐसा करते देखा स्वर्ष उसके समीपबाके आसनपर बाकर बैठ गये । उससे स्वविरको पहिचानकर ब्रह्म छोड़पेसे असमर्थ हो बाकर राजाको कहा । राजाने उसी समय यदुधमें आगकभी जैसा (हो) बिहारमें बाकर स्वविर मिथुओंको पछ—

‘मन्ते ! हम अमात्यने बिगा मेरी आज्ञाके ऐसा किया है यह पाप किसको करोगा ?’  
किन्हीं स्वविरोंने कहा—

“इसने तेरे पचनसे किया इसलिये पाप तुझेही करोगा ।’

किन्हींने कहा—‘तुम होनोंको यह पाप है ।’

किन्हींने ऐसा कहा— महाराज ! क्या तेरे बिलमें या कि यह बाकर मिथुओंको मारे ?’

नहीं मन्ते ! मैंने कुछ मपसे भेजा या कि मिथुसथ एकमत हो उपोसथ करे ।’

‘वदि महाराज ! कुछ मन्ते ( भेजा या ) तो तुझे पाप नहीं है अमात्य ( =अधर )  
हीको है ।

राजा बुबिषामें पक्षर बोला—

मन्ते ! दी कौई मिथु जो मेरी इस बुबिषाको छिन्नकर सासन ( =धर्म ) को सँभाकनेमें समर्थ हो ?

महाराज ! मांगल्लिपुत्र विस्स स्वविर है, वह तेरी बुबिषाको करकर सासनको सँभाक सकते हैं ।

राजाने उसी दिन चार धर्म-कथिक ( मिथुओं ) को और चार अमात्योंको ( यह कहकर ) भेजा—‘स्वविरको डेकर जाओ । उन्होंने बाकर कहा— राजा बुधराज है ! स्वविर नहीं जाये ।

दूसरी चार राजाने आठ धर्म-कथिकों -- और आठ अमात्योंको भेजा : ‘मन्ते ! राजा बुधराज है कहकर किताकायो । उन्होंने बाकर दैतेही कहा । दूसरी चार भी स्वविर नहीं भये । राजाने स्वविरोंको पूछा—‘मन्ते ! मैंने दो चार ( भावनी ) भेजे स्वविर क्यों नहीं आते हैं ?’

‘महाराज ! राजा बुधराज है कहनेसे नहीं आते । ऐसा कहनेसे आते—‘मन्ते ! सासन ( = धर्म ) गिर रहा है सासनके सँभाकनेके लिये हमारे सहायक हों ।

एक राजाने पैसादी कहकर छोकर धर्म-कथिकों और छोकर अमात्योंको भजा । मिथुओंको पूछा—

‘मन्ते ! स्वविर मदलक है या नई उग्रके ? ‘मदलक ( =धर ) है महाराज ।’

‘मन्ते ! पाप या पाकधीमें चले ? ‘महाराज ! नहीं चले ।

“मन्ते ! स्वविर कहाँ वास करते हैं ?” “महाराज ! गंगाके ऊपरकी ओर ।”

राजाके ( नीकरोँ को ) कहा—“तो मन्ते ! नाचकर बेरा नाँपकर उसपर स्वविरको कैठाकर दोनों तीरपर पहरा रखना, स्वविरको छे जाओ । मिथुओं और जमातोंमें स्वविरके पास जाकर राजाका संदेश कहा स्वविर चर्म-संड (=चर्मपैड़ी वासवी) केकर बाड़े हो गये । तब राजाके ‘देव ! स्वविर आ गये । सुनकर गंगातीर पर आ नदीमें उठर नाँप मर पायीमें जाकर स्वविरकी ओर हाथ बढ़ाया । स्वविरने राजाको दाहिने हाथसे पकड़ा । राजाने स्वविरको अपने उपानमें लिबा छे आ स्वर्मही स्वविरके पैर धो (तेरसे) मर पासमें कैद बनवी बुधिवा कही—

“मन्ते ! मैंने एक अमात्यको भेजा कि बिहारमें जाकर विषादको शांतकर उपोसथ करवाओ । उसने बिहारमें जाकर इतने मिथुओंको जानसे मार दिया । इसका पाप किसे होगा ?”

“क्या महाराज ! तेरे पिछमें ऐसा था कि यह बिहारमें जाकर मिथुओंको मारे ?

“नहीं मन्ते ?” “बदि महाराज ! तेरे बिचमें ऐसा नहीं था तो तुझे पाप नहीं है ।’

इस प्रकार स्वविरने राजाको समझाकर यहीं राजोपानमें साठ दिन बासकर राजाको (बुद्ध)-समथ (=सिद्धान्त) सिखवाया । राजाने सातवें दिन अशांकराज्यमें मिथु-संधको एकत्रित कर कन्यतकी चहारदीवारी घिरवाकर कनातके भीतर एक एक मठवाके मिथुओंको एक एक बाह करवाकर एक एक मिथुसमूहको बुझवाकर पूछा—‘सम्बन्ध संतुद्ध किम बाद (=मठ) के माननेवाले थे ?’

तब सान्त्वनादिधर्मने ‘शांत्वनादी (अविल्वता-यादी) कहा आत्मानन्तिकमेंने आप्मानन्तिक अमराधिकेपिक १ पहिछेदीसे सिद्धान्त जाननेसे राजान—‘बह मिथु नहीं हैं अन्व ऐतिक (=दूसरे पंक्तवाक) हैं जानकर उन्हें संध्य कपड़े (=सतक) देकर अ-ममजित कर दिया । वह समी साठ हजार थे । तब दूसरे मिथुओंको बुझकर पूछा—

‘मन्ते ! सम्बन्ध संतुद्ध किम बादको माननेवाले थे ?’

“‘विमन्ययादी महाराज !”

ऐसा कहनेपर स्वविरको पूछा—

मन्ते ! सम्बन्ध संतुद्ध ‘विमन्यवादी थे ?’

हैं महाराज !

‘मन्ते ! जब शासन सुद्ध है मिथु संघ उपोसथ करे ।’—कह राजाका प्रवन्ध कर नवरमें चका गया ।

संबने एकत्रित हो उपोसथ किया । उस समागममें मोगासिपुत्र तिस्स स्वविरने दूसरे बाँहोंको मर्वण करते हुने “कथायत्थुप्यकरण” आप्ण किया । तब ( माया किपुत्र स्वविरने ) मिथुओंमेंसे एक हजार त्रिविदक-विज्जात प्रतिबंधित्-व्यप्यत ईविच-

१. देखो पृष्ठ २११ व्याकरण चार प्रश्नोंमें ।

२. अविधर्म विदकके साठ प्रश्नोंमें एक ।



मिथुनोंको चुनकर, महाकाश्यप स्वविरकी भौति बह स्वविरकी भौति धर्म और विवदका सहायक किया। इस प्रकारसे धर्म और विवदका सहायककर सभी सासव-भक्तों (= धर्मकी मित्रावत) को सोचकर (ई पू. १४८में) तृतीय पञ्जीतिको किया। यह पञ्जीति भी मासमें समाप्त हुई।

×                      ×                      ×                      ×

( १४ )

स्वविर-वाद-परम्परा । विदेषमें धर्म-ग्रन्थार । सासवर्णी द्वीपमें महेन्द्र ।  
त्रिपिटकका लेख-बद्ध करना । (ई पू २६०-१) ।

यह आचार्य परम्परा है ।

( १ ) दुर्गा, ( २ ) उपासी ( ३ ) दासक ( ४ ) सोचक ( ५ ) सिन्धुव और ( ६ ) मोगासिपुत्र तिस्र बह विवदी है। श्री जगद्वीपमें तृतीय संगीति तक इस बद्ध परम्परासे विवद आया। तृतीय संगीतिसे आगे इसे इस (संका) द्वीपमें महेन्द्र आदि काये। महेन्द्रसे सीचकर कुछ काकतक अरिष्ट स्वविर आदि द्वारा चला। इनसे उनके ही सिन्धुवकी परम्परावासी आचार्य परम्परामें ब्यक्तक (विलय) आया। जैसा कि पुराणे (आचार्य) ने कहा है—

‘तब ( ७ ) महिन्द्र इन्द्रिय उत्तिय सबक और यह वह ‘महामन्त्र बंधुर्नि ( = भारत) से पर्वो अये। उन्होंने तन्त्रपत्नी (—तासवर्णी = बंधक) द्वीपमें विवद-पिटक बंधाया ( = पनाया) पाँच मित्रावतों (—द्वीप आदि) की पद्मपा और सात प्रकृतों ( = धर्म संवली आदि सात अमिधर्म-विरुद्धी पुस्तकों) को भी। तब आर्य ( ८ ) सिन्धुवत ( ९ ) काक सुमन ( १० ) दीर्घ स्वविर ( ११ ) दीर्घ सुमन ( १२ ) काक सुमन ( १३ ) वाग स्वविर ( १४ ) दुर्गासिध ( १५ ) सिन्धु स्वविर ( १६ ) देव स्वविर ( १७ ) सुमन, ( १८ ) बृक वाग ( १९ ) धर्मपासित ( २० ) रोहन ( २१ ) अम ( = अम ) ( २२ ) उपतिथ ( २३ ) पुंस ( = पुण्य) देव ( २४ ) सुमन ( २५ ) पुण्य ( २६ ) महासीव ( = अधिष) — ( २७ ) उपासी, ( २८ ) महाभाग, ( २९ ) अमप ( ३० ) तिथ ( ३१ ) पुण्य ( ३२ ) बृक अमप ( ३३ ) तिथ स्वविर ( ३४ ) बृक देव ( ३५ ) सिध स्वविर इस महाभाग विवदका मार्ग-बोधिदोहे, तासवर्णी द्वीपमें विवद पिटकको प्रकासित किया।

( विदेशमें धर्म-ग्रन्थार । )

‘मोगासिपुत्र स्वविरने इस तृतीय संगीतिकी (समाप्त) कर (ई पू. १४८ में) सोचा’ “कैसे प्रत्यन्त ( = सीमांत) देशोंमें सासव ( = धर्म) सुमतिष्ठित ( = विर

१ समस्त पासासिध ( भारतम् ) । २ समस्तपासासिध ( भारतम् ) ।

एकधी) होता।" तब उन्होंने उन उन मिथुभोंपर (इसका) धार देकर उन्हें वहाँ वहाँ भेज दिया।

मध्यातिक (=महातिक) स्वविरको कश्मीर और गम्धार<sup>१</sup> राजमें भेजा।

महादेय स्वविरको 'महिस्तकमण्डलमें।

रक्षित स्वविरको 'धनयासीमें।

योगक (=बबक) धर्मरक्षित स्वविरको बपराम्तमें।

महा-धर्मरक्षित स्वविरको महाराष्ट्रमें।

महारक्षित स्वविरको 'भोजक (=बबक) कोकमें।

मरथम (=मक्षिम) स्वविरको हिमबाम् (=हिमाकप) प्रदेशमें।

सोणक धार उत्तर स्वविरको 'सुयर्जमूमिमें।

'महिन्द्र (=महेंद्र) स्वविरको इन्द्रिय उत्तिय संवल, महसाल (=मज्जाक) के साथ ताम्रपत्रों द्वीपमें भेजा।

वह भी उन उन विद्याओंमें अने (चार नूसरे तथा) स्वयं पाँचों होकर गये क्योंकि प्रवृत्त (=स्तीमान्त) देशोंमें उपसंपदाके किये पंचवर्गावयव पर्याप्त होता है।

ताम्रपत्रों (=लंका) द्वीपमें महेंद्र

महेंद्र स्वविरने इन्द्रिय आदि स्वविरों संघमित्राके पुत्र सुमन नामने तथा मंडुक उपासकके साथ अशोकारामस निकक कर राजगृह नगरक धरे वृक्षिणागिरि क्षेत्रमें चारिका करते छ मास बिता दिया। तब कर्मशा: माताके विधास रबाव 'यिदिशा (येदिस) नगर पहुँचे। अशोकने कुमार होते बच (इस) देश (क सासन) पाकर उत्सयिनी आते हुए यिदिशा नगरमें पहुँच देशभे स्त्रीकी कम्बाको प्रहण किया। उसने इसी दिन (ई. पू. २८) गर्भ धारण कर उत्सैममें आकर पुत्र प्रसव किया। कुमारकं चावृहर्षे वर्षमें राजाके (राज्य) अधिपक पावा। उन (महेंद्र) की माता उस समय पीडरमें बास करती थी। स्वविरका आये देख स्वविर-माता ब्रुवीने पैरोंका धिरसे बन्ना कर, मिष्टा प्रदायकर स्वविरको अपने बगबावे वैदिशा-गिरि महाविहारमें बस करावा। स्ववि रने उस विहारमें बैठे बैठे सोचा—'हमारा पहाँ क्य कार्य उत्तम हो गया अब ताम्रपत्रों द्वीप जानेका समय है। तब सोचा—तब तक व्यान्त-प्रिय तिष्यको मरे पिताका भेदा (राज्य) अधिपेक पा कबेहो धार कृक माम और वही बास किया। ज्येह वृत्तिमाके दिव अनुराचपुरकी कूर्व-दिशामें मिश्रक पयस पर (आ) रिपत हुये जिसको कि आजकल वैरय-वर्षत श्री करते हैं।

इन्द्रिय आदिके साथ आयुष्मान् महेंद्र स्वविर सम्बन्ध-संशुद्धके परिविच वयं २३ वर्षे

१ वेद्याधरके ब्यसपासका प्रांत। २ महंधर (इन्द्र-राज्य) से कपर का प्रांत जो कि विष्णुकक धार सतपुत्राकी पर्वत-आकारोंके बीचमें पड़ता है। ३ उत्तरी-कम्परा किका (बंबई प्रांत)।

४ वर्षेशके मुद्दासे बबह तक कंका पश्चिमीबादधी पहाड़ियोंक पश्चिमका प्रांत।

५ पूनामी राजाओंके देश—बाष्टीक(बान्द्रका),सिरिवा मिश्र पूनाक आदि। ६ वेगू(बमंग)।

( ई. पू. २७० ) में द्वीपमें आकर स्थित हुए । सम्यक्संभुद अज्ञात-राज्यके आर्योंने वर्ष ( = ७८१ ई. पू. ) में परिवर्तनको प्राप्त हुए । उन्हीं समय सिद्धकुमारके पुत्र; ताक्षणी द्वीपके अधिराज्य विजयकुमारके इस द्वीपमें आकर मनुष्योंका शास करवा । अम्बुद्वीपमें उद्यमद्रके चौदहवें वर्ष ( ई. पू. ७७५ ) में विजयकी शक्त हुई । उद्यमद्रके पन्द्रहवें वर्ष ( ई. पू. ७७४ ) में पाण्डु वासुदेवने इस द्वीपमें राज्य पाया । मागदास राजाके बीसवें वर्ष ( ई. पू. ७५५ ) में पाण्डु वासुदेवने क्रांति किया । उसी वर्ष अम्बुपने इस द्वीपमें राज्य पाया । वहाँ ( अम्बुद्वीपमें ) शिशुनाग राजाके सत्रहवें वर्ष ( ई. पू. ३०४ ) में वहाँ ( अम्बुद्वीपमें ) अमय-राजाको ( राज्य करते ) बीस वर्ष पूरी हो चुके थे । तब अम्बुके बीसवें वर्षमें पञ्चमद्रक अमय नामक दामरिक्(अधिराज)ने राज्य क किया । वहाँ क्रास-अशोकके सोलहवें ( ई. पू. ३०० ) वर्षमें वहाँ पञ्चमद्रकके सत्रह वर्ष पूर्णहुये । वह बीसवें एक वर्षके साथ अन्तर्गत होते हैं । वहाँ अम्बुद्रगुप्तके चौदहवें ( ई. पू. ३० ) वर्षमें वहाँ पञ्चमद्रक-अमय मर गया; (और) मुद्रसीयने राज्य पाया । वहाँ अशोक चर्मराजाके सत्रहवें ( ई. पू. २७८ ) वर्षमें वहाँ मुद्र-सीय राजा मर गया; और अम्बुनामिय तिप्यने राज्य पाया ।

मागदासके परिवर्तन ( ई. पू. ७८३ ) के बाद अज्ञातराज्यमें चौबीस वर्ष ( ई. पू. ७५९ तक ) राज्य किया उद्यम-अद्र सोलह ( ई. पू. ७४३ तक ) अनुसुय और मुद्रक ( ई. पू. ७३९ तक ), मागदासके चौबीस ( ई. पू. ७१५ तक ) शिशुनाग अन्तर्गत ( ई. पू. ३९३ तक ) उसका ही पुत्र अशोक अद्रगईस ( ई. पू. ३९५ तक ), अशोकके पुत्र दश माई राजा बार्स वर्ष ( ई. पू. ३७३ तक ) राज्य किये । उनके पीछे नौ मद्र मी बार्स ही ( ई. पू. ३६३ तक ) । अद्रगुप्त चौबीस वर्ष ( ई. पू. ३२० ), यिन्नुसार अद्रगईस वर्ष ( ई. पू. ३१५ तक ) उसके पीछे अशोकने ( ई. पू. २९९ में ) राज्य पाया । उसके अधिन ( ई. पू. २९५ )से पहिले आर्यवर्ष ( हो जाने से ) अम्बुद्रगुप्त अन्तर्गत वर्ष ( २७० ई. पू. ) में महेन्द्र स्विर इस द्वीपमें आ उपस्थित हुए ।

उस दिन ताक्षणी द्वीपमें स्पेड-मूक मद्रक ( = अस्तव ) था । राजा अमालोको— 'अस्तव ( = मद्रक ) की घोषणाकरके खीना करो—कह चौबीसवें हजार पुरुषोंके साथ अम्बुद्रगुप्तके अशोकके वहाँ 'मिद्रकपर्यंत है वहाँ सिंकार केकनेके किये गया । तब उस वर्ष तक ही अधिराज्यकी देवता राजाका अधिराज्य प्राप्त करानेकी इच्छासे रोहित युगका रूप धारण कर पासहीमें आद्य-पत्ता जाती सी स्थितिमें लगी । राजाके देवद्वार—'मद्रकमें हम समय मारना अच्छा बड़ी है—(सोचकर) तापी पीठी । युग अम्बुद्रगुप्त ( = अम्बुद्रगुप्त ) के मार्गके अधिन लगा । राजा पीछा करते हुए अम्बुद्रगुप्त पर आ गया । युग की स्वर्णोंके करीब आ अम्बुद्रगुप्त होयवा । महेन्द्र स्विरने राजाका पासमें आते देखकर "कहा—

'तिप्य ! तिप्य ! वहाँ आ ।

राजाके सुनकर घोषा—'इस द्वीपमें देवा हुआ (कोई) मुझे 'तिप्य नाम लेकर बोले की हिममत करनेवाला बड़ी है; यह तिप्य-मिद्र-पटपारी मकिल-कापाप-बसनी पुत्रव मुझे कम लेकर पुत्रवता है । वह कौन होगा मनुष्य है वा अमनुष्य ? स्वविरक कहा—

१ वर्तमान मिद्रिन्वके ( सीकोव ) । २ मिद्रिन्वकेपर एक स्वयं बड़ापर लव की कल नामका रूप है ।

“महाराज ! हम धर्मराज ( उड्ड )के आशक्त अमन्य हैं । तेरेहीपर कृपाकर, अन्धद्वीप से बर्हो जाये हैं ॥”

उस समय अशोक धर्मराज और वेद्यानाप्रियतिप्य बरह-मित्र थे । उसी महाराज उस दिवसे एकमास पूर्य अशोक राजाके भेजे अमियेकडे अमियेकडे हुआ या ईश्याक पुर्मिमाको उसका अमियेक किया गया था । उससे हाकडीमें खबर सुनी थी । ( उड्ड )आसबके समाचारको मारकर, ( वह ) स्वविरके उस बचक को सुब— जाय था गये ।’ ( वाग ) उसी समय इधियार रककर संतोदन कर एक और बंड धना । बर्ही चौवाकिस हजार पुरुष आकर उसे घेरकर कड़े हो गये । तब स्वविरने दूसरे छ तनोंको भी दिखवाया । राजाने रककर पूज—

‘यह क्व जाये ?’ “मेरे साथ ही महाराज ।

“इस बच उन्धद्वीपमें और भी इस प्रकारके अमन्य हैं ?”

“हैं महाराज ! इस समय अन्धद्वीप काण्डपसे जयमथा रहा है ।

( तब ) स्वविरने राजाकी प्रथा पांडित्यकी परीक्षाके किये पासके अग्रदृष्टके विषयमें पथ पूज—

“महाराज ! इस बुरसका नाम क्या है ?” “आमक बुर है मन्ते !

“महाराज ! इस आमको छोड़कर और भी आम है वा बर्ही ?

“मन्ते ! और भी बहुतसे आमके बुर हैं ।

“इस आम और अब आमोंको छोड़कर और भी बुर हैं वा बर्ही ?

“हैं मन्ते ! लेकिन वह आम बुर नहीं ( न-आम-बुर ) हैं ।

“दूसरे आम और न-आम-बुरोंको छोड़कर और भी बुर हैं ?

“मन्ते ! वही आम बुर है ।

“साधु महाराज ! तुम पंडित हो ।

तब स्वविरने—‘राजा पंडित है धर्म समझ सकता है’ ( सोचकर ) ‘बुस-हरिय फुपोपम-दुक्त’ का उपदेश किया । कबाके अन्तमें चौवाकिस हजार आदमियों सहित राजा सीनो धरनोंमें प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय अनुभावेसीने प्रमदित होनेकी इच्छासे राजाको कहा । राजाने उसकी बात सुनकर स्वविरको कहा ।

“महाराज हमें थिचोंको प्रमथा देना बिहित नहीं है । पाटमिपुयमें मेरी भगिनी संघमित्रा धेरी है उसको बुकाओ । महाराज ! ऐसा पत्र भेजो, जिसमें संघमित्रा बोधि ( अथोकाकाके पीपककी संतति ) को छोड़ जाये ।

महाबोधि गङ्गामें नावपर रककर किष्कटकीको पारकर सात दिनोंमें ‘सात्र मिसिमें पहुँची । सारसीप मासके प्रथम प्रतिपके दिन अशोक धर्मराजने महाबोधिसे ब्रह्मकर, यके तक पानीमें आकर नावपर रख संघमित्रा धेरीको भी अनुचर सहित नावपर चम ( दिया ) । सात दिन नागराजोंने पूजाकर फिर नावमें रख दिया । उसी दिव

नाथ जम्बुकौल-पट्टपर पहुँच गई। । तब बीजे दिन महाबोधिको डेकर अनुराधपुर  
पधे । । अनुसात्रेयी ( राज-मंगली ) पाँच सौ कम्पाओं और पाँच सौ अंतापुरकी किराँते  
साथ सबमिथा बेरीके पास प्रकलित हुई। । राजका मोजा करिए भी पाँचसौ पुस्तके  
साथ स्वधिरके पास प्रकलित हुआ ।

त्रिपिटकका लेख-बन्द करना ।

( वट्ट-गामनीके सासककाक ई ९, २०-१ ई में) त्रिपिटककी पाकी (= पंक्ति )  
और इसकी अक्षरका त्रिंसे पूर्वमें महामति मिस्तु कंठस्थ करके से जाने से प्राक्पिठकी  
( स्मृति- ) हाकि देखकर मिश्रुओंसे पश्चिम हो धर्मकी विरश्चितिके किये पुस्तकमें  
लिखाया ।<sup>१</sup>

॥ इति ॥

## मूल ग्रन्थोंकी सूची

मंगुत्तर-निकाय । (अं. वि., सुत्त-पिटक) ।

७३, ७५ १२८ १३५, १३८ १७७  
२३३, २३५, २४२, २७१ ३१५,  
३२८ ३४ ३६१ ४१ ४३६ ।

मंगुत्तर-निकाय-अट्टकथा । (अं. वि. अ.  
क) ३८ ४५ ५४ ५५, ७ ७६,

१ ३ १३७ १५८ २४२ २४८  
२६७ २७६ २७८ ३ ५ ३१४,  
३१५, ४३६ ।

मपवान धेरी (सुरक-निकाय सुत्त-पिटक) ।  
३४ ।

उदान (सुरक-नि सुत्त) । १७, १७६  
३३८ ३६८, ३७२ ३८२ ४ ६ (४९९) ।

उदान अट्टकथा । ५४, ३३९ ३७६ ३७९,  
४ ६ ४९१ ४९६ ।

शुद्धिबन्ना (सु. व., विषय-पिटक) । ५४  
५६, ६३, ७३, ७६, ८६ ८७ २३७  
२४०, २४३ २४८ ३१८ ३९८  
३९९ ४ २ ४४९, ५११ ५१८ ।

आतक अट्टकथा । (अ. अ., सुरक  
सुत्त) १ ६ २८ ३३, ५१ ५३,  
५४, ६ ।

धेरगाथा अट्टकथा (सुरक, सुत्त) । ३८ ।

दीप निकाय (दी. वि., सुत्त) । ११  
१२, १७५ १८९, १९५, २१६,  
२२४ २२८ २५७ (सिमाओवात्  
सुत्त) ४२६ ४८४ ।

दीप-निकाय अट्टकथा (दी. वि. अ. क.) ।  
१९५, २ १ २ ३, २२१ ४२६  
४३७ ४५९ ४६१, ४८४ ४८५, ४९३,  
५ ५ ४ ५१ ।

धम्मपत् अट्टकथा (ध. प. अ. क., सुरक  
सुत्त) । ७६ ८ १४२ २३४ ३३६  
३१७ ४४ ४८२ ।

धम्मसंगणी (अधिषम्म-पिटक) । (८३) ।

पायजिका (विषय-पिटक) । १२ १३१  
१३५, २८८ २९३ २९६ ।

पायजिका-अट्टकथा (समंतपासादिका) ।

२८१ २९१ २९३, २९३ २९५,  
५१८ ५२८ ५३६ ।

मज्झिम-निकाय (म. वि., सुत्त) । ५९,  
६१ ७१ ९२ १४५, १५ १६३,  
१६७ १७२ २ ६, २ ७ २१२  
२३१ २३८ २४३ २४८ २६३  
२६९, २७२ ३१९, ३२९ ३४३  
३७३ ३७५, ३७७ ३८४ ३९४  
४११ ४१४ ४२४ ४४ ४४  
४४७ ।

मज्झिम-निकाय अट्टकथा (म. वि. अ.  
क) ७१ २ ९, ३५३ ३६४ ३१६  
३४७ ३७५, ३७६ ३९३ ३९४  
३९५ ४१३ ४४७ ४४८ ४५ ।

महायन्मा (म. अ. विषय-पिटक) । २२  
२३ २४ २५ २७ २८, ३ ३३,  
३३ ३६ ४७ ५, ५४ ५७ ९१  
९७ १ १४१ १४३ २७८, ३१७  
३७ ।

महायन्मा अट्टकथा (समंतपासादिका) ५१  
५४ ९१ २७९ २८७ ३ ५ ।

महाबल । ५४ ।

यमक (अधिषम्म-पिटक) (५२०) ।

संयुत्त-निकाय (सं. वि., सुत्त-पिटक) ।  
२२, २३ २७ ३२ ४३ ६३, ८५,  
८६ ९८ १ ३ १ ५, १ ७ १७४  
२७५, ३६३ ३६४ ३६६ ३६८  
३७२ ३७६, ३७९, ३८४ ३९९,  
४ १ ४ २ ४ ९ ४ ९ ४३३,  
४१४ ४७७ (४८९, ४९५) ४८३

संयुत्त-निकाय अट्टकथा । ३८ ३६१,  
३६४ ३७२ ३७६ ३८ ३८४  
४ २ ४ ९ ४ ७ ४८३ ।

सुत्त-निपात (सुरक सुत्त) । १ ८,  
१५ ३४ ३४९ ३६४ ।

सुत्त-निपात अट्टकथा । १ ८ ३४९ ३४९ ।

## नामानुक्रमणी

अक्षरप्रमेद । लिखासाध १९० १९६ ।  
 अमालपुर । ( नगर ) । ५१८ कातपुर वा  
 चण्डपुर त्रिकोर्ने थोरै रवाव ।  
 अमगाएव चैय ) १७२ पंचाक देसके आकवी  
 नगरमें ।  
 अग्निप्रज्ञा । भिक्षु, असोकका नामा ५३३ ।  
 अंग । देश । ३ (उत्प्रेयके समीप), ५२  
 २२४ भागकपुर मुंगेर त्रिकोर्ने गंगाके  
 दक्षिणका भाग । ३३४ ( में लंपा )  
 ३३९ ( में अचपुर ) ।  
 अंगमाप्यवक । २२० अंपानिवासी सोबईव  
 भाषणका भाषा ।  
 अंग मगध । ७८ (-का बेरा ३ बोझका)  
 अंगिरा । संवकपो कृषि । १५५, १९,  
 २४२९ ।  
 अंगुस्तर निकाय । ( बेसो प्रप-सूची ) ।  
 अंगुस्तराप । ( भावकपुर मुंगेर त्रिकोर्ने  
 गंगाके उपरका भाग ) १७४ १७५,  
 १५ ( में भाषण ) ।  
 अंगुस्मिमाळ । १९५ ( के प्रपुद्गमकार्य ३  
 योजना ) । ३७३ ३७९ (दृष्ट उपरेष) ।  
 ३७५ ( गार्थ्य मैत्रापभीपुत्र ) ३७०  
 ( दक्षिणमें शिक्षा ) ।  
 अशिरवतीस्वी । रापसी । १७५ (-का  
 इद्रम ) १८९ ( मकसाकके पास )  
 १९२ २११ २१३ (आकलीके पूर्वद्वारके  
 समीप), ४४४ ( में विहृदभका स-सैव  
 कृष्या ) ।  
 अज्जपाक वृक्ष । १८ बोधिर्मंडपर ।  
 अज्जानकनु । ३९९, ४ ( वैषदचकी राक-  
 में ) ४ १ (पितृहत्याका प्रथम), ४ ९  
 ४१ ( प्रसेपजिप्ते बुद्ध ) ४२० ३६  
 (-राजा-भागाकके उपरेष) ४३६ (उपा

सक), ४३६ ( पितृहत्याके द्विजे वाजा-  
 चाप ) ५३६ ( प्रसेपजिप्ते सीर  
 द्विपा ) ५४ ( वि-हृदम पर चार्हीकी  
 तपवारी ) ४८४ ( अमीपर चार्हीकी  
 हृष्य ) ५ २५१ ( बुद्ध घातके  
 पाला ) ५१ ( राज्य ४६५ बोझमें )  
 ४१६ ( घातुविधान कवधाना ) ५१३,  
 ५३८ ( विर्वाकके बाद २४ वर्ष राज्य  
 करया ) ।

अजित केश-कंबल । [अजित केश-कंबल] ।  
 ७६ ( गणपकार्य, तीर्थकर ) ८५, ८९  
 २४९ (आकलीके अगतकृत) २२० (उ  
 पकेरवासी) ४१

अजित माणक । ३५१ ( पावरिक द्विप )  
 ३५३ (-मानवका प्रथ) ।

अजित भिक्षु । ५२३ ( द्वितीय संघीतिमें  
 आसन विज्ञापक ) ।

अट्टक [ अट्टक ] । संज्ञ-कृती कृषि १५५,  
 १९ २३, २९, ३६१ ।

अट्टक-वसिष्ठा । ३७९, ३० (उद्गम ५१९  
 में स्मृत) ।

अनवतसवह । ३ ८३ ( मानसरोवर )  
 १७५ ( पूर्व चूकोके बीच ) ।

अनवतससर । वैशो मकसतसवह ।

अनाथपिण्डक । ९३ ( प्रथम दर्शन ) ९४  
 (सुषुच) १ ४३९ ( आकलीकासी  
 सुमन अहीका पुत्र नाम सुषुच) ।

अनाथपिण्डक कृष्ण-८२ ( आकलीकासी )  
 अजुगारवरवर । ३४८ ( प्रसिद्ध परिभाषक  
 राजपुद्गमें ) ।

अजुराघपुर । कंधमें । ४ ३०२ ( बीह  
 मासाव ) ५ (अकक लपी राजमाठा  
 विहार धूपाराम दक्षिणद्वार) ५३० ।

अनुसुन्द । आचक । ५५ ६ ( महाभारत  
 धारण्यका अनुसुन्द प्रमत्या ५६ ६६  
 (मन्त्रकपात्रमें) ८५ (अमरकार) ९३  
 (प्राचीनवर्षसहायमें लम्बिय क्यदिके  
 साथ) ९४-९७ १ १ (१२ प्रभाव  
 आचकोंमें अहम) ३८३ ४१३ (दिग्ग  
 क्युक्त) ४३६ (अधिकवस्तु वासी  
 भयवाक्यके अथा असुतीदलके पुत्र)  
 ४८ ५ ६ (निर्वाणके समथ) ५ ८  
 (राजा) ४२८ (महामुण्डका पुत्र आर  
 वातक) ५३८ (अक्षयभद्रका पुत्र आर  
 वातक) ।  
 अनुसादेयी । मिथुनी । ५३९ (देवानां  
 मिथ तिप्पकी मगिनी संधमिवाणी  
 सिध्या) ।  
 अनूपिया । कर्वा । १२ (राजगृहस ३  
 बोधन) ५५ (मन्त्रवेदामें धारण्यदेससे  
 बन्धीक अहाँ अनुसुन्द आदि प्रवर्जित  
 हुये) ४३७ (इष्य मन्त्र-पुत्रकी कम्म  
 मृमि) ।  
 असोमा । बही । ११ १९ (औमी बही,  
 जि गोरकपुर) ।  
 अन्तिम मंडल । प्रदेश (अंतवम वाराणसी  
 गया, वैद्याकी जिद्यम हिं) । १ ७  
 (३ बोधन बदा) ।  
 अंधक । वाति देस । ३५ (अहमक  
 क्यदिकके राजा अंधक थे) ।  
 अंधकविन्द । ग्राम । ३१३ (राजगृहके  
 पास मगवर्षमें) ।  
 अपराजित । (आसन) । १५ (अधि  
 मंडपर) ।  
 अपरास्त । देस (अम्बई नगर नर्मदा  
 पश्चिमीघाट पश्च और समुद्रस जिरा) ।  
 ५३७ (में प्रचारक बालक अर्मरहित) ।  
 अपरास्त । सूना—। ३७६ (अप्य और

सूरतके जिले बही जो अपरांत) ३७७  
 (में अक्षय्य पर्वत, समुद्रगिरि बिहार  
 मातुगिरि, मंजुक्यराम सचबद्ध-पर्वत,  
 नर्मदा बहीके तीर पद्-बैल्य) ।  
 अप्यमात्र्यम्मा । ५३१ (अम्मपद्में) ।  
 अम्महृत्प-पर्यंत । ३७ (सूनापरांतमें) ।  
 अम्भय । रावा । ५३७ (सिंहकराजा बाग  
 वासक्य समक्यअवेय) ५३८ ।  
 ,, । एबिर । (सिंहक) ५३६ ।  
 सूत—(एबिर सिंहक) ५३६ ।  
 अमपरातकुमार । २७९, २८१ २८२  
 (बीचकके पोपक) ४२७ ४३६ (जागृ  
 पुत्र द्वारा आच्छार्थक किय प्रप्लि  
 अयासक) ।  
 अमिधर्म पिटक । (अमिधर्मपिटक) । ८९  
 (अ अउदेस अचकिंशकोकर्म) ८१  
 ५३६ (सात मकरन—१ अम्मसंगनी  
 १ विमत्त ३ पुम्भकपम्भति ४ धातु  
 कवा ५. पद्मान, ६ पमक ७ कमा  
 बन्धु) ।  
 अमिनिज्जमय । ७ बुद्धका गृहत्वात् । ९  
 १ ।  
 असुतीदल । लालन । ३१४ (आमन्दका  
 विता) ।  
 अम्बट्ट । अम्बट्ट भी देखो । १९ (अम्बट्टाक  
 स्वामी पाण्डरसातिका सिध्द) ।  
 अम्बत्थल । ५३८ (अम्बट्ट मिधक-पर्वत  
 पर) ।  
 अम्बपासी । २७८ (वैद्याकी गलिध) ।  
 ४९४ (अम्बट्टे विमन्त्रण, अम्बट्ट)  
 ४९५ (वगीथेका दान) ।  
 अम्बसङ्घिका । ९१ (राजगृहमें) ।  
 ,, । ९१६ (आगुमत्तमें) ४९  
 (अ सिध्दवा जिजा पट्या) ५१३  
 (में राजागारक) ।



अभ्युदय । ११५ ( देवकी का वृद्ध ) ।  
 अभ्युदयिका । ५३ ( = अभ्युदयाणी ) ।  
 अरुणि । १ ९ ( मारकण्ड्या ) ।  
 अरुणित । ५३९ ( देवानाम्पिब सिध्दिक मीमा  
 मित्तु ) ।

अरुणिक [ आरुणिक ] । ३५ ( गोदावरीके  
 पास वर्तमान श्रीरंगनाथ द्विक,   
 देवनाथ ) । ३५२ ( न्याय जिससे उत्तर  
 प्रतिष्ठान ) ।

अरुणिकप । ५०९ ( के पुक्ति अत्रिभ ) ।

अरुणित-वृक्षिणपथ । ३८८ ३७१ ( में कम  
 मिष्ठु ) । ४०३ ।

अरुणित ( वृद्ध ) । ३९८ ( माकना कर्त  
 कुराधर्म प्रपातपर्यंत का ) ३०१ । ४३६  
 ( अम्बनी ) ४३० ४४ ( में कुराधर्म ) ।

अशोक । ५११ ( विमलास विमलसती ) ।  
 ५३ ( तिल सहोदर विदुमार-पुत्र अरुणे  
 ९८ माहर्षिको मारा राम्य प्राप्ति की  
 वीक्षा ) । ५३१ ( पुत्रराज सुमन्त्रके  
 मारणा अयोध-साहाय्य ) । ५३२  
 ( ने अम्बुद्वीपमें ८४ फल और  
 विहार बबबाये ) । ५३ ( अरुणितिल  
 ४ वर्षतक ) । ५३३ ( बरुण अमिवेक-  
 वर्ष ) । ५३ ( अरुणित राम्यपर जाते  
 हाथमें महम्मदमाता मिष्ठी ) । ५३८  
 ( राज-काक ) ५३९ ( पुत्री और बोधि  
 का विद्या करवा ) । ५३८ ( बर्म राजके  
 सत्रहमें बप देवानाम्पिब सिध्दिकमें गरीपर  
 वेद्य ) ।

अशोक । काक- । ५३८ ( अम्बुद्वीप-पुत्र ) ।  
 ५३८ ( सिध्दनाग पुत्रका राम्यकाक ) ।

अशोकानाम-विहार । ५३२ ( पाठकपुत्र  
 में इन्द्रपुत्रस्वभिर-विहीकक ३ वर्षमें  
 समाप्त ) । ५३५ ( में मिष्ठुभौकी परीक्षा  
 निष्कासक ) ।

अभ्युदयित् । ( पंचवर्षीय ) । २४ ( बप  
 संपदा ) । ३१ ३० ( सारिपुत्रके उप  
 देव ) । ३३० । ३३८ ( श्रीरामि-वासी  
 पुनर्वसुका साथी ) ।

असित-वृक्ष । १०१ ( कपि ) ।

असित-वृक्ष-नगर । ४३९ ( में तपस्तु  
 मन्त्रिकका नाम ) ।

असित-वृक्ष-पुत्र । १ ३ १ ४ १ ७ ( बाद  
 पुत्र द्वारा साहाय्यके द्विजे मेकक पना  
 उपासक ) ।

असुरान्द्र । १२ ( का देवनागर प्रवेश ) ।

अस्तक ( अस्तक-वेत ) इच्छिणपथमें । ३५  
 ( अस्तकके समीप गोदावरी तटपर पठन )

अस्तपुर । २९९ ( अंधवेतमें ) ।

अहोर्ग-पथ । ५१० ५१८ ५३३ ( हरि  
 द्वारके पासका कोई पर्वत ) ५३५  
 ( रंगाके ठपरकी ओर ) ।

अजीयक उपक- । २ ।

अजीयक । २४८ ( सप्रदाय के तीव  
 विमता ) । ३१९ ( अम्ब ) ।

आतुमा । ( अंतुतरापमें ) । १५९, १५७ ।

आतम् । ४३ ( के सिध्द पठित ) ४१ ४४  
 ( महाकाम्यपका कुमारका ४४ ईदेह  
 मुक्ति ) ५७ ( अन्वियामें प्रमत्ता ) ५७  
 ५९ ( अन्वियामें ) ७१-७५ ( मिष्ठुकी  
 प्रमत्ता वाकला ) ८ ( पारिकेपकमें )  
 १ १ ( कासम्बक-विवादमें ) १ १  
 ( १२ प्रदान-सिध्दोंमें ११में ) ११०-  
 ११८ ( महाविद्याके अंतर ) १३२  
 ( वाकक कूर कर आता ) १५६ ( राज-  
 मकक मित्र ) २४३ ४८ ( श्रीराम्य  
 पञ्चपुत्रामें संवकके उपदेव ) २ २  
 ९ ४ ( अम्बनाममें ) २८८ ( महापठित  
 महापठ ) ३१४ ( के पूर्व मैत्रायणीपुत्र  
 उपाध्याय ) ३१५ ( बाद वर ) ३३४

३१५ ( अमृतोदकपुत्र महिषके साथ प्रकृत्या ) ३० ( बेलवर्षमें ) ३०८ ( को अमृतम पुत्रव वववेक उप देस ) ३८३ ३८४ ३८५, ३९८ ( विद्वन्मते संवाद ) ३९८ ( प्रसेन-कित् द्वारा प्रसंसित ) ४११ ( मसेव कित्को उपदेस ) ४१३ ( बहुसुत ) ४३८ ( अम, कान्ठ कपिक-वस्तुमें अमृतोदक-पुत्र ), ४४०-५२, ४६९ ४८१ ( सारिपुत्रके विधानपर ) ४८९-९१ ४९३, ४९६, ४९६ ५ ४८९, ४८६ ४८७ ४९६ ५ १-५ ७ ५११-५१५ ( प्रथम संवीतिमें ) ५१३ ( कौश्याग्नीमें उदकनके हविषासवे ५ चार्दरे वी ), ५१८ ( उदकनवैमी ), ( उदकनैमकार्द ) ५२ ५२१ ( -के सिष्य सर्वकामी ) ।

आलम्-चैत्य । ४९८ ( भोगनपरमें )  
 आपप्य । निगम ( अगुत्तरापरमें ) । १४५ ( अम-करण पोतकिकको उपदेस )  
 १५ ( अगुत्तरापरमें ) १५१ १५२ ( विव सारक राजवमें ) १५५ ।

आस्यक । ७१ ( अकधीमें ) १९५ ( के किवे ३ बोडव ) । दे हस्तक ।

आस्यवी । ७१ ( १६ वां वर्षावास ) २४२ ( अकभिकपुरी पंचाकमें, जतमान अरक वि अकपुर ) २४८ ( से राज गृह ) ३९८ ( में गोमगा सिसपावव ) ( पंचाकमें हस्तक आकवक ) ।

आस्यर काछाम । १३ ( राजगृह-उदकेअक बीचमें ) १९ ( सुत्तु ), ३८६ ( के पाम भगवान् ) ४९९ ( का सिष्य पुत्रकृत्य मरकपुत्र ) ।

आश्वहायन । १९७—७२ ( को उपदेस आपाङ्क-उत्सव ) । १ ।

अस्याक [ अफकाक ] । राजा । १९८ २ ( अकनीका पूर्वज ) ३४२ ३४३ ( गोहिंसा ) ३५ ( शाक्य-पूर्वज ) ।

इच्छानगल । १९५ ( ताकवक्य प्राम कोमलमें उकट्टाके समीप ) ।

इच्छिय । ५३० ( ताअपनीमें प्रचारक ) ४ इतिहास ग्रन्थ । १९७ ५२९ ।

इन्द्र । ७ १९२ ( वैदिक ) ३१७ ५११ इन्द्रगुप्त । स्वधिर । ५३२ ( अद्योकाराम विमानमें तरवावघापक ) ।

ईशान । १९२ ( वैदिक देवता ) ।

उकतु । १८९ ( कोसकमें पौनवरसाठिक गौव ) १९५ १९६—२ ३ ( इच्छ नंगकके समीप )

उक्याथेक । ४८३ ( बज्जिमें गंगा-तटपर हाकीपुर वि सुवककरपुर ) ।

उग्र । ४३९ ( बज्जी वीसाकीमें अद्ये ) ।

उग्रकुल । १७ ( अत्रिय ब्राह्मण वैश्व घट ) ।

उज्जुअ [ उज्जुअ ] । ३९४ ( रापू मी नगर मी ) ।

उज्जनी । ४५, ४६ २८४ ( में कांचन वव विहार ) । ३५२ ( उज्जैन आकिकर राज्य ) । ४३७ ( अवतिमें महाकाल्या ववका अम-क्याव ) । ५३१ ( में अद्योक उपराव ) । ५३७ ( में महम्म-अम ) ।

उत्तर-देश । ३४९ ( में आवस्ती ) ।

उत्कल । १८ ( स उद्वेकाको तपस्तु मन्धिक ) ।

उत्तर । मिथु । ५२ ५११ ( रवतक वव त्याक ) ।

उत्तर । माणपक । ४७२ ( पारासविषय सिष्य ) ।

उत्तर । ५३७ ( सुवर्षमूमिमें प्रचारक ) ।

उत्तरापथ । १३७ ( पंचाकके अकवधिक ) ।

उत्तिय । ५३७ ( ताअपनीमें प्रचारक ) ।

उत्पल्यया मिथुनी । ४३८ ( अम कोसक कावकी अकिक ) ४३९ ( अमआविष्य )

उद्य । १५२ (वावरि-द्विप्य) १५९ (प्रम्ल)  
उद्यत । १२३ (बी बल्पति) ५१६  
(कोशाम्बीमें उद्यान-बीजा) ५३०  
(बालम्बसे प्रम्लोपर)

उद्यमद्र । ५३१ ५३८ (मयधराज) ।  
उद्यान मद्रुकया (देखो प्रम्लुषी) ।  
उद्यासी । ५२ २०५ (प्रम्लम्बाके सम्बन्धमें) ।  
उद्यापी काल—३ ५२ / ३३८ (अम्म  
धम्म कपिलवस्तु, अमालगुहमें) ।  
उद्यायिमद्र । ३३९ (अमालसत्रुध्र पुत्र और  
पापक, उद्यमद्र भी) ।

उद्युम्बर नगर । ५१८ (कानपुर जिकमें  
कोई रवान) ।  
उद्युत [उद्युत] । ३३१ (अजी, इतिमाम अष्टी)  
उद्युत-रामपुत्र । १३ (राजगृह-अस्मैकाक  
बीचमें) २ (म्यापु) ३८० (क पास  
मगवात्) ।

उपक । १ अजीवक ।  
उपलप्य । स्वविर । ५३६ (सिद्धकमें) ५३  
(-माम में सारिपुत्रक का अम्म) ।  
उपनम्-शाफ्यपुत्र । ५२९ (को छेकर काठ  
क्य रजत विषेय) ।  
उपपत्तन शाखयत्न । ५ (कुसीयारामें  
अनुपपत्तुरके अमीस हल्ला) । ५ ६  
कुमीयारा (अर्धमात्र मावाकुंवर, कसक  
त्रि मोरपुत्र) में ।

उपपाप्य । ३१७ (उद्-उपत्थाङ) ।  
उपसीय । माषक । ३५१ ३५६ (प्रम्ल) ।  
उपसेत र्गमस्तपुत्र । ३३० (मगप, कालक-  
माम सारिपुत्रके अनुज) ।  
उपासी । ५० (अम्बुविचामें प्रम्लित) १ १  
(१२ महाकापकोमें १ ने) ५२६  
(शापक-मुक), ३१३ (विजयधर) ३३८  
(अम्म कपिलवस्तु आवित-कुङ) ५१२  
(प्रथम संगीतिमें), ५१३ ।

उपासि । गृहपति । ३२४-२३ (नाकम्बाक  
उपासक बीवसे बीद्) ।

उपासि । स्वविर । ५३६ (सिद्धकमें) ।  
उठवेला (प्रवेस) १३ १७ १६२ २६  
(अहपप), ५३ ३८० (सेनाली-विगम)  
३३९ (मयधमें) ५ १ (दत्तबीच-  
रवाव) ।

उत्कामुख [ओकामुख] । १९८ (इत्थाङ  
पुत्र सम्बन्धमें), ।

उत्तीररघज । पर्वत । ३०१ (हिमालय  
भाग, उत्तीररघज भी) ।

उत्तिगिरि । २१७ (राजगृहमें के पाप  
कामलिकर) २८८ (इत्तिगिरि  
राजगृहमें) ।

उत्पिपुत्र । ३८० (मसेमद्विष्णु हाकी-  
बाम) ३३९ (पुराधका सापी, मय  
वात् का मक) ।

उत्पिपुत्रन युगदाव । १७ (धारवाव त्रि-  
मकारस) २० २१ २२ २७ ५१  
७, ५ १ (दत्तमीच स्वाम), (देखो  
मारालसी) ।

एकपुंडरीक । ३११ (मसमजितक हाकी) ।

एकपुंडरीक परिप्राजकाराम । १३२  
(बैसाकीमें) ।

एतरप्य प्राक्षण । १९ ।

ओदुत्थ सिन्धुत्थी । २२९ (द्विपी महाधि) ।

आपसाद् । १८९ १ ३ (कौसकमें चंडि  
बादपका पाप) ।

पपुत्थानवी । ५ (पावा-कुसीयाराके  
बीचमें कुप वरी सी वरी) ।

कपुध भावट । ३ (राजके पट, उत्र,  
पगरी पाहुका व्यवह) ।

कज्जदस । १३ २१ (ककजोल, त्रिम  
संपाक-वर्गांवा) ।

कव्यज्ञान । (कव्यज्ञान) । १०१ (सिं बेणुवण),  
 १०४ (सिं सुबेणुवण) २०१-०२ (सिद्धिणी  
 कव्यात्मक उपदेश) ३५६ (पंडिता) ।  
 कटमोर तिम्स । बेडो केककिय ।  
 कण्ठयल्ल मिगादाय । १९४ उज्ज्वलमें ।  
 कण्ठयुद्ध-वृत् । ११५ ।  
 कथाव्युत्पत्करण । ५३६ (अभिधर्म  
 पिटकअ प्रथम भोगकियुत्त-रचित) ।  
 कव्यक । ( कव्य ) ३ ( उम् ), ९, १  
 ११ ( मरय देवपुत्र ) ।  
 कव्यक-निघर्तन कीत्य । ११ ( कपिकवस्तुके  
 पास क्याव ) ।  
 कपिख । १८ ४ ( महाअश्वपक पिता ) ।  
 —पुर । ( कपिकवस्तु ) ४३५ ।  
 कपिकवस्तु । [ विकीराकोट लौकिकिवा  
 ( शेषाककी तराई ) में २ मीक उतर ] ।  
 १ ५१ ७ ( में १५ वां वर्षावास )  
 ७१ ७३ ( -पुर ) १९७, २१२ ( शास्त्र  
 देश में स्वभावाराम ) २३३ २३५  
 ( में स्वप्रोधायाम ) ३५ ३५३ ( कुसी-  
 तारा-सोतम्नाके बीपमें ) ;  
 ४३७-४४ ( में उत्पन्न महाश्रावक  
 अनुत्त भरिष काकीपोवापुत्र ) ४३८  
 ( में उम् राहुकअ काकडहायिका )  
 ४३९ ( के उवाकी मंथ, मशपती पौतमी  
 बन्दा भद्रा कात्यायनी ) ४३९  
 ( महाशाम ) ४४४ ( सावध-विवास )  
 ५ ९ ( के शावप छपिय ) ।  
 कव्यमाजय । ३५८ ( का बहन ) ।  
 कव्यासिध-यन्त्रवृत् । २८ ( बाराकती  
 बन्धेकाके मार्गपर ) ।  
 कव्यिन । महा—१ १ ( १२ महाश्रावकमें  
 छरें ) १९५ ( मधुसूदनमें १२  
 बोजव ) १८३ ४३८ ( उम्-मन्वंत देश  
 कुण्डरवती नगर राजवध ) ।

कंवोज । वेत् । १९८ ( कविरत्नन या  
 ईरान ) ।  
 कम्मास-उम् [ कम्माप-उम् ] । १९  
 ( कुस्में ), ११ ( सतिपद्धानुत्त ),  
 १२ ( महाविश्वानुत्त ) ।  
 करण्ट । इक्काकुत्तुव साकपपूर्वक ।  
 कस्सुक्-प्रास । १३५ ( बैसाकीके नपतिहूर )  
 १९३ ( कस्सुक्प्रास बैसाकीके पास ) ।  
 कस्सुक्मिषापा ४३ ( बेणुवण राजगृह ) ३९५ ।  
 कखन्व । वरी । ५ ( अनुराधपुरमें ) ।  
 कटार जनक । ( विमिराजक पुत्र मिबिअ  
 की परम्पराक परित्वावी ) ३७८ ।  
 कटिग । ५१ ।  
 कस्सिगारण्य । ४१८ ।  
 कत्प । मन्ववाम । ५९९ ।  
 कवसीर । ५३९ ( में प्रचारक मन्वीतिक ) ।  
 कदपप । १५६ ( मंथकर्ता कृषि ) १९  
 २ ३ २ ९ ।  
 कुद्ध । १९ ; १३२ ( मद्रकवपठ कुद्ध ) १३६  
 ( माहान किरकापी बर्म ) ।  
 कहापण । बैडो कार्पावम ।  
 काक । प्रचीतका राज २८५ ।  
 काकपलि भोष्टी । १ ३ ( विवसारके  
 राजमें ) ।  
 कांखनघन । ४९ ४७ ( उज्जैथीमें विहार ) ।  
 कात्यायन महा— । ४५ ४७ ( -रचित )  
 १ १ ( १२ महाश्रावकमें छरें )  
 ३९८ ३७३ ३७२ ( अश्वि-देशमें कुण्डरवके  
 मपात-परंत पर ) ३ ३, ४३७ ( उम्-  
 अश्वि देश उम्पिनी नगर, माहान ) ।  
 कात्यायनी । ४४ ( बर्ती कुण्डर सोन  
 कुटिकणकी माता ) ।  
 कावपुत्त [ कव्यकुत्त ] । १३४ ( कवीम  
 वि कट कावा ), ५१८ ।

कायधिक । मात्स्यक भाष्यार्थ । १ १ (बंकि का भांडा) ।  
 काययज रीर्षि— ४४० ४४४ (बंजुमसकका भांडा कोसक-सेनापति, राजसे विधास वात ; ४४४) ।  
 कायौपय । (सिद्ध) ४६; ७९ (= कदापय) ८ १५ २८ (लौकिका सिद्धा कव-कति पीव दपवा) ४८१ ५१८ ।  
 कायापय अर्थ — ५१८ ।  
 काककूट । १४५ (कवचवठके पास, पर्वत सिद्ध) ।  
 काळ वैद्यक क्षति । (बौधियावठके दसार्थ) ४ ।  
 कासशिखा । २१४ (कासिगिरि राजगृहमें) ४८१ ८३ (में मौद्रात्वावतका कव) ४९६ (राजगृहमें वैमारपिरिकी बगळमें) ।  
 काळाम । (कोसप्रदेशमें केसपुर विगमके क्षत्रिय) ३२५ ।  
 काळी । (मगध राजगृहमें उत्पन्न धर्मती कुनरवर्गमें व्याही) ४४ ।  
 काशी । २३८ (देवमें कारिका) ३५५, (मातः बनारस कमिहारी और धाकमाग्न तिका); (का बंधव) ३७५ (प्रसेकविष् का राज), ४३८ ४४ (देवमें बारावसी) ।  
 काशीप्राम । ४१ (महाकोसक द्वारा कन्वाको प्रदत्त) ।  
 काशी-वाङ् । २८० (कासिर्ब राजा प्रसेव कितव भाई) ।  
 काश्यप । २२९ (= वागिठ) ।  
 काश्यप उदबेख — २९, ३२ (मज्जा) ३४ ३५ । ४३८ (कम्म—काशी बारावसी ब्राह्मण) ।  
 काश्यप कुमार — ४३० (कम्म—मगध राजगृहमें) ।  
 काश्यप गया — २९ ३२ (उपसंपदा) ।

काश्यप, नदी— २९, ३२ (उपसंपदा) ।  
 काश्यप, पूर्ण । ७६ (तीर्थकर १०८) (सायु हुकर) ८५, ८६ (गवाकर्ष १) २४९ (शिष्योंमें वसकृत) ।  
 काश्यप सुन्द । १ ९ (के उपदेवानुसार वेद पीठे मिकावर) ।  
 काश्यप महा— ३८ । (के प्रत्युद्यमकार्य ३ गम्पूति) ५ (राजुके व्याचारे), (= विष्णुमीमांसक) ३८ (-वर्तित), ४३ (संधाडी-परिवर्तन) ४८ ४५, १ १ (१२ महाभावकीमें सुतीव) ३८३ ४३६ (हुदचर्चा) ४३८ (कम्म मगधदेश महातीर्थप्राम, माङ्ग), ५ ८, ५ ९, ५१ (राजगृहमें कवठ यजुसे वातुविधान कववावा) ५११ ५१४ (प्रथम संगीतिमें), ५३६ ।  
 किम्बिस । (काय) । ५० (बन्दिवाके पत्रजितोंमें) ५९ (ककपावमें) ९३ (प्राचीवर्षसदावमें) ९४ (बनु बद्ध बंधिवके साथ) ।  
 कीटागिरि । २३० (केराकट वि. बौधपुर) २३८ (कासिपोंका विगम) २४२ ।  
 कुनकूटवती । (प्रबंतदेवमें) । ४३८ (महाकल्पिकका कम्म) ।  
 कुटवंत ब्राह्मण । २१६ (मगधमें वातु-मठका स्वामी) २१६ २२४ ।  
 कुपाठवृद्ध । १४५ ।  
 कुण्डघाम । ५९ (ककपावमें संन्दाघ), ४३० (कम्म—कोसक कावसी ब्राह्मण) ।  
 कुण्डिया । (कम्म) । ४४ (सुप्रभावा कौडिकवीताका घर सीवडीका कम्म स्वाम) ।  
 कुतुम्बक । (पुण्य) । ८ ।  
 कुतुम्बकशाखा । (राजगृहमें) २४९ ।  
 कुतपक । (पुण्य) ८ ।

कुररघर । ३१८ ३० ( में प्रपाठ-पर्वत  
 मर्बतीमें ), ३३८ ( में सोमकुटिकण्डका  
 जम्म ) ४४ ( काही कात्यायनी ) ।  
 कुह । उत्तर १ , ६३ ( में मिहार्ब ) ।  
 कुहवेश । १ ८ ( कम्मासदम्म ) ११  
 १९ , ३९९ ( बुक्ककोटित ) ३३३  
 कौरव्य राजा ३३९ ( सधुद्धेश ) ।  
 कुह-याजा । ३९४ ।  
 कुदायती । ५ ९ ( कुसीनाराज्य पुराणा  
 नाम ) ।  
 कुसीनारा । ( कसबा, किजा देवरिया १५५,  
 १५६, ३-९ ४४ ३९९ ( पाबासे  
 ६ यम्पुति ३८ ट्टे पोखन ) ५ ( में  
 वपवचन शाकवचन, अनुराधपुरसे तुलना )  
 ५ १ ( ४ वसवीन स्थानोंमें ) ५ ९  
 ( पुराणा नाम कुदायती ) ५ ३ ५ ६  
 ५ ७, ५ ८ ( में विवाज ) ५ ९  
 ( मुकुट-वन्धन कैत्य ) ५१ ( से राज  
 गृह २५ पोखन ) ।  
 कुमिकासा नदी । २०६ ( बतुप्याम, काकिव  
 पर्वतके पास समभवतः वर्तमान ननुक  
 नदी ) ।  
 कुरा सांस्कृत्य । ३४८ ( जाहीबकोंके सीम  
 निर्वाताओंमें ) ।  
 कुरागीतमी । ८ ( शाकव-कम्मा ) ३४  
 ( -मिहारी-वरित ) ।  
 कुर्या । ( अर्थि ) १९८ ( इन्काकुडी कासी  
 ( विद्याका पुत्र कण्ठवनोंके पूर्वज ) ।  
 कुर्यायन । १९८ ( गोत्र ) ।  
 कुडुम । १६० ( कल्पसूत्र १९६ ।  
 कुविय अटिस । १५१ ( व्यापन-वासी )  
 १५१ १५२ १५३ १५५ ।  
 कुसपुत । ३२५ ( कोसकमें काक मोंका  
 विनाम ) ।

कीलाश । ( पर्वत ) । ८१ कीलाशपुर, १४५  
 ( भमवतठके पास ) ।  
 कोकनद प्रासाद । ३८४ ( बोबिदाजुमार  
 का सुंसुमारगिरिमें ) ।  
 कोकालिक कटमोर-तिरस । ४ ३ ( देव  
 वचन अनुपाधी मिहू ) ४ ४ ( गवा  
 सीसमें देववचनके साथ ) ।  
 कोटिग्राम । ४९३ ( बर्जीमें गंगा और  
 देवाकीके बीच ) ।  
 कोट्टिन । मह-—१ १ ( १२ महाभाषकों  
 में पाँचवें ) ३८३ ।  
 कौडनि । [ कौडिन्य ] । ५ ( देवज भाषण ) ।  
 कोनागामन । १३२ ( महकल्पक कुह ) १३३  
 ( भाषण, किरवाधी बर्न ) ।  
 कोरव्य राजा । ३२९ ३३० ( बुक्ककोटित  
 में कुहदेशका राजा ) ।  
 कोटित-ग्राम । ( मयबमें ) । ४३९ ( में  
 महामौद्गल्यायनका जम्म ) ।  
 कोडिय । ११ ( के पश्चिम बरीपार कावव  
 राजन पूर्वमें रामगाम-राज्य ) २३४  
 ( कास्कोसे विद्या ) ५ ९ ( कोडिन  
 काकिव राजगामके ), ५१ ( इन्द्रपुत  
 पानेपाके ) ।  
 कोट्टित । मह-[महाकोटित] ४३० ( जम्म  
 कोसक भावली भाषण ), ( देको  
 कोटित ) ।  
 कोसड । १९८ ( में मवसाक्य, ओपसाह,  
 इन्द्रवर्गक बकहा तुरीगाम ) । २९८  
 ( के महाकल्पनृत देवकीमें ) ३९५ में  
 केसपुत विनाम ) ३ ५ ३४१ ( कीला  
 काद गोरा बहराहव वारवकीके जिडे  
 लण व्यासपासके जिडोंक कुह म्या )  
 ३५२ ३४९ ( वावरिका जम्मा ) ३०५  
 ( का मसेनकिन् राजा ) ३८ ( बवप  
 बकी गोरकपुर व्याजमपाद, जीवपुर

त्रिकोंके कितनेही माप) ४३९, ४४ (में  
 आबस्ती) ४४० (पर मागधराज जगतसु  
 की चण्डी) १०३ २३३ (में चारिका)  
 कोससक । ४४९ (कोसकद्वैतवासी वा  
 कोससगोत्रक, प्रद्योतविर और मयवाद् )  
 काससराजा । ५ ।  
 कौटिल्य, आयुष्मान्—। १३ (उद्वेकमें);  
 कौटिल्य आजात—१३ २३ (, मन्त्रया  
 अर्हत्) ४३९ (अन्त—आयुष्मन्में  
 कविकवस्तुके पास ब्रोज्जाममें, आजात-  
 कीशाम्बी । ७ (भवम वर्षापास ९१ ९२  
 ९७, ९८ १, ( शोभिताराम में कव्य  
 १ २ २३१ २४३ । में पञ्चगुहा =  
 पञ्चासा कोसस कि इकाहावाद् ),  
 ९८४ ( उरवेव-राजगृहके मार्गपर )  
 २५९ कोसस कि इकाहावाद् ), ३९३,  
 ३९८ ३९९, ४३९ ४३८ (वत्सदेवमें  
 वस्तुपञ्च अन्त) (सुम्नहरा सामावती  
 ५ २ (महाभार) ५१९, ५३० ५२७  
 ( सुचर्चित ) ।  
 कौशिकगोत्र । ३८, ३९ (महा कविकवली  
 का पिता ) ।  
 ककुत्सम् । [ककुत्स] । १३२ (मद्रकल्पके  
 बुद्ध माहान विरस्थापी पर्मे ) ।  
 कुद्रुपी । १९९ २ ( इत्वाकु-कम्पा  
 कृष्ण भाषा ) ।  
 कुद्रुशोमित । ( श्रेयो शोमित सुद्र ) ।  
 कर्हदेयी पुत्र समुद्रवत् । ४ ३ (देवदत्तका  
 अनुवापी मिथु ) ।  
 कानुमत । अक्षयप्राम । २१९ (मयधर्म  
 कुद्रवत्तका प्राम ), ४९८ (में अन्वकट्टिका  
 सुजुत्तरा [कुद्रा इतरा] ४३९ । पाम  
 देशमें कौशापीके घोषक घेडीके काईकी  
 कम्पा गृहस्थ अग्रधाविषा )

सुद्रक । (= सुद्रक) निकप । देवी प्रं-  
 सूची ) ।  
 कोम । स्वविर । ५३९ (सिंहकमें) ।  
 कोमा । ४३८ (अन्त—मद्रवेक, आक्षय  
 राजपुत्री विवसार मापा ४३८ (अन्त  
 आविषा ) ।  
 गीया । गरी । १३४ (प्रवागमें) १४५ (का  
 उद्गाम) २ ४ ( बज्जी-मगाध-सीमा )  
 ५२९ ।  
 गंङ्ग । ८ ( मसेवविराज्य माकी )  
 गंङ्गव्यवहृत । ८ ( आबस्ती कपरमें ) ।  
 गंधमवत्त-कूट । १४५ (अववत्तके पास )  
 गंधार । ५३९ (में धर्मवचारक मन्वातिक)  
 गंधारपुर । ५१ (में एक सुद्वर्त )  
 गया । १५, २ २९, ३ ४ ४ ( में  
 गवासीस ) ।  
 गयासीस । ( गवामें ) ३२ ३३, ४ ५,  
 ४ ९ ( पर देवदत्त संभवेवृद्धके अन्वा  
 महापोषि पर्यंत गया ) ।  
 गरुड । १३ ।  
 गार्गा । [गायरा] । पुष्करिणी । २१४ अंत  
 देवके चंपा नगरमें २६० )  
 गयापाति । (मिथु) ९० ।  
 गायूति । ३ (= देवोत्र ) ।  
 गिज्जकायमथ । ४९३ (पत्रिवेद्यके वादिक  
 प्राममें ) ।  
 गिरिमज्ज । ४१९ (मगधीका नगर राजपुर)  
 गृध्रकूट । पर्यंत २८८ ( राजगृहमें ) ४ २  
 ( देवदत्तका बुद्धके कपर पत्नर कंक्या )  
 ( देवी राजगृह ) ।  
 गादायगी । गरी । २५ ( पतिहान हमके  
 किनारे, अरमकदेशमें ) ।  
 गोतय । २५२ ( उरवेव और मिस्ताके  
 बीच कोई रथाव ) ।  
 गोपान् । (कपोतका पुत्र ) ।  
 गोपाल माता देयी । ४० (प्रद्योतमद्विती)

गौतम्य । ३२८ ( अश्वीमे ) ।  
 गौतम्य-वृत्त । १३५ ( शारङ्गसमी ) ।  
 गौतम्य तीर्थे । ३२२ ( पाण्डिपुत्रमे ) ।  
 गौतम्यद्वार । ३१२ ( पाण्डिपुत्रमे ) ।  
 गौतम्यकथैत्यं । २९२ ( वैशाखीमे, त्रिचीवर  
 विद्याम् ) ।  
 गौतमी कृशा- । ३२९ ( अश्व-कोसक,  
 भावकी, वैश्वकुल कृशा गौतमी मी  
 वैषी ) ।  
 गौतमी, महाप्रजापती- । ३३८ ( शारङ्ग  
 कविरुचस्तु, धर्मशास्त्री मीसी ) ।  
 गौतम्य । ३२२ ( पाण्डिपुत्रमे ) ।  
 गोपिताराम । ( वैशाखीकोशाश्वी ) ।  
 गोपितास । ३, ८  
 गोपि ब्राह्मण । १८९ २ ६ ( गोपितास  
 वासी ) ।  
 गोपिकास्त्री स्वयिर । २५ ३५३ ( सामाजिक-  
 पुत्रके पुत्र ) ।  
 गोपिकाकुल । १६९ ( नीलकुलमे ) ।  
 गोपिगुप्त राजा । ५३८ ( मौर्ये राजकाल ) ।  
 गोपिपुत्र । २३२ ( मंडकमी अर्था ) ।  
 गोपा । २२७ ( अर्थात् अर्थात् गोपापुत्रिणी )  
 २६७ ( अर्थात् अर्थात् गोपापुत्रिणी ) ३३७ ( मे  
 सोम कोटिनीसका अश्व ) , ५ २ ( महा  
 वाट ) ।  
 गोपियेयक विलपवस्तु । ५२७  
 गोपास वैश्य । ३९९, ३९९ ( वैशाखीमे ) ।  
 गोपिय पर्यत । ७ ( अर्थात् १३ १८  
 १९ ) १३७ ( १३ वी वर्ष ) ( १८ वी  
 २३७, २७६ ( १२ वी वर्ष ) पातमे अश्व-  
 ग्राम कुमिकाश्वती ) ।  
 गोपिकुट ( वर्ष ) । ८१ १७५ ( अश्वतथके  
 पात ) ।  
 गोपि ( गृहपति ) । ३३९ ( अश्व मण्डिका  
 सर्वमे अश्वी ) ३३९ ( गृहस्थ अश्व  
 अश्व ) ।

गोपि हस्तिसारीपुत्र । १८१ १८५ अश्व  
 सर्वथा अश्व ।  
 गोपि । ३९९-२१० ( परिभाषिका अश्वती  
 मे ) ।  
 गोपिक । ५ ( अश्वपुत्रम् ) ।  
 गोपिकर्माश्व-पुत्र । ३९९, ५ ( पातमे )  
 ५ ( अश्व पिंड अश्वतथम् ) ।  
 गोपिक महा- । १ १ ( १२ मे सातथे ) ३८३  
 ( अश्वतथम् ) ।  
 गोपिक अश्वतथ । ३१७ ( अश्व-अश्वतथ )  
 ३७८ ( पातमे सामाजिक अश्वतथके  
 अश्वतथ समाचार के सारीपुत्रके अश्व ),  
 ३८१ ३७८ ।  
 गोपिकामणिसौर्य । १२ ( अश्वतथ काकमे )  
 अश्वतथपर्यत । अश्वतथपर्यत ५१७ ।  
 गोपिकपात । ३९९ ( अश्वतथमे ) ।  
 गोपिकतथ । १७५ ।  
 गोपिक [ अश्व ] । ३ १, १३, १२, ५ ५  
 ( अश्वतथ ) ५१५ ( अश्वतथ ) ५१६  
 ( अश्वतथ ) ५१७ ( अश्वतथ ) ।  
 गोपिकापा । ( अश्वतथ ) १९ ।  
 गोपिकाग । ( अश्वतथ ) १९ ।  
 गोपिक । ( अश्वतथ ) ।  
 गोपिकर्माश्व । १७ ८९, ( अश्वतथ ) ८ ।  
 गोपिक । ( अश्वतथ ) १७२ ( अश्वतथके अश्वतथमे )  
 अश्वतथाम । २७९ ( अश्वतथके पात )  
 ( अश्वतथके अश्वतथमे ) ३१९ ।  
 अश्वतथकोशपुत्र । ( अश्वतथके अश्वतथ ) ५ ९ ।  
 अश्वतथीप । १, १७५ ( १ कोशत  
 १ समुद्र २ समुद्र ), ५१  
 ५१२ ५२८ ५३ ( = अश्वतथ ) ५३२  
 ( मे अश्वतथके ८७ अश्वतथके अश्वतथ  
 अश्वतथके ) ५३२ ५३७ ( अश्वतथकी  
 ५३२ ।  
 अश्वतथकुशापा । ( अश्वतथके अश्वतथ ) ।



जातकद्रु कथा । ९ ( सिंहकम्बवा श्री )  
२८ ५१ ।

जातियावन । १७१ ( देखो मदिवा ) ।

जातुकर्मी । १५१ ( बाबरि-क्षिप्य ) १५८  
( मय ) ।

जानुशोबि [ जानुस्तोभि ] । १५८ १५९  
१६३ ( ब्राह्मण ब्राह्मणीवासी उपदेस )  
शरण्याण १८९ ।

जानुस्तोभि । ( देखो जानुशोबी ) ।

जालिय । ( शकपात्रिकम्ब क्षिप्य कौसाम्बी  
में ) २३१ ।

जीवक कौमारमूर्य । ७२९ ( ब्राह्मण  
दान ) ७२८, ७३९ ( मगध राजगृह  
अमव राजकुमारसे साकवतिका यजिका  
में उत्पन्न ) ९०८-९८८ ( जीवक-परित )  
९८१ ५१३ ( राजगृहमें ) ।

जीवकम्बवन । ७९६ ।

जेतवन । ६६ विमान ( देखो ब्राह्मणी ) ।

जेतकुमार । ६९ ( अघ्नव ) ।

जोतिय ( घडी ) । १७२ बिबसारके राजमें  
काव । ७९३ [ वर्तमान अचरिवा भूमिहार  
ब्राह्मण ] ।

कावमुत्र । ( काव-पुत्र=जावपुत्र = माठपुत्र )  
१ ४ बिद्येव ) ।

तद्गशिला । २०९ ( ब्राह्मणीकी डेरी लक्ष्  
सिख्य जि शकविही ) ३७० ( में  
ब्राह्मणीवासी अण्यवार्थ ) ।

तपम्नु । १८ भक्तिकका भाई । उपकेका  
में १८ ( उपामरु ) ७३९ ( अम्भ—  
अमिर्तजन-नगर, कुटुम्बिकोह ) ।

तपांदायाम । ७९६, राजगृहमें ।

ताम्रपर्णी छीप । ५३९ ( तम्रपरिनिरीप  
कांका ) ५३० ( में प्रचारक मरुग्न  
अचिब संवक भद्रपाक ) ।

ताम्रस्थिति । ५३९ ( तम्रुक जि मेरिष्की-  
पुर ) ।

तादक्य ब्राह्मण । १८९ ( ब्रह्मज्ञानकवासी ),  
१९५ अकृता समीप ) ।

तिष्ठिरजातक । ६८ ६९ ।

तिष्ठुकासीर । १०६ ( समप्यवादेक मन्कि-  
काराम, वर्तमान अचरिवाक सहेट, महेट,  
जि बहराहण, ।

तिष्यकुमार । ५३ ( अस्तोकसहोदर विष्णु  
सार पुत्र ) ५३९ ( मज्जित ) ।

तिष्यवृत्त । स्वभिर । ५२८ ( सिंहक ) ।

तिष्य ब्रह्मा । ३२८ ।

तिष्य मैत्रेय । ३५१ ( बाबरि-क्षिप्य ) ।

तिष्य भ्रामणे । १९५ ( सारिपुत्र-तिष्यके  
किये १२ बोजव ३ यम्पूति ) ।

तिष्य । स्वभिर । ( = तिष्यकुमार ) ५३७  
( मज्जित राज्याभियेकके चौथे वर्ष ) ।

तिष्यज्यविर ( ३३ ) । ५३९ ( सिंहक ) ।

तिस्त मेत्सेय । मानवक । ३५४ ( प्रस्व ) ।

तुदीगाम । १८९ ( तोदेव्य ब्राह्मणस्य कोलक  
में ) ।

तुयित । देवविमान । ८३, ( में मावादेपी )  
३३० ( देवता ) ३१७ ( स्वर्ग ) ।

तृप्या । मारकम्बा ) १ ९

तेलप्यनाली । ७५ ( अग्निवके रास्तेमें विष्य  
मरुग्नमें पाँच ) ।

तिष्ठिरीय ब्राह्मण । १९, १९ ।

तीर्थिक । ७७ ( यातिहार्थ ) ।

ताद्वैक्य । ३५१ ( बाबरि-क्षिप्य ) ।

ताद्वैक्य ब्राह्मण । १९ ( तुष्टामामवासी ) ।

ताद्वैक्य ( मानव ) । ३५८ ( मज्ज ) ।

त्रयस्त्रिंश । १२ ( इन्द्र-कोक ) ७ ८१  
( में वर्षावास ) ८२ ( में वर्षावास वाँड  
कांका शिकार ) ३३० ३०८ ३१०  
( देवता ) ।

त्रिपिटक । ५४ ( का किला काग ) ।

युद्धकोटित । ३२५ ( कुम्भेश्वरमें ), ३३१  
( में मिनाशीर राजघोषण ) ३३१ ( श्रीरत्न  
राजा ) ४३८ ( में राष्ट्रपालका सम्म ) ।  
युद्धमैत्रा भिक्खुनी । ३४ ( महाकल्पपमे  
वाराह ) ।

युद्ध ब्राह्मणग्राम । १ ( पानैसर, वि  
कर्मा ) । १०१ ।

युष्पायम । ५ ( अनुराधपुरमें ) ।

येर-नाया । अ क ( देवो प्रमथ-सूची ) ।

यक्षिणहार । ५ ( अनुराधपुर में ) ।

यक्षिणागिरि । ४३ ( राजगृहके पास )  
५१५, ५१८ ।

यक्षिणापथ । ३४५ ( अमरव विजयमें  
कोश था ) ।

युद्धकारण्य । ४१८ ।

यामरिक् । ५३८ ( = इविह ) ।

याठपायिक । २३१ ( -का किय अक्षिप  
कोशाम्भीमें ) ।

याव । प्राचीनवर्ष-१ ९३ ( में अनुकद जादि )

याव । मृग-१ २१ २२ ( कपिलवत्त ) २४

यासक । ५३९ ( अपाकिसिन्ध, सोमक-गुह )

याशा । १९८ ( ईशवाकुम्भी यासी कृष्ण  
कक्षिकी माता ) १९८ ।

यीष-निकाय [ यीष-निकाय ] । ( देवो  
प्रमथसूची ) ।

यीषमाजक । ८ ( यीष-निकायको कंठ  
करने वाले ) ।

यीष तपस्वी निर्गन्ठ । ४१४ ( निर्मल ब्राह्म  
पुत्रका प्रभाव सिन्ध ) ४१५, ४१९-७ ।

यीषसुमन । कविर । ५३९ ( सिंहक ) ।

यीष-स्वविर । ५३९ ( सिंहक ) ।

यूमप । ३५१ ( वावति-सिन्ध ) ।

येवकट-सोम । २४३ ( कोशाम्भीमें इह  
पुरा-यमोसा-के पास ) ।

येव कूट—। ५३९ ( सिंहक ) ।

येवता धूस—। १४ ।

येवदत्त । ५० ( अनुपियामे प्रकथित ) ३९८  
( अंशमेद ) ३९८ ४ ५, ३९९ ( संवका  
आक्षिपत्य मांगला ) ४ १ अवातधनु  
को पितृवकक्षी सखाह ) ४ १ ( तुहके  
वपार्थ आदमी मेववा ), ४ २ ( तुहके  
पादको हत करवा ) ४ ३ ( ५ वस्तु  
मांगला ), ४१३ ( पापेष्णु ), ४२०  
( आवायिक-कल्पस्थ ) ४२८ ( के अंतिम  
दिल ) ।

येवदह-नगर । २ ( कोशाम्भीमें ) ३१९  
( आम्भदेशमें ) ।

येवदह मसित—। देवो अक्षिप देवक ।

येवदल । २ ७ ( अयोसाह, कोसकमें ) ।

येवदस्वविर । ५३९ ( सिंहक ) ।

येधानां प्रियतिय्य । ५३७ ( सात्रपर्णीनूप  
अभियेक ) ५३८ ( अशोकके १०वें वप  
राज्य पावा ), ५३९ ( बौद्ध होना ) ।

येधोण ब्राह्मण । ३३१ ( आबलीबासी मरु )  
५ ९ ५१ ।

येधोणवस्तु । ( आम्भदेश ) ४३९ ( में पूर्व  
मैत्रायणी पुत्रका सम्म ) ।

येजा । ५ ( वैवद्य ) ।

येनदय । अही । १४२, १४३ ( विशाखा  
पिता मंडकका पुत्र साकेतमें ) ३ ७  
( साकेतका भेटी ) ३ ८, ३ ९ ।

येनपास । ३२ ।

येनिय । १९५ ( के किय १ ७ बोधव ) ।

येनिय कुम्भकारपुत्त । ३८८-९३ ( अवि-  
गिरिमें द्वितीय पारायिक ) ५१२ ।

येम्मविद्या । ४३८ ( सम्म-मयध, राजगृह  
विद्याका-भेटी भाषा ) ।

येम्मपद् । ( देवो प्रमथसूची ) ।

येम्मवधपपत्तनसुत्त । १२ ।

येर्मपासित । ५३९ ( सिंहक कविर ) ।

धर्मरक्षित, महा । ५३० ( महाराष्ट्रमें प्रच-  
रक ) ।

धर्मरक्षित । बोकक-५२७ ( अररातमें धर्म  
प्रचारक ) ।

धर्मसेनापति । ( देखो सारिपुत्र ) ।

धवलक । ३५१ ( बाबरी-सिन्धु ) ।

धोतक माणव । ३५६ ( मय ) ।

नकुल-पिता, गृहपति । ३३९ ( धर्म-देव,  
। सु सुमार-किरिमें, जेडी ) ।

नकुल-माता गृहपती । ३३९ ( मय्य सु सु  
मारगिरिमें नकुल-पिताकी भाषा ) ।

मगजक । ( कोसकमें ), ३४ ( से मेंतल्ल  
विगम ६ बोकक ) ।

मन्द । ५४ ( मगजक ) ३३८ ( जम्म जाम्ब  
कपिकमस्तु, मगजपतिपुत्र ) ३५१  
( बाबरी-सिन्धु ) ३५७ ( मय ) ।

मन्दक । ३३८ ( कोसक जाम्बकी कुम्भोद ) ।

मन्द-माता । ३३८ ( मय्य राजपुत्र सुमव  
जडीक ज्योतीय नृपासिंहकी पुत्री ) ३३९  
( देवकडकी नगर वासिनी, गृहपथ भद्र  
जाविका ) ।

मन्द राजा । ५३८ ( राज-काक ) ।

मन्द घात । ३३९ ( बाबरीकमेंके क्षीय  
मिर्वाताजमें ) ।

मन्दा । ३३८ ( साम्य कपिकमस्तु, महा  
प्रजपती-पुत्री ) ।

मन्दिप । ५९ ( मककपालमें प्रचलित ), ९३  
९४ ( माथीम बंधादावमें अजुपुत्रके साथ )

मर्मदा नदी । ३०० ( सुमवरातमें ) ।

मरुतपाल । ५९ ( कोतकमें अर्धो पञ्चासवम,  
मज्जेर पुषिमन्द । ( देखो बेरजा )

माग । १२ ।

माग । सुल्ल-५३३ ( सिंहक स्वविर ) ।

मागदास । ३३९ ( राजा अनुकमका पुत्र और  
काक स्वर्ष बजाहारा इत ) ५३०  
५३८ ( सुव पुत्र राजकक ) ।

माग महा-। ५३३ ( सिंहक स्वविर ) ।

माग-राज । ९९ ।

मागसमाज । ३१७ ( इन्द्र-उपासक, कायो-  
स्वर्षव ) ।

माग-स्वविर । ५३३ ( सिंहक ) ।

मागित । २२९ ( उपत्याक बैजाकीमें ) २२९  
( कसवप ) ३१७ ( इन्द्र-उपासक ) ।

मागपुत्रिय निर्गट । ३३० ( बैवसायु ) ।

मादिका । ( = बादिम ज्ञानुष ) । ३३३  
( बजाकीमें पाठकिपुत्रके कोरिप्राय, इच्छे  
( और बैजाकीके बीचमें ) बसंताम रत्नी-  
परांका इच्छी कासते है । ये सिन्धु-  
कसव ) ।

माडक-ग्राम । ३७ ( सारिपुत्रक जम्मस्वाय,  
मगधमें ) ।

माडक माडम-ग्राम । ३३३ ( में सारिपुत्र  
रेवत कविरवमिष, उपसेम बंधतपुत्रक  
जम्म, मगधमें ) ।

माडमदा । ३२ ३३ १ ३ ( माधरिक-जाम  
बन हुमिष ) १ ३ ३१७ ३१८ ३१९,  
४३७ ( उपाकीके बीच होनेपर बाबपुत्रके  
हुंइसे खुल विद्वय फिर पावा से मने  
क्यों मरव ) ३८९ ३९ ( माधरिक  
बाधवप ) ५१३ ( राजगुह-बाकंदरके  
बीच अंधकडिका ) ।

माहा । ७ ( ११वीं वर्षापाल ) ।

माहागिरि । ३ ३३ ( र्ध हाथी जिते  
देववतके इच्छेके उपर सुववावा ) ।

माहीजंघ । जाम्ब । ३ ४ ( मलिकभदेवी  
का दूबारी जावलीमें ) ।

माकाय । ५१३ ( दीधनिकाय कादि ५ ) ।

मिर्गट । ( मिर्षव = बंते ) ८ ।

मिर्गट माटपुत्र । १ ३ १ ५ ( अमिर्षवक-  
इच्छके भेदक ) १ ९ ।

मिर्गट माटपुत्र । ३२७, ३३ ( बापुर्षामर्ष  
वर-बाही ) ४१४ ( माहदामी पुत्रकी इत

- समय ) ३१४ (उपाधिके शास्त्रार्थके  
विश्वे भेदना ), ३११-३३ (उपाधिके  
संवाद ) ।
- मिगंठ नायपुत्र । ७६ ( निर्मय ज्ञानपुत्र  
महाश्रीर जैनतीर्थकर ) ८५, ८९ ( बुद्ध  
गयाचार्य तीर्थकर ) १३८ ( सिंहके  
रोकना ) २१४ ( सर्वज्ञ ) २२  
( आबकोसे असकृत ) २६३ ( सर्व  
ज्ञताका दावा ) ३१९ २५ ( का दाव )  
३२ ( सर्वज्ञ ), ४४० ४४८ ( सूरज  
नामके अनुपादिकोंके कह ) ४६५  
( संकी ) ।
- मिगंठ । १३०, १९९ ५२२ ।
- मिमि । ३०८ ( महादेव-वैद्यक मिमिकाका  
वर्णनाका ) ।
- मिमांसक । ३३० ( देवता ) ।
- मिपाव । १९९ ( मीथकुक ) ।
- मिप्य । ३९ ( जसर्षी ) ।
- मीथकुक । १९९ [ चंडाक, मिथक वेणुकर  
( बसोर ) रथकर पुस्तक ] ।
- मेरंटरा मदी । १५ ( विराज म वि धना ) ।  
१६ ( के तीरपर बोधिहृद ) ।
- मैगम । ६५ ( भेड़ीसे कपर पद ) ।
- म्यप्रोच ग्रामणेर । ५३१ ( बुधराज मुक्त  
नका पुत्र, किंतुसारका पौत्र महावस्त्र  
स्फिर का शिष्य ) ५३२ ( अज्ञोक्त  
मेरक ) ।
- म्यप्रोधाराम । ५३ ( कपिकवस्तुमें म्यप्रोच  
ज्ञानका ) २१९ ३ ४ ।
- पकुंडक अमय । ५३८ ( सिंहक का राम  
रिक्त राजा ) ।
- पकुप कथायन । ४२० ४३ ( का दाव )  
५ ४ ( बिचो मरु, कात्पाचव ) ।
- पंचवर्गीय । स्फिर ५ । ( बीदिन्य आदि )  
१४ ( उद्वेगमें ) १ ११ ( कपि-  
पत्तमें ) २२ ( को उपदेश ) २३ २४  
( बीदिन्य ) २४ ( वप्य म्दिय महाभारत  
अवतार ) ।
- पंचवर्गीय मिथु । ३९ ( कोकर नामी ),  
३९१ ।
- पंच-शक्तिका । विभव-संगीत । ५१० ।
- पंचशाळा । अफजमान । १ ० ( मयधर्म ) ।
- पंचशिक्षा । पंचवर्ष-पुत्र । ८४ ।
- पंचासुपेदा । ३९८ [ में आकरी संकाश्य,  
काम्यकुम्भ सीरेव ] ।
- पटाधारा । मिथुषी । ४३८ ( कोकर  
आवस्ती म्दोहीकुक ) ।
- पठिङ्गलपुर । ३५२ ( मोदावरीमें तीन धोकर  
का दाव ) ।
- पयक । १६० ( लकवि ) ।
- पय्वैस्य । ३०० ( वर्मदा मदीके तीर सुना  
परातमें ) ।
- पयक । १९९ ( कवि ) ।
- पंधक सुस्त- । ४३० ( मगध राजगृहमें  
मोहिङ्गनापुत्र ) ।
- पंधक, महा । ४३० ( मगध, राजगृहमें  
मोहिङ्गनापुत्र ) ।
- परनिमित्तवशावर्ती । ३३० ( देवता ) ।
- परंतप राजा । ३९३ ( उद्वेगनका पिता ) ।
- पाटलिग्राम । ४९ ४९१ ( वर्तमान पटना  
नगर-निर्माण, बजिबोंको रोकनेके किये ) ।
- पाटलिपुत्र । ४९२ ( में यौतमहार, यौतम  
तीर्थ ) ४९३ ( अफजमान पुरधेवन को  
जाय पानी आपसकी कूरसे मय )  
५२८ ५३१ ( बुद्धिधारासे-पूर्वहार काठे  
शस्त्रमें राजाग्य ) ५३९ ।
- पांड्य-पर्वत । १३ ( रणधिरि का रणकूर  
राजगृहमें ) ।
- पांडुकन्यक शिमा । ८३ ( जब किपरदेव  
कोकमें में वर्णाशाम ) ।
- पाहुवास्तुपेव । ५२० ( उद्वेगनकाबीज  
सिंहकन्य ) ।
- पाताजिक । १९८ ।

पायसियिपि । (भाङ्ग) । २०२ (की मात्रा) ।  
 पारिखण्ड । ६२ ( विष्णु-वृद्ध ) ।  
 पारिजात । ११ ( विष्णुपुत्र ) ।  
 पारिसेयक । ७ ( में १ वर्ष वर्षावास ) ९०  
 ( में दक्षिण वर्षावृद्ध ), ९८ १ ( मद्र  
 छात्रके बीदे ) ।  
 पान्नी । ८ ( मूर्च्छापिण्ड ) ।  
 पाषा । ३५२ ४७० ( में विनाड वस्तुपुत्रका  
 मरण ), ४७८ (सर्विषादि वि देवदिया  
 में पुत्रकर्मार्थपुत्रका ध्यात्रवद ) ४९९  
 (से कुसीनारा ९ गम्पूति, ३ भोजन) ।  
 ५१ ( के मरुत छत्रिय ) ।  
 पाषेयक । ५२ ( पश्चिमकाठे देस ) ।  
 पापाणक खैरय । (गिर्बक) । ३५२ (मम  
 बमें) ।  
 पिगिय । मात्रक । ३५२ (प्रध) ।  
 भार्ग्याय पिण्डोड । ७६ ७ ( प्रतिहार  
 प्रदर्शन ) ७३९ (अम्म—मयच राज  
 गृह भाङ्ग ) ।  
 पिप्पली । ३८ ४ ( महाकाव्य ) ।  
 पिप्पलीवन । (कर्ममात्र पिपरिपा रमजुरवाके  
 पास स्वेचन वरकटिवा-र्याङ O T  
 Ry, वि वर्षाव), ५१ ( के  
 मीर्षे छत्रिय ) ।  
 पियवस्ती । ५११ ( असोक ) ।  
 पियवास । ५११ ( = पियवस्ती=असोक ) ।  
 पिडिग्दि धरस्य । ४३० (कोसक भावली  
 भाङ्ग ) ।  
 पित्रोतिक परिप्रायक । १५८ ( बाहरवा-  
 वन भापस्ती ) ।  
 पुकसकुल । १९९ ( बीचकुल ) ।  
 पुकसुस मक्षपुत्र । ४९ ( भाकर काव्यम  
 का सित् ) ।  
 पुकसानि । १९५ ( के प्रभुद्वयमममें ५५  
 बीज ) ।  
 पुराण । मात्रक । ३५४ (प्रध) ।

पुराणक अंष्टी । १७२ ( विवसारके रावर्ते ) ।  
 पुनर्षु । २३०, (अक्षयवितका छापी श्री-  
 ययिरीवासी) २३८ ।  
 पुराण । (स्वविर) । ५१५ ( का संगीतिके  
 पाठ को व मात्रा ) ।  
 पुराण स्वपति । ३८ (प्रसेववितका छापी  
 वान्) ४४६ ।  
 पुष्य । ( स्वविर ) । ५३६ ( सिंहक ) ।  
 पूरण । १७२ ( मीठकका दास ) ।  
 पूर्ण । ३५१ ( भाववि-सिप्य ) ।  
 पूर्ण । ३०६ ३०० ( बाबुष्माद् ) ।  
 पूर्ण काश्यप । ४२९ ( लीर्बकर ) ४३  
 ( अक्षयवादी ) ५ ४ (संष्टी) (देको  
 काश्यप पूर्ण) ।  
 पूर्णवित् । २०, ( मिश्र वस-सहाय ) ।  
 पूर्ण मैत्रायणीपुत्र । ७१३ (वर्म-कथिक )  
 ७३६ (अम्म साकवदेव अपिकवस्तुके  
 पास प्रोचवस्तु-माम भाङ्ग ) ।  
 पूर्वधर न । ३ ९ (विष्णुकाका पति मृगार  
 का पुत्र ) ।  
 पूर्ण । १४-१५ ( सुक्यताकी वासी ) ।  
 पूर्णायाम—३१०-३११ ( विनाड ) ३१९  
 (दक्षिणक पासाद्) ३१९ (मौर्यव्या  
 वन तत्पावपायक ), ३२० (में प्रवचाप  
 का प्रथम वर्षावास ) ३८४ ( देको  
 भावली ) ।  
 पोष्वरसाति । (भाङ्ग) । १८९ (उचङ्क-  
 वासी) १९५ ( इष्यवयक समीप ),  
 १९९ ( जीवकी ) ।  
 पाट्टुपाद । १०५-८५ ( के उपदेश )  
 १८९ ।  
 पोतलिय । (गृहपति) । १४५-५ (भापन  
 र्गुत्तराय, को उपदेश ) ।  
 पारवाल । ३५२ ( भाववि-सिप्य ) ३५९  
 ( प्रध ) ।

पौष्करसाति । २३ ( श्रीवर्षी ) । २६  
( सरवागत ) २६ ( बुद्धधारणपत्त ) ।  
( देखो पोरदारसाति ) ।

प्रकरण सात । (अभिधम्म) ५३६ ( देखो  
अभिधर्म-पिटक ) ।

प्रकृत्य कात्यायन । [ पञ्च कथापत्र ४ तीर्थ  
कर ] ७६, ८५ ८६ ( रामाचार्य तीर्थकर  
५ ) ( देखो पञ्च कथापत्र ) ( भाषकोंमें  
अध्याकृत्य ) २४९ ५१५ ।

प्रजापति । १९२ ( बरिह देवता ) ।

प्रजापती गौतमी मह्य—१०१ ( बुद्धदान )  
७३ ( प्रजापती-नाचना ) ७७ ( अष्ट  
गुरुवर्ष ) ७५ ( प्रमथा ) ११ ।

प्रतिष्ठान । [ प्रतिहास ] ३५२, ( अष्टक-  
याहिष्मतीके बीच ) ।

प्रत्यस्त वेदा । १ ( श्रीमान् वेद ) ।

प्रद्योत खड्ग—१७५, २६ ( कावचवच विहार )  
२८४-२८५ ( पूर्वद्वीपी श्रीवर्षकी चिकि-  
त्सा ) २८६ ( श्रीवर्षको घर ), ३९७  
( अष्टवर्षको पकड़ना कल्या विचार ) ।

प्रपाठ-पर्वत । ३६८ ( कुम्हार अर्धतीर्थ ) ।

प्रपाठ प्रतिष्ठान । [ प्रपाठ-प्रतिष्ठान ] १३७  
( इकाहावाद ) ।

प्रसेनजित् । कोसक । ७९, ८५ ८६  
( परीक्षण उपसक ) १४३  
( निवधारका मगिनी-पति ) ( पौष्कर  
सातिका प्राम-नापक ), २३-२६  
( उपसक ) २१० २१८ ( सरवागत );  
२० ( अ भाई कासिराज ) ३०  
( कोसकराज विज्ञानके व्याप्तमें )  
३२९ ( अर्धपेक काकी विद्यागुरु )  
( कोसकराजक, और भाव ) ३३८  
( अर्धपेकका डाकू ) ३७३ ३७५  
( —सेक ) ३६३ ( राजधराम  
विर्माक ) ३६८ ( मन्थिकरक कल्या

उत्पन्न होनेसे विद्य ) ३७२ ( अटिण,  
परिभ्राजक अर्धिकी प्रसासा ) ३६८  
मन्थिकरको ठाना ) ३७५ ( कल्या  
बजिरी, रामी वासभलपिपा पुत्र विदु  
वच, अर्धिकीसक-अधिपति ) ३९७  
( अष्टकमें विदुवचके साथ ), ४६ ४११  
१२ ( आनन्दसं उपदेश अर्थ ) ४९  
( अजातसत्रसे पराजित ) ४१ ( मि  
वर्षी ) ४४ ४६ ( सिद्धा राजप्रति  
बन्धुअष्टकको मरवावा करारवचक वि-  
वासपत्त ), ४४५ ४७ ( मयवा-रुमें  
प्रेम ) ।

प्राकरणीक अष्ट—१ ६३ ।

प्राचीनक । ५२४ ( पूर्ववाके देस ) ।

प्राचीन कथादाव । ( देखो शाव प्राचीन-  
वच- ) ९३ ( में अतुप्राम ) ।

प्रातिहार्य वेवायरोहण—१८७ ( संकल्पमें ) ।

प्रातिहार्य, यमक—१७६ ७७ ७८, ८१  
८२ ८३ ८४ ।

प्राधरिण भाद्रपण । ( देखो भाद्रपण ) ।

प्लक्षगुहा । २४३ ( श्रीसाम्बीके पास पणोषा  
पहाड़में ) ।

पुरख ( पुण्य ) देव । ५३६ ( सिद्ध  
स्वरि ) ।

बनारस । ( देखो बनारसी ) ।

बनारसी पत्त । ४७२

बन्धुअमन्त । ४७०-४३ ( प्रसेनजित्क  
सहपाठी और कोसप्रसेनपति राजाजसे  
धिरप्ये ) ।

बानक लोचकारगाम । ९३, ( श्रीसाम्बी  
से पारिषेकके शर्ममें ) ।

वायुकाराम । ५२६ ( वैशाखीमें ) ।

वायुरि । भाद्रप । ३७९, ( के सिद्ध ) १३—  
अर्धिक तिथ मंत्रव पूर्व मंत्रगू अर्थवक,  
उपसिच मन्त्रद्वयक तावेष्कक्य रूप

कायुष्मी, यशसुख उद्वेग पोसाक  
ओबराज पैल) ३७९ ३९, ( प्रसिद्ध-  
किष्क प्रौढित गुरु, पठिहामने ) ।

विषसार । १३ ( प्रथमदसंब ) ३३  
( मगध बेलिक ) ३७ ( उपासक ) ३५  
( बेलुबबदाव ) ३७ ३८, ८३ ( या  
विहारी ) ७८ ( लीनघी पोषण वदे कइ  
मगावका राजा ) । १७३ ( मसेनकिष्का  
धर्मिणीपति ) २१७ ( पुत्रके साथ सुख  
विहारी ) २१९ ( पुत्रवैतका प्राय-वापक )  
२१७ २१८ ( शरण्यपथ ) २३९ ( शरणा  
गठ ) २७८ २८१ ( भगवत रोग ), २९०-  
२९३ ( अक्षिपैकके कथनी प्रतिज्ञा ),  
३ ५ ४ ४१ ( स्वसुर, महा  
कोलक ) ४२७ ( मृत्यु ) ४३५  
( अज्ञातसुख मारका स्वीकार ) ।

सुख । ४२५ ( शक्ति-वचारी ) ३९५ ( सु कठ )  
३९७ ( रोगि-सुख ) ३९७, २९७  
( विधयववाही ) २५ ( आनकीसे  
सकृप ) ५ ५ ( अक्षिपैकके ) [ का  
साम्बवाद-७९ ] ( सर्ववारी ) २३७ ( अ-  
क्षिपैक ), ४८९ ( सहयोग ), ३८४  
( शरीरमें अराधिह ) ४४८ ४९९ ( के  
साहायक ८ वर्ग ) ३२७ ( सर्वथा ) ।

सुखदाठ । ५१ ।

सुखनिर्यापिकाण । ५३ ५३७ ( अज्ञात  
प्रभुके आरने वर्गमें ) ।

सुखस्नूप । ५१ ।

सुखघोष । ( आनार्क अइकथाओंके रथ  
विता ) ।

सुखरसित । ( ५३९ मिहक स्थिर ) ।

सुखी । ५ ९ ( अक्षिपैकके ), ५१ ( उर  
चातुमें आय ) ।

बेटीपन प्राण्य । ५ ९ ५१ ( उर  
चातु आता ) ।

बोधगया । ५ १ ( पचासे ७ मीक रुचिक,  
बैसा उल्लेखा ) ।

बोधिमंड । १४ ( बोधयथा संरिक्क  
हाण ) ।

बोधि-राजकुमार । ३८४-९३ ( भगने  
सु सुमार गिरिमें ) ३९३ ( प्रचोतका  
बोधि उद्वेगका पुत्र ) ।

बोधिवृक्ष । १५ ( बोधयगामे ), १६ १७  
( उद्वेकामे, वैरंकराके तीर ) ५३९

प्रज्ञकायिक । २३७ ( देवता ) ।

प्रज्ञाचर्य प्राण्य । १९ ।

प्रज्ञावत् । ५१३ ( सुमित्र परिमादक  
ज्ञान सुख-मार्गसक ) ।

प्रज्ञालोक । १९४ ।

प्रज्ञालोकगामिनी प्रतिपत् । १९४ ।

प्रज्ञा । १९ १९१, १९३ ( पुत्र ) १९  
( की सधीक्या ) ।

प्रज्ञा, महा-१ ३, ८४ ( देववरोद्व )  
८५ ( अचारी ) ।

प्रज्ञा सदापति । १९, २ ।

प्रज्ञागाम । ४९९ ४९८ ( बैसाकीसे पुत्री  
काराके सास्तेपर प्रवृत्त पद्म ) ।

प्रज्ञासक । ५३७ ( साधनकीहीपमें प्रचारक ) ।

प्रज्ञासुख माय्य । ३५२ ( अस्त्र ) ।

प्रज्ञिय । पंच-वर्मीव ) १४ ( उपरतपका )  
१३ ( अक्षि-पुत्र ) ३९४ ( अक्षिपैकके  
साथ अक्षित ) ४३६ ( अक्षिपैकचातुः  
कारक कपिलचल, सक्षिप ) ।

प्रज्ञिय सवुचुत्त-१ ४३६ ( अक्षिपैकके  
आवस्ती यवीकु ) । ५७ ( आनवाज ),  
५९ ( अक्षिपैकमें ), ५७ ५८ ( अज्ञा  
अज्ञोत्तव ) ।

प्रज्ञिया । १४१ १४२ १४४ सुंवेर, ( में  
आतिवाव ) ३१८ ।

प्रज्ञिकल्प । १३२ ( ये माठ पुत्र ) ।

मद्रवठिका । २८५ ( प्रयोतकी हविनी )  
 मद्रवर्गीय ( तीस ) । २९ ( कौप्रव्रज्जा ) ।  
 मद्रा कात्यायनी । ४३९ ( क्षात्र कपिक  
 बलु, राहुकमाता, सुप्रबुद्धधायन-पुत्री )  
 मद्रा कापिष्ठायनी । ३८ ( महाकाश्यपकी  
 पूर्व-मात्री ) ३९, ४३ ४२ ( सीद्वय ),  
 ४३८ ( कम्म मद्रदेस काकका महा  
 काश्यप-मात्री ) ।  
 मद्रा कुंडलकदा । ४३८ ( मगध राजगृह  
 जेडिफुड ) ।  
 मद्रायुध । ३५२ ( बाबुरि-दिप्य ) ३५८ ।  
 मरंड काष्ठाम । १३४ ( कपिकबलुमें भय  
 कात्र का पूर्व गुडमाई ) ३३५ ।  
 मरुत्ताज । १५५ ( मन्त्रकर्ता कपि ) १९  
 २ ४ २ ९ ।  
 मर्ग [ मगध ] देस । ८७ ( जिसमें सुसुमार  
 गिरि-बुवार ) ३८४ ४३९ ।  
 मस्लिक । १८ ( तपस्सुख माई उरुकेभमें )  
 १८ ( उपासक ) ४३९ ( कम्म — कसि-  
 तंजय नगर कुर्विकगीह ) ।  
 भारुत्ताज । कपिक- २ ९ २३२ ( जोप  
 साहमें ) ।  
 भारुत्ताज । मानक । १८९ ( वारुत्त-दि  
 प्य हृच्छानगकबामी मजसाकरमें )  
 १९ १९५ ( उपासक ) ।  
 भारुत्ताज सुंदरिका । ३९१ ३९ ३९९  
 ( कर्हाद ) ।  
 भृगु । ५७ ( अनूपिगामें-मज्जित ) ५९  
 ( मज्जपावमें ) ९३ ( बाकककोवकार  
 गाममें ) १५५ ( मन्त्रकर्ता कपि ) १९  
 २ ४ २ ९ ।  
 भैसककवचन । ३८४ ( सु सुमारगिरि =  
 बुवार में ) ३८४ ( रेको सुसुमार  
 गिरि ) ३९३ ।  
 भोगनगर । ३५३, ४९८ ( बैसाहमें कुसीनारा  
 के घालेपर हुसरा पहाव में जानवैल ) ।

भोज । ५ ( वैषड ) ।  
 मफकली गोस्ताळ । ( मरुतीगोस्ताळ ) ।  
 ७६, ८९, ८७ ( तीर्थकर ) २५९  
 ( भावकोंसे जसकृत ) २४९ जम्बी-  
 बकोंके तीव तीर्थात्ताकोंमें ) २४९,  
 ४२७, ४३ ( ज्येष्ठवादी ) ५ ४ ।  
 मलादेव । राज्या । ३७८ ( मित्रिकाका  
 भमराजा ) ।  
 मलादेव आस्रघन । ३७७ ( मित्रिकमें )  
 मगध । ( देस ) । १९, ३१ ( में उदवेका )  
 ३४ ३८ ४९ ( में महातीर्थ-ग्राम ) ४७  
 ( में गिरिकक ) ५२ २१६ ( में काणुमत  
 आस्रघन ग्राम ) २२८ ( में पापाक-  
 कैव ) ३५२ ( में पापाक-कैव )  
 ३८ ( परमा यथा जिडे इजरीबागका  
 कुड माय ) ४३२ ३८ ( में राजगृह  
 उपतिपग्राम कोकितग्राम महातीर्थ  
 ग्राम ) ४३९ वाककग्राम । ४४ ( मपि-  
 कसंड ) ४३९ ( में उरुकेका सेगनी  
 ग्राम ) । ( में ४३९ वेसुकंडकी नगरमें ) ।  
 मगध-संग । ७८ ( ३ बीजव ) ।  
 मगधनाली । ( = १ सेर ) । ४ ४१ ।  
 मगधपुर । ३५२ राजगृह ।  
 मगधमहामात्य । २९ ( मपकर आस्रघन )  
 २९१ ४८४ ४९१ ( सुवीय बर्षकार ) ।  
 मंहुडकायम । ३७७ ( सुनापरीतमें ) ।  
 मंहुड पर्वत । ७ ७९ ( १४ वर्षावास ) ।  
 मच्छिका संड । ( मगधमें ) । ४३९ ( में  
 शिच महपडि ) ।  
 मज्जिमनिकाय । ( रेको ग्रंपवृषी ) ।  
 मपिचूकक ग्रामणी । ५१९ ।  
 मंडिस्स परिव्वाजक । २३१ ( कौसाव्मीमें )  
 मधुप । ( मधुरा ) १२८ ।  
 महकुच्छि मिगदाय । [ = मज्जुच्छि पृग  
 दाव ] ४९९ ( राजगृहमें ) ।



मद्रदेश । ३८ ( रिशर्कीका जगार ) ४३८  
 ( में जाऊका = सायक ) ।  
 मध्यदेश । १ ( सीमा ) ।  
 मध्यम जनपद । १०५ ( कोसी-कुम्भेश्वर,  
 विष्णु हिमाचलके बीचका देश वही  
 मध्यम मध्यमरुद्र मी ) ।  
 मध्यमरुद्र । १३४ ( १ बोजन ) ।  
 मध्यम-स्थविर । ५३० ( हिमचालमें  
 प्रचारक ) ।  
 मर्यादिक स्थविर । ५३३ ( महेश्वर  
 स्थविरके उपसंप्रदाचार्य ) ५३६  
 ( कश्मीर-नीबारमें प्रचारक ) ।  
 मनसाकण्ट । १९ ( कसेकमें अचिरवतीके  
 दक्षिण किनारे ) १५३ १५४ ।  
 मंत्री । ५ ( वैश्व ) ।  
 मंवाकिनी ( वृह ) । १४५ ।  
 मन्वार पुण्य । ११ ( विष्णु पुण्य ) ।  
 मंदिर । ३५२ ( कुसीबारा और पावाके बीच ) ।  
 मन्त्र । ५५ ( में अन्वेषिका ) । ४५३ ( में  
 पावा ) ५१ ( में पावामें सुद्धपत्तु  
 स्तु ) ३८ ( कोसककी सीमापर  
 देवविद्या धार सारकके किछे ) ४३६  
 ( अन्वेषिका ) । १५५ ( में कुसी  
 बारा ) । १ २ ( का वासिष्ठ पौत्र ) ।  
 ५ ९, ५१ ( कुसीबारा ) । १५५  
 ( वर्तमान सैन्धार धारि ) ।  
 मन्त्रपुत्र द्रव्य । ४३० ( मन्त्र, अन्वेषिका  
 बारा अन्वेषिक ) ।  
 मन्त्रिका । ३६ ( राभीको कन्या उत्पन्न ) ।  
 ३ ५ ( सुद्धमें अन्वेष प्रसन्न ) । ४४१  
 ( अन्वेषिक वैवायविकी आर्षा ) ।  
 मन्त्रिकायम । ( देखो किङ्कनीकर ) ।  
 महर्षि । १५२ ( देवता ) ।  
 महाकोसल । ४ ९ ( मसेवकिन्धु पिता,  
 विजसारक स्वप्न ) ।

महातीर्थ [ महातिथ ] । ३८ ( मगधमें  
 महाकाश्यपका जन्मस्थान ) ४३९ ।  
 महादेव स्थविर । ५३३ ( महेश्वरके  
 आचार्य ) । ५३६ ( महिसक महकमें  
 प्रचारक ) ।  
 महानाम । ( पंच-वर्गीय ) । २४ ( बर्हील ) ।  
 महानाम शापय । ५६ ( अन्वेषक मर्षी ) ।  
 २१२ २१६, २३३ २३४, २३५, ४३९  
 ( धारक अचिरवस्तु, का अन्वेषक  
 अन्वेष आता ) ४३९ ४४१ ( की दासी-  
 पुत्री वासम अचिरा प्रदेवकिन्धी  
 महिषी विद्वज्जनी माता ) ।  
 महापुण्यकक्षण । १६० ( सासुत्रिक ) ।  
 महाबोधियुद्ध । ३ ( बीच-पवा वि  
 पवा ) ।  
 महामंडल । १३४ ( ९ ० बोजन का ) ।  
 महारक्षित । ५३० ( कोसकके ममें प्रचारक ) ।  
 महायज्ञिक आतुर । ३ १९ १३०  
 ( ४ देवता ) ।  
 महायज्ञ । ५३० ( में महाधर्मरक्षित  
 प्रचारक ) ।  
 महाधि । २२८ ३१ ( कीङ्कनी किङ्कनी ) ४४  
 ( किङ्कनी कुमार-मसेवकिन्धु अन्वेषक-  
 का सहपाठी वैश्वकीमें आचार्य ) ।  
 महापद्म । ( देखो प्रंय-सूची ) ।  
 महापद्म कूटागारशाळा । ६० ( बजार,  
 वि मुज्जकरपुर ) २२८, २३१ ( देवताकी  
 में ), ४९९ ।  
 महाविजित राजा । २१८ २२४ ।  
 महाशाळ मालक । ८३ ( देवकोकमें एक  
 बंगला ) ।  
 महासीय । ५३९ ( सिद्धक-स्थविर ) ।  
 महिसक मण्डल । ५३६ महेश्वरके आस  
 पायक विष्णु-सतपुत्रके बीचका देश ) ।  
 मही । ( र्घकी ) । १४५ ( का अन्वेष ) ।

महेन्द्रकुमार । ५३२ (अष्टौक पुत्र), ५३३  
(उपाध्याय माग्यकियुक्तस्विस आचार्य  
महादेव उपसंपदाचार्य मर्यादिक)  
५३६ (ताम्रपर्णमि प्रचाराय पाठकियुक्तसे  
शक्तिनागिरी विविद्या हो उत्पत्ति  
उद्भवमें) ५३८ ५३९ (असोकके  
धर्मिकके अठारहवें वर्षमें अंकारमें) ।  
मागदिय शाह्यण । १ ८ ११ (सर्वाह  
अर्हत्त्व) ।

मातंगारण्य । ७१८ ।

मातङ्गी । (देवपुत्र) ८४ ।

मातुगिरि । ३०० क्षुमापरांतमें ।

मायादेवी महा— । १ ८३ (तुपितमें  
अर्चिस) ८४, ५११ (की मूर्ति) ।

मारकम्पार्ये । १ ९ ।

मारधोपण्णा । १५ ।

मारयुद्ध । १५ ।

मार-संखना । १ ७ ।

मार वशार्तद्विष । १ ।

मारळोक । २९७ ।

मार । (अिककलीमें) २७५ ।

मारसेना । १५ ।

मायक-रूप । ५१८ (सिद्ध मासाभर का) ।

माहिष्मती । ५३६ (महेन्द्र, इन्दोर राज्य) ।

मिगाय । [मृगजु] । ३३४ (बुद्धकोटिवर्षासी  
राजमाफी) ।

मिथिला । ३०० (महादेव आधर्ममें भग  
वान्) ३०० (विदेहमें) ।

मिथकपर्यंत । (= वीत्पर्यंत) । ५३०  
(अनुशासपुरसे पूर्व) । ५३८ (अमृत्यक  
मिहितक मीलोभ) ।

मुहुटवर्षमक्षय्य । ५ ९ (कुपीवारीमें)  
५१ ।

मुकलिस्यु मागराज । १८ ।

मुयमिन्दुसुस । १८ (बोभिसंहर) ।

मुटसीय । ५३८ (सिद्धकृष्ण) ।

मुड । राजा । ५३८ (अनुष्णपुत्र, मगाधमृप) ।

मुडक महा— । ४२९ (उपकाय पुत्र भार  
घातक) ।

मृगदाय कण्णत्थलक— । ३९४ (अनुष्णमें) ।

मृगदाय मेसकल्लायन— । ८७ (सुसु  
मार गिरिमें) ३८४, ३९३ ।

मृगलंडिक समण-कुत्तक । २९७-२९८ ।

मृगाग्नेष्टी । ३ ६ । (आवस्तीका अष्टी)  
३ ७ ३ ८ ३ ९ ।

मेधिय । २०६-७८ (उपरवाक स्वप्नद्वारा)  
३१४ ।

मैहकपुहपति । १४२ ४४ (अहिषावासी)  
१४४ ४५, ३ ६ (अनन्यक पिता) ।

मंतलूप । [मिथलूप] । ४४ (घातप देवामें)  
४४७ (नगरकसे ३ मोडक) ।

मेत्तगु माणवक । ३५१ (पदक) ।

मेत्तपारण्य । ७१८ ।

मैत्रगू । ३५१ (बाबरि-सिन्धु) ।

मैत्रायणीपुत्र पूर्ण (इको पूर्ण मन्त्रायणी  
पुत्र) । (= संतापी-पुत्र) ३१४  
(अमन्यके पुत्र) ।

माग्यस्तान । (देवो माग्यव्यापक) । २३०  
(से अथमिन् पुनर्भुक्त इव) ।

मोग्गल्लियुत्त तिस्स । [मौग्गल्लियुत्त तिप्प]  
५३९ (सिगावसं मधोत्तर) ५३ ३,  
(अधोके शुभ मर्दिदक मी) ५३३  
५३३ (महेन्द्रके उपाध्याय अहोर्ग  
पर्यंतपर) ५३४ (आह्वान) ५३५  
(अन समण बुद्ध) ५३६ (अपाकपुत्र  
करनविर्माण) ५३६ (सिगावसिन्धु) ।

मोघराज । (बाबरि-सिन्धु) ५३६ ।

भोधराज माण्यक । ३५९ ( प्रथ ) ।  
 मोरिय । ( देखी मौर्य ) ।  
 मीहस्थि-शाहज । ५१२ ।  
 मीहस्थ्यायन । ३६ ३७ ३८ ( सारिपुत्रसे  
 मुल उपसंस्कृत ) ५३ ५५ ( राहुकके  
 कपलपदाता ) ७७ ( बंधुमर्ग ), ८२,  
 ८३ ( बर्मोपदेश करते रहना ), ८४ १ १  
 ( कोर्सककह ) १ १ ( १७ म सिल्वोंमें  
 द्वितीय ) ३१५ ( उपस्यकपद-बाचना )  
 ३३९ ( रवांराम-विमालके उल्लासवाचक )  
 ३८३ ४ ( देवदत्तके महंताई मौर्यके  
 समक ) ४ ४ ( देवदत्तके पास ) ४ ५  
 ४३३ ( महर्षिक ) ४२७ ( देवदत्तकी  
 परिचर कोहना ) ४३६ ( ब्रह्म—मगधमें  
 राजगृहके पास कोठिकाममें ) ४३८  
 ( अग्रजाचक ) ४८२ ( अ परिनिर्वाण  
 बपहारा बगहन क १५को ) ४८३ ।  
 मौर्य । ५१ ( पिप्पलीबनके अग्नि पुत्र  
 वाहु पाप ) ।  
 धमवसि [ धमसि ] । १५५ ( मज्जिम  
 अग्नि ), १९, २ ४, २ ९ ।  
 धनुना बरी । १४५ ( उदयम ) ।  
 धनन ( देव ) । १२८ ( कसी तुकिष्ठाव  
 वा बृवान । देखो मोष ) ।  
 यज्ञ ( बाराहकी ) । २७ २५ ( बर्हत्स )  
 २९ २७ ।  
 यज्ञ-पिता ( अग्नी ) । २४ २५ ( उपस्यक ) ।  
 यज्ञ-माता । २७ ( उपसिध ) ।  
 यज्ञ कर्कड-पुत्र । ५२३ ( सिद्ध ), ५१८  
 ५९ ( वैशाखीमें अविषय होकना ) ५२५  
 ( पासेवकके प्रतिनिधि ) ५३६ ।  
 याम ( देवता ) २३७ ।  
 युवाधर । ११ ( पर्वत ) ८९ ।  
 योगक धर्म-रक्षित । ५३७ ( अचरितमें )  
 प्रचारक ) ।  
 योगकलाक । ४७२ ( शाब्दिक, सिद्धि

मिश्र पूजाव अर्द्धिमें महारक्षित धर्म  
 प्रचारक ) ।  
 रक्षित, पुत्र-अष्ट । ( देखी पारिषेवक ) ।  
 रक्षित ( स्पविर ) । ५३६ ( अचरितमें  
 प्रचारक ) ।  
 रथकार । १६९ ( मीचकुक ) ।  
 रथकारकह । १७५ ( हिमाकधमें ) ।  
 राग । १ ९ ( मार उण्या ) ।  
 रायकाराम । ३९३ ( अचरितमें ) ।  
 राजगृह । १२ ( जन्मदिपासे ३ योजन )  
 ३३, ३५ ३६ ३७ ४२ ४३ ४४  
 ५१, ५२ ( वेतुवन ) ९ ९३ ९४  
 ९५, ९६ ( द्वितीय चतुर्थ वर्षावास )  
 ७६ ७७ ( अष्टमीकी अन्त-मार्ग ), ५२,  
 ९ ९३ ( क्षीयकधमें अनायविषक ) ।  
 ८७ ( में गिरमा समजा ) । ९  
 ( अचरितक ) । ९३ ( सिध-हार ) ।  
 ७ ( द्वितीय चतुर्थ, १७वर्ष, २ वर्ष  
 वर्षावास ) । २१४ ( म एमकूट,  
 कपिविदि ककडिक ) । २४८ ( में  
 १७वर्ष वर्षावास, वेतुवन ) । २४८  
 ( मोर-निवाप परिमात्रकराम ) । २९२  
 २७ ( वेतुवन ) । २८२ ( मही निवम ),  
 २८८ ३५९ ४१३ ( वेतुवन ), २ २  
 ( नाकागिरि हाथी ) । ४१३ ५२  
 ४८९ ( गृभकूट ) ४२६ ४२८  
 ( मीचकका नाकनन नगर और गृभकूटके  
 बीच ) ४४८ ( में ३२ द्वार ९३ छोटे  
 द्वार ), ४६९ ४३८ ( में उत्तर महा  
 नाक—विशोक मापहात्र कुक-विक,  
 महार्पक, कुमार अक्षय, राव  
 धर्मविज्ञा अगाकमात्र बीचक और  
 मुल अकरा अन्तकाता ) ४४  
 ४४४ ( में पदसे बाहर असेवत्रिकी  
 पक्षु ) ४८६ ४९९ ( में गृभकूट, मोर  
 पदात वैमारगिरिकी अचरितमें ककडिक

सहितचनमें सर्पशीलिकपम्मार लपोदाराम  
 बेलुवन कीधकम्बचन मन्त्रकुञ्ज सुय  
 दाम ) ५२ ( महाभगर ) ५१  
 ( कुसीनारा स २५ योजन ) ५११  
 ( में प्रथम संगीति ), ५१२ ( प्रथम  
 पाराशिक द्वि पाराशिक, बेलुवन )  
 ५१५, ५१९ ५२ । ५३ ( बुद्धस्वप )  
 ५३ - ११ ( पूर्व-वृद्धिय मगमें धातु  
 निवाह ) ५२६ ५२७ ( में सुत-विर्मग )  
 ५३७ ( को धेरे शक्तिष्वागिरि ) ।

राजगृहक अष्टौ । ६३ ( जनाकपिडकम  
 बहभोई ) ।

राजस्य-कुल । १६९ ( क्षत्रियस पुत्रक ) ।  
 राजमाता-विहार द्वार । ५ ( जनु  
 राभापुरमें ) ।

राजागार । ५३३ ( संबलद्विक्रममें राजगृह  
 बाकन्दके बीच ) ।

राजागारक । ७८९ ( संबलद्विक्रममें ) ।

राजापतन गृह । १८ ( कोविर्मदपर ) ।

राघ । ( माहल ) । ५ ( सारिपुत्र-शिष्य ) ।

३१७ ( बुद्ध-उपस्थाक ) ७३८ ( जम्म  
 मगध राजगृह माहल ) । ७३८ ।

राम । ५ ( रीचक ) ।

रामग्राम । राम्य । ११ ( शाक्योंके बाद  
 कोशिय उनके बाद यह ) ५१ ( भागों  
 से वृद्धित बुद्धबातु जो पीछे कडा  
 नजुराष्टपुरके क्षेत्रमें गई ) ५१ ( के  
 कोशिय क्षत्रिय ) ।

राष्ट्रपाठ । ३२९ ( बुद्ध-कोहितक मन्त्रकुञ्ज-  
 कका पुत्र ), ३३ ( मन्त्रार्थ-अनघान )  
 ३३१ ( अर्द्धक ) ७३७ ( जम्म-कुल बुद्ध-  
 कोहित रीच ) ।

राहु असुरेन्द्र । ५१९ ( महत् ) ।

राहुड । ९ ( जम्म एक सप्ताहके होबैपर  
 कमिनिष्क्रमण ) ५३ ( सारिपुत्र शिष्य ),

५५ ( के मौद्गल्यान काश्यप आचार्य )  
 ३२, ३१-३३ ( को उपदेश ) १ १ ( १२  
 भाषकोंमें १२ बें ) १७२-७३ ( भाषना-  
 क्रम ) ७३७ ( जम्म—आनन्द कपिल-  
 वस्तु सिद्धार्थकुमारके पुत्र ) ।

राहुलमातादेयी । ३, ७ ८ ( देखो महा  
 कात्यायनो ) ५३ ५७ ।

रुद्रदाम । २९२ ( का कथापन ) ।

रेयत । ५९ ( बलकपावमें ), १ १ ( १२ में  
 ९ बें ) ३८३ ( चेतवचमें ) ।

रयत-सद्विरयनिय । ७३७ ( मगध नाकक-  
 ग्राम सारिपुत्रके अनुज ) ।

रजतमिथु । ५२१ २२ ( महोगय पर्वतपर  
 सीरेष्य संकयन कान्धकुम्भ बुद्धवार  
 भगलपुर और सहज्यतिमें ) ५२३  
 ५२७ ५२५-५२८ ( द्वितीय संघीति में  
 सुम्भुर मिथु ) ५२५ ( पावेचक्योंके प्रति  
 विधि ) ।

रेयत कंला— । ७३७ ( कोसक भावकी  
 महाभोगकुम्भमें ) ।

रोजमाल । १५५ ( कुसीनारामें ) १५६  
 ( उपासक ) ।

रोहण । ५३६ ( सिंहक स्वविर ) ।

रोहिणी मन्त्री । २३७ ( आनन्द-कोशियकी  
 सीमा ) ।

महापुरुष ससन । १९६ ( = सामुद्रिक ) ।

ससन । ५ ( रीचक ) ।

सट्टकिका । १९७ ( मन्त्रिषा ) ।

लिच्छयी । २९५ ( गण-राजा ), ७७१ ( बंधु  
 कसे बुद्ध ) ७८७ (—बैभवघाडी गण-  
 राजा ) ७८९ ( ५७२ ई पू में पतन )  
 ७९७ ९५ ( जयसिंहाचेरोंकी धीति )  
 ५ ९ ( क्षत्रिय धातु प्राप्ति )

सुम्भियनी । ( कमिनाई स्टेसन नातनवा  
 O T Ry नवाकडी तराई ) ५ १

(वशाबीबखान) २,३ (कपिलवस्तु देव-  
बहने बीच) ।

शोकधातु साहित्यिक । ११ (सहजमहाद  
समुदाय) ।

शोकपायत । ११० (शास्त्र) । ११९ ।

शोकसासाद । ३०२ (अपुरायपुर ककर्म) ।

शोकली । स्वर्णि (कोसल, आषष्ठी माहण) ।

शोककुल । ४३८ (बल कौशाम्बी शैल) ।

शोकमुदा । २९० (बैसाजीके पास २९८,  
२ ५३३ (वर्ष) ।

शोकस । ४३० (कोसल आषष्ठी माहण) ।

शोकनोत्तर परिष्वायक । २३२—३३  
(बैसाजीमें) ।

शोकनकुमारी । ३०५ (प्रसेनजिन्की  
कन्या) ।

शोक-धर्म । ४८५ ।

शोकपुस्तक मिथु । ४ ४ (५ शेषवचक  
साथ चले गये थे) ।

शोकपुस्तक । बैसाजिक । ५२ ५३१ ५३२  
५२५ ।

शोकियमहित । (गृहपति) २९० (अधर्म)

शोकपाणि । १९९ (पद्य) ।

शोकनी । देव । १३० २९३ २९८ (में  
हुमिष्ठ) । ३८ (मरुत्की सीमापर

अपरान्त मुजफ्फरपुर जिन्हे, धर्मदा धार  
वके कुछ माग) । ४३९ (में बैसाजी

हस्तिप्राम) । ४८३ (में उज्जयिणी) ४ ४  
(में उज्जयिणी करके धजातसुबुद्ध

हराव) ४८५ (के राज्याधिकारी) ४८५  
(का ईसाक) । ४९१ (को रोकेनेके किन्हे

पाटकिपुर नगर बसावा) ।

शोकगामिनी । ५४ (दिहलेकर) ।

शोकवंध । ४३८ ४३९ (में कौशाम्बी) ।

शोक-कौशाम्बी । ३५२ (कौशाम्बी और वि  
दिवाके बीच) (बंसा वि. सागर) ।

शोकपासी । ५३३ (उत्तरीकनारा जिन्हे) ।

शोक्य । (पंचवर्षीय) २४ ।

शोक्य महा-। ५३३ (श्वशुरप्रामने के-  
गुठ स्थिति) ।

शोक्यकार शास्त्र । २९ (मध्यमशास्त्र),  
४८४ ४८० (बकिचोका विधिप्रथमशा-  
स्त्र) ४९२ ।

शोक्य-बलाहक । ८ (शैवपुर) ।

शोक्य । १९ (संस्कृत कवि) २ ४  
२ ९ ।

शोक्यर्षी देव । ११ (मार) ।

शोक्यप्रक शैत्य । ४४ ४९ (बाहंदा और  
राजपुरके बीच सिद्धाव), ४९९ (बै-  
साजीमें) ।

शोक्यवलाहक । ८ (शैवपुर) ।

शोक्यस्यायन । १५८ (बक्यबन विकोक्ति  
परिभाषक) ।

शोक्यक । १५५ (संस्कृत कवि) १९ २ ४  
२ ९ ।

शोक्यवेय । १५५ (संस्कृत कवि) १९  
२ ४ २ ९ ।

शोक्यसी । २ (कपिलवस्तु समुदाय) २१  
२२ २४ २७ २८ ५९ ७ (प्रथम

वर्षासास) १३४ (पुराणा बबारास राज  
बाद का किन्हे) १३५ (पौषीपक)

२५३ (कपासके बल मघापुर) २८३  
(बेटी) ३ ५, ४३८ (में उज्जयिणी कल्पन

का कर्म) ४३८ (में सुमिदा) ५ ९  
(महालगर) ।

शोक्य । ५ ९ (कुसीबाराके मरुत्) ५ १  
बादिष्ट । मानवक । १८९-२५ (पोषक

साहित्य सिन्धु मयसाकटमें) १९५  
(अपासक) ।

शोक्य दादचीरिय । ४३० (शक्ति एव  
असतकक व्यासक द्वारा) ।

बाहियराष्ट्र । ४३० (बाहीक सतकज, ज्वासी  
के बीचक प्रवेश) ।

बाहीक । ४३३ (देखो-बाहिय) ।

बासम-खलिया । ४४३ (महानाम धानक  
की हासीपुत्री) ३०५ (प्रसेबजित्की  
राणी) ।

बासमगामिक । [ बर्षामप्रामिक ] । ५२५  
(हि संगीतिमें प्राचीनक-यतिविधि) ।

बिहयकुमार । ५३० (ताम्रपत्रीक प्रथम  
राजा) ।

बिह्वरम सेनापति । ३०५ (प्रसन्नजित्का  
मिपुत्र), ३१५, ३१० ४४ (बासम  
खलियाक पुत्र) ४४०-४३ (पितासे  
राम्य छीलना साकय-बात मरम) ४४३  
(पर जजातसत्रु पढ़ाई करवा चाहता  
था) ।

बिबिशा । ३५३ (बिसनयर विष्णु आकि-  
पर-राज्य) ५३० (बेजिस) ।

बिबुहवेश । ३०८ (में सिधिका) ।

बिनयपिटक । में प्रथम—बिर्मग (पारा  
जिक पाषिपि), खंपक (महानग्य,  
पूरुवग) परिवार । ५३६ (कहुमें) ।

बिनययस्तु । ५२० (= खंबक) ।

बिजयसंगीति । ५२८ (सप्त-शतिका) ।

बिजुसार राजा । ५३ (के अशोक तिप्प  
कुमार जादि १ पुत्र ब्राह्मणक)  
५३१ (का ज्येष्ठपुत्र सुमन) ५३८  
(राज्यकाल) ।

बिष्वाटकी । ५३८ (गवास ताम्रछिणिक  
रासेमें) ।

बिपक्षी । [ बिपस्ती ] । १३३ (भइकल्पक  
कुर), ।

बिमल । २० २८ (बस-सहायक सिद्ध) ।

बिशापा । १ १ १३१ ३ ५ ३१२ (अम  
आदि) ३ ६ (पिता सावैतका कड़ी)  
३१२ (सूयारकी माता) ३१० १९  
(बर्षाराम-बिर्माक) ३८२ (नारीक)

मरण गया), ४ ५, ४३९ (कोसकमें  
आवली बिस्य) ।

बिम्बकर्मा । ८ (देवपुत्र) ५११ ।

बिम्बभू । [ बस्सभू ] । १३२ (मदकल्पके  
कुर) ।

बिम्बामित्र । १५३ (मंत्र-कर्ता कवि) १९  
२ ४, १ ३ ।

बीजक । २१६ (मुद्रिकका पुत्र) ।

बेणुवुल । १६९ नीचकुल ।

बेणुपन । (राजपुत्रमें) । ३५ (बिबिसारका  
दान), ३८ (सारिपुत्र मोग्गकावकी  
उपसपदा) ४२ (में गर्धकुटी) ४३,  
३१९, ४२६ (देखो राजगृह) २०१  
कर्मरकारमें मी) ।

बेय् । १६ ५२९ (तीन २२४ (में प्रक्षेप) ।

बेदिशागिरि । ५३० (महम्मद माताका  
बनबाधा बिहार वर्तमान साँची) ।

बेरजा । ० (में १३ बी बर्षावास) १०८  
(में लखेष्टुबिमद) १३१ (बर्षावास  
कुमिष्ठ) ।

बेरजक ब्राह्मण । २३०-४ (प्रक्षेप  
उपासक) १३१ (बर्षावास-बिर्मवज),  
१३३ (बिस्मरण) १३५ (दान) ।

बेलुकंटकी नगर । ४३९ (में उत्तरा मन्द  
माता मयप-देहामें) ।

बेलुवगामक । ४२५ (बिसाकीके पस  
भगावाक्य अन्तिस बर्षावास) ।

बेदुह मुनि । ४४ (बाबन्ध) ।

बेमारगिरि । ४२६ (राजगृहमें तिसक पाग  
काकधिका) ।

बेपाकरण । १६० ।

बेपाळी । ० (५ बी बर्षा कूटायार साक्य) ।  
०३ (प्रजापति-वज्रका मदाबबमें)  
६६ (बसाप जि मुद्रकपुर)  
६० ० ७५, ८० १३४ (महाबन)

११५, ११३ (के नातिदूर कच्छरक  
ग्राम) । १३८ १३९ १४ १४१  
( महिबाबो ) २२८ २३१ ( में एक-  
पुष्परीक परिव्राजकाराम) २०८ (समुद्रि  
बाबी में ७७७७ मासाद) । २९३  
(राजगृहसे । यौतमक रैल्पमें किचीवर  
विभाव ), २९६ (दुपाराजिका) २९८  
( य पराजिका ) ३५२ ४ ४ ( क  
बलिपुस्तक मिष्टु ) ४३८ (का वसगृह  
पति) ४४ ( में अमियेक-पुष्परिणी)  
४८७ ( का ५८२ ई ५ में पतन )  
४९४ ( अम्बपाळी वन ) ४९६ ( में  
बापाकबीत्य ) ४९६ ( में अत्तम्बक-  
वेतिव बहुपुस्तक बीत्य सारदद  
बापाक ), ५ ९ ( क किष्किविद्यत्रिव )  
५१३ ( में गृ अन्तुर्ब पाराजिका ) ५१८  
( में इक्षवस्तु ) ५१८ ५२ ५११  
५२२ ५२४ ५२५, ५२६ ( में बाहुका  
राम) ।

ध्वजल । ३५२ ( = कछव ) ।

इक्र दधराज । १२ ( वृषा-ग्रहण ) ८ ,  
८१ ८२ ८४ ( दिवावहरवर्षी ) ।

शाकला । ४३८ ( में सेमा और मजा कपि  
धमिबीक कम्म मद्रब्ध स्वाककोट ) ।

शाफ्य । ५७ ( अमिमाषी ) ५५ ( बाति )  
७१ १९७ ( बंध ) २३७ ( कोकिर्बोसे  
सगवा ) ३५१ ( इत्थाक-संताम ५ ९  
५१ ( उद्धपातु माँगवा ) ।

शाफ्यवेदा । ४३६ ३८ ( में कपिकवस्तु,  
त्रोववस्तु, कुंडिका वृजवह ) । २१२  
( में कपिकवस्तु ), ४३८ ( में जेतव्य  
विगम ) ४४ ( में सामयाम ) ।

शाफ्यपुत्रीय भ्रमण । ५१४ ( बाहमिष्टु )  
५१७ ५१८ ५२ ।

शाफ्य-राज्य । ११ ( के बाग कोकिपराज्य,  
फिर रामगाम ) ।

शाफ्यबंध । ४४३ ( का किलाक विह्वम  
हारा ) ।

शिक्षा । ५२९ ( = अक्षर पयेद ) ।

शिलायती । २७४ ( मुक्षमें ) ।

शिव-द्वार । ६४ ( राजगृहमें ) ।

शियस्यविग । ५२६ ( सिंहक ) ।

शिवि-देश । २८६ ( वर्तमान सीधी किबो  
किष्कन वा शोरकोट पंजाबके जासपास  
का प्रदेश ) ।

शिनुमाग राजा । ५३७ ५३८ ( राजकाक ) ।

शुद्धोदम-शाफ्य । १, २, ४ १५, ५५

( को वर ) ३२१ ( पिता ) ५११ ( की

मूर्ति ) ।

शुद्धकुल । १६९ ( नीचकुल नहीं ) ।

शूर अम्बष्ठ । २३९ ( कोसक आबस्ती  
कोठी ) ।

शृगाल-माता । ४३९ ( मयव राजगृह  
त्रेष्टिकुल ) ।

शोमित । ४३८ ( कोसक आबस्ती आइल )

शोमित शुद्ध-। ५२५ ( हि संघीतिमें  
माधीवक-मसिबिबि ) ।

श्यामकला । ८ ( पुण्य ) ।

आवस्ती । ३५१ ३५२ ४३९, ५२६

५२७ ५३५ ३५१ ( कोसकर्मदिर )

१८९ ( में जानुस्सोभि आइल ) ३४९

( अत्तरवैसमें ) ४३९ ( में अनाधर्विकक

शूरकवह, विद्याका ) ४३९—३८ ( में

उत्पकवर्षा महाआजिका ) । ४३६

( ककुंरकमदिर सुभूति ) ४३७ ( बंधा

रेवत ककळी कुंडबाव बंगीस पिकिंर

वात्स महाकोष्ठित शोमित ) ४३८

( बंधक ल्यागत मोचराज उत्पकवर्षा

पयच्छरा सोवा सजुक्क इक्षगौतमी )

( में जेतवक ) ७ ( दाम ) ८५, १

१५८ ( वर्षावास ) ११३ १६७ १७२

१७४ १७५ १ ५ ३३८ ३४ ,  
 ३४३ ३५ ३५५ ३५८  
 ३७५, ३७६ ३७४ ३७६ ३७९  
 ३८ , ३८९ ३९८ ४१ -४११,  
 ४२८ ( -मुष्करिणी ) ४८१ ५१९  
 ( बहिष्कार महेष्टक बाजार-दर्वाजा ) ।  
 ३७२ ( पूर्वाराम मृगारमाताका प्रासाद  
 द्वारकोट्टक कोट्टमासावली घर ), ३८९  
 ( पूर्वाराम = हनुमन्वनी ) ३८४ ४ ५,  
 ४११ ५ २ ( महाभारत ) ३५३ ( में  
 राजकाराम ) ४०० ( में बर्षावास )  
 २३० ( से श्रीयगिरिको ) ३३१ ( को  
 पूरु-कोट्टित्त ) ।  
 भेषिक । ( देशा विचार ) ।  
 भौष्टी । ( पर ) । ९५ ( बेमसे बीचे ) ।  
 भोक्षिय । १५ ( असिपारा बोधगार्धे ) ।  
 सकुल-उदायी । २६२-२६७, २४८-५७  
 ( परिभाषक राजगृह मोरविवापमें )  
 २४८-२५७ २६२ ।  
 सकुन्तल । ३९५ ( सोमाकी बहिन प्रसेनजित्  
 की राबी उपासिका ) ३९५ ।  
 सकुन्दा । ४३८ ( दिग्बन्धुका अग्र-महा  
 भावकीमें ४९ बी ) ।  
 संकाश्यनगर । ८३-८४ ( देशावतरण ),  
 १३४ ( संकिसा वसंतपुर वि. कल्या-  
 नाथ ) ५२१ ।  
 संगति । ५११ ५१८ ५३६ ।  
 संगीति द्वतीय । ५३६ ( बचमासमें )  
 ५३६ ।  
 संपत्ति । ( ज्ञातकपुत्री मिथुणी ) ५३३  
 ( श्री उपाध्याय धर्मपात्र धेरी भाषाओं  
 क्युपाका ) ५३९ ( सीकोममें मनुका  
 देशी पिप्पा ) ।  
 सचवद्रपर्यत । ३०० ( सूतापरातमें ) ।  
 संजय । ४० ।

संजय परित्राजक । ३६ ३७ ३८ ( सारि  
 पुत्र मेमास्त्रानका पूर्व-गुरु ) ।  
 संजय वेळट्टियुत्त । ( तीर्थकर ५ ) ७६  
 ८५, ८६ ( गण्यार्थ तीर्थकर ) २४९  
 ( भाषकोंसे असकृत ) ४२७ ४३  
 ( अमराविद्येपवाही ), ५ ४ ( सधी ) ।  
 संखिकापुत्र । ३८४ ३९३ ( बोधि  
 राजकुमारका मित्र सु सुमारगिरिवासी ) ।  
 सर्तवक-बैतिय । ४९६ ( बंधाकीमें ) ।  
 सनत्कुमार ( प्रह्ला ) । १ १ ( की याया ) ।  
 संवक परित्राजक । २४३ ४८ ( भार्गवे  
 संवात् ) ।  
 सप्तशानिका । ( विवपसंवीति ) । ५२८ ।  
 समयव्यवात्क । ( देशो त्रिभुक्थीर ) ।  
 समुद्रगिरि विहार । ३०० ( सूतापरातमें ) ।  
 समुद्रवत् । ( देशो संवदेवी-पुत्र ) ।  
 संवत् । ५३० ( ताप्रजि प्रथमक ) ।  
 समूतसायवासी । ५१ ५२५ ( पार्वक  
 प्रतिविधि, द्वितीय-सगीतमें ) ।  
 संमुत्त उपोसर्धन ( ५२७ ), संमुत्त  
 ( संमुत्त )-विद्ययमें ( देशो मंधपृष्ठी ) ।  
 सरपू । १४५ ( सरपू बावरा नदी ) ।  
 साज । १७ ( वृत्त ) ।  
 सर्पशांष्टिक-पम्भर । ४९६ ( राजगृह  
 सीतवर्गमें ) ।  
 सारकामी । ५२४-२७ ( भार्गवे सिन्धु  
 द्वितीय-संगीतमें संव-स्वधिर ) ।  
 सख्यवनी । १ ( मेदिनीपुर, इजारीवापक  
 जिर्कमें बहनेवाकी सिद्धई बरी ) ३०१ ।  
 सहजातिय । ५२९ ( सीय वि. कल्याबाद ) ।  
 सहापति प्रह्ला । १९ २ ।  
 साकेत । १८ ( अशोक-राजगृह तक्षसिका  
 केरास्वेयर ) ३ ६ ( भाषकीमें ७ बावरा  
 वर ) ३५२ ५ २ ( महाभारत ) ।



सागखनगर । ३८ ( स्वाककोर मद्रदेशमें,  
रेखो साकख ) ।

साङ्ग । स्वधिर । ५२३ ५२५ ( हि-संमीतिमें  
पाथीनक-मृतिमिजि ) ।

साप्पवासी । ( रेखो संमूल साप्पवासी ) ।

साधुक । ३८ ( आपलीके पास कोई  
ग्राम ) ।

सामगाम । २२७ ( आकषदेशमें ) ।

सामावती । २३९ ( मद्रवतीसाङ्ग, मद्रिवा  
नगर, मद्रवतिक जमीनी पुत्री उदक  
की मद्रिपी ) ।

सारनाथ । ( देखो अपिपथन ) ।

सारम्बु धैर्य । १९३ ( बैलाकीमें ) २८९  
( में बजिरीको मगवान्के • अपरिहा-  
नीयधर्म उदरैस ) ।

सारिपुत्र । ३९, ३७ ( अमरिका उपदेश )  
३८ ( उपसंपदा ) ५ ( इतवेही ) ५३  
५४ ( के राहुक लिख ) ६ ( विनीत )  
८२ ३ ८४ ( कोनमिधर्मोपदेश ) ।

( कोसंबक-ककह ) १२ ( १२ म  
बिर्लोमें प्रथम ) १३६ ( शिक्षापत्रके  
किने पाठका ) १३४ ( महाहृत्वि  
पद्मोपमक उपदेश ) २३७ ( सं अथ  
जित् पुत्रसुभा द्वेष ) ३१५, ३१६

( उपस्वाकपद-वाचका इहाँ बीसा बरों  
पदेश ) ३६७ । ३७९ ( मगवान्के  
प्रधोत्तर ) ३८३ ४ ( देवदत्तकमई  
ताई माथनेके समथ ) । ४ ४ ४ ५

( देवदत्तके पास ) ४१३ ( महाप्रज्ञ )  
४२८ ( देवदत्तकी परिशुका कोइका )

४३६ ( कम्म—मगव देशमें राजगृहके  
पास उपतिष्ठप्राम वर्तमान सारीकक  
बर्गाब, जि परवा साङ्गन ) ४३६

( धर्मप्रथक ) ४४८ ( क माई कुम्भ  
समपुरैस ) ४५४ ( क उपदेश पावामें )

४७७ ४७९ । ४८५ ४९ ( के  
मगवान्के विषयमें उद्गार ) ४८१ ४८२

( क विर्वाजपर मगवान्के उद्गार ) ४८३  
( क कार्तिक बुद्धिमाके विर्वाज ) ४९१

( का भावहीमें प्रागु धैर्य ) ।

सालपती । २७८ ( राजगृहकी गणिक  
धीवककी माता ) ।

सायिणी । १५४ ( इन्हींमें सुकव ) ।

सिखी ( सिपी ) । १३२ ( मद्रकणके  
बुद्ध ) ।

सिगाळ । २५७ ३१ ( राजगृह-वासी गृह  
पति ) ।

सिमाध स्वधिर । ५२८ ( मोगकपुत्रके  
पुत्र ) ५२९ ( मोगकपुत्रके प्रसोत्तर )

५३, ५३६ ( सोवके लिख )

सिन्धार्थकुमार । ५ • ८ ( अमिबिष्णुमय )

९ ( कसागावतीको गुरुदक्षिणा ) १३  
( राजगृहमें ) १५ ( बोधिर्महमें ) ५३

५११ ( देखो बुद्ध जी ) ।

सिनीसूर । [ सुभासीर ] । १९८ ( इदवा  
कुपुत्र आत्पपूर्वक ) ।

सिन्धु । • ( देखो धौरे ) ।

सिसपावन । ३२८ ( आकषीमें ) ।

सिंहकुमार । ( बिजबकुमारका पिता ) ।

सिंहप्यपातक ( दृष्ट ) । १४५ ( हिमाकषमें ) ।

मद्र धमजोदेश । २२९ ( बैलाकीमें ) ।

सिंह सेनापति । १३८ ४ ( बीवसे बीव ) ।

सीतधन । ६३ ( में अवाक-पिठक ) ४९६  
( राजगृहमें कदा सर्पधौकिकपद्ममा  
या ) ।

सीवली । ४३७ ( आत्प कु दिवा कोकिव  
दुहिता सुप्रभासाके पुत्र ) ।

सुजाता । ( सेवानीदुहिता ) । ४३९ ( मय  
उरुकेका सेवानीकुईबिष्णुकी पुत्री ) १४  
१५ ( सेवानी-ग्राम-वासिणी ) ।

सुप्त अक्षय-१ ( म नि ) । १००—  
 १०१ ।  
 सुप्त अंगुलिमाळ—। ( म नि ) १०१—  
 १०२ ।  
 सुप्त अट्टक-वर्गिक—। ( सुप्त नि )  
 १०१—१ ।  
 सुप्त, अत्तदीप—। ( सं नि ) १११ ।  
 सुप्त अमपराजकुमार—। ( म नि )  
 १११ ।  
 सुप्त अम्बडु—। ( ही नि ) ११५ ।  
 सुप्त अंयसुद्धिकापडुलोवाद्—। ( म  
 नि ) १११ ।  
 सुप्त, असिबन्धक-पुस्त—। ( सं नि )  
 १११ ।  
 सुप्त । अस्तछायण । ( म नि ) ११० ।  
 सुप्त । आदिप्त परियाय—। ( सं नि ) १२१ ।  
 सुप्त । आनेम्भसप्याय—। ( म नि ) ११८ ।  
 सुप्त । आलवक—। ( म नि ) १२८ ।  
 सुप्त । इन्द्रियमाधना—। ( म नि ) १०२ ।  
 सुप्त । उद्धाचेळ—। ( सं नि ) ५१९ ।  
 सुप्त । उद्यान—। ( सं नि ) १११ ।  
 सुप्त । उद्यायि—। ( सं नि ) १०५ ।  
 सुप्त । उपासि—। १०९ ।  
 सुप्त । उपासि—। ( म नि ) ११० ।  
 सुप्त । पतवग्गाधगा । ( म नि ) १११ ।  
 सुप्त । भोजतरण । ( ५५५ ) ।  
 सुप्त । कङ्गागळा—। ( म नि ) १०१ ।  
 सुप्त । कण्ठत्थळक—। ( म नि ) १०१ ।  
 सुप्त । कस्तप—। ( सं नि ) १११ ।  
 सुप्त । कीटागिरि—। ( म नि ) ११८ ।  
 सुप्त । कुटवत्त—। ( ही नि ) १११ ।  
 सुप्त । केमपुत्तिय—। ( म नि ) ११५ ।  
 सुप्त । ( कोसम्बक )—। ( म नि ) १८ ।  
 सुप्त । कासल—। ( म नि ) १११ ।  
 सुप्त । लकम—। ( सं नि ) १११ ।  
 सुप्त । अंकि—। ( म नि ) १११ ।

सुप्त । खारिका—२ ( सं नि ) ।  
 सुप्त । चित्तपरियायाम—। ( ५५५ ) ।  
 सुप्त । चूळ अस्तपुर—। ( म नि ) १११ ।  
 सुप्त । चूळ तुप्यक्कंघ—। ( म नि )  
 ११२ ।  
 सुप्त । चूळ-सकुलुवायि—। ( म नि )  
 ११२ ।  
 सुप्त । चूळइत्थियदोपम—। ( म नि ) १५८ ।  
 सुप्त । जटिळ—। ( सं नि ) ८५ ।  
 सुप्त । जटिळ—। ( सं नि ) १०२ ।  
 सुप्त । जटिळ—। ( उद्यान ) १११ ।  
 सुप्त । जय—। ( सं नि ) १८१ ।  
 सुप्त । तेपिळ—। ( ही नि ) १८५ ।  
 सुप्त । तेपिळयच्छगोत्त—। ( म नि )  
 १११ ।  
 सुप्त । घपति—। ( सं नि ) १०९ ।  
 सुप्त । वृषिअजाबिर्मग—। ( म नि ) १०१ ।  
 सुप्त । विट्ठि—। ( म नि ) ११० ।  
 सुप्त । ( वेवत्त )—। ( सं नि ) ११९ ।  
 सुप्त । वेवत्त—। ( म नि ) ११९ १५ ।  
 सुप्त । दोण—। ( म नि ) १११ ।  
 सुप्त । घम्मस्यळप्यवत्तम—। ( सं नि ) २१  
 सुप्त । घम्मवेत्तिय—। ( म नि ) १११ ।  
 सुप्त । गळकपाम—। ( म नि ) ५९ ।  
 सुप्त । ( गिगंठ )—। १ १ ( सं नि )  
 सुप्त-निपात—। ( देखो प्रबंध-सूची ) ।  
 सुप्त । पजापतीपम्बळा—। ( म नि ) १११ ।  
 सुप्त । पजापती—। ( म नि ) १०५ ।  
 सुप्त । पम्बळा—११ ( सुप्तनिपात मारणा )  
 सुप्त । पजापतीय—। ( म नि ) १८९ ।  
 सुप्तपरिच्छेयक—१० ( उद्यान ) ।  
 सुप्त-पिटक । ५५५ ( सं हीनिकाद, मस्ति-  
 म सुप्त नि अंगुत्तर सुद्ध-  
 निपात—१ सुद्धकपाठ २ घम्मपद्  
 ३ उद्यान, ४ इत्थिपुत्तक ५ सुप्त  
 निपात ६ विमानवत्थु ७ पतवत्थु

८ बेरघाया १ बेरीघाया १ कटक  
११ मिरेस १२ परिमंभिका १३  
मपशम १४ कुद्वर्धम, १५. चरिया  
पिउक ) ।

सुच । पिण्ड—१ ७ ( सं नि ) ।  
सुच । पियञ्जातिक—( म नि ) ३०३ ।  
सुच । पुष्प—( सं नि ) ३०९ ।  
सुच । पोट्टपाद—( ही नि ) १७० ।  
सुच । पोतल्लिय—( म नि ) १७५ १५ ।  
सुच । पाहितिक—( म नि ) ४११ ।  
सुच । बोधिराजकुमार—( म नि ) ३८४ ।  
सुच । प्राङ्गणजम्मिय—( सुच नि ) ३४ ।  
सुच । मरहु—( म नि ) २३३ ।  
सुच । मन्नादेव—( म नि ) ३० ।  
सुच । मल्लिका—( सं नि ) ३४८ ।  
सुच । महानाम—( सं नि ) २३५ ।  
सुच । महानिदान—१२ १२८ ( ही  
नि ) ।

सुच । महापदिनिम्बाण—( ही नि )  
४८४ ।

सुच । महाराहुलोवाद्—( म नि ) १७२ ।  
सुच । महाखि—( ही नि ) २२८ ।  
सुच । महासकुलवापि—( म नि ) २४८ ।  
सुच । महात्मतिपट्टान—( ही नि ) ११ ।  
सुच । महाहत्थिपट्टोपम—( म नि ) १४३ ।  
सुच । मार्गविय—( सुच नि ) १ ८ ।  
( म नि ) ११ ।

सुच । मधिय—( उदात्त ) २०५ ।  
सुच । रडुपास—( म नि ) ( ११८ )  
( म नि ) ३२९ ।

सुच । राहुलोवाद्—( म नि ) ११  
सुच । रपत्तूपम—( म नि ११८ ) ।  
सुच । बाहीतिक—( म नि ) ४११ ।  
सुच-विमह (= सुच पिउक ) ५६४ ५६५ ।

सुच । ( विसाला )—( उदात्त ) ३८२  
४ ५ ।

सुच । परंजक—( म नि ) १२८ १३५ ।  
सुच । सफलिण—( सं नि ) ४ २ ।  
सुच । संगाम—( सं नि ) ४ २ ।  
सुच । मगीति-परियाय—( ही नि )  
४२२ ।  
सुच । सतिपट्टान—( म नि ) ११ ।  
सुच । स्वद्व—( म नि ) २४३ ।  
सुच । संबहुळ—( सं नि ) २४४ ।  
सुच । सहस्समिफ्फुणी—( सं नि )  
३६३ ३७ ।

सुच । सामगाम—( म नि ) ४४० ।  
सुच । सामम्भकल—( ही नि ) ४२९ ।  
सुच । सारिपुत्त—( सं नि ) ३०९ ।  
सुच । सारिपुत्त—( म नि ) १३२ ( म नि ) ।  
सुच । मिगाओवाद्—( ही नि ३१८ )  
२५७ ।

सुच । सीह—( म नि ) १३८ ।  
सुच । सुनक—( सं नि ) ३६ ।  
सुच । सुन्दरिक माय्याज—( सं नि )  
सुच नि ) ३६४ ।

सुच । सुन्दरी—( उदात्त ) ३३८ ।  
सुच । सेळ—( म नि ) ३५ ।  
सुच । सोण—( उदात्त ) ३६८ ।  
सुच । सोण्ड—( ही नि ) २२४ २२८ ।  
सुच । हत्थक—( सं नि ) २४२ ।  
सुच । हत्थिपट्टोपम—( म नि ) १५८ ।  
सुच । १४ ( देवो जनाण-पिउक ) ५  
( देवज माहण ) ।

सुवर्षान् । ५ २ ( चण्डवर्षी राजा ) ।  
सुवर्षान्कूट । १४५ ( जनवत्तल्ले पाण ) ।  
सुविद्य कल्लम्भपुत्त । १३५—३ ( म  
ज्जा ) २२३ ( बैल्लाकीर्म्म ) २२४—  
२२१ ५१२ ( म पाराविज ) ।  
सुवर्षा । ३७८ ( देवजमा ) ।

- मुनकल्लुष छिच्छयि-पुत्र । २३ ( तीन वर्षे तक मिथु रह्य ) ३१४ ( बुद्ध उपख्याक ) ।
- मुनीष । ४९१, ४९२ ( मगधमहामात्य ) ।
- मुन्दरिका मन्त्री । ३९७ ( कासकर्म ) ।
- मुन्दरी । ३३८-४ ( परिभाषिका भाषास्त्री वासिनी का बुद्धपर कर्षक ) ।
- मुपर्व । ११ ( गरुड ) ।
- मुप्रबुद्धशाक्य । ४३८ ( वैश्वदेववासी राहुक के मातामह ) ।
- मुप्रथासा कोछियधीता । ३४ ( पाण्य कुंठिया सीवर्द्धकी माता ) ।
- मुप्रिय परिग्राहक । ५१३ ( बुद्ध-निन्दक महाप्रत्तका युद्ध ) ।
- मुप्रिया । ४४ ( काशी चारावसीमें ) ३१८ ( विद्यावाकी दासी ) ।
- मुभूति । ४३० ( कोसल भाषाकी वैश्य ) ।
- मुभद्र । ५२ ( अंतिम प्रकृत शिष्य ) ५५, ३४ ५८ ( बुद्ध-प्रकृत मिथु ) ।
- मुमन । ५२५ ( द्वि संगीतिमें पावेचक प्रतिविधि ) ।
- मुमन (३) । ५३४ ( सिंहल स्वधिर ) ।
- मुमन (१) काक— । ५३६ ( सिंहल स्वधिर ) ।
- मुमन काक (२)— । ५३६ ( सिंहल स्वधिर ) ।
- मुमनादेवी । १४२ ( विद्यावाकी माता ) ५३१ ( मुमन पुत्रराजकी देवी ज्वाप्रोव आमवेरकी माता ) ।
- मुमंठ पर्वत । ८१ ८३ ।
- मुयाम । ३ ( वैश्या ८४ ( हजपुत्र ) ।
- मुयाम । ५ ( वैश्या भाइय ) ।
- मुवर्णमूमि । ५३० ( = वेणु बर्माई मोघक और बुद्ध स्वधिर प्रचारक ) ।
- मुवाहु । ( पद्ममित्र मिथु ) २६ २७ ।
- मुवेणुधम [ मुवेणुधम ] । १७२ ( कन्नयस्य में ) ।
- मुंसुमारगिरि । ७ ( मार्गमें जे भेसक्या बनमें अहमवर्षा ), ८७ ( मसकव्यवर्ष ), ३८४ ( बुधवार वि मिर्जापुर ) ३९३ । ४३९ ( में मकुडपिता गृहपति बहुक माता गृहपत्नी ) ।
- मुह्य । २७४ ( हजारीबाग संपाक-वर्षाका जिहोंका कितना ही भंघ जियमें शिला बनी सतकप्यिक निगम ) ।
- मुह-भागध । ८ ।
- सेतकण्यक । १ ( हजारीबाग जिहमें ) । १७५ ( मुहमें ) ३७१ ।
- सेतप्या । ३५२ ( भाषास्त्री-कपिकवस्तुके शीर्षमें ) ।
- सेनानीग्राम । ४३९ ( मयव, उद्वेकमें मुद्राताकी जम्ममूमि ) १४ ३८७ ( निगम ) ।
- सेस । १५ — ५५ ( महापण्डित ) १५४ ( भईल ) ।
- सेणक । ५३६ ( दासकका शिष्य ) ५३७ ( स्वर्णमूमिमें प्रचारक ) ।
- सेण कुटिकण्य । ३९८—७ ( महा कात्यायन शिष्य कुररपरमें ) ३७ ( मगवान्के पास ) ४३० ( जम्म-वर्षती कुररपर वैश्य ) ।
- साण काट्टिबीस । [ जर्ण काट्टिबिस ] ४३७ [ धंग चंदा धेडिक्क ] ।
- सेणर्द्ध [ = वेणर्द्ध ] । २२४—२२८ ।
- साण्ण । ४३८ ( कोसल भावस्त्री ) ।
- सामा । ३९५ ( प्रसेवकिन्धी राबी सज्ज्या की बहिन उपासिका ) ।
- सारण्य । १३४ ( सौते वि पट ) ५३१ ।

सौत्रांतिक । १८ (= सूत्रपाठी), ११ ।  
 स्पष्टिरेषात् । ५३३ ५३४ (परंपरा) ।  
 म्वागत । ३१४ (बुद्ध उपन्यास), ४३८  
 (कोसल आशस्ती, भाङ्गल) ।  
 हस्त्यकमावलक । (आकृषीबासी) १४२  
 ३२८ (= हस्तक आशस्ती कुमार भग  
 वानुके पास) ४३९ [ पंचक आकृषी  
 (अर्षक) राजकुमार ], ४३९ (गृहस्थ  
 ध्यमभाषक) ।  
 हस्तिप्राम । ४३९ (मैं उद्गत गृहपति  
 बन्नी देशमें) ।

हस्तिनिक । [ हस्तिनिक ] । (इस्वाङ्गुपुत्र  
 साक्यपूर्वज) २०४ ।  
 हिमवान् । १४५ (पर्वत) ५३० (देशमें  
 मध्यम-स्पष्टिरे प्रचारक) ।  
 हिमालय । १९८ ।  
 हिरण्य । १४४ (सोवैद्य सिद्ध), १८१  
 (= अशर्ही) ५१८ ।  
 हेमद । साम्य । (प्रश्न) ३५० (बाधरि  
 शिष्य) ३५१ ।  
 हिरण्ययती नदी । ५ (कुसीबाराके पास  
 छोटी सी नदी वर्तमान सोनरा या  
 हिरवा की नदी) ।

## शब्दानुक्रमणी ।

- अकार्यकधी । १८१ (विवाहरहित) ।  
 अकनिए । ४१९ (वेकता) ।  
 अकाष्टिक । १५४ (न अकारांतरमें करुण्य  
 सधः करुण्य) ।  
 अकिंचन । ३५९ (परिग्रहरहित) ।  
 अकुशल धम । १९१ (नपाप) ।  
 अक्रियावाद् । १९९ १९८ १९९ ।  
 अक्षय्य (८) । १०४ ४०४ (= असमय) ।  
 अक्षय्यपेध । ७ (पदुप-कर्म) ।  
 अक्षयूर्त्त । ३८ (नृवारी) ।  
 अक्षर-अमेद् । ५२९ (शिखा विषय) ।  
 अगतिगमन (४) । ४६ ।  
 अग्नि (३) । ४५९ ।  
 अग्निपरिस्वरण । १२ (= होम) ।  
 अग्निपरिस्वर्पा । १२ (= तापसकर्म) ।  
 अग्निशाळा । २८ (= पानी गर्म करकेका  
 घर) ४ ९७ ।  
 अग्निहोत्र । ३२ ।  
 अग्र । १०९ (अग्रज) ४१९ (= अग्र) ।  
 अग्र-परिह । ९८ (सर्वअग्रको दातव्य प्रथम  
 परोक्षा) ।  
 अग्रमहिषी । ९ (= पटरात्री) ।  
 अग्रभाषक । (देखो आषक, अग्र-) ।  
 अङ्कुशाग्रहणशिक्ष्य । ३९२ (शानीवाची) ।  
 अग । (= वात) ।  
 अण्डण । १९९ (अण्ड) ।  
 अंगार । ५१ (= अंगुली) ।  
 अंगारका । १४८ (= मोर=अग्निचूर्ण) ।  
 अण्डेक । ४५३ (बछ-रहित छातु) ।  
 अण्डप्र । १९० (अणु) ।  
 अट्टि । ८ (अट्टी पुरानी) ।  
 अतप्य । ४१९ (देवको) ।  
 अति आरब्ध-वीर्य । [अचारद्वयीरिय] । ९५  
 (अत्यधिक अन्धास समाधिदिय) ।  
 अतिघार । १९१ (परस्त्रीगमन) ।  
 अतिशीत वीर्य । [अतिशीत वीरिय] । १५  
 (हीका अन्धास समाधिदिय) ।  
 अतिथि । २१८ (पुत्रनीच) ।  
 अतिनिष्यायितत्व । [अतिनिष्ठापितत्व] ।  
 ९३ (आवश्यकतास अधिक न्याय, सम-  
 चिदिय) ।  
 अतिपान । १५ (मारता) ।  
 अतिमुक्तक । ७५ (= मोतिपा कृक) ।  
 अत्यय । ४१ (= अपराध वीता) ।  
 अ-वृत्तक । ५२१ (अविवा किनारीक) ।  
 अ-वृत्तक-कस्य । ५१८ ५२१ ५२० (विना  
 किनारीके निजरेक विधान) ।  
 अमृतधाम । [अमृतधाम] १३९ (दुःख  
 मापित) ।  
 अधिकरण । १ (= अगवा) २१३,  
 २ ५२८ (अधिवाद) २१३ (अधार्म-  
 स्थान, विपय), ४४९ (४ विवाद  
 अनुवाद, जापति कृत्य) ।  
 अधिकरण-शामय । ४४९ (७-संमुख-  
 विनव स्थिति अमृत प्रतिशतकरम  
 बहुमूयसिक तापापीनसिक तिजबत्था  
 एक) ४७ ।  
 अधिकार । १८९ (= उपकार) ।  
 अधिमान । ३ (= अस्तु पा कने पर 'पा  
 विवा' समझता, कृता) ।  
 अधिमुक्त । २५३ (= मुक्त) ।  
 अधिमुक्ति । ४१४ (प्रकृति, विद्युत्ति) ।

- अधिवचन । १२१ ( = वाम ) १२१  
( संज्ञा ) ।
- अधिष्ठान । १० ( = इच्छा ) १२१, ८३  
( योगसम्बन्धी संकल्प ) ५११ ( = विषय  
संकल्प ) ४११ ।
- अध्ययकाश । ४३३ ( = सुखी अाह ) ।
- अध्ययकाशिक । २४१ ( सदा चापेमें रहने  
वाक्य साधु ) ।
- अध्ययस्थान । १२१ ( = प्रवक्त ) ।
- अध्यात्म । १११ ( = अचरमें ) ११४  
( = शरीरमेंका ) १०२ ( = शरीरके  
सीधर ) ।
- अध्यात्मिक । ११४ ( शरीरमेंका ) ।
- अध्यायक । १११ ( उपदेशवाक्य ) ।
- अध्येयवा ५२१ ( = अज्ञा ) ।
- अच्छ ( ३ ) । ४५१ ( = अक्ष ) ।
- अध्वगत । १२९ ( = अक्ष ) ।
- अध्वनिक । ४५४ ( = अक्षिस्थानी ) ।
- अध्वनीय । १३३ ( = अक्षिस्थानी ) ।
- अनभि-पक्षिक । २ २ ( तापस-व्रत ) ।
- अनन्यधारण । ४८२ ( = अ-पराधर्मी ) ।
- अनागामी । १८ ( पूर्व अक्षर-आयीबोके  
अक्षरके ) १ ४ ( अ-अनन्य ) ४१४ ( ५  
धेद—अन्तरापरिनिर्वाही अक्षरपरि  
निर्वाही अक्षरकार संसंस्कार अक्षर  
कोता अक्षरिण्यामी ) ।
- अनार्य । २२ ( = हीन ) ।
- अनित्य । १९ ( = संस्कृत निर्मित प्रतीत्य  
समुत्पन्न ) १२५ ( = अक्षरवर्मा अक्षरवर्मा  
विरागवर्मा निरोधवर्मा ) ।
- अनित्यता । ११४ ( = अक्षरवर्मा = विप  
रिण्यवर्मा ) ।
- अनित्यसंज्ञाभाषता । १ ४ ( सभी पदार्थ  
अनित्य हैं ) ।
- अनुकंपा । ७१ ( = कृपा ) ।
- अनुकान्त । १५३ ( = पीछे चलना ) ।
- अनुसा । २८ ३८ ( भाषा स्वीकृति ) १३१  
( = भाषा ) ।
- अनुत्तर । १५ ( = अनुपम ) २०४ ( =  
सर्वोत्तम ) ।
- अनुत्तरीय । ( ३ ) ४५० ४६८ ( १ ) ।
- अनुवृत्त । ५१९ ( = नाच आनेवाक्य ) ।
- अनुमय । ७३ ( = इन्द्र ) ।
- अनुपदयना । ५३ ( पदावसे इत्यादि ) ।
- अनुपदयी । ४५० ( = अक्षरनेवाक्य ) ।
- अनुपादि । ५ ( = अनुकम्पारकारित्य ) ।
- अनुपूषनिरोध । ४०४ ( ९ प्रकार ) ।
- अनुपूर्व विहार । ४०४ ( ९ प्रकार ) ।
- अनुमति-कन्य । ५१८ ५२२ ५२० ( अक्षि-  
पुत्रकोकर विवक्षितक विचार ) ।
- अनुमतिपक्ष । २१९ ( = अनुपुत्र अक्षि  
अमात्यपरिपक्ष नेवदिक गृहपति, ब्राह्मण  
महाशास ) ।
- अनुयुक्त क्षत्रिय । २१९ तथा पदाधिकारी-  
मैत्रम आनपक्ष २२ ( = सांख्यिक वा  
आगीरवार ) ।
- अनुयोग । ४१२ ( = परीक्षा ) ४१४ ( =  
उद्योग ) ।
- अनुखोम । १० १५० ( = अक्षिरोधी ) ।
- अनुष्यजन । ( दोषो—अज्ञान । अयु ) ।
- अनुशय । ४० विप्रमक ७ प्रकार ) ।
- अनुशासन । २४ ( = उपदेश ) ।
- अनुशासनी । ४ ५ ( = अक्षर-उपदेश ) ।
- अनुशब्द । २ ९ २४९ ( = अक्षि ) २ ९  
( सांख्यिकविपाक्य धर्म ) २२८ ( =  
वृत्त ) ।
- अनुसम्मान । २८१ ( = विरीक्षण ) ।
- अनुस्मृतिस्थान । ४६८ ( १ प्रकार ) ।
- अनोमा-प्रशम्या । ७ ।
- अन्त । २२ ( = अक्षि ) ४५१ ( ३ प्रकार ) ।

- अतगुण । ११२ ११४ (पठको भाव) ।  
 अन्तरापरिनिर्घापी । ४१४ (अनगामी) ।  
 अंतराष्टक । १२८ (मात्रके अंतके चार दिन  
 और अष्टगुणके आदिके चार दिन) १ ६ ।  
 अन्तर्बासक । १ ५ (अनुष्ठी) ।  
 अंतैघासी । १८ (= शिख) ।  
 अंत्यवेणु-परंपरा । १२१ २ २ (=   
 अंत्योकी कृष्णकीय ताता) ।  
 अपगर्म । १३ १३९ (अपगत-गर्म) ।  
 अपरात । १६३ ।  
 अपरिहाणीयधर्म । ४८४ ४८६ ।  
 अपाय । १६३ (दुर्गति बर्ह) ।  
 अपायमुक्त । २५८ (१ प्रकार) २ २  
 (= अविज्ञ) ।  
 अपाद्ययज्य । ४५९ (४ प्रकार) ।  
 अपुष्य । १ ० (= पाप) ।  
 अप्रमाण । ७२ (इष्टचारहित), ९६  
 (= महाद्) ।  
 अप्रामाण्य । ४५९ (असीम ४ प्रकार) ।  
 अप्सरा । २९४ ।  
 अप्रप्य स्थान । ४६३ (५ प्रकार) ।  
 अप्रिज्ञात । २५१ (अनुष्णर) २६४  
 (= अमकीय) ।  
 अप्रिज्ञत्प । [ अप्रिज्ञत्प ] । ९५ (समा-  
 पित्रिज्ञ) ।  
 अप्रिज्ञात । ३२४ ४३८ (१ प्रकार  
 जाति=अज्ञ=अप्रिज्ञाति) ।  
 अप्रिज्ञ । १४— १२ (अंत्योप), ३८०  
 (= विष्य शक्ति) ।  
 अप्रिज्ञात । २४८ (= अप्रिज्ञ) ।  
 अप्रिधर्म । ४ ५ (= अधर्म) ।  
 अप्रिधर्मज्ञ । ४२६ (मात्रिकाधर) ।  
 अप्रिध्या । ५९ (= अज्ञोम) १६  
 (= बीबरधोम) ।  
 अप्रिध्यास्तु । २२ (= अज्ञोमी) ।  
 अभिमित्वेश । १५ (= अभामह) ।  
 अभिमिनित्वेति । ११५ (= अज्ञम्) ।  
 अभिमिन्त्रकर्मण । महा—८ ९ १  
 (= गृहपाण) ।  
 अभिमाधित । ८३ (दवा दिया) ।  
 अभिम्यायतन । २५३ ४७२ (८ प्रकार) ।  
 अभियात । ४८४ (= अज्ञाद्) ।  
 अभिरत्त । १३९ (= अस्तुद्) ।  
 अभिचिन्तय । १९५ (= अचिन्तय) ।  
 अभियेक । २ (अभिप्योहीक) ।  
 अभिसंस्कार । ३४९ (= अस्त्रिधि) ।  
 अभिसंज्ञा । १ ८ (= अज्ञा चेतन्य) ।  
 अभिसंज्ञानिरोध । १७६ ।  
 अभिसमय । धर्म—८४ (= धर्म-बीक्षा) ।  
 अभिसंबोधि । १३ (= अनुज्ञान = बोधि  
 अनुज्ञान) १९ ।  
 अभिसंबोधि परम— ५१ (= अनुज्ञत्व) ।  
 अभूत । १३८ (= अज्ञ) ।  
 अभ्याय्याम । ३३२ ५१९ (= अज्ञा) ।  
 अभयितकल्प । ५१८ ५२२, ५२० (दिव्य  
 विज्ञ-विद्या) ।  
 अभनूष्य । १३ (पिशाच आदि) १३ (द्व  
 आदि) २१० (देव मूत आदि) ।  
 अभयविज्ञेयघाद् । २४० ।  
 अभ्यास्य । ५१ २१९ (= अधिकारी)  
 ५३४ (अपसर) ।  
 अभ्यास्य-पारिपद्य । २१९ (पदाधिकारी,  
 नाम बाणपद्) ।  
 अभितमोग । (= महावकी) १४३ ।  
 अभिप्र । २५९ (= अस्तु ४) ।  
 अभूद् चिन्तय । ४७१ (= अचिन्तय धामय)  
 अभम् । १४ (दासी कृष्णकीको संबोधन) ४८ ।  
 अभ्रमण । १ (= अम्र) ।  
 अभ्र्यका । ४७८ (बासी) ।  
 अभ्र्यधीता । ३९ (आमिपुत्री) ।



- अध्या । ३९ २०८ (भाषा स्वामिणी) ।  
 १ (विष्णु) ३९३ (माता) ।  
 अग्निविहारी । ४३९ (अग्निप्रसाधिका  
 अम्पारी) ।  
 अग्रसरूप । १२९ (द्वारा) ।  
 अर्गाष्ट । ४१ ( = अर्गाष्ट ) ।  
 अर्थि । १४८ ( = अर्थ ) २८८ (वपारी) ।  
 अर्थ-उपरीक्षा । २११ (अर्थ परीक्षण) ।  
 अर्थश्रया । २४२ ( = अर्थश्रय प्रदाकर देना ) ।  
 अर्थयेत् । २३९ ( = परमाय ज्ञान ) ।  
 अर्थनयेत् । ४६९ ( = अर्थकर्म समस्त  
 पादा ) ।  
 अथापपायी । २९ (मित्र-गुण) ।  
 अटल । ३१ ( = अटलपुत्र ) ९८, १२२  
 ( = अटल पुत्र ) २३ (आराधकपते)  
 २४० (पादकामोको भोगनेके असमर्थ)  
 ४८९ (पुत्र), ५ ४ (पदार्थकर्म) ।  
 अयुत् । १३३ ( = अयुत् ) ।  
 अयुत् । १३३ (अयुत् अयुत्) ।  
 अयुत्पाननम् । २१ ९४ (उत्तर  
 अनुपपन्नम् शिष्यादि) ।  
 अयुत्पाननम् । १८ (उत्तरपाननम्) ।  
 अयुत्पानम् । १५० ( = अयुत्पान ) ।  
 अयुत्पानम् । २४३ ( = अयुत्पान ) ।  
 अयुत्पानम् । ११५ ( = अयुत्पान ) ।  
 अयुत्पानम् । (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ४५५ ( = अयुत्पान ) ।  
 अयुत्पानम् । २४३ ( = अयुत्पान ) ।  
 अयुत्पानम् । १८ (अयुत्पान) २८५ ४५४ ।  
 अयुत्पानम् । २३९ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ५ (अयुत्पान शिष्यादि  
 अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । [अयुत्पान शिष्यादि ५] ।  
 १३ (अयुत्पान शिष्यादि) ।
- अयुत्पानम् । ५१९ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । १५ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ४८२ ( = अयुत्पान ) ।  
 अयुत्पानम् । [अयुत्पान] २१९ ।  
 अयुत्पानम् । ३२ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । २४९ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ११ (अयुत्पान-समुत्पानम् एक  
 अयुत्पान) ११४ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ४६९ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ८ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । २ १, (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । १०४ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । २२० (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । १०१ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । १३१ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । २४२ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । १३४ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ११० (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ४५३ ४४८ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ११४ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ४२ (अयुत्पान) ४५५ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । १२० (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । १०० (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ५१३ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ४ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ३५ (अयुत्पान) ।  
 अयुत्पानम् । ११३ (अयुत्पान) ।

अन्वयपात्री । २ १ ( वापसमेर ) ।  
 अहोषत । २२६ ( शोक-प्रकाशक अक्ष ) ।  
 आकार-परिचितर्क । २१ ( मांछिक विपा  
 कश्चर्म ) ३२१ ।  
 आकारघटी । २६५ ।  
 आकाशधातु । १९४ १९५ १०३ ( =  
 आकाश महाभूत, अष्वाद्य बीर वाद्य ) ।  
 आकाशात्मभावना । १०३ ।  
 आकाशान्त्यायतन । १६२, १०८ ( एक  
 आरूप्य समारणित ) । १२६ २७ ( विश्राम-  
 स्थिति=वाचि ) ४०३ । १६२ १०८  
 ( समाधि ) ३८७ ४०३ ।  
 आकिञ्चन्य । ३५६ (=कुछ नहीं) ।  
 आकीर्ण । १७ ( भीषमें ) ।  
 आक्रोश । ( ७४ गाक्षी आदि ) १६५ ।  
 आगतागम । ४९८ (=आगमन्य निकापत्र)  
 आगतुक । ६४ ( बाहुवा अतिथि ) ३१२  
 ( वषागत ) ३४२ ।  
 आगम । ( बुद्धके समकर्म से ) ४९८ ( मुच  
 पितृके शीघ्र आदि विकारोंको आगम भी  
 कहते हैं ) ।  
 आगमन्य । ११ ( द्वेषो आगतागम ) ।  
 आघात । ४७३ ( बद्धक कनकी इष्टम् ) ।  
 आघात-प्रतिविनय ( ८ ) । ४ ३ ( आघात  
 इष्टानके आठ उपाय ) ।  
 आघातयन्तु । ४०३ ( आघातक आठ  
 कारण ) ।  
 आघ्राय । ४९ ५१९ ५३२ ( बी व्याघ्रा ) ।  
 आघ्रायक । २४४ ( अघर्म ) २६४ ( अमठ )  
 २८९ ( = पैसा ) ।  
 आघ्रायधन । ३६२ ( गुण-विक्रिय ) ।  
 आघ्राय मुष्टि । ४९६ ( = हस्त एकतम  
 वा अंत ममक अकिञ्चरीक बतकाने  
 योग्य बात ) ।

आजीण [आधिष्ण] । ४१४ ( = कायदा ) ।  
 आजीर्ण-कल्प । ५१८ ५२२ ५२७ ( विनय  
 विद्वद् विद्यान ) ।  
 आभासकल्प । ५१८ ५ २ ५१७ ( विन  
 वकिष्ण-विद्यान ) ।  
 आज्ञम्य । ३ ८ ( = उच्यते अतका ) ।  
 आज्ञानीय । ३ (= उच्यते आतिष्ण=आज्ञम्य) ।  
 १५ ( = परिमुह ) ।  
 आजीय । ४४८ ( = शैविका खावा  
 पीता ) ।  
 आमा । ५ ३ ( = परमज्ञान ) २४१ ( =  
 अत्रा ) ।  
 आणापान-सति-भायना । १४७ ( व्याना  
 नाम ) १७४ २९८ ।  
 आग्मधीप । ४८२ ( = आग्म-धारण आग्  
 कम्भी ) ३६६, ५ २ ।  
 आरमप्रतिष्ठाम । १८३ ( = शरीरग्रहण ),  
 १८४ ( = शरीर-परिग्रह ) ।  
 आरमनाथ-प्रतिष्ठाम । ४९२ ( शरीरग्रहण  
 ४ ) ।  
 आरमपाद् । १२५ ( आध्याके वित्पत्तक  
 सिद्धान्त ) ।  
 आरमपाद् उपादान । १९१ ( आध्याकी वि  
 ल्वातपर आग्रह ) ।  
 आरमशरण । ४८२ ( आध्याकम्भी ) ४९६  
 आध्याधीप ) ।  
 आरमा । २९ (= अघ्य ) १४६ ( अयना चित्त ),  
 १८ ( मद्योमय, संज्ञा-मय ) ।  
 आदाहन । ३०३ ( अचिन्ता ) ।  
 आद्विनय । १२७ ( अवरिणाम ) १३३ ( =  
 अर्जुन=आदिमा ) १४९ ( बुराई ) २१९  
 ( बुद्धपरिणाम ), २५८ ( शेष ) ।  
 आद्विनय । बुद्धीच्छक—। ४६३ ( शेष ) ।  
 आधानप्राई । ४६८ ( = हरी ) ।  
 आध्यात्मिक । ११४ ( शरीरक मीतरी ) ।

भानुपाल-स्मृति । १११ ( = भाषावाम क  
बानुपश्यता ) ।

भानुपूर्वी-कथा । २७, १४ ।

भानुशयिक । ३३९ ( = बराबर साथ रहने  
बाका ) ।

भानुप्रविक । २७९ ( सुतिबादी ) ।

भानुशंस्य । ४९३ ( = गुण ) ।

भार्गेज्य । ४३४ ( निवृत्ता ) ।

भापण । १४५ ( = एकत्र ) ।

भापति । ९१ ( = शोष ) ।

भापति । ५१२ ( शोष बंध ), ४५ ( गुच्छ,  
कुकुट— ) ।

भापति । मनस्यशोष— । १ १ ।

भापति । गुट— । १ १ ।

भापति । तुस्त्यीस्य— । १ १ ।

भापति । छपु— । १ १ ।

भापति । सावशोष— । १ १ ।

भापति-स्कंध । ४५१ ( = पाराविद्य )  
संवादिशेष स्पृक क्लव्य प्रातिश्रेयसीष  
हुक्कत हुभांशित ) ।

भाप-घातु । १९५ ( = अकमहाभूत ) १९४  
१९५ १ ३ ( = अप्पारम भापघातु ) ।

भापघ्न । ९९ ( = भापति-सहित ) ।

भाप-समभावना । १०३ ।

भापादिका । ७२ ( = अभिमतिदिका ) ।

भामाल्ट । १ ७ ( शैवता प्रीतिमद्य ) ।

भामराघ । १३५ ( = पुर्वोच शोध ) ।

भार्मत्रय । ९० ( = विमत्रय ) ।

भामिप । १ २ ( मोक्ष पाव ध्यदि ) ।  
११७ ( मोषपशब्ध ) १४८ ( विपद )  
४३९ ( मोष ) ।

भामिप । छोक— १४८ ।

भाम्नपान । १५५ ( विद्वत्प्रवृत्ति देव ) ।

भायतन । १२ ( उ ) १२ ( चक्षु भोज

प्राण जिह्वा कथ, मन ) २४७  
( = ज्ञान ) । २४८ ( = जगह ) ११४  
( = अप्पारम बाह्य ) ४५५ ( बारह ) ।

भायतन । अय्यात्म— ४९९ ( उ ) ।

भायतन । घाह्य— ४०९ ( उ ) ।

भाप्युमाम् । ५७ ( भावः समान और छोटेको  
संबोधन करके किये ) २१५ ( = भाप )

भायुसंस्कार । ४९० ( शीतल ) ।

भायसा । ७९ ( = पहरा ) ।

भायपारी । १९ ( = दूर रहनेबाक्य ) ।

भायपयक । १३० ( बचने रहनेबाक्य एक  
उत्तर ) ।

भायप्यधीरिय । २३५ ( उद्योगी देखा  
कारण-बीज ) ।

भायप्यथित्त । ५ ४ ( उद्योगशील विप-  
बाका ) ।

भायप्यबस्तु । ( = भायस्पाहिस्य ) ४३१ ।

भायपक । ४३५ ( = सावक सुमुक्त  
पर्व शब्ध ) ।

भायाम । ९५ २ ४ ( = बपीका ) ७९  
निवासस्वाध ) १३८ ( ध्यजन ),  
१९९ ( बाय ) ।

भायामप्रह्वमकी भनुवा । ३९ ।

भायामिक । २५ ( ध्यामक बौद्ध ),  
२५ , ३ १ ( ध्याम-सैवक ) ।

भायप्य । ४५९ ( चार ) ।

भायै । १९९ ( = अदाध ) २०५ ( मुक्त )  
४८९ ( = उत्तम ) ।

भायै-अष्टांगिकमार्ग । २२ ( सम्बद्ध हति,  
संक्षय बचन कर्मान्त क्षीयिष्य  
ध्यावाम समाधि ) ।

भायै-अष्टांगिकमार्ग । ११७ २६ ( बिलार )  
४९९ ( सुबहारा साक्षात्कृतवर्म ) ।

भायै भायतन । ४९२ ( = भायैक  
निवास ) ।

कार्यक । १६२ ( = मासिक ) ।  
 कार्यधन । १६९ ( साध ) ।  
 कार्यपुत्र । १ ( = स्वामिपुत्र ) ११ ( पति ) ।  
 कार्यर्यदा । १५९ ( चार ) ।  
 कार्यवास । १७६ ( दम ) ।  
 कार्यविनय । १७९ ( बुद्धधर्म ), २५७  
 ( = कार्यधर्म ), २७३ १६५ ( स पुत्रपौत्री  
 रीति ) ।  
 कार्यन्यवहार । अन्- ( ४ ) । १६२ ।  
 कार्यशीलकर्मध । १६१ ( = निर्योपशील-  
 कर्मि ) ।  
 कार्य श्रावक । १३ ( श्रौतशास्त्र सङ्ग्रहगामी  
 धर्मगामी अर्हत् ) ।  
 कार्य-स्तर । २९ ( = उत्तम स्तर—बुद्ध  
 बुद्ध-समुह्य बुद्धनितोष बुद्धनितोष  
 गामिनी प्रतिपद् ) २९ ११५ १६७  
 १९३ ।  
 आलय । १६७ ( शीत होना रुचि ) ।  
 आलाटिक । १३ ( = बावर्ची ) ।  
 आर्द्धि । १९९ ( = पार्श्व ) ।  
 आसी । ७५ ( मेष ) ।  
 आलाक । २२ ( = प्रशा ) ।  
 आलोप । १६१ ( ग्राम आदिभ्य विनाय )  
 १३२ ( = अन्त्य ) ।  
 आपर्तनी माया । १२१ ( मग सुमा अने-  
 शका काह ) ।  
 आवस्य । १५७ १४९ ( अतिविशाल )  
 ११३ ( सराव ) १९२ ( वेत ) ।  
 आवस्ययागार । १९१ ( अतिविशाल ) ।  
 आयापक । १५९ ( = अन्तर्गत सामाव ) ।  
 आयासिक । १३८ ( क्वासीव ) ।  
 आपाह । ९३ ( = विवाह ) ।  
 आपुस । १ ( = आपुष्पान् ) २१ ( बने  
 को बरि ) ९८ १८ ३८३ ५७१  
 ( अपनेसे पाटेहीको ) ।

आशय । [ अस्तव ] । २१९ ( = अनुचर ) ।  
 आम्बस्तस्त [ अस्तवस्त ] १३९ ( आधा  
 सनमह ) ।  
 आसन-विष्ठापक । ५९९ ( = अस्त्रव वि-  
 ष्ठापक ) ।  
 आसेचनक । २९८ ( = मुन्दर ) ।  
 आस्य । २ ( = अष्ट मक ) ९८ ( दोष )  
 ९ ( चित्तमक ) १५९ ।  
 आस्यस्ययज्ञान । ( ९. विद्या ) १६३ ( राग  
 बादि मर्कोंके आद्य होवका ज्ञान ) १९१  
 १३५ ।  
 आस्य-निरोध । १६३ ( चित्तमक-विनाश ) ।  
 आस्य-निरोध-गामिनी प्रतिपद् । १६३  
 ( = चित्तमर्कोंके नाशकी शेर के बावैशका  
 मार्ग ) ।  
 आस्यसमुपुष । १९३ ( राग बादिका  
 कारण वा उत्पत्ति ) ।  
 आहार । ७९ ( चार ) ।  
 आहुणेप्य [ आहुण्य ] । २३६ ( = विर्म  
 प्रसके योग्य ) ।  
 आह्वानार्ह । १९ ( निर्मलप्रसके योग्य ) ।  
 ह्यं । २९१ ( अन्तम लो ) ।  
 इतिशुचक [ इतिशुचक ] । १३२ ( बुद्ध  
 भाषित ) ।  
 इतिह इतिह । ३५७ ( न्येसा ऐसा ) ।  
 इन्द्रपीठ । ५२ ( किलके द्वारके बाहर गद्दा  
 कम्पा ) ।  
 इन्द्रिय । ९८ ( पौष ), १४१ २५२ ( अर्हत्  
 की पौष-अज्ञा शीर्ष इत्युति मज्जाधि  
 प्रज्ञा ) २ १ ४७८, १९९ ( पौष  
 बुद्ध-साक्षात्कृत धर्म ) १२५ ४५७  
 ( तीन ) ।  
 इन्द्रियमायना । २७३ ७४ ।  
 इन्द्रियसंघर । १६१ ।  
 इन्द्रियसंघर । कार्य— । १९१ ।

- इम्य [इम्य] । १९९ ( = नीच ) २११ ।  
 इम्यवाद् । १९० ( = नीच कृता ) ।  
 इपुकार । ३२३ ( = ओहार ) ।  
 इष्ट । ३४ ( पञ्च मित्र ) ।  
 ईति । १ ४ ( = धकाक महामारी ) ।  
 ईर्ष्यापथ । १११ ( क्वाभानुपलम्भा विच्छार ),  
 ५३१ ।  
 ईर्ष्या । ११४ ( अंशोद्धव ) ।  
 ईश्वर । ३२१ ।  
 इक्षोटम । ४३२ ( = रिषत ) ।  
 उग्र । १९४ ( ओष्ठ ) २ ३ ( ईंसे अमात्य ) ।  
 उग्रशायन । १९१ ( महाशयन ) ।  
 उग्रार । १११ ( = पाशाका ) ।  
 उच्छेदवाद् । १९४ ( सरीरके साव आत्मा  
 का विनाश मानना ) १३९ ।  
 उच्छावारी । २ १ ( वापसमेह ) ।  
 उत्कोटन । ४४९ ( कामान्य विरोध )  
 ४३९ ( रिशत ), ५९४ ( कैसकेकी  
 अमान्य करवा ) ।  
 उत्क्षेपण । ५१ ( संभका बंध ) ।  
 उत्क्षेपणीय कर्म । ५२ ( = उत्क्षेपण बंध  
 किसमें कुछ समयके किये मिश्रको ककमा  
 कर दिवा जाता है ) ।  
 उत्तर मनुष्य-धर्म । २१ ९४ ५१३  
 ( = दिव्य शक्ति ) ७७ ( मनुष्यकी  
 क्षतिसे परेकी बात ) २९९ ( = दिव्य-  
 शक्ति ) ३ १ ( ४ प्याव ३ विमोह, ३  
 समाधि ३ समापति ज्ञान-वर्तन ३  
 विद्याये ७ मार्गभाषना ४ ककसाक्षा-  
 त्कार, ३ ककैय-महाण ३ विनीचरकता  
 ४ धृवभाषारमें अमिरति ) ।  
 उत्तरारणी । १९९ ३८७ ( राशकर अथ  
 निहाककेकी कककी ) ।  
 उत्तरार्धग । ३५ ( उपरता ) १५९  
 ( = अर्ध ) ।  
 उत्तरितर । २२४ ( उत्तम ) ।  
 उत्तान । १२ ( = साक सख ),  
 ९२ ( स्पष्ट ) ।  
 उत्थान । २१३ ( = उद्योग ) २११ ( लोक्य,  
 उठना काममें मुसीबरी ), २११  
 ( = उद्योग ) २३१ ( = उत्पत्ता ) ।  
 उत्थानसंज्ञा । ५ ( = उत्थानका ल्याक ) ।  
 उत्पल इस्त । २८९ ( कमच ) ।  
 उत्पत्तिनी । १९ ( नीचकमक-समुहाय ) ।  
 उत्पीडा । [ उत्पीड कश्चित्क ] । ९५  
 ( विद्वन्मत्ता समाधिचित्त ) ।  
 उत्सर्ग [ उत्सर्ग ] । १४९ ( कर्ष ) ४२९  
 ( जोह्य ) ।  
 उत्सव । ५ ( = मेला ) ।  
 उत्क-ताप । ३८९ ।  
 उत्कसाटी । ३१९ ( कर्तुमतीका कपक ) ।  
 उत्कापरौहक । २९९ ( कककका केमे  
 बाध वापस ) ।  
 उत्पन्न । ९४ ( = उत्पन्न न समाता ) ।  
 उत्प । ४५९ ( = उत्पत्ति ) ।  
 उत्प-क्यय । ३४ ( उत्पत्ति-विनाश हाकि-  
 काम ) ।  
 उदान । १३२ ( उद्योग्यकित ) ३९९  
 ( भावशोकासमें निकली बाकबाककी ) ।  
 उदपान । ३८९ ( कृषी ) ।  
 उदार । १५५ ( = सुन्दर ) १५८, २४४  
 ४९ ( कवा ) ।  
 उदग्रहण । ७५ ( समापना पडक ) ५४ ।  
 उद्देश । १५ ( = नाम ) २९८ ( वाद,  
 चारण आकर ) ।  
 उद्देश्य । १९३ ( = आकर ) ।  
 उद्देशिका । ५२५ ( कनीटी ) ।  
 उपकरण । ४१८ ( = साधन ) ।  
 उपकारी । २१४ ( = माकर सहकरवादी  
 मीयेकिये ) ।

उपक्रोश । २६० ( = मका द्वारा करना ) ।  
 उपकण्ठेश । २६० ( = विषमक ) २६१  
 ४९ ( मक ५ विषमविराम ) ।  
 उपधारक । ४ ( = उधारक ) ।  
 उपधि । ३४ ( राग आदि ) ३५५ ( तुल्य  
 आदि ) ।  
 उपमहल । ९२ ( = उधरण ) ।  
 उपनाह । २६९ ( = पार्श्व ) ।  
 उपमीत । १० ( = उपनयन द्वारा गुरुके  
 पास प्राप्त, छपको प्राप्त ) ।  
 उपपत्ति । ४०२ ( = उपपत्ति ) ।  
 उपरत । १६ ( त्यक्त ) ।  
 उपरास । २३५ ( गणोंमें राजाके नीचे एक  
 पद ) ४८५ ( सैन्यपत्तिके उपरका पद ) ।  
 उपसाप । ४८६ ( = रिशत ) ।  
 उपलाम । ९१ ( = साक्षात्कार ) ।  
 उपवादक । १६३ २५६ ( = निर्दिष्ट ) ।  
 उपविचार । उपेक्षा— । ४६० ( छ ) ।  
 उपविचार । सीमनस्य । ( १ ) ४२६ ।  
 उपविचार । क्षीर्मानस्य— । ४६० ( छ ) ।  
 उपशाम । २१ २० ३८० ( = व्याप्ति ) ।  
 उपशामन । १ ३ ( = शमन कैसक ) ।  
 उपसंप्रवृत्ती । ५ ( भिक्षु-दीक्षा आहन  
 आका ) ।  
 उपसंप्रदा । ९३ १३० ५२४ ( = भिक्षु  
 दीक्षा ), ५ ( इति अनुपसं, टीका राज  
 गमकसे नहीं ) ।  
 उपसंप्रदा । ९९ ( = भिक्षु-दीक्षा-प्राप्त )  
 ३ ३ ( भिक्षु ) ।  
 उपसंपादित करना । ५ ( संवकी परीक्षा  
 के अनंतर संवके द्वारा करणीय-अकरणीय  
 सूचना-पूर्वक भिक्षु ब्रह्मा ) ।  
 उपसेवन । २ ४ ( = उषेव ) ।  
 उपस्थाक [ उपहाक ] । ९० १२९ २०६  
 ( = उधारी ), ३१४ ( = परिचारक )  
 ४९६ ( = सेवक ) ।

उपस्थान । २६१ ३९२ ( = वाक्य ) ।  
 उपस्थानशाला । ( = वैदिकवाक्य और घर )  
 ६६ ( समापूर ) ४८६ ।  
 उपहस्य-परिनिर्घोषी । ४६४ ( अभा-  
 गामी ) ।  
 उपादान । १६ १२१ ( मतील-उमुत्पादक  
 जीव ) ८५ ( सामग्री ) १२१ ( काम  
 एहि शीकमत आत्मवाद ) १४८  
 ( ग्रहण स्वीकार ) ।  
 उपादान-स्कंध । १९९, ११४ १६४ ६०  
 ( पांच—रूप, वेदना संज्ञा संस्कार  
 आन ) ११६ ( दुःख ) ४६२ ।  
 उपादि । ५१ ( = बुद्धाकारण ) ।  
 उपाधि । २४१ ( = मक ) ५१४ ( रागआदि ) ।  
 उपाध्याय । ४९ ( के कर्तव्य ), ५३२ ( की  
 व्याख्या ) ।  
 उपायास । ११६ ( रीतासी ) ।  
 उपासक । १८ ( गृहल्यवेदा, दो बचनसे ),  
 २२ ( तीव बचनसे ) ।  
 उपासना । ४४४ ( = संसर्ग ) ।  
 उपासिका । २२ ( गृहस्व-दीक्षा तीवबचन  
 से प्रथम ) ।  
 उपेक्षक । १६२ ( गृहीपध्यानको प्राप्तभोगी ) ।  
 उपेक्षा । ११५ ( बोध्य ) ।  
 उपेक्षा माधना । १ १०४ ( अनुकी  
 अनुतापीयी उपेक्षा करना ) ३२६ ।  
 उपोसय । ४ ४ ( इत्य-वदुर्दंभी और पूर्वमा  
 का मत ) ५३३ ।  
 उपासधिक । ८४ ( मत रखनेवाला ) ।  
 उप्पाटन । ०९ ( उपाधना उखाधना ) ।  
 उप्पट्टक । ८१ ( सहा उहा रहनेवाला,  
 तापस बोधरी ) ।  
 उप्पतक । ४५३ ( रीका ) ।  
 उमतोमागविमुक्त । ११८, २४ ( अर्थ  
 मेह ) ।

उम्मार । ( उम्मी ) ।  
 उलुम्प । ४९३ ( = पैस ) ।  
 उरुका । १४८ २ ५ ( = समाक कुडारी ) ।  
 ऊर्ध्वस्रोत । ३६४ ( अकमिडगामी अवा  
 गामी ) ।  
 ऋक्षुप्रतिपक्ष । ( = श्रीवैमार्ग पर आरुह )  
 २३९ ।  
 ऋद्धि । २५ ( श्रीवक्त्र ) ४५ ( विष्णु-शक्ति ) ।  
 ऋद्धिपाद् । २८ २५२ ( उ-उम्प-समाधि  
 से श्रीवसमाधिये किलममाधिये विमर्ष  
 समाधिस ) ४४८ ४२८ ४९९ ( उरु  
 साधाल्लुत धर्म ) ।  
 ऋद्धिमातिहार्य । ३ ७० ३९ ( अदिम्य  
 अमररु दिव्य-शक्ति ) ।  
 ऋद्धिपद । ३३४ ( योगवक्त्र ) ।  
 ऋणम [ उसम ] । १२ ( = उ धनुष =  
 १९ हाथ ) ।  
 एककाय-नाजार्मना । १२१ ( असास्वर  
 रैव त्रिनका शरीर एक हाता है किन्तु  
 नाम अनेक योगिनि ) ।  
 एककाय-एकसंभ । १२६ ( सुमकीर्ण  
 रेवता त्रिनका शरीर और नाम एक  
 होता है योगिनि ) ।  
 एकगारिक । २१४ ( = चारी ) ।  
 एकगन्त । ४४ १९ २१५, ( = उरेव  
 अमि अत विष्णुव तिनल ) ।  
 एकगन्तमुग । २९५ ( = सुग मव )  
 एकगन्तमुगी । १८२ ( = उववग मुगी ) ।  
 एकगयम । ११ ( एकगन्तः प्राक्  
 निवव ) ।  
 एकग्रेडा । ४१५ ( सर्वथा सर्वोपत तिरप  
 चार ) ।  
 एह-मूष । [ एहमूष ] ४०४ ( अत्रमा शूला  
 मूर्ण ) । १०५ ( अत्रमूर्ण भेडगागूला ) ।  
 एरकपतिरा । २१४ ( एकवकारका शरीर  
 एव ) ।

एयणा । ४५९ ( = वाग ) ।  
 एकासेन । ७९ ( एकसित सोखो जावा ) ।  
 ऐनेयक । २१४ ( एक अमरका शरीर  
 इह ) ।  
 ओघ । ( ३२६ अयसागर, संसार प्रवाह ),  
 ४९२ ( चार ) ।  
 ओघरक । १२५ ( = शाक् ) ।  
 ओज । १४ ( = रस ) २९७ ( श्रीववसार ) ।  
 आयट्टिक । ८७ ( कटिका आभूपन ) ।  
 ओघरक । ४७ ( = काडा ) ।  
 औपधिताप । २९५ ४०२ ( सुक ) ।  
 औदारिक । १४९ ( = स्पूक ), १८३  
 ( = भोड ) ।  
 औदत्य-कीहृत्य । ५९ ( = उरुज्जु कता )  
 ११४ ( उरुज्जु ऐह उ मीववर्तने ) १६२  
 औपपातिक । २४४ ४०४ ( अवातिव रैव  
 आदि ) ।  
 कंला घम्म । ५ ३ ( = र्महाय ) ।  
 कटिरुम् । ८७ ( आभूपन ) ।  
 कट्टियिप । १३५ ( अत्र अमिग्या ) ।  
 कंस्सुय । ८३ ( आभूपन ) ।  
 कर्णकथा । ३५९ ( = वादविवाद ) ।  
 कथा । १०९ ( राम चोर माहात्म्य  
 संवा मव सुद अत्र पाव अत्र  
 शपव संव माका जाति, पाव  
 ( सुद-वाया प्राप्त विमम नवर,  
 अवरर एपी घूर, विगिया ) ।  
 कथा । तिरुपत्रण—( रियो कथा ) १४३ ।  
 कथायस्तु । २९५ ३९८, ४१९ ( = वात )  
 ४५८ ( तीव प्रहार ) ।  
 कन्दून् कम्मादारी । २ ३ ( कावम ) ।  
 कथिनाम । ५ ३ ( = गूरी ) ।  
 कणिय । १५० ( = विदिम ) ।  
 कणिय । अ—। १५० ( = निविद,  
 हावम ) ।

कपरी छाया । ४४३ ( जिसमें पक्षोंसे छत्र  
कर धूँ मी जाती हो ) ।  
कम्मकरण । २१४ (= प्रका रात्रिर्दृष्ट, —  
के मेघ ) ।  
कम्मस्ता, धिमुयक । ३ ९ (= कारपर्वण ) ।  
करक । ३ ९ (= तारिपठ ) ।  
करका । २१९ ( मिहीका एक बड़ा नर्तक ) ।  
करंड । ५११ (= पिछारी ) ।  
करीप । ११४ ( उषरका मक ) ।  
कदणामासना । १ ० १०३ ( प्राचीनर वषा  
करना ) ३२६ ।  
करणुक । १९ ( कर्षी हथिनी ) ।  
कर्मी । ९९ ( विद्या ) ९२ ( स्थाप ) २१५  
कथिक कथिक मासिककर्मी मासिककर्मी  
सबकता ४९२ ( कर ) ५२४ (= व्याप ) ।  
कर्मकर । २३४ (= मजदूर ) ।  
कर्मपथ । १ ( कुचक — ) २०१ ( छुमाछुम  
कर्मके रास्ते १ ) ।  
कर्मप्रत्यवेष्टा । ९२ ।  
कर्मस्थान । ५३ (= योगक्रिया योग  
पुक्ति ) ।  
कर्मांश । २३९, ४३३ (= कर्ता ) २९९  
(= कामकाज ) ; २९३ (= काम ) ।  
कर्मार । ४५३ ४९९ (= सोवार ) ।  
कखम । ९० (= तटन गज ) ।  
कलाप । ४४ (= पुष्प ) ।  
कल्प ५२९ (= विद्या ) ।  
कल्पक । ४३ (= हजाम ) ।  
कल्प । विवर्त — । ३५९ (= सृष्टि ) ।  
कल्प । संपत्त — । २५४ ( प्रलय ) ।  
कल्पिककुटी । ३४ ( भंडार ) ९६ ।  
कल्पित । ५१९ (= विहित, हकक ) ।  
कल्प्य । ३१८ (= बोध्य ) ५१४  
(= विहित ) ५१४ ( — विहित ) ।  
कल्याण । २९२ (= मजदूरी ) ।

कल्याण धर्मा । ७३ (= पुण्यात्मा ) ।  
कल्याणमित्र । २४ (= सुमित्र ) ।  
कल्याणधर्म । ३८ ( बुद्धधर्म ) ।  
कवचमणि । ४ १ (= मसारयक ) ।  
कवचिकार । १८३ (= मास प्राप्त  
करके ) ।  
कवचिकार माहार । १० (= कवच करके  
कारेकाका ) ।  
कसिण [ कस्तन ] । ८१ ( एक मासना ) ।  
कसिण । भाषो — ८१ ( भाष-कस्तन ) ।  
कसिण । तेजो — [ तेजो कस्तन ] । ८१ ।  
( एक प्रकारका योगाभ्यास जिसमें  
बाँधको तेज-बद्धपर कपाकर धीरे धीरे  
सारे घूर्मदकर्म तेजोमय देखनेकी अभ्यास  
की जाती है ) ।  
कहापज । २९२ ( ५ मापक = १ पाद ४  
पाद = कहापज कदवामकक कहापज  
मीककहापज ) ।  
काकपेया । १९२ ( कारारर बँडे कौबेके  
पीने योग्य ) ।  
कांक्षा । १ (= संसय ) २५९ ( वदेह ३ ) ।  
काचमय । ७७ ।  
काज । १५५ ( बहंगी ) ।  
काबली मृगधर्म । ३२८ ( एक मुख्यपम  
शेमाका कामका ) ।  
कांत । ७१ (= कामवीय सुम्बर ) १६५  
( = इष्ट ) ।  
कातार । १४४ १९३ ( भीरान कंगक )  
४३३ ( वेकाकाल ) ।  
काम । ५६ ( आवश्यकता ) २१२ ३३०  
( = भाष ) ।  
काम-उपादान । १२१ ।  
कामगुण । १९ २१३ ४९२ ५५८ ( ५  
इष्ट-क्य शब्द गय सब स्थल ) ।  
३४१ ( भोग ) ।



कामच्छन्द । ११४ (कमुच्छता, नीचरत्न) ।  
 काम दुष्परिणाम । २१३ (भोगोक्ती  
 बुराहर्षी) ।  
 कामेष्टिपक्ष । ३४ (किसी कामतासे किया  
 जानेवाला पक्ष) ।  
 कामोपमोग । १९ (= काममोय) ।  
 काय । १२२ ३३५ (= समुदाय) ।  
 कायकलेश । २२ (= आरमरीका) ।  
 कायगत-स्मृति । ४५ (सरीर-संबन्धी अनु-  
 स्मृति) ।  
 कायबर्चन । ५२३ (= कमरबंद) ।  
 कायविज्ञान । ३३ (घातु बंदक आदिका  
 ज्ञान) ।  
 कायसाक्षी । २४ (= सैद्य) ।  
 काया । ३३ (= एक-घातु) ।  
 कायानुपश्रयता । ११ १३ ( १४  
 प्रकार) ।  
 कार्पापण । ४३ [ कदापन ] । (कपसक्ति)  
 ७९ ३९३ ।  
 कार्पापजक । २१४ (एक शारीरिक बंध  
 को धारणपैसा लपकर शायबैध या) ।  
 कार्पापण । काळ—२३४ (तामिस पैसा) ।  
 काळकर्मी । ३९ (= कुकृत्या) ३१०  
 (ककमुडी) ।  
 काळवादी । १९१ (समय देखकर लोखने  
 बाध) ।  
 काठारिका । १९ (द्विगोष्ठी वाति) ।  
 काठिक । २०५ (काकोतरका) ।  
 कापायबंद । ७२ (= काथाय माणकारी) ।  
 कापायबन्ध । २० ।  
 किंचन । ४९२ (= प्रतिबंध ३) ।  
 किंसेज । ४१९ (= कोकरा) ।  
 किशोर । १० (= बछ्वा) ।  
 कुङ्कुमिक । ३९ (= पंख) ।  
 कुशस-पिटक । (= कुशाक-डोकरी) ।

कुमार । ४४ (= पण्खा) ।  
 कुम्भशासी । ३९ (= पणमरली शासी) ।  
 कुल उद्य-। १९९ (अत्रिय, माह्य, राजन्व  
 रिय सूत्र) ।  
 कुलनाश-कारण । १५ (बाढ) ।  
 कुल । नीच—१९९ (बंदाक विचर,  
 बैजव रवकार पुस्त) ।  
 कुलपुत्र । २१ ४० (= पाम्दानी) २९  
 (कुकीव) ।  
 कुलिक । अग्र—३२९ (कुलिक, नगरका  
 एक अर्धतमिक अकसर होला या उसके  
 ऊपर अग्रकुलिक) ।  
 कुन्माप [ कुन्मास ] । ३९४ ३३१ ३९  
 (= हाक) ।  
 कुन्ड । ४९३ (बरी पार करबैध एक सापन) ।  
 कुन्डकविहार । ५२४ (सैबीविहार) ।  
 कुशाळ । ४५ (पवित्र जण्ड) ३२ १९२  
 (= उचम) २१५, २६४ (पवित्र), ४५५  
 (बादर) ।  
 कुशाळ । अ—५९ २१५ (= इरा) ।  
 कुशाळकर्मपय । १ ४०९ (रस) ।  
 कुशाळकर्मपय । अ - ४०९ (रस) ।  
 कुशाळघर्म । २१२ (अच्छी बात) २९९  
 (पुण्य) ।  
 कुशाळमूळ । ४४० (ककोम अहोव जमोई) ।  
 कुशाळमूळ । अ—४५५ (राय होंव, मोई) ।  
 कुशाळ-संयुक्त । १९५ (= निर्मळ) ।  
 कुसीत । ४० । (= अकस्य) ।  
 कुसीत-वस्तु । ४० (बाढ) ।  
 कूट । ८ (बर्तन), १४४ (कोठी गिर्नि-  
 सिचर), ४३२ ।  
 कूट । कंस—४३२ (= कोठी बाहु) ।  
 कूट । कुडा—(= कोठी लीक) ४३२ ।  
 कूट । प्रमाप—४३२ (कोठी नाप) ।  
 कूटागार । २५१ ३२८ (= कोम) ।

कृतपेशी । ५ ( = इन्द्रश ) ।  
 कृतस्नायतन । २५४, ४०५ ( दस दधि  
 योग ) ।  
 कृष्ण । १९८ ( = पिशाच ) ।  
 कृष्णामिहातिक । १५३ ( = पुण्यमे  
 मत ) ।  
 कौटुम्भ । ३५२ ( = कस्य—औतसूत्र धर्म  
 सूत्र गृह्यसूत्र ) ।  
 काटि-संयार । ३३ ( किजारेसे किजारा  
 मिलाना ) ।  
 कौप्य । ९१ ( = अपार्मिक ) ।  
 कोप्य । अ—९९ ( धार्मिक ) ।  
 कोष्ठ । २३४ ( बैरव्य वृक्ष ) ।  
 कौशस्थ । ४५० ( त्रिपुण्ड्रा ३ ) ।  
 कौटुम्भिक । २४२ ( = संकोपनीक ) ।  
 क्रकसोपम । १९५ ( धाराके समान ) ।  
 क्रियायात्री । २३२ ( बुभुक्षुम कर्मोंके एक  
 को माननेवाला कर्मकारी ) ।  
 क्रोश । ९ ( = मक ) ३ १ ( राग ह्येप  
 मोह ) ।  
 क्रुश । उप—। १३२ २४० ( = मक )  
 ( दे उपकरोश ) ।  
 क्रोश-प्रहाण । ३ १ ( राग-प्रहाण, ह्येप  
 मोह ) ।  
 क्रोशानिके उपपत् । २५० ।  
 क्रोमक । १९४ ( केचरैके पासका एक  
 मांसपिंड ) ।  
 कृत्ता । २३९ ( महामात्य प्राइवेट-सेक  
 ररी ) ।  
 कृत-धर्मता । १९५ ( = मन्त्रिता ) ।  
 क्रांति । १ २ ( औचित्य ) १८ ( अह )  
 ३४१ ( क्षमा ) ।  
 क्रियामिस्र । ४३० ( = प्रखर-बुद्धि ) ।  
 क्षीणाक्षय । ५२ २४० ४६९, ५२८  
 ( अर्धव, सुख ) ।  
 क्षुद्र-अनुक्षुद्र । ५ ५ ( छोटे छोटे मित्र  
 विषम ) ।

क्षुद्रप । १९९ ( = बाज ) ।  
 क्षमनीय । ९३ ( = क्षीक=अनुक्षुद्र ) २९९,  
 ३६९ ( अक्षय ) ।  
 क्षरिया । ३०१ ( क्षोरी ) ।  
 क्षायपतच्छिक । २१४ ( एक क्षारीक-  
 रंज ) ।  
 क्षारी । ३२ ( = परिषा, क्षोडी ) ।  
 क्षारी यियिध । ९ ( = क्षोरीर्मत्रा बाज  
 प्रक्षीके समान ) ।  
 खेसपिंड । २ ४ ( = पूक ) ।  
 खज । ३८० ५३३ ( = अमात ) ४८४ ४४२  
 ( महावंश ) ।  
 खणक । २९ ( खर्क ) ४३  
 खयी । २४९ ( = यन्त्राचार्य ) ।  
 खति । ४६२ ( पर्व ) ।  
 खंध । ३३ ( बाणु ) ४६२ ( अर ) ।  
 खंधकुटी । ८ ३१५ ( बुद्धके निवासकी  
 कोठरी ) ।  
 खंधर्व । १२ १० १०१ ( अन्तरायक  
 सत्त्व ) ।  
 खर्म । ३१९ ५९४ ( = कोठरी ) ।  
 खर्म-अपक्रांति । ४६२ ( खर्ममें आना ४ ) ।  
 खम्बूति । ३, १९५ ४९९ ( = ३ पौत्रव ) ।  
 खया । ५२ १३२ ( बुद्ध-आपित ) ।  
 खुज । ०० ( = करामात ) ४६३ ( क्षीक  
 में ५ ) ।  
 खुलधर्म । ०४ ( मित्रुभिषोंके जाठ ) ।  
 खुलकार । १५ ( = मार ) ।  
 खुलपति । ६८ १५९, ४४५ ( बैरव ) १४५  
 ( खुलस्य ) ।  
 खय १३२ ( व्याकरण बुद्ध-अपित ) ।  
 खाघातकसूना । १४० ( खाघ मारनेका  
 पीड़ा ) ।  
 खाघातकका सुय । ३ ।  
 खाखरग्राम । ३६० ( = मिश्राटन पोख पार्श्व  
 वर्ती ग्राम ।

- शाण्डिल्यत । ३२८ (दोहीन) ।  
 शात्रम् । ७२ (नामधारी) ।  
 शात्रयाद् । २ १ (दे जातिवाद) ।  
 शोषामस्ती । १७५ (अद्येवा) ३८९ (येवा,  
 कर्षी) ।  
 शो माहात्म्य । ३७२ ।  
 शो-रस । १७७ ३७२ (दूध दही उष  
 मन्त्रक पी) ।  
 शो विक्रतन । ३८८ (आप काटनेका घृता) ।  
 शार्दिस्ता । ३७२ ।  
 शीतय । ७९९ (उ) ।  
 शीतय । अ—७९८ (उ) ।  
 शहूर्णी । ३२४ (वाचबसकि) ३९२ (प्र  
 कृति) ।  
 शाम-शामिक । ३८४ (शाम-अक्षर) ।  
 शामणी । १ ९ (शाम-अक्षर) ।  
 शामान्तर-कर्म्य । ५१८ ५२२, ५२९ (वि  
 मय-विष्णु विधान) ।  
 शाम्य । २२ (स्वीय) ।  
 श्शाम प्रस्थय । ९९ (शोगि-यत्न) ।  
 शाय । ३३ (नगण्य) ।  
 शाय । ३३ (घानु) ।  
 श्राण-विमान । ३३ (घानु) ।  
 शनुध मीन । रास—७४३ (उत्र श्वजन  
 कर्णाच गह वादुका) ।  
 शहरण । ११ (यक्षवर्मीका दिव्य आनुच) ।  
 शयपर्मा । ७१ (राजा) ।  
 शयपाल । ७८ (महोदका गोन) ।  
 शयु । ३१ (घानु हग्निच) ३२ (अर्धो  
 कच घानु, कच हग्निच) ।  
 शयुधिमान । ३३ (१ घानु) ११० (अकणु  
 ओर कण्डे विमलय मा कच धंकेपी नाम  
 हाता ई) ।  
 शयु-नीशपना । ३३ (कणु आर कचका  
 मिथका) ।  
 शक्रमण । ३१ (अष्टकना) १७ (दृक्नेकी  
 बगह) ८ (दृक्नेका प्युतरा) ।  
 शंक्रमण-येदिका । ९१ (दृहसनेका क्यु  
 तरा) ।  
 शंक्रमण-शाष्टा । १९ (दृक्नेका बरीका) ।  
 शंड । ५८ (=अधेकी) ।  
 शंडाल-पुष्पक । ७८१ (बगर प्रवेश) ।  
 शरण । २८ (= विचारन) २ १, ३१५  
 (=आधारण) ।  
 शम-रंट । ५३५ (=अमदेकी आसनी) ।  
 शानुर्दीपिक-यया । ३१२ (कातो ह्रीर्षोमे  
 क्णान्तर बरसबमडी कर्षी) ।  
 शानुमेडापथ । १८३ (=धौराहा) ।  
 शानुपाम-सपर । (देवो सबर शानु  
 र्शाम) ।  
 शानुपर्षी शुद्धि । १६७ (बिद्या आर आच  
 रणक अनुसार कर्ष-म्यवरया) ।  
 शारिका । २१ (=आधा) ३९ (तामठ) १९५  
 (स्वरित अत्यरित) २३५ (बीबर वय  
 कातैवर दीवमाग बाद) ।  
 शिक्रिमा । शाम्य—२८३ ।  
 शिना । ५ ७ (शिमना-कीपना) ।  
 शिचिनिर्घंध । ७९५ (शिचको मुक्त म  
 दोरे देनेवाले) ।  
 शिचियिपर्ष । ७३६ ।  
 शिचानुप-यना । ११७ (रयुति-प्रमाण) ।  
 शिचपार । १४ (= पुस्तकार) ।  
 शिचामणि । ८९ (काकूक बिधा) ।  
 शीक-शामिका । २१७ (एक प्रकारका  
 शीर-बंद) ।  
 शीपर । ४२, ९९ २५ (शिशुके बण),  
 २८८ (उ प्रकारक चापर जाकर) ।  
 शीपर । सुदरति—२८ (एकमेका विना  
 चापर) ।  
 शीपर । शि—१३३ (अन्नाकागहोगुडी,  
 उन्नाकागह = इवही चापर मंडी =  
 पुरी चापर) ३८८ ।

धीवर-प्रकार । ३ ५ ।  
 धीवरसख्यामर्पादा । २९३ ।  
 धु गी । ४ ९ ।  
 धुल । ८३ ( = छोट ) ।  
 धूल । २२९ ( = छोट ) ।  
 धेतसिक । ११९ ( = मासिक ) ।  
 धेतः परिहान । ४९ ( = परकिचशाव ) ।  
 धेतोसिल । ५३९ ( = चित्तके कीडे ५ ) ।  
 धैर्य । ४८५ ( = नीरा देवस्थान ) ५ ७ ।  
 धैर्यपंक्ति । ३८० ( = पावडा ) ।  
 धोखपान । १५५ ( विकारकमें विहित केके का सर्वांत ) ।  
 धोदना-धस्तु । ४५७ ( बाधपका विषय ३ ) ।  
 धोर । ३४४ ( = डाक ), ४८२ ( = गुन्हा ) ४८५ ( = अपराधी ) ।  
 धोर । महा — १३ ( पांच ) ।  
 धोरी । २९२ ( व्यापका ) ।  
 ध्यवन । ११५ ( ध्युत होवा मरण ) ।  
 ध्युत । २५६ ( = सुत ) ।  
 ध्युति उत्पादकाल । १६३, ३९१ ( = प्राथिपोंके जन्म-मरणका ज्ञान द्वितीय विद्या ) ।  
 ध्युति-उपपाद-ज्ञान । ३९१, ४३५ ( = ध्युतुत्पादकाल ) ।  
 उ मायतन । ( देखो मायतन ) ।  
 उम् । ११८ ( = सम्मति = Vote ) ( विधाय )  
 १६७, ३३३ ३५७ ( राग कवि )  
 २११ ।  
 उम्जात । ४९ ( = जानदित ) ।  
 उम्पराग । १२१ २२ ( प्रकाशकी हृष्य ) ।  
 उम्-दामाका । ४ ४ ( संमति = Vote की कट्टी ओ पुर्वीकी जगह होती थी ) ।  
 उर्पि । ५ ९ ( जमनेकी कपरी शिखी ) ।  
 उरिका । ५ ९ ( = राज ) ।

उरिका । २८८ ( = लंब लंब कर बोधा ) ।  
 उपविहार । १४५ ( चदक-कपटी ) ।  
 उटासामपी । ३२ ।  
 उटिल । २९, १५२ २६९ ( = बघपारी, जमिपूजक ब्राह्मण-संप्रदाय जान-मस्ती )  
 ४ ३ ( जमिपूजा ककस्थान आदिसे पाप-धुति मानने बाडे ) ।  
 उदिलक । २६९ ( बघपारी जमिपरिचारक शापस ) ।  
 उम्पूपान । १५५ ( विकारकमें देव जामुन का रस ) ।  
 उनपद् । १९९ ( = देव ) ।  
 उनपद्-कस्यापी । १८३ १९१ ( देखकी सुन्दरतम श्री ) २६४ ( सुन्दरिबोकी राबी ) ।  
 उनपद्-धारिका । १३३ ( = देसाहन ) ।  
 उताघर । ४८ ( जस्मानाघर ) ।  
 उरा । १९ ( उरुपापा ) ।  
 उरा मरण । १२१ ।  
 उलोगीपान-कल्प । ५१८, ५२२ ५२७ ( भविहित-पान ) ।  
 जातक । १३२ ( बुद्ध माफित ) ।  
 जातरूप-रजत । १४५ ( विपेय ) १६१ ( तोबा-बाँदी ) ।  
 जातरूप-रजत-कल्प । ५१८ ५२२ ५२७ ( विषय विकल्प-पिधान ) ।  
 जाति । १९ ( जन्म ) १२ ।  
 जातिपाद् । २ १ ( पोटबाद्, जन्मसे ऊँच नीच जाति मानवा ) ।  
 जानपद् । ९१ ( सीहापी ) २१९ ( मामीच ) ।  
 जिदा । ( बाट = शक्ति ) ।  
 जिदविधान । ३३ ( धानु, नीर रसके योग से उत्पन्न होवेबाका ज्ञान ) ।  
 जिन । ३४ ( = बुद्ध ) ।

शीयन-संस्कार । ४९६ ( = व्याज-शक्ति ) ।  
 जगुप्सु । १२९ १३९ ( वृत्ता करवैशाख ) ।  
 क्षिति । ६० १ ३ ५११ ५२५, ( विवेक  
 संयुक्ते सम्मुक्त प्रस्ताव पेश करनेसे पूर्व  
 ही शान्तिवाची सूचना ) ।  
 क्षिति-वस्तुर्था । ५ ( क्षितिको डेकर प्रत्यक्षकी  
 चार द्वाहराचर ) ।  
 क्षातक । २३५ ( = क्षातिविराहरीवाक्ये ) ।  
 क्षाति । १०३ ( कुम्भ ) ।  
 क्षाम । १५१ ( = वसंत ) ३५९ ( चार ) ।  
 क्षान्त-वर्षा । २५१ ( ज्ञानका ममसे प्रत्यक्ष  
 करवा ) ३ १ ( ३ विचार्ये ) ।  
 ज्येष्ठ । १४२ ( व्यथाव ) ।  
 ज्येष्ठक । ५३१ ( = मुक्तिवा ) ।  
 ज्योतिर्मासिका । २२० ( शायनेका संवत् ) ।  
 झूठ बोधना । ६२ ( विहा ) ।  
 तडाक । ४ ४१ ( = चक्रवा ) ।  
 तप्यापीयसिका । ४५१ ४० ( अमिकरक-  
 क्षमण ) ।  
 तथ । १४-१२४ ( = तथपार्थ ) ।  
 तथागत । १८ ३ ४५ ( उद ) ११६  
 ( मरुतके वाद ) ।  
 तथागतका वाद । १२४ ।  
 तथ्य । १८१ ( = तथ-व्यवार्थ ) ।  
 तवी । ९ ( भावस्व ) ।  
 तनुवाय । [ तुलनाव ] । ६६ ( उम्माह ) ।  
 तर्काचर । अ—( तर्कसे ज्ञानार्थ ) २११  
 ( तर्कसे ज्ञानोपर ) ।  
 त्रापस । २ ११ ३ ( वाद—समुद्रमात्र  
 रक्षाकारी जगतिपरिष्कृत अन्वर्षपाक  
 नाम मुष्टिक संतककणिक मन्वृत्तक-  
 योमी पौत्र-पञ्चमिक ) ।  
 ताम्रमोह । ६८ ( तौषा ) ५११ ।  
 तान् । झूठा-१ ३२८ ।

तिजपत्थारक । ४५१ ५३६ ( वाससे रॉक  
 रैवा रैसा झयनेक क्षमण ) ।  
 तिरच्छाण-कथा । २३३ ( ज्ञानकी कथा ),  
 ( रै कथा ) ।  
 तीर्यफू-कथा । १३६ ( तिरच्छाणकथा ) ।  
 तियग्योनि । ६९, ४६९ ( पशु पक्षी ) ।  
 तीर्थ । ४४ ( = संप्रदाय ) १७६ २४९ ( पूर्व ) ३  
 ३६५ ४९९ ( वाद ) ।  
 तीर्थकर । ८५, २४९ ( = सं-स्वापक ) ३१९  
 ( = पंच अक्षरीवाक्य संप्रदायप्रवर्तक ) ।  
 तीर्थोपतन । २३२ ( = र्वव ) ।  
 तीर्थ-संज्ञ । ४६९ ( = ब्रह्म ब्रह्मवाक्य ) ।  
 तुच्छ । ८१ ( चाकी ), ११ ( रिष्ठ )  
 २४४ ( प्रिष्ठ ) ।  
 तुपित । ४०२ ( रैवकोक ) ।  
 तुष्णा । १९ १२१ ( प्रतीत्य-समुत्पादक  
 संवत् ), ११० ( = विचय कितवके वाद  
 वसकी प्रसिद्ध छोम ) १२१ ( कच-सुष्णा  
 कम्प संवत् रस स्पष्टव्य धर्म ) ४  
 ४५६ ( तीव ) ।  
 तुष्णाकाय ( उ ) । ४६४ ( उ ) ।  
 तुष्णोत्पाद् । ४६ ( चार ) ।  
 तेज धातु । १४५, १६४, १६५, १७३,  
 ( = प्यतम वाद ) १६६ ( तैज मठ  
 भूत ) ४३८ ।  
 तेजन । ३२३ ( = वाक्य कक ) ।  
 तेज-सम भावना । १०३ ( प्याव ) ।  
 तैर्थिक । ( = र्वाह ) ५ ४ ( = श्री प्रज्वा  
 ४ मासकी परीक्षाके वाद ) ।  
 त्परा । २३५ ( वाद ) ।  
 तयस्त्रिंश । ४०२ ( रैवकोक ) ।  
 त्रैविद्य । ६८ २३२ ( तीर्थो विचार्योक्त  
 ज्ञान ), २२६ ।  
 त्रिविद्य-शास्त्रण । १९ ( विवेक-भा ) ।  
 धेर । ४५ ( युवा ) ।

घोरवाद् । ( वे स्वभिरवाद् ) ।  
 वक्षिणा-आति । ४२ ( पुरुष ) ।  
 वक्षिणा । ७२ ( =वान ) ।  
 वक्षिणा-विशुद्धि । ४६२ ( =दान-मुक्ति ) ।  
 वक्षिणेय । २३६, ४०१ ( दान-वाच ) ।  
 वक्षिणेय-पुद्गल । ४० ( अट ) ।  
 वंङ । ७२ ( परिवास मूढप्रतिकर्षणार्हं  
 मातृत्वार्हं मातरव-वारिक आह्व  
 नार्हं ) । ४१४ ( =कर्म काविक  
 वाचिक मानसिक ) ।  
 वंङवीपिका । ३८ ४०९ ( =मघाक ) ।  
 वंतप । ३४ ( =वाय गज ) ।  
 वस्तवस्कसिक । ११ ( दानसे अक  
 ङीककर कावैद्यका तापस ) ।  
 वस्यसारथी । ३४ १४१ ( =वायु-  
 सवार ) ।  
 वर्धिमाहक । १०१ ( =रसोर्द्धार ) ।  
 वर्धन । २५ ( =साक्षात्कार २६ ( शान )  
 ३१ ( तीव विद्याभे ) ।  
 वष । ३६३ ( =श्रीका मरु) ४५१ ( सहाय ) ।  
 वशाबद्ध । ४५ १४२ ( =बुद्ध ) ५१  
 ( बुद्धके ) ।  
 वशावर्ग । ३६९ ( वष भिक्षुश्रीक समूह ) ।  
 वशायस्तु । ५२४ ( वशिपुत्रक भिक्षुओं के  
 किरप-विच्छेद वस विधान ) ।  
 वस्यु । २१२ ( =बुद्ध ) ।  
 वस्यु । बु ३ ( =छोटा बाहू ) ।  
 वदर । ८७ ( अस्य-वचस्क, छोटा ) ४९४  
 ( तप्य ) ।  
 वदरक । ९८ ( =तप्य ) ।  
 वाय । ५२ ( =वाय ) ।  
 वान । ३२० ( निष्ठा मोक्षण ) ६५  
 ( सदावत ) ।  
 वान-उपपत्ति । ४०२ ( भाट ) ।

वानपति । २१९ ( =वाचक ) ।  
 वानवस्तु । ४०१ ( भाट ) ।  
 वायज्ज । ५४ २६१ ( =वरासत ) ।  
 वापाव । ४५ ( =वारिस ) ।  
 वाय-पाठक । ९३ ( =वचपाठ, माडी ) ।  
 वास । ४ ४१; १६८ ( =गुह्यम ) ।  
 वार-गृह । २९ ( बहूजोशाम ) ।  
 वास-वासी । २८१ ( इवामर्मे ) ।  
 विष्यबधु-ज्ञान । १५, १६ ४३६; २५६  
 ( विस्तारसे ) ।  
 विष्यभोत्र-ज्ञान । ४३४ ।  
 विशा-नमस्कार । २५० ।  
 विशाममुख । २०९ ( विपत-वसिष्ठ ) ।  
 विसापामोपस्य । २८२ ( विपत-विक्रयत, )  
 वीर्यरात्र । २१२ ( बहुव समय )  
 वुःख । २२ ( आर्षसत्त्व २ ) ११६ ( = उपा  
 दान-स्वर्ण—क्य, वेदका संज्ञा संस्कार,  
 विज्ञान ) ११५ १६४,  
 वुःखता । ४५६ ( तीव ) ।  
 वुःख-निरोध । २४ ( आर्षसत्त्व ३ ) ११५  
 विस्तारसे ) ।  
 वुःखनिरोध-गामिनी प्रतिपद् । २२ ( आर्ष-  
 सत्त्व ४ ), ११० ( विस्तारसे ) ।  
 वुःख-समुच्चय । २२ ( आर्षसत्त्व ) ११६  
 ( विस्तारसे ) ।  
 वुःख-स्वर्ण । २१३ ( =बुःखोंका कुंज ।  
 वुःखतिनिस्सर्गी । ४६८ ( =दडी ) ।  
 वुर्मरता । ७६ ( =कर्मिणाई ) ।  
 वुर्मिस्त । १४ ( जहाँ निष्ठा पाता कठिन  
 हो ) ।  
 वुद्धरित । १२९ ( क्य वचन मन )  
 ( काव —हिंसा, चोरी धमिष्कार  
 मन—कोम प्रोह, मिष्ठा-दृष्टि, वचन  
 —बद्ध पुगडी बहुवचन प्रकाय) १२३  
 ( दुःखाचर ) २१४ ( पाप ) ४५५ ।

युग्मीक । ३, ४६३ (पुराचारी) ।  
 युष्कर-क्रिया । २१४ (अपत्या) ।  
 युष्कृत । [ युष्कृत ] १९, ७७ ८०, १ २  
 ५२० (छोटा अपराध) ।  
 युष्पतिर्मध्य । १६० ( = वाद करनेमें यु  
 ष्कर ) ।  
 युस्त । ७१ (युस्ता) ५ ६ (पाव) ।  
 युस्तकोद्धार । ३ ८ ( = अपदेक गोष्ठा  
 म ) ।  
 युस्तबलिष्ठ । ५१६ (अपदेक व्यापार) ।  
 युस्त्यौस्त्य । [ युस्त्यौस्त्य ] १४ ( समाधि  
 विज्ञ) १ १ (पुराचारी) ।  
 युष्कर्म । ३ ५ ( = रघु ) ।  
 युष्-धर्म । २४ ( = वासधर्म ) ५२ ( हसी  
 धर्मों लकाक ) ।  
 युष् । १९, ११४ ( = धारणा संबोधन )  
 ४५९ (सिद्धन्त) ।  
 युष् । सम्पत्— ( देखो सम्पत्-रुष्टि ) ।  
 युष् उपपत्ता । १२१ (मत्तवाद्वा ध्यायह) ।  
 युष्गत । १५८ ( = धारणमें स्थित लक्ष ) ।  
 युष्-निष्पानास्त । ३२१ ( युष्-स  
 हस ) ।  
 युष् निष्पानास्त । [ विष्टिनिष्पानलक्ष ] ।  
 २१ ( सांख्यिक विपाकधर्म ) ।  
 युष्-परामर्श । [ विष्टि-परामर्श ] । ४४८  
 (युष्धर्म) ।  
 युष्-प्रतिबोध । ४६९ ( = सम्मार्थ-वर्धन ) ।  
 युष्प्राप्त । २४ ( अर्हत् ) ।  
 युष्-वि-गुण्डि । ४५५ ( सत्यके अनुसार  
 ज्ञान ) ।  
 देव । ४०९ ( काठुमंहारात्रिक प्रवक्षित नाम  
 विमानरति पात्रिमित वराचर्तौ मङ्ग-  
 धारिक ) ।  
 देव ऋषि । ३५९ ( उदक ) ।  
 देवता । २३६ ( ८ प्रकार ) ।

देव-निकाय । ४०४ ( = देव-अनुवाच ) ।  
 देवपुत्र । २ ( देवता ) ।  
 देवलोका । ३४ ।  
 देवस्थान । १३ ।  
 देशाना । १९ ( = उपदेश ), ५१४ ( = ज्ञान-  
 प्रार्थना ) ।  
 दोहद । ४४२ ( गर्मिनीकी किरी चीजकी  
 इच्छा ) ।  
 दौर्मनस्य । ३३ ( = दुर्मनसा ) ११६ ।  
 द्युत । २५८ ( दुयेके दोष ६ ) ।  
 द्युर्गुणकल्प । ५१८ ५२१ ५२६ ( विषय  
 विद्व-विधान ) ।  
 द्वारकोष्ठक । ७३ ( कोठवाक्य तथा द्वार ),  
 ३८५ ( नीचल-आश्रय ) ।  
 द्वारधाम्ना । ४२१ ( = वाक्य ) ।  
 द्रोणी । ५ १ ( = क्षाम ) ।  
 धम्मघोस । २४९ ( = विचार ) ।  
 धर्म । ३३ ( भातु ); ११८ ( विचार ); ८०  
 ५११ ( सुख ); ९९ ( इ-स्युक्तिप्रस्ताव ) ४  
 सम्बन्धप्रधान ४ कश्चिदाह, ५ इतिव  
 ६ एक ७ बोध्यंग ८ आर्ह-असांगिक-  
 मार्ग) ६२ १ २ २११ (भात) ११४  
 ४८२ ( = सम्मार्थ ); ११० (सम्बन्ध वि-  
 ष); ४५५ २२३ (परमलक्ष) ।  
 धर्म । एकशिक्ष—१८९ ।  
 धर्म । पाप—२ ( पुराई ) ।  
 धर्म । ध्यवदासीय—१८५ ( सामन विपन्न  
 वा ) ।  
 धर्म-कथिक । ३ ( उपदेशक ) ६८ ( धर्म  
 व्याख्याता ) ४३६ ५३४ ।  
 धर्मधीस्य । ४४ ।  
 धर्मता । २ ( = विद्वेषता ) ।  
 धर्मदान । १३४ ( = धर्मोपदेश ) ।  
 धर्मधर । ४९८ ( सुप्रविष्टकपाटी ) ।  
 धर्मधातु । ४२६ ( = सम्बन्ध विषय ) ।

- धर्मधारणा । १११ ।  
 धर्मपर्याय । ३० (= उपदेश) ।  
 धर्मविषय । ११४ ११५ ( धर्म-अन्वेषण  
 बोधार्थ ) ।  
 धर्मयिनय । २६ (= धार्मिकसंप्रदाय) ११ ।  
 धर्मयाविता । अ-१ १ ( १८ ) ।  
 धर्मयेद् । २३९ (= धर्मज्ञान) ।  
 धर्मसमादान । ४५९ (= धर्मस्वी  
 कृत ) ।  
 धर्म-सेनापति । १२५ (= सारियुद्ध) ।  
 धर्मस्कंध । ४९ ( ४ ) ।  
 धर्मस्वामी । ९२ (= बुद्ध) ।  
 धर्मानुपदेश्यमा । ११४ ( ५ भीष्मराजबन्धु  
 उपपादानधर्म ११ सर्वोन्नतधर्म ७ बोधार्थ  
 गधर्म ४ आर्यसत्त्वधर्म ) ।  
 धर्मानुपदेश्यी । ११९ ।  
 धर्मानुसारी । २४ ( धैर्य ) ।  
 धर्मानुस्मृति । १४१ २३६ ।  
 धर्माग्नेध्यात्री । १५९ ( निःशुद्धिधर्म )  
 २७९ ( काम क्रमेण पशुसंज्ञा )  
 धर्मान्वय । ४९ (= धर्म-समाहता) ।  
 धर्मासल । ३ ( ध्यासगरी ) ।  
 धातु । ३ १६४ ४९ ( महाभूत), ४९८  
 ( उ धातु ) ४५५ ( १८ धातु ) ४५९  
 ( विष्णु ३ कोटि ३ ) ४५६ (= लक्ष  
 वितर्क कुसुम-मकुसुम ) ।  
 धातु । निस्सटणीय-—४९८ ( उ ) ।  
 धातुगर्भ । ४९१ ( धातुधर्म-व्यवस्था ) ।  
 धातुपरिस्त्रायण । ४८१ ।  
 धातुममसिंहार । ११३ ( काशानुपदेशना ) ।  
 धुत-अंग । १३० (= अक्षय्यतोके निबन्ध  
 धारण्यक विद्युत्पातिक पांशुशुद्धि, सप्त  
 शत-धारी ) ।  
 धुतधादी । ४३९ ( धुत-अंग-धारी ) ।  
 ध्यान । १३ १६९ २५४ ३ १, ४५८  
 ( चार विस्तारसे ) ४७४ ( विस्तार  
 अनुर्ध्व-ध्यायने इवासाधारोच); ५ ५-५ ६  
 ( पयम, द्वितीय मृतीय अनुर्ध्व, काका  
 शाबंत्वावतथ, विज्ञान भाकिष्मन्,  
 ' नैवसंज्ञानासंज्ञा, संज्ञावेदवित्तनिरोध ) ।  
 ध्यान-सुख । १४ ।  
 ध्रुवपरिभाग । ७ ( सहाके उपयोग्य) ।  
 नक्षत्र । ५३९ (= उत्तम ) ।  
 नगरक । ५ ३ (= नगका, छाटा करना) ।  
 नगर-रक्षा । ४८७ ( माकार और परिरक्षण ) ।  
 नगररूपकारिका । २ ४ (= नगर-संज्ञिका  
 धरत पनाह ) ।  
 नटी । ७ ( नटणी ) ।  
 नम्बिद्वेष । ११६ ( मुख-संबन्धी हृत्पत्र ) ।  
 नय । २३ (= स्थाय ) ।  
 नळ । ४४९ (= नकट ) ।  
 नलकार । ( नलकटका काम करन बाछा ) ।  
 नयकर्म । १७ ( गृह-विमोचन ) ।  
 नयकर्मिक । ६७ (= विहार व्यवधानेका  
 उत्पाद्यधामक ) ।  
 नहापक । ४३ ( नहरुधै बाछा ) ।  
 नहापित । १५६ (= इजाम ) ।  
 नहार । १६४ ( स्नातु ) ।  
 नाग । ९७ ( बुद्ध ) १ ९ ( पाप-नहित ) ।  
 नागयमिक । ११८ (= इन्दीके अंगकका  
 धारणी ) ।  
 नागावसाकम । ४९६ (= इन्दीके तरह  
 सार धारीको कुमाकर देखना ) ।  
 नाटक । ७ ( मृत्त्व-नाय ) ।  
 नाभकरज्यम । ४७५ ( दस ) ।  
 नागाकाय-यकसंज्ञा । १२६ ( विज्ञानस्विति  
 योगि ) ।  
 नानाकय-नागासंज्ञा । १२६ ( विज्ञान  
 स्थिति चिन्तार ) ।



- मानास्य-ग्रहा । [ मानस-पञ्च ] । १ ५  
 समाधिदिग्घ ।  
 मामकाय । १२२ ( = वाम-समुदाय ) ।  
 माम-रूप । १६ १२२ ३५३ ( प्रतीत्य  
 समुत्पादक एक अंग ) ।  
 माली । ७ ( मण्डली ) ७१ ( भावसौरमर ) ।  
 मास्तिकयादी । २७७ ( विस्तार ) ।  
 मिकटि । ७३२ ( = हस्तता ) ।  
 मिच्छेत् । ११ ( = अर ) ।  
 मिक्षितधुर । ७ ५ ( मगोषा ) ।  
 मिर्गठ । ८ ( = मिर्चक प्रथि-रहित प्रथि =  
 पाप ) १७ ३ ९ ( ईश्वरस्य ) २१५  
 ( = स्वभाव ) ।  
 निगम । ५६ ( = करवा ) ।  
 निर्घट्ट । १९५ ( = कोल ) । ।  
 निदान । ९९, १२२ ( = समुदाय हेतु,  
 प्रत्यय ) ५१२ ( कारण ) ।  
 निधान । ५१ ( = बहवशा ) ।  
 निधानवती । १६१ ( सारक ) ।  
 निध्यान । २११ ( = ध्यान ) २७  
 ( निदिष्यासन ) ।  
 निःप्रीतिः । ९९ ( = प्रीति रहित ) ।  
 निपुण । २११ ( = पंडित ) ।  
 निमित्त । ९९ ( विधेयता ) १७९ १६७  
 ( किंग, अङ्कति ) ।  
 निपति । २७५ ( = अहितत्वता ) ।  
 निपुत । ३७ ( = काक ) ।  
 निरगल । ३१७ ( सर्वमेष-अज ) ।  
 निरुक्ति । १२३ ( = भाष्य ) ।  
 निरुद्ध । १७७ ( = अर ) ।  
 निरोध । (कार्बसाय) २७ ( = दुःख मार )  
 २२ ।  
 निरोध-धम । २३ ( = वाधारवभाववाक्य ) ।  
 २७ ( माल होने बाका ) ।  
 निर्ग्रन्थ । ७१७ ( = ईश्वर मानु ) ।  
 निर्देश । ७९९ ( विस्तार ) ।  
 निर्देशवस्तु । ७९९ ( साठ ) ।  
 निर्मोक्ष । १९९ ( विस्तार ) ।  
 निर्माणरति । ७७२ ( देव ) ।  
 निर्योता । २७८ ( = मार्गदर्शक ) ।  
 निर्योष । ९, ३५ ( उपभि-रहित पद ),  
 ३५७ ( अस्तंयमन ) ।  
 निर्युत । ३७८ ( युक्त ) । ।  
 निर्युत् । ३३ ( ईश्वरवशी पूर्वावरणा ) १६७  
 १८१ २७१ ( = उदासीनता ) ।  
 निर्युत्-प्राप्त । १९९ ( उदास ) ।  
 निर्येषभागीय । ७९८ ( संज्ञा ९ ) । ।  
 निर्वेदिः । ७९७, ७७५ ( अन्वस्तकतक  
 पर्व्वानेषाडी ) ।  
 निष्ठासन । १७५ ( पोषाक ) ।  
 निष्पुत । १९३ ( = बाहुत ) ।  
 निष्ठाति । ७९९ ( = विपश्यता ) ।  
 निष्प्रिय । ७५९ ( = अमित ) ।  
 निष्पाद् । ३९३ ( जाति ) ।  
 निष्पीडन । ५२३ ( विहीना ) ।  
 निष्क । ३९ ( = अक्षर ) । ।  
 निष्कामता । ३५८ ।  
 निष्काम्य । ७८७ ( = निष्कामता ) ।  
 निष्ठा । २१ ( अज्ञा ) २३७ ( कारण ) ।  
 निष्पाक । ७९९ ( = परिपाक ) ।  
 निस्सरण । १२७ । ( = छंद-राय डोवना ) ।  
 निस्सरण-पद्म । १९२ ( बंधनेसे निष्कामैषी  
 मज्ञा ) ।  
 निस्सरणीय धानु । ७९५ ( पांच ) ७६८  
 ( छ ) ।  
 निहीन । २ ( = बीज ) ।  
 नीचरण । ११७ १९३ ( ५-कामफल  
 स्वापार, एवावयुद्ध श्रीहरण-कीर्तन,  
 चिचिकित्सा ) १६२ ( ५ अमिष्ठा  
 स्वापार, एवावयुद्ध श्रीहरण-कीर्तन

विधिक्रिस्ता) १४७ (= बहकन) २६६  
४३३, ४६३, ४९ ।

नीलमणि । २३४ ।

नेत्री । [नेत्री] । ४४८ (रस्ती गाँठ) ।

नेगम । ६५, २७८ (बेड़ीसे कपरका पद)  
२१९ (साहरी) ।

नेत्रयिक-गुहपति । २१९ (बैगम-बावपद  
ज्यिकारी) २२१ (= बनी बैस्य) ।

नैर्यायिक । ४६० (= बैसा करबेबाकेको  
हुत्त-कपकी ओर खेजाबेबाका) ४८९  
(पार कराने बाक) ।

नैवर्त्तना-नार्त्तनायतन । १२७ ४७२ ।

न्यग्रोध । ५३३ (बर्षद) ।

न्याय । ११ (=सात्य), २४४ (निर्माण)  
३२४ (धर्म) ।

न्याय-धर्म । ५ ४ (= धर्मधर्म = बाह  
पट) ४४ (महार्थ बक) ।

पट-पिसोतिका । ४१, ४५ (अधमी बरत) ।

पच्छि । २३४ (= टोकी) ।

पय । २४१ (= बाकी) ।

पतिपत्नी-गुण । १२८ ।

पताइ । १९९ (कोडा) ।

पसकसल । १ ३ (= उचित) ।

पसि । ३३६ (= पैदक) ।

पद् । २४४ (= बिन्द) ।

पद्क । २२७ (= कवि) ।

पदाधिकारी । धर्म्य—३८४ ।

पधिनी । १९ (रक-कमक-समुदाय) ।

पधानीप-अंग । ३८३ ३८४ (पाँच) ।

पम्यास्त । १३६ (= महामार्ग) ।

पप्याजम । [पप्याजक] । २९२ (बैद्य  
निकाका) ।

पभ्मार । ४९६ (= पहाड भग्मार) ।

पमुट । २४६ (= गाँठ, मोटा) ।

परविस्तारान । २५६, ४३४ ।

परनिर्मित यशस्ती । ४७२ (देव) ।

परम-वर्ण । २६४ (परिमाजक-सिद्धान्त) ।

परामुष्ट । ४६७ (= मिम्बित) ।

परि भयदात । १६२ (मुद्र) ३८९  
(सकैद गोर) ।

परि-उपासना । २३३ (= सार्वय) ।

परिखा । ४८७ (= काई) ।

परिग्रह । १२१ १२२ (= जमा करना)  
१९३ (स्त्री) ।

परिष । २ ४ (= काह्यकार) ।

परिष परियर्तिक । २१४ (एक धारीरिफ  
सङ्गा) ।

परिधर्या । २६१ (= सार्वंग) ।

परिद्वम । ४१ १४३ (मौकर-बाकर) ।

परिदुष्म । ३३४ (= हाथि ४) ।

परिष्ठा । २३३ (ल्लाप ३—काम रूप  
बेदना) ।

परिस्त । ९६ (= बकर) १२३ (मुद्र  
अनु) ।

परिवाह । १४७ ४६५ (= बहकन) ।

परिव्य । ११६ (रोनाबोना) ।

परिनिवृत्त । ३२९ (= मुक्त) ४८१  
निर्माण-मास मृत) ।

परिपंथ । २१४ (= रहजनी) ।

परिप्राजक । २ (= सानु) ३७ ।

परिप्राजक-सिद्धान्त । २६४ (परमवर्ण) ।

परिमष । ६५ (तिरस्कार) ।

परिमायित । १३ (सैवित सभा) ।

परिमिष । १६६ (= विद्वत) ।

परिवार । ४ (जात परिवार ६४  
(अनुकर-गण), ३४९ (अनुवानी) ।

परिपास । ६९ (किसी अपराजक कारण  
संबन्धा कुछ दिनके डिबै प्रक-कारण) ।

५७४ (बरीधार्यवास) ।

परिषय । ३६ ( आंगन-महित वर ) २९०  
३१४ ( पाठ ) ।

परिष्कार । ५१ ( ४—मिथु मिथुनी  
उपामक उपासिका ), ४०२ ( भाट ) ।

परिष्कार । ११ ३ ( =सामान )  
४९ ( मिथुनोके ) ३४९ ( उपभोग  
बस्तु ) ।

परिस्त्रायण । ५२३ ( = उल्लस्य ) ।

पर्य । १९ ( = कर्तु ) ।

पण्याकार । ४८६ ( = भेद ) ।

पयस्त-महित । १९१ ( सिद्धाम्बलहित ) ।

पययगाङ् । २३ ( = विदित ) ।

पयाय । ३५ ( = प्रकर ) २९८ ( प्रका  
रान्त करदेश ) ।

पयायमस्तिक । २९९ ( बृहदिम विराह  
बृहदिम आहार करने काल्य तापस ) ।

यथास । ४२६ ( = साध ) ।

ययु स्थित-चित्त । ५१५ ( भ्रान्तचित्त ) ।

ययु पासन । ३५, २११ ( = मया ) ।

ययैष्य । ७४ ( भाट गुरुवचन ) ।

ययैष्या । १२१ ( मृत्पास ) ।

यलात्पीठक । ११४ ( दृक मया ) ।

यलाय [प्रलय] । २९९ ( = निष्कृता ) ।

यमागो । ४६० ( = यवोती वा यदाती )

यस्यन् । ४९३ ( = प्रोत्त यवगाय ) ।

यदा । १ ३ ( दूर्वा आरति देवनेकाल्य ) ।

यगिष्क । ४३४ ( = यता ) ।

यम्नाय । १११ ( पैसाठ ) ।

यात्र (-यम) । ९ ।

यटिदायि [कानिदार्थ] । ७१ ( यत्रादार ) ।

यटिदीयिक । ४ १९१ ( अत्रावाजिक ) ।

याङ् । ८४ ( भाट ) ।

याङ्वाय । ८४२, ९४ ( = लाल दामन्य ) ।

याङ्वायिक । ४ १ ( बीने हा गिरावने  
बाल बभोको आनेकाल्य गारय ) ।

यात्र । २६ ( = भिरायात्र ) ।

याय । मिट्टीका—४१ ।

यादकठसिका । ३१ ( पर रगवनेकी बकरी )

याद्वार । ८१ ( = पय ) ।

यादपीठ । ११ ( = पैरका पीठा ) ।

यादादक । २१ ( = पर धौबेका बक ) ।

यान । १५५ ( भाटविहित—ध्यायपान बम् ,  
शेष मोच मयु मुरिफ  
साखक अस्तक ) ।

याप । २३० २६२ ( युगाई ) ।

यापधर्म । ७२ ( = यापी ) ।

यापके माग । २५८ ( चार ) ।

याप-मिथता-दाय । २५९ ( ९ ) ।

यापीयस । १०९ ( = बहुत युग ) ।

यापयु । ३ १, ४ ५ ( = बहवीयत ) ।

यापमिता । १५ ( दम ) ।

यापमिता । उग्र—। १५ ।

यापयिका । २६९ ( द्वितीया ) २९३—  
१५ ( प्रथम ) २९९ ( अष्टम्या )  
२९७—२९ ( तृतीय ) २९९—३ १  
( चतुर्थ ) ।

यापिय । १९९ ( दूर्वाती ) २१९ ( समा  
मद् ) ।

यासि । ८ ( मूकप्रियट्ट ) २८८ ( मीठ )  
५४ ( पनि मगवाकृक मुयकी पंक्ति )

यायकृ । ५३ ( = मस ) ।

यायुगुण । २९ ( अगुणने थापने ) ४३  
( गुणती ) ३६१ ( चढे बीचप ) ।

यायुगुणिक । ४३ ८१ ( गुणतीभारी ) १३  
( चढे बीचपुको मीठर बहमनेकाका )  
१८० ( लकावारी ) ।

यायुगुणियायक । २६४ ( युग ) ।

यायुगुणिक-पिम्पक । ७९ ( = मीठ ) ।

यिटक । २ ९ ( = बचन यमूद ) ।

यिटक मीप्रदाय । २४६ ( प्रम-प्रमम् ) ।

- पिड्ड । १८ ( भोजन, परोसा ) ७६, ९३  
 (= मिड्डा) ।  
 पिड्डपात । ३५ ( मिड्डा ) ६६ ( मिड्डाच ),  
 १७५ ( भोजन ) २५ ।  
 पिड्डपातिक । १३० ( सिद्धं मधुकरि मीयकर  
 कामेवाका निर्ममन मर्ही ) २५१ ( मधु  
 करि वाका ) ।  
 पिड्डोतिका । ३३ ( = बवा सायक भी  
 किनारेके फल्ये ही पिड्डोतिका कस  
 जाता है ) ।  
 पिशाच । १९८ (= कृष्ण ) ।  
 पिशुन-खद्यन । १६ ( = चुगडी ) ।  
 पुट । ३९२ (= मालकी गाठ ) ।  
 पुट मेवम ३९२ ( अर्ह माककी घोट तोही  
 कवे बपर ) ।  
 पुड्डीकिनी । १९ ( स्वेतकमळ-समुदाय ) ।  
 पुण्य क्रिया-वस्तु । ३५० ( पुण्यकर्म ३ ) ।  
 पुम्ल । ७१ ( स्वकि, मानो ) २३० ५३५  
 ( स्वकि ) २३९ ( मनुष्य ) २४ ( साठ ),  
 ३५० ( तीव ) ३६२ ( चार ) ।  
 पुनर्मव । ९० ( भावमामव ) ।  
 पुराणवृत्तीयिका । २९ ( मार्वा ) ।  
 पुटपमेघ । ३३२ ( बड्ड ) ।  
 पुटक । १३१ (= चायक, पुष्यव ) ।  
 पुस्तकार । १३ ( = चिह्नकार ) ।  
 पूग शामयिक । ३८३ ( एक समुदायका  
 अक्षर प्राम-शामयिकके नीचे ) ।  
 पूर्वं अम्म-दान । १५, २५६ ।  
 पूर्यनिवास । (= पूर्वंअम्म ) ।  
 पूर्यनिवास-दान । ३९ ।  
 पूर्यनिवास-स्मृति । २६३ ।  
 पूर्यनिवासानुस्मृति-दान । १६२ ३९  
 ( प्रथम विद्या ) ।  
 पूर्यान्त । २६३ ।  
 पूयन्यन । २२ ( मूढे मनुष्य ) ३३ ( जिस  
 को तब साहायकार नहीं हुआ ) ३१६  
 ४२३ ( बड्ड संसारी जीव ) ।  
 पूयिचीकाय । २३४ ( पृथिवी ) ।  
 पूयिचीघातु । १०२ ( अण्वात्म काय पृ  
 थिवी ) ।  
 पूयिचीसमभावना । १०३ ।  
 पूय्यक । ३८३ ( अण्वात्तिकारी, मवर ) ।  
 पूशकार । ४३ ( रंगरोज ) ।  
 पूशक । ३३ ( अण्वा ) ।  
 पूरिसा । १६६ ( अनुकृपप्रमाण ) ।  
 पूरिसिक । १५० ( स्वकिगत ) ।  
 पूरी । १९ ( वापरिक सन्ध ) ।  
 प्रकाशनीयकर्म । ४ ( दोष कोक देवा  
 एक मिश्रपंड ) ।  
 प्रग्रह । ३५५ (= चित्त-विग्रह ) ।  
 प्रक्षत । ७७ ( अभिपारित ) ४८५ ( विहित )  
 ४९५ ( विद्या ) ।  
 प्रक्षत । अ-३८५ ( अक्षरकृती, कविहित ) ।  
 प्रक्षति । १ ५ ( अक्षरकृति, व्यवहार ) ५१२  
 ( विषय ) ।  
 प्रक्षति । अनु—५१२ ( अक्षरकृति ) ।  
 प्रक्षतिक । स—२६९ ( अक्षरकृतिमति  
 पादक ) ।  
 प्रज्ञा । २२ ( अविद्या )- १२६, २३८ ( ज्ञान ),  
 ३०५ ( तीव ) ।  
 प्रज्ञा-वृत्तिय । २४१ ( अक्षरकृती ) ।  
 प्रज्ञापिमुक्त । १२० ( अक्षरकृति मुक्त ) २३  
 ( अक्षर ) ।  
 प्रज्ञापन । १२३ ( ज्ञान अताना ) २३४  
 ( उपदेश ) ।  
 प्रपिधि । ४०२ ( अक्षरकृतिपा ) ।  
 प्रपीठ । २६३ ( अक्षर ) ।  
 प्रतिप्रंत । ( ३० सुन्दर ) ।  
 प्रतिक्षेप । ३१५ ( अक्षरकार ) ।

प्रतिप्रदण । १६१ (हेमा) ।  
 प्रतिष । ११४ ( = प्रतिर्विसा, शीपोत्रक )  
 ४५९ ४७२ ।  
 प्रतिष्ठा । ५ ४ ( = शब्दाव ) ।  
 प्रतिष्ठातकरण । ४५१ ( अपराधस्वीकार  
 Confession ) ४७ ( अतिक्रम-  
 शमन ) ।  
 प्रतिद्वाना । ११ ( = असापन ) ४५१ ( दुष्कर्म  
 विषेध ) ।  
 प्रतिमिस्सर्ग । ११७ ( = त्वाग मुक्ति ),  
 ४६९ ( अत्र न ) ।  
 प्रतिपद् । २२ ( कार्य-साधक ) ४६  
 ( मार्ग ) ।  
 प्रतिपन्न । वि—२४१ ( = असापन ) ।  
 प्रतिपन्न । सु—१८२ ( सीकस वहुँका )  
 १५८ ( सुम्नर प्रकारसे राखेपर म्गा ) ।  
 प्रतिवेध । १२ ( = अज्ञानता ) ।  
 प्रतिमान । ३४८ ( = ज्ञान ) ।  
 प्रतिमा । ३९ ( मूर्ति ) ।  
 प्रतिधय । ४६४ ( आधय ) ।  
 प्रतिनीरयान । ४५५ ( = अत्रपन ज्ञान ) ।  
 प्रतिनीयिष् । ४३, ४५ ।  
 प्रतिर्मपद्म । ३९ ( = अनुभव ) ।  
 प्रतिमम्मादम । ६३ ( प्रजापितामी ) २९९  
 ( कुम्भप्रथ ) ।  
 प्रतिर्महयन । ४६९ ( = एकात्मवाग ) ।  
 प्रतिर्महयन । ४६४ ( आत्मन ) ।  
 प्रतिमार्गीय वज्र । ५३८ ( मंघ-रुद्र ) ।  
 प्रतिमगुन । ४५९ ( वाद एतदेवाका ) ।  
 प्रगमप्याम । ९ ( आमुनक मंघ ) ( ६  
 वाक ) ।  
 प्रगमपाधि । ३६३ ।  
 प्ररित्त-प्रादी । ४७५ ( = अत्रार्थ ) ।  
 प्ररुम । २११ ( = अत्रात्म ) ।  
 प्रतिदण्ड । १८९ ( = अत्रात्म ) ।

प्रतीत्य-समुत्पत् । २२ ( = संस्कृत मि  
 मिष ) १२५ ( = अकारणसे उत्पन्न,  
 अविश्व = संस्कृत = कृत अ अत्रवर्मा =  
 एववर्मा = विरागधर्मा = विरोधवर्मा )  
 १६७ ( = अकारणप्रके उत्पन्न ) २७४  
 ( कृषिम ) ।  
 प्रतीत्य-न्मुत्पाद् । १८ ( दुर्धर्मीय ), १९७  
 ( की महिमा ) ।  
 प्रतीत्य-न्मुत्पाद् विस्तार । १२०-१२९ ।  
 प्रतीत्य-न्मुत्पाद्-ज्ञान । १५, १६, १८  
 ( अनुज्ञोम प्रतिज्ञोम ) ।  
 प्रत्यम्त । ५३६, ५३७ ( = सीमात्म ) ।  
 प्रत्यय । १ ५ ( कार्य ) १७९ ( कारण )  
 ३१८ ( प्राद्यवस्तु ) ५४ ( मिश्रुभोको  
 अवेक्षित पार पस्तु ) ।  
 प्रत्ययेदा । ६२ ( = अत्रमात्र ) ६२ ( वरीक्षा )  
 १ २ ( मिश्रव, घोत्र ) ।  
 प्रत्यापयान । २२७ ( = अत्रवाह ) ।  
 प्रत्यागम । १७२ ( प्रतिसारी इसी सति-  
 र्म ) ।  
 प्रत्युत्पान । २१ ५८ ( = साध्वरार्थ एका  
 होवा ) ।  
 प्रत्युद्गमन । १५५ ( = अत्रवर्मा ) ।  
 प्रत्युपस्थान । ७१ ( = सेवा ) २६१ ( एतु  
 वासना सेवा ) ।  
 प्रागृप । ६४ ( अत्रवर्मा ) ।  
 प्राग्येक-गुण । ( रीषो कुत्र ) ।  
 प्राधान । २११ ( = अत्रात्म ) २६९ ( विशेष  
 मंघरी प्रत्यय ) २७७ ( = अत्रात्म  
 वाग अत्रात्म ) ३२२ ( अत्रात्म ) ३९९  
 ( = विशेष-गापना ) ४५५ ( = अत्रात्म  
 अत्रात्म ) ४५९ ( वाद ) ४६४ ( घोत्र  
 अत्रात्म ) ३८७ ( विशेष ज्ञान अत्रा  
 वर्मा वीग-मुक्ति ), ५ २ ( = विशेष  
 वाचन ) ।

प्रधानात्मा । २४१ ( समाहित-चित्त ) ।  
प्रधानीयांग । ३९२ ( पाँच ) ४३४ ( प्रधान  
के अङ्ग ५ ) ।

प्रवर्जित । ६ ( संन्यासी ) ।

प्रव्रज्या । ११ (= संन्यास) । २३ (= आ  
मजेर-संन्यास) ५३ ( विद्वान्-वामन  
से ) १३० (= आमजेरमात्र) ।

प्रमास्वर । ८० ( सूर्य प्रकाशके रवका ) ।

प्रमत्त । २५७ ( भावसी = मूढ करवैराग्य ) ।

प्रमाद । २४ ( भावस्थ, मूढ ) ।

प्रमाद । अ—५३३ ( भावस्थका अभाव ) ।

प्रमाद-भ्याम । ७१ ( प्रमाद करवैकी जगह ) ।

प्रमुख । ८ (= अग्रगण्य) ५७ ( मुखिया ) ।

प्रयत्तपाणि । २३९ ( कुकाहाथ वाली ) ।

प्रत्यक्ष । १५५ (= आकाश) २९ ( अन्वयक  
वेर ) ।

प्रयाद् । २५१ (= लक्ष्य ) ।

प्रधारणा । ५२ ( अश्विन पूर्विका पारव्य ) ।

प्रवृत्तफलभोगी । २१ ( तापस ब्रह्म ) ।

प्रवेदित । ७३ (= विद्वान्-वामन) ।

प्रवेणी । ४४ (= ब्रह्मजुगल) ।

प्रवेपी-पुस्तक । ४९५ (= कामूनी किताब ) ।

प्रक्ष । महा-२७३ ( १-३ ) ।

प्रक्षप्याकरण । ४१ ( प्रभोत्तर ) ।

प्रक्षय । १०० ( अक्षय ) ११५ ४३४  
( = क्षिर ) ।

प्रक्षयि । ११५ ( सति शोष्य ) ।

प्रक्षय । १५२ ४८ ५३, ५३ (= अक्ष  
वाक्) १५२ ( विमल) १६५ ( स्वच्छ ) ।

प्रसाद् । ७१ (= अक्षय) ।

प्रसाधन । ३३ (= अक्षय) ।

प्रहाण । १८४ ( परिष्कार ) । २१५, २५५  
( विवास) २५९ ( असीकार ) ।

प्रहातव्य । २३ (= अक्षय ) ।

प्रहीण्य । २३ (= अक्षय गणा ) ।

प्रान्त-इन्द्रिय । १३५ (= अक्षय का  
सीरी जनों बीसा ) ।

प्राम्मार । ३८४ ( सामने सुका पम्हार =  
पहाव ) ।

प्राप्प्यायाम । ३८८ ( देखो काम्यापावसति ) ।

प्रातिपुद्गलिक । ७५ ( अक्षय का  
द्विगल नहीं ) ।

प्रातिमोग । ३८ (= अक्षय ) ।

प्रातिमोक्ष [ प्रातिमोक्ष ] । १३२ ४४८  
( मिश्रित ) ।

प्रातिमोक्ष-उद्देश । २५१ ( अक्षय-रथी  
कार ) ।

प्रातिमोक्षसंघर । २७७ ।

प्रातिहार्य । ६ ( अक्षय ) २५१ ( अक्षय )  
४५८ ( तीव्र) ४५५ ( तीव्र—अक्ष  
य-रथी अक्षयसमीप ) ।

प्रातिहार्य । अनुशासनीय—४५५ ।

प्रातिहार्य । आदेशना—४५५ ( अक्षय-  
अक्षय ) ।

प्रातिहार्य । बेयाबरोहन यमक—८४ ।

प्रातिहार्य । यमक—८३ ( देखो यमक-  
प्रातिहार्य ) ।

प्राप्तुव्य । २९ (= अक्षय ) ।

प्राप्तिसत् । ३७ ।

प्राप्तिसत्तिका [ प्राप्तिव्य ] । ५२६ ५२७  
( संक्षय ) ।

प्राघरण । १४५ ( अक्षय ) ।

प्राप्तिसिद्धार । ३९४ ( अक्षय-रथी अक्षय ) ।

प्रियमाणी । २६ ( अक्षय अक्षय  
वाक्येवाका ) ।

त्रियसमुदाहार । ४०५ (दूसरेके उपदेशके  
अदा-पूर्वक मुक्तनेवाक्य, स्वर्बमी उपदेश  
करनेमें इतनाही) ।

मीति । १२ (प्रमोह) ११४ (हर्ष, बोध्पंग)  
३५ (सुखी) ।

प्रेत्यविषय । ४६२ (मृत प्रथ) ।

प्रेक्ष्य । ४३२ (=नाटक) ।

प्रेष्य । १२१ (=बौद्ध) ।

प्रीहा । ११३, ११४ (=विष्ठी) ।

फल । ११ (सोतापत्ति सक्रियागामिता  
अनागामिता अरहत) ।

फलमूलाहारी । १२ (नापसवत) ।

फलसाक्षात्कार । ३१ (सोतापत्तिक्र-  
साक्षात्कार सक्रियागामि अनागामि  
अरहत्) ।

फणित । १२३ (=बाण) ।

फणदसक । ५५ (अस्सा) ।

फणदसक-पान । १५५ (अस्सेअ रस) ।

फणसु । ९० (अनुपूक्या) ।

फुण्फुल । ११४ (बैकवा) ।

पडिदामांसिका । ११४ (एक सारिक  
द्व) ।

बंधु । १२९ (=महा) ।

बंधुक-रोग । ४३५ (बंधु विमोहस अन्व  
बोद्धी रोग) ।

वण्डज । ३ (रस्सी बटनेका तुण) ।

बल । ४४ ४ ९ (बुद्धसाक्षात्कृत धर्म ५)

९८ (क), ४९ (अर) ४९१ (साठ) ।

बलकाय । १५४ (सेवा) ३०० (भोगभाग,  
आव-अन्व) ।

बलमेरी । ४८० (सैनिक बगारा) ।

बलि । ११८ ४८५ (=कर) ।

बन्धव । २३८ (देखो बन्धव) ।

बहुकर । १११ (=अपकारी) ।

वाल । १२ (बज) ३२० ४१ (मूर्ध) ।

वालवेध । ० (अनुब-आवव) ।

वाल-प्यजनी । ८४ (मोरउक) ।

वालसंघाट-यंत्र । ५११ ।

वाहिरास । १३५ (बहियु क-चित्त) ।

वाहुलिक । ११ ३९ (बहुत बसा करने  
वाक्य) ।

वाहुस्यपरायण । (देखो वाहुलिक) ।

वाहुस्य । १३३ ।

विष । (=आकर) ।

विच्छग-थालिक । ११४ (एक सारिकबर्ध) ।

पुन । ११४ (अन्वके पासका एक मौम-  
पिठ) ।

पुन । १ ११९, १२३ (परमत्त्वज्ञ) ३१०  
(रोगिसुखपामे) ।

पुन अंकुर । ४ ।

पुन । निर्मित—८ (भोगवत्से अत्यादि  
बुद्ध-रूप) ।

पुन । प्रत्येक—१ ।

पुनविषयकस्मृति । १३ ।

पुनानुपुन । १३८ (आवक) ।

पुनानुस्मृति । १४ १३ १४१ १६  
२३६ ।

पोधि अङ्ग । ९८ (साठ) ।

पोधि । प्रथम—० ३१५ (बुद्धवत्से प्रथम  
२ अण) ।

पोधि-सत्त्व । २ ।

वाप्यङ्ग । १ ९ ११५ १५२ (साठ—  
स्मृति धर्मविष्णु, बीर्ष मोति प्रअधि  
अमापि अवेद्या) २६५, ३९९ (बुद्ध  
साक्षात्कृत धर्म); ४९९ (साठ) ४८८  
(० अपरिहाणीय धर्म) ।

बौद्ध-धर्म । ५ ४ (=आव धर्म=आवधर्म) ।

प्रद्य । ३९५ (बहु) ४२३ (विर्वाण) ।

प्रह्लादचर्य । १३१ (संप्रदाय) ।  
 प्रह्लादचर्य । आदि-१८१ (सुन्दर प्रह्लादचर्य) ।  
 प्रह्लादचर्यचरण । ३१ ३० ।  
 प्रह्लादधारी । स-६२, २३३ (गुणमार्ग) ।  
 प्रह्लादद्वय । २ । ५१५ (के देवैक्य प्रकार)  
 ५१० ।  
 प्रह्लादधनु । ४५ (= उद्यम) ३४३ (प्राज्ञान  
 व्यक्तिक) ।  
 प्रह्लादलोक । ३४ ।  
 प्रह्लादविहार । ३६२ (चार भाषावाच) ।  
 प्रह्लादके पैरकी संतान । १९६ (नीच  
 मन्त्रा = बंधु) ।  
 प्राज्ञान्य । (= संत) ३६२ (पांच प्रकारक-  
 ब्रह्मसम देवसम मर्त्या संमिष्ट मर्त्या,  
 ब्रह्मवाद्या) । १६८ ४०० (के सेवक  
 दूसरे वर्ण) २ (में असचर्च दिवाह)  
 प्राज्ञान्य-श्रुति । १०, १२ (महापि) ।  
 प्राज्ञान्यका धर्म । २२६ (पांच-सुभात  
 मंत्रधर वर्ण शील इच्छिजाह) ।  
 प्राज्ञान्यधर्म । पुराण ३६१ (पोष) ।  
 मणिनीसंवात्स । १९८ ।  
 मण । ४२ ('हे' 'रे' की ब्राह्म संशोधन) ।  
 मंडल । ९२ ४ ४ (ककद) ।  
 मत्तपतेज । २१२ (= मत्ता शैतव) ।  
 मद्मत्त । ५२  
 मद्र । ४९४ (= सुंदर) ।  
 मस्ते । ४ (= स्वामी पृथ) ।  
 मद्य । १६ । (प्रतीक) २२ (ब्रह्म); ४१  
 १२१ (कोक) ११६ (आवागमन)  
 १२१ (काम, रूप धरु) ३०१  
 (= मसार) ४५५ (आवागमन  
 निरवता) ४५६ ।  
 मद्यती । १ ८ (= ध्यय कीक क्रिये) ।  
 मद्यनेत्री । ४९३ (= मृत्वा) ।  
 मयामय । १०१ (होना न होना) ।

मयराग । ११४ (आवागमन प्रेम संघो  
 जन) ।  
 मन्त्रबिन्दु । ५ (= सुदुबिन्दु) ।  
 मस्स । (= बकबाध) । ४८८  
 मस्सकारक । १ (ककद-कारक) ।  
 मात । (= मोक्षण) । ४९४  
 भायना । १ ७ १०२ १०४ (मैत्री  
 कल्प्य मुनिता उपेक्षा) १०२  
 (प्याण) १०३, १०४ (बभ्रुम-  
 व्यक्तिक आवापाव-सति-) । २००  
 (रागादि-महाप्रथ) ४५० (तीन) ।  
 भायनाराम । ४५९ ।  
 मिष्ट । १६ (पूजमें पक्षे) ।  
 मुञ्जिस्स । २१६ ४९० (उचित) ।  
 भूत । १२ (बात) ३३९ (पयार्थ)  
 ५ २ (बात संस्कृत) (माषी) ।  
 भूतगाम । १६१ (= भूत धनुषाय) ।  
 भूतयात्री । १६१ (= पयार्थ शोकमेवाका) ।  
 भूमिधर । १५८ ।  
 मेद् । ३९६ (= नानारथ) ४८६ (कूट) ।  
 मैपज्य । ६६ (आपय) ।  
 भो । ३४४ (= जी) ३८५ (= हो!) ।  
 भोगका उदाहरण । ३२८ ।  
 भोजन-राजा । १५२ (मांडकिक राजा) ।  
 अमकार । १११ (बरादी) ।  
 मंगलधर्म । ५४ ।  
 मद्गुर । १८३ (मंगुर मछली) ।  
 मणिक । १५१ (मदका) ।  
 मन्त्रा । १६४ (बरिच-) ।  
 मत्स्य । २६९ (= कृपणता) ।  
 मंस । ३ (= चारपाई) ।  
 मंसदिशिक । ४९८ (= शोक) ।  
 मत्तपदेता । [ मरिसम-अनपद ] ४०४ ।  
 मद् । ४५० (तीन) ।  
 मधुपान । १५५ (घाहक रस) ।



- मधुपिंड । १० ( कण्डू ) ।  
 मध्यम प्रतिपद् । २२ ( मध्यममास ) ।  
 मत्त । ३२ ( चातु ) ।  
 मत्ताप । ११५ ( इष्ट मिय ) । ५० १६५  
 ( मिय अत्रतिष्ठ इष्ट ) ।  
 मनसिक्कार । १६६ ( विषयज्ञान ) ।  
 मनसिक्कार । अ—१५ ( भवमै र्द न क्रवा  
 समाधिबिम्ब ) ।  
 मनोमय कायनिर्माण । ४३१ ।  
 मनोविज्ञान । ३३ ( चातु ) ।  
 मंत्र । २ ३५१ ( = वेद ) ।  
 मंत्र । १० ( = मन्त्र ) ।  
 मन्वारण । ५ ० ( एक दिव्यपुष्प ) ।  
 मर्ष । २६९ ( = क्षमर्ष अमरक ) ।  
 मसु । ८६ परक्याव ।  
 मसुककुटी [मसुककुटी] । ८० ( मसहरी ) ।  
 मसोरगण्ड । ५११ ( कर्मणि ) ।  
 मह । ५१ ( = महा ) ।  
 महवृत्त । ११४ ( महापरिमाण ) ।  
 महर्षिक । ४१४ ( विष्णुधरिणिकारी ) ।  
 महर्षिक । १२८ ( = इष्ट ) १३५ ।  
 महानुभाव । ३१९ ( = महाशक्तिमात्र ) ।  
 महापुण्य । १४२ ।  
 महापुण्यसम्पन्न । ४२ ( सात बचीस ) ।  
 १५२ ( सामुद्रिकशास्त्र ) ।  
 महापुण्यविहार । ५२५ ( धूम्रताविहार ) ।  
 महाप्रवेश । ४९८ ( बुद्ध-वचनकी कृतीटी  
 ४ ) ।  
 महामृत । १९४ ( चातु ) ।  
 महामात्य । ४८४ ( = महामंत्री ) ।  
 महामुनि । ५२ ( उद्ध ) ।  
 महाराज । ४९ ( चार ) ।  
 महाराष्ट्रिक । कातुर—१ १ ( देव ) ।  
 महाकृता-मसाधन । ३ ८ ( एक प्रकारका  
 हेतव ) ।  
 महाधीर । ५२ ( उद्ध ) ।  
 महाशयन । १६१ ( अष्टवशयन ) ।  
 महाशब्द । २६३ ( = कोकाहक ) ।  
 महाशाल । २१२ ( प्रतिष्ठित धर्म ) २४१  
 ( महासंभवसंपन्न ) ५ २ ( महाधर्म ) ।  
 महाभावक । ( देखो भावक । महा— ) ।  
 महिका । ५१९ ( = कुडगा ) ।  
 महोत्सव । १३४ ( = महासामर्थ्यकाङ्क्ष ),  
 ४९२ ( महाशक्तिशाली ) ।  
 महा-भाष । ३४८ ( = वाङ् ) ।  
 भाषणक । १६० ( विद्यार्थी ) २ ९  
 ( भाषण तत्त्व ), ५२९ ( भाषण पुत्र ) ।  
 भाषिण । ८ ( मन्त्रीक रंगका क्यक ) ।  
 भाज्येष्टिक । ७५ ( लक्ष्मण काक रोग ) ।  
 माता पिताका सम्मान । २६१ ।  
 मातृग्राम । ३ ९ ( = स्त्री ) ३ ( स्त्रिया ) ।  
 मात्रदा । २४ ( कुत्र मात्रार्थ ) ।  
 मात्रिकाघट । ४९८, ५११ ( जमिपर्मज्ञ ) ।  
 मात्रसर्प । ११४ ( संयोजक ), १२२ ( उत्पत्ति  
 क्षम ) ४६३ ( = हसद, वीच ) ।  
 माल । १२४ ( जमिमात्र संयोजक ) ।  
 मालत्पचारिक । ६९ ।  
 मालत्पाह । ६९ ।  
 माया । २६९ ( = बंधना ) ।  
 मायावी । ४४१ ( कृती ) ।  
 मार । १५३ ( राज वारि धनु ) ।  
 मार-खोह । ३४ ।  
 मार्ग । २४ ( दुःखवात्का उपाय ) २३  
 ( अर्थाधिक ) ।  
 मार्ग मावना । ( ४ स्तुतिप्रस्ताव ४ स  
 म्बन्धप्रभाव ४ अदिपाद ५ इन्द्रिय ५  
 बन्ध, ७ दोषांग चार्थ-महाशिक मार्ग ) ।  
 मार्ग-सुख । १४ ।  
 मार्ग [ मारिस ] । ११ १० ( देवता वरदे  
 समावधानकेसे मार्ग कहते हैं ) ।

मायक । ११२ ( = मासा ५ मायक = १  
 पाद, ४ पाद = १ पुरातनवीथ कक्षापत्र ) ।  
 मासमोजन । ४ ४ ।  
 मिथ्यात्व । ४० ( दृष्ट, ८ ) ।  
 मुंडक । ११९ ( सिर-मु ङ ) ११४ ( उन्ने  
 किये ) ।  
 मुंडक ग्रामण । २११ ( इम्प, ध्रु ) ।  
 मुदितामाधना । १ ७, १०३ ( सुखीको  
 देख मसत्र होना ) ३२६ ।  
 मुद्रिक । १५९ ( मुद्रिका बंगूर ) ।  
 मुद्रिक । ४३ हावसे मिथनेवाक्य ) ।  
 मूर्धा । ३५३ ( = अविद्या ) ।  
 मूर्धापात । ३५ ।  
 मूर्धापातिनी । ३५३ ( = विद्या ) ।  
 मूर्धामिपिक । ३८५ ( अमिपेक-मास ) ।  
 मूलदायक । ५२४ ( = प्रतिवादी ) ।  
 मूलप्रतिकर्षणार्ह । ४९ ( बिलपकर्म ) ।  
 मूख [ मिख ] । ३८३ ( = आकल ) ।  
 मेरय । ७१, ५१९ कर्षी सरल ) ।  
 मैत्रचित्त । ११९ ।  
 मैत्रीभाषना । १ ७ १०३ ( सबको मित्र  
 समझना ) ३२६ ।  
 मैत्रीविहार । ५२४ ( = कुक्कक विहार ) ।  
 मोघ । १८५ ( मिथ्या ) ।  
 मोघपुरुष । ३१ ( मूर्ख ) १५७ २४१  
 ( नाक्यक ) ।  
 मोघपान । १५५ ( केकेक्य धारंत ) ।  
 मोमुह । २४७ ( = अतिमुह ) ।  
 मोह । ३३ ( अति ) ।  
 म्झेच्छु । ४७४ ( = अर्पित ) ।  
 पकृत । ११४ ( कक्रेके पास दृढ मांस  
 पिह ) ।  
 पक्ष । १२ ।  
 पञ्चन । १५४ ( दृष्ट ) ।  
 पङ्क । ३५ ( अथमेव पुरवमेव, वाक्येव

विर्याक ) २१६-१८ ( सोकह परिष्कार  
 त्रिविध पशु-संपदा ) ।  
 पक्ष-पशु । २२५ ( गो-आदि ) ।  
 पक्षघाट । २२१ ( = पक्षस्त्रान ) ।  
 पधाकाम । १३ ( मौजसे ) ।  
 पयापर्याप्त । ४६६ ( = धर्मशास्त्रक अनु  
 सार ) ।  
 यद्भूम्यस्तिक । ४४९ ४७४ ( अविद्याम-  
 राम ) ।  
 यम । १९२ ( देवता ) ।  
 यमक । ५ १ ( = जोड़े ) ।  
 यमकप्रातिहार्ये । ८ ( दे प्राति ) ।  
 पवानू । ३१३ ( = पठनी विचकीकं दस  
 गुण ) ।  
 ययागूलाद्य । ३६४ ।  
 यष्टिमधु । १३ ( जेडीमधु ) ।  
 यागू । ८३ ( विचकी ) ।  
 याधितकूपम । १४९ ।  
 याजक । ३४३ ( = पुरोहित ) ।  
 यापनीय । ९३ ( = अर्पणी गुजर ) २९९  
 ( = शरीर-यात्रा-वीथ्य ) ३७ शरीर  
 की अनुकूलता ) ।  
 याम । १५, ५ ( = राधिका तृतीयांश )  
 ४७२ ( देवता ) ।  
 युपरज । ५३९ ।  
 धूप । २११ महाकम्म जिन पर पञ्चमाय  
 राक्ष जमात्व आदिका नाम किये  
 रहता था ) ।  
 योग । ४६२ ( चार ) ।  
 योग-क्षेम । २४ ( = निर्वाण ) ।  
 योजन । ३ १९५ ( = ४ वध्मूति ) ।  
 यानि । ४६२ ( चार ) ।  
 यामिखा । २२५ ( = डीकसे ) ।  
 रण । ४५ ( = मङ्क ) ।  
 रण । स—४२ ( मङ्क-मुक्त ) ।

एकह । ३३६, ३८८ ( = चर्मापुराणी ) ।  
 एकह-महस्य । [ एकह-महस्य ] ३३६ ।  
 एजोबन्सिक । (बीजब क्येड कर रहण, तप)  
 एति । अ-६ ( = अर्धतोष ) ।  
 एमस । १९७ ( = बकवादी ) ।  
 एय । ५७ ( = प्रमाए ) ।  
 एस । ३३ ( = बालु ) ।  
 एहस्य । ३६ ( = एकान्त ) ।  
 एग । ३३ ( कर्मि ) ।  
 एगकुळ । २३७ ( राजा ) ।  
 एगम्प । १३ ( अयिपेकरहित कुमार )  
 ( राज-सन्तान ) ।  
 एगपुरप । ५१ ( राजका चौकर ) ।  
 एगपुरपता । ३६२ ( = सकारी चौकरी ) ।  
 एगपोरिस । ( राजाची चौकरी ) ।  
 एगवळ । १० ( राजाके चौकर चाकर ) ।  
 एग्रा । ३८५ ( = राष्ट्रपति उपराजके  
 कर ) ।  
 एगाम्तागपुर । ५१९ ( = राजदरवार ) ।  
 एग्य भाय । ३८५ ( एकक बकि हंड ) ।  
 एग्री । ३५६ ( तीव ) ।  
 एगूपिड । ३५, ३ ३ १ ( राजका  
 बड ) ।  
 एग्रीक [ रडिक ] । ३८७ ( = एगबर्द,  
 प्रवेकाधिकारी ) ।  
 एगु । ८ ( = बंधन ) ।  
 एगुमुग । २१७ ( = एक सजा ) ।  
 एग्यास । ( = एग्य हणव ) ।  
 एगि । १५२ ( = कृति ) २१ ( सांघटिक-  
 विपाकड बर्म ) ।  
 एगु । ११५ ( = अर्धकर ) ।  
 एग । १३ ( पातु ) १६६ मूर्ति धारी ) ।  
 एग । अ- ( = कप-रहित-निराकार ) ।  
 एग-उपादान-स्कंध । १६३ ।  
 एग-सीग्रह । ३५६ ( तीव ) ।

रूपी । १८३ ( कपबान्, साकार ) ।  
 एगसब । ५ ( विमिष ) ।  
 एगुण । महापुरप-१ ३ ( बचीस ) ।  
 एगुएगान । ३८५ ( अरीरक कर्प-सुमता ),  
 ३८७ ( पुर्ण ) ।  
 एगुजी । १६ ।  
 एगुवा ३९३ ( दूस रिचत ) ।  
 एगुडि [ गडि ] । ३७ ( पही क्यदी ) ।  
 एगुसिका । ११३ ( = केहुनी जादिके कोर्षीमें  
 रिचत तरक पद्दती ) । १९५ ( = कर्ममळ ) ।  
 एगामी । ६० ( पानेबाध ) ।  
 एगोक-भाक्यायिका । १०९ ।  
 एगोकम्येष्ट । ८१ ( कुड ) ।  
 एगोह । ( देखो ताग्रकोह ) ।  
 एगोहमानक । २३८ ( बर्तन ) ।  
 एगोहयारक । २३८ ( बर्तन ) ।  
 एगोहित । ८ ३८७ ( काक ) ।  
 एगोहितपाणि । ३८७ ( कुसे रंगे हाक-  
 बाका ) ।  
 एगोहितांक । ५११ ( पधराय-मभि ) ।  
 एगुपीपरम । २५९ ( = केकक बाठ बमान  
 बाक ) ।  
 एगुकिरूप । ३९३ ( = ध्यापार-मार्ग ) ।  
 एगुकिरूपक । २९ ( बन्दीबड ) ।  
 एगुप्राम्त । १९१ ।  
 एगुदनीय । ७ ।  
 एगुदनीय । अ-६९ ।  
 एगुपितधिर । १९० ( मु कितधिर ) ।  
 एगु । ५५ ।  
 एगुर्ण । १९० ( बार-माकण क्षत्रिष कीव  
 दूड ) २९३ ( = कप माकणकर धर्मी  
 में ) २९५ ( तारिक ) ; ३१२ ( बर्तना ) ।  
 एगुपायास । ७ ( कुडके ७६ ) ।  
 एगुपायती । १९१ १९५, ( = त्रिवेन्द्रव )  
 ( मार ) ।

वसा । ११५ (वर्षी) ।  
 वस्तिगुहा । १५२ ( पुस्तकी जलन-ईत्रिय  
 = द्विज ) ।  
 वस्तु । १०१ ५२७ ( = वात ) । १ ३  
 (मामका); ५१२ (कषा विषय) ।  
 वासुपेय । ३७२ (वज्र) ।  
 वाद् । ( मत्त सिद्धान्त ) । ७३१ ( अग्नि  
 अमरविद्येय अदौ ) १ ७३१  
 ( उच्छेद ) ; ९९ ( शाब्द- ), ७३१  
 ( अतुर्नामसंज्ञक ) ।  
 वामकी । १५९ ( वैवर्षी इक्षिणी ) ।  
 वामजाति । ७२ (धी) ।  
 वामुधातु । ११६ ( वातु महासूत्र ) । १६७  
 १६५, १०३ ( अर्थात् वात ) ।  
 वासुसममायता । १०३ ।  
 वार्षिक । ७५ ( = शूरी दृष्ट ) ।  
 वासी । २२८ ( अर्द्धसूका ) ।  
 वास्तु । ७९२ ( घर विवास ) ।  
 विक्राड । १५५ ( मष्पाडोत्तर ) ।  
 विक्राड-मोक्षण-विरत । १९१ २३८  
 ( मष्पाडोत्तर मोक्षण न करवैवाका ) ।  
 विक्राड मोक्षण-विरति । २३८ ( के गुण ) ।  
 विक्रितक । ११३ ( कावानुपस्यता केंके  
 सुर्षेपर भावना करवा ) ।  
 विक्रावितक । ११३ ( कपानुपस्यता काये  
 सुर्षेपर भावना करवा ) ।  
 विगाहण । १ ६ ( विहा ) ।  
 विगह । १८९ ( विवाह ) ५१३ ( हत्वा ) ।  
 विघात । १३७ ( स्पीडा ) ।  
 विघार । १६२ ।  
 विधिक्लिप्ता । ९५ ( समाधि-विषय ) ११७  
 ( अर्थात् वीचरमे ) ११७ ( वीचरमे  
 में ), १६२ ( अर्थात् ५ वीचरमे ) ।  
 विघ्नितक । ११३ ( कावानुपस्यता काकर  
 कोट्ट दिये मने सुर्षेपर भावना करवा ) ।

विघ्ननघात । १५ ( आधुमिकोंको हवासे  
 रहित ) ।  
 विक्रित । ३९७ ( = राज ) ।  
 विद्याम । १६ ( म्ठमिष ), १२३ ( किल  
 चारा जीव ) २५५ ( केतवा ) ३५६  
 ( जीव ) ।  
 विद्यान-काय । ५६६ ( उ चेतन-समुदाय ) ।  
 विद्यानस्त्रिपि । १२६—२७  
 ( १ नावाकाय म्ठमसंज्ञा,  
 २ " एकसंज्ञा  
 ३ एककाय नामसंज्ञा  
 ४ " एकसंज्ञा  
 ५ आकाशानन्त्यावय  
 ६ विद्यानानन्त्यावय  
 ७ अर्द्धमन्त्यावय ), ७९ ( चार )  
 ७९ ( = योनि सार ) ।  
 विद्यानानन्त्यावयतन । १२३ ( विद्यानस्त्रिपि )  
 १९२ १८१ ( समाधि ) ७७३ ।  
 वितर्क । ( विषय-वृत्तके बाद इस सम्बन्धमें  
 जो तर्क कितर्क होता है ) ; १६९ १७७  
 ( तीव्र—अम प्पापाद् विहिता ) ।  
 वितर्क । अकुदास—७५५ ।  
 वितर्क । कुदास—७५६ ( वीण ) ।  
 वितान । ५ ७ ( वैदवा ) ।  
 विद्या । १३ ~३३ ( वीण ) २ १ २३२ ।  
 विद्याचरण । २ १ ।  
 विद्याचरण-संपदा । २ २ । २ १—२ २  
 ( क विषय ) ।  
 विद्या । तिरच्छान—७३९-३३ ।  
 विष । ७५६ ( अयकार ) ।  
 विनय । ७९८ ( = मिथु-विषय सूत्रमें ),  
 ७६९ ( = त्याग ) ।  
 विनय-कर्म । ५२८ ( विनयोर्द्धव कश्चेपर  
 मिथुके ईद और मावक्षितका विनय  
 करवा ) ।

यिनयघर । ४८ २१ ४९८ ५२१ ( विन  
य-यिठक-पाठी ) ।

यिनयन । १२९ ( इयावा ) ।

यिनायक । ३९ (=यायक) ३९ ( नेता ) ।

यिनिपात । १३३ ( कर्म हुगति ) ।

यिनिपातिक । ४३९ (=यायकोक्ति) ।

यिनिश्चय । १२२ ४४२ ( स्वाय स्वाय  
विभाग ) ५२५ ( कैमल ) ।

यिनिश्चय-महामात्य । ४८५ ( = स्वाया  
पीछ ) ४८७ ।

यिनिश्चय-शाखा । ४२७ ( कच्छरी, स्वा-  
कठ ) ।

यिनीत । ३९६ ( सिद्धित ) ।

यिनीक । ११३ ( कथायुपस्यनामै, मरकर  
बिन्धे पत्र गये मुहूर्त्तर प्रायश्चा करण ) ।

यिनीकरण । ( =वीकजा ) ।

यिनीकरणम्पता । ३ १ ( रागासे विपक्षी विनी-  
करणया, इवसे मोहसे ) ।

यिपरिणामधर्मता । १३५ ( =अभिव्यता ) ।

यिपरिणामधर्मा । अ-१९ ( विस् ) ।

यिपश्यना । १३४ ( = वशा ) ।

यिपाक । ६२ ( मोत ) ।

यिपुञ्जा । १२३ ( बुद्धि ) ।

यिपूवक । ११६ ( कथायुपस्यना सबे मुहूर्त्ते  
पर प्रायश्चा करण ) ।

यिप्यद्विसार । [विप्रद्विसार] । ५ ( =वि  
या लैर ) ।

यिप्रतिघात । २२ ( विप-अभिव्यता ) ।

यिमज्जवादी । २६८ ( =विभागकर प्रसंस  
लौक अंशक प्रसंसक विद्वीक अंशक  
विद्व ) ५२५ ।

यिमज्ज । २२ ११६ ( =यज ) ४५५ ( व  
प्ये ) ।

यिमात्र्य । अ-२३७ ( नहीं बॉटले बाग ५  
बलुर्से ) ।

यिमूर्ति । १ ४ ( लंघन ) ।

यिमूर्ती । २४४ ( ताकिं ) ।

यिमान । देव-५, ७ ( तत्रविद्यमानकोके रूप  
रके देवताकोके कठते फिरते घर ) ।

यिमुक्ति । २३ ( =मुक्ति ) १९१ ।

यिमुक्तस्यायतन । ४६१ ( पर्व ) ।

यिमुक्तिपरिपाचनीयसदा । ४६९ ( पर्व ) ।

यिमोक्ष । १२७ २५३ ३ १, ५३१ ।

यिरज्ज । २४ ( =विमज्ज ) ।

यिकृष्टि । १२३ ( =बुद्धि ) ।

यिरेक्षस । २८६ ( सुकल्प ध्वजकर ) ।

यिघर्त । १६२ ( धर्षि ) ।

यिघर्त-कल्प । १६२ ।

यिवाङ्-अधिफलज्ज । ४४९ ( विस्तार ) ।

यिवाङ्मुञ्ज । ४४८ ४६७ ( अ ) ।

यियाह । १६ १७ ( अमुकोम प्रतिष्ठीमे ) ;  
९ ( अस्वर्ग ) ।

यिवेकज्ज । ३९ ( एकान्तसे उत्पद्य ) ।

यिवेक । अ-९ ( एकान्तमुञ्ज ), ५२५  
( वृकांठ ) ।

यिशारद । ४६३ ( अ-मूक ) ।

यिशारद्वता । १४ ।

यिशिक्षा । १७९ ( चौरस्ता ) ।

यिशिक्षावर्या । २५८ ( चौरस्तैक भूमता ) ।

यिशुद्धापेक्षी । ३ १ ( शूरी उपासक अ-  
रामिक, वा आमभेर होवेकी इच्छा  
बाका ) ।

यिशुद्धि । ७२ ( बुद्धि ) ।

यिसंयोग । ७२ ( =विविधोग अकय होय )  
४६९ ( चार ) ।

यिद्धार । २५ ( मिश्रुकोके रह्येक एवाय )

३६ ( =मिश्रुविभागनवाक ) १२६ ( बुटी  
विभासवत ) ; २३५, ४५८ ( मीश्री कल्प  
मुद्रिता अपेक्षा जादि भावनाय ) ; ३  
( अमठ ) ; ३१२ ३८६ ४१ ५ २  
( कोर्टी ) ।

यिद्विहा । १ ३ ( दिता परबता ) ।

बीजराम । १११ ( बीज-समुदाय ), ३३२  
( पौष मेघ ) ।

बीष्वा । वेत्सुवर्षह—८४ ( वैशुकी काल  
बीष्वा ) ।

बीठ-सूत्र । ३१५ ( अविगतमेम ) ।

बीर्य । ११४ ११५ ११५ ( उद्योग को  
भ्रम्य ) ३१६ ( अमनोबल ) ।

बीर्य-रुद्रिय । १२१ ( अर्हत्त्वम् ) ।

बीर्यारम्भ । ७६ ( उद्योगिता ) ।

बृहस्पतिवता । १४ ।

बृहस्पतिक । ८१ ( सदा बृहस्पते बीचे रहने  
वाक्य क्रमज ) ।

बृहस्प । १०१ ३४९ ( बृह ) ।

वेद् । ३५ २२ ( तील ) ।

वेदना । १६, १२१ ( मर्त्यत्व ) ३३, २०१

३३० ( सुखा दुःखा व सुख-स-दुःखा )

११० ( अग्निव भीर विषवके एक साम

मिद्वेक बाद पित्तमे को दुःख सुख

आदि विचार उत्पन्न होता है ) १२१

( अमु-संस्वर्ष-उत्पन्न श्रोत्र प्राम

विद्युत काल मय ) १६५, २३९

३५६ ( अनुभव ), २१४ ( शेकना )

३०१ ( घ ) ।

वेदनानुपक्षयता । ११३ ( स्थितिप्रकाश ) ।

वेदनीय । २११ ( अग्रवने बोल्य ) ।

वेदन्तगु । ( श्रावके अन्तको पहुँचा ) ।

वेदयित । ११५ ( अनुभव ) ।

वेदेह । ३२० ( वेद-श्रावसे प्रपन्न करने  
वाक्य ) ।

वेद्यावद्य । २३२ ( आतिर ) ।

वेद्युत । २२९ ( अनाद्य ) ।

वेणय । ३३३ ( आति, बसोर ) ।

वेद्व्य । [ वेदक ] । १३२ ( इह-अपिठ ) ।

वेद्व्यमजि । २५५, २६४ ( अदीरा ) ।

वेद्व्यिक । १२९, १३९ ( इयमैवाक्य ) ।

वेद्व्य-महत्त्व । १३३ ।

वोत्तमा । [ अक्षसर्ग ] । २६२ ( अहरी ) ।

व्यक्त । २१ ( अर्पित ) ।

व्यस्य । ३४ ( अर्ष ) ३० ( एष्टीकरण ),

२ ४ २५१ ( तर्कारी ) ३५२ ( अक्षय ) ।

व्यस्यम । अनु—१६१ ( अमिषित ) ।

व्यय । १११, ४५९ ( विभाण ) ।

व्ययधर्मा । ४२६ ( आसमान ) ।

व्ययकीर्ण । १२५ २६६ ( मिषित ) ।

व्ययवानीयधर्म । १८४ ( समक, विप  
इववा ) ।

व्ययसर्ग । ३६२ ( अत्याग ) ।

व्ययहार । ६६ ( अथाय ) १०६ ( अथापार  
वाक्य ) ।

व्ययहार-अमात्य । ६६ ( अथापाप्यक ) ।

व्ययहार-उच्छेत् । १०६ ( के अथाम भाठ ) ।

व्ययहारिक । ४८५ ( विभिन्न महामात्यके  
ऊपर, महामात्य ) ।

व्यसन । १९३ ( अक्षय ) ३६३ ( पौष ) ।

व्याकरण । २३ ( अथाक्याव ), १३३

( नव सूत्र गेव व्याकरण गाथा

उदाह इतिवृत्तक आतक अद्भुतधर्म,

वेदक ) । २२५, २०१ ( अउत्तर

व्याक्याव ) ।

व्याहृत । १८ ( अकित ) ।

व्याहृत । अ—८३ ( अकित ), १८

( विषयबोधन होमैसे अकमित ) १८१

( इति ) ।

व्यापन्न पित्त । २९ ( दोही ) ।

व्यापाद् । ५९ १०३ ( अक्षय ), ११०, १६१

( श्रोत्र-निवारण ) ।

मत । ५२ ( अक्षय ); १ ९ ( से व अक्षय )

५३१ ( सवा ) ।

प्राप्ति । २२, ३०० ( एक इतिवार ) ।

प्राप्त-सिम्बित । ३२९ ( अिंके संज्ञकी तरह

निर्भक इवेत ) ।

- शीघ्रमूर्धिका । ११४ (एक सत्रा) ।  
 शायक । ४५२ ( = कर्मण्य ) ।  
 शाय् । ३३ (बाहु) ।  
 शमय । १३४ ४५५ ( = समाधि ) ।  
 शमय-विषय्यता । १३४ (समाधि-महा) ।  
 शयन । २२४ (घर) ।  
 शयनासन । १६ (घर), • ३१५  
 ( = निवासस्थान ) ५११ ( = आसनालय )  
 १३० (घर सामान) १५ (घर विस्तार),  
 २६९ (विवास) ।  
 शरज । २८ (तीक्ष्ण) २६ ५५ ।  
 शरणागमन । क्रि—५ (से उपसंपदा)  
 ५४ (से शरण-प्रदान) ।  
 शरीर । ५ २ ( = शक्ति ) ।  
 शाखाका । ४४९ (बोटकी छत्राका जो  
 Ballot की जगह व्यवहार होती थी)  
 ४५ (संग-विरंघी) ५२० (विषयकर्मा)  
 (से सम्बन्धका) ।  
 शाखाक्रमग्रहण । ४३० (बोट लेना) ४५  
 (तीक्ष्ण प्रकाश-संज्ञक स-कर्म-संज्ञक,  
 विद्वत्क) ।  
 शाखाक्रमग्रहापक । ४४९ (शाखाका बँटने-  
 काका) ।  
 शाखाक्रमग्रह । ४५ (शाखाका ग्रहण-  
 प्रकार) ।  
 शक-देव । १२८ ।  
 शक्यत्स । २८८ (शीघ्र) ।  
 शाक्यपुत्रीय । ४० ( = शाक्यपुत्र कुलके  
 अनुयायी ) ।  
 शान्तिवादी । ११ ।  
 शावक । ९९ (उप, छत्रका) ।  
 शाश्वतद्विष्टि । ९९ (शाश्वतवाद, नित्यतावाद)  
 शाश्वतवाद । १२४ (शाश्वतको नित्य  
 भावना) ।  
 शाश्वतवादी । ५३५ ( = नित्यतावादी ) ।  
 शाश्वतविहार । ४६ (उ) ।  
 शासन । २३ ६४, ५३२ ५३४ (वर्म),  
 ४, ५१ ३ • ३२२ (संदेश, वच  
 चिट्ठी); १६५ (उपदेश) ।  
 शासनकर । ४८३ (वर्मप्रकारक) ।  
 शासन । प्रति—३ • ( = उद्योग ) ।  
 शासनमण्ड । ५३३ (वर्ममें मिक्रावट) ।  
 शास्ता । २ ( = गुरु ); ३४ (उपदेशक)  
 ५ ५ (पुस्तके समावेशमें वर्मविषय ही  
 शास्ता) ।  
 शास्ता । २५ ( = मित्र ) ४५० (तीक्ष्ण),  
 ४६० ( = मित्र-विषय ) ।  
 शास्ताकाम । ४३० ( मित्रु विषयके पा  
 वन् ) ।  
 शास्तापत् । २२३ (वर्म-विषय ५), ४०  
 ३९ (मित्रु-विषय) ३०० (सहाचार  
 विषय) २९६ ( १ वादोंके विष )  
 ४३३ ।  
 शिरके सात-दुकुड़े करना । १९८, १९९ ।  
 शिर गिरना । ४४ ।  
 शिष्य [सिष्य] । ३९१ ( = शिष्य ), २१३  
 ( = शिष्य-मेव ) ३४ ( विद्या कला  
 हुवर ) ।  
 शिष्यस्थान । ४३ (शिक्षण) ।  
 शीघ्र । १ ( = सहाचार ) ।  
 शीघ्रवाम् । ४३ ( = सहाचारी ) ।  
 शीघ्रविपक्षा ४३३ ( = सहाचारी ) ।  
 शीघ्रविशुद्धि । ४३३ ( = अधिक शक्ति  
 सहाचार ) ।  
 शीघ्रमत उपान्तान । १२३ ।  
 शीघ्रमतपरामर्शी । ११४ ( शीघ्र-मतमें  
 अभिमान संकीर्ण ) ।  
 शीघ्रसंपदा । ४५५ (सहाचारी संकीर्ण) ।  
 शीघ्रसंपदा । ८६ (सहाचारी) ।  
 शीघ्रसंज्ञ । ४३२-३३ ।  
 शुष्क । ४८५ (शुष्क) ।

शुद्धरमार्दव [ शुद्धरमद्व ] । ३९९ ।  
 शुद्धावास । ३६७ ( देवलोका ५ ) ।  
 शुद्ध्य । ३९ ( कोठमें ) ।  
 शुद्ध्यताविहार । ५२५ ( = महापुरुष  
 विहार ) ।  
 शुद्ध्यगार-अभिरुति । ३१ (प्रथम ध्यानसे,  
 द्वि पृ षडुर्ध्व ) ।  
 शुद्धाटक । ३२३ ( = बंसी औरस्ता ) ।  
 शुद्धिगच्छयण-कस्य । ५१८ ५२१ ५२६  
 ( विवध-विकन्द-विषय ) ।  
 शापसहित-दान । २९ ।  
 शैक्ष्य । २४ ( = नप्राप्तचित्त ) । २७४  
 ( जिसको अभी सीखना है सेव ) ५२  
 ( = अकरणीय ) ।  
 शैक्ष्य । अ-५२ ( अर्हत ) ।  
 शैक्ष्यधर्म । अ-४७० ।  
 शोक । ११९ ।  
 शौण्डिक । ३१३ ( अराज बनाने वाला ) ।  
 श्रद्धा । २१ ( शौरिक-विपाक्य धर्म ) ।  
 श्रद्धा-इन्द्रिय । २७१ ( अर्हतधी ) ।  
 श्रद्धानुसारी । २४ ( शैक्ष्य ) ।  
 श्रद्धाविमुक्त । २४ ( अर्हत ) ।  
 श्रमण । ११ ( = संन्यासी मित्र ) । १५९  
 ( प्रकृतित ), २६९ ( के आचार संवादी  
 धारण अवैक्य रजोविकिक उदकाय  
 तीव्र बुद्धमूर्तिक अव्यवहारिक उच्च  
 एक पर्यायमतिक संज्ञाप्यावक अति  
 कक ) ।  
 श्रमण-धर्म । ५ ।  
 श्रमण-परिष्कार । ११ ( पात्र ६ शीवर  
 सुरै, सुरा कायधन कककक ) ५२३  
 ( पात्र शीवर विनीतन सूचीवर कय  
 बंधन, परिष्कार, धर्मकरक ) ।  
 श्रमणमाय । ९१ ( = साधुपन ) ।  
 श्रमण-सामीची प्रतिपद् । २० ( सप्या  
 धमन बनानेवाक्य मार्ग ) ।

श्राद्ध । १० १ ।  
 श्रामणेय-प्रग्रम्या । ५४ ( तीव्र धरक-गमन  
 से ) ।  
 श्रामण्य । १५ ( श्रामणमात्र ) २४४  
 ( संन्यास ) ३३० ( मिश्रपन ) ।  
 श्रामण्यफल । ३२२ ( शर ) ।  
 श्रावक । १० ( शिष्य ) ।  
 श्रावक । अग्र- । १ ५३, ४३९ ।  
 श्रावक । महा- । १ ।  
 श्रीगर्भ । ३९ ( रंयमहक ) ।  
 श्रुत । २१ ( धर्म-प्रयोगे किकित न इवैसे  
 कोय सुन कर ही धारण करते से इस  
 प्रकार उपकथ्य शाक्यो श्रुत कहते से ),  
 २६१ ( विद्या ) ।  
 श्रुतधर्मा । १० ।  
 श्रुतधान् । ९८ ( पंडित ) ।  
 श्रुति । १९ ( धर्म ) ।  
 श्रेणी । ३८ ( शक्ति-समा ) ।  
 श्रेयस् । १०९ ( बहुत श्रेष्ठ ) ।  
 श्रेष्ठी । २० ( सेव ) ६५ ( एक अक्षतिक-  
 राक्षसीय पद ) ।  
 श्रेष्ठी । अनु-२० ।  
 श्रेष्ठीका पद् । १३२ ।  
 श्रेष्ठ । ३३ ( पाद ) ।  
 श्रेष्ठधानु । दिव्य-५९१ ।  
 श्रेष्ठयिज्ञान । ३३ ( पाद ) ।  
 श्रेष्ठवधान । २११ ( = काय कयागा ) ।  
 श्रेष्ठेष् । १९५ ( = कक ) ।  
 श्रेष्ठक । ३९९ ( = शरीक ) ।  
 श्रेष्ठपान । ३९९ ( कुत्तेके पीनेका बतल ) ।  
 सह्यागामी [ सकिष्ठागामी ] २३ ( ३  
 संशोधकके अथ और रायसेप मोदके  
 विरिक्त श्रेष्ठेपर ) ५१ ( द्वि धमन ) ।  
 संकल्प । ४५९ ( कुत्तक अकुराक ) ।  
 संज्ञि । १९५ ( = मक्ति ) ।



संप्लेदा । १८४ ( = फलेत मक ), १९३,  
 २४५ २५० ५ ( विलम्ब ) ।  
 सुंगणिक । ४८८ ( = यौवमात्र ) ।  
 सुंगति । ३२९ ( = नाभी ) ३२३ ( धवि  
 लम्पता ) ।  
 सुंगायन । ( सायमें वाद करना ) ।  
 सुंगैति । ५२८-५३९ एक साथ स्वर-सहित  
 पाठ करना ) ।  
 सुमह्यस्तु । २४२ ( = श्राव बन्धवाचक  
 अर्थवर्षा, समावृत्तिता ) ४६२ ।  
 सुंय । २२३ ( = परमविराम-लक्षण समुदाय )  
 २२३ ( वातुर्हिता ) ५३२ ( = व्याख्या ) ।  
 सुंघण । ७२ ( समष्टिता ) ।  
 सुंघमेत् । १३ ( = अक्षराको संघमें फूट )  
 ४४ ) ।  
 सुंघरात्री । १३ ( सुंघमेत् ) ।  
 सुंघात् । ४९१ ( अज्ञात ) ।  
 सुंघादी । ४३ ४५, १११ २५ ( विमुक्त  
 अक्षर शोदा बंध ) ।  
 सुंघानुस्मृति । १२२ ।  
 सुंघायज्ञ । २४५ ( सन्धापन ) ।  
 सुंघेसना । ११० ( निश्च मानके बाद  
 निषव विनय करना ) ।  
 सुंघतनाकाय । ४६५ ( छ ) ।  
 सुंजा । ११० ( = अङ्गित्व और निषवके एक  
 साथ मिलनेपर अनुकूल प्रतिप्लुत वेदनाक  
 बाद ही यह अनुक विनय है - ज्ञानको  
 सुंजा करना है ) ४५९ ( कुशाक, अनु  
 शक ) ४६९ ( = ज्ञान ) ४७३ ( =  
 ब्रह्म ) ४८८ ( = अग्निहावीष भ्रम ) ।  
 सुंजायाय । ४ ४६९ ( छ ) ।  
 सुंजापदपित्त-निरोध । ४७३ ( अर्थात् दाता  
 का अभाव ही सुत श शाना है ) ।  
 सुंजी । १०० ( = अज्ञान ) ।  
 सुंजात् । ३९ ( = अज्ञान ) ।

सत्युच्य । २९ ( भाव ) ।  
 सत्युक्त्यधर्म । ४९९ ( ७ ) ।  
 सत्यनुपत्ति । २११ ( = सत्य प्राप्ति ) ।  
 सत्यानुबोध । २११ ( सत्यका बोध ) ।  
 सभ्यानुपस्था । २१ ( = सत्यकी रक्षा ) ।  
 सस्थ । १८ १४९ ( बीष ) ४६९ ( अग्नी),  
 ११५ ( विद्यवाता ) ।  
 सत्त्वापास । १७१, ४७३ २७१ ( बीषके  
 कोड ९, ७ ) ।  
 स-दृत् । ९ ( स-भव ) ।  
 सद्धर्म । ४६९ ( सात ) ४८८ ( = अग्नि  
 हावीष भ्रम ) ।  
 सद्धर्म । अ ४६९ ( सात ) ।  
 सखिषिदारी । ४८ ( = सिद्ध ) ।  
 सनातनधर्म । १३ ।  
 संघाट । २३३ ( भासक ) ।  
 संशान । ९९ ( समाजापन ) ।  
 संविद्ध । २९ ( व्यतिथित ) ।  
 संवृष्टिपरामर्शी । ४६८ ( हठी ) ।  
 सप्रियात् । ४८४ ( = एकठा होना ), ५१९  
 ( बँटक ) ।  
 सप्रियात् मेरी । २ ( बँटककी सूचकाका  
 विमुक्त ) ।  
 सप्रिधि । ४३२ ( बना करना ) ।  
 सप्रिधिकारण । ५२९ ( सर्वप्रथम वस्तु ) ।  
 सपदानधारी । १३० ( = पुनर्गत विरंतर  
 आरिष्य कथो रहन बाध ) । २५१  
 ( विरंतर कथन रह मिष्टा जागनेका ) ।  
 सपुत्रमार्य । ११ ( तापनभद्र ) ।  
 सप्रतीति । ५९ ( = प्रतीति-सहित ) ।  
 समुत्पन्नक । २४ ( उद्यमैवाकी ) ।  
 समुत्पन्न । २९ ( = सर्वप्रथम ) ।  
 समुत्प । २९ ( आर्ध-सत्य २ ) । २४  
 ( दुष्ट कारण ) ३० ( हेतु कारण )  
 २७३ ( उत्पत्ति ) ।

समुद्रपथर्म । १७ ( इत्यत्र द्विषे वावा ) ।  
 समग्र । १६ ५०९ ( एक शय ) ।  
 समग्र्या । [ समग्र ] । ८७ ( समाज, मेधा  
 समाशा ) ।  
 १५८ ( समाज नाश, समाशा ) ।  
 समतिसिका । १९२ ( पूर्व, मरी ) ।  
 समनुपदयना । १९ ( सूत्र सिद्धांत ) ।  
 समस्तसङ्घ । ३५६ ( सुद ) ।  
 समस्वाहार । १९६ ( मन्सिद्धार विप-  
 शान ) ।  
 समय । ५३५ ( असिद्धांत ) ।  
 समर्पित । ७ ९ ( संयुक्त ) ।  
 समाहार । २११, ७१२ ( आक्षय ) ।  
 समाशापन । २६ ( संवर्तन ) ।  
 समादपन । १५८ ( = समुचेजन ) ।  
 समाधि । १५२ ( एतत्, बीर्ष विप विमर्ष )  
 ११५ ( एकप्रता बोधार्थ ३०१ ७५०  
 ( एतत्ता अविमित्त अविहित ) ।  
 समाधि । अदितर्क अविचार-९० ।  
 समाधि-वृद्धि । २७१ ( अर्हद्वी ) ।  
 समाधि । उमयांश-२३ ।  
 समाध मिथी तिक-९० ।  
 समाधिये टिप्पण । ७९९ ( साठ ) ।  
 समाधि-भाषना-७५८ ( चार ) ।  
 समाधि-विद्य । ९५ ( मारह ) ।  
 समाधि । समीतिक-९७ ।  
 समाधि सम्यक्- ( वैशो सम्यकममाधि ) ।  
 समाधि । सवितर्क सविचार-९० ।  
 समाधि । साठ-सद्वृत्त-९० ।  
 समाजता । १७२ ( अरावरी ) ।  
 समापत्ति । १२ ( = समाधि ) ३ १  
 एतत्ता अविमित्त, अविहित ) ।  
 समापत्ति । आक्षय-५ ५ ( पांच ) ।  
 समाारम्भ । १६१ ( विवाह ) ३२२ ( विवा )  
 ३१५ ( विद्या ) ।

समाहित । १६५ १७७ ( = एकप्रता ) ।  
 समीहित । २०३ ( = चितित ) ।  
 संपद । ४६३ ( पांच ) ।  
 सम्यक् । ७५ ( उपचार ) ।  
 संपराय । ३२२ ( अन्तर्गत ) ।  
 समग्रम्य । ११ ( अनुभव ) १११  
 ( अयानुपस्थान ) १११ ( जायकर  
 करवा ) ।  
 संप्रसातसमापत्ति । ( = संप्रसातममा  
 पत्ति ) १७९ ।  
 संप्रमाण । १७८ ( मसप्रता ) ।  
 संप्रहर्षण । १६ ( = समुचेजन ) ।  
 सवाध । २२ ( = पूर्वज्ञान ) ।  
 संशोधि । १३३ ( सुद्वान ) ।  
 संशोधिपरायण । १३ । ( परमज्ञानही नासि  
 में विद्वक् ) ।  
 संशोधि । सम्यक्-८५ ( परमज्ञान ) ।  
 संशोध्यङ्ग । ७५९ ।  
 संमुक्त धिनय । ७७ ( अविचारण समध ) ।  
 सम्यक् । १२ । ( = शीक ) ।  
 सम्यक्-भाजीप । २२ ( शीक जीविष्य )  
 ११८ ।  
 सम्यक् भाषा विमुक्त । २६ ( अक्षी  
 तरह जायकर मुक्त ) ।  
 सम्यक् कर्मोक्त । २२ ।  
 सम्यक्त्व । ७७ ( सच ८ ) ।  
 सम्यक् इति । १२, ११८ ।  
 सम्यक्-प्रातपत्ता । १७९ ( = सत्वाक्षय ) ।  
 सम्यक् प्रधान । १८ ( चार ) ७७८  
 ७९९ ( सुद्वसाक्षात्कृत धर्म ), ७५८ ।  
 सम्यक्-यथार्थ । २२ ११८ ।  
 सम्यक् व्यायाम । २२ ( शीक प्रधान  
 परिधम ) ११८ ।  
 सम्यक् संक्षय । १२, ११८ ।  
 सम्यक् समाधि । २२ ११८ ।

सम्यक् संबुद्ध । २ (= बुद्ध ) ।  
 सम्यक्-सम्बोधि । १५, २३ ( अमि-  
 संबोधि परमहान मोक्षशास्त्र ) १३०  
 (= बुद्धत्व ) ।  
 सम्यक् स्मृति । १२ ११८ ।  
 सरक । ४२६ ( कठोरा ) ।  
 सरीसृप । १० (= रेंगवेवाका ) ।  
 सर्पिण् । १८५ ( पी ) ।  
 सर्पिष्पाण्ड । १८५ ( बौद्ध सार ) ।  
 सर्वज्ञ । २१४ २११ ( बुद्धके विषयमें ),  
 २४१ २६१ ३२१ ३९५ ( संबन्ध ) ।  
 सर्वमिथ । ३४२ ( निराश्रय पक्ष ) ।  
 सर्वार्थक । १ ८ ( बीजा ) ।  
 सर्वार्थ-साधक । ५१ ( अकारण ) ।  
 समस्तानुत्ता । १ ४ ( अक-रहित शैली  
 मात्र रह गई लेखी बहो हो ) ।  
 स-संस्कार-परिनिर्वाणी । ४६४ ( अजा  
 यामी ) ।  
 सस्य । ५३ ( खेती, इतिवाची ) ।  
 सहव्यपता । १९१ (= सलोकर ) । ४०२  
 ( स्थिति ) ।  
 सहसाकार । ४३२ ( अन्तर्जालि कर्प ) ।  
 संयोजन । ११४ ( अर्थम १ प्रथिब,  
 मात्र छवि विचिकित्सा श्रीकृत  
 बधमत्तं मवराय ईश्वर, मात्सर्व  
 अविद्या ) । १४, २३ ( अन्वय )  
 ४५६ ( तीव्र ४० ( कात ) ।  
 संयोजन । ऊर्ध्व भागीय—४६२ ।  
 संयोजन । अधर भागीय—५, ४६३  
 ( पाष ) ।  
 संवर । १६१ ( रक्षा आचरण ) २०५;  
 ४३५, ४५९ ( संवस ) ।  
 संवर-दम्पित्य—१९१ ४३२ ।  
 संवर । घातुर्धाम—४१० ( ईशिका ) ४३१ ।  
 संवर्त । १६२ (= प्रकृत ) ।  
 संपत्कस्य । १३२ ( प्रकृत ) ।

संवास । १२८ ( सहवास ) ।  
 संवृत । २१४ ( पाप व करके काल  
 संवृत गुप्त ) ३२१ ( रक्षित ) ।  
 सपिण । १३५ ( बीजाव, अजातीयता ) ।  
 संविग-प्राप्त । १६५ ( अज्ञान ) ।  
 संवेदनीय । ४५५ ( अज्ञान करके अज्ञ ) ।  
 संस्तरण । ४९३ ( आवायमव ) ।  
 संस्कार । ( अतीव ) ९९ ( अक्षिप्त )  
 ४५६ ( तीव्र ) ४९६ ( अत वस्तु ) ।  
 संस्कृत [ संवृत ] । ९२ ( अक्षिप्त, निर्मित,  
 अतीव समुत्पन्न ) २०४ ( अत, अक्षिप्त ) ।  
 ५ २ ( कात ) ।  
 संस्थागार । १३८ (= अज्ञान समागृह ),  
 ४५३, ५ ३ ( अज्ञान-परिष्कार-अवयव ) ।  
 संस्पर्श । ३३ ( योग ), १६५ ( संबन्ध )  
 १ ८ ( अक्षिप्त और इ क्षिप्तका अकारणा  
 सूत्र ) ।  
 साक्षात्करणीय । ४६२ ( अर्थ ) ।  
 साक्षात्कृतधर्म । ४९६ ।  
 साक्षिक । १५० ( संबन्ध ) ।  
 साटक । २८१ ( पीठी ) ।  
 सात । ९९ ( सुख ) ।  
 सातरूप । ११६ ( अक्षिप्त ) ।  
 साधु । ५३२ ( अर्थ ) ।  
 साधुविहायी । ९३ ।  
 सांख्यिक । १५३ ( अक्षिप्तकृत ) २०५  
 ( अर्थमात्रमें अक्षिप्त ) ४३२ ।  
 सांख्यिक-विपाक-प्रद । २१ ( ५ अर्थ—  
 अज्ञा, अक्षि अक्षिप्त आकारपरिचिन्त  
 छवि-विष्वाकाश ) ।  
 सायतेत्य । २२१ (= अक्षिप्त-अर्थ ) ।  
 सामग्री । १ ३, ४५१ ( अक्षिप्त ) ।  
 सामीचीकर्म । ४२, ३९५ ( अक्षिप्तकर्म =  
 शब्द बोधना ) ।

सारस्य । ११५ ( बज्रक ) ।  
 सारथीय । ४५१ ४४२ ( = शिवकरण  
 गुणकरण ) । ४६० ( ङ ) ४८८ ( सात  
 अपरिहाणीय धर्म ) ।  
 सार्यवाह । १९ ( काश्मिरीका सहाय ) ।  
 सालूक । १५५ ( कोई भी बह ) ।  
 सालूकपान । १५५ ।  
 सिद्धार्थक । १४ ( पीछी सरतो ) ।  
 सिम्बनी । २८३ ( खोपड़ी ) ।  
 सिंह पंजर । ५३१ ( = शिबकी ) ।  
 सिंहशय्या । ४५४ ।  
 सुगत । १८ ।  
 सुगते । ११३ । ( स्वर्गलोका-स्थिति ) ।  
 सुधारित । ११९ ( अय वाक् मन- )  
 ४५५ ।  
 सुजा । २२ २२८ ( बह-दक्षिण ) ।  
 सुजात । १५२ ( सुन्दर जन्मवाक्य ) ।  
 सुमिता । १४२ ( = सुप्रबन्ध ) ।  
 सुदर्शी । ४६४ ( देखता ) ।  
 सुदर्शी । ४६४ ( देखता ) ।  
 सुप्रतिकार । ७२ ( प्रस्तुपकार ) ।  
 सुम । ४०२ ( सुप्र ) ।  
 सु-भरता । ७६ [ आसानी ]  
 सुमूमि । ३३३ ( उद्यानमूमि ) ।  
 सुरापान-शोष । २५८ ( पीब ) ।  
 सूकरमह्य । ५ ( = सूकरमार्थक ) ।  
 सूक्ष्मर । ५२२ ( सुई रखनेका बर ) ।  
 सूत्र [ सूत्र ] । १३२ ( व्याकरण ) ४९८  
 ( बुद्ध समवर्ष ) ।  
 सूत्रधार । ४८५ ( वशाधिकारी व्यवहारिक  
 के रूप ) ।  
 सूत्र । ४३ ( = पाठक ) ।  
 सूना । १४ ( = मांस काटनेका पीप ) ।  
 सूय । ६३ ( = तेमन ), २ ३ ( शक ) ।  
 सेतक । ५३५ [ सकेत रूपवा ] ।

सेतुद्विका । ७५ ( सकेत/ बहस्वति-रोग )  
 सेतुधात । ११९ ( = मर्पादा-अण्डन )  
 सेनापति । २३५ ( गर्जोमें पत्र ) ४८५  
 ( सूत्रधारके रूप ) ३८४ ।  
 सोम्य । २५३ ( बह ) ।  
 सौभ्रातिक । ( सूत्रपाठी ) ६८ ९१ ( सूत्र  
 पिटकपाठी ) ।  
 सौधधम्य । ४७५ ( = मञ्जुरमापिता ) ।  
 स्कंध । २५१ ( = समुदाय ) ४६३ ( पाँच ) ।  
 स्कन्धधार । [ खंघाधार ] । ८३ ४४३  
 ( छावनी ) ।  
 स्तम्भितस्य [ छरिमठत ] । ९५ ( समाधि  
 विषय ) ।  
 स्त्यानसूय । [ भीम-मिह ] । ९५ ( समाधि  
 विषय ) ११४ १६२ ४३३ ( मन्त्र  
 भाष्यस्य भीषण ) ।  
 स्त्रीधन । २९४ ।  
 स्वपति । ४४६ ( श्रीकृष्णम् इसीसे बहई  
 = राज ) ।  
 स्वधिर । ४५, २८३, ( बुद्ध, डेर इसीसे ) ।  
 स्वधिरवात् । ३८० ( बुद्धोंका सिद्धांत )  
 ५३३ ( = वेदवाद्, सिद्धका बमो स्थान  
 का बौद्ध-धर्म ) ।  
 स्वधिरासन । ५३४ ( अध्यापतिक कासन ) ।  
 स्थानार्ह । १ २ ( धार्मिक धर्मांशुसार ) ।  
 स्थाम । १४५ ( दण्डता ) ४६४ ( दण-  
 पत्राक्रम ) ।  
 स्थासिपाक । २ ।  
 स्यूय । [ पूव ] । ११६ ( खंभा, धूमि इसीसे ) ।  
 स्यूय-कल्पय । २३ ( सुप्चर्म ) ।  
 स्नायु [ बहाव ] । १६४ ( बल ) ।  
 स्पर्श । ( अस्त्र ) । १६ ( मरीत्य ) ९९  
 ( योग ) १०९ ( मार्ति ) २३९  
 ( साक्षात् ) ( देखो स्पर्श भी ) ।  
 स्पर्शकाय । ४६६ ( स्पर्श-समुदाय ६ ) ।

स्वप्नप्रप्य । ३३ ( वातु ) ।  
 स्फुट । २०८ ( समुद्रिष्ठादी ) ।  
 स्मृति । ११४, ११५ ( संयोर्षव ) ।  
 स्मृति इ द्विप्य । २४१ ( अर्हत्की ) ।  
 स्मृतिपाठिशुद्धि । १०९ ( आरगको शुद्ध  
 करवा ) १६२ ( तृतीय खानमें ) ।  
 स्मृतिप्रस्थान [ सतिपरुहान ] । १८ ( बार )  
 ११ ११९ ( कायानुपपन्नवा वेदनामु  
 किल धर्म ) ; २०१ २४८ २९० ।  
 स्मृतिवितय । ४५ ( वितपधर्म ), ४७  
 ( अथिद्रुह धापव ) ।  
 स्मृतिसंग्रहप्रप्य । १६१ २३२ ।  
 स्रोतभाषाति [ सीतापत्ति ] । ३०९, ४५९  
 ( के ४ अङ्क ) ।  
 स्रोत भाषाप्र [ सीतापव ] ।  
 ( ३ संवीरताके अक्षर ) १८ २१०  
 अङ्क ) ५ ४ ( प्रथम धमक ) ।  
 स्वकसंज्ञी । १०८ ( अर्धमें अज्ञा प्रहाज करके  
 बाका ) ।  
 स्वप्नोपम । १०९ ।  
 स्वप्नप्रप्य । ६० ।  
 स्वप्नप्रप्य । ५९१ ( स्वप्नसहित सुषोको  
 पक्षेबाध्य ) ।

स्वप्न [ सोत्वि ] । १६९ १९९ ( = में  
 गळ ) ।  
 स्यादप्यात् । २३, १५३, ४ ५ ( सुप्तर प्रकर  
 त बर्जित ) ।  
 म्नीफार । ५ ९ ( = महत् ) ।  
 म्नीयप्रप्यप्रियत्त । ४५ ।  
 इरयत्थर । ३३४ ( गङ्गीया इधीपर का  
 विष्ठीया ) ।  
 हत्यपिच्छक । ९१ ( हन्-संकेत ) ।  
 हस्मप्रप्योतिका । २१४ ( हाथ अकारने की  
 सजा ) ।  
 इस्तिप्रप्यप्रियत्त । ३९३ ( इधी पक्षवैकी  
 विष्ठा ) ।  
 इस्तिमत्प्रप्यसात् । ३१८ ( = इधीके वीर  
 या अर्धवैकी व्याहृतिका सात्सात् ) ।  
 हिरण्य । १६, २८ ३३३ ( जसर्षी ) ।  
 दिवना [ दिवन ] । २३३ ।  
 हुन । ३४ ( इत्य ) ।  
 हेतुरूप । ३९९ ( = हीक ) ।  
 इव [ एव ] । ३९५ ( सरोवर ) ।  
 छीमात् । २४३ ( अङ्कप्रतीक ) ।

